* श्रीगणेशायनमः *

गुरुमण्डलग्रन्थमालाया एकविंशम्पुष्पम्

श्रीमद्देवीभागवतम्

श्रीमन्महर्षि-कृष्णद्वैपायनव्यासविरचितम्

(प्रथमस्कन्धादिषष्ठस्कन्धात्मकम्)

पूर्वार्द्धम्

श्रीनाथादिगुरुत्रयं गणपतिं पीठत्रयम्भैरवम् ।
सिद्धौघं बटुकत्रयम्पदयुगं दूतीक्रमं मण्डलम् (शाम्भवम्) ॥
वीरान्द्वयष्टचतुष्कषष्टिनवकं वीरावलीपञ्चकम् ।
श्रीमन्मालिनिमन्त्रराजसहितं वन्देगुरोर्मण्डलम् ॥

५, क्लाइव रो,

कलकत्ता—१

वैक्रमाब्दः	प्रथमंसंस्करणम्	खृस्ताब्दः
२०१७	५०००	१९६१

卐

Gurumandal Series No. XXI

Shrimaddevibhagawatam

First-Six SKANDHAS

BY

Shrimanmaharshi Krishna Dwaipayan Vedavyas.

Poorvardham

5, CLIVE ROW
CALCUTTA-1

Vikram Era	First Edition	Christian era
2017	5000	1961

मुद्रकः—
सारनमण्डलान्तर्गत गोरियाकोठी
निवासी श्रीमत्स्वर्गतगोपालप्रसाद
सूनुः श्रीअवधकिशोरसिंहः
स्वयन्त्रालये

गोपाल प्रिण्टिङ्ग वर्क्स

नामके
स्थानम् :—८७।ए, राजा दिनेन्द्र स्ट्रीट,
कलकत्ता—६



त्रिदेवताः पान्तु सशक्तिकाः सदा

* श्रीगणेशायनमः *

"त्रिदेवताः पान्तु सशक्तिकाः सदा"

का

विशिष्ट परिचय

प्रधानमण्डप में भगवती आद्याशक्ति का दर्शन स्पष्ट है उनका एक पांव सिंह पर रक्खा है और दूसरा महिष की छाती पर।

भगवती के दक्षिण भाग में श्रीविघ्नविनायक गणेश मूषकवाहन पर विराजमान हैं उनके साथ उलूकवाहिनी लक्ष्मी हैं।

वामभाग में स्वामी कार्त्तिकेय मयूरवाहन पर हैं और उनके साथ हंसवाहिनी सरस्वती हैं। इसका विश्लेषण इस प्रकार समझ में आता है :—

सिंहवाहिनी— भगवती पार्वती; महिष—भगवान् शङ्कर। लक्ष्मी सहित श्रीगणेश— विष्णु एवं विष्णुप्रिया के साथ। सरस्वती सहित स्कन्द स्वामी— ब्रह्मरूप उनके साथ स्वशक्ति सरस्वती हैं। भगवान् गणेश श्री विष्णु हैं तथा षडानन कार्त्तिकेय श्री ब्रह्मा हैं यह निम्न लिखित स्कन्दपुराणीय वचनसे स्पष्ट है—

क्रमेण दौहृदवती भूत्वा प्रासूत पार्वती। गजाननञ्च हेरम्बं सेनान्यञ्च षडाननम्

तौ चागमविदः प्राहुर्नारायणचतुर्मुखौ।

[माहेश्वर० अरुणाचलमाहात्म्य उ० १७।२३-२४

यह चित्र आत्मा को ब्रह्म की प्राप्ति का निर्देश करता है जो अन्तर्गर्भ है। प्रस्तुत चित्राङ्कण सुप्रसिद्ध शारदीय नवरात्र में मनाये जाने वाले बङ्ग भूमि के राष्ट्रीय पर्व दुर्गा-पूजा का है। अब देखिये :—

भगवती का चित्रण ठीक है कालीजी शिव की छाती पर विराजो हैं क्योंकि पुरुष का हृदय उसकी अर्द्धाङ्गिनी धर्मपत्नी का स्थान है। इसप्रकार इसमें स्वशक्तियों सहित ब्रह्मा, विष्णु और महेश की (शक्तियुक्त त्रिदेवों) की पूजा है।

भगवान् शङ्कर महिष क्यों हैं इस विषय में शिवपुराण में चतुर्थ रुद्र-कोटि संहिता में सुन्दर उपन्यास है। जब स्वर्गारोहण के समय पाण्डव लोग उत्तराखण्ड में शिवजी (केदारेश्वर) के दर्शनों के लिये उत्कण्ठित हुए तो शङ्करजी के इसी रूप में दर्शन करने का सौभाग्य उन्हें मिला यह उल्लेख है।

सूतजी कहते हैं :—हे ऋषियो! जो विष्णु से नर और नारायण नाम-वाले दो अवतार हैं वे भारतवर्ष में बदरिकाश्रम में तपस्या करने लगे। उन्होंने भगवान् शङ्कर से पूजन के लिये प्रार्थना की, भगवान् शिव भक्तों के वशीभूत हुए प्रतिदिन लिङ्ग में आते हैं, इसप्रकार पूजा करते हुये उन धर्म पुत्र नर और नारायण का बहुत समय बीत गया। एकसमय भगवान् शङ्कर ने प्रसन्न हो उन्हें वर मांगने के लिये कहा, इस पर नर और नारायण ने संसार के हित कामना के लिये उनसे प्रार्थना की।

सूत उवाच

नरनारायणाख्यौयाववतारौ हरेर्द्विजाः। तेपाते भारते खण्डे बदर्याश्रम एव हि
ताभ्यां सम्प्रार्थितः शम्भुः पार्थिवे पूजनाय वै।
आयाति नित्यं तल्लिङ्गे भक्ताधीनतया शिवः॥
एवंसम्पूजयतोःशम्भुं तयोर्विष्ण्ववतारयोः। चिरकालोव्यतीयायशैवयोर्धर्मपुत्रयोः
एकस्मिन्समयेतत्र प्रसन्नः परमेश्वरः। प्रत्युवाचप्रसन्नोऽस्मि वरो मे प्रीयतामिति
इत्युक्ते च तदा तेन नरो नारायणःस्वयम्। ऊचतुर्वचनंतत्र लोकानां हितकाम्यया
नरनारायणावूचतुः
यदि प्रसन्नो देवेश! यदिदेयस्त्वयावरः। स्थीयतांस्वेनरूपेणपूजार्थं शङ्करः स्वयम्

नर और नारायण बोले :—हे देवेश! यदि आप प्रसन्न हैं, यदि वर देना चाहते हैं तो आप स्वयं पूजा के लिये यहीं विराजमान होवें।

सूतजी बोले :—उन दोनों के कहने पर स्वयं भगवान् शङ्कर ज्योतिर्लिङ्ग रूप में हिमालय स्थित केदार क्षेत्र में उन नर-नारायण के द्वारा पूजा किये गये सम्पूर्ण दुःख और भय को दूर करने के लिये संसार के उपकारार्थ तथा भक्तों के दर्शन के लिये स्वयं प्रभु केदारेश्वर के नाम से विराजमान हुये। यह अपना दर्शनएवं पूजन से अभीष्ट वस्तु प्रदान करते हैं। यहां देव और पुरातन ऋषिगण पूजा करते हैं, वे प्रसन्न महेश्वर से अपने मनोभिलषित फल को प्राप्त करते हैं।

प्रतिदिन इनकी पूजा करने से बदरिकाश्रमवासी अभीष्ट फल पाते हैं। उस दिन से प्रभु केदारेश्वर के नाम से विख्यात हुये। जिसने भक्तिपूर्वक पूजा की है उसे स्वप्न में भी दुःख नहीं। जो प्रभु निश्चय से पाण्डवों को देखकर महिषरूप हो माया रूप से दौड़ने लगे, पाण्डवों ने महिष की पूँछ पकड़ी और बारम्बार प्रार्थना की (यहां पर यह आशय है कि पाण्डवों में अधिकारिता की कुछ कमी थी इसलिये प्रभु दर्शन देना नहीं चाहते थे इसलिये महिष (भैंसा) का रूप बनाया)। भक्तों पर दया करनेके हेतु प्रभु उसी रूपसे वहां विराजमान हुये जिसका शिर का भाग नयपाल (नेपाल) में तथा पीठ केदारजा में विराजमान हैं। फिर पाण्डवों के द्वारा पूजन करने पर उन्हें वरदान दिया पाण्डव पूजा कर सब

सूत उवाच

इत्युक्तस्तु तदाताभ्यां केदारे हिमसंश्रये। स्वयञ्चशङ्करस्तस्थौज्योतीरूपोमहेश्वरः
ताभ्याञ्च पूजितश्चैव सर्वदुःखभयापहः। लोकानामुपकारार्थं भक्तानां दर्शनाय च
स्वयं स्थितस्तदाशम्भुः केदारेश्वरसञ्ज्ञकः। भक्ताभीष्टप्रदोनित्यं दर्शनार्चनादपि
देवाश्च पूजयन्तीह ऋषयश्च पुरातनाः। मनोऽभीष्टं लभन्ते ते सुप्रसन्नान्महेश्वरात्
भवस्यपूजनान्नित्यं बदर्याश्रमवासिनः। प्राप्नुवन्ति यतःसोऽसौभक्ताभीष्टप्रदःसदा
तद्दिनं हि समारभ्य केदारेश्वर एव च। पूजितोयेनभक्त्या वै दुःखंस्वप्नेऽपिदुर्लभम्

दुःखों से मुक्त हो मनोवाञ्छित वस्तु की प्राप्ति कर बहुत प्रसन्न हो चले गये। वहां केदार क्षेत्र में भगवान् शिव साक्षात् विराजमान हैं। भारतवासी जनों के द्वारा विधिवत् उसी तरह पूजा की जाती है। जो व्यक्ति वहां पर होनेवाले कंकण को जो हर रूप ही है देता है वह उस प्रभु का दर्शन कर सब पापों से मुक्त हो जाता है।

महिषासुर के विषय में स्कन्दपुराण में विशेष रूप से निर्देश है :—

वह महिषासुर दैत्य सिंहारूढ गौरी भगवती के दिव्य आयुधधारी विग्रह पर विशालशैलों की वर्षा करने लगा। फिर भगवती ने उसके शैलवर्षण को बाणों से काट कर दूर से ही निवारण करते हुए तीक्ष्ण अस्त्रों से उस मायावी दानव के सम्पूर्ण शरीर को बेंध दिया। बाणों से बिंधा हुआ भी वह दैत्य विभीषण रूप से बढता ही गया उसपर इस बाणवर्षा का कोई प्रभाव नहीं हुआ। फिर उस दैत्य ने सिंहाकृति धारण की और खूब जोर जोर से सिंह की हुङ्कार करता हुआ तीक्ष्ण दाढ़ और खूब तेज नख धारण कर इधर-उधर घूमने लगा। तब देवी के सिंह ने उस पर अपने अग्रपदों से खूब जोर से प्रहार किया और अपने नखों से दैत्यरूपी सिंह के वक्षस्थल को विदारण कर दिया। इस पर देवी ने फिर तलवार से आक्रमण किया तो वह मदोन्मत्त हाथी का रूप बनाकर

यो वै हि पाण्डवान् दृष्ट्वा माहिषं रूपमास्थितः।
मायामास्थाय तत्रैव पलायनपरोऽभवत् ॥

धृतश्च पाण्डवैस्तत्र ह्यवाङ्मुखतयास्थितः। पुच्छञ्चैवधृतंतैस्तु प्रार्थितश्च पुनःपुनः
तद्रूपेण स्थितस्तत्र भक्तवत्सलनामभाक्। नयपालेशिरोभागे गतस्तद्रूपतःस्थितः

— — — — — — — — — — — — — — —

तत्र नित्यं हरःसाक्षात् केदारेश्वरसञ्ज्ञके। भारतीभिः प्रजाभिश्च तथैव परिपूज्यते
[शिवपुराण चतुर्थरुद्रकोटि संहिता]

सतुसिंहस्थितांगौरींज्वलन्तीं विविधायुधाम्। शैलवर्षेणमहताकुपितः समपूरयत्

देवी के सम्मुख शीघ्र ही युद्ध के लिये उपस्थित हो गया जैसे कोई पशुबलि के उपादानों से युक्त सज्जित कर खड़ा किया गया हो। मदोन्मत्त हाथी जिसके गण्डस्थल से मद चू रहा हो उस पर देवी का सिंह पूर्ण शक्ति से आक्रमण करने लगा। तब कोई उपाय न देखकर वह हाथ में खड्ग लेकर युद्ध के लिये आ गया और तुरन्त देवी ने उसके सिर को धड़ से पृथक् कर दिया।

भूयः समाहिषं रूपमास्थायासुरमायया। देव्या योद्धुम्प्रववृते यथापूर्वमनाकुलम्

सर्व प्रकार से मायारूप में पराजित होने पर महिष ने अपना महिष-रूप बनाया और देवी के सामने उसी रूप में अनाकुल हो लड़ने लगा।

इस पर भगवती के स्वरूप, बल, गौरव और गरिमा को लक्ष्य कर गौतम मुनि ने मुनीन्द्रों की प्रेरणा से भगवती का ध्यान किया और इस मायावी दैत्य को संहार करने के लिये आर्त्तभाव से प्रार्थना की।

भगवती श्रीजगदम्बे ! आप सम्पूर्ण संसार की प्राणशक्ति, ओजशक्ति और ज्ञानशक्ति तथा बलशक्ति हैं। आप मोह के लिये इस दुष्ट दैत्य को इतना बढ़ावा देकर क्यों इसकी माया को बढ़ा रही हैं ? इसके नाना देहों को संहार कर आपनिगमोक्त भेंट (बलि) की व्यवस्था क्यों नहीं करती हैं ?

शरवर्षेण महता तन्निवार्य विदूरतः। बिभेद निशितैः शस्त्रैरशेषं तस्य विग्रहम् ॥
भिद्यमानोऽपिदैत्येन्द्रः शैलसारप्रदुर्धरः। विषादं नागमत्किञ्चिद्ववृधेयुद्धदुर्मदः
भिद्यमानःसखड्गेन चक्रैरसिभिर्ऋष्टिभिः। शूलेनचाऽऽयुधैश्चान्यैरन्तर्धानमगाहत
ततः सिंहाकृतिर्भीमः प्रचण्डनिनदाननः। तीक्ष्णदंष्ट्रः शितनखः परिबभ्राम केसरी॥
देवीसिंहश्चपेटेन ताडयामास पाणिना। दैत्यसिंहस्य च नखैस्तस्यवक्षोव्यदारयत्
त्वयि सर्वस्यजगतः प्राणशक्तिः परामता। ओजःशक्तिर्ज्ञानशक्तिर्बलशक्तिश्चगम्यते
किमेतदद्य मोहाय युद्धमारभ्यते त्वया। उपसंह्रियतामेष दैत्यो भुवनगुप्तये ॥
भिन्नानामस्य देहानामुपसंहरणात्तव। बलयश्चोपदिश्यन्ते निगमोक्तावरप्रदाः ॥
अन्यथा तृणकल्पस्य शत्रोरस्य निबर्हणे।

इसके बाद भगवती ने खड्ग की धारा से जब महिष का शिर विकृत किया तो सखीगण सहित उसके लोकविभूषण विचित्र कण्ठ को देखा जिसमें भगवान् शिव का लिङ्ग स्थित था।

इस प्रकरण से यह स्पष्ट है कि भगवती ने महिषासुर से युद्ध किया और उसका सिर खड्ग से दूर कर दिया इस पर धड़ में से लिङ्ग निकल कर भगवती के हाथ से चिपक गया। इस पर उन्हें बहुत पश्चात्ताप हुआ इस कारण से महिष का शिव रूप होना सिद्ध होता है। भगवती इसका प्रायश्चित्त करने का उपाय पूछने को श्री गौतम ऋषि के यहां गई और उन्हें सारी बात बताई यह सन्दर्भ महिष के शिव रूपत्व में उपबृंहक है।

उपर्युक्त विवरण के साथ ही यह भी द्रष्टव्य है :—कालीविलासतन्त्र के ११ वें पटल में आया है।

अब महिष का पूजन कहता हूँ।

हे महावीर! तुम महिष हो, शिवरूप हो, सदाशिव हो अतः मैं अपनी पूजा अर्पित करता हूँ :—हे महिषासुर! मुझे क्षमा करो।

और देखिये :—

ततश्चवसतस्तस्य श्यामा मधुवने मुने!। अजीजनत् सुतं शुभ्रं महिषं कामरूपिणम्

[वामन पुराण अ० १७२ श्लोक १७]

कालाग्निवर्चसो देवि!; किमर्थं सम्भ्रमस्त्वियान् ॥ २१ ॥

सखिभिः सहसा बाला कण्ठं तस्य व्यलोकयत्।

अपश्यच्च तदा लिङ्गं कर्तुं तस्य च पूजनम् ॥ ४७ ॥

आवृत्त सहसा गौरी लिङ्गं तस्य गले स्थितम्।

आलोकयच्च सुचिरं रक्तधारापरीप्लुतम् ॥ ४८ ॥

आसज्जत पुनर्लिङ्गमस्याः पाणितलंगतम्। विमोचयितुमुद्युक्ता नाशक्नोल्लग्नमञ्जसा

अचिन्तयच्च सा देवी किमेतदितिविस्मयात्।

इससे यह निष्कर्ष निकला कि दुर्गापूजा के वास्तविक स्वरूप में त्रिदेवों सहित उनकी शक्तियों की, महाकाली, महालक्ष्मी और महासरस्वती रूप में पूजा है। इस तत्त्व को पुनः यथार्थतया प्रचारित करने की आवश्यकता है।

साथ ही इस शक्तिसहित त्रिदेव पूजा में एक विशेष तत्त्व का चिन्तन स्मरणीय है और वह है ब्रह्मप्राप्ति :—

देखिये, सप्तमी की अधिष्ठात्री देवता महाकाली, अष्टमी की महालक्ष्मी और नवमी की अधिष्ठात्री महासरस्वती; इधर ब्रह्मा, विष्णु और शिव विलोम-तया क्रमशः त्रयोदशी के शिव द्वादशी के विष्णु और एकादशीके ब्रह्मा अधिष्ठाता देव हैं। बीचमें दशमी रक्खी है वह आसुरी तिथि है।

*हे देवी त्रिस्पृशा आसुरी है (१० मी तथा ११ शी द्वादशी युक्त) जो तुमने पूछा है उसएकादशी को कभी व्रत न करें स्वामी वृत्तिहीन जैसे सेवन योग्य नहीं उसीप्रकार दशमीविद्धा एकादशी है। यह आसुरभावापन्नों के लिये है आयु एवं बल को विनाश करने वाली है। रजस्वला स्त्री के समान उसे वर्जनीय कहा गया है। दशमी युक्त एकादशी उसी प्रकार दूषित है जिसप्रकार रजस्वला के सङ्ग से पुरुष ज्ञानवर्जित हो दूषित हो जाते हैं। इस

विषादेन च संयुक्ता महर्षीणां पुरःस्थिता ॥ ५० ॥

[स्कन्द पुराण मा० ख० अरुणा० पूर्वा० ११ वां अध्याय]

अधुना सम्प्रवक्ष्यामि महिषस्य च पूजनम्।
महिष! त्वं महावीर! शिवरूपः सदाशिवः॥
अतस्त्वां पूजयिष्यामि क्षमस्व महिषासुर!।

कृष्ण उवाच

*आसुरी त्रिस्पृशा देवि! या त्वया परिकीर्तिता।
वर्जनीया प्रयत्नेन वृत्तिहीनो यथा पतिः॥
असुराणां तु सा प्रोक्ताआयुर्बलविनाशिनी। वर्जनीयाप्रयत्नेन यथानारी रजस्वला

प्रकार दशमी आसुरी तिथि है—दशमी पर विजय करना ही विजयादशमी कहलाती है। जो पुरुष जीवरूपा महाकाली, महालक्ष्मी और महासरस्वती को शिव, विष्णु एवं ब्रह्मा के साथ साक्षात्कार करने को सन्नद्ध है उसे दशमी पर विजय प्राप्त करनी होगी। जो व्यक्ति दशमीपर विजय प्राप्त करेगा उसके लिये तो यह सदाशिव रूप है अन्यथा तो महिषासुर है ही। दशमी क्या है ? महिषरूपा और सिंहरूपा है।

महिष = काम

सिंह = क्रोधादि षड् रिपु

जैसे भगवती आद्याशक्ति महिष-काम और सिंह-क्रोधादि षड् रिपुओं पर विजय प्राप्त कर शीलवती हो दिगम्बरी बनकर सारी सृष्टि की रक्षा करती है उसी प्रकार दशमी रूपी कामक्रोधादि को जीतने वाले को ब्रह्म की प्राप्ति का अधिकार मिल जाता है। उसे भगवान् सदाशिव के नित्यमुक्त शुद्ध बुद्ध और दिगम्बर स्वरूप मे दिव्यदर्शन हो जाते है। इसीसे वह विश्वरूपता प्राप्तकरता है। इसके विपरीत जो व्यक्ति काम, क्रोध, मद आदि पर विजय प्राप्त नहीं कर पाता उसके लिये वह सदाशिवरूप अदृश्य हो जाता है और महिषासुर का रूप रहता है उसे ब्रह्म की प्राप्ति नही हो पाती। इसलिये प्रत्येक महानुभाव भजन द्वारा कामक्रोधादि नरक के द्वारों पर विजय प्राप्त कर वस्तुतः ब्रह्म-प्राप्ति करे यह इसका तात्पर्य है।

स्वजातिश्चपरित्यज्यागतासाऽधमजातिषु। सेवत्याज्यंविशेषेणदशमीयुक्तंहिमद्दिनम्
यथा रजस्वलासङ्गाद् दूष्यन्तेज्ञानवर्जिताः। तथैव दशमीयुक्तं मद्दिनंदूषितं नृणाम्
[पद्मपुराण उत्तरखण्ड अ० ३५ श्लोक ४६-४६]

—:*:—

देवीभागवत का अनुशीलन

[जगद्गुरु रामानुजाचार्य स्वामी श्री राघवाचार्य महाराज-
आचार्य पीठ, बरेली]

देवी भगवती की दृष्टि से पुराण वाङ्मय का शिरोमणि रत्न है देवी भागवत। श्रीमद्भागवत के ही समान १८००० श्लोकों से युक्त और द्वादश स्कन्धों में विभक्त यह महापुराण है। तत्र भागवतं पुण्यं पञ्चमं वेदसम्मितम् (१।१।१६) के अनुसार इसकी गणना महापुराणों में पांचवें क्रमाङ्क पर की जाती है। माहात्म्य में कहा गया है—

देवीभागवतं तत्र पुराणं भोगमोक्षदम्। स्वयं तु श्रावयामास जनमेजयभूपतिम्
(१।१८)

कि 'भोग और मोक्ष प्रदान करने वाले देवी भागवत पुराण को महर्षि वेदव्यास ने स्वयं महाराज जनमेजय को सुनाया।' आगे देवी भागवत में महर्षि व्यास-देव का महाराज जनमेजय से स्वयं कथन है—

श्रीमद्भागवतंनाम पुराणंपरमं शृणु। त्वामहं श्रावयिष्यामि कथां परमपावनीम्
(२।१२।५७-५८)

अर्थात् 'श्रीमद्भागवत पुराण को श्रवण करो। मैं तुमको परम पावनी कथा सुनाऊँगा। इस प्रकार महर्षि व्यास इस के वक्ता हैं और महाराज जनमेजय श्रोता।

यह महाराज जनमेजय वही हैं जिनके पिता को परमहंस शुकदेव ने श्रीमद्भागवत संहिता सुनाई थी। इस संहिता के माहात्म्य में लिखा है—

राज्ञो मोक्षं तथा वीक्ष्य पुरा धाताऽपि विस्मितः। (१।१८)

अर्थात् श्रीमद्भागवतसंहिता को श्रवण कर महाराज परीक्षित मुक्त हुए। उनके मोक्ष को देखकर पहले पितामह ब्रह्मा को भी आश्चर्य हुआ था। किन्तु यहां लिखा है:—

कृतेन सुकृतेनाऽपि न पिता स्वर्गतिं गतः। (दे० भा० २।१२।५४)

इसक अर्थ यह निकलता है कि पिता परीक्षित की परमगति में अबतक महाराज जनमेजय के पुण्य कार्य का कोई उपयोग नहीं हो पाया है। देवीभागवत ने इस की पूर्ति की है।

श्रीमद्भागवत संहिता की परम्परा है—श्रीमन्नारायण—पितामह ब्रह्मा—ब्रह्मर्षि नारद- महर्षि वेदव्यास— परमहंस शुकदेव।

यहां बताया गया है कि ऋग्वेद संहिता, यजुर्वेद, संहिता, सामवेद संहिता अथर्ववेद संहिता, एवं पुराण संहिता के सम्पादन तथा महाभारत की रचना से महर्षि वेदव्यास को शान्ति एवं प्रसन्नता उपलब्ध न हो सकी। ब्रह्मर्षि नारद ने भागवत दृष्टि कोण से पुराण संहिता की रचना करने का परामर्श दिया। तदनुसार महर्षि वेदव्यास सात्वत (भागवत) संहिता की रचना की और परमहंस शुकदेव को इसे पढाया। लिखा है:—

सस्संहितां भागवतींकृत्वाऽनुक्रम्यचात्मजम्। शुकमध्यापयामास निवृत्तिनिरतंमुनिः
(श्रीमद्भा० १।७।८)

अर्थात् श्रीभागवती संहिता निर्माण कर वेदव्यास ने निवृत्तिपरायण शुकदेव मुनि को इसका अध्ययन कराया।

देवीभागवत से ज्ञात होता है कि ब्रह्मचर्याश्रम को पूर्ण कर जब शुकदेव पिता के पास आये तो पिता ने उनको विवाह करने का आदेश दिया। शुकदेव के निषेध करने पर पिता वेदव्यास ने समस्त पुराणों के भूषण देवी भागवत को अध्ययन करने का आदेश दिया। शुकदेव ने पुराण का अध्ययन किया। किन्तु जैसा कि कहा है:—

शुकोऽधीत्य पुराणन्तु स्थितो व्यासाश्रमेशुभे। नलेभेशर्मकर्मात्मा ब्रह्मात्मजइवापरः
(दे० भा० १।१६।४०)

अर्थात् उनको शान्ति नहीं मिली। तब व्यासदेव ने उनको महाराज जनक के यहां जाने का आदेश दिया। वहां पहुंचने पर उनको महाराज जनक का उपदेश मिला। इससे उनके मनको बड़ी शान्ति मिली। पिता के आश्रम पर लौट कर उन्होंने पितरों की कन्या पीवरी से विवाह किया। इस विवाह से उनके चार पुत्र और एक कन्या उत्पन्न हुई। इसके पश्चात् यथा समय शुकदेव ने पिता का साथ छोड़ दिया। कैलास पहुंचकर वे समाधिस्थ हुए और व्यष्टि शरीर को समष्टि में विलीन करने में सफल हो गये।

व्यास जी ने वहां पहुंचकर जब अपना दुःख प्रकट किया और पुत्रदर्शन की उत्कट इच्छा की तो शङ्कर जी की कृपा से—

तदा ददर्श व्यासस्तु छायां पुत्रस्य सुप्रभाम्। (दे० भा० १।१६।५८)
देवर्षि व्यासदेव ने शुकदेव की छाया देखा। इन शब्दों में वह सारा रहस्य है जो कथा भेद को निवारण कर देता है।

आगे चल कर छठे स्कन्ध में मोहवश नारद को स्त्री का रूप प्राप्त करने की कथा आई है। स्वयं नारद का वचन हैः—

ततोऽहं स्त्रीत्वमापन्नः। (दे० भा० ६।२८।४५)
कि तब मैं स्त्री बनगया। इस स्त्री रूप में महर्षि नारद का राजा तालध्वज से विवाह हुआ। अनेक पुत्र-पौत्रों की प्राप्ति हुई। बाद में सबका मरण और शोक होने पर भगवत्कृपा से पुनः उनको अपने पुरुष रूप की प्राप्ति हुई। पुमाञ्जातः क्षणादपि। (दे० भा० ६।२९।६२)।
महर्षि नारद जी की समझ में स्वयं आगया कि मैंने माया से मोहित होकर स्त्री भाव को प्राप्त किया था (स्त्रीभावं प्राप्तो मायाविमोहितः)
(दे० भा० ६।२९।६४)।

श्रीमद्भागवत संहिता में ऐसी कथा नहीं है।

कहना न होगा कि कल्प भेद कथा भेद का सुन्दर समाधान माना जाता है। इस कल्प भेद में क्या होता है? देश काल और अवस्था का भेद है। ये तीनों भेद जड़ प्रकृति के हैं, चेतन संवित् में नहीं। कल्प भेद का एक अर्थ दर्शन भेद भी होता है। श्रीमद्भागवत का अपना दर्शन है और देवीभागवत का अपना। दोनों ही दर्शन अपने अपने स्थान पर सुप्रतिष्ठित है। देवीभागवत का सम्बन्ध सारस्वत कल्प से तथा श्रीमद्भागवत का सम्बन्ध पाद्म कल्प से है। वैदिक विज्ञान की दृष्टि से तत्त्वगवेषणा के दो प्रकार रहे हैं एक अग्नितत्त्व की दृष्टि से और सोमतत्त्व की दृष्टि से। सारस्वत और पाद्म इस के भी द्योतक हैं।

तत्त्वमीमांसा के लिये देवीभागवत का अनुशीलन करने पर प्रकट होता है कि इस महापुराण में देवी भगवती का जो वर्णन है उसको हृदयङ्गम करने के लिये अन्य किसी दर्शन की आवश्यकता नहीं है। भगवती देवी परम तत्त्व हैं। कहा है:—

निर्गुणा या सदा नित्या व्यापिकाऽविकृता शिवा।
योगगम्याऽखिलाधारा तुरीया या च संस्थिता॥
तस्यास्तु सात्त्विकी शक्ती राजसी तामसी तथा।
महालक्ष्मीः सरस्वती महाकालीति ताः स्त्रियः॥

(दे० भा० १।२।१९।२०)

आशय यह है कि जो निर्गुण हैं सदा विद्यमान हैं। देश काल और वस्तु की सीमा जिनको बांध नहीं पाती, जो सर्वव्यापिका हैं, जिनमें कोई विकार नहीं होता, जो कल्याणमयी हैं, जो योगसाधन के द्वारा जानी जाती हैं जो सब को धारण करने वाली हैं तथा जाग्रत्, स्वप्न व सुषुप्ति से परे जो तुरीयावस्था में सदा स्थिति स्थित हैं वे भगवती हैं। उनकी सात्विकी, राजसी

और तामसी शक्तियां क्रमशः महालक्ष्मी, महासरस्वती तथा महाकाली के रूपमें प्रकट होती हैं।

यहां पर यह बतलादेना अनुचित न होगा कि जहां तक ब्रह्माण्ड की रचना, पालन और संहार का प्रसंग है रचना के लिये रजोगुणी शक्ति, पालन लिये सतोगुणी शक्ति और संहार के लिये तमोगुणी शक्ति की आवश्यकता पड़ती है। इसी दृष्टि से सरस्वती का पितामह ब्रह्मा के साथ, लक्ष्मी का विष्णु के साथ और काली का शिव के साथ सम्बन्ध है। ब्रह्मा-विष्णु-महेश की त्रिमूर्ति पुराणों में इसी दृष्टि से वर्णित है। किन्तु जहां परमतत्त्व की मीमांसा मा प्रश्न आता है वहां समस्त पुराण एक ही परमतत्त्व का प्रतिपादन करते हैं। नाम-रूप, सविशेष-निर्विशेष आदि का भेद भले ही रहा करे किन्तु तत्त्वतः परमतत्त्व दो नहीं हो सकते। सभी धर्म-ग्रन्थों का परमतात्पर्य एक ही परमतत्त्व में है। देवीभागवत के अनुसार यह भगवतीतत्त्व ही है।

सविशेष से परे निर्विशेष की चर्चा करते हुए कहा गया हैः—

निर्गुणादुर्गमाशक्तिः निर्गुणश्चतथापुमान्। ज्ञानगम्यौ मुनीनांतु भावनीयौपुनःपुनः
अनादिनिधनौ विद्धि सदा प्रकृतिपूरुषौ।(दे० भा० ३।७।१०।११)

इसका तात्पर्य यह निकलता है कि परम शक्ति निर्गुण और परम पुरुष निर्गुण है। दोनों के नाम अलग-अलग हैं लेकिन तत्वतः-

या शक्तिः परमात्माऽसौ योऽसौ सा परमा मता। (दे० भा० ३।७।१५)

जो शक्ति है वही शक्तिमान परमात्मा है और जो परमात्मा है वही शक्ति है। इन दोनों में तत्त्वतः अभेद है। देवी ने स्वयं कहा है—

सदैकत्वं न भेदोस्ति सर्वदैव ममास्य च। (दे० भा० ३।६)

कि शक्ति और शक्तिमान दोनों एक ही तत्व हैं। शक्ति की दृष्टि से देवीभागवत का प्रतिपादन है।

शक्ति की आराधना स्वतः सिद्ध है। शक्ति की साधना ही तो शक्ति-

मान का लक्षण है। जगत् में यह साधना आराधना के रूप में अभिव्यक्ति होती है। ज्ञान, क्रिया आदि इसके विविधरूप हैं। विभिन्न निदर्शनों के द्वारा ये सारे साधन के रूप देवीभागवत में वर्णित हैं।

आधिदैविक धरातल पर भगवती देवी के चरित्र का विश्लेषण करने पर ये पांच प्रसंग उपस्थित होते हैं — (१) मधु-कैटभ वध, (२) महिषासुर वध, (३) चण्ड-मुण्ड वध, (४) धूम्रलोचन वध और (५) शुम्भ-निशुम्भ वध। ऐतिहासिक दृष्टि से ये प्रसंग देवासुरसंग्राम से सम्बद्ध हैं। भौतिक दृष्टि से इन प्रसङ्गों में वैज्ञानिक परीक्षणों का अध्ययन किया जा सकता है।

मधुकैटभ का वध देवीभागवत के प्रथम स्कन्ध में वर्णित है। शेष चारों प्रसङ्ग पञ्चम स्कन्ध में उपलब्ध होते हैं। मार्कण्डेय पुराण में भी ये सारे प्रसङ्ग वर्णित हैं। इस पुराण में सावर्णि मनु के प्रसङ्ग में देवी माहात्म्य आता है। यही दुर्गा सप्तशती है। श्रीमद्भागवत संहिता के साथ इसका मिलान करने पर ये उद्धरण अवश्य ध्यान देने योग्य हैं—

(१) महामाया हरेश्चैषा तया संमोह्यते जगत्। (सप्तशती ५।१४)

(२) या देवी सर्वभूतेषु विष्णुमायेतिशब्दिता। (सप्तशती ५।१४)

(३) विष्णोर्माया भगवती यया संमोहितं जगत्। (श्रीमद्भा० १०।२।६)

दुर्गासप्तशती के अनुसार भगवान् श्रीहरि की योगमाया ने सम्पूर्ण जगत् को मोहित किया है। जो देवी सारे भूतों में स्थित है वे विष्णुमाया हैं। श्रीमद्भागवत के अनुसार मायाभगवती ने जो विष्णु की है सम्पूर्ण जगत् को मोहित किया।

मधु-कैटभ के प्रसङ्ग में स्वयं विष्णु योगनिद्रा में संलग्न दिखाई पड़ते हैं। योगनिद्रा से जागृत होकर विष्णु ने मधुकैटभ का वध किया। पितामहब्रह्मा के द्वारा भगवती देवी की प्रार्थना किये जाने पर भगवान् जागे और महामाया की माया से मोहित हुए मधुकैटभ का वध किया। राजसी शक्ति से सम्पन्न

ब्रह्मा, तामसी शक्ति योगनिद्रा, सात्विकी शक्ति से सम्पन्न विष्णु। भगवान् विष्णु की योगनिद्रा के समय में मधु-कैटभ बलवान् बन गये थे। सात्त्विकी शक्ति से शक्तिमान ने जागृत होकर मधु-कैटभ को समाप्त कर दिया। दैवीशक्ति की सुप्तावस्था आसुरी बल की वृद्धि करती है। दैवीशक्ति के जागृत होने पर आसुरी बल समाप्त होकर रहता है। मधु-कैटभ ब्रह्मा के कान के मैल से हुए थे। कान के मैल का अर्थ है श्रुति की विकृति। जहां ज्ञान का दुरुपयोग हुआ रजोगुणीवृत्ति आसुरी भावों को जन्म देती है। मधु-कैटभ आहार विहार के प्रतीक हैं। इनमें स्वच्छन्दता आते ही जीवन सुप्तावस्था को प्राप्त करलेता है। जीवन को जागृत रखने के लिये आहार-विहार पर नियन्त्रण आवश्यक है।

देवी भगवती ने महिषासुर का वध किया। दनु का पुत्र था रम्भ और रम्भ का पुत्र था महिषासुर। दानवता महिषासुर के रूप में मूर्तिमती हुई थी और उसके पिता रम्भ ने स्वयं रक्तबीज का रूप ग्रहण किया था। विष्णु की सम्मति से समस्त देवताओं के द्वारा तेजः प्रदान कियागया और उस सम्मिलित तेज समूह से भगवती का प्राकट्य हुआ। भगवती चण्डिका के द्वारा महिषासुर का वध हुआ। आध्यात्मिक दृष्टि से यह महिषासुर मोह का प्रतीक है। इसका दमन किये बिना जीवन की प्रगति नहीं हो सकती।

मधुकैटभ वध देवी का प्रथम चरित्र था। महिषासुर देवी का मध्यम चरित्र था। शुम्भ निशुम्भ का वध देवी का उत्तम चरित्र है। इस संघर्ष में चण्ड और मुण्ड, रक्तबीज एवं धूम्रलोचन हुआ था। शुम्भ-निशुम्भ पाताल से धरातल पर आये थे। चण्ड-मुण्ड शुम्भ के सेवक थे। धूम्रलोचन उनका सेनापति था। भगवती ने इन सब का अन्त किया। पहले धूम्रलोचन का वध हुआ फिर चण्ड-मुण्ड का और तत्पश्चात् रक्तबीज की समाप्ति के बाद शुम्भ निशुम्भ का वध हुआ। अध्यात्म में अहंकार और विषयसुख शुम्भ और

निशुम्भ हैं आलस्य धूम्रलोचन है, रागद्वेष चण्ड-मुण्ड है और वासना रक्तबीज है। इसका वध होने पर ही जीवनी शक्ति की साधना सफल होती है।

यहां पर यह बतादेना अनुचित न होगा कि देवी भगवती सच्चिदानन्द मयी हैं। मधुकैटभ वध में सत्ता, महिषासुर वध में चिन्मयता और शुम्भ-निशुम्भ वध में आनन्दमयता की अभिव्यक्ति एवं प्रतिष्ठा हुई है। देवीभगवती के माध्यम से इस तत्त्व की निष्ठा को ग्रहण करने पर लक्ष्य की पूर्ति होती है।

देवीभागवत में स्थान-स्थान पर देवी के विविध रूपों एवं उनकी आराधना का वर्णन उपलब्ध होता है। मूलप्रकृति से आरम्भ होकर यह वर्णन मणिद्वीप की देवी भुवनेश्वरी तक पहुंचता है। यही भुवनेश्वरी देवी वे हैं जिनका द्वीप है देवीभागवत का परमलक्ष्य। देवीभागवत के श्रवण तथा देवीयज्ञ की पूर्ति होने पर इसी लक्ष्य की प्राप्ति इस महापुराण को अभीष्ट है।

देवी के विविधरूपों में प्रधानता जिन पांच रूपों को प्राप्त हुई है वे नवम स्कन्ध के प्रथम श्लोक में इसप्रकार वर्णित हैं।

गणेशजननी दुर्गा राधा लक्ष्मीः सरस्वती।
सावित्री च सृष्टिविधौ प्रकृतिः पञ्चधा स्मृता॥

ये हैं—(१) दुर्गा, (२) राधा, (३) लक्ष्मी, (४) सरस्वती और (५) सावित्री। अन्तिम चार स्कन्धों में इनकी विस्तृत कथा है। सर्वशक्ति-स्वरूपा दुर्गा, सर्वसम्पत्स्वरूपा लक्ष्मी, सर्वविद्यास्वरूपा सरस्वती, शुद्धसत्व-स्वरूपा सावित्री तथा परमानन्दस्वरूपा राधा ये पांचों परिपूर्णतम हैं। इनमें से राधा मूलस्थानीया हैं जिनके सम्बन्ध में कहा गया है—

परमाह्लादरूपा च सन्तोषहर्षरूपिणी। निर्गुणा च निराकारा निर्लिप्ताऽऽत्मस्वरूपिणी

अर्थात् वे परम आह्लादरूपा हैं सन्तोष एवं हर्षरूपिणी हैं। वे निर्गुण-निराकार निर्लिप्त एवं आत्मस्वरूपिणी हैं।

गङ्गा, तुलसी, षष्ठी, मङ्गलचण्डिका, काली, स्वाहा, स्वधा, पुष्टि, तुष्टि, सम्पत्ति आदि रूप देवी के ही हैं। इस प्रकार जगत् में परिदृश्यमान शक्तियों के रूप में देवी भगवती का ही विस्तार है। किस शक्ति से शक्तिमान् की किस रूप में अभिव्यक्ति होती है, इसका रहस्य जान लेने पर साधक के शक्ति-साधन का मार्ग प्रशस्त होता है। देवीभागवत में इसीदृष्टि से शक्ति के इन विविध रूपोंकी उपासना का प्रतिपादन किया गया है।

देवी की उपासना का वर्णन देवीभागवत के सभी स्कन्धों में है। ऐतिहासिक व्यक्तियों के साथ इस उपासना का सम्बन्ध मिल जाने का परिणाम यह होता है कि कोई भी देश-काल इस उपासना से रहित नहीं होता। उपासना की यह व्यापकता उपासकों के लिये आवश्यक होती है।

महालक्ष्म्यै च विद्महे सर्वशक्त्यै च धीमहि तन्नो देवी प्रचोदयात् ॥

—:०*०:—

श्रीमद्देवीभागवतनवाहपारायणक्रमः—

प्रथमदिने—आदितस्तृतीयस्कन्धस्याध्यायत्रयपर्यन्तम्	(पञ्चत्रिंशदध्यायाः ३५)
द्वितीयदिने—चतुर्थस्कन्धस्याष्टमाध्यायान्तंयावत्	(पञ्चत्रिंशदध्यायाः ३५)
तृतीयदिने—पञ्चमस्कन्धस्याष्टादशाध्यायान्तंयावत्	(पञ्चत्रिंशदध्यायाः ३५)
चतुर्थदिने—षष्ठस्कन्धस्याष्टादशाध्यायपर्यन्तम्	(पञ्चत्रिंशदध्यायाः ३५)
पञ्चमदिने—सप्तमस्कन्धस्याष्टादशाध्यायान्तम्	(एकत्रिंशदध्यायाः ३१)
षष्ठदिने—अष्टमस्कन्धस्य सप्तदशाध्यायान्तम्	(एकोनचत्वारिंशदध्यायाः ३६)
सप्तमदिने—नवमस्कन्धस्याष्टाविंशतितमाध्यायान्तम्	(पञ्चत्रिंशदध्यायाः ३५)
अष्टमदिने—दशमस्कन्धस्यत्रयोदशाध्यायपर्यन्तम्	(पञ्चत्रिंशदध्यायाः ३५)
नवमदिने—द्वादशस्कन्धस्यान्तं यावत्पारायणम्	(अष्टत्रिंशदध्यायाः ३८)

—:*:—



[illegible] नवलगढ़-[illegible] का [illegible]
[illegible] का दर्शन।

मुखे ते ताम्बूलं नयनयुगले कज्जलकला, ललाटे [illegible] विलसति गले मौक्तिकलता।
स्फुरत्काञ्ची शाटी पृथुकटितटे हाटकमयी, भजामस्त्वां गौरीं नगपतिकिशोरीमविरतम्॥

([illegible] नवलगढ़ के सौजन्य से प्राप्त)

* श्रीगणेशायनमः *

देवीभागवत के विषय में

—:*:—

भगवती महामहिमामयी परमाराध्या जगदम्बा की अहैतुकी कृपा से देवा भागवत महापुराण को प्रस्तुत करते हुए हार्दिक प्रसन्नता हो रही है। इस महापुराण की अष्टादश साहस्री सुप्रसिद्ध है। प्रस्तुत संस्करण का आदर्शग्रन्थ कलकत्ता के बङ्गवासी मुद्रणालय से प्रकाशित एवं भार्गव पुस्तकालय गायघाट वाराणसी से प्रकाशित देवीभागवत पुराण के ग्रन्थ हैं। इस पुराण को सर्वप्रियता महामाया जगदीश्वरी की सर्वानुभवा अलौकिक महाशक्ति का पूर्ण प्रतिपादन सर्वतो भावेन "सर्वचैतन्यरूपान्तामाद्यां विद्याञ्च धीमहि। बुद्धिं या नः प्रचोदयात्" के अनुसार सर्वत्र प्रसृत आद्याशक्ति सत्य रूपा पराशक्ति का ही गुणानुवाद है। इस ग्रन्थ की गरिमा का पूर्ण परिचय तो विद्वद्वर्ग को अविकल पारायण से ही सम्भव होगा फिर भी स्वान्तः सुखाय भगवती के स्वरूप का अकिञ्चनत्वादि सीमित साधनों द्वारा निरूपण किया जा रहा है उदार पाठक इसे भूतार्थव्याहृति ही समझेंगे महायोगी हृदयों से भी नेति नेति का ही उदार भगवती महामाया के इस अनादि निधन तत्त्व को परम ब्रह्म महिषी के स्वानुभव प्रकाशरूप में वेदपुराण आदि सच्छास्त्रों द्वारा उदात्त रूपसे गाया गया है तथापि इस परास्बा की महिमा "यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह" की उक्ति को चरितार्थ करती हुई नेति नेति में ही पर्यवसित सी होती है।

संसार में मातृजाति के विषय में जो विशिष्टता देखी जाती हैं उसका ईश्वरीय निर्देश सम्पूर्ण सृष्टि के आदि कारण से ही है। माता, गौरी, उमा, माहेश्वरी, वैष्णवी, शक्ति या तत्तद् देवगण की चिच्छक्ति रूपा यह जो कुछ है सबही अनादि निधना महादेवी का सर्वतो विलास है सर्वत्रही इस परा शक्ति की शास्त्रों ने प्रशस्ति गाई है

" ये स्तुवन्ति जगन्मातर्भवतीमम्बिकेति च।
जगन्मयीति मायेति सर्वं तेषां प्रसिद्ध्यति ॥

(कालिका पुराण)

जो आपकी जगन्माता अम्बिका जगन्मयी माया और इसीअनादि कारण शक्ति के रूपमे स्तुति करते हैं उनके सभी कार्य सिद्ध होते हैं।

रूपं मदीयं ब्रह्मैतत्सर्वकारणकारणम्। मायाधिष्ठानभूतं तु सर्वसाक्षि निरामयम्

सर्ववेदा यत्पदमामनन्ति तपांसि सर्वाणि च यद्वदन्ति।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं सङ्ग्रहेण ब्रवीमि ॥
ओ ३ मित्येकाक्षरं ब्रह्म तदेवाऽऽहुश्च ह्रीं मयम्।
द्वेबीजे मम मन्त्रौ स्तो मुख्यत्वेन सुरोत्तम !॥
भागद्वयवती यस्मात्सृजामि सकलं जगत्।
तत्रैकभागः सम्प्रोक्तः सच्चिदानन्दनामकः॥
मायाप्रकृतिसञ्ज्ञस्तु द्वितीयो भाग ईरितः।
सा च माया पराशक्तिः शक्तिमत्यहमीश्वरी ॥
चन्द्रस्य चन्द्रिकेवेयं ममाऽभिन्नत्वमागता।
साम्यावस्थात्मिका चैषा माया मम सुरोत्तम !॥

प्रलये सर्वजगतो मदभिन्नैव तिष्ठति। प्राणिकर्म परीपाकवशतः पुनरेव हि ॥

रूपं तदेवमव्यक्तं व्यक्तीभावमुपैति च।
अन्तर्मुखा तु याऽवस्था सा मायेत्यभिधीयते ॥

बहिर्मुखा तु या माया तमः शब्देन सोच्यते।
बहिर्मुखात्तमो रूपाज्जायते सत्वसम्भवः॥
रजो गुणस्तदैव स्यात्सर्गादौ सुरसत्तम !।
गुणत्रयात्मकाः प्रोक्ता ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः॥
रजो गुणाधिको ब्रह्मा विष्णुः सत्त्वाधिको भवेत्।
तमो गुणाधिकोरुद्र! सर्वकारणरूपधृक्॥
स्थूलदेहो भवेद् ब्रह्मा लिङ्गदेहो हरिः स्मृतः।
रुद्रस्तु कारणो देहस्तुरीया त्वहमेव हि।
साम्यावस्था तु या प्रोक्ता सर्वान्तर्यामिरूपिणी॥

अतऊर्ध्वं परं ब्रह्म मद्रूपं रूपवर्जितम्। निर्गुणं सगुणं चेति द्विधा मद्रूपमुच्यते
निर्गुणंमाययाहीनंसगुणंमायया युतम्। साऽहंसर्वं जगत्सृष्ट्वातदन्तः सम्प्रविश्य च
प्रेरयाम्यनिशंजीवं यथाकर्म यथाश्रुतम्। सृष्टिस्थितितिरोधाने प्रेरयाम्यहमेव हि
ब्रह्माणञ्चतथाविष्णुंरुद्रंवै कारणात्मकम्। मद्भयाद्वातिपवनोभीत्या सूर्यश्चगच्छति

इन्द्राग्निमृत्यवस्तद्वत्साऽहं सर्वोत्तमा स्मृता।
मत्प्रसादाद्भवद्भिस्तु जयो लब्धोऽस्ति सर्वथा॥

युष्मानहंनर्तयामिकाष्ठपुत्तलिकोपमान्। तामात्मर्वात्मिकायूयंविस्मृत्यनिजगर्वतः
अहङ्काराबृतात्मानो मोहमाप्ता दुरन्तकम्। अनुग्रहं ततः कर्तुं युष्मद्देहादनुत्तमम्
निःसृतं सहसा तेजो मदीयं यक्षमित्यपि। अतः परंसर्वभावैर्हित्वा गर्वन्तुदेहजम्

मामेव शरणं यात सच्चिदानन्दरूपिणीम्॥

[देवीभागवत १२ स्कन्ध अ० ८ श्लो० ६२– ८३)

सम्पूर्ण कारणों का कारण भूत ब्रह्म मेरा ही रूप है वह माया का अधिष्ठानभूत सम्पूर्ण का साक्षी और निरामय है। सम्पूर्ण वेद जिस पद का कथन करते हैं सम्पूर्ण तपस्याओं का ध्येय एक वह ही है जिसे उत्कट अभिलाषा से

प्राप्तकरने के लिये योगी ऋषि एवं महर्षिगण ब्रह्म (वेद) की कठिनचर्या ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं उस अभीप्सित पद को संक्षेपतः बतलाती हूँ । ओ३म् यह एकाक्षर नित्य ब्रह्म है इसे ही ह्रीं मय कहा गया है हे सुरोत्तम! मुख्यतया ॐ और ह्रीं बीज मेरे ही मन्त्र हैं। सम्पूर्ण संसार को भागद्वयवती होकर मैं इससे निर्माण करती हूं एक भाग सच्चिदानन्द नामक है और दूसरा भाग मायाप्रकृतिसञ्ज्ञक (नाम वाला) है। वही माया पराशक्ति शक्तिमती ईश्वरी मैं ही हूँ । चन्द्र और चन्द्रिका (चान्दनी) के समान ही यह मेरे से अभिन्न है। हे सुरोत्तम! यह मेरी माया सम्पूर्ण संसार में प्राणीमात्र के प्रलय होने पर साम्यावस्था धारण करती हुई मेरे से अभिन्न ही रहती है फिर सर्ग के आदि में प्राणियों के कर्मपरिपाकवश वह अव्यक्त रूप ही व्यक्त होता है। अन्तर्मुखा जो अवस्था है वह माया कहलाती है बहिर्मुखा अवस्था जो माया है वह तमः शब्द से कही जाती है। हे सुरश्रेष्ठ! बहिर्मुख तमो रूप से ही सत्त्व की उत्पत्ति होती है और सर्ग के आदि में वही रजोगुण हो उत्पत्ति का कारण बनती हैं ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर गुणत्रयात्मक है। रजो गुणाधिष्ठाता ब्रह्मा, सत्त्वाधिष्ठाता विष्णु और तमोगुणाधिक रुद्र सम्पूर्ण कारण रूप धारण करने वाले हैं। स्थूल देह वाले ब्रह्मा, लिङ्गदेह हरि (विष्णु) हैं और रुद्रकारण देह हैं तुरीया तो मैं ही हूं जो सर्वान्तर्यामिरूपिणी साम्यावस्था कही जाती है। अतः (इस से) ऊर्ध्व (ऊपर) रूप वर्जित मेरा स्वरूप ही परब्रह्म है। निर्गुण और सगुण दो प्रकार से मेरा रूप कहा गया है। निर्गुणरूप माया हीन है और सगुण माया से युक्त है। अपनी सत्यसङ्कल्प भावना से सम्पूर्ण जगत् का सर्जन कर और उसमें प्रवेशकर (अन्तः प्रवेशकर) यथा कर्म एवं यथाश्रुत अहर्निश जीव को प्रेरणाकरती हूँ। जगत् के उत्पादन, पालन और लय में मैं ही ब्रह्मा, विष्णु और कारणात्मक रुद्र को प्रेरणा करती हूँ। मेरे भय से ही पवन चलता है और मेरी भीति से ही सूर्य अपनी धुरीपर

सूर्य मण्डल में घूमता है उसीप्रकार इन्द्र, अग्नि तथामृत्यु भी अपने अपने कार्य में प्रवृत्त रहते हैं और मैं इन सबसे ऊपर हूँ। मेरी कृपा से ही आपलोगों ने विजय प्राप्त किया है मैं आप सब के हृदयान्तश्चारिणी होकर काठ की पुतली के समान आप सब को नचाती हूँ सर्वात्मिका मुझे ही अपने अहङ्कार से अभिभूत हो निजगर्व से भूल कर आपलोग दुर्दान्त मोह को प्राप्त होते हैं तब आप के कार्यसिद्धि के लिये मैं अनुग्रहार्थ आविर्भूत हो तेजः स्वरूपमें अवस्थित होती हूँ अब आप सर्वभावसे देह के गर्व को छोड़ कर सच्चिदानन्दरूपिणी मुझ में ही शरण लीजिये आपका सर्वत्र शुभोदय होगा।

अन्यच्च

सर्वशक्तिः परा विष्णोर्ऋग्यजुः सामसञ्ज्ञिता।
सैषा त्रयी तपत्यंहो जगतश्च हिनस्ति या॥
सैष विष्णुः स्थितः स्थित्यां जगतः पालनोद्यतः।
ऋग्यजुः सामभूतोऽन्तः सवितुर्द्विज! तिष्ठति॥

मासिमासिरवेर्या यस्तत्रतत्रहिसापरा। त्रयीमयी विष्णुशक्तिरवस्थानं करोति वै ऋचः स्तुवन्तिपूर्वाह्णेमध्यान्हेच यजूंषि वै। बृहद्रथन्तरादीनि सामान्यह्नक्षयेरविम्

अङ्गमेषा त्रयी विष्णो ऋग्यजुः सामसञ्ज्ञिताः।
विष्णुशक्तिरवस्थानं सदाऽऽदित्ये करोति सा॥

न केवलं रवेः शक्तिर्वैष्णवी सा त्रयीमयी। ब्रह्माऽथ पुरुषो रुद्रस्त्रयमेतत्त्रयीमयम्

सर्गादौ ऋङ्मयो ब्रह्मा स्थितौ विष्णुयजुर्मयम्।
रुद्रः साममयोऽन्ताय तस्मात्तस्याऽशुचिर्ध्वनिः॥
एवं सा सात्त्विकी शक्तिर्वैष्णवी या त्रयीमयी।
आत्मसप्तगणस्थं तं भास्वन्तमधितिष्ठति॥
तया चाऽधिष्ठितः सोऽपि जाज्वलीतिस्वरश्मिभिः।
तमः समस्तजगतां नाशं नयति चाखिलम्॥

[विष्णुपुराण अंश १ अध्याय ११ श्लो० ७–१५]

अर्थात् सम्पूर्ण संसार को सर्जन पालन एवं संहारात्मक रूप से प्रगट करनेवाली भगवती अथवा स्वयं सर्वतन्त्र स्वतन्त्रा शक्ति है यही सर्वशक्ति विष्णु की परा शक्ति एवं ऋक्‌यजुः और सामसञ्ज्ञिता है यही त्रयीरूप में संसार में प्रकाशित होकर सृष्टि स्थिति और संहार करती है। ब्रह्मा द्वारा रजोगुणधारण करने पर सर्जन, विष्णुद्वारा सत्त्वगुणके धारण से जगत् का पालन तथा सर्ग के अन्तमें सम्पूर्ण विश्वाण्डको अपनेमें लीनकरने से यह त्रिमूर्ति स्वरूपा है सविता में ऋक्,यजु और सामभूत होकर यह निवासकरती है। पूर्वाह्न में ऋक्, मध्याह्न में यजु और सायं काल में बृहद्रथन्तरादि सामश्रुतियां सूर्य की स्तुति करती हैं। यही आदित्य में निवास करने वाली वेदत्रयी है। यह विष्णु स्वरूपिणी ही नहीं ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र इन तीनों से युक्त एवं त्रयीमयी है। सर्ग के आदि में ब्रह्मा ऋङ्मय हो सृष्टि करते हैं पालन के समय विष्णु यजुर्मय और सृष्टि संहार में रुद्र साम मय हो जाते हैं इसलिये तो साम की ध्वनि (संहारात्मक होने से) अपवित्र कही जाती है। इस प्रकार यह त्रयी मयी आद्याशक्ति अपने सातों गणों में अवस्थित सूर्य में समाविष्ट है। इसमें अधिष्ठित सूर्य अपनी प्रखर किरणों (रश्मियों) से प्रज्वलित होकर संसार के सम्पूर्ण अन्धकार (अज्ञान) को नष्ट कर देते हैं अतः अनादि निधना यह त्रयीमयी महामहिमासम्पन्ना आद्या शक्ति सर्वथा वन्दनीय एवं प्रत्यक्षरूपा है।

भगवती पराम्बा को ब्रह्मस्वरूपा नित्या सनातनी कहा गया है यह शक्ति रूप में ब्रह्मा, विष्णु और शिव को अपनी चिच्छक्ति द्वारा सृष्टि के लिये स्वकर्तव्य कीप्रेरणा देती रहती हैं।

"सा च ब्रह्मस्वरूपा च नित्या सा च सनातनी।
यथात्मा च तथा शक्तिर्यथाग्नौ दाहिका स्थिता।

अतएव हि योगीन्द्रैः स्त्रीपुम्भेदो न मन्यते ।

[दे० भा० ६ स्क० १अ० श्लो० १०

यह आत्मस्वरूपा अग्नि में जैसे दाहकत्वशक्ति अनुस्यूत रहती है उसी प्रकार ब्रह्मस्वरूपा नित्या सनातनी यह आद्याशक्ति है इसलिये योगीन्द्र इस महामाया के लिये स्त्री एवं पुल्लिङ्ग का भेद नहीं मानते ।

त्वं परा प्रकृतिः साक्षाद् ब्रह्मणः परमात्मनः ।

महत्तत्वादि भूतान्तं त्वया सृष्टमिदं जगत् ॥

निमित्तमात्रंतद्ब्रह्मसर्वकारणकारणम् । तस्येच्छामात्रमालम्ब्यत्वंमहायोगिनीपरा अरूपायाः कालिकायाःकालमातुर्महाद्युतेः । गुणक्रियानुसारेण क्रियते रूपकल्पना मन्मायाशक्तिसङ्कल्प्तंजगत्सर्वंचराचरम् । साऽपिमत्तःपृथङ्मायानास्त्येवपरमार्थतः

[दे० भा० ७।३३।५

सम्पूर्णचराचर जगत् मेरीमायाशक्ति से ओतप्रोत है वास्तव में परमार्थ रूप से मेरे से पृथक् माया नाम की कोई वस्तु नहीं, मेराही सर्वत्र विलास है ।

इसप्रकार हम देखते हैं कि त्रिगुणातीता महामाया ही सर्वत्र ब्रह्मा विष्णु महेश को सृष्टि स्थिति और संहार के लिये शक्तिप्रदान करती है और अभिन्न निमित्तोपादान से निर्गुण होकर भी सगुणात्मिका व्यक्तसृष्टि का आविर्भाव तिरोभाव करती रहती है ।। अन्ततः यही एकमात्र शक्ति शक्तिमान् के साथ अभेद रूप से सर्वत्र आगम निगम प्रतिपाद्य है और देवीभागवत में उसी तत्त्व का अविकल यथार्थरूप सूत्र रूप से "सर्वचैतन्यरूपान्तामाद्यां विद्याञ्च धीमहि । बुद्धिं या नः प्रचोदयात्" त्रिपदागायत्री में प्रतिपादित है । इस नित्य सत्य तत्त्व का साक्षात्कार ही परम पुरुषार्थ है इसी की अनिन्द्य महिमा का विधान भगवती के परम पवित्र चरित्र एवं मानव जीवन के उद्धार के साधन का इस महापुराण में सविस्तर वर्णन है विस्तार भय होने से भगवती के शब्दों में यही कहा जा सकता है कि यही महाशक्ति सर्वदा सर्वत्र अन्तर्यामित्वेन

स्थित है।

"अहमेवाऽऽसं पूर्वन्तु नान्यत्किञ्चिन्नगाधिप !।
तदात्मरूपं चित् सम्वित् परब्रह्मैकनामकम् ॥
तस्य काचित्स्वतःसिद्धा शक्तिर्मायेति विश्रुता।
पावकस्योष्णतेवेयमुष्णांशोरिवदीधितिः। स्वशक्तेश्चसमायोगादहंबीजात्मतांगता

हे नगाधिप! पूर्व में मैं ही स्थित थी और कुछ नहीं था मेरा आत्मस्वरूप ही चित् सम्वित् और परब्रह्म नामक ही एक है। उसकी ही स्वतः सिद्धाशक्ति माया नाम से विख्यात है जैसे अग्नि की उष्णता और सूर्य की किरणों की अभिन्नता है उसीप्रकार शक्ति में शक्तिमान् के साथ अभेद रूप में हूँ। अपनी, स्वतः प्रकाश शक्ति के योग से ही मैं बीजात्मक हूं।

भगवती के नाना नामों का निर्वचन करने से इसअनिर्वचनीय तत्त्व का विशेषअनुसन्धान होता है।

"बृहदस्य शरीरं यदप्रमेयं प्रमाणतः। धातुर्महेति पूजायांमहादेवीततःस्मृतः"
वर्ततेसर्वभूतेषुशक्तिः सर्वात्मना नृप !। शववच्छक्तिहीनस्तु प्राणीभवति सर्वदा ॥
चिच्छक्तिः सर्वभूतेषु रूपं तस्यास्तदेव हि। [दे० भा० ५ स्कन्ध

हे राजन् सम्पूर्णप्राणियों में सर्वात्मना व्याप्त है और शक्तिहीन होकर तो सर्वथा ही प्राणी शव के समान हो जाता है उस चितिशक्ति का रूप ही सम्पूर्ण प्राणियों में व्याप्त है।

साविश्वं कुरुतेकामंसापालयतिपालितम्। कल्पान्तेसंहरत्येवत्रिरूपाविश्वमोहिनी
तयायुक्तःसृजेद्ब्रह्माविष्णुःपातितयान्वितः। रुद्रःसंहरतेकामंतयासम्मिलितोजगत्
सा बध्नाति जगत्कृत्स्नं मायापाशेन मोहितम्।
अहं ममेति पाशेन सुदृढेन नराधिप !॥
योगिनो मुक्तसङ्गाश्चमुक्तिकामामुमुक्षवः। तामेवसमुपासन्तेदेवींविश्वेश्वरींशिवाम्
[दे० भा० ४ स्कन्ध

वह महामाया ही विश्व को बनाती यथेच्छ पालन और कल्पान्त में संहार करता है। वह त्रिरूपा विश्वमोहिना हैं उससे युक्त ब्रह्मा सर्जन विष्णु उसी से युक्त हो पालन एवं उसके साथ रुद्र संहार करते हैं। उसीसे जगत् व्याप्त है वही मायापाश से मोहित सम्पूर्ण जगत् को बांध लेता है और वह मैं और मेरे इस सुदृढ पाश से हे राजन् बँधा रहता है। संसारसङ्ग से मुक्त योगी लोग जो मुक्ति की कामना करते है और मुमुक्षु हैं वे शिवा विश्वेश्वरी की अपने अभीष्ट की सिद्धि के लिये उपासना करते हैं।

यही तत्त्व सर्वात्मना इस महापुराण का प्रतिपाद्य होने से द्वादश स्कन्धों मे पूर्णतया गाया गया है। विशेष रूप से अन्तिम द्वादश स्कन्ध में गायत्री स्वरूप का सविस्तर वर्णन है। अग्नीषोमात्मक विश्व की सारी कृति ही इस अचिन्त्य शक्ति के बिना असम्भव है।

इस दिव्य पुराण का पारायण सत्य की महिमा से सम्पूर्ण विश्व के हित मे हो एतदर्थ आपलोगो के करकमलों मे प्रस्तुत करते हुए हार्दिक प्रसन्नता अनुभव कर रहा हू। इस महापुराण को प्रथम षट्क (१-६ स्कन्ध) एवं द्वितीय षट्क (७-१२ स्कन्ध) के रूप में २ खण्डों में प्रस्तुत किया जा रहा है। महोयोगिहृदम्भोजा महाभाग्या त्रिपुरसुन्दरी इस गुणानुवाद से प्रसन्न हो हम लोगो को सद्बुद्धि दें यही प्रार्थना है।

इस कार्यको आरम्भसे ही मोर प्राच्यशोध संस्थान कलकत्ताके पण्डितद्वय श्रीरामनाथजी दाधीच साहित्यशास्त्री पुराणसाङ्ख्य स्मृति तीर्थ एवं श्रीब्रह्मदत्तजी त्रिवेदी व्याकरणाचार्य एम० ए० ने संशोधन भूमिका लेखन तथा सम्पादनमें सपरिश्रम योग दिया है। इनकी पुराणपारायण की प्रवृत्ति अनुदिन वृद्धिगत हो और ऐसफल विद्य बन विश्व के कल्याण में सार्थक सिद्ध हों यही हार्दिक कामना है। इसमें भ्रमप्रमादादि दोष से अशुद्धियां रह गई हैं विद्वद्वर्ग इन्हें यथावसर पारायण करते हुए शुद्ध करें। मेरी हार्दिक इच्छा है कि सम्पूर्ण "पुराण

साहित्य" को प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थसंग्रहालयों से प्राप्त कर इस रूप में संशोधन कर प्रकाशित किया जाय कि भावी पीढ़ी के लिये यह स्वतन्त्र भारत में ज्ञान गरिमा के प्रकाशस्तम्भ का अविश्रान्त स्रोत बन जाय। तदर्थ सभीग्रन्थ संरक्षामें प्रवृत्त हस्तलिखित ग्रन्थोंके संग्राहक विद्वानोंसे अपूर्ण ग्रन्थोंके पूर्णकरने और पुनः प्रकाशन के लिये पूर्ण सहयोग प्रदान करने को साग्रह सविनय अभिमन्त्रित करता हूँ।

अभी तक मुझे अपूर्ण पुराणों के हस्तलिखित पूर्ण पुराणों के प्राप्त करने में असफलता ही मिली है।

वायुपुराण अपूर्ण है १०६६१ श्लोक ही मिलते हैं वास्तविक वायुपुराण २४००० हजार चतुर्विंशति सहस्र श्लोकों का है।

इसी प्रकार कूर्मपुराणकी ६ हजार श्लोकों की एक संहिताही मिलती है। अन्य तीन संहितायें प्राप्त करनी है विष्णुपुराण सात हजार श्लोक ही उपलब्ध हैं। पूर्ण पुराण २३ हजार का है। इसीप्रकार वराह, स्कन्द आदि में भी कई प्रकार से अपूर्णतायें हैं। इस विशाल कार्य की पूर्णता आप सभी के सहयोग से शक्य है तदर्थ सादर प्रार्थना है।

अन्त में इस महापुराणकी गरिमा प्रशस्ति द्वारा भगवती जगदम्बा का प्रसाद सभी प्राणी मात्र को मिले यही कामना करता हुआ अपनी मानव सुलभ अपूर्णताओं से ग्रन्थ में रही त्रुटियों के लिये क्षमा प्रार्थी हूँ।

"कामये दुःखतप्तानां प्राणिनामार्त्तिनाशनम्"

शुभमिति प्रथम ज्येष्ठ शुक्ला
१३ रविवार
२०१८ विक्रमसम्वत्

मनसुखराय मोर
५, क्लाइव रो,
कलकत्ता —१

॥ श्रीगणेशायनमः ॥

समाहात्म्यंश्रीमद्देवीभागवतमहापुराणान्तर्गतप्रथमादि-
षष्ठस्कन्धान्त (पूर्वार्द्ध) भागस्य

विषयानुक्रमणिका

——:०:——

अथातो विषयविभागेन विषयानुक्रमणिका

प्रथमःस्कन्धः

चतुर्थः स्कन्धः

चतुर्थः स्कन्धः

पञ्चमः स्कन्धः

षष्ठः स्कन्धः

समाप्तैषा श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणस्थविषयानुक्रमणिका प्रथमादिषष्ठस्कन्ध-पर्यन्ता--श्रीमतामशेषशेमुषीजुषांविद्यावतांमुदेभगवतीप्रसादाल्लक्ष्मणगढ-(सीकर-राजस्थान) निवासि ब्रह्मदत्तत्रिवेदि-नवलगढ (जयपुर) वास्तव्य रामनाथशास्त्रीभ्यां कृता।

शम्भूयात् ॥

——:०#०:——



सा मां पातु सरस्वती भगवती निःशेषजाड्यापहा

—:*:—

* श्रीगणेशायनमः *

देवीभागवतपुराणम्

अथ माहात्म्यम्प्रारभ्यते

———*———

प्रथमोऽध्यायः

ऋषीणां सूतम्प्रतिपुराणश्रवणविषयेप्रश्नः

सृष्टौ या सर्गरूपा जगदवनविधौ पालनी या च रौद्री
संहारे चाऽपि यस्या जगदिदमखिलं क्रीडनं या पराख्या।
पश्यन्ती मध्यमाऽथो तदनु भगवती वैखरी वर्णरूपा
साऽस्मद्वाचं प्रसन्ना विधिहरिगिरिशाराधिताऽलंकरोतु ॥ १ ॥

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्। देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्

ऋषय ऊचुः

सूत जीवसमावह्वीर्यस्त्वं श्रावयसीह नः। कथा मनोहराः पुण्याव्यासशिष्यमहामते
सर्वपापहरं पुण्यं विष्णोश्चरितमद्भुतम्। अवतारकथोपेतमस्माभिर्भक्तितः श्रुतम् ॥
शिवस्य चरितंदिव्यंभस्मरुद्राक्षयोस्तथा। सेतिहासंचमाहात्म्यंश्रुतंतवमुखाम्बुजात्
अधुना श्रोतुमिच्छामः पावनात्पावनम्परम्। भुक्तिमुक्तिप्रदं नृणामनायासेन सर्वशः
तत्त्वं ब्रूहिमहाभागयेनसिद्ध्यन्तिमानवाः। कलावपिपरंत्वत्तोन विद्मःसंशयच्छिदम्

सूत उवाच

साधुपृष्टंमहाभागा! लोकानांहितकाम्यया । सर्वशास्त्रस्ययत्सारंतद्वोवक्ष्याम्यशेषतः
तावद्गर्जन्ति तीर्थानि पुराणानिव्रतानि च । यावन्न श्रूयते सम्यग्देवीभागवतं नरैः ॥
तावत्पापाटवी नृणांक्लेशदाऽदभ्रकण्टका । यावन्न परशुः प्राप्तो देवीभागवताभिधः
तावत्क्लेशावहं नृणामुपसर्गमहातमः । यावन्नैवोदयं प्राप्तो देवीभागवतोष्णगुः ॥

ऋषय ऊचुः

सूत सूत महाभाग वद नो वदताम्वर । कीदृशं तत्पुराणंहि विधिच्छ्रवणे च कः ॥
कतिभिर्वासरैरेतच्छ्रोतव्यं किं च पूजनम् । कैर्मानवैःश्रुतंपूर्वं कांस्कान्कामानवाप्नुयुः

सूत उवाच

विष्णोरंशो मुनिर्जातस्सत्यवत्यां पराशरात् ।
विभज्य वेदांश्चतुरश्शिष्यानध्यापयत्पुरा ॥ १४ ॥

व्रात्यानां द्विजबन्धूनांवेदेष्वनधिकारिणाम् । स्त्रीणांदुर्मेधसांनृणांधर्मज्ञानंकथंभवेत्
विचार्यैतत्तु मनसा भगवान्बादरायणः । पुराणसंहितां दध्यौ तेषां धर्मविधित्सया
अष्टादश पुराणानि स कृत्वाभगवान्मुनिः । मामेवाऽध्यापयामास भारताख्यानमेवच
देवीभागवतं तत्र पुराणं भोगमोक्षदम् । स्वयं तु श्रावयामास जनमेजयभूपतिम् ॥
पूर्वमस्य पिता राजा परीक्षित्तक्षकाहिना । संदष्टस्तस्यसंशुद्ध्यै राज्ञा भागवतंश्रुतम्
नवभिर्दिवसैः श्रीमद्वेदव्यासमुखाम्बुजात् । त्रैलोक्यमातरंदेवीं पूजयित्वा विधानतः
नवाहयज्ञे सम्पूर्णे परीक्षिदपि भूपतिः । दिव्यरूपधरोदेव्यास्सालोक्यं तत्क्षणादगात्
पितुर्दिव्यां गतिं राजा विलोक्य जनमेजयः । व्यासं मुनिंसमभ्यर्च्यपरांमुदमवाप ह
अष्टादशपुराणानां मध्ये सर्वोत्तमं परम् । देवीभागवतं नाम धर्मकामार्थमोक्षदम् ॥

ये शृण्वन्ति सदा भक्त्या देव्या भागवतीं कथाम् ।
तेषां सिद्धिर्न दूरस्था तस्मात्सेव्या सदा नृभिः ॥ २४ ॥

दिनमर्द्धं तदर्द्धं वा मुहूर्तं क्षणमेव वा । ये शृण्वन्ति नरा भक्त्या न तेषांदुर्गतिःक्वचित्
सर्वयज्ञेषु तीर्थेषु सर्वदानेषु यत्फलम् । सकृत्पुराणश्रवणात्तत्फलं लभते नरः ॥

कृतादौ बहवो धर्माः कलौ धर्मस्तु केवलम् । पुराणश्रवणादन्योविद्यतेनापरोनृणाम्

धर्माचारविहीनानां कलावल्पायुषां नृणाम् ।
व्यासो हिताय विदधे पुराणाख्यं सुधारसम् ॥ २८ ॥

सुधां पिबन्नेक एव नरः स्यादजरामरः । देव्याः कथामृतं कुर्य्यात्कुलमेवाजरामरम्
मासानांनियमो नाऽत्र दिनानांनियमोऽपि न । सदा सेव्यंसदासेव्यंदेवीभागवतंनरैः
आश्विने मधुमासे वा तपोमासे शुचौ तथा । चतुर्षु नवरात्रेषु विशेषात्फलदायकम्
अतोनवाहयज्ञोऽयं सर्वस्मात्पुण्यकर्मणः । फलाधिकप्रदानेनप्रोक्तः पुण्यप्रदोनृणाम्

ये दुर्हृदः पापरता विमूढा मित्रद्रुहो वेदविनिंदकाश्च ।
हिंसारता नास्तिकमार्गसक्ता नवाहयज्ञेन पुनन्ति ते कलौ ॥ ३३ ॥
परस्वदाराहणेऽतिलुब्धा ये वै नराः कल्मषभारभाजः ।
गोदेताब्राह्मणभक्तिहीना नवाहयज्ञेन भवन्ति शुद्धाः ॥ ३४ ॥
तपोभिरुग्रैर्व्रततीर्थसेवनैर्दानैरनेकैर्नियमैर्मखैश्च ।
हुतैर्जपैर्यच्च फलं न लभ्यते नवाहयज्ञेन तदाप्यते नृणाम् ॥ ३५ ॥
तथा न गङ्गा न गया न काशी न नैमिषं नो मथुरा न पुष्करम् ।
पुनाति सद्यो बदरीवनं नो यथा हि देवीमख एष विप्राः ॥ ३६ ॥

अतोभागवतं देव्याः पुराणं परतः परम् । धर्मार्थकाममोक्षाणामुत्तमं साधनं मतम्
आश्विनस्य सिते पक्षे कन्याराशिगते रवौ । महाष्टम्यांसमभ्यर्च्यहैमसिंहासनस्थितम्
देवीप्रीतप्रदं भक्त्या श्रीभागवतपुस्तकम् । दद्याद्विप्राययोग्याय स देव्याःपदवींलभेत्

देवीभागवतस्यापि श्लोकं श्लोकार्द्धमेव वा ।
भक्त्या यश्च पठेन्नित्यं स देव्याः प्रीतिभाग्भवेत् ॥ ४० ॥

उपसर्गभयं घोरं महामारीसमुद्भवम् । उत्पातानखिलाँश्चापि हन्ति श्रवणमात्रतः ॥
बालग्रहकृतं यच्च भूतप्रेतकृतं भयम् । देवीभागवतस्याऽस्य श्रवणाद्याति दूरतः ॥

यस्तु भागवतं देव्याः पठेद्भक्त्या शृणोति वा ।
धर्ममर्थं च कामं च मोक्षं च लभते नरः ॥ ४३ ॥

श्रवणाद्वसुदेवोऽस्य प्रसेनान्वेषणे गतम् । चिरायितं प्रियं पुत्रं कृष्णं लब्ध्वामुमोदह
य एतांशृणुयाद्भक्त्याश्रीमद्भागवतींकथाम् । भुक्तिं मुक्तिंसलभते भक्त्यायश्चपठेदिमाम्
अपुत्रो लभते पुत्रं दरिद्रो धनवान्भवेत् । रोगी रोगात्प्रमुच्येतश्रुत्वा भागवतामृतम्
वन्ध्याबाकाकवन्ध्यावामृतवत्साचयांऽगना । देवीभागवतंश्रुत्वालभेत्पुत्रंचिरायुषम्
पूजितं यद् गृहेनित्यंश्रीभागवतपुस्तकम् । तद् गृहं तीर्थभूतं हि वसतां पापनाशकम्
अष्टम्यां वा चतुर्दश्यां नवम्यांभक्तिसंयुतः । यःपठेच्छृणुयाद्वाऽपिससिद्धिंलभतेपराम्

पठन्द्विजो वेदविदग्रणीर्भवेद् बाहुप्रजातो धरणीपतिः स्यात् ।
वैश्यः पठन्वित्तसमृद्धिमेति शूद्रोऽपि शृण्वन्स्वकुलोत्तमस्स्यात् ॥५० ॥

इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे देवीभागवतमाहात्म्ये देवीभागवतश्रवण-माहात्म्यवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः

स्यमन्तकमण्यानयितुंगतेश्रीकृष्णेचिरायितेसतितत्प्राप्त्यै वसुदेवेन-देवीभागवतश्रवणम्

ऋषय ऊचुः

वसुदेवो महाभागः कथंपुत्रमवाप्तवान् । प्रसेनः कुत्र कृष्णेन भ्रमताऽन्वेषितः कथम्
विधिनाकेन कस्माच्च देवीभागवतं श्रुतम् । वसुदेवेन सुमते ! वद सूत ! कथामिमाम्

सूत उवाच

सत्राजिद्भोजवंशीयो द्वारवत्यां सुखं वसन् । सूर्यस्याराधने यत्तो भक्तश्च परमस्सखा
अथ कालेन कियता प्रसन्नस्सविताऽभवत् । स्वलोकं दर्शयामास तद्भक्त्या प्रणयेनच
तस्मै प्रीतश्चभगवान्स्यमन्तकमणिं ददौ । स तं बिभ्रन्मणिं कण्ठे द्वारकामाजगामह

दृष्ट्वा तं तेजसा भ्रान्ता मत्वाऽऽदित्यं पुरौकसः ।
कृष्णमूचुस्समभ्येत्य सुधर्मायामवस्थितम् ॥ ६ ॥

एषआयातिसवितादिदृक्षुस्त्वां जगत्पते । श्रुत्वाकृष्णस्तु तद्वाचं प्रहस्योवाचसंसदि
सवितानैषभोबालाःसत्राजिन्मणिनाज्वलन् । स्यमन्तकेनचायातिभास्वद्वत्तेनभास्वता
अथविप्रान्समाहूयस्वस्तिवाचनपूर्वकम् । प्रावेशयत्समभ्यर्च्यसत्राजित्स्वगृहेमणिम्
न तत्र मारी दुर्भिक्षं नोपसर्गभयंक्वचित् । यत्रास्ते स मणिर्नित्यमष्टभारसुवर्णदः ॥
अथसत्राजितोभ्राताप्रसेनोनामकर्हिचित् । कण्ठेबद्ध्वामणिंसद्यो हयमारुह्यसैन्धवम्
मृगयार्थं वनं यातस्तमद्राक्षीन्मृगाधिपः । प्रसेनंसहयं हत्वा सिंहो जग्राह तं मणिम्
जाम्बवानृक्षराजोऽथ दृष्ट्वा मणिधरं हरिम् । हत्वावतंबिलद्वारिमणिंजग्राह वीर्यवान्
सतंमणिंस्वपुत्रायक्रीडनार्थमदात्प्रभुः । अथविक्रीडबालोऽपिमणिंसम्प्राप्यभास्वरम्
प्रसेनेऽनागते चाथ सत्राजित्पर्यतप्यत । न जाने केन निहतः प्रसेनो मणिमिच्छता॥
अथलोकमुखोद्गीर्णा किंवदन्तीपुरेऽभवत् । कृष्णेन निहतो नूनं प्रसेनोमणिलिप्सुना

स तं शुश्राव कृष्णोऽपि दुर्यशोलिप्तमात्मनि ।
मार्ष्टुं ततस्य पदवीं पुरौकोभिस्सहाऽगमत् ॥ १७ ॥

गत्वा स विपिनेऽपश्यत्प्रसेनंहरिणाहतम् । ययौमृगेन्द्रमन्विष्यन्नसृग्बिन्दुङ्किताध्वना
अथ कृष्णोहतंसिंहं बिलद्वारि विलोक्यच । उवाच भगवान्वाचं कृपया पुरवासिनः
तिष्ठध्वं यूयमत्रैव यावदागमनं मम । प्रविशामि बिलं त्वेतन्मणिहारकलब्धये॥२०॥
तथेत्युक्त्वातुतेतस्थुस्तत्रैवद्वारकौकसः । जगामान्तर्बिलं कृष्णोयत्रजाम्बवतोगृहम्
ऋक्षराजसुतं दृष्ट्वा कृष्णोमणिधरंतदा । हर्तुमैच्छन्मणिं तावद्धात्री चुक्रोश भीतवत्
श्रुत्वा धात्रीरवं सद्यः समागत्यर्क्षराट्तदा । युयुधेस्वामिना साकमविश्रममहर्निशम्
एवं त्रिनवरात्रं तु महद्युद्धमभूत्तयोः । कृष्णागमं प्रतीक्षन्तस्तस्थुर्द्वारि पुरौकसः ॥
द्वादशाहं ततो भीत्या प्रतिजग्मुर्निजालयम् । तत्र ते कथयामासुर्वृत्तान्तंसर्वमादितः
सत्राजितंशपंतस्तेसर्वे शोकाकुलाभृशम् । वसुदेवो महाभागः श्रुत्वापुत्रस्यतांकथाम्
मुमोह सपरीवारस्तदा परमया शुचा । चिन्तयामास बहुधा कथं श्रेयो भवेन्मम ॥
अथाऽऽजगाम भगवान्देवर्षिर्ब्रह्मलोकतः । उत्थायतंप्रणम्याऽसौवसुदेवोऽभ्यपूजयत्
नारदोऽनामयम्पृष्ट्वा वसुदेवंमहामतिम् । प्रपच्छ च यदुश्रेष्ठं किं चिन्तयसि तद्वद॥

वसुदेव उवाच

पुत्रो मेऽतिप्रियः कृष्णः प्रसेनान्वेषणाय तु । पौरैस्साकंवनंगत्वा निहतं तं तदैक्षत
प्रसेनघातकं दृष्ट्वाबिलद्वारे मृतंहरिम् । द्वारि पौरानधिष्ठाप्य बिलान्तर्गतवान्स्वयम्
बहवो दिवसायाता नायात्यद्यापिमेसुतः । अतश्शोचामितद्ब्रूहि येनलप्स्ये सुतं मुने॥

नारद उवाच

पुत्रप्राप्त्यैवसुश्रेष्ठ देवीमाराधयाम्बिकाम् । तस्याआराधनेनैवसद्यःश्रेयोह्यवाप्स्यसि

वसुदेव उवाच

भगवन्काहि सा देवी किंप्रभावामहेश्वरी । कथमाराधनं तस्या देवर्षे कृपया वद ॥

नारद उवाच

वसुदेव महाभाग श्रृणु संक्षेपतो मम । देव्या माहात्म्यमतुलं कोवक्तुं विस्तरात्क्षमः
या सा भगवतीनित्या सच्चिदानन्दरूपिणी । परात्परतरादेवी यया व्याप्तमिदंजगत्
यदाराधनतो ब्रह्मा सृजतीदं चराचरम् । याञ्चस्तुत्वा विनिर्मुक्तो मधुकैटभजाद्भयात्
विष्णुर्यत्कृपयाविश्वं बिभर्तिभगवानिदम् । रुद्रस्संहरतेयस्याः कृपापाङ्गनिरीक्षणात्
संसारबन्धहेतुर्या सैव मुक्तिप्रदायिनी । सा विद्या परमादेवी सैव सर्वेश्वरेश्वरी ॥
नवरात्रविधानेन सम्पूज्य जगदम्बिकाम् । नवाहोभिः पुराणञ्च देव्याभागवतं श्रृणु
यस्यश्रवणमात्रेण सद्यःपुत्रमवाप्स्यसि । भुक्तिर्मुक्तिर्नदूरस्था पठताञ्छृण्वताञ्नृणाम्
इत्युक्तो नारदेनाऽसौ वसुदेवः प्रणम्यतम् । उवाच परयाप्रीत्या नारदं मुनिसत्तमम्

वसुदेव उवाच

भगवंस्तववाक्येनसंस्मृतं वृत्तमात्मनः । श्रूयतांतच्च वक्ष्यामि देवीमाहात्म्यसम्भवम्
पुरानभोगिराकंसो देवक्यष्टमगर्भतः । ज्ञात्वाऽऽत्ममृत्युंपापोमांसभार्यंन्यरुणद्धिया
कारागारेऽहमवसं देवक्या सहभार्यया । जातं जातं समवधीत्पुत्रं कंसोऽपिपापकृत्
षट्पुत्रा निहतास्तेन तदा शोकाकुला भृशम् । अतप्यद्देवकीदेवी नक्तंदिवमनिन्दिता
तदाऽहंगर्गमाहूय मुनिंनत्वाऽभिपूज्यच । निवेद्यदेवकीदुःखमवोचं पुत्रकाम्यया ॥
भगवन्करुणासिन्धो! यादवानां गुरुर्भवान् । आयुष्मत्पुत्रसम्प्राप्तिसाधनं वद मेमुने

तती गर्गः प्रसन्नात्मा मामुवाच दयानिधिः ।

गर्ग उवाच

वसुदेव ! महाभाग ! शृणु तत्साधनम्परम् ॥ ४९ ॥
या साभगवतीदुर्गा भक्तदुर्गतिहारिणी । तामाराधयकल्याणीं सद्यःश्रेयोह्यवाप्स्यसि
यदाराधनतस्सर्वे सर्वान्कामानवाप्नुयुः । नकिञ्चिद्दुर्लभंलोके दुर्गार्चनवतांनृणाम्
इत्युक्तोऽहंमुदायुक्तःसभार्योमुनिपुङ्गवम् । प्रणम्यपरया भक्त्या प्रावोचं विहिताञ्जलिः

वसुदेव उवाच

यद्यस्तिभगवन्प्रीतिर्मयितेकरुणानिधे । तदागुरो ! मदर्थे त्वं समाराधय चण्डिकाम्
निरुद्धःकंसगेहेऽहं न किञ्चित्कर्तुमुत्सहे । अतस्त्वमेव दुःखाब्धेर्मामुद्धर महामते ! ॥
इत्युक्तस्तुमयाप्रीतः प्रोवाच मुनिपुङ्गवः । वसुदेव ! तव प्रीत्या करिष्यामि हितं तव

अथ गर्गमुनिः प्रीत्या मया सम्प्रार्थितोऽगमत् ।
आरिराधयिषुर्दुर्गां विन्ध्याद्रिं ब्राह्मणैस्सह ॥ ५६ ॥

तत्रगत्वाजगद्धात्रीं भक्ताभीष्टप्रदायिनीम् । आराधयामास मुनिर्जपपाठपरायणः॥५७
ततस्समाप्तेनियमे वागुवाचाशरीरिणी । । प्रसन्नाऽहं मुनेकार्यसिद्धिस्तवभविष्यति
भूभारहरणार्थाय मया सम्प्रेरितो हरिः । वसुदेवस्य देवक्यां स्वांशेनाऽवतरिष्यति ॥
कंसभीत्यातमादाय बालमानकदुन्दुभिः । प्रापयिष्यति सद्यस्तु गोकुले नन्दवेश्मनि
यशोदतनयांनीत्वास्वगृहेकंसभूभुजे । दास्यत्यथच तां हन्तुं कंसआक्षेप्स्यतिक्षितौ॥
सा तद्धस्ताद्विनिर्गत्य सद्योदिव्यवपुर्धरा । मदंशभूताविन्ध्याद्रौकरिष्यतिजगद्धितम्
इति तद्वचनंश्रुत्वाप्रणम्यजगदम्बिकाम् । गर्गोमुनिः प्रसन्नात्मा मथुरामागमत्पुरीम्
वरदानं महादेव्या गर्गाचार्यमुखादहम् । श्रुत्वा सभार्यस्संप्रीतः परांमुदमथाऽगमम्
तदाऽऽरभ्यपरंजाने देवीमाहात्म्यमुत्तमम् । अधुनाऽपिहिदेवर्षे ! श्रुतं तवमुखाम्बुजात्
अतोभागवतं देव्यास्त्वमेव श्रावयप्रभो । मद्भाग्यादेव देवर्षे सम्प्राप्तोऽसिदयानिधे!॥
वसुदेववचः श्रुत्वा नारदः प्रीतमानसः । सुदिने शुभनक्षत्रे कथारम्भमथाकरोत् ॥
कथाविघ्नविघातार्थंद्विजा जेपुर्नवाक्षरम् । मार्कण्डेयपुराणोक्तं पेठुर्देव्याः स्तवं तथा

प्रथमस्कन्धमारभ्य श्रीनारदमुखोद्गतम् । शुश्रावयसुदेवश्च भक्त्या भागवतामृतम् ॥
नवमेऽह्नि कथापूर्तौ पुस्तकं वाचकं तथा । प्रसन्नः पूजयामास वसुदेवो महामनाः ॥
अथतत्रबिलस्यान्तःकृष्णजाम्बवतोर्मृधे । कृष्णमुष्टिविनिष्पातश्लथाङ्गोजाम्बवानभूत्
अथागतस्मृतिस्सोऽपि भगवन्तंप्रणम्यच । उवाचपरयाभक्त्या स्वापराधं क्षमापयन्
ज्ञातोऽसि रघुवर्यस्त्वं यद्रोषात्सरितांपतिः । क्षोभं जगामलङ्कावरावणःसानुगोहतः
सएवासिभवान्कृष्णमद्दौरात्म्यंक्षमस्वभोः । ब्रूहियत्करणीयंमे भृत्योऽहं तव सर्वथा
श्रुत्वा जाम्बवतो वाक्यमब्रवीज्जगदीश्वरः । मणिहेतोरिह प्राप्ता वयमृक्षपते बिलम्

ऋक्षराजस्ततः प्रीत्या कन्यां जाम्बवतीं निजाम् ।
ददौ कृष्णाय सम्पूज्य स्यमन्तकमणिं तथा ॥ ७६ ॥

स तां पत्नीं समादाय मणिकण्ठे तथाऽदधत् । अभिमन्त्र्यर्क्षराजंचप्रतस्थेद्वारकांप्रति
कथासमाप्तिदिवसे वसुदेव उदारधीः । ब्राह्मणान्भोजयामास दक्षिणाभिरतोषयत्
आशीर्वाचंप्रयुंजाना द्विजायत्समयेहरिः । आजगामक्षणेतस्मिन्पत्न्या सहमणिंदधत्
भार्यया सहितं कृष्णं वसुदेवपुरोगमाः । दृष्ट्वा हर्षाश्रुपूर्णाक्षास्समवापुःपरां मुदम् ॥
देवर्षिर्नारदश्चाथ कृष्णागमनहर्षितः । आमन्त्र्य वसुदेवञ्च कृष्णं ब्रह्मसभां ययौ ॥८१

हरिचरितमिदं यत्कीर्तितं दुर्यशोघ्नं पठति विमलभक्त्या शुद्धचित्तःशृणोति ।
स भवति सुखपूर्णः सर्वदा सिद्धकामो जगतिच वपुषोऽन्ते मुक्तिमार्गं लभेच्च ॥

इतिस्कन्दपुराणे मानसखण्डे श्रीदेवीभागवतमाहात्म्ये वसुदेवस्य देवीभागवत-
नवाहश्रवणात्पुत्रप्राप्तिवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः

स्कन्दागस्त्यसम्वादवर्णनम्

सूत उवाच

अथेतिहासमन्यच्च शृणुध्वं मुनिसत्तमाः । देवीभागवतस्यास्य माहात्म्यं यत्र गीयते

एकदाकुम्भयोनिस्तुलोपामुद्रापतिर्मुनिः । गत्वाकुमारमभ्यर्च्यप्रपच्छविविधाःकथाः

स तस्मै भगवान्स्कन्दः कथयामास भूरिशः ।

दानतीर्थव्रतादीनां माहात्म्योपचिताः कथाः ॥ ३ ॥

वाराणस्याश्चमाहात्म्यंमणिकर्णीभवंतथा । गङ्गायाश्चापितीर्थानांवर्णितंबहुविस्तरम्

श्रुत्वाऽथ स मुनिःप्रीतःकुमारंभूरिवर्चसम् । पुनःप्रपच्छलोकानांहितार्थंकुम्भसम्भवः

अगस्त्य उवाच

भगवंस्तारकाराते देवीभागवतस्य तु । माहात्म्यं श्रवणे तस्य विधिं चापि वद प्रभो

देवीभागवतं नाम पुराणं परमोत्तमम् । त्रैलोक्यजननी साक्षाद्गीयते यत्र शाश्वती ॥

स्कन्द उवाच

श्रीभागवतमाहात्म्यं को वक्तुं विस्तरात्क्षमः ।

शृणु संक्षेपतो ब्रह्मन्कथयिष्यामि साम्प्रतम् ॥ ८ ॥

यानित्यासच्चिदानन्दरूपिणीजगदम्बिका । साक्षात्समाश्रितायत्रभुक्तिमुक्तिप्रदायिनी

अतस्तद्वाङ्मयी मूर्तिर्देवीभागवतं मुने । पठनाच्छ्रवणाद्यस्य न किंचिदिह दुर्लभम् ॥

आसीद्विवस्वतः पुत्रःश्राद्धदेव इतिश्रुतः । सोऽनपत्योऽकरोदिष्टिं वशिष्ठानुमतो नृपः

होतारं प्रार्थयामास श्रद्धाऽथदयिता मनोः । कन्याभवतुमेब्रह्मंस्तथोपायोविधीयताम्

मनसाचिन्तयन्होताकन्यामेवाजुहोद्धविः । ततस्तद्व्यभिचारेणकन्येलानामचाऽभवत्

अथ राजासुतां दृष्ट्वा प्रोवाच विमनागुरुम् । कथं संकल्पवैषम्यमिह जातं प्रभो तव

तच्छ्रुत्वा स मुनिर्दध्यौ ज्ञात्वा होतुर्व्यतिक्रमम् ।

ईश्वरं शरणं यात इलायाः पुंस्त्वकाम्यया ॥ १५ ॥

मुनेस्तपःप्रभावाच्च परेशानुग्रहात्तथा । पश्यतां सर्वलोकानामिला पुरुषतामगात् ॥

गुरुणा कृतसंस्कारः सुद्युम्नोऽथ मनोः सुतः । निधिर्बभूवविद्यानांसरितामिवसागरः

अथ कालेन सुद्युम्नस्तारुण्यं समवाप्य च । मृगयार्थं वनं यातो हयमारुह्य सैन्धवम्

वनाद्वनांतरं गच्छन्बहु बभ्राम सानुगः । दैवादधस्तान्मेरोस्स कुमारो वनं ययौ

कस्मिंश्चित्समये यत्र भार्ययाऽपर्णया सह । अरमद्देवदेवस्तु शंकरो भगवान्मुदा ॥

तदातु मुनयस्तत्र शिवदर्शनलालसाः। आजग्मुरथ तान्दृष्ट्वा गिरिजा व्रीडिताऽभवत्
रममाणौ तु तौ दृष्ट्वा गिरिशौ संशितव्रताः। निवृत्ता मुनयो जग्मुर्वैकुण्ठनिलयंतदा
प्रियायाः प्रियमन्विच्छञ्छिवोऽरण्यं शशाप ह।
अद्यारभ्य विशेद्योऽत्र पुमान्योषिद्भवेदिति ॥ २३ ॥
तत आरभ्य तं देशं पुरुषा वर्जयन्ति हि। तत्र प्रविष्टः सुद्युम्नो बभूव प्रमदोत्तमा ॥
स्त्रीभूतानानुगानश्वं वडवां वीक्ष्य विस्मितः। अथ सा सुन्दरी योषाविचचारवनेवने
एकदासा जगामाऽथबुधस्याश्रमसन्निधौ। दृष्ट्वा तां चारुसर्वांगीं पीनोन्नतपयोधराम्
बिंबोष्ठीं कुन्ददशनां सुमुखीमुत्पलेक्षणाम्। अनङ्गशरविद्धाङ्गश्चकमे भगवान्बुधः ॥
साऽपितं चकमे सुभ्रूः कुमारंसोमनन्दनम्। ततस्तस्याश्रमेऽवासीद्रममाणाबुधेन सा
अथकालेन कियता पुरूरवसमात्मजम्। स तस्यां जनयामास मित्रावरुणसंभव ! ॥
अथवर्षेषुयातेषु कदाचित्सा बुधाश्रमे। स्मृत्वा स्वं पूर्ववृत्तांतं दुःखिता निर्जगामह
गुरोरथाश्रमं गत्वा वसिष्ठस्य प्रणम्यतम्। निवेद्यवृत्तं शरणं ययौ पुंस्त्वमभीप्सती
वसिष्ठो ज्ञातवृत्तांतो गत्वा कैलाशपर्वतम्। संपूज्य शंभुं तुष्टाव भक्त्यापरमया युतः

वसिष्ठ उवाच

नमोनमः शिवायाऽस्तु शंकराय कपर्दिने। गिरिजार्द्धांगदेहाय नमस्ते चंद्रमौलये ॥
मृडाय सुखदात्रे ते नमः कैलासवासिने। नीलकण्ठाय भक्तानां भुक्तिमुक्तिप्रदायिने
शिवाय शिवरूपाय प्रपन्नभयहारिणे। नमोवृषभवाहाय शरण्याय परात्मने ॥ ३५ ॥
ब्रह्मविष्ण्वीशरूपाय सर्गस्थितिलयेषु च। नमो देवाधिदेवाय वरदाय पुरारये ॥
यज्ञरूपाय यजतां फलदात्रे नमो नमः। गङ्गाधराय सूर्येन्दुशिखिनेत्राय ते नमः ॥
एवं स्तुतस्स भगवान्प्रादुरासीज्जगत्पतिः। वृषारूढोऽम्बिकोपेतः कोटिसूर्यसमप्रभः
रजताचलसंकाशस्त्रिनेत्रश्चंद्रशेखरः। प्रणतं परितुष्टात्मा प्रोवाच मुनिसत्तमम् ॥

श्रीभगवानुवाच

वरं वरय विप्रर्षे यत्ते मनसि वर्तते। इत्युक्तस्तं प्रणम्येलापुंस्त्वमभ्यर्थयन्मुनिः ॥
अथ प्रसन्नो भगवानुवाच मुनिसत्तमम्। मासं पुमान्स भविता मासंनारीभविष्यति

इतिप्राप्यवरं शंभोर्महर्षिर्जगदम्बिकाम् । वरदानोन्मुखीं देवीं प्रणनाम महेश्वरीम् ॥
कोटिचन्द्रकलाकान्ति सुस्मितां परिपूज्य च ।
तुष्टाव भक्त्या सततमिलायाः पुँस्त्वकाम्यया ॥ ४३ ॥
जय देवि महादेवि भक्तानुग्रहकारिणि । जयसर्वसुराराध्ये जयानन्तगुणालये ॥
नमो नमस्ते देवेशि शरणागतवत्सले । जयदुर्गे दुःखहंत्रि दुष्टदैत्यनिषूदिनि ॥४५॥
भक्तिगम्ये महामाये नमस्ते जगदम्बिके । संसारसागरोत्तारपोतीभूतपदाम्बुजे ॥
ब्रह्मादयोऽपि विबुधास्त्वत्पादाम्बुजसेवया । विश्वसर्गस्थितिलयप्रभुत्वंसमवाप्नुयुः
प्रसन्ना भवदेवेशि चतुर्वर्गप्रदायिनि । कस्त्वांस्तोस्तुं क्षमोदेविकेवलंप्रणतोऽस्म्यहम्
एवं स्तुता भगवती दुर्गा नारायणी परा । भक्त्या वसिष्ठमुनिनाप्रसन्नातत्क्षणादभूत्
तदोवाच महादेवी प्रणतार्तिहरी मुनिम् । सुद्युम्नभवनं गत्वा कुरु भक्त्या मदर्चनम्
सुद्युम्नं श्रावय प्रीत्या पुराणं मत्प्रियङ्करम् । देवीभागवतं नाम नवाहोभिर्द्विजोत्तम
श्रवणादेव सततं पुंस्त्वमस्य भविष्यति । इत्युक्त्वाचतिरोधानंगच्छतःस्मशिवेश्वरी
वसिष्ठस्तां दिशन्नत्वा समागत्याश्रमंनिजम् । समाहूयवसुद्युम्नं देव्याराधनमादिशत्
आश्विनस्य सिते पक्षे संपूज्यजगदम्बिकाम् । ।नवरात्रविधानेनश्रावयामासभूपतिम्
श्रुत्वा भक्त्याऽपि सुद्युम्नः श्रीमद्भागवतामृतम् ।
प्रणम्याऽभ्यर्च्य च गुरुं लेभे पुंस्त्वं निरन्तरम् ॥ ५५ ॥
राज्यासनेऽभिषिक्तस्तु वसिष्ठेन महर्षिणा । भवं शशास धर्मेण प्रजाश्चैवानुरञ्जयन्
ईजे च विविधैर्यज्ञैः संपूर्णवरदक्षिणैः । पुत्रेषु राज्यं संदिश्य प्रापदेव्याः सलोकताम्
इति कथितमशेषं सेतिहासं च विप्रा यदि पठति सुभक्त्या मानवो वा शृणोति ।
स इह सकलकामान्प्राप्य देव्याः प्रसादात्परममृतमथान्ते याति देव्यास्सलोकम् ॥

इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे देवीभागवतमाहात्म्ये देवीभागवतनवाह-
श्रवणादिलायाःपुंस्त्वप्राप्तिवर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः

देवीभागवतमाहात्म्यप्रसङ्गेन ऋतवाङ्मुनिचरित्रवर्णनम्

सूत उवाच

इति श्रुत्वा कथां दिव्यांविचित्रांकुम्भसम्भवः । शुश्रूषुःपुनराहेदंविशाखंविनयान्वितः

अगस्त्य उवाच

देवसेनापते देव विचित्रेयं श्रुता कथा । पुनरन्यच्च माहात्म्यं वद भागवतस्य मे ॥२॥

स्कन्द उवाच

मित्रावरुणसम्भूत ! मुने! शृणु कथामिमाम् । यत्रैकदेशमहिमा प्रोक्तो भागवतस्य तु
वर्ण्यते धर्मविस्तारो गायत्रीमधिकृत्य च । गायत्र्या महिमा यत्र तद्भागवतमिष्यते॥
भगवत्या इदं यस्मात्तस्माद्भागवतं विदुः । ब्रह्मविष्णुशिवाराध्या परा भगवतीहिसा

ऋतवागिति विख्यातो मुनिरासीन्महामतिः ।

तस्य पुत्रोऽभवत्काले गण्डान्ते पौष्णभान्तिमे ॥ ६ ॥

स तस्यजातकर्मादिक्रियाश्चक्रेयथाविधि । चूडोपनयनादींश्चसंस्कारानपिसोऽकरोत्
यत आरभ्य जातोऽसौपुत्रस्तस्यमहात्मनः । ततएवाथसमुनिश्शोकरोगाकुलोऽभवत्
रोषलोभपरीतात्मा तथा माताऽपितस्यच । बहुरोगार्दितानित्यंशुचादु:खीकृताभृशम्
ऋतवाक्स मुनिश्चिन्तामवापभृशदुःखितः । किमेतत्कारणं जातंपुत्रोमेऽत्यन्तदुर्मतिः
कस्यचिन्मुनिपुत्रस्य बलात्पत्नीं जहारच । मेने शिक्षांपितुर्नाऽसौ नच मातुर्विमूढधीः
ततो विषण्णचित्तस्तु ऋतवागब्रवीदिदम् । अपुत्रता वरं नृणां न कदाचित्कुपुत्रता॥
पितॄन्कुपुत्रः स्वर्यातान्निरये पातयत्यपि । यावज्जीवन्त्सदापित्रोःकेवलं दुःखदायकः॥

पित्रोर्दुःखाय धिग्जन्म कुपुत्रस्य च पापिनः ।

सुहृदां नोपकाराय नापकाराय वैरिणाम् ॥ १४ ॥

धन्यास्ते मानवालोके सुपुत्रो यद्गृहेस्थितः । परोपकारशीलश्च पितुर्मातुः सुखावहः

कुपुत्रेण कुलं नष्टं कुपुत्रेण हतं यशः । कुपुत्रेणेह चाऽमुत्र दुःखं निरययातनाः ॥१६
कुपुत्रेणान्वयो नष्टो जन्म नष्टं कुभार्यया । कुभोजनेन दिवसः कुमित्रेण सुखं कुतः

स्कन्द उवाच

एवं दुष्टस्य पुत्रस्य दुष्टैराचरणैर्मुनिः । तप्यमानोऽनिशं काले गत्वा गर्गमपृच्छत ॥

ऋतवागुवाच

भगवन्स्त्वामहं प्रष्टुमिच्छामि वद तत्प्रभो ! ।
ज्योतिश्शास्त्रस्य चाचार्यं पुत्रदौःशील्यकारणम् ॥ १६ ॥

गुरुशुश्रूषया वेदा अधीता विधिवन्मया । ब्रह्मचारिव्रतं तीर्त्वा विवाहोविधिवत्कृतः
भार्ययासह गार्हस्थ्यधर्मश्चानुष्ठितोऽनिशम् । पञ्चयज्ञविधानञ्चमयाऽकारियथाविधि
नरकाद्बिभ्यताविप्रनतु कामसुखेच्छया । गर्भाधानञ्च विधिवत्पुत्रप्राप्त्यैमयाकृतम्
पुत्रोऽयं ममदोषेण मातुर्दोषेण वा मुने । जातोदुःखावहः पित्रोर्दुःशीलोबन्धुशोकदः
एतन्निशम्य वचनं गर्गाचार्यो मुनेस्तदा । विचार्य सर्वं तद्धेतुं ज्योतिर्विद्वाचमब्रवीत्

गर्ग उवाच

मुने नैवापराधस्ते न मातुर्नकुलस्य च । रैवत्यन्तंतु गण्डान्तंपुत्रदौःशील्यकारणम्
दुष्टे काले यतो जन्मपुत्रस्यतव भो मुने । तेनैव तवदुःखाय नाऽन्यो हेतुर्मनागपि॥
तद्दुःखशान्तयेब्रह्मञ्जगतां मातरंशिवाम् । समाराधय यत्नेन दुर्गां दुर्गतिनाशिनीम्
गर्गस्यवचनंश्रुत्वाऋतवाक्क्रोधमूर्च्छितः । रैवतींतु शशापाऽसौ व्योम्नः पततु रैवती
दत्ते शापे तु तेनाऽथ पूर्णोभञ्चपपातखात् । कुमुदाद्रौभासमानं सर्वलोकस्यपश्यतः
ख्यातो रैवतकश्चाभूत्तत्पातात्कुमुदाचलः । अतीव रमणीयश्च ततः प्रभृतिसोऽप्यभूत्
दत्त्वाशापंचरैवत्यैगर्गोक्तविधिनामुनिः । समाराध्याम्बिकांदेवींसुखसौभाग्यभागभूत्

स्कन्द उवाच

रैवत्यृक्षस्य यत्तेजस्तस्माज्जातातुकन्यका । रूपेणाप्रतिमालोके द्वितीया श्रीरिवाभवत्
अथ तां प्रमुचः कन्यांरैवतीकान्तिसम्भवाम् । दृष्ट्वानाम चकारास्यारैवतीतिमुदामुनिः
निन्येऽथ स्वाश्रमे चैनां पोषयामास धर्मतः । ब्रह्मर्षिः प्रमुचोनामकुमुदाद्रौ सुतामिव

अथ कालेन च प्रौढां दृष्ट्वा तां रूपशालिनीम् ।
स मुनिश्चिन्तयामास कोऽस्या योग्यो वरो भवेत् ॥ ३५ ॥
बहुधाऽन्वेषयंस्तस्या नाससादोचितं पतिम् ।
ततोऽग्निशालां सम्विश्य मुनिस्तुष्टाव पावकम् ॥ ३६ ॥

कन्यावरं तदाऽशंसत्प्रीतस्तमपि हव्यवाट् । धर्मिष्ठो बलवान्वीरः प्रियवागपराजितः
दुर्दमोभवितभर्तामुनेऽस्याःपृथिवीपतिः । इतिश्रुत्वावचो वह्नेः प्रसन्नोऽभून्मुनिस्तदा
दैवादाखेटकव्याजात्तत्क्षणादागतो नृपः । दुर्दमो नाम मेधावी तस्याऽऽश्रमपदं मुनेः
पुत्रो विक्रमशीलस्य बलवान्वीर्यवत्तरः । कालिन्दीजठरे जातः प्रियव्रतकुलोद्भवः ॥
मुनेराश्रममाविश्य तमदृष्ट्वा महामुनिम् । आमन्त्र्य तां प्रिये चेति रेवतीं पृष्टवान्नृपः

राजोवाच

महर्षिर्भगवानस्मादाश्रमात्क गतः प्रिये । तत्पादौद्रष्टुमिच्छामिवदकल्याणितत्त्वतः

कन्योवाच

अग्निशालामुपगतो महाराज महामुनिः । निश्चक्रामाश्रमात्तूर्णं राजाऽप्याकर्ण्यतद्वचः
अथाऽग्निशालाद्वारस्थं राजानं दुर्दमं मुनिः । राजलक्षणसंयुक्तमपश्यत्प्रश्रयानतम् ॥
प्रणनामच तं राजा मुनिःशिष्यमुवाचह । गौतमानीयतामर्घ्यमर्घ्ययोग्योऽस्तिभूपतिः
आगतश्चिरकालेनजामातेतिविशेषतः । इत्युक्त्वाऽर्घ्यं ददौतस्मैसोऽपिजग्राहचिन्तयन्
मुनिरासनमासीनं गृहीतार्घ्यं च भूपतिम् । आशीर्भिरभिनन्द्याथ कुशलंचाप्यपृच्छत
अपि तेऽनामयं राजन्बले कोशेसुहृत्सुच । भृत्येऽमात्येपुरेदेशेतथाऽऽत्मनिजनाधिप
भार्याऽस्ति ते कुशलिनी यतः साऽत्रैवतिष्ठति ।
अतो न पृच्छाम्यस्यास्ते चाऽन्यासां कुशलं वद ॥ ४१ ॥

राजोवाच

भगवंस्त्वत्प्रसादेन सर्वत्रानामयं मम । एतत्कुतूहलं ब्रह्मन्मद्भार्या काऽत्र विद्यते ॥

ऋषिरुवाच

रेवतीं नाम ते भार्या रूपेणाप्रतिमा भुवि । विद्यतेऽत्र कथं पत्नीं तांन वेत्सि महीपते

राजोवाच

सुभद्राद्यास्तुया भार्या मम सन्तिगृहेविभो । जानामितास्तुभगवन्नैवजानामिरैवतीम्

ऋषिरुवाच

प्रियेतिसाम्प्रतंराजंस्त्वयोक्तायाः महामते । सा विस्मृताक्षणादेवयातेश्लाघ्यतमाप्रिया

राजोवाच

त्वयोक्तं यन्मृषा तन्नो तथैवामन्त्रितामया । मुने दुष्टो न मे भावःकोपंमा कर्तुमर्हसि

ऋषिरुवाच

राजन्नुक्तं त्वया सत्यं न भावो दूषितस्तव । वह्निना प्रेरितेनेत्थं भवता व्याहृतंवचः

अद्य पृष्टो मया वह्निः कोऽस्या भर्ता भविष्यति ।

तेनोक्तं दुर्दमो राजा भविताऽस्याः पतिर्ध्रुवम् ॥ ५६ ॥

तदादत्स्व मया दत्तामिमां कन्यां महीपते । प्रियेत्यामंत्रितापूर्वं माविचारंकुरुष्वभोः

श्रुत्वैतत्सोऽभवत्तूष्णीं चिंतयन्मुनिभाषितम् । वैवाहिकंविधितस्यमुनिःकर्तुंसमुद्यतः

अथोद्यतं विवाहाय दृष्ट्वा कन्याऽब्रवीन्मुनिम् । रैवत्यृक्षे विवाहोमेतातकर्तुं त्वमर्हसि

ऋषिरुवाच

वत्से ! विवाहयोग्यानि सन्त्यन्यर्क्षाणि भूरिशः ।

रैवत्यां कथमुद्वाहः पौष्णभं न दिवि स्थितम् ॥ ६० ॥

कन्योवाच

रैवत्यृक्षं विनाकालो ममोद्वाहोचितोनहि । अतः संप्रार्थयाम्येतद्विवाहं पौष्णभे कुरु

ऋषिरुवाच

ऋतवाङ्मुनिना पूर्वं रैवतीभं निपातितम् । भान्तरेचेन्नते प्रीतिर्विवाहः स्यात्कथं तव

कन्योवाच

तपः किं ततवानेक ऋतवागेव केवलम् ।

भवता किं तपो नेदृक्तप्तं वाक्कायमानसैः ॥ ६३ ॥

जगत्स्रष्टुं समर्थस्त्वं वेद्म्यहन्तेतपोबलम् । रैवत्यृक्षं दिविस्थाप्य ममोद्वाहंपितःकुरु

ऋषिरुवाच

एवं भवतु भद्रन्ते यथैवत्वंब्रवीषिमाम् । त्वत्कृतेसोममार्गेऽहंस्थापयाम्यद्यपौष्णभम्

स्कन्द उवाच

एवमुक्त्वा मुनिस्तूर्णं पौष्णभं स्वतपोबलात् । यथापूर्वंतथाचक्रे सोममार्गे घटोद्भव
रैवतीनाम्नि नक्षत्रे विवाहविधिना मुनिः । रेवतीं प्रददौ राज्ञे दुर्दमाय महात्मने ॥
कृत्वा विवाहं कन्याया मुनीराजानमब्रवीत् । किंतेऽभिलषितं वीरवदतत्पूरयाम्यहम्

राजोवाच

मनोः स्वायंभुवस्याहं वंशज्ञातोऽस्मि हेमुने । मन्वंतराधिपं पुत्रंत्वत्प्रसादाद्धकामये

मुनिरुवाच

यद्येषा कामना तेऽस्ति देव्या आराधनंकुरु । भविष्यत्येवते पुत्रो मनुर्मन्वन्तराधिपः
देवीभागवतं नाम पुराणं यत्तु पञ्चमम् । पञ्चकृत्वस्तुतच्छ्रुत्वालप्स्यसेऽभिमतंसुतम्
रैवत्यां रैवतो नाम पञ्चमो भविता मनुः । वेदविच्छास्त्रतत्त्वज्ञो धर्मवानपराजितः ॥
इत्युक्तो मुनिना राजा प्रणम्य मुदितो मुनिम् । भार्ययासहमेधावीजगामनगरंनिजम्
पितृपैतामहं राज्यं चकार स महामतिः । पालयामास धर्मात्माप्रजाःपुत्रानिवौरसान्
एकदा लोमशो नाम महात्मा मुनिरागतः । प्रणिपत्यतमभ्यर्च्य प्राञ्जलिश्चाब्रवीन्नृपः

राजोवाच

भगवंस्त्वत्प्रसादेन श्रोतुमिच्छामि भो मुने । देवीभागवतं नाम पुराणंपुत्रलिप्सया

श्रुत्वा वाचं प्रजाभर्तुः प्रीतः प्रोवाच लोमशः ।
धन्योऽसि राजंस्ते भक्तिर्जाता त्रैलोक्यमातरि ॥ ७७ ॥

सुरासुरनराराध्याया परा जगदम्बिका । तस्यां चेद्भक्तिरुत्पन्नाकार्यसिद्धिर्भविष्यति
अतस्त्वां श्रावयिष्यामि श्रीमद्भागवतं नृप । यस्यश्रवणमात्रेण न किंचिदपिदुर्लभम्
इत्युक्त्वा सुदिने ब्रह्मन्कथारम्भमथाकरोत् । पञ्चकृत्वस्स शुश्राव विधिवद्भार्ययासह
समाप्तिदिवसेराजा पुराणं च मुनिं तथा । पूजयामास धर्मात्मा मुदा परमया युतः

हुत्वा नर्वाणमन्त्रेण भोजयित्वा कुमारिकाः ।

वाडवांश्च सपत्नीकान्दक्षिणाभिरतोषयत् ॥ ८२ ॥
अथ कालेन कियता भगवत्याः प्रसादतः । गर्भन्दधारसाराज्ञीलोककल्याणकारकम्
पुण्येऽथ समयेप्राप्ते ग्रहैः सुस्थानसंगतैः । सर्वमङ्गलसम्पन्ने रेवती सुषुवे सुतम्
श्रुत्वा पुत्रस्य जननं ज्ञात्वा राजा मुदाऽन्वितः ।
ससुवर्णाम्मसा चक्रे जातकर्म्मादिकाः क्रियाः ॥ ८५ ॥
यथाविधि च दानानि दत्त्वा विप्रानतोषयत् । कृतोपनयनं राजासाङ्गान्वेदानपाठयत्
सर्वविद्यानिधिर्जातो धर्मिष्ठोऽस्त्रविदां वरः । धर्मस्यवक्ताकर्त्ताच रैवतोनामवीर्यवान्
नियुक्तवानथ ब्रह्मा रैवतं मानवे पदे । मन्वन्तराधिपः श्रीमान् गां शशास स धर्मतः
इत्थं देव्याःप्रभावोऽयंसंक्षेपेणोपवर्णितः । पुराणस्यचमाहात्म्यंकोवक्तुंविस्तरात्क्षमः

सूत उवाच

कुंभयोनिस्तुमाहात्म्यंविधिंभागवतस्य च । श्रुत्वाकुमारश्चाभ्यर्च्यस्वाश्रमंपुनराययौ
इदं मया भागवतस्य विप्रा ! माहात्म्यमुक्तं भवतां समक्षम् ।
शृणोति भक्त्या पठतीह भोगान्भुक्त्वाऽखिलान्मुक्तिमुपैति चान्ते ॥ ६१ ॥
इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे श्रीदेवीभागवतमाहात्म्ये रैवतनामकमनुपुत्रोत्पत्ति-
वर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पञ्चमोऽध्यायः

श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणश्रवणसविस्तरविधिवर्णनम्

ऋषय ऊचुः

सूत सूत महाभागश्रुतं माहात्म्यमुत्तमम् । अधुना श्रोतुमिच्छामःपुराणश्रवणेविधिम्

सूत उवाच

श्रूयतां मुनयस्सर्वेपुराणश्रवणेविधिः । नराणां शृण्वतांयेनसिद्धिःस्यात्सार्वकामिकी

आदौ दैवज्ञमाहूय मुहूर्तं कल्पयेत्सुधीः । आरभ्यशुचिमासं तु मासषट्कं शुभावहम्
हस्ताऽश्विमूलपुष्यर्क्षे ब्रह्ममैत्रेन्दुवैष्णवे । सत्तिथौ शुभवारे च पुराणश्रवणं शुभम् ॥

गुरुभाद्वेद ४वेदा ४ब्ज १शरा ५गा ६ब्धि ४गुणः ३क्रमात् ।
धर्माप्तिरिन्दिराप्राप्तिः कथासिद्धिः परं सुखम् ॥ ५ ॥

पीडाऽथ भूपतिभयं ज्ञानप्राप्तिः क्रमात्फलम् । पुराणश्रवणेचक्रंशोधयेच्छिवभाषितम्
अथवा प्रीतये देव्या नवरात्रचतुष्टये । शृणुयादन्यमासेऽपि तिथिवारर्क्षशोधिते ॥
संभारं यादृशं कार्यं विवाहादौ च तादृशम् । नवाहयज्ञेचाप्यस्मिन्विधेयं यत्नतोबुधैः
सहाया बहवः कार्या दंभलोभविवर्जिताः । चतुराश्च वदान्याश्च देवीभक्तिपरा नराः
प्रेष्या यत्नेन वार्तेयं देशेदेशे जनेजने । आगन्तव्यमिहावश्यं कथा देव्या भविष्यति
सौराश्च गाणपत्याश्च शैवाःशाक्ताश्चवैष्णवाः । सर्वेषामपिसेव्येयंयतोदेवास्तच्छक्तयः
श्रीमद्देवीभागवतपीयूषरसलोलुपैः । आगन्तव्यं विशेषेण कथार्थं प्रेमतत्परैः ॥१२॥

ब्राह्मणाद्याश्च ये वर्णाः स्त्रियश्चाश्रमिणस्तथा ।
सकामाश्चापि निष्कामाः पातव्यंतैः कथामृतम् ॥ १३ ॥

नावकाशःकदाचित्स्यान्नवाहश्रवणेऽपितैः । आगन्तव्यंयथाकालंयज्ञेपुण्याक्षणक्षितिः
विनयेनैव कर्तव्यमेवमाकारणं नृणाम् । आगतानां च कर्तव्यंवासस्थानंयथोचितम्
कथास्थानं प्रकर्तव्यं भूमौमार्जनपूर्वकम् । लेपनं गोमयेनाथ विशालायां मनोरमम् ॥
कार्यस्तु मण्डपोरम्योरंभास्तम्भोपशोभितः । वितानमुपरिष्टात्तुपताकाध्वजराजितः
वक्तुश्चैवासनं दिव्यं सुखास्तरणसंयुतम् । रचितव्यं प्रयत्नेनप्राङ्मुखंवाप्युदङ्मुखम्
यथोचितानि कुर्वीत श्रोतॄणामासनानि च । नॄणां चैवाथनारीणां कथाश्रवणहेतवे
वाग्मीदांतश्च शास्त्रज्ञो देव्याराधनतत्परः । दयालुर्निस्पृहोदक्षोधीरोवक्तोत्तमोमतः
ब्रह्मण्यो देवताभक्तः कथारसपरायणः । उदारोऽलोलुपो नम्रः श्रोताहिंसादिवर्जितः
पाखण्डनिरतोलुब्धः स्त्रैणो धर्मध्वजस्तथा । निष्ठुरःक्रोधनो वक्ता देवीयज्ञेनशस्यते
संशयच्छेदनायैकः पण्डितश्च तथागुणः । श्रोतृबोधकृदव्यग्रः कार्य्योवक्तुस्सहायकृत्
मुहूर्तदिवसादर्वाग्वक्तृश्रोत्रादिभिर्जनैः । कर्तव्यं क्षौरकर्मादि ततो नियमकल्पनम्

अरुणोदयवेलायां स्नायाच्छौचंविधायच । 'सन्ध्यातर्पणकार्यञ्च नित्यंसंक्षेपतश्चरेत्
कथाश्रवणयोग्यत्वसिद्धये गाश्चदापयेत् । समस्तविघ्नहर्तारमादौ गणपतिं यजेत् ॥
कलशांश्चापिसंस्थाप्यपूजयेत्तत्रदिग्धवान् । बटुकं क्षेत्रपालञ्च योगिनीमातृकास्तथा
तुलसीं चापिसम्पूज्य ग्रहान्विष्णुञ्चशङ्करम् । नवाक्षरेण मनुना पूजयेज्जगदम्बिकाम्

सर्वोपचारैस्सम्पूज्य श्रीभागवतपुस्तकम् ।
श्रीदेव्यावाङ्मयीं मूर्तिं यथावच्छोभनाक्षरम् ॥ २६ ॥

कथाविघ्नोपशान्त्यर्थंवृणुयात्पञ्चवाडवान् । जाप्योनवार्णमन्त्रस्तैःपाठ्यस्सप्तसतीस्तवः
प्रदक्षिणनमस्कारान्कृत्वांतेस्तुतिमाचरेत् । कात्यायनि!महामाये!भवानि! भुवनेश्वरि!
संसारसागरेमग्नं मामुद्धर कृपामये !। ब्रह्मविष्णुशिवाराध्ये! प्रसीद जगदम्बिके ॥३२
मनोभिलषितं देवि! वरं देहि नमोऽस्तुते । इति सम्प्रार्थ्य शृणुयात्कथांनियतमानसः

वक्तारञ्चापि सम्पूज्य व्यासबुद्ध्या यतात्मवान् ।
माल्यालङ्कारवस्त्राद्यैस्संभूष्य प्रार्थयेच्च तम् ॥ ३४ ॥

सर्वशास्त्रेतिहासज्ञ! व्यासरूप! नमोऽस्तुते । कथाचन्द्रोदयेनान्तस्तमस्तोमं निराकुरु
तदग्रे तुनवाह्नान्तंकर्त्तव्यानियमास्तदा । विप्रादीनुपवेश्यादौ सम्पूज्योपविशेत्स्वयम्
श्रोतव्यंसावधानेन चतुर्वर्गफलाप्तये । गृहपुत्रकलत्राप्तधनचिन्तामपास्य च ॥३७॥
सूर्योदयं समारभ्य किञ्चित्सूर्येऽवशेषिते । मुहूर्त्तमात्रे विश्रम्य मध्याह्ने वाचयेत्सुधीः
मलमूत्रजयायैषां लघु भोजनमिष्यते । हविष्यान्नं वरं भोज्यं सकृदेव कथार्थिना ॥
अथवास्यात्फलाहारीपयोभुग्वाघृताशनः । यथास्यान्नकथाविघ्नस्तथाकार्यंविचक्षणैः
कथाश्रवणनिष्ठानांवक्ष्यामिनियमं द्विजाः । ब्रह्मविष्णुमहेशानां मध्ये ये भेददर्शिनः ॥
देवीभक्तिविहीनायेपाखण्डाहिंसकाःखलाः । विप्रद्रुहोनास्तिकायेनतेयोग्याःकथाश्रवे
ब्रह्मस्वहरणे लुब्धाः परदारधनेषु च । देवस्वहरणे तेषां नाऽधिकारः कथाश्रवे ॥४३
ब्रह्मचारीचभूशायीसत्यवक्ताजितेन्द्रियः । कथासमाप्तौभुञ्जीतपत्रावल्यांयतात्मवान्
वृन्ताकञ्चकलिन्दञ्च तैलञ्च द्विदलं मधु । दग्धमन्नंपर्युषितं भावदुष्टं त्यजेद्व्रती ॥
आमिषञ्च मसूरान्नमुदक्यादृष्टमेव च । रसोनं मूलकं हिंगुं पलाण्डुं गृञ्जनं तथा ॥

कूष्माण्डं नलिकाशाकं न भुञ्जीत कथाव्रती । कामंक्रोधंमदंलोभंदम्भंमानञ्च वर्जयेत्
विप्रध्रुवपतितव्रात्यश्वपाकयवनान्त्यजैः । उदक्यया वेदबाह्यैर्न वदेद्यः कथाव्रती ॥
वेदगोगुरुविप्राणां स्त्रीराज्ञां महतां तथा । देवानां देवभक्तानां न निन्दां शृणुयादपि
विनयंचार्जवं शौचं दयाञ्च मितभाषणम् । उदारं मानसञ्चैव कुर्याद्यस्तु कथाव्रती ॥

श्वित्री कुष्ठी क्षयी रुग्णो भाग्यहीनश्च पापकृत् ।
दरिद्रश्चानपत्यश्च भक्त्येमां शृणुयात्कथाम् ॥ ५१ ॥
वन्ध्या वा काकवन्ध्या वा दुर्भगा वा मृतार्भका ।
पतद्गर्भांगना या च ताभिः श्राव्या तथा कथा ॥ ५२ ॥

धर्मार्थकाममोक्षांश्च यो वाञ्छति विनाश्रमम् । भगवत्याभागवतंश्रोतव्यं तेन यत्नतः
कथादिनानि चैतानि नवयज्ञैः समानि हि । तेषु दत्तं हुतं जप्तमनन्तफलदं भवेत् ॥
एवं व्रतं नवाहन्तु कृत्वोद्यापनमाचरेत् । महाष्टमीव्रतं यद्वत्तथा कार्यं फलेप्सुभिः ॥
निष्कामाःश्रवणेनैव पूतामुक्तिंव्रजन्ति हि । भोगमोक्षप्रदा नृणां यतो भगवती परा॥
पुस्तकस्यचवक्तुश्चपूजाकार्या तु नित्यशः । वक्त्रादत्तं प्रसादं तु गृह्णीयाद्भक्तिपूर्वकम्
कुमारीःपूजयेन्नित्यंभोजयेत्प्रार्थयेच्च यः । सुवासिनीश्च विप्रांश्च तस्यसिद्धिर्नसंशयः
गायत्र्यानामसाहस्रं समाप्तावथवापठेत् । विष्णोर्नामसहस्रञ्च सर्वदोषोपशान्तये ॥

यस्य स्मृत्या च नामोक्त्या तपोयज्ञक्रियादिषु ।
न्यूनं सम्पूर्णतां याति तस्माद्विष्णुञ्च कीर्तयेत् ॥ ६० ॥

देव्याःसप्तशतीमन्त्रैः समाप्तौ होममाचरेत् । देवीमाहात्म्यमूलेननवार्णमनुनाऽथवा
गायत्र्या त्वथवाहोमः पायसेन ससर्पिषा । यतोभागवतं त्वेतद्गायत्रीमयमीरितम् ॥
वाचकंतोषयेत्सम्यग्वस्त्रभूषाधनादिभिः । प्रसन्ने वाचके सर्वाः प्रसन्नास्तस्य देवताः

ब्राह्मणान्भोजयेद्भक्त्या दक्षिणाभिश्चतोषयेत् ।
पृथिव्यां देवरूपास्ते तुष्टेष्वेष्वीप्सितं फलम् ॥ ६४ ॥
सुवासिनीः कुमारीश्च देवीभक्त्या च भोजयेत् ।
ताभ्योऽपि दक्षिणान्दत्त्वा प्रार्थयेत्सिद्धिमात्मनः ॥६५ ॥

दद्याद्दानानिचान्यानिसुवर्णङ्गाःपयस्विनीः । हयानिमान्मेदिनीञ्चतस्यस्यादक्षयंफलम्
देवीभागवतञ्चैतल्लिखितं शोभनाक्षरम् । हेमसिंहासने स्थाप्य पट्टवस्त्रेण वेष्टितम् ॥
अष्टम्यांवानवम्याञ्चवाचकायार्चितायच । दद्यात्सभोगान्भुक्त्वेहदुर्लभंमोक्षमाप्नुयात्
दरिद्रो दुर्बलोबालस्तरुणोजरठोऽपिवा । पुराणवेत्तावन्द्यःस्यात्पूज्यो मान्यश्चसर्वदा
सन्ति लोकस्य बहवो गुरवो गुणजन्मतः । सर्वेषामपि तेषां च पुराणज्ञः परो गुरुः
पौराणिकोब्राह्मणस्तुव्यासासनसमाश्रितः । असमाप्तेप्रसंगेतु नमस्कुर्यान्नकस्यचित्

पौराणिकीं कथां दिव्यां येऽपि शृण्वन्त्यभक्तितः ।
तेषां पुण्यफलं नास्ति दुःखदारिद्र्यभागिनाम् ॥ ७२ ॥

असम्पूज्यपुराणन्तुताम्बूलकुसुमादिभिः । येशृण्वन्तिकथां देव्यास्तेदरिद्राभवन्तिहि
कीर्त्यमानांकथांत्यक्त्वायेव्रजन्त्यन्यतोनराः ।भोगान्तरेप्रणश्यन्तितेषांदाराश्चसम्पदः
येचतुङ्गासनारूढाःकथांशृण्वन्तिदाम्भिकाः । तेवायसाभवन्त्यत्रभुक्त्वानिरययातनाः
येचाढ्यासनसंस्थाश्चयेवीरासनसंस्थिताः । शृण्वन्तिचकथांदिव्यांतेस्युरर्जुनशाखिनः
कथायांकीर्त्यमानायां ये वदन्तिदुरुत्तरम् । रासभास्तेभवन्तीहकृकलासास्ततः परम्

निन्दन्ति ये पुराणज्ञान् कथाम्वा पापहारिणीम् ।
ते तु जन्मशतं दुष्टाः शुनकाः स्युर्न संशयः ॥ ७८ ॥

ये शृण्वंति कथां वक्तुःसमानासनसंस्थिताः । गुरुतल्पसमंपापं लभन्ते नरकालयाः
ये चाप्रणम्यशृण्वंतितेभवन्तिविषद्रुमाः । शयाना येऽपि शृण्वन्ति भवन्त्यजगराह्वयः
ये कदाचन पौराणीं नशृण्वन्ति कथांनराः । ते घोरं नरकं भुक्त्वाभवन्तिवनसूकराः
ये कथां नाऽनुमोदन्ते विघ्नंकुर्वन्तियेशठाः । कोट्यब्दंनिरयंभुक्त्वाभवंतिग्रामसूकराः
आसनं भाजनं द्रव्यं फलंवस्त्राणि कम्बलम् । पुराणज्ञाय यच्छन्तितेव्रजन्तिहरेःपदम्
पुराणपुस्तकस्यापि ये पटं वसनं नवम् । प्रयच्छन्ति शुभं सूत्रं ते नरास्सुखभागिनः
पुराणानांतु सर्वेषांश्रवणाद्यत्फलं लभेत् । तस्माच्छतगुणं पुण्यं देवीभागवताल्लभेत्
यथासरित्सुप्रवरा गङ्गादेवेषु शङ्करः । काव्ये रामायणं यद्वज्ज्योतिष्मत्सु यथारविः
आह्लादकानां चन्द्रश्च धनानांच यथा यशः । क्षमावतांयथाभूमिर्गाम्भीर्ये सागरोयथा

मंत्राणां चैव सावित्री पापनाशे हरिस्मृतिः ।
अष्टादशपुराणानां देवीभागवतं तथा ॥ ८८ ॥
येनकेनाप्युपायेन नवकृत्वः शृणोति चेत् । न शक्यं तत्फलंवक्तुंजीवन्मुक्तस्सएवहि॥
राजशत्रुभये प्राप्ते महामारीभये तथा । दुर्भिक्षे राष्ट्रभंगे च तच्छांत्यैशृणुयादिदम्
भूतप्रेतविनाशाय राज्यलाभाय शत्रुतः । पुत्रलाभाय शृणुयाद्देवीभागवतं द्विजाः ॥
श्रीमद्भागवतं यस्तु पठेद्वा शृणुयादपि । श्लोकार्द्धं श्लोकपादंवास यातिपरमांगतिम्
भगवत्या स्वयंदेव्या श्लोकार्द्धेनप्रकाशितम् । शिष्यप्रशिष्यद्वारेण तदेवविपुलीकृतम्
न गाय्त्र्याः परो धर्मो न गायत्र्याः परन्तपः ।
न गायत्र्याः समो देवो न गायत्र्याः परो मनुः ॥ ९४ ॥
गातारंत्रायतेयस्माद्गायत्री तेन सोच्यते । साऽत्र भागवते देवी स रहस्या प्रतिष्ठिता
अतोभागवतस्यास्यदेव्याःप्रीतिकरस्यच । महांत्यपिपुराणानिकलांनार्हन्तिषोडशीम्
श्रीमद्भागवतं पुराणममलं यद्ब्राह्मणानां धनं
धर्मो धर्मसुतेन यत्र गदितो नारायणेनाऽमलः ।
गायत्र्याश्च रहस्यमत्र च मणिद्वीपश्च संवर्णितः
श्रीदेव्या हिमभूभृते भगवती गीता च गीता स्वयम् ॥ ९७ ॥
तस्मान्नास्य पुराणस्यलोकेऽन्यत्सदृशम्परम् । अतस्सदैवसंसेव्यं देवीभागवतंद्विजाः
यस्या. प्रभावमखिलं न हि वेद धाता नो वा हरिर्न गिरिशो नहिचाप्यनन्तः
अंशांशका अपि च ते किमुताऽन्यदेवास्तस्यै नमोऽस्तु सततं जगदम्बिकायै
यत्पादपङ्कजरजः समवाप्य विश्वं ब्रह्मा सृजत्यनुदिनं च बिभर्ति विष्णुः ।
रुद्रश्च संहरति नेतरथा समर्थास्तस्यै नमोऽस्तु सततं जगदम्बिकायै ॥
सुधाकूपारान्तस्त्रिदशतरुवाटीविलसिते
मणिद्वीपे चिन्तामणिमयगृहे चित्ररुचिरे ।
विराजन्तीमम्बां परशिवहृदि स्मेरवदनां
नरोध्यात्वा भोगं भजति खलु मोक्षं च लभते ॥ १०१ ॥

ब्रह्मेशाच्युतशक्राद्यैर्महर्षिभिरुपासिता । जगतां श्रेयसे साऽस्तु मणिद्वीपाधिदेवता ॥

इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे देवीभागवतमाहात्म्ये देवीभागवतश्रवण-
विधिवर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

समाप्तमिदं स्कान्दीयं माहात्म्यम्

वेदांगाग्निकुशैलशैलशिखिनां मूले तु संवत्सरे
राधे मासि च मेचके हरितिथौ सतार्चिषो वासरे ।
माहात्म्यं जगदम्बिकांघ्रियुगलं नत्वाऽम्बिकाप्रीतये
पूर्ति रामपदेन नीतममलं स्कान्दीयमेतच्छुभम् ॥ १ ॥

श्रीभगवती मणिद्वीपाधिदेवता जगदम्बिका विजयते

॥ शुभमस्तु ॥

--—०*०——

* श्रीगणेशायनमः *

श्रीमन्महामुनिवेदव्यासविरचितम्

देवीभागवतपुराणम्

प्रथमम् स्कन्धम्

प्रथमोऽध्यायः

श्रीदेवीभागवतस्य महापुराणत्वादिसिद्धान्तनिर्णयः

ग्रन्थारम्भमङ्गलवर्णनपूर्वकर्षीणां पुराणविषयःप्रश्नः

ॐ सर्वचैतन्यरूपां तामाद्यां विद्यां च धीमहि। बुद्धिं या नः प्रचोदयात् ॥ १ ॥

शौनक उवाच

सूत सूत महाभाग धन्योऽसिपुरुषर्षभ। यदधीतास्त्वया सम्यकपुराणसंहिताःशुभाः
अष्टादश पुराणानि कृष्णेन मुनिनाऽनघ। कथितानि सुदिव्यानिपठितानित्वयाऽनघ
पञ्चलक्षणयुक्तानिसरहस्यानिमानद। त्वयाज्ञातानिसर्वाणि व्यासात्सत्यवतीसुतात्
अस्माकं पुण्ययोगेन प्राप्तस्त्वंक्षेत्रमुत्तमम्। दिव्यंविश्वसनंपुण्यंकलिदोषविवर्जितम्

समाजोऽयं मुनीनां हि श्रोतुकामोऽस्ति पुण्यदाम्।

पुराणसंहितां सूत ! ब्रूहि त्वं नः समाहितः ॥ ६ ॥

दीर्घायुर्भव सर्वज्ञ ! तापत्रयविवर्जितः। कथयाद्य महाभाग पुराणं ब्रह्मसंमितम् ॥
श्रोत्रेन्द्रिययुताः सूत नराःस्वादविचक्षणाः। नशृण्वंतिपुराणानिवंचिताविधिनाहिते

यथा जिह्वेन्द्रियाह्लादःषड्रसैःप्रतिपद्यते । तथाश्रोत्रेन्द्रियाह्लादोवचोभिःसुधियांस्मृतः
अश्रोत्राःफणिनंकामंमुह्यंतिहिनभोगुणैः । सकर्णायेन श्रृण्वंति तेऽप्यकर्णाःकथंन च
अतः सर्वेद्विजाःसौम्य!श्रोतुकामाःसमाहिताः । वर्तन्तेनैमिषारण्येक्षेत्रेकलिभयार्दिताः
येनकेनाप्युपायेन कालातिवाहनं स्मृतम् । व्यसनैरिह मूर्खाणां बुधानांशास्त्रचिन्तनैः

शास्त्राण्यपि विचित्राणि जल्पवादयुयानि च ।
(त्रिविधानि पुराणानि शास्त्राणि विविधानि च ।
वितंडाच्छलयुक्तानि गर्वामर्षकराणि च ॥ १ ॥)
नानार्थवादयुक्तानि हेतुमंति बृहंति च ॥ १३ ॥

सात्त्विकं तत्र वेदान्तंमीमांसाराजसंमतम् । तामसंचन्यायशास्त्रंहेतुवादाभियंत्रितम्
तथैवच पुराणानि त्रिगुणानिकथानकैः । कथितानि त्वया सौम्य पञ्चलक्षणवन्तिच
तत्र भागवतं पुण्यं पञ्चमं वेदसम्मितम् । कथितं यत्त्वया पूर्वं सर्वलक्षणसंयुतम्
उद्देशमात्रेण तदा कीर्तितं परमाद्भुतम् । मुक्तिप्रदं मुमुक्षूणां कामदं धर्मदं तथा ॥
विस्तरेणतदाख्याहिपुराणोत्तममादरात् । श्रोतुकामा द्विजाःसर्वे दिव्यंभागवतंशुभम्

त्वं तु जानासि धर्मज्ञ ! पौराणीं संहितां किल ।
कृष्णोक्तां गुरुभक्तत्वात्सम्यक्सत्त्वगुणाश्रयः ॥ १६ ॥

श्रुतान्यन्यानिसर्वज्ञत्वन्मुखाब्धिःसृतानिच । नैवतृप्तिंव्रजामोऽद्यसुधापानेऽमरायथा ॥
धिक् सुधां पिबतां सूत मुक्तिर्नैव कदाचन । पिबन्भागवतं सद्योनरोमुच्येतसंकटात्
सुधापाननिमित्तं यत्कृता यज्ञा सहस्रशः । न शान्तिमधिगच्छामःसूतसर्वात्मनावयम्
मखानां हि फलंस्वर्गःस्वर्गात्प्रच्यवनं पुनः । एवं संसारचक्रेस्मिन्भ्रमणंचनिरन्तरम्
विना ज्ञानेन सर्वज्ञ नैवमुक्तिः कदाचन । भ्रमतां कालचक्रेऽत्र नराणां त्रिगुणात्मके
अतः सर्वरसोपेतं पुण्यं भागवतं वद । पावनं मुक्तिदं गुह्यं मुमुक्षूणां सदा प्रियम् ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे शौनक-
प्रश्नो नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः

भगवतीस्तुतिपूर्वकग्रन्थसंख्याविषयवर्णनम्

श्रीसूत उवाच

धन्योऽहमतिभाग्योहं पावितोऽहं महात्मभिः । यत्पृष्टंसुमहत्पुण्यंपुराणंवेदविश्रुतम्
तदहं संप्रवक्ष्यामि सर्वश्रुत्यर्थसंमतम् । रहस्यं सर्वशास्त्राणामागमानामनुत्तमम् ॥

नत्वा तत्पदपंकजं सुललितं मुक्तिप्रदं योगिनां
ब्रह्माद्यैरपि सेवितं स्तुतिपरैर्ध्येयं मुनीन्द्रैः सदा ।
वक्ष्याम्यद्य सविस्तरं बहुरसं श्रीमत्पुराणोत्तमं
भक्त्या सर्वरसालयं भगवतीनाम्ना प्रसिद्धं द्विजाः ॥ ३ ॥
या विद्येत्यभिधीयते श्रुतिपथे शक्तिः सदाऽऽद्या परा
सर्वज्ञा भवबन्धछित्तिनिपुणाः सर्वाशये संस्थिता ।
दुर्ज्ञेया सुदुरात्मभिश्च मुनिभिर्ध्यानास्पदम्प्रापिता
प्रत्यक्षा भवतीह सा भगवती सिद्धिप्रदा स्यात्सदा ॥ ४ ॥
सृष्ट्वाऽखिलं जगदिदं सदसत्स्वरूपं शक्त्या स्वया त्रिगुणया परिपाति विश्वम् ।
संहृत्य कल्पसमये रमते तथैका तां सर्वविश्वजननीं मनसा स्मरामि ॥ ५ ॥
ब्रह्मा सृजत्यखिलमेतदिति प्रसिद्धं पौराणिकैश्च कथितं खलु वेदविद्भिः ।
विष्णोस्तु नाभिकमले किल तस्य जन्म तैरुक्तमेव सृजते नहि स स्वतन्त्रः ॥ ६ ॥
विष्णुस्तु शेषशयने स्वपितीतिकाले तन्नाभिपद्ममुकुले खलु तस्य जन्म ।
आधारतां किल गतोऽत्र सहस्रमौलिः संबोध्यतां स भगवान् हि कथं मुरारिः॥७॥
एकार्णवस्य सलिलं रसरूपमेव पात्रं विना नहि रसस्थितिरस्ति कश्चित् ।
या सर्वभूतविषये किल शक्तिरूपा तां सर्वभूतजननीं शरणं गतोऽस्मि ॥ ८ ॥
योगनिद्रामीलिताक्षं विष्णुं दृष्ट्वांऽबुजे स्थितः । अजस्तुष्टाव यां देवीं तामहं शरणंव्रजे

तां ध्यात्वा सगुणां मायां मुक्तिदां निर्गुणां तथा ।
वक्ष्ये पुराणमखिलं शृण्वन्तु मुनयस्त्विह ॥ १० ॥

पुराणमुत्तमं पुण्यं श्रीमद्भागवताभिधम् । अष्टादश सहस्राणिश्लोकास्तत्र तुसंस्कृताः
स्कन्धाद्वादशचैवाऽत्रकृष्णेनविहिताःशुभाः । त्रिशतंपूर्णमध्यायाअष्टादशयुताःस्मृताः
विंशतिः प्रथमे तत्र द्वितीये द्वादशैव तु । त्रिंशच्चैव तृतीये तु चतुर्थे पञ्चविंशतिः ॥
पञ्चत्रिंशत्तथाऽध्यायाः पञ्चमे परिकीर्तिताः । एकत्रिंशत्तथा षष्ठे चत्वारिंशच्चसप्तमे
अष्टमे तत्त्वसंख्याश्च पंचाशन्नवमे तथा । त्रयोदशतु संप्रोक्ता दशमेमुनिना किल ॥
तथा चैकादशस्कन्धे चतुर्विंशतिरीरिताः । चतुर्दशैव चाऽध्यायाद्वादशे मुनिसत्तमाः

एवं संख्या समाख्याता पुराणेऽस्मिन् महात्मना ।
अष्टादशसहस्रीया संख्या च परिकीर्तिता ॥ १७ ॥

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च । वंशानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम् ॥

निर्गुणा या सदा नित्या व्यापिकाऽविकृता शिवा ।
योगगम्याऽखिलाधारा तुरीया या च संस्थिता ॥ १९ ॥
तस्यास्तु सात्त्विकी शक्ती राजसी तामसी तथा ।
महालक्ष्मीः सरस्वती महाकालीति ताः स्त्रियः ॥ २० ॥

तासां तिसृणांशक्तीनांदेहांगीकारलक्षणः । सृष्ट्यर्थंचसमाख्यातःसर्गशास्त्रविशारदैः
हरिद्रुहिणरुद्राणांसमुत्पत्तिस्ततःस्मृता । पालनोत्पत्तिनाशार्थं प्रतिसर्गस्स्मृतोहिसः
सोमसूर्योद्भवानां च राज्ञां वंशप्रकीर्तनम् । हिरण्यकशिप्वादीनांवंशास्तेपरिकीर्तिताः
स्वायम्भुवमुखानांच मनूनां परिवर्णनम् । कालसंख्यातथा तेषां तत्तन्मन्वन्तराणिच
तेषां वंशानुकथनं वंशानुचरितं स्मृतम् । पञ्चलक्षणयुक्तानि भवन्ति मुनिसत्तमाः ॥
सपादलक्षं च तथा भारतं मुनिना कृतम् । इतिहास इति प्रोक्तं पञ्चमं वेदसम्मितम्

शौनक उवाच

कानि तानि पुराणानि ब्रूहिसूत सविस्तरम् । कतिसंख्यानिसर्वज्ञश्रोतुकामावयंत्विह
कलिकालविभीताः स्मो नैमिषारण्यवासिनः ।

ब्रह्मणाऽत्र समादिष्टाश्चक्रं दत्त्वा मनोमयम् ॥ २८ ॥
कथितंतेननः सर्वान्गच्छंत्वेतस्यपृष्ठतः । नेमिः संशीर्यते यत्र स देशः पावनः स्मृतः
कलेस्तत्र प्रवेशोन कदाचित्संभविष्यति । तावत्तिष्ठंतु तत्रैव यावत्सत्युगं पुनः
तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य गृहीत्वा तत्कथानकम् । चालयन्निर्गतस्तूर्णं सर्वदेशदिदृक्षया
प्रेत्याऽत्र चालयंश्चक्रं नेमिःशीर्णोऽत्रपश्यतः । तेनेदं नैमिषं प्रोक्तं क्षेत्रे परमपावनम्
कलिप्रवेशो नैवात्र तस्मात्स्थानंकृतम्मया । मुनिभिःसिद्धसंघैश्चकलिभीतैर्महात्मभिः
पशुहीनाः कृतायज्ञाःपुरोडाशादिभिः किल । कालातिवाहनंकार्यं यावत्सत्ययुगागमः
भाग्ययोगेनसंप्राप्तः सूत! त्वं चाऽत्रसर्वथा । कथयाऽद्यपुणाणं हिपावनं ब्रह्मसंमितम्
सूत! शुश्रूषवः सर्वे वक्ता त्वं मतिमानथ । निर्व्यापारा वयं नूनमेकचित्तास्तथैव च
त्वं सूत! भव दीर्घायुस्तापत्रयविवर्जितः । कथयाद्य पुराणंहि पुण्यं भागवतं शिवम्
यत्रधर्मार्थकामानां वर्णनं विधिपूर्वकम् । विद्यांप्राप्यतया मोक्षःकथितोमुनिनाकिल
द्वैपायनेन मुनिना कथितं यच्च पावनम् । न तृप्यामो वयं सूत कथांश्रुत्वामनोरमाम्
सकलगुणगणानामेकपात्रं पवित्रमखिलभुवनमातुर्नाट्यवद्यद्विचित्रम् ।
निखिलमलगणानां नाशकृत्कामकन्दं प्रकटय भगवत्या नामयुक्तं पुराणम्॥४०॥
इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यांसंहितायां प्रथमस्कन्धे
ग्रन्थसंख्याविषयवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः

असंख्याकपुराणाख्या तत्तत्युगीयव्यासानुकथनञ्च

सूत उवाच

शृण्वंतुसंप्रवक्ष्यामिपुराणानिमुनीश्वराः । यथाश्रुतानितत्त्वेनव्यासात्सत्यवतीसुतात्
मद्वयं भद्वयं चैव ब्रत्रयं वचतुष्टयम् । अनापलिंगकूस्कानि पुराणानि पृथक्पृथक् ॥

चतुर्दशसहस्रं च मात्स्यमाद्यं प्रकीर्तितम् । तथाग्रहसहस्रं तु मार्कण्डेयं महाद्भुतम् ॥
चतुर्दशसहस्राणि तथा पञ्चशतानि च । भविष्यं परिसंख्यातं मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः
अष्टादशसहस्रं वै पुण्यं भागवतं किल । तथा चाऽयुतसंख्याकं पुराणं ब्राह्मसंज्ञकम्
द्वादशैव सहस्राणि ब्रह्माण्डं च शताधिकम् । तथाऽष्टादशसाहस्रं ब्रह्मवैवर्तमेव च ॥
अयुतं वामनाख्यं च वायव्यं षट्शतानि च । चतुर्विंशतिसंख्यातःसहस्राणितुशौनक
त्रयोविंशतिसाहस्रं वैष्णवं परमाद्भुतम् । चतुर्विंशतिसाहस्रं वाराहं परमाद्भुतम् ॥
षोडशैव सहस्राणि पुराणं चाऽग्निसंज्ञिकम् । पञ्चविंशतिसाहस्रं नारदं परमं मतम्
पञ्चपञ्चाशत्सहस्रंपाद्माख्यं विपुलंमतम् । एकादशसहस्राणिर्लिंगाख्यंचाऽतिविस्तृतम्
एकोनविंशत्साहस्रं गारुडं हरिभाषितम् । सप्तदशसहस्रं च पुराणं कूर्मभाषितम् ॥

एकाशीतिसहस्राणि स्कन्दाख्यं परमाद्भुतम् ।
पुराणाख्या च संख्या च विस्तरेण मयाऽनघाः ॥ १२ ॥

तथैवोपपुराणानि शृण्वन्तु ऋषिसत्तमाः । सनत्कुमारं प्रथमं नारसिंहं ततः परम्
नारदीयं शिवं चैव दौर्वाससमनुत्तमम् । कापिलं मानवं चैव तथा चौशनसंस्मृतम्
वारुणंकालिकाख्यंचसांबंनंदिकृतं शुभम् । सौरंपाराशरंप्रोक्तमादित्यंचातिविस्तरम्
माहेश्वरं भागवतं वाशिष्ठंच सविस्तरम् । एतान्युपपुराणानिकथितानिमहात्मभिः
अष्टादश पुराणानि कृत्वा सत्यवतीसुतः । भारताख्यानमतुलं चक्रेतदुपबृंहितम् ॥
मन्वन्तरेषु सर्वेषु द्वापरे द्वापरे युगे । प्रादुष्करोति धर्मार्थी पुराणानि यथाविधि
द्वापरे द्वापरे विष्णुर्व्यासरूपेण सर्वदा । वेदमेकं स बहुधा कुरुते हितकाम्यया ॥

अल्पायुषोऽल्पबुद्धींश्च विप्राञ्ज्ञात्वा कलावथ ।
पुराणसंहितां पुण्यां कुरुतेऽसौ युगे युगे ॥ २० ॥

स्त्रीशूद्रद्विजबन्धूनां न वेदश्रवणं मतम् । तेषामेव हितार्थाय पुराणानि कृतानि च ॥
मन्वन्तरे सप्तमेऽत्र शुभे वैवस्वताभिधे । अष्टाविंशतिमे प्राप्ते द्वापरे मुनिसत्तमाः ॥
व्यासः सत्यवतीसूनुर्गुरुर्मे धर्मवित्तमः । एकोनत्रिंशत्संप्राप्तेद्रौणिर्व्यासोभविष्यति
अतीतास्तु तथा व्यासाः सप्तविंशतिरेव च । पुराणसंहितास्तैस्तु कथितास्तुयुगेयुगे

ऋषय ऊचुः

ब्रूहि सूत महाभाग व्यासाः पूर्वयुगोद्भवाः । वक्तारस्तु पुराणानां द्वापरे द्वापरेयुगे

सूत उवाच

द्वापरे प्रथमे व्यस्ताः स्वयंवेदाःस्वयंभुवा । प्रजापतिर्द्वितीये तु द्वापरे व्यासकार्यकृत्
तृतीयेचोशना व्यासश्चतुर्थे तु बृहस्पतिः । पञ्चमेसविताव्यासः षष्ठे मृत्युस्तदाऽपरे
मघवा सप्तमे प्राप्ते वसिष्ठस्त्वष्टमे स्मृतः सारस्वतस्तु नवमे त्रिधामा दशमे तथा ॥
एकादशेऽथ त्रिवृषो भरद्वाजस्ततः परम् । त्रयोदशे चाऽन्तरिक्षो धर्मश्चापि चतुर्दशे
त्रय्यारुणिः पञ्चदशे षोडशेतु धनञ्जयः । मेधातिथिः सप्तदशे व्रती ह्यष्टादशे तथा ॥
अत्रिरेकोनविंशेऽथ गौतमस्तु ततः परम् । उत्तमश्चैकविंशेऽथ हर्यात्मा परिकीर्तितः
वेनोवाजश्रवाश्चैवसोमोऽमुष्यायणस्तथा । तृणबिन्दुस्तथाव्यासोभार्गवस्तुततःपरम्
ततः शक्तिर्जातुकर्ण्यः कृष्णद्वैपायनस्ततः । अष्टाविंशतिसंख्येयं कथितायाः मयाश्रुता
कृष्णद्वैपायनात्प्रोक्तं पुराणञ्च मयाश्रुतम् । श्रीमद्भागवतं पुण्यं सर्वदुःखाघनाशनम्
कामदं मोक्षदञ्चैव वेदार्थपरिबृंहितम् । सर्वागमरसारामं मुमुक्षूणां सदा प्रियम् ॥

व्यासेन कृत्वाऽतिशुभं पुराणं शुकाय पुत्राय महात्मने यत् ।
वैराग्ययुक्ताय च पाठितं वै विज्ञाय चैवाऽरणिसम्भवाय ॥ ३६ ॥
श्रुतं मया तत्र तथा गृहीतं यथार्थवद्व्यासमुखान्मुनीन्द्राः ।
पुराणगुह्यं सकलं समेतं गुरोः प्रसादात्करुणानिधेश्च ॥ ३७ ॥
सुतेन पृष्टः सकलं जगाद द्वैपायनस्तत्र पुराणगुह्यम् ।
अयोनिजेनाऽद्भुतबुद्धिना वै श्रुतं मया तत्र महाप्रभावम् ॥ ३८ ॥
श्रीमद्भागवतामरांघ्रिपफलास्वादादरः सत्तमाः
संसारार्णवदुर्विगाह्यसलिलं सन्तर्तुकामः शुकः ।
नानाख्यानरसालयं श्रुतिपुटैः प्रेम्णाऽशृणोदद्भुतम्
तच्छ्रुत्वा न विमुच्यते कलिभयादेवं विधः कः क्षितौ ॥ ३९ ॥
पापीयानपि वेदधर्मरहितः स्वाचारहीनाशयो

व्याजेनाऽपि शृणोति यः परमिदं श्रीमत्पुराणोत्तमम् ।
भुक्त्वा भोगकलापमत्र विपुलं देहावसानेऽचलम्
योगिप्राप्यमवाप्नुयाद्भगवतीनामाङ्कितं सुन्दरम् ॥ ४० ॥
या निर्गुणा हरिहरादिभिरप्यलभ्या विद्या सताम्प्रियतमाऽथ समाधिगम्या ।
सा तस्य चित्तकुहरे प्रकरोतिभावं यः संशृणोति सततं तु सतीपुराणम् ॥
सम्प्राप्य मानुषभवं सकलाङ्गयुक्तं पोतम्भवार्णवजलोत्तरणाय कामम् ।
सम्प्राप्यवाचकमहोन शृणोति मूढोऽसौ वञ्चितोऽत्र विधिना सुखदंपुराणम्
यः प्राप्य कर्णयुगलं पटुमानुषत्वे रागी शृणोति सततं च परापवादान् ।
सर्वार्थदं रसनिधिं विमलंपुराणं नष्टः कुतो न शृणुते भुवि मन्दबुद्धिः ॥४३॥
इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यांसंहितायां प्रथमस्कन्धे
पुराणवर्णनपूर्वकतत्तद्युगीयव्यासवर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः

देवीसर्वोत्तमेतिकथनम्प्रसङ्गतःशुकजन्मकथनञ्च

ऋषय ऊचुः

सौम्यव्यासस्यभार्यायांकस्यां जातःसुतःशुकः । कथंवाकीदृशोयेन पठितेयंसुसंहिता
अयोनिजस्त्वयाप्रोक्तस्तथाचारणिजः शुकः । सन्देहोऽस्तिमहांस्तत्रकथयाद्यमहामते
गर्भयोगी श्रुतः पूर्वं शुको नाम महातपाः । कथं च पठितं तेन पुराणं बहुविस्तरम् ॥

सूत उवाच

पुरा सरस्वतीतीरे व्यासः सत्यवतीसुतः । आश्रमे कलविङ्कौ तु दृष्ट्वा विस्मयमागतः
जातमात्रंशिशुंनीडेमुक्तमण्डान्मनोहरम् । ताम्रास्यंशुभसर्वाङ्गं पिच्छांकुरविवर्जितम्
तौ तु भक्ष्यार्थमत्यंतं रतौ श्रमपरायणौ । शिशोश्चंचुपुटे भक्ष्यं क्षिपंतौ च पुनःपुनः

अङ्केवांगानि बालस्य घर्षयन्तौ मुदान्वितौ ।
चुम्बन्तौ च मुखं प्रेम्णा कलविंकौ शिशोः शुभम् ॥ ७ ॥
वीक्ष्यप्रेमाद्भुतं तत्र बालेचटकयोस्तदा । व्यासश्चिन्तातुरःकामं मनसा समचिन्तयत्
तिरश्चामपियत्प्रेमपुत्रेसमभिलक्ष्यते । किं चित्रं यन्मनुष्याणां सेवाफलमभीप्सताम्
किमेतौ चटकौ चाऽस्य विवाहं सुखसाधनम् ।
विरच्य सुखिनौ स्यातां दृष्ट्वा वध्वा मुखं शुभम् ॥ १० ॥
अथवा वार्धके प्राप्ते परिचर्यां करिष्यति । पुत्रः परमधर्मिष्ठः पुण्यार्थं कलविंकयोः ॥
अर्जयित्वाऽथवा द्रव्यंपितरौतर्पयिष्यति । अथवा प्रेतकार्याणि करिष्यतियथाविधि
अथवार्किगयाश्राद्धंगत्वासंचितरिष्यति । नीलोत्सर्गञ्च विधिवत्प्रकरिष्यतिबालकः
संसारेऽत्रसमाख्यातंसुखानामुत्तमंसुखम् । पुत्रगात्रपरिष्वङ्गो लालनञ्च विशेषतः ॥
अपुत्रस्य गतिर्नास्ति स्वर्गोनैवच नैवच । पुत्रादन्यतरन्नास्ति परलोकस्यसाधनम् ॥
मन्वादिभिश्चमुनिभिर्धर्मशास्त्रेषुभाषितम् । पुत्रवान्स्वर्गमाप्नोति अपुत्रस्तु कथञ्चन
दृश्यतेऽत्र समक्षं तन्नानुमानेन साध्यते । पुत्रवान्मुच्यते पापादाप्तवाक्यञ्च शाश्वतम्
आतुरोमृत्युकालेऽपिभूमिशय्यागतोनरः । करोतिमनसा चिन्तां दुःखितःपुत्रवर्जितः
धनंमेविपुलंगेहेपात्राणिविविधानिच । मन्दिरंसुन्दरं चैतत्कोऽस्य स्वामीभविष्यति
मृत्युकाले मनस्तस्य दुःखेन भ्रमतेयतः । अतोऽस्य दुर्गतिर्नूनं भ्रान्तचित्तस्य सर्वथा
एवं बहुविधां चिन्तां कृत्वा सत्यवतीसुतः ।
निश्वस्य बहुधा चोष्णं विमनाः सम्बभूव ह ॥ २१ ॥
विचार्यमनसाऽत्यर्थं कृत्वामनसिनिश्चयम् । जगामच तपस्तप्तुं मेरुपर्वतसंनिधौ ॥
मनसाचिन्तयामास कं देवं समुपास्महे । वरप्रदाननिपुणं वाञ्छितार्थप्रदं तथा ॥२३
विष्णुं रुद्रं सुरेन्द्रं वा ब्रह्माणं वा दिवाकरम् । गणेशंकार्तिकेयंच पावकं वरुणं तथा
एवं चिन्तयतस्तस्य नारदो मुनिसत्तमः । यदृच्छयासमायातोर्वीणापाणिःसमाहितः
तं दृष्ट्वापरमप्रीतोव्यासःसत्यवतीसुतः । कृत्वाऽर्घ्यमासनं दत्त्वा पप्रच्छकुशलंमुनिम्
श्रुत्वाऽथकुशलप्रश्नं पप्रच्छमुनिसत्तमः । चिन्तातुरोऽसि कस्मात्त्वं द्वैपायनवदस्वमे

व्यास उवाच

अपुत्रस्य गतिर्नास्ति न सुखं मानसेततः । तदर्थं दुःखितश्चाहं चिन्तयामि पुनःपुनः
तपसातोषयाम्यद्य कंदेवं वाञ्छितार्थदम् । इति चिन्तातुरोऽस्म्यद्यत्वामहंशरणङ्गतः
सर्वज्ञोऽसिमहर्षे त्वं कथयाऽऽशुकृपानिधे । कं देवं शरणं यामि योमे पुत्रंप्रदास्यति

सूत उवाच

इति व्यासेन पृष्टस्तु नारदो वेदवित्मुनिः । उवाच परयाप्रीत्या कृष्णम्प्रतिमहामनाः

नारद उवाच

पाराशर्य! महाभाग ! यत्त्वं पृच्छसि मामिह । तमेवार्थम्पुरा पृष्टः पित्रा मे मधुसूदनः
ध्यानस्थश्च हरिं दृष्ट्वा पितामे विस्मयङ्गतः । पर्यपृच्छत देवेशं श्रीनाथञ्जगतःपतिम् ॥
कौस्तुभोद्भासितं दिव्यंशङ्खचक्रगदाधरम् । पीताम्बरंचतुर्बाहुंश्रीवत्साङ्कितवक्षसम्
कारणं सर्वलोकानां देवदेवं जगद्गुरुम् । वासुदेवं जगन्नाथं तप्यमानं महत्तपः॥३५॥

ब्रह्मोवाच

देवदेव! जगन्नाथ! भूतभव्यभवत्प्रभो । तपश्चरसि कस्मात्त्वं किं ध्यायसि जनार्दन!॥
विस्मयोऽयंममात्यर्थंत्वंसर्वजगताम्प्रभुः । ध्यानयुक्तोऽसिदेवेश किं चचित्रमतःपरम्
त्वन्नाभिकमलाज्जातःकर्ताहमखिलस्यह । त्वत्तःकोऽप्यधिकोऽस्त्यत्रतंदेवंब्रूहिमापते

जानाम्यहं जगन्नाथ ! त्वमादिः सर्वकारणम् ।
कर्ता पालयिता हर्ता समर्थः सर्वकार्यकृत् ॥ ३६ ॥

इच्छया ते महाराज सृजाम्यहमिदंजगत् । हरःसंहरतेकाले सोऽपि ते वचने सदा ॥
सूर्योभ्रमतिचाकाशे वायुर्वाति शुभाशुभः । अग्निस्तपति पर्जन्यो वर्षतीश त्वदाज्ञया
त्वं तु ध्यायसि कं देवं संशयोऽयंमहान्मम । त्वत्तः परं न पश्यामि देवंवै भुवनत्रये
कृपांकृत्वावदस्वाद्यभक्तोऽस्मितवसुव्रत । महतांनैव गोप्यंहिप्रायःकिञ्चिदितिस्मृतिः
तच्छ्रुत्वावचनं तस्य हरिराह प्रजापतिम् । शृणुष्वैकमना ब्रह्मंस्त्वां ब्रवीमिमनोगतम्
यद्यपित्वांशिवंमांचस्थितिसृष्ट्यन्तकारणम् । तेजानन्तिजनास्सर्वेसदेवासुरमानुषाः
स्रष्टात्वं पालकश्चाहं हरः संहारकारकः । कृताः शक्त्येति संतर्कः क्रियतेवेदपारगैः

जगत्संजनने शक्तिस्त्वयितिष्ठतिराजसी । सात्त्विकीमयिरुद्रे च तामसीपरिकीर्तिता
तया विरहितस्त्वं न तत्कर्मकरणे प्रभुः । नाऽहं पालयितुं शक्तः संहर्तुंनाऽपि शङ्करः
तदधीना वयं सर्वे वर्तामः सततं विभो । प्रत्यक्षे च परोक्षे च दृष्टान्तं शृणु सुव्रत!॥
शेषे स्वपिमि पर्यङ्के परतन्त्रो न संशयः । तदधीनः सदोत्तिष्ठे काले कालवशं गतः
तपश्चरामि सततं तदधीनोऽस्म्यहंसदा । कदाचित्सह लक्ष्म्याचविहरामियथासुखम्
कदाचिद्दानवैः सार्द्धं संग्रामं प्रकरोम्यहम् । दारुणं देहदमनं सर्वलोकभयङ्करम् ॥५२
प्रत्यक्षं तव धर्मज्ञ तस्मिन्नेकार्णवे पुरा । पञ्चवर्षसहस्राणि बाहुयुद्धं मया कृतम् ॥५३
तौ कर्णमलजौ दुष्टौ दानवौ मदगर्वितौ । देव देव्याः प्रसादेन निहतौ मधुकैटभौ ॥
तदा त्वया न किं ज्ञातं कारणन्तु परात्परम् । शक्तिरूपं महाभागकिंपृच्छसिपुनःपुनः
यदिच्छापुरुषो भूत्वा विचरामि महार्णवे । कच्छपः कोलसिंहौच वामनश्च युगेयुगे
न कस्यापिप्रियोलोकेतिर्यग्योनिषुसम्भवः । नाऽभवंस्वेच्छयावामवराहादिषुयोनिषु

विहाय लक्ष्म्या सह संविहारं को याति मत्स्यादिषु हीनयोनिषु ।
शय्यां च मुक्त्वा गरुडासनस्थः करोति युद्धं विपुलं स्वतन्त्रः ॥ ५८ ॥
पुरा पुरस्तेऽज! शिरो मदीयं गतन्धनुर्ज्यास्खलनात्कथाऽपि ।
त्वया तदा वाजिशिरो गृहीत्वा संयोजितं शिल्पिवरेण भूयः ॥ ५९ ॥
हयाननोऽहं परिकीर्तितश्च प्रत्यक्षमेतत्तव लोककर्तः ।
विडम्बनेयं किल लोकमध्ये कथं भवेदात्मपरो यदि स्यात् ॥ ६० ॥

तस्मान्नाऽहं स्वतन्त्रोऽस्मि शक्त्यधीनोऽस्मि सर्वथा ।
तामेव शक्तिं सततं ध्यायामि च निरन्तरम् ॥ ६१ ॥
नाऽतः परतरं किञ्चिज्जानामि कमलोद्भव ! ।

नारद उवाच

इत्युक्तं विष्णुना तेन पद्मयोनेस्तु सन्निधौ ॥ ६२ ॥

तेन चाप्यहमुक्तोऽस्मि तथैव मुनिपुङ्गव !। तस्मात्त्वमपि कल्याण! पुरुषार्थसिद्धेतवे
असंशयं हृदम्भोजे भज देवीपदाम्बुजम् । सर्वं दास्यति सा देवी यद्यदिष्टं भवेत्तव॥

सूत उवाच

नारदेनैवमुक्तस्तु व्यासः सत्यवतीसुतः । देवीपादाब्जनिष्णातस्तपसे प्रययौ गिरौ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यांसंहितायां प्रथमस्कन्धे
देवी सर्वोत्तमेतिकथनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

पञ्चमोऽध्यायः

श्रीविष्णुचरित्रवर्णनम्

ऋषय ऊचुः

सूताऽस्माकं मनः कामं मग्नं संशयसागरे । यथोक्तं महदाश्चर्यं जगद्विस्मयकारकम्
यन्मूर्द्धा माधवस्यापि गतो देहात्पुनः परम् । हयग्रीवस्ततो जातः सर्वकर्ता जनार्दनः
वेदोऽपि स्तौति यं देवं देवाः सर्वेयदाश्रयाः । आदिदेवोजगन्नाथः सर्वकारणकारणः
तस्याऽपि वदनं छिन्नं दैवयोगात्कथं तदा । तत्सर्वंकथयाऽऽशुत्वंविस्तरेण महामते

सूत उवाच

शृण्वन्तु मुनयः सर्वे सावधानाः समन्ततः । चरितं देवदेवस्य विष्णोः परमतेजसः
कदाचिद्दा(द्वा)रुणंयुद्धं कृत्वा देवः सनातनः । दशवर्षसहस्राणि परिश्रान्तोजनार्दनः
समे देशे शुभे स्थाने कृत्वापद्मासनंविभुः । अवलम्ब्यधनुः सज्यंकण्ठदेशेधरास्थितम्
दत्त्वा भारं धनुष्कोट्यां निद्रामाप रमापतिः ।
श्रान्तत्वाद्दैवयोगाच्च जातस्तत्राऽतिनिद्रितः ॥ ८ ॥

तदा कालेन कियता देवाः सर्वे सवासवाः । ब्रह्मेशसहिताः सर्वे यज्ञं कर्तुं समुद्यताः
गताः सर्वेऽथ वैकुण्ठं द्रष्टुंदेवं जनार्दनम् । देवकार्यार्थसिद्ध्यर्थं मखानामधिपंप्रभुम्
अदृष्ट्वा तं तदा तत्र ज्ञानदृष्ट्याविलोक्यते । यत्रास्तेभगवान्विष्णुर्जग्मुस्तत्रतदासुराः
ददृशुस्ते तदेशानं योगनिद्रावशंगतम् । चिन्तेतनं विभुं विष्णुं तत्राऽऽसांचक्रिरेसुराः

स्थितेषु सर्वदेवेषु निद्रासुप्ते जगत्पतौ । चिन्तामापुः सुराः सर्वे ब्रह्मरुद्रपुरोगमाः ॥
तानुवाच ततःशक्रः किं कर्त्तव्यंसुरोत्तमाः । निद्राभङ्गःकथंकार्यश्चिन्तयन्तुसुरोत्तमाः
तमुवाच तदा शंभुर्निद्राभंगेऽस्ति दूषणम् । कार्यं चैव प्रकर्त्तव्यं यज्ञस्य सुरसत्तमाः
उत्पादिता तदावम्री ब्रह्मणापरमेष्ठिना । तया भक्षयितुं तत्र धनुषोऽग्रंधरास्थितम् ॥
भक्षितेऽग्रेतदाऽनिम्नंगमिष्यतिशरासनम् । तदानिद्राविमुक्तोऽसौ देवदेवोभविष्यति
देवकार्यं तदा सर्वं भविष्यति न संशयः । स वम्रीं सन्दिदेशाऽथदेवदेवः सनातनः ॥
तमुवाच तदा वम्री देवदेवस्य भाषतेः । निद्राभङ्गः कथं कार्यो देवस्य जगतां गुरोः
निद्राभङ्गः कथाच्छेदो दम्पत्योःप्रीतिभेदनम् । शिशुमातृविभेदश्चब्रह्महत्यासमंस्मृतम्
तत्कथं देवदेवस्य करोमि सुखनाशनम् । किं फलं भक्षणाद्देव येन पापं करोम्यहम्
सर्वः स्वार्थवशो लोकःकुरुतेपातकंकिल । तस्मादहं करिष्यामि स्वार्थमेवप्रभक्षणम्

ब्रह्मोवाच

तवभागं करिष्यामो मखमध्ये यथा शृणु । तेन त्वंकुरुकार्यंनोविष्णुंबोधयमाचिरम्
होमकर्मणि पार्श्वे च हविर्दानात्पतिष्यति । तत्तेभागंविजानीहि कुरुकार्यंत्वरान्विता

सूत उवाच

इत्युक्ताब्रह्मणावम्रीधनुषोग्रंत्वरान्विता । चखादसंस्थितंभूमौविमुक्ताज्यातदाऽभवत्
प्रत्यञ्चायां विमुक्तायां मुक्ता कोटिस्तथोत्तरा ।
शब्दः समभवद्घोरस्तेन त्रस्ताः सुरास्तदा ॥ २६ ॥

ब्रह्माण्डं क्षुभितं सर्वं वसुधा कम्पिता तदा । समुद्राश्च समुद्विग्नाक्षेसुश्च जलजन्तवः
ववुर्वातास्तथाचोग्राः पर्वताश्च चकम्पिरे । उल्कापाता महोत्पाता बभुवुर्दुःखशंसिनः
दिशोघोरतराश्चासन्सूर्योऽप्यस्तंगतोऽभवत् ।चिंतामापु सुराःसर्वेकिंभविष्यतिदुर्दिने
एवं चिंतयतां तेषां मूर्धाविष्णोः सकुंडलः । गतः समुकुटःक्कापि देवदेवस्य तापसाः
अन्धकारे तदा घोरे शांते ब्रह्महरौ तदा । शिरोहीनं शरीरं तु ददृशाते विलक्षणम् ॥
दृष्ट्वा कबंधंविष्णोस्तेविस्मिताःसुरसत्तमाः । चिंतासागरमग्नाश्चरुरुदुःशोककर्शिताः
हा नाथ किं प्रभोजातमत्यद्भुतममानुषम् । वैशसं सर्वदेवानां देवदेव सनातन ॥

मायेयं कस्य देवस्ययया तेऽद्यशिरोहृतम् । अच्छेद्यस्त्वमभेद्योऽसिअप्रदाह्योसिसर्वदा
एवं गते त्वयि विभो मरिष्यन्तिचदेवताः । कीदृशस्त्वयि नःस्नेहःस्वार्थेनैवरुदामहे
नाऽयं विघ्नः कृतो दैत्यैर्न यक्षैर्न च राक्षसैः । देवैरेषकृतः कस्य दूषणं च रमापते !॥
पराधीनाः सुराः सर्वे किं कुर्मः क व्रजाम च । शरणं नैव देवेशसुराणां मूढचेतसाम्
न चैषा सात्त्विकी माया राजसी न च तामसी ।
यया छिन्नं शिरस्तेऽद्य मायेशस्य जगद्गुरोः ॥ ३८ ॥
क्रन्दमानांस्तदा दृष्ट्वा देवाञ्छिवपुरोगमान् । बृहस्पतिस्तदोवाच शमयन्वेदवित्तमः
रुदितेन महाभागाः क्रंदितेनतथाऽपि किम् । उपायश्चात्र कर्तव्यः सर्वथाबुद्धिगोचरः
दैवं पुरुषकारश्च देवेशसदृशावुभौ । उपायश्च विधातव्यो दैवात्फलति सर्वथा ॥

इन्द्र उवाच

दैवमेव परं मन्ये धिक्पौरुषमनर्थकम् । विष्णोरपि शिरश्छिन्नं सुराणांचैवपश्यताम्

ब्रह्मोवाच

अवश्यमेव भोक्तव्यं कालेनापादितं चयत् । शुभंवाऽप्यशुभंवाऽपिदैवंकोऽतिक्रमेत्पुनः
देहवान्सुखदुःखानां भोक्ता नैवात्र संशयः । यथाकालवशात्कृत्तं शिरोमे शंभुना पुरा
तथैव लिङ्गपातश्च महादेवस्य शापतः । तथैवाऽद्य हरेर्मूर्धा पतितो लवणांभसि ॥
सहस्रभगसंप्राप्तिर्दुःखं चैव शचीपतेः । स्वर्गाद्भ्रंशस्तथा वासः कमले मानसे सरे
एते दुःखस्य भोक्तारः केन दुःखं न भुज्यते ।
संसारेऽस्मिन्महाभागास्तस्माच्छोकं त्यजन्तु वै ॥ ४७ ॥
चिन्तयन्तुमहामायांविद्यांदेवींसनातनीम् । साविधास्यतिनःकार्यंनिर्गुणाप्रकृतिः परा
ब्रह्मविद्यां जगद्धात्रीं सर्वेषां जननीं तथा । ययासर्वमिदं व्याप्तं त्रैलोक्यं सचराचरम्

सूत उवाच

इत्युक्त्वा वै सुरान्वेधा निगमानादिदेशह । देहयुक्तान्स्थितानग्रे सुरकार्यार्थसिद्धये

ब्रह्मोवाच

स्तुवन्तुपरमांदेवीं ब्रह्मविद्यांसनातनीम् । गूढांगींच महामायां सर्वकार्यार्थसाधनीम्

तच्छ्रुत्वावचनंतस्यवेदाःसर्वाङ्गसुन्दराः । तुष्टुवुर्ज्ञानगम्यांतांमहामायांजगत्स्थिताम्

वेदा ऊचुः

नमो देवि! महामाये! विश्वोत्पत्तिकरे! शिवे !। निर्गुणे!सर्वभूतेशि! मातः!शङ्करकामदे

त्वं भूमिः सर्वभूतानां प्राणः प्राणवतां तथा ।
धीः श्रीः कान्तिः क्षमा शान्तिः श्रद्धा मेधा धृतिः स्मृतिः ॥ ५४ ॥
त्वमुद्गीथेऽर्धमात्राऽसि गायत्री व्याहृतिस्तथा ।
जया च विजया धात्री लज्जा कीर्त्तिः स्पृहा दया ॥ ५५ ॥

त्वां संस्तुमोऽम्ब भुवनत्रयसंविधानदक्षां दयारसयुतां जननीं जनानाम् ।
विद्यां शिवां सकललोकहितां वरेण्यां वाग्बीजवासनिपुणां भवनाशकर्त्रीम्
ब्रह्मा हरः शौरिसहस्रनेत्रवाग्वह्निसूर्या भुवनाधिनाथाः ।
ते त्वत्कृताः संति ततो न मुख्या माता यतस्त्वं स्थिरजङ्गमानाम् ॥ ५७ ॥

सकलभुवनमेतत्कर्तुकामा यदा त्वं
सृजसि जननि ! देवान्विष्णुरुद्राजमुख्यान् ।
स्थितिलयजननं तैः कारयस्येकरूपा
न खलु तव कथंचिद्देवि संसारलेशः ॥ ५८ ॥

न ते रूपं वेत्तुं सकलभुवने कोऽपि निपुणो
न नाम्नां संख्यां ते कथितुमिह योग्योऽस्ति पुरुषः ।
यदल्पं कीलालं कलयितुमशक्तः स तु नरः
कथं पारावाराकलनचतुरः स्याद्धृतमतिः ॥ ५९ ॥

न देवानां मध्ये भगवति ! तवानंतविभवं
विजानात्येकोऽपि त्वमिह भुवनैकाऽसि जननी ।
कथं मिथ्या विश्वं सकलमपि चैका रचयसि
प्रमाणं त्वेतस्मिन्निगमवचनं देवि! विहितम् ॥ ६० ॥

निरीहैवाऽसि त्वं निखिलजगतां कारणमहो

चरित्रं ते चित्रं भगवति मनो नो व्यथयति।
कथंकारं वाच्यः सकलनिगमागोचरगुण-
प्रभावः स्वं यस्मात्स्वयमपि न जानासि परमम् ॥६१॥
न किं जानासि त्वं जननि ! मधुजिन्मौलिपतनं
शिवे ! किं वा ज्ञात्वा विचिदिषसि शक्तिं मधुजितः।
हरेः किं वा मातर्दुरिततितिरेषा बलवती
भवत्याः पादाब्जे भजननिपुणे!काऽस्ति दुरितम् ॥६२॥
उपेक्षा किं चेयं तव सुरसमूहेऽतिविषमा
हरेर्मूर्ध्नो नाशो मतमिहमहाश्चर्यजनकम्।
महद्दुःखं मातस्त्वमसि जननच्छेदकुशला
न जानीमो मौलेर्विघटनविलम्बः कथमभूत् ॥ ६३ ॥
ज्ञात्वा दोषं समलसुरतापादितं देवि ! चित्ते
किं वा विष्णावमरजनितं दुष्कृतं पातितं ते।
विष्णोर्वा किं समरजनितः कोऽपि गर्वोऽतिवेगा-
च्छेत्तुं मातस्तव विलसितं नैव विद्मोऽत्र भावम् ॥६४॥
किं वा दैत्यैः समरविजितैस्तीर्थदेशे सुरम्ये
घोरं तप्त्वा भगवति ! वरं लब्धवद्भिर्भवत्याः।
अन्तर्धानं गमितमधुना विष्णुशीर्षं भवानि !
द्रष्टुं किं वा विगतशिरसं वासुदेवं विनोदः ॥ ६५ ॥
सिन्धोः पुत्र्यां रोषिता किं त्वमाद्ये कस्मादेनां प्रेक्षसे नाथहीनाम्।
क्षन्तव्यस्ते स्वांशजातापराधो व्युत्थाप्यैनं मोदितां मां कुरुष्व ॥ ६६ ॥
एते सुरास्त्वां सततं नमन्ति कार्येषु मुख्याः प्रथितप्रभावाः।
शोकार्णवात्तारय देवि ! देवानुत्थाप्य देवं सकलाधिनाथम् ॥ ६७ ॥
मूर्धा गतः क्वाऽम्ब हरेर्न विद्मो नान्योऽस्त्युपायः खलु जीवनेऽद्य।

यथा सुधा जीवनकर्मदक्षा तथा जगज्जीवितदाऽसि देवि ! ॥ ६८ ॥

सूत उवाच

एवं स्तुता तदा देवी गुणातीता महेश्वरी । प्रसन्ना परमा मायावेदैः सांगैश्च सामगैः
तानुवाचतदावाणोचाकाशस्थाऽशरीरिणी । देवान्प्रति सुखैः शब्दैर्जनानन्दकरीशुभा

मा कुरुध्वं सुराश्चिन्ता स्वस्थास्तिष्ठन्तु चाऽमराः ।
स्तुताऽहं निगमैः कामं सन्तुष्टाऽस्मि न संशयः ॥ ७१ ॥
यः पुमान्मानुषे लोके स्तौत्येत्यां मामकीं स्तुतिम् ।
पठिष्यति सदा भक्तया सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥ ७२ ॥
शृणोति वा स्तोत्रमिदं मदीयं भक्तया त्रिकालं सततं नरो यः ।
विमुक्तदुःखः स भवेत्सुखी च वेदोक्तमेतन्ननु वेदतुल्यम् ॥ ७३ ॥

शृण्वन्तु कारणं चाऽद्य यद्गतं वदनं हरेः । अकारणं कथं कार्यं संसारेऽत्र भविष्यति
उदधेस्तनयां विष्णुः संस्थितामंतिकेप्रियाम् । जहासवदनंवीक्ष्यतस्यास्तत्रमनोरमम्
तया ज्ञातं हरिर्नूनं कथं मां हसति प्रभुः । विरूपं हरिणा दृष्टं मुखं मे केन हेतुना
विनाऽपि कारणेनाद्य कथं हास्यस्य सम्भवः । सपत्नीवकृतातेनमन्येऽन्यावरवर्णिनी
ततः कोपयुता जातामहालक्ष्मीतमोगुणा । तामसीतुतदाशक्तिस्तस्यादेहेसमाविशत्
केनचित्कालयोगेन देवकार्यार्थसिद्धये । प्रविष्टा तामसी शक्तिस्तस्यादेहेऽतिदारुणा
तामस्याऽऽविष्टदेहासा चुकोपातिशयं तदा । शौनकैः समुवाचेदमिदं पततु ते शिरः

स्त्रीस्वभावाच्च भावित्वात्कालयोगाद्विनिर्गतः ।
अविचार्य तदा दत्तः शापः स्वसुखनाशनः ॥ ८१ ॥

सपत्नीसम्भवंदुःखंवैधव्यादधिकं त्विति । विचिन्त्य मनसेत्युक्तंतामसीशक्तियोगतः
अनृतं साहसं मायामूर्खत्वमतिलोभता । अशौचंनिर्दयत्वंचस्त्रीणांदोषाःस्वभावजाः
सशीर्षं वासुदेवं तं करोम्यद्य यथा पुरा । शिरोऽस्य शापयोगेन निमग्नंलवणांबुधौ
अन्यच्च कारणं किंचिद्वर्तते सुरसत्तमाः । भवतां च महत्कार्यं भविष्यति न संशयः
पुरा दैत्योमहाबाहुर्हयग्रीवोऽति विश्रुतः । तपश्चके सरस्वत्यास्तीरे परमदारुणम् ॥

जपन्नेकाक्षरं मन्त्रं मायाबीजात्मकं मम । निराहारो जितात्मा च सर्वभोगविवर्जितः
ध्यायन्मां तामसीं शक्तिं सर्वभूषणभूषिताम् । एवं वर्षसहस्रं च तपश्चक्रेऽतिदारुणम्
तदाऽहं तामसंरूपं कृत्वा तत्र समागता । दर्शने पुरतस्तस्य ध्यातं तत्तेन यादृशम् ॥
सिंहोपरि स्थिता तत्र तमवोचं दयान्विता । वरं ब्रूहि महाभाग! ददामि तव सुव्रत!
इति श्रुत्वा वचो देव्या दानवः प्रेमपूरितः । प्रदक्षिणां प्रणामं च चकारत्वरितस्तदा
दृष्ट्वा रूपं मदीयं स प्रेमोत्फुल्लविलोचनः । हर्षाश्रुपूर्णनयनस्तुष्टाव स च मां तदा ॥

हयग्रीव उवाच

नमोदेव्यै महामाये! सृष्टिस्थित्यन्तकारिणि !। भक्तानुग्रहचतुरे! कामदे!मोक्षदे! शिवे!
धराम्बुतेजःपवनखपञ्चानां च कारणम् । त्वं गंधरसरूपाणां कारणं स्पर्शशब्दयोः॥
घ्राणंचरसनाचक्षुस्त्वक्छ्रोत्रमिन्द्रियाणिच।कर्मेन्द्रियाणिचाऽन्यानित्वत्तःसर्वंमहेश्वरि

श्रीदेव्युवाच

किं तेऽभीष्टंवरंब्रूहिवाञ्छितंयद्ददामितत् । परितुष्टाऽस्मिभक्त्यातेतपसाचाऽद्भुतेनच

हयग्रीव उवाच

यथा मे मरणं मातर्नभवेत्त्तथा कुरु । भवेयममरो योगी तथाऽजेयः सुरासुरैः ॥

देव्युवाच

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च । मर्यादाचेदृशी लोके भवेच्चकथमन्यथा
एवं त्वं निश्चयं कृत्वा मरणे राक्षसोत्तम !। वरं वरय चेष्टं ते विचार्य मनसा किल

हयग्रीव उवाच

हयग्रीवाच्च मे मृत्युर्नान्यस्माज्जगदम्बिके । इति मे वाञ्छितं कामं पूरयस्व मनोगतम्

देव्युवाच

गृहं गच्छ महाभाग कुरुराज्यं यथासुखम् । हयग्रीवादृते मृत्युर्न ते नूनं भविष्यति
इति दत्वावरं तस्मै अन्तर्धानं गता तथा । मुदं परमिकां प्राप्यसोऽपिस्वभवनंगतः
स पीडयति दुष्टात्मा मुनीन्वेदांश्च सर्वशः । न कोऽपि विद्यते तस्यहंताऽद्यभुवनत्रये
तस्माच्छीर्षं हयस्याऽस्य समुद्धृत्य मनोहरम् ।

देहेऽत्र त्रिशिरोविष्णोस्त्वष्टा संयोजयिष्यति ॥ १०४ ॥
हयग्रीवोऽथ भगवान्हनिष्यति तमासुरम् । पापिष्ठं दानवं क्रूरं देवानां हितकाम्यया

सूत उवाच

एवंसुरांस्तदाऽऽभाष्यशर्वाणीविरराम ह । देवास्तदाऽतिसंतुष्टास्तमूचुर्देवशिल्पिनम्

देवा ऊचुः

कुरुकार्यं सुराणां वै विष्णोः शीर्षाभियोजनम् । दानवप्रवरंदैत्यं हयग्रीवोहनिष्यति

सूत उवाच

इतिश्रुत्वा वचस्तेषांत्वष्टाचातित्वरान्वितः । वाजिशीर्षंचकर्त्ताशु खड्गेनसुरसन्निधौ
विष्णोःशरीरे तेनाऽऽशुयोजितंवाजिमस्तकम् । हयग्रीवोहरिर्जातोमहामायाप्रसादतः
कियता तेन कालेन दानवोमददर्पितः । निहतस्तरसा संख्ये देवानां रिपुरोजसा ॥
य इदं शुभमाख्यानं शृण्वन्ति भुविमानवाः । सर्वदुःखविनिर्मुक्तास्तेभवन्तिन संशयः
महामायाचरित्रं च पवित्रं पापनाशनम् । पठतां शृण्वतां चैव सर्वसम्पत्तिकारकम्

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे
हयग्रीवावतारकथनं नामपञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

षष्ठोऽध्यायः

ऋषीणाम्मधुकैटभयोराख्यानविषयकःप्रश्नः

ऋषय ऊचुः

सौम्य यच्च त्वया प्रोक्तं शौरेर्युद्धंमहार्णवे । मधुकैटभयोः सार्द्धं पञ्चवर्षसहस्रकम् ॥
कस्मात्तौ दानवौ जातौ तस्मिन्नेकार्णवेजले । महाबलौ दुराधर्षौ देवैरपि सुदुर्जयौ
कथं तावसुरौ जातौ कथं च हरिणाहतौ । तदाचक्ष्व महाप्राज्ञ चरितं परमाद्भुतम् ॥
श्रोतुकामा वयंसर्वे त्वंवक्ताचबहुश्रुतः । दैवाच्चैवाऽत्रसञ्जातःसंयोगश्चतथाऽऽवयोः
मूर्खेण सह संयोगो विषादपि सुदुर्जरः । विज्ञेन सह संयोगः सुधारससमः स्मृतः

जीवन्तिपशवः सर्वे खादन्ति मेहयन्ति च । जानन्ति विषयाकारं व्यवायसुखमद्भुतम्
न तेषां सदसज्ज्ञानं विवेको न च मोक्षदः । पशुभिस्तेसमाज्ञेया येषां न श्रवणादयः
मृगाद्याः पशवः केचिज्जानन्ति श्रावणं सुखम् । अश्रोत्राः फणिनश्चैवमुमुहुर्नादपानतः
पञ्चानामिन्द्रियाणां वै शुभे श्रवणदर्शने । श्रवणाद्वस्तुविज्ञानं दर्शनाच्चित्तरञ्जनम् ॥
श्रवणं त्रिविधं प्रोक्तं सात्त्विकंराजसंतथा । तामसंचमहाभागसुज्ञोक्तंनिश्चयान्वितम्

सात्त्विकं वेदशास्त्रादि साहित्यं चैव राजसम् ।
तामसं युद्धवार्ता च परदोषप्रकाशनम् ॥ ११ ॥

सात्त्विकंत्रिविधंप्रोक्तंप्रज्ञावद्भिश्च पण्डितैः । उत्तमंमध्यमञ्चैव तथैवाऽधममित्युतः ॥
उत्तमं मोक्षफलदं स्वर्गदं मध्यमं तथा । अधमं भोगदं प्रोक्तं निर्णीय विदितं बुधैः॥

साहित्यं चैव त्रिविधं स्वीयायां चोत्तमं स्मृतम् ।
मध्यमं वारयोषायां परोढायां तथाऽधमम् ॥ १४ ॥

तामसं त्रिविधं ज्ञेयं विद्वद्भिः शास्त्रदर्शिभिः । आततायिनि युद्धं यत्तदुत्तममुदाहृतम्
मध्यमंचापि विद्वेषात्पाण्डवानांतथाऽरिभिः । अधमंनिर्निमित्तंतु विवादे कलहेतथा
तदत्र श्रवणं मुख्यं पुराणस्य महामते !। बुद्धिप्रवर्धनं पुण्यं ततः पापप्रणाशनम् ॥१७
तदाख्याहिमहाबुद्धेकथांपौराणिकींशुभाम् । श्रुतांद्वैपायनात्पूर्वंसर्वार्थस्यप्रसाधिनीम्

सूत उवाच

यूयं धन्या महाभागा धन्योऽहं पृथिवीतले । येषांश्रवणबुद्धिश्च ममाऽपि कथनेकिल
पुरा चैकार्णवे जाते विलीने भुवनत्रये । शेषपर्यङ्कसुप्ते च देवदेवे जनार्दने ॥ २० ॥
विष्णुकर्णमलोद्भूतौ दानवौ मधुकैटभौ । महाबलौ च तौ दैत्यौ विवृद्धौसागरेजले
क्रीडमानौस्थितौ तत्र विचरन्तावितस्ततः । तावेकदामहाकायौ क्रीडासक्तौमहार्णवे
चिन्तामवापतुश्चित्तेभ्रातराविव संस्थितौ । नाकारणं भवेत्कार्यं सर्वत्रैषा परम्परा
आधेयन्तु विनाऽऽधारं न तिष्ठतिकथञ्चन । आधाराधेयभावस्तुभातिनोचित्तगोचरः
क्व तिष्ठति जलञ्चेदं सुखरूपं सुविस्तरम् । केन सृष्टं कथं जातं मज्जावावाञ्जलेस्थितौ
आवां वा कथमुत्पन्नौ केन चोत्पादितावुभौ ।

पितरौ क्वेति विज्ञानं नाऽस्ति कामं तथाऽऽवयोः ॥ २६ ॥

सूत उवाच

एवं कामयमानौ तौ जग्मतुर्न विनिश्चयम् । उवाचकैटभस्तत्र मधुं पार्श्वे स्थितंजले

कैटभ उवाच

मधोवामत्र सलिले स्थातुं शक्तिर्महाबला । वर्तते भ्रातरचला कारणं सा हि मे मता
तया ततमिदं तोयं तदाधारञ्च तिष्ठति । सा एव परमा देवी कारणञ्च तथाऽऽवयोः

एवं विबुध्यमानौ तौ चिन्ताविष्टौ यदाऽसुरौ ।

तदाऽऽकाशे श्रुतौ ताभ्यां वाग्बीजं सुमनोहरम् ॥ ३० ॥

गृहीतञ्चततस्ताभ्यांतस्याभ्यासोदृढःकृतः । तदासौदामनीदृष्टाताभ्यांखेचोत्थिताशुभा
ताभ्यांविचारितं तत्रमन्त्रोऽयं नाऽत्रसंशयः । तथाध्यानमिदं दृष्टं गगनेसगुणंकिल
निराहारौ जितात्मानौतन्मनस्कौसमाहितौ । बभूवतुर्विचिन्त्यैवं जपध्यानपरायणौ
एवं वर्षसहस्रन्तु ताभ्यां तप्तं महत्तपः । प्रसन्ना परमा शक्तिर्जाता सा परमातयोः
खिन्नौ तौ दानवौ दृष्ट्वा तपसे कृतनिश्चयौ । तयोरनुग्रहार्थाय वागुवाचाऽशरीरिणी॥
वरं वां वाञ्छितं दैत्यौ ब्रूतंपरमसम्मतम् । ददामिपरितुष्टाऽस्मि युवयोस्तपसाकिल

सूत उवाच

इतिश्रुत्वा तु तां वाणीं दानवावूचतुस्तदा । स्वेच्छया मरणंदेवि वरं नो देहिसुव्रते

वागुवाच

वाञ्छितं मरणं दैत्यौ भवेद्वां मत्प्रसादतः । अजेयौ देवदैत्यैश्च भ्रातरौ नाऽत्र संशयः

सूत उवाच

इति दत्तवरौ देव्या दानवौ मदर्पितौ । चक्रतुः सागरे क्रीडां यादोगणसमन्वितौ
कालेन कियता विप्रा दानवाभ्यांयदृच्छया । दृष्टःप्रजापतिर्ब्रह्मा पद्मासनगतः प्रभुः ॥
दृष्ट्वा तु मुदितावास्तां युद्धकामौ महाबलौ । तमूचतुस्तदातत्र युद्धं नौ देहि सुव्रत
नोचेत्पद्मंपरित्यज्ययथेष्टंगच्छमाचिरम् । यदित्वंनिर्बलश्चासि क योग्यंशुभमासनम्

वीरभोग्यमिदं स्थानं कातरोऽसि त्यजाऽऽशु वै ।

तयो रिति वचः श्रुत्वा चिन्तामाप प्रजापतिः ॥ ४३ ॥
दृष्ट्वाचबलिनौवीरौकिंकरोमीतितापसः। चिन्ताविष्टस्तदातस्थौचिन्तयन्मनसा तदा

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे मधुकैटभयोर्युद्धोद्योग-
वर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सप्तमोऽध्यायः

ब्रह्मणा मधुकैटभभीतेनपरेशस्तुतिः

सूत उवाच

तौवीक्ष्यबलिनौब्रह्मातदोपायानचिन्तयत्। सामदानभिदादींश्चयुद्धांतान्सर्वतन्त्रवित्
न जानेऽहंबलं नूनमेतयोर्वा यथातथम्। अज्ञाते तु बले कामं नैव युद्धं प्रशस्यते॥२॥
स्तुतिं करोमि चेदद्य दुष्टयोर्मदमत्तयोः। प्रकाशितं भवेन्नूनं निर्बलत्वं मया स्वयम्
वधिष्यतितदैकोऽपिनिर्बलत्वे प्रकाशिते। दानंनैवाद्ययोग्यं वा भेदःकार्योमयाकथम्
विष्णुं प्रबोधयाम्यद्यशेषेसुप्तं जनार्दनम्। चतुर्भुजं महावीर्यं दुःखहा स भविष्यति
इति सञ्चिन्त्यमनसापद्मनालगतोऽब्जजः। जगामशरणं विष्णुं मनसादुःखनाशकम्
तुष्टाव बोधनार्थं तं शुभैः सम्बोधनैर्हरिम्। नारायणं जगन्नाथं निस्पन्दं योगनिद्रया

ब्रह्मोवाच

दीननाथ हरे विष्णो वामनोत्तिष्ठ माधव। भक्तार्तिहृद्धृषीकेश सर्वावास जगत्पते
अन्तर्यामिन्नमेयात्मन्वासुदेव जगत्पते। दुष्टारिनाशनैकाग्रचित्त! चक्रगदाधर! ॥१६॥
सर्वज्ञ सर्वलोकेश सर्वशक्तिसमन्वित। उत्तिष्ठोत्तिष्ठ देवेश! दुःखनाशन! पाहिमाम्
विश्वम्भर विशालाक्ष! पुण्यश्रवणकीर्तन। जगद्योने निराकार सर्गस्थित्यन्तकारक
इमौ दैत्यौ महाराजहन्तुकामौमदोद्धतौ। न जानास्यखिलाधार कथंमां संकटेगतम्
उपेक्षसेऽतिदुःखार्तं यदि मां शरणंगतम्। पालकत्वं महाविष्णो निराधारं भवेत्ततः

एवंस्तुतोऽपि भगवान्न बुबोधयदाहरिः । योगनिद्रासमाक्रान्तस्तदाब्रह्माह्यचिन्तयत्
नूनं शक्तिसमाक्रान्तोविष्णुर्निद्रावशं गतः । जजागारनधर्मात्माकिंकरोम्यद्यदुःखितः
हन्तुकामावुभौप्राप्तौदानवौमदगर्वितौ । किंकरोमिक्व गच्छामिनास्तिमेशरणंक्वचित्
इति सञ्चिन्त्यमनसा निश्चयं प्रतिपद्यत । तुष्टावयोगनिद्रां तामेकाग्रहृदयस्थितः ॥
विचार्यमनसाऽप्येवं शक्तिर्मेरक्षणेक्षमा । ययाह्यचेतनोविष्णुःकृतोऽस्तिस्पन्दवर्जितः
व्यसुर्यथानजानाति गुणाञ्छब्दादिकानिह । तथाहरिर्नजानाति निद्रामीलितलोचनः
नजहातियतोनिद्रांबहुधासंस्तुतोऽप्यसौ । मन्येनास्यवशे निद्रा निद्रयाऽयंवशीकृतः
यो यस्यवशमापन्नःसतस्यकिङ्करः किल । तस्माच्च योगनिद्रेयं स्वामिनी माधवेर्हरेः
सिन्धुजाया अपिवशे यथा स्वामीवशीकृतः । नूनंजगदिदं सर्वं भगवत्या वशीकृतम्

अहं विष्णुस्तथा शम्भुः सावित्री च रमाऽप्युमा ।
सर्वे वयं वशेऽप्यस्या नाऽत्र किञ्चिद्विचारणा ॥ २३ ॥

हरिरप्यवशःशेतेयथाऽन्यःप्राकृतोजनः । ययाऽभिभूतःकावार्ताकिलान्येषांमहात्मनाम्
स्तौम्यद्य योगनिद्रां वै यया मुक्तोजनार्दनः । घटयिष्यति युद्धे च वासुदेवः सनातनः
इतिकृत्वामतिंब्रह्मापद्मनालस्थितस्तदा । तुष्टावयोगनिद्रांतां विष्णोरंगेषुसंस्थिताम्

ब्रह्मोवाच

देवि त्वमस्य जगतः किल कारणं हि ज्ञातं मया सकलवेदवचोभिरम्ब ।
यद्विष्णुरप्यखिललोकविवेककर्ता निद्रावशञ्च गमितः पुरुषोत्तमोऽद्य ॥२७॥
को वेद ते जननि! मोहविलासलीलां मूढोऽस्म्यहं हरिरयं विवशश्च शेते ।
ईदृक्कया सकलभूतमनोनिवासे ! विद्वत्तमो विबुधकोटिषु निर्गुणायाः ॥ २८ ॥
सांख्या वदन्ति पुरुषं प्रकृतिञ्च यां तां चैतन्यभावरहितां जगतश्च कर्त्रीम् ।
किं तादृशाऽसि कथमत्र जगन्निवासश्चैतन्यताविरहितो विहितस्त्वयाऽद्य ॥
नाट्यं तनोषि सगुणा विविधप्रकारं नो वेत्ति कोऽपि तव कृत्यविधानयोगम् ।
ध्यायन्ति यां मुनिगणा नियतं त्रिकालं सन्ध्येतिनाम परिकल्प्य गुणान्भवानि
बुद्धिर्हि बोधकरणा जगतां सदा त्वं श्रीश्चासि देवि! सततं सुखदा सुराणाम् ।

कीर्तिस्तथा मतिधृती किलकान्तिरेव श्रद्धारतिश्च सकलेषु जनेषु मातः!॥ ३१॥
नातः परं किल वितर्कशतैः प्रमाणं प्राप्तं मया यदिह दुःखगतिं गतेन।
त्वं चाऽत्र सर्वजगतां जननीति सत्यं निद्रालुतां वितरता हरिणाऽत्र दृष्टम् ॥३२
त्वं देवि! वेदविदुषामपि दुर्विभाव्या वेदोऽपि नूनमखिलार्थतया न वेद।
यस्मात्त्वदुद्भवमसौ श्रुतिराप्नुवाना प्रत्यक्षमेव सकलं तव कार्यमेतत् ॥ ३३ ॥
कस्ते चरित्रमखिलम्भुवि वेद धीमान्नाऽहं हरिर्न च भुवो न सुरास्तथाऽन्ये।
ज्ञातुं क्षमाश्च मुनयो न ममात्मजाश्च दुर्वाच्य एव महिमा तव सर्वलोके ॥३४॥
यज्ञेषु देवि! यदि नाम न ते वदन्ति स्वाहेति वेदविदुषो हवने कृतेऽपि।
न प्राप्नुवन्ति सततं मखभागधेयं देवास्त्वमेव विबुधेष्वपि वृत्तिदाऽसि ॥३५॥
त्राता वयं भगवति प्रथमं त्वया वै देवारिसम्भवभयादधुना तथैव।
भीतोऽस्मि देवि! वरदे! शरणं गतोऽस्मि घोरं निरीक्ष्य मधुना सह कैटभञ्च ॥
नो वेत्ति विष्णुरधुना मम दुःखमेतज्जाने त्वयाऽऽत्मविवशीकृतदेहयष्टिः।
मुञ्चादिदेवमथवा जहि दानवेन्द्रौ यद्रोचते तव कुरुष्व महानुभावे! ॥३७॥
जानन्ति ये न तव देवि परं प्रभावं ध्यायन्ति ते हरिहरावपि मन्दचित्ताः।
ज्ञातं मयाऽद्य जननि! प्रकटं प्रमाणं यद्विष्णुरप्यतितरां विवशोऽथ शेते ॥३७॥
सिन्धूद्भवाऽपि न हरिं प्रतिबोधितुं वै शक्ता पतिं तव वशानुगमाद्यशक्त्या।
मन्ये त्वया भगवति! प्रसभं रमाऽपि प्रस्वापिता न बुबुधे विवशीकृतेव ॥३९॥
धन्यास्त एव भुवि भक्तिपरास्तवांघ्रौ त्यक्त्वाऽन्यदेवभजनं त्वयि लीनभावाः।
कुर्वन्ति देवि! भजनं सकलं निकामं ज्ञात्वा समस्तजननींकिल कामधेनुम् ॥४०
धीकान्तिकीर्तिशुभवृत्तिगुणादयस्ते विष्णोर्गुणास्तु परिहृत्य गताः क्वाऽद्य ॥
बन्दीकृतो हरिरसौ ननु निद्रयाऽत्र शक्त्या तवैव भगवत्यतिमानवत्या ॥ ४१ ॥
त्वं शक्तिरेव जगतामखिलप्रभावा त्वन्निर्मितं च सकलं खलु भावमात्रम्।
त्वं क्रीडसे निजविनिर्मितमोहजाले नाट्ये यथा विहरते स्वकृते नटो वै ॥४२॥
विष्णुस्त्वया प्रकटितः प्रथमं युगादौ दत्ता च शक्तिरमला खलु पालनाय।

त्रातं च सर्वमखिलं विवशीकृतोऽद्य यन्नोचते तव तथाऽम्ब करोषि नूनम् ॥४३
सृष्ट्वाऽत्र मां भगवति! प्रविनाशितुं चेन्नेच्छाऽस्ति ते कुरु दयां परिहृत्य मौनम्।
कस्मादिमौ प्रकटितौ किलकालरूपौ यद्वा भवानि! हसितुं नु किमिच्छसे माम्
ज्ञातं मया तव विचेष्टितमद्भुतं वै कृत्वाऽखिलं जगदिदं रमसे स्वतन्त्रा।
लीनं करोषि सकलं किल मां तथैव हन्तुं त्वमिच्छसि भवानि! किमत्र चित्रम्
कामं कुरुष्व वधमद्य ममैव मातर्दुःखं न मे मरणजं जगदम्बिकेऽत्र।
कर्ता त्वयैव विहितः प्रथमं स चाऽयं दैत्याहतोऽथ मृत इत्ययशो गरिष्ठम्॥
उत्तिष्ठ देवि! कुरु रूपमिहाद्भुतं त्वं मां वा त्विमौ जहि यथेच्छसि बाललीले।
नो चेत्प्रबोधय हरिं निहनेदिमौ यस्त्वत्साध्यमेतदखिलं किल कार्यजातम् ॥४७

सूत उवाच

एवं स्तुता तदा देवी तामसी तत्र वेधसा। निःसृत्यहरिदेहात्तुसंस्थितापार्श्वतस्तदा
त्यक्त्वांऽगानि च सर्वाणि विष्णोरतुलतेजसः।
निर्गता योगनिद्रा सा नाशाय च तयोस्तदा ॥ ४८ ॥
विस्पन्दितशरीरोऽसौ यदा जातो जनार्दनः। धाता परमिकांप्राप्तोमुदं दृष्ट्वाहरिं ततः

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे
विष्णुप्रबोधो नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अष्टमोऽध्यायः
आराध्यनिर्णयवर्णनम्

ऋषय ऊचुः

सन्देहोऽत्र महाभाग! कथायांतु महाद्भुतः। वेदशास्त्रपुराणैश्च निश्चितं तु सदा बुधैः
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्चत्रयोदेवाःसनातनाः। नातः परतरंकिञ्चिद्ब्रह्माण्डेऽस्मिन्महामते

ब्रह्मा सृजति लोकान्वै विष्णुः पात्यखिलं जगत् ।

रुद्रः संहरते काले त्रय एतेऽत्र कारणम् ॥ ३ ॥

एका मूर्तिस्त्रयो देवा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः । रजःसत्त्वतमोभिश्च संयुताः कार्यकारकाः
तेषां मध्ये हरिः श्रेष्ठो माधवः पुरुषोत्तमः । आदिदेवो जगन्नाथः समर्थः सर्वकर्मसु

नाऽन्यः कोऽपि समर्थोऽस्ति विष्णोरतुलतेजसः ।

स कथं स्वापितः स्वामी विवशो योगमायया ॥ ६ ॥

क गतं तस्य विज्ञानं जीवतश्चेष्टितं कुतः । सन्देहोऽयं महाभाग! कथयस्वयथाशुभम्
का सा शक्तिःपुरा प्रोक्तायया विष्णुर्जितःप्रभुः । कुतोजाताकथंशक्ताकाशक्तिर्वदसुव्रत
यस्तु सर्वेश्वरो विष्णुर्वासुदेवो जगद्गुरुः । परमात्मा परानन्दः सच्चिदानन्दविग्रहः
सर्वकृत्सर्वभृत्स्रष्टा विरजः सर्वगः शुचिः । स कथं निद्रया नीतः परतन्त्रः परात्परः
एतदाश्चर्यभूतोहि सन्देहोनः परन्तप !। छिन्धि ज्ञानाऽसिना सूत व्यासशिष्यमहामते

सूत उवाच

कः सन्देहं छिनत्त्येनं त्रैलोक्ये सचराचरे । मुह्यन्ति मुनयःकामं ब्रह्मपुत्राः सनातनाः
नारदःकपिलश्चैवप्रश्नेऽस्मिन्मुनिसत्तमाः । किंब्रवीमिमहाभागा!दुर्घटेऽस्मिन्विमर्शने
वेदेषु विष्णुः कथितः सर्वगस्सर्वपालकः । यतो विराडिदं सर्वमुत्पन्नं सचराचरम् ॥
ते सर्वे समुपासन्ते नत्वा देवं परात्परम् । नारायणं हृषीकेशं वासुदेवं जनार्दनम् ॥
तथा केचिन्महादेवं शङ्करं शशिशेखरम् । त्रिनेत्रं पञ्चवक्त्रञ्च शूलपाणिं वृषध्वजम् ॥
तथा वेदेषु सर्वेषु गीतं नाम्ना त्रियम्बकम् । कपर्दिनं पञ्चवक्त्रं गौरीदेहार्धधारिणम्
कैलासवासनिरतं सर्वशक्तिसमन्वितम् । भूतवृन्दयुतं देवं दक्षयज्ञविघातकम् ॥
तथासूर्यंवेदविदः सायंप्रातर्दिने दिने । मध्याह्ने तु महाभागाःस्तुवन्ति विविधैःस्तवैः
तथा वेदेषु सर्वेषु सूर्योपासनमुत्तमम् । परमात्मेति विख्यातं नाम तस्य महात्मनः॥
अग्निः सर्वत्र वेदेषु संस्तुतो वेदवित्तमैः । इन्द्रश्चापित्रिलोकेशो वरुणश्च तथा परः
यथा गङ्गा प्रवाहैश्च बहुभिः परिवर्तते । तथैव सर्ववेदेषु विष्णुः प्रोक्तो महर्षिभिः

त्रीण्येव हि प्रमाणानि पठितानि सुपण्डितैः ।

प्रत्यक्षं चाऽनुमानं च शाब्दं चैव तृतीयकम् ॥ २३ ॥

चत्वार्येवेतरे प्राहुरुपमानयुतानि च । अर्थापत्तियुतान्यन्ये पञ्च प्राहुर्महाधियः ॥
सप्त पौराणिकाश्चैव प्रवदन्ति मनीषिणः । एतैः प्रमाणैर्दुर्ज्ञेयं यद्ब्रह्म परमं च सत्
वितर्कश्चात्र कर्तव्यो बुद्ध्या चैवागमेन च । निश्चयात्मिकया युक्त्या विचार्य च पुनःपुनः
प्रत्यक्षतस्तु विज्ञानं चिन्त्यं मतिमता सदा । दृष्टान्तेनापि सततं शिष्टमार्गानुसारिणा
विद्वांसोऽपि वदन्त्येवं पुराणैः परिगीयते । द्रुहिणे सृष्टिशक्तिश्च हरौ पालनशक्तिता
हरे संहारशक्तिश्च सूर्ये शक्तिः प्रकाशिका । धराधरणशक्तिश्च शेषे कूर्मे तथैव च

साऽऽद्या शक्तिः परिणता सर्वस्मिन्या प्रतिष्ठिता ।

दाहशक्तिस्तथा वह्नौ समीरे प्रेरणात्मिका ॥ ३० ॥

शिवोऽपि शवतां याति कुण्डलिन्या विवर्जितः । शक्तिहीनस्तु यः कश्चिदसमर्थः स्मृतो बुधैः
एवं सर्वत्र भूतेषु स्थावरेषु चरेषु च । ब्रह्मादि स्तंबपर्यन्तं ब्रह्माण्डेऽस्मिन्महातपाः
शक्तिहीनं तु निन्द्यं स्याद्वस्तुमात्रं चराचरम् । अशक्तः शत्रुविजये गमने भोजने तथा

एवं सर्वगता शक्तिः सा ब्रह्मेति विविच्यते ।

योपास्या विविधैः सम्यग्विचार्या सुधिया सदा ॥ ३४ ॥

विष्णौ च सात्त्विकी शक्तिस्तया हीनोऽप्यकर्मकृत् ।

द्रुहिणे राजसी शक्तिर्यया हीनो ह्यसृष्टिकृत् ॥ ३५ ॥

शिवे च तामसी शक्तिस्तया संहारकारकः । इत्यूहं मनसा सर्वं विचार्य च पुनःपुनः
शक्तिः करोति ब्रह्मांडं सा वै पालयतेऽखिलम् । इच्छया संहरत्येषा जगदेतच्चराचरम्
न विष्णुर्न हरः शक्रो न ब्रह्मा न च पावकः । न सूर्यो वरुणः शक्तः स्वे स्वे कार्ये कथंचन
तया युक्ता हि कुर्वन्ति स्वानि कार्याणि ते सुराः । सैव कारणकार्येषु प्रत्यक्षेणाऽवगम्यते

सगुणा निर्गुणा सा तु द्विधा प्रोक्ता मनीषिभिः ।

सगुणा रागिभिः सेव्या निर्गुणा तु विरागिभिः ॥ ४० ॥

धर्मार्थकाममोक्षाणां स्वामिनी सा निराकुला ।

ददाति वाञ्छितान्कामान्पूजिता विधिपूर्वकम् ॥ ४१ ॥

न जानन्तिजनामूढास्तांसदामाययावृताः । जानन्तोऽपिनराःकेचिन्मोहयन्तिपरानपि
पण्डिताः स्वोदरार्थं वै पाखण्डानिपृथक्पृथक् । प्रवर्तयन्तिकलिनाप्रेरितामन्दचेतसः
कलावस्मिन्महाभागा नानाभेदसमुत्थिताः । नाऽन्येयुगेतथाधर्मावेदबाह्याः कथंचन
विष्णुश्चरत्यसावुग्रं तपोवर्षाण्यनेकशः । ब्रह्मा हरस्त्रयोदेवा ध्यायन्तः कमपिध्रुवम्
कामयानाः सदा कामंतेत्रयःसर्वदैव हि । यजन्ति यज्ञान्विविधान्ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः

ते वै शक्तिं परां देवीं ब्रह्माख्यां परमात्मिकाम् ।
ध्यायन्ति मनसा नित्यं नित्यां मत्वा सनातनीम् ॥ ४७ ॥
तस्माच्छक्तिः सदा सेव्या विद्वद्भिः कृतनिश्चयैः ।
निश्चयः सर्वशास्त्राणां ज्ञातव्यो मुनिसत्तमाः ॥ ४८ ॥

कृष्णाच्छ्रुतंमयाचैतत्तेनज्ञातंतु नारदात् । पितुःसकाशात्तेनापि ब्रह्मणाविष्णुवाक्यतः
न श्रोतव्यं न मन्तव्यमन्येषां वचनं बुधैः । शक्तिरेव सदासेव्या विद्वद्भिः कृतनिश्चयैः
प्रत्यक्षमपिद्रष्टव्यमशक्तस्यविचेष्टितम् । अतः सर्वेषु भूतेषु ज्ञातव्या शक्तिरेव हि ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे
आराध्यनिर्णयवर्णनं नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

नवमोऽध्यायः

भयाकुलंब्रह्माणम्प्रतिविष्णोःप्रश्नः

सूत उवाच

यदा विनिर्गताविद्रा देहात्तस्य जगद्गुरोः । नेत्रास्यनासिकाबाहुहृदयेभ्यस्तथोरसः
निःसृत्य गगने तस्थौ तामसी शक्तिरुत्तमा । उदतिष्ठज्जगन्नाथो जृम्भमाणः पुनःपुनः
तदाऽपश्यत्स्थितं तत्र भयत्रस्तं प्रजापतिम् । उवाचच महातेजा मेघगम्भीरयागिरा

विष्णुरुवाच

किमागतोऽसि भगवंस्तपस्त्यक्त्वाऽत्र पद्मज ! ।

कस्माच्चिन्तातुरोऽसि त्वं भयाकुलितमानसः ॥ ४ ॥

ब्रह्मोवाच

त्वत्कर्णमलजौ देव! दैत्यौ च मधुकैटभौ । हन्तुं मां समुपायातौ घोररूपौ महाबलौ
भयात्तयोः समायातस्त्वत्समीपं जगत्पते । त्राहिमां वासुदेवाद्य भयत्रस्तंविचेतनम्

विष्णुरुवाच

तिष्ठाद्य निर्भयो जातस्तौहनिष्याम्यहं किल । युद्धायाजग्मतुर्मूढौ मत्समीपंगतायुषौ

सूत उवाच

एवं वदति देवेशे दानवौ तौ महाबलौ । विचिन्वानावजंवोभौ संप्राप्तौ मदगर्वितौ
निराधारौ जले तत्र संस्थितौ विगतज्वरौ । तावूचतुर्मदोन्मत्तौब्रह्माणंमुनिसत्तमाः

पलायित्वा समायातः सन्निधावस्य किं ततः ।

युद्धं कुरु हनिष्यावः पश्यतोऽस्यैव सन्निधौ ॥ १० ॥

पश्चादेनं हनिष्यावः सर्पभोगोपरिस्थितम् । त्वमद्य कुरुसंग्रामंदासोऽस्मीतिचवावद

सूत उवाच

तच्छ्रुत्वा वचनं विष्णुस्तावुवाच जनार्दनः । कुरुतं समरं कामं मया दानवपुङ्गवौ! ॥
हरिष्यामि मदं चाहं युवयोर्मत्तयोः किल । आगच्छतंमहाभागौ श्रद्धाचेद्वांमहाबलौ

सूत उवाच

श्रुत्वा तद्वचनं चोभौक्रोधव्याकुललोचनौ । निराधारौ जलस्थौचयुद्धोद्युक्तौबभूवतुः
मधुश्च कुपितस्तत्र हरिणासह संयुगम् । कर्त्तुं प्रचलितस्तूर्णं कैटभस्तु तथा स्थितः
बाहुयुद्धं तयोरासीन्मल्लयोरिव मत्तयोः । श्रान्ते मधौ कैटभस्तु संग्राममकरोत्तदा
पुनर्मधुः कैटभश्च युयुधाते पुनः पुनः । बाहुयुद्धेन रागांधौ विष्णुना प्रभविष्णुना
प्रेक्षकस्तु तदा ब्रह्मादेवीचैवान्तरिक्षगा । नमम्लतुस्तदातौतुविष्णुस्तुम्लानिमाप्तवान्
पञ्चवर्षसहस्राणि यदा जातानि युद्ध्यता । हरिणा चिन्तितं तत्रकारणंमरणे तयोः
पञ्चवर्षसहस्राणि मया युद्धं कृतं किल । न श्रान्तौ दानवौघोरौश्रान्तोऽहंचैतदद्भुतम्
क्व गतं मे बलंशौर्यं कस्मान्चेमावनामयौ । किमत्र कारणंचिन्त्यंविचार्यमनसात्विह

इति चिन्तापरं दृष्ट्वा हरिं हर्षपरावुभौ । ऊचतुस्तौ मदोन्मत्तौ मेघगम्भीरनिःस्वनौ
तव नो चेद् बलं विष्णो ! यदि श्रान्तोऽसि युद्धतः ।
ब्रूहि दासोऽस्मि वां नूनं कृत्वा शिरसि चाऽञ्जलिम् ॥ २३ ॥
न चेद्युद्धं कुरुष्वाद्य समर्थोऽसि महामते । हत्वा त्वांनिहनिष्यावः पुरुषंचचतुर्मुखम्

सूत उवाच

श्रुत्वा तद्भाषितंविष्णुस्तयोस्तस्मिन्महोदधौ । उवाचवचनंश्लक्ष्णंसामपूर्वंमहामनाः

हरिरुवाच

श्रान्ते भीते त्यक्तशस्त्रे पतिते बालके तथा । प्रहरन्ति न वीरास्ते धर्म एष सनातनः
पञ्चवर्षसहस्राणि कृतं युद्धं मया त्विह । एकोऽहं भ्रातरौ वां च बलिनौसदृशौतथा
कृतं विश्रमणं मध्ये युवाभ्यां च पुनः पुनः । तथा विश्रमणंकृत्वायुध्येऽहंनात्रसंशयः
तिष्ठतां हि युवां तावद्बलवन्तौमदोत्कटौ । विश्रम्याहंकरिष्यामियुद्धंवान्यायमार्गतः

सूत उवाच

इति श्रुत्वा वचस्तस्य विश्रब्धौ दानवोत्तमौ । संस्थितौदूरतस्तत्रसंग्रामेकृतनिश्चयौ
अतिदूरे च तौदृष्ट्वा वासुदेवश्चतुर्भुजः । दध्यौ च मनसा तत्र कारणं मरणे तयोः ॥
चिन्तनाज्ज्ञानमुत्पन्नं देवीदत्तवरावुभौ । कामं वांछितमरणौ न मम्लतुरतस्त्विमौ
वृथा मया कृतं युद्धं श्रमोऽयं मे वृथा गतः । करोमिचकथंयुद्धमेवंज्ञात्वाविनिश्चयम्
अकृते च तथा युद्धे कथमेतौ गमिष्यतः । विनाशं दुःखदो नित्यं दानवौ वरदर्पितौ
भगवत्या वरो दत्तस्तया सोऽपि च दुर्घटः ।
मरणं चेच्छया कामं दुःखितोऽपि न वाञ्छति ॥ ३५ ॥
रोगग्रस्तोऽपि दीनोऽपि न मुमूर्षतिकश्चन । कथंचेमौमदोन्मत्तौमर्तुकामौभविष्यतः
तन्वद्य शरणं यामि विद्यां शक्तिं सुकामदाम् ।
विना तया न सिध्यन्ति कामाः सम्यक्प्रसन्नया ॥ ३७ ॥
एवंसञ्चिन्त्यमानस्तुगगनेसंस्थितांशिवाम् । अपश्यद्भगवान्विष्णुर्योगनिद्रांमनोहराम्
कृताञ्जलिरमेयात्मा तां च तुष्टावयोगवित् । विनाशार्थं तयोस्तत्र वरदां भुवनेश्वरीम्

विष्णुरुवाच

नमोदेवि! महामाये!सृष्टिसंहारकारिणि !। अनादिनिधने!चण्डि!भुक्तिमुक्तिप्रदे! शिवे!
न ते रूपं विजानामि सगुणंनिर्गुणं तथा । चरित्राणिकुतोदेविसंख्यातीतानियानिते
अनुभूतो मयातेद्य प्रभावश्चातिदुर्घटः । यदहं निद्रयालीनः संजातोऽस्मि विचेतनः
ब्रह्मणा चातियत्नेन बोधितोऽपि पुनःपुनः । न प्रबुद्धःसर्वथाऽहंसङ्कोचितषडिन्द्रियः
अचेतनत्वं सम्प्राप्तः प्रभावात्तव चाम्बिके । त्वया मुक्तः प्रबुद्धोऽहंयुद्धं चबहुधाकृतम्

श्रान्तोऽहं न च तौ श्रान्तौ त्वया दत्तवरौ वरौ ।

ब्रह्माणं हन्तुमायातौ दानवौ मदगर्वितौ ॥ ४५ ॥

आहूतौ च मया कामं द्वन्द्वयुद्धायमानदे । कृतं युद्धं महाघोरं मया ताभ्यां महार्णवे
मरणे वरदानं ते ततो ज्ञातं महाद्भुतम् । ज्ञात्वाऽहं शरणं प्राप्तस्त्वामद्य शरणप्रदाम् ॥
साहाय्यं कुरु मे मातः खिन्नोऽहं युद्धकर्मणा । दृप्तौ तौ वरदानेन तव देवार्तिनाशने!॥
हन्तुं मामुद्यतौ पापौ किंकरोमि क यामिच । इत्युक्ता सा तदादेवीस्मितपूर्वमुवाचह
प्रणमन्तं जगन्नाथं वासुदेवं सनातनम् । देवदेव! हरे! विष्णो! कुरु युद्धं पुनः स्वयम्
वञ्चयित्वा त्विमौशूरौ हन्तव्यौचविमोहितौ । मोहयिष्याम्यहंनूनं दानवौवक्रयादृशा

जहि नारायणाऽऽशु त्वं मम मायाविमोहितौ ।

सूत उवाच

तच्छ्रुत्वा वचनं विष्णुस्तस्याः प्रीतिरसान्वितम् ॥ ५२ ॥

संग्रामस्थलमासाद्य तस्थौतत्रमहार्णवे । तदाऽऽयातौच तौ धीरौयुद्धकामौमहाबलौ
वीक्ष्य विष्णुं स्थितं तत्र हर्षयुक्तौ बभूवतुः । तिष्ठ तिष्ठ महाकाम कुरुयुद्धं चतुर्भुज
दैवाधीनौ विदित्वाऽद्य नूनं जयपराजयौ । सबलो जयमाप्नोति दैवाज्जयति दुर्बलः॥
सर्वथैव न कर्तव्यौ हर्षशोकौ महात्मना । पुरा वै बहवो दैत्या जिता दानववैरिणा

अधुना चाऽनयोः सार्धं युध्यमानः पराजितः ।

सूत उवाच

इत्युक्त्वा तौ महाबाहू युद्धाय समुपस्थितौ ॥ ५७ ॥

वीक्ष्य विष्णुश्चचाराशु मुष्टिनाऽद्भुतकर्मणा । तावप्यतिबलोन्मत्तौ जघ्नतुर्मुष्टिनाहरिम्
एवं परस्परं जातं युद्धं परमदारुणम् । युद्धमानौ महावीर्यौ दृष्ट्वा नारायणस्तदा ॥
अपश्यत्सम्मुखं देव्याः कृत्वा दीनां दृशं हरिः ।

सूत उवाच

तं वीक्ष्य तादृशं विष्णुं करुणारससंयुतम् ॥ ६० ॥

जहासाऽतीव ताम्राक्षीवीक्षमाणात्तदाऽसुरौ । तौ जघान कटाक्षैश्चकामबाणैरिवापरैः
मन्दस्मितयुतैः कामप्रेमभावयुतैरनु । दृष्ट्वा मुमुहतुः पापौ देव्या वक्रविलोकनम् ॥
विशेषमितिमन्वानौकामबाणातिपीडितौ । वीक्षमाणौस्थितौतत्रतांदेवींविशदप्रभाम्
हरिणाऽपि च तद् दृष्टं देव्यास्तत्र चिकीर्षितम् ।
मोहितौ तौ परिज्ञाय भगवान्कार्यवित्तमः ॥ ६४ ॥

उवाच तौ हसञ्श्लक्ष्णं मेघगम्भीरयागिरा । वरं वरयतां वीरौयुवयोर्योऽभिवांछितः
ददामि परमप्रीतो युद्धेन युवयोः किल । दानवा बहवो दृष्टा युध्यमाना मया पुरा ॥
युवयोः सदृशः कोऽपिनदृष्टोनचवैश्रुतः । तस्मात्तुष्टोऽस्मि कामं वै निस्तुलेनबलेनच
भ्रात्रोश्च वाञ्छितं कामं प्रयच्छामि महाबलौ ।

सूत उवाच

तच्छ्रुत्वा वचनं विष्णोः साभिमानौ स्मरातुरौ ॥ ६८ ॥

वीक्षमाणौ महामायां जगदानन्दकारिणीम् । तमूचतुश्चकामार्तौविष्णुंकमललोचनौ
हरे न याचकावावां त्वंकिं दातुमिहेच्छसि । ददाव तुभ्यं देवेशदातारौनौनयाचकौ
प्रार्थय त्वं हृषीकेश ! मनोभिलषितं वरम् । तुष्टौ स्वस्तव युद्धेन वासुदेवाद्भुतेन च॥
तयोस्तद्वचनं श्रुत्वा प्रत्युवाच जनार्दनः । भवेतामद्य मे तुष्टौ मम वध्यावुभावपि ॥

सूत उवाच

तच्छ्रुत्वा वचनं विष्णोर्दानवौ चाऽतिविस्मितौ ।
वञ्चितावितिमन्वानौ तस्थतुः शोकसंयुतौ ॥ ७३ ॥

विचार्य मनसा तौतु दानवौ विष्णुमूचतुः । प्रेक्ष्यसर्वं जलमयं भूमिस्थलविवर्जिताम्

हरे योऽयं वरो दत्तस्त्वया पूर्वं जनार्दन । सत्यवागसि देवेश देहि तं वाञ्छितं वरम्
निर्जले विपुले देशे हनस्व मधुसूदन । वध्यावावां तु भवतः सत्यवाग्भव माधव !॥
स्मृत्वाचक्रन्तदा विष्णुस्तावुवाचहसन्हरिः । हन्म्यद्यवांमहाभागौनिर्जलेविपुलेस्थले
इत्युक्त्वा देवदेवेश ऊरू कृत्वाऽतिविस्तरौ । दर्शयामास तौ तत्र निर्जलं च जलोपरि
नास्त्यत्र दानवौ वारि शिरसी मुञ्चतामिह । सत्यवागहमप्येव भविष्यामिचवांतथा
तदाकर्ण्य वचस्तथ्यं विचिन्त्य मनसा च तौ । वर्धयामासतुर्देहंयोजनानांसहस्रकम्
भगवान्द्विगुणं चक्रे जघनं विस्मितौ तदा । शीर्षे सन्दधतां तत्र जघने परमाद्भुते ॥
रथाङ्गेन तदा भिन्ने विष्णुना प्रभविष्णुना । जघनोपरि वेगेन प्रकृष्टे शिरसी तयोः॥
गतप्राणौ तदा जातौ दानवौ मधुकैटभौ । सागरः सकलोव्याप्तस्तदावै मेदसातयोः
मेदिनीति ततो जातं नाम पृथ्व्याः समन्ततः । अभक्ष्यामृत्तिकातेन कारणेनमुनीश्वराः

इति वः कथितं सर्वं यत्पृष्टोऽस्मि सुनिश्चितम् ।
महाविद्या महामाया सेवनीया सदा बुधैः ॥ ८५ ॥

आराध्या परमा शक्तिः सर्वैरपि सुरासुरैः । नातः परतरं किंचिदधिकं भुवनत्रये ॥
सत्यंसत्यंपुनःसत्यं वेदशास्त्रार्थनिर्णयः । पूजनीयापरा शक्तिर्निर्गुणा सगुणाऽथवा॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे
हरिकृत मधुकैटभवधवर्णनं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दशमोऽध्यायः

व्यासतपश्चर्यावर्णनम्

ऋषय ऊचुः

सूतपूर्वंत्वया प्रोक्तं व्यासेनामिततेजसा । कृत्वापुराणमखिलंशुकायाऽध्यापितंशुभम्
व्यासेनतुतपस्तप्त्वाकथमुत्पादितःशुकः । विस्तरंब्रूहिसकलं यच्छ्रुतंकृष्णतस्त्वया॥

सूत उवाच

प्रवक्ष्यामि शुकोत्पत्तिं व्यासात्सत्यवतीसुतात् ।
अथोत्पन्नः शुकः साक्षाद्योगिनां प्रवरो मुनिः ॥ ३ ॥

मेरुशृङ्गे महारम्ये व्यासः सत्यवतीसुतः । तपश्चचार सोऽत्युग्रं पुत्रार्थं कृतनिश्चयः ॥
जपन्नेकाक्षरंमन्त्रंवाग्बीजंनारदाच्छ्रुतम् । ध्यायन्परां महामायां पुत्रकामस्तपोनिधिः
अग्नेर्भूमेस्तथा वायोरन्तरिक्षस्यचाप्ययम् । वीर्येण संमितःपुत्रोममभूयादिति स्म ह
अतिष्ठत्स गताहारः शतसंवत्सरं प्रभुः । आराधयन्महादेवं तथैव च सदाशिवाम् ॥
शक्तिःसर्वत्रपूज्येति विचार्य च पुनः पुनः । अशक्तो निन्द्यते लोके शक्तस्तु परिपूज्यते
यत्र पर्वतशृङ्गे वै कर्णिकारवनाद्भुते । क्रीडन्तिदेवताः सर्वे मुनयश्च तपोधिकाः ॥
आदित्यावसवोरुद्रा मरुतश्चाश्विनौतथा । वसन्तिमुनयो यत्र ये चान्ये ब्रह्मवित्तमाः
तत्र हेमगिरेः शृङ्गे सङ्गीतध्वनिनादिते । तपश्चचार धर्मात्मा व्यासः सत्यवतीसुतः
ततोऽस्यतेजसाव्याप्तं विश्वं सर्वंचराचरम् । अग्निवर्णाजटाजाता.पाराशर्यस्यधीमतः
ततोऽस्य तेजआलक्ष्य भयमापशचीपतिः । तुरासाहं तदा दृष्ट्वा भयत्रस्तं श्रमातुरम्
उवाच भगवान्रुद्रो मघवन्तं तथास्थितम् ।

शङ्कर उवाच

कथमिन्द्राद्य भीतोऽसि किं दुःखं ते सुरेश्वर!॥ १४ ॥

अमर्षो नैव कर्तव्यस्तापसेषु कदाचन । तपश्चरन्ति मुनयो ज्ञात्वा मां शक्तिसंयुतम्
न त्वेतेऽहितमिच्छन्ति तापसाः सर्वथैवहि । इत्युक्तवचनः शक्रस्तमुवाच वृषध्वजम्
कस्मात्तपस्यति व्यासः कोऽर्थस्तस्य मनोगतः ।

शिव उवाच

पाराशर्यस्तु पुत्रार्थी तपश्चरति दुश्चरम् ॥ १७ ॥
पूर्णं वर्षशतं जातं ददाम्यद्य सुतं शुभम् ।

सूत उवाच

इत्युक्त्वा वासवं रुद्रो दयया मुदिताननः ॥ १८ ॥

गत्वा श्रविलमीपन्तु समुवाच जगद्गुरुः । उत्तिष्ठ वासवीपुत्र पुत्रस्ते भविताशुभः॥
सर्वतेजोमयोज्ञानी कीर्तिकर्ता तवाऽनघ । अखिलस्य जनस्यात्र वल्लभस्ते सुतः सदा
भविष्यति गुणैः पूर्णः सात्त्विकैः सत्यविक्रमः ।

सूत उवाच

तदाकर्ण्य वचः श्लक्ष्णं कृष्णद्वैपायनस्तदा ॥ २१ ॥

शूलपाणिं नमस्कृत्य जगामाऽऽश्रमात्मनः । स गत्वाऽऽश्रममेवाशु बहुवर्षश्रमातुरः
अरणीसहितं गुह्यं ममन्थाऽग्निं चिकीर्षया । मन्थनं कुर्वतस्तस्य चित्ते चिन्ताभरस्तदा
प्रादुर्बभूव सहसा सुतोत्पत्तौ महात्मनः । मन्थानारणिसंयोगान्मन्थनाच्च समुद्भवः॥
पावकस्य यथा तद्वत्कथं मे स्यात्सुतोद्भवः। पुत्रारणिस्तु याख्याता सामम नाद्य न विद्यते
तरुणी रूपसम्पन्ना कुलोत्पन्ना पतिव्रता । कथं करोमि कान्तां च पादयोः शृङ्खलासमाम्
पुत्रोत्पादनदक्षां च पातिव्रत्ये सदा स्थिताम् । पतिव्रताऽपि दक्षाऽपि रूपवत्यपि कामिनी
सदाबन्धनरूपा च स्वेच्छासुखविधायिनी । शिवोऽपि वर्तते नित्यं कामिनीपाशसंयुतः
कथं करोम्यहं चात्र दुर्घटं च गृहाश्रमम् । एवं चिन्तयतस्तस्य घृताची दिव्यरूपिणी ॥
प्राप्ता दृष्टिपथं तत्र समीपे गगने स्थिता । तां दृष्ट्वा चपलापाङ्गीं समीपस्थां वराप्सराम्
पञ्चबाणपरीतांगस्तूर्णमासीद्धृतव्रतः । चिन्तयामास च तदा किं करोम्यद्य सङ्कटे ॥
धर्मस्य पुरतः प्राप्ते कामभावे दुरासदे । अङ्गीकरोमि यद्येनां वञ्चनार्थमिहागताम् ॥
हसिष्यन्ति महात्मानस्तापसा मां तु विह्वलम् । तपस्तप्त्वा महाघोरं पूर्णं वर्षशतं त्विह
दृष्ट्वाऽप्सरां च विवशः कथं जातो महातपाः । कामनिन्दाऽपि भवतु यदि स्यादतुलं सुखम्
गृहस्थाश्रमसम्भूतं सुखदं पुत्रकामदम् । स्वर्गदं च तथा प्रोक्तं ज्ञानिनां मोक्षदं तथा
न भविष्यति तन्नूनमनया देवकन्यया । नारदाच्च मयापूर्वं श्रुतमस्ति कथानकम् ॥
यथोर्वशीवशो राजा पराभूतः पुरूरवाः ॥ ३६ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे
शिववरदानवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

एकादशोऽध्यायः

तारोपाख्यानवर्णनम्

ऋषय ऊचुः

कोऽसौ पुरूरवा राजा कोर्वशीदेवकन्यका । कथं कष्टञ्च सम्प्राप्तंतेनराज्ञामहात्मना
सर्वम्कथानकम्ब्रूहि लोमहर्षणजाऽधुना । श्रोतुकामावयं सर्वे त्वन्मुखाब्जच्युतंरसम्
अमृतादपि मिष्टा ते वाणी सूत! रसात्मिका । नतृप्यामोवयंसर्वेसुधयाचयथाऽमराः

सूत उवाच

श्रृणुध्वं मुनयः सर्वे कथां दिव्यां मनोरमाम् ।
वक्ष्याम्यहं यथा बुद्ध्या श्रुतां व्यासवरोत्तमात् ॥ ४ ॥

गुरोस्तुदयिता भार्या तारानामेति विश्रुता । रूपयौवनयुक्तासा चार्वङ्गी मदविह्वला
गतैकदाविधोर्धाम यजमानस्य भामिनी । दृष्टा च शशिनाऽत्यर्थं रूपयौवनशालिनी
कामातुरस्तदाजातःशशीशशिमुखींप्रति । साऽपिवीक्ष्यविधुंकामंजातामदनपीडिता॥
तावन्योन्यंप्रेमयुक्तौ स्मरार्तौ च बभूवतुः । तारा शशीमदोन्मत्तौकामबाणप्रपीडितौ
रेमाते मदमत्तौ तौ परस्परस्पृहान्वितौ । दिनानि कतिचित्तत्र जातानिरममाणयोः
बृहस्पतिस्तु दुःखार्तस्तारामानयितुंगृहम् । प्रेषयामासशिष्यन्तुनायातासा वशीकृता
पुनः पुनर्यदा शिष्यं परावर्तत चन्द्रमाः । बृहस्पतिस्तदा क्रुद्धो जगाम स्वयमेव हि ॥
गत्वा सोमगृहं तत्र वाचस्पतिरुदारधीः। उवाचशशिनं क्रुद्धः स्मयमानं मदान्वितम्
किंकृतंकिल शीतांशो कर्मधर्मविगर्हितम् । रक्षिता मम भार्येयं सुन्दरी केन हेतुना ॥
तव देवगुरुश्चाहं यजमानोऽसि सर्वथा । गुरुभार्या कथं मूढ भुक्ता किं रक्षिताऽथवा
ब्रह्महा हेमहारी च सुरापो गुरुतल्पगः । महापातकिनो ह्येते तत्संसर्गी च पञ्चमः ॥
महापातकयुक्तस्त्वं दुराचारोऽतिगर्हितः । न देवसदनार्होऽसि यदि भुक्तेयमङ्गना ॥
मुञ्चेमामसितापांगीं नयामि सदनं मम । नोचेद्वक्ष्यामि दुष्टात्मन्गुरुदारापहारिणम् ॥

इत्येवं भाषमाणं तमुवाच रोहिणीपतिः । गुरुं क्रोधसमायुक्तं कान्ताविरहदुःखितम्

इन्दुरुवाच

क्रोधात्तेतुदुराराध्याब्राह्मणा क्रोधवर्जिताः। पूजार्हाधर्मशास्त्रज्ञावर्जनीयास्ततोऽन्यथा
आगमिष्यतिसाकामंगृहन्तेवरवर्णिनी । अत्रैवसंस्थिता बाला का ते हानिरिहाऽनघ

इच्छया संस्थिता चात्र सुखकामार्थिनी हि सा ।

दिनानि कतिचित्स्थित्वा स्वेच्छया चाऽऽगमिष्यति ॥ २१ ॥

त्वयैवोदाहृतं पूर्वं धर्मशास्त्रमतं तथा । न स्त्री दुष्यतिचारेण न विप्रो वेदकर्मणा ॥
इत्युक्तः शशिना तत्र गुरुरत्यन्तदुःखितः । जगामस्वगृहं तूर्णंचिन्ताविष्टः स्मरातुरः॥
दिनानि कतिचित्तत्र स्थित्वाचिन्तातुरोगुरुः । ययावथगृहंतस्य त्वरितश्चौषधीपतेः
स्थितःक्षत्त्रानिषिद्धोऽसौद्वारदेशेरुषाऽन्वितः । नाजगामशशीतत्रचुकोपातिबृहस्पतिः
अयंमेशिष्यतांयातो गुरुपत्नीं तु मातरम् । जग्राहबलतोऽधर्मो शिक्षणीयो मयाऽधुना
उवाचवाचं कोपात्तु द्वारदेशे स्थितो बहिः । किं शेषे भवनेमन्द पापाचार सुराधम
देहिमे कामिनीं शीघ्रं नोचेच्छापंददाम्यहम् । करोमिभस्मसान्नूनंनददासिप्रियांमम

सूत उवाच

क्रूराणिचवमादीनिभाषणानि बृहस्पतेः । श्रुत्वाद्विजपतिः शीघ्रं निर्गतःसदनाद्बहिः
तमुवाचहसन्सोमःकिमिदं बहुभाषसे । न ते योग्याऽसितापांगी सर्वलक्षणसंयुता ॥
कुरूपाञ्च स्वसदृशींगृहाणान्यांस्त्रियंद्विज !। भिक्षुकस्य गृहे योग्या नेदृशी वरवर्णिनी

रतिः स्वसदृशे कान्ते नार्याः किल निगद्यते ।

त्वं न जानासि मन्दात्मन्कामशास्त्रविनिर्णयम् ॥ ३२ ॥

यथेष्टं गच्छ दुर्बुद्धे नाहंदास्यामि कामिनीम् । यच्छक्यंकुरुतत्कामंनदेयावरवर्णिनी
कामार्तस्यच ते शापो न मां बाधितुमर्हसि । नाहंददेगुरोकान्तां यथेच्छसितथाकुरु

सूत उवाच

इत्युक्तः शशिना चेज्यश्चिन्तामाप रुषान्वितः । जगामतरसासद्म क्रोधयुक्तःशचीपतेः
दृष्ट्वा शतक्रतुस्तत्र गुरुं दुःखातुरंस्थितम् । पाद्यार्घ्याचमनीयाद्यैःपूजयित्वासुसंस्थितः

पप्रच्छ परमोदारस्तंतथाऽवस्थितंगुरुम् । कश्चिन्तातेमहाभागशोकार्तोऽसिमहामुने
केनाऽपमानितोऽसि त्वं मम राज्येगुरुश्रमे । त्वदधीनमिदं सर्वं सैन्यंलोकाधिपैःसह
ब्रह्मा विष्णुस्तथा शम्भुर्ये चाऽन्ये देवसत्तमाः ।
करिष्यन्ति च साहाय्यं का चिन्ता वद साम्प्रतम् ॥ ३६ ॥

गुरुरुवाच

शशिनाऽपहृता भार्या तारा मम सुलोचना । नददातिसदुष्टात्माप्रार्थितोऽपिपुनःपुनः
किं करोमि सुरेशान त्वमेव शरणं मम । साहाय्यं कुरु देवेश दुःखितोऽस्मिशतक्रतो

इन्द्र उवाच

मा शोकं कुरु धर्मज्ञ दासोऽस्मितव सुव्रत । आनयिष्याम्यहं नूनं भार्यां तवमहामते
प्रेषिते चेन्मया दूते न दास्यति मदाकुलः । ततो युद्धं करिष्यामि देवसैन्यैःसमावृतः
इत्याश्वास्य गुरुं शक्रो दूतं वक्तुं विचक्षणम् ।
प्रेषयामास सोमाय वार्ताशंसिनमद्भुतम् ॥ ४४ ॥

स गत्वा शशिलोकं तु त्वरितः सुविचक्षणः । उवाच वचनेनैव वचनं रोहिणीपतिम्
प्रेषितोऽहं महाभाग शक्रेणत्वां विवक्षया । कथितं प्रभुणा यच्च तद्ब्रवीमि महामते
धर्मज्ञोऽसि महाभाग नीतिं जानासिसुव्रत । अत्रिः पितातेधर्मात्माननिंद्यं कर्तुमर्हसि
भार्या रक्ष्या सर्वभूतैर्यथाशक्ति ह्यतन्द्रितैः । तदर्थे कलहः कामं भविता नात्र संशयः
यथा तव तथा तस्य यत्नः स्याद्दाररक्षणे । आत्मवत्सर्वभूतानि चिन्तयत्वंसुधानिधे
अष्टाविंशतिसंख्यास्ते कामिन्यो दक्षजाः शुभाः ।
गुरुपत्नीं कथं भोक्तुं त्वमिच्छसि सुधानिधे ! ॥ ५० ॥

स्वर्गे सदावसन्त्येतामेनकाद्याःमनोरमाः । भुङ्क्ष्वताःस्वेच्छयाकामंमुञ्चपत्नींगुरोरपि
ईश्वरा यदि कुर्वन्ति जुगुप्सितमहन्तया । अज्ञास्तदनुवर्तन्ते तदा धर्मक्षयो भवेत् ॥
तस्मान्मुञ्च महाभागगुरोःपत्नींमनोरमाम् । कलहस्त्वन्निमित्तोऽद्यसुराणांनभवेद्यथा

सूत उवाच

सोमः शक्रवचः श्रुत्वाकिंचित्क्रोधसमाकुलः । भंग्या प्रतिवचः प्राह शक्रदूतंतदाशशी

इन्दुरुवाच

धर्मज्ञोऽसि महाबाहो देवानामधिपः स्वयम्। पुरोधाऽपि च ते तादृग्युवयोः सदृशी मतिः
परोपदेशे कुशला भवन्ति बहवो जनाः। दुर्लभस्तु स्वयं कर्ता प्राप्ते कर्मणि सर्वदा
बार्हस्पत्यप्रणीतं च शास्त्रं गृह्णन्ति मानवाः। को विरोधोऽत्र देवेश कामयानां भजन्प्रियम्
स्वकीयं बलिनां सर्वं दुर्बलानां न किञ्चन। स्वीया च परकीया च भ्रमोऽयं मन्दचेतसाम्
तारा मय्यनुरक्ता च यथा न तु तथा गुरौ। अनुरक्ता कथं त्याज्या धर्मतो नान्यतस्तथा
गृहारम्भस्तु रक्तायां विरक्तायां कथं भवेत्। विरक्तेयं तदा जाता चकमेऽनुजकामिनीम्
न दास्येऽहं वरारोहां गच्छ दूत वदस्व यम्। ईश्वरोऽसि सहस्राक्ष यदिच्छसि कुरुष्व तत्

सूत उवाच

इत्युक्तः शशिना दूतः प्रययौ शक्रसन्निधिम्। इन्द्रायाऽऽचष्ट तत्सर्वं यदुक्तं शीतरश्मिना
तुराषाडपि तच्छ्रुत्वा क्रोधयुक्तो बभूव ह। सेनोद्योगं तथा चक्रे साहाय्यार्थं गुरोर्विभुः
शुक्रस्तु विग्रहं श्रुत्वा गुरुद्वेषात्ततो ययौ। मा ददस्वेति तं वाक्यमुवाच शशिनं प्रति

साहाय्यं ते करिष्यामि मन्त्रशक्त्या महामते!।
भविता यदि संग्रामस्तव चेन्द्रेण मारिष! ॥ ६५ ॥

शङ्करस्तु तदाकर्ण्य गुरुदाराभिमर्शनम्। गुरुशत्रुं भृगुं मत्वा साहाय्यमकरोत्तदा ॥
संग्रामस्तु तदा वृत्तो देवदानवयोर्द्रुतम्। बहूनि तत्र वर्षाणि तारकासुरवत्किल ॥
देवासुरकृतं युद्धं दृष्ट्वा तत्र पितामहः। हंसारूढो जगामाऽऽशु तं देशं क्लेशशान्तये
राकापतिं तदा प्राह मुञ्च भार्यां गुरोरिति। नोचेद्विष्णुं समाहूय करिष्यामि तु संक्षयम्
भृगुं निवारयामास ब्रह्मा लोकपितामहः। किमन्यायमतिर्जाता संगदोषान्महामते! ॥
निषेधयामास ततो भृगुस्तं चौषधीपतिम्। मुञ्च भार्यां गुरोरद्य पित्राऽहं प्रेषितस्तव

सूत उवाच

द्विजराजस्तु तच्छ्रुत्वा भृगोर्वचनमद्भुतम्। ददौ च तत्प्रियां भार्यां गुरोर्गर्भवतीं शुभाम्

प्राप्य कान्तां गुरुर्हृष्टः स्वगृहं मुदितो ययौ।
ततो देवास्ततो दैत्या ययुः स्वान्स्वान्गृहान्प्रति ॥ ७२ ॥

ब्रह्मा स्वसदनं प्रातःकैलासंचाऽपिशङ्करः । बृहस्पतिस्तुसन्तुष्टःप्राप्यभार्यांमनोरमाम्
ततः कालेन कियता ताराऽसूत सुतं शुभम् । सुदिने शुभनक्षत्रे तारापतिसमं गुणैः॥
दृष्ट्वा पुत्रं गुरुर्जातं चकार विधिपूर्वकम् । जातकर्मादिकं सर्वं प्रहृष्टेनान्तरात्मना
श्रुतं चन्द्रमसा जन्म पुत्रस्य मुनिसत्तमाः । दूतञ्च प्रेषयामास गुरुम्प्रति महामतिः ॥
न चायं तवपुत्रोऽस्तिममवीर्यसमुद्भवः । कथं त्वं कृतवान्कामं जातकर्मादिकंविधिम्
तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य दूतस्य च बृहस्पतिः । उवाच मम पुत्रोमे सदृशो नात्र संशयः
पुनर्विवादः सञ्जातो मिलिता देवदानवाः । युद्धार्थमागतास्तेषां समाजः समजायत॥
तत्राऽऽगतःस्वयंब्रह्माशान्तिकामःप्रजापतिः ।निवारयामासमुखेसंस्थितान्युद्धदुर्मदान्
तारां प्रपच्छ धर्मात्मा कस्यायं तनयः शुभे । सत्यं वदवरारोहेयथा क्लेशःप्रशाम्यति
तमुवाचाऽसितापाङ्गी लज्जमानाऽप्यऽधोमुखी । चन्द्रस्येति शनैरन्तर्जगामवरवर्णिनी
जग्राहतं सुतं सोमः प्रहृष्टेनान्तरात्मना । नाम चक्रे बुध इति जगाम स्वगृहं पुनः ॥
ययौ ब्रह्मा स्वकं धाम सर्वे देवाः सवासवाः । यथागतं गतं सर्वैः सर्वशः प्रेक्षकैर्जनैः
कथितेयं बुधोत्पत्तिर्गुरुक्षेत्रे च सोमतः । तथा श्रुता मयापूर्वंव्यासात्सत्यवतीसुतात्

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे
बुधोत्पत्तिर्नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

द्वादशोऽध्यायः

पुरूरवसउत्पत्तिपूर्वकसुद्युम्नोपाख्यानवर्णनम्

सूत उवाच

ततः पुरूरवा जज्ञे इलायां कथयामि वः । बुधपुत्रोऽतिधर्मात्मायज्ञदानतत्परः ॥१॥
सुद्युम्नो नाम भूपालः सत्यवादी जितेन्द्रियः । सैन्धवं हयमारुह्य चचार मृगयां वने
युतः कतिपयामात्यैर्दंशितभ्राजत्कुण्डलः । धनुराजगवं बद्ध्वा बाणसंघं तथाऽद्भुतम्

स भ्रमंस्तद्वनोद्देशे हन्यमानो रुरून्मृगान् । शशांश्च सूकरांश्चैव खड्गांश्चगवयांस्तथा
शरभान्महिषांश्चैवसामरान्वनकुक्कुटान् । निघ्नन्मेध्यान्पशून्राजा कुमारवनमाविशत्
मेरोरधस्तले दिव्यं मंदारद्रुमराजितम् । अशोकलतिकाकीर्णं बकुलैरधिवासितम् ॥
सालैस्तालैस्तमालैश्च चम्पकैःपनसैस्तथा । आम्रैर्नीपैर्मधूकैश्च माधवीमण्डपावृतम्
दाडिमैर्नारिकेलैश्च कदलीखण्डमण्डितम् । यूथिका मालतीकुन्दपुष्पवल्लीसमावृतम्
हंसकारण्डवाकीर्णं कीचकध्वनिनादितम् । भ्रमरालिरुतारामं वनं सर्वसुखावहम् ॥

दृष्ट्वा प्रमुदितो राजा सुद्युम्नः सेवकैर्वृतः ।
वृक्षान्सुपुष्पितान्वीक्ष्य कोकिलारावमण्डितान् ॥ १० ॥

प्रविष्टस्तत्र राजर्षिः स्त्रीत्वमापक्षणात्ततः । अश्वोऽपिवडवाजातश्चिन्ताविष्टःसभूपतिः
किमेतदिति चिन्तार्तश्चिन्त्यमानःपुनः पुनः । दुःखंवहुतरंप्राप्तःसुद्युम्नोलज्जयाऽन्वितः
किं करोमि कथं यामि गृहंस्त्रीभावसंयुतः । कथंराज्यंकरिष्यामिकेनवावञ्चितोह्यहम्

ऋषय ऊचुः

सूताश्चर्यमिदं प्रोक्तं त्वया यल्लोमहर्षण । सुद्युम्नः स्त्रीत्वमापन्नो भूपतिर्देवसन्निभः ॥
किंतत्कारणमाचक्ष्व वने तत्र मनोहरे । किंकृतं तेन राज्ञा च विस्तरं वद सुव्रत ! ॥

सूत उवाच

एकदा गिरिशं द्रष्टुमृषयः सनकादयः । दिशोवितिमिराभासाः कुर्वंतः समुपागमन्
तस्मिंश्चसमये तत्र शङ्करः प्रमदायतः । क्रीडासक्तो महादेवो विवस्त्रा कामिनी शिवा

उत्सङ्गे संस्थिता भर्तू रममाणा मनोरमा ।
तान्विलोक्याऽम्बिका देवी विवस्त्रा व्रीडिता भृशम् ॥ १८ ॥

भर्तुरंकात्समुत्थाय वस्त्रमादायपर्यधात् । लज्जाविष्टास्थितातत्रवेपमानाऽतिमानिनी
ऋषयोऽपि तयोर्वीक्ष्य प्रसङ्गं रममाणयोः । परिवृत्य ययुस्तूर्णं नरनारायणाश्रमम्
ह्रीयुक्तां कामिनीं वीक्ष्यप्रोवाचभगवान्हरः । कथंलज्जातुराऽसित्वंसुखंतेप्रकरोम्यहम्
अद्यप्रभृति योमोहात्पुमान्कोऽपिवरानने । वनं च प्रविशेदेतत्स वै योषिद्भविष्यति
इति शप्तं वनं तेन ये जानन्ति जनाः क्वचित् । वर्जयंतीह तेकामं वनं दोषसमृद्धिमत्

सुद्युम्नस्तु तदाश्रमात्प्रविष्टः सचिवैः सह । तथैव स्त्रीत्वमापन्नस्तैः सहेति न संशयः
चिन्ताविष्टः स राजर्षिर्न जगाम गृहं ह्रिया । विचचार बहिस्तस्माद्वनदेशाद्विशस्ततः
इलेति नाम सम्प्राप्तं स्त्रीत्वे तेन महात्मना । विचरंस्तत्र सम्प्राप्तोबुधःसोमसुतोयुवा
स्त्रीभिः परिवृतां तांतुदृष्ट्वाकान्तांमनोरमाम् । हावभावकलायुक्तां चकमेभगवान्बुधः
साऽपितंचकमेकान्तंबुधंसोमसुतंपतिम् । संयोगस्तत्रसञ्जातस्तयोः प्रेम्णा परस्परम्
स तस्यां जनयामास पुरूरवसमात्मजम् ॥ २६ ॥
सा प्रासूतसुतंबालाचिन्ताविष्टावनेस्थिता । सस्मारस्वकुलाचार्यंवसिष्ठंमुनिसत्तमम्
स तदाऽस्य दशां दृष्ट्वा सुद्युम्नस्य कृपान्वितः । अतोषयन्महादेवं शङ्करं लोकशङ्करम्
तस्मैसभगवांस्तुष्टः प्रददौवाञ्छितं वरम् । वसिष्ठःप्रार्थयामासपुंस्त्वंराज्ञःप्रियस्य च
शङ्करस्तु निजां वाचमृतां कुर्वन्नुवाच ह । मासं पुमांस्तुभवितामासंस्त्रीभूपतिःकिल
इत्थं प्राप्य वरंराजाजगामस्वगृहं पुनः । चक्रे राज्यं सधर्मात्मावसिष्ठस्याप्यनुग्रहात्
स्त्रीत्वे तिष्ठति हर्म्येषु पुंस्त्वे राज्यं प्रशास्ति च ।
प्रजास्तस्मिन्समुद्विग्ना नाऽभ्यनन्दन्महीपतिम् ॥ ३५ ॥
कालेतु यौवनं प्राप्तः पुत्रः पुरूरवास्तदा । प्रतिष्ठां नृपतिस्तस्मै दत्त्वा राज्यं वनंययौ
गत्वा तस्मिन्वने रम्ये नानाद्रुमसमाकुले । नारदान्मन्त्रमासाद्य नवाक्षरमनुत्तमम् ॥
जजाप मन्त्रमत्यर्थं प्रेमपूरितमानसः । परितुष्टा तदा देवी सगुणा तारिणीशिवा ॥
सिंहारूढा स्थिता चाग्रे दिव्यरूपा मनोरमा । वारुणीपानसंमत्तामदाघूर्णितलोचना
दृष्ट्वा तां दिव्यरूपां च प्रेमाकुलितलोचनः । प्रणम्यशिरसाप्रीत्यातुष्टावजगदम्बिकाम्

इलोवाच

दिव्यं च ते भगवति ! प्रथितं स्वरूपं दृष्टं मया सकललोकहितानुरूपम् ।
वन्दे त्वदंघ्रिकमलं सुरसङ्घसेव्यं कामप्रदं जननि! चाऽपि विमुक्तिदञ्च॥४१॥
को वेत्ति तेऽम्ब भुवि मर्त्यतनुर्निकामं मुह्यन्ति यत्र मुनयश्च सुराश्च सर्वे ।
ऐश्वर्यमेतदखिलं कृपणे दयां च दृष्ट्वैव देवि! सकलं किल विस्मयो मे ॥४२ ॥
शम्भुर्हरिः कमलजो मघवा रविश्च वित्तेशवह्निवरुणाः पवनश्च सोमः ।

जानन्ति नैव वसवोऽपि हि ते प्रभावं बुध्येत्कथं तव गुणानगुणो मनुष्यः ॥
जानाति विष्णुरमितद्युतिरम्ब साक्षात्त्वां सात्त्विकीमुदधिजां सकलार्थदां च
को राजसीं हर उमां किल तामसीं त्वां वेदाऽम्बिके न तु पुनःखलुनिर्गुणांत्वाम्
काऽहं सुमन्दमतिरप्रतिमप्रभावः काऽयं तवाऽर्तिनिपुणो मयि सुप्रसादः ।
जाने भवानि ! चरितं करुणासमेतं यत्सेवकांश्च दयसे त्वयि भावयुक्तान् ॥
वृत्तस्त्वया हरिरसौ वनजेशयाऽपि नैवाचरत्यपि मुदं मधुसूदनश्च ।
पादौ तवाऽऽदिपुरुषः किल पावकेन कृत्वा करोति च करेण शुभौ पवित्रौ॥
वाञ्छत्यहो हरिरशोक इवाऽतिकामं पादाहतिं प्रमुदितः पुरुषः पुराणः ।
तान्त्वं करोषि रुषिता प्रणतञ्च पादे दृष्ट्वा पतिं सकलदेवनुतं स्मरार्तम् ॥
वक्षःस्थले वससि देवि ! सदैव तस्य पर्यङ्कवत्सुचरिते विपुलेऽति शान्ते ।
सौदामनीव सुघने सुविभूषिते च किं ते न वाहनमसौ जगदीश्वरोऽपि ॥
त्वं चेज्जहासि मधुसूदनमम्ब कोपान्नैवार्चितोऽपि स भवेत्किल शक्तिहीनः ।
प्रत्यक्षमेव पुरुषं स्वजनास्त्यजन्ति शान्तं श्रियोज्झितमतीव गुणैर्वियुक्तम्
ब्रह्मादयः सुरगणा न तु किं युवत्यो ये त्वत्पदाम्बुजमहर्निशमाश्रयन्ति ।
मन्ये त्वयैव विहताः खलु ते पुमांसः किं वर्णयामि तव शक्तिमनन्तवीर्यें ॥
त्वं नाऽपुमांश्च च पुमानिति मे विकल्पो या काऽसिदेवि सगुणाननुनिर्गुणावा
तां त्वां नमामि सततं किल भावयुक्तो वाञ्छामि भक्तिमचलांत्वयिमातरन्ते

सूत उवाच

इतिस्तुत्वा महीपालो जगाम शरणं तदा । परितुष्टा ददौ देवी तत्र सायुज्यमात्मनि
सुद्युम्नस्तु ततः प्राप पदं परमकं स्थिरम् । तस्या देव्याःप्रसादेनमुनीनामपि दुर्लभम्

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे
सुद्युम्नस्तुतिर्नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

— —

त्रयोदशोऽध्यायः

पुरूरवस उर्वश्याश्चचरित्रवर्णनम्

सूत उवाच

सुद्युम्ने तु दिवं याते राज्यं चक्रे पुरूरवाः । सगुणश्च सुरूपश्च प्रजारञ्जनतत्परः ॥
प्रतिष्ठाने पुरे रम्ये राज्यं सर्वनमस्कृतम् । चकार सर्वधर्मज्ञः प्रजारक्षणतत्परः ॥२॥
मन्त्रः सुगुप्तस्तस्यासीत्परत्राभिज्ञतातथा । सदैवोत्साहशक्तिश्च प्रभुशक्तिस्तथोत्तमा
सामदानादयः सर्वे वशगास्तस्य भूपतेः । वर्णाश्रमान्स्वधर्मस्थान्कुर्वन्राज्यंशशास ह
यज्ञांश्च विविधांश्चक्रेस राजा बहुदक्षिणान् । दानानिचविचित्राणिददावथनराधिपः
तस्य रूपगुणौदार्यशीलद्रविणविक्रमान् । श्रुत्वोर्वशी वशीभूता चकमे तं नराधिपम्
ब्रह्मशापाभितप्ता सा मानुषं लोकमास्थिता । गुणिनंतंनृपं मत्वा वरयामासमानिनी
समयं चेदृशं कृत्वा स्थिता तत्र वराङ्गना । एतावुरणकौ राजन्न्यस्तौ रक्षस्व मानद

घृतं मे भक्षणं नित्यं नान्यत्किञ्चिन्नृपाशनम् ।

नेक्षे त्वां च महाराज ! नग्नमन्यत्र मैथुनात् ॥ ६ ॥

भाषाबन्धस्त्वयंराजन्यदिभग्नोभविष्यति।तदात्यक्त्वागमिष्यामिसत्यमेतद्ब्रवीम्यहम्
अङ्गीकृतं च तद्राज्ञा कामिन्याभाषितंतुयत् । स्थिताभाषेणबन्धेनशापानुग्रहकाम्यया
रेमे तदा स भूपालोलीनो वर्षगणान्बहून् । धर्मकर्मादिकंत्यक्त्वाचोर्वश्यामदमोहितः
एकचित्तस्तु सञ्जातस्तन्मनस्कोमहीपतिः । न शशाक तया हीनः क्षणमप्यतिमोहितः
एवं वर्षगणान्ते तु स्वर्गस्थः पाकशासनः । उर्वशीं नागतां दृष्ट्वा गन्धर्वानाहदेवराट्
उर्वशीमानयध्वं भो गन्धर्वाः सर्वएवहि । हृत्वोरणौ गृहात्तस्य भूपतेः समये किल॥
उर्वशीरहितं स्थानं मदीयं नाऽतिशोभते । येनकेनाप्युपायेन तामानयत कामिनीम् ॥
इत्युक्तास्तेऽथ गन्धर्वा विश्वावसुपुरोगमाः । ततो गत्वामहागाढतमसिप्रत्युपस्थिते
जह्रुस्तावुरणौ देवा रममाणं विलोक्यतम् । चक्रन्दतुस्तदातौतुह्रियमाणौ विहायसा

उर्वशी तदुपाकर्ण्य क्रन्दितं सुतयोरिव । कुपितोवाच राजानं समयोऽयं कृतो मया
नष्टाऽहं तव विश्वासाद्धृतौ चोरैर्ममोरणौ । राजन्पुत्रसमावेतौत्वंकिंशेषेस्त्रियासमः

हताऽस्म्यहं कुनाथेन नपुंसा वीरमानिना ।
उरणौ मे गतौ चाऽद्य सदा प्राणप्रियौ मम ॥ २१ ॥

एवं विलप्यमानां तां दृष्ट्वा राजा विमोहितः । नग्न एव ययौ तूर्णं पृष्ठतः पृथिवीपतिः
विद्युत्प्रकाशिता तत्र गन्धर्वैर्नृपवेश्मनि । नग्नभूतस्तया दृष्टो भूपतिर्गन्तुकामया॥२३॥
त्यक्त्वोरणौ गताः सर्वेगन्धर्वाःपथिपार्थिवः । नग्नोजग्राहतौश्रान्तोजगामस्वगृहंप्रति
ततोर्वशीं गतां दृष्ट्वा विललापातिदुःखितः । नग्नं वीक्ष्य पतिंनारीगतासा वरवर्णिनी
क्रन्दन्स देशदेशेषु बभ्रामनृपतिःस्वयम् । तच्चित्तो विह्वलः शोचन्विवशःकाममोहितः
भ्रमन्वै सकलां पृथ्वीं कुरुक्षेत्रे ददर्शताम् । दृष्ट्वा संहृष्टवदनः प्राह सूक्तं नृपोत्तमः ॥
अये जाये तिष्ठ तिष्ठ घोरेनत्यक्तुमर्हसि । मां त्वं त्वन्मनसंक्रान्तंवशगंचाप्यनागसम्
स देहोऽयं पतत्यत्र देविदूरंहृतस्त्वया । खादन्त्येनंवृकाःकाकास्त्वयात्यक्तंवरोरुयत्
एवं विलपमानं तं राजानं प्राह चोर्वशी । दुःखितं कृपणं श्रान्तंकामार्तं विवशंभृशम्

उर्वश्युवाच

मूर्खोऽसि नृपशार्दूल ज्ञानं कुत्र गतं तव । क्वापि सख्यंनचस्त्रीणां वृकाणामिवपार्थिव

न विश्वासो हि कर्तव्यः स्त्रीषु चौरेषु पार्थिवैः ।
गृहं गच्छ सुखं भुङ्क्ष्व मा विषादे मनः कृथाः ॥ ३२ ॥

इत्येवं बोधितो राजा न विवेदातिमोहितः । दुःखंचपरमं प्राप्तःस्वैरिणीस्नेहयन्त्रितः

सूत उवाच

इति सर्वं समाख्यातमुर्वशीचरितं महत् । वेदे विस्तरितं चैतत्संक्षेपात्कथितं मया ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे
पुरूरवसउर्वश्याश्चचरित्रवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

चतुर्दशोऽध्यायः

शुकोत्पत्तिवर्णनम्

सूत उवाच

दृष्ट्वातामसितापाङ्गींव्यासश्चिन्तापरोऽभवत् । किंकरोमिनमेयोग्यादेवकन्येयमप्सराः
एवं चिन्तयमानंतु दृष्ट्वा व्यासं तदाऽप्सराः । भयभीताहिसञ्जाताशापंमांविसृजेदयम्
सा कृत्वाऽथशुकीरूपंनिर्गताभयविह्वला । कृष्णस्तुविस्मयंप्राप्तोविहङ्गींतांविलोकयन्
कामस्तु देहे व्यासस्य दर्शनादेव सङ्गतः । मनोऽतिविस्मितंजातंसर्वगात्रेषुविस्मितः
स तु धैर्येण महता निगृह्णन्मानसं मुनिः । न शशाक नियन्तुं च स व्यासःप्रसृतंमनः
बहुशो गृह्यमाणं च घृताच्या मोहितंमनः । भावित्वान्नैवविधृतंव्यासस्यामिततेजसः
मन्थनं कुर्वतस्तस्य मुनेरग्निचिकीर्षया । अरण्यामेव सहसा तस्य शुक्रमथापतत् ॥७॥

सोऽविचिन्त्य तथा पातं ममन्थारणिमेव च ।
तस्माच्छुकः समुद्भूतो व्यासाकृतिमनोहरः ॥ ८ ॥

विस्मयंजनयन्बालःसञ्जातस्तदरण्यजः । यथाऽध्वरेसमिद्धोऽग्निर्भातिहव्येनदीप्तिमान्
व्यासस्तु सुतमालोक्य विस्मयं परमङ्गतः । किमेतदितिसञ्चिन्त्य वरदानाच्छिवस्यवै
तेजोरूपीशुकोजातोऽप्यरणीगर्भसम्भवः । द्वितीयोऽग्निरिवात्यर्थंदीप्यमानःस्वतेजसा
विलोकयामास तदा व्यासस्तुमुदितंसुतम् । दिव्येन तेजसायुक्तं गार्हपत्यमिवापरम्
गङ्गान्तः स्नापयामाससमागत्यगिरेस्तदा । पुष्पवृष्टिस्तुखाज्जाताशिशोरुपरितापसाः
जातकर्मादिकं चक्रे व्यासस्तस्य महात्मनः । देवदुन्दुभयो नेदुर्ननृतुश्चाऽप्सरोगणाः
जगुर्गन्धर्वपतयो मुदितास्ते दिदृक्षवः । विश्वावसुर्नारदश्च तुम्बुरुः शुकसम्भवे॥१५॥
तुष्टुवुर्मुदिताः सर्वे देवा विद्याधरास्तथा । दृष्ट्वा व्यासमुतं दिव्यमरणीगर्भसम्भवम्

अन्तरिक्षात्पपातोर्व्यां दण्डः कृष्णाजिनं शुभम् ।
कमण्डलुस्तथा दिव्यः शुकस्यार्थे द्विजोत्तमाः ! ॥ १७ ॥

सद्यःसववृधेबालोजातमात्रोऽतिदीप्तिमान्।तस्योपनयनंचक्रेव्यासोविद्याविधानवित्
उत्पन्नमात्रं तं वेदाः सरहस्याः ससंग्रहाः । उपतस्थुर्महात्मानं यथाऽस्य पितरं तथा
यतो दृष्टं शुकीरूपं घृताच्याः सम्भवे तदा । शुकेतिनामपुत्रस्य चकार मुनिसत्तमः
बृहस्पतिमुपाध्यायं कृत्वा व्याससुतस्तदा । व्रतानि ब्रह्मचर्यस्य चकारविधिपूर्वकम्
सोऽधीत्य निखिलान्वेदान्सरहस्यान्ससंग्रहान ।
धर्मशास्त्राणि सर्वाणि कृत्वा गुरुकुले शुकः ॥ २२ ॥
गुरवे दक्षिणां दत्त्वा समावृत्तो मुनिस्तदा । आजगाम पितुःपार्श्वंकृष्णद्वैपायनस्यच
दृष्ट्वा व्यासःशुकं प्राप्तं प्रेम्णोत्थायससम्भ्रमः । आलिलिङ्गमुहुर्घ्राणंमूर्ध्नितस्यचकारह
पप्रच्छ कुशलं व्यासस्तथाचाऽध्ययनं शुचिः ।
आश्वास्य स्थापयामास शुकं तत्राऽऽश्रमे शुभे ॥ २५ ॥
दारकर्म ततो व्यासःशुकस्यपर्यचिन्तयत् । कन्यां मुनिसुतांकान्तामपृच्छदतिवेगवान्
शुकं प्राह सुतं व्यासो वेदोऽधीतस्त्वयाऽनघ ! ।
धर्मशास्त्राणि सर्वाणि कुरु भार्यां महामते ! ॥ २७ ॥
गार्हस्थ्यं च समासाद्य यजदेवान्पितॄनथ । ऋणान्मोचयमांपुत्रप्राप्यदारान्मनोरमान्
अपुत्रस्य गतिर्नास्ति स्वर्गो नैवच नैवच । तस्मात्पुत्र महाभागकुरुष्वाद्य गृहाश्रमम्
कृत्वा गृहाश्रमं पुत्रं सुखिनं कुरु मां शुक !। आशा मे महती पुत्र पूरयस्व महामते!॥
तपस्तप्त्वा महाघोरं प्राप्तोऽसि त्वमयोनिजः । देवरूपी महाप्राज्ञ ! पाहिमांपितरंशुक

सूत उवाच

इतिवादिनमभ्याशेप्राप्तःप्राहशुकस्तदा । विरक्तः सोऽतिरक्तन्तं साक्षात्पितरमात्मनः

शुक उवाच

किंत्वंवदसिधर्मज्ञवेदव्यास महामते । तत्त्वेनाशाधि शिष्यं मां त्वदाज्ञांकरवाण्यलम्

व्यास उवाच

त्वदर्थंयत्तपस्तप्तं मया पुत्र शतं समाः । प्राप्तस्त्वंचातिदुःखेन शिवस्याराधनेन च ॥
ददामितव वित्तन्तु प्रार्थयित्वाऽथभूपतिम् । सुखंभुंक्ष्वमहाप्राज्ञ प्राप्ययौवनमुत्तमम्

शुक उवाच

किं सुखं मानुषे लोके ब्रूहि तात निरामयम् । दुःखविद्धंसुखंप्राज्ञानवदन्तिसुखं किल
स्त्रियंकृत्वामहाभागमथामित्वशानुगः । सुखं किं परतन्त्रस्य स्त्रीजितस्य विशेषतः॥
कदाचिदपिमुच्येत लोहकाष्ठादि यन्त्रितः । पुत्रदारैर्निबद्धस्तु न विमुच्येत कर्हिचित्
विण्मूत्रसम्भवोदेहो नारीणांतन्मयस्तथा । कः प्रीतिंतत्रविप्रेन्द्र विबुधःकर्तुमिच्छति
अयोनिजोऽहं विप्रर्षेयोनौमेकीदृशीमतिः । न वाञ्छाम्यहमग्रेऽपि योनावेव समुद्भवम्

विट्सुखं किमु वाञ्छामि त्यक्त्वाऽऽत्मसुखमद्भुतम् ।
आत्मारामश्च भूयोऽपि न भवत्यतिलोलुपः ॥ ४१ ॥

प्रथमं पठिता वेदा मया विस्तारिताश्च ते । हिंसामयास्ते पठिताः कर्ममार्गप्रवर्तकाः
बृहस्पतिर्गुरुः प्राप्तः सोऽपि मग्नोगृहार्णवे । अविद्याग्रस्तहृदयःकथं कारयितुं क्षमः ॥
रोगग्रस्तो यथा वैद्यःपररोगचिकित्सकः । तथा गुरुर्मुमुक्षोर्मे गृहस्थोऽयंविडम्बना
कृत्वा प्रमाणं गुरवे त्वत्समीपमुपागतः । त्राहिमां तत्त्वबोधेन भीतं संसारसर्पतः ॥
संसारेऽस्मिन्महाघोरे भ्रमणं नभचक्रवत् । न च विश्रमणंक्वापि सूर्यस्येव दिवानिशि
किंसुखंतातसंसारे निजतत्त्वविचारणात् । मूढानां सुखबुद्धिस्तुविट्सुकीटसुखंयथा

अधीत्य वेदशास्त्राणि संसारे रागिणश्च ये ।
तेभ्यः परो न मूर्खोऽस्ति सधर्माः श्वाऽश्वसूकरैः ॥ ४८ ॥

मानुष्यंदुर्लभम्प्राप्य वेदशास्त्राण्यधीत्यच । बध्यतेयदिसंसारे को विमुच्येत मानवः
नातः परतरं लोके कश्चिदाश्चर्यमद्भुतम् । पुत्रदारगृहासक्तः पण्डितः परिगीयते ॥५०॥
नबाध्यतेयःसंसारेनारीमायागुणैस्त्रिभिः । स विद्वान्सचमेधावी शास्त्रपारङ्गतोहिसः
किं वृथाऽध्ययनेनात्र दृढबन्धकरेण च । पठितव्यं तदेवाऽऽशु मोचयेद्भवबन्धनात् ॥
गृह्णातिपुरुषंयस्माद् गृहं तेन प्रकीर्तितम् । क्व सुखं बन्धनागारे तेनभीतोऽस्म्यहंपितः
ये बुधामन्दमतयो विधिनामुषिताश्च ये । ते प्राप्यमानुषंजन्म पुनर्बन्धं विशन्त्युत॥५६

व्यास उवाच

न गृहं बन्धनागारं बन्धनेनच कारणम् । मनसायो विनिर्मुक्तो गृहस्थोपि विमुच्यते

न्यायागतधनः कुर्वन्वेदोक्तं विधिवत्क्रमात् ।
गृहस्थोऽपि विमुच्येत श्राद्धकृत्सत्यवाक्छुचिः ॥ ५६ ॥

ब्रह्मचारी यतिश्चैव वानप्रस्थो व्रतस्थितः । गृहस्थं समुपासन्ते मध्याह्नातिक्रमे सदा
श्रद्धया चाऽन्नदानेन वाचा सूनृतया तथा । उपकुर्वन्ति धर्मस्था गृहाश्रमनिवासिनः
गृहाश्रमात्परोधर्मो न दृष्टो नच वै श्रुतः । वसिष्ठादिभिराचार्यैर्ज्ञानिभि समुपाश्रितः
किमसाध्यंमहाभाग वेदोक्तानिच कुर्वतः । स्वर्गंमोक्षञ्च सज्जन्मयद्यद्वाञ्छति तद्भवेत्
आश्रमादाश्रमं गच्छेदिति धर्मविदोविदुः । तस्मादग्निं समाधाय कुरुकर्माण्यतन्द्रितः
देवान्पितॄन्मनुष्यांश्च सन्तर्प्येविधिवत्सुत !। पुत्रमुत्पाद्यधर्मज्ञ संयोज्यच गृहाश्रमे ॥
त्यक्त्वागृहं वनंगत्वा कर्ताऽसिव्रतमुत्तमम् । वानप्रस्थाश्रमंकृत्वा संन्यासञ्चततःपरम्
इन्द्रियाणि महाभाग मादकानि सुनिश्चितम् । अदारस्यदुरंतानि पञ्चैव मनसा सह
तस्माद्दारान्प्रकुर्वीत तज्जयाय महामते । वार्धके तप आतिष्ठेदिति शास्त्रोदितम्वचः॥

विश्वामित्रो महाभाग ! तपः कृत्वाऽतिदुश्चरम् ।
त्रीणि वर्षसहस्राणि निराहारो जितेन्द्रियः ॥ ६६ ॥

मोहितश्च महातेजा वने मेनकयास्थितः । शकुन्तला समुत्पन्ना पुत्री तद्वीर्यजा शुभा
दृष्ट्वा दाससुतांकालीं पितामम पराशरः । कामबाणार्दितःकन्यां तां जग्राहोडुपेस्थितः
ब्रह्माऽपि स्वसुतां दृष्ट्वा पञ्चबाणप्रपीडितः । धावमानश्च रुद्रेण मूर्च्छितश्चनिवारितः
तस्मात्त्वमपिकल्याणकुरुमेवचनं हितम् । कुलजां कन्यकां वृत्वा वेदमार्गंसमाश्रय ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे
व्यासेनगृहस्थधर्मवर्णनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

पञ्चदशोऽध्यायः

शुकवैराग्यवर्णनम्

श्रीशुक उवाच

नाऽहंगृहं करिष्यामि दुःखदं सर्वदा पितः । वागुरासदृशं नित्यम्बन्धनं सर्वदेहिनाम्
धनचिन्तातुराणां हि क सुखं तातदृश्यते । स्वजनैःखलुपीड्यन्तेनिर्धनालोलुपाजनाः

इन्द्रोऽपि न सुखी तादृग्यादृशो भिक्षुनिःस्पृहः ।
कोऽन्यः स्यादिह संसारे त्रिलोकीविभवे सति ॥ ३ ॥

तपन्तंतापसं दृष्ट्वा मघवादुःखितोऽभवत् । विघ्नान्बहुविधानस्यकरोतिचदिवस्पतिः
ब्रह्माऽपिनसुखीविष्णुर्लक्ष्मींप्राप्यमनोरमाम् । खेदम्प्राप्नोतिसततंसंग्रामैरसुरैःसह ॥
करोतिविपुलान्यत्नांस्तपश्चरतिदुश्चरम् । रमापतिरपिश्रीमान्कस्यास्तिविपुलंसुखम्
शङ्करोऽपि सदा दुःखी भवत्येवच वेद्म्यहम् । तपश्चर्यांप्रकुर्वाणो दैत्ययुद्धकरः सदा
कदाचिन्नसुखीशेते धनवानपिलोलुपः । निर्धनस्तु कथं तात ! सुखंप्राप्नोति मानवः
जानन्नपिमहाभागपुत्रं वा वीर्यसम्भवम् । नियोक्ष्यसि महाघोरे संसारेदुःखदे सदा॥
जन्मदुःखं जरादुःखं दुःखञ्च मरणे तथा । गर्भवासं पुनर्दुःखं विष्ठामूत्रमये पितः ! ॥
तस्मादतिशयं दुःखं तृष्णालोभसमुद्भवम् । याञ्चायां परमं दुःखं मरणादपि मानद ॥
प्रतिग्रहधना विप्रा न बुद्धिबलजीवनाः । पराशा परमं दुःखं मरणञ्च दिने दिने॥१२॥

पठित्वा सकलान्वेदांञ्छास्त्राणि च समन्ततः ।
गत्वा च धनिनां कार्या स्तुतिःसर्वात्मना बुधैः ॥ १३ ॥

एकोदरस्य का चिन्ता पत्रमूलफलादिभिः । येनकेनाप्युपायेन सन्तुष्ट्या च प्रपूर्यते
भार्यापुत्रास्तथापौत्राःकुटुम्बे विपुले सति । पूरणार्थं महद्दुःखं क सुखंपितरद्भुतम् ॥
योगशास्त्रं वद मम ज्ञानशास्त्रंसुखाकरम् । कर्मकाण्डेऽखिले तात न रमेऽहं कदाचन
वद कर्मक्षयोपायं प्रारब्धं सञ्चितं तथा । वर्तमानं यथा नश्येत्रिविधं कर्ममूलजम् ॥

अलूकेव सदा नारी रुधिरं पिबतीति वै । मूर्खस्तु न विजानातिमोहितोभावचेष्टितैः
भार्गैर्वीर्यं धनं पूर्णं मनः कुटिलभाषणैः । कान्ता हरतिसर्वस्वं कस्तेनस्तादृशोऽपरः
निद्रासुखविनाशार्थं मूर्खस्तु दारसंग्रहम् । करोति वञ्चितो धात्रा दुःखायनसुखायच

सूत उवाच

एवंविधानि वाक्यानि श्रुत्वा व्यासः शुकस्य च ।
संप्राप महतीं चिन्तां किं करोमीत्यसंशयम् ॥ २१ ॥

तस्य सुस्रुवुरश्रूणि लोचनाद्दुःखजानि च । वेपथुश्च शरीरेऽभूद्ग्लानिप्रापमनस्तथा
शोचन्तं पितरं दृष्ट्वा दीनंशोकपरिप्लुतम् । उवाच पितरंव्यासंविस्मयोत्फुल्ललोचनः
अहोमायाबलं चोग्रं यन्मोहयति पण्डितम् । वेदान्तस्यचकर्त्तारं सर्वज्ञं वेदसम्मितम्

न जाने का च सा माया किंस्वित्साऽतीव दुष्करा ।
या मोहयति विद्वांसं व्यासं सत्यवतीसुतम् ॥ २५ ॥

पुराणानां च वक्ताच निर्माताभारतस्य च । विभागकर्तावेदानांसोऽपिमोहमुपागतः
तां यामि शरणं देवीं यामोहयतिवै जगत् । ब्रह्मविष्णुहरादींश्चकथाऽन्येषांचकीदृशी
कोऽप्यस्ति त्रिषु लोकेषु यो नमुह्यतिमायया । यन्मोहंगमिताःपूर्वंब्रह्मविष्णुहरादयः
अहो बलमहो वीर्यं देव्या खलु विनिर्मितम् । माययैव वशं नीतः सर्वज्ञ ईश्वरः प्रभुः

विष्णवंशसम्भवो व्यास इति पौराणिका जगुः ।
सोऽपि मोहार्णवे मग्नो भग्नपोतो वणिग्यथा ॥ ३० ॥

अश्रुपातंकरोम्यद्य विवशः प्राकृतो यथा । अहो मायाबलं चैतद् दुस्त्यजंपण्डितैरपि
कोऽयं कोऽहं कथं चेह कीदृशोऽयम्भ्रमः किल । पञ्चभूतात्मकेदेहेपितापुत्रेतिवासना
बलिष्ठाखलुमायेयंमायिनामपिमोहिनी । ययाऽभिभूतः कृष्णोऽपिकरोतिरोदनंद्विजः

सूत उवाच

तां नत्वा मनसादेवीं सर्वकारणकारणम् । जननीं सर्वदेवानां ब्रह्मादीनां तथेश्वरीम्
पितरं प्राहदीनं तं शोकार्णवपरिप्लुतम् । अरणीसम्भवो व्यासं हेतुमद्वचनं शुभम् ॥
पाराशर्य महाभाग सर्वेषां बोधदःस्वयम् । किंशोकंकुरुषेस्वामिन्यथाऽज्ञःप्राकृतोनरः

अथाहंतवपुत्रोऽस्मिन जानेपूर्वजन्मनि । कोऽहंकस्त्वं महाभागविभ्रमोऽयंमहात्मनि
कुरुधैर्यं प्रबुध्यस्व मा विषादे मनः कृथाः । मोहजालमिमं मत्वा मुञ्चशोकं महामते
क्षुधानिवृत्तिर्भक्ष्येण न पुत्रदर्शनेन च । पिपासाजलपानेन याति नैवाऽऽत्मजेक्षणात्
घ्राणं सुखं सुगन्धेन कर्णजं श्रवणेन च । स्त्रीसुखं तु स्त्रियानूनं पुत्रोऽहंकिंकरोमिते
अजीगर्तेन पुत्रोऽपि हरिश्चन्द्राय भूभुजे । पशुकामाय यज्ञार्थे दत्तो मौल्येन सर्वथा
सुखानां साधनं द्रव्यं धनात्सुखसमुच्चयः । धनमर्जय लोभश्चेत्पुत्रोऽहंकिंकरोम्यहम्
मां प्रबोधयबुद्ध्या त्वं दैवज्ञोऽसि महामते । यथामुच्येयमत्यन्तं गर्भवासभयान्मुने॥
दुर्लभं मानुषं जन्म कर्मभूमाविहाऽनघ । तत्राऽपि ब्राह्मणत्वं वै दुर्लभं चोत्तमेकुले ॥
बद्धोऽहमितिमे बुद्धिर्नापसर्पति चित्ततः संसारवासनाजाले निविष्टा वृद्धगामिनी ॥

सूत उवाच

इत्युक्तस्तु तदा व्यास पुत्रेणाऽमितबुद्धिना । प्रत्युवाचशुकं शान्तंचतुर्थाश्रममानसम्

व्यास उवाच

पठ पुत्र महाभाग मया भागवतं कृतम् । शुभं न चातिविस्तीर्णं पुराणंब्रह्मसम्मितम्
स्कन्धा द्वादश तत्रैव पञ्चलक्षणसंयुतम् । सर्वेषाञ्च पुराणानां भूषणं मम सम्मतम्
सदसज्ज्ञानविज्ञानं श्रुतमात्रेण जायते । येन भागवतेनेह तत्पठ त्वं महामते ! ॥४६॥
वटपत्रेशयानाय विष्णवे बालरूपिणे । केनाऽस्मिबालभावेन निर्मितोऽहं चिदात्मना

किमर्थं केन द्रव्येण कथं जानामि चाऽखिलम् ।
इत्येवं चिन्त्यमानाय मुकुन्दाय महात्मने ॥ ५१ ॥

श्लोकार्द्धेनतयाप्रोक्तंभगवत्याऽखिलार्थदम् । सर्वंखल्विदमेवाहं नान्यदस्तिसनातनम्
तद्वचो विष्णुना पूर्वं संविज्ञातं मनस्यपि । केनोक्तावागियंसत्याचिन्तयामासचेतसा
कथं वेद्मिप्रवक्तारं स्त्रीपुंसौवा नपुंसकम् । इतिचिन्ताप्रपन्नेन धृतं भागवतं हृदि ॥
पुनः पुनः कृतोच्चारस्तस्मिन्नेवास्तचेतसा । वटपत्रे शयानः सन्नभूच्चितासमन्वितः ॥
तदा शान्ता भगवती प्रादुरास चतुर्भुजा । शङ्खचक्रगदापद्मवरायुधधरा शिवा ॥
दिव्याम्बरधरा देवी दिव्यभूषणभूषिता । संयुतासदृशीभिश्चसखीभिःस्वविभूतिभिः

प्रादुर्बभूव तस्याग्रे विष्णोरमिततेजसः। मन्दहास्यं प्रयुञ्जाना महालक्ष्मीः शुभानना

सूत उवाच

तां तथा संस्थितांदृष्ट्वाहृदयेकमलेक्षणः। विस्मितःसलिलेतस्मिन्निराधारांमनोरमाम्

रतिर्भूतिस्तथा बुद्धिर्मतिः कीर्तिः स्मृतिर्धृतिः।

श्रद्धा मेधा स्वधा स्वाहा क्षुधा निद्रा दया गतिः ॥ ६० ॥

तुष्टिःपुष्टिःक्षमालज्जाजृम्भातन्द्राचशक्तयः। संस्थितासर्वतःपार्श्वेमहादेव्याःपृथक्पृथक्

वरायुधधराः सर्वा नानाभूषणभूषिताः। मन्दारमालाकुलिता मुक्ताहारविराजिताः ॥

तां दृष्ट्वाताश्च संवीक्ष्य तस्मिन्नेकार्णवे जले। विस्मयाविष्टहृदयः सम्बभूवजनार्दनः

चिन्तयामास सर्वात्मा दृष्टमायोऽतिविस्मितः।

कुतोभवाः स्त्रियः सर्वाः कुतोऽहं वटतल्पगः ॥ ६४ ॥

अस्मिन्नेकार्णवे घोरे न्यग्रोधः कथमुत्थितः।

केनाऽहं स्थापितोऽस्म्यत्र शिशुं कृत्वा शुभाकृतिः ॥ ६५ ॥

ममेयं जननी नो वा मया वा काऽपिदुर्घटा। दर्शनं केनचित्त्वद्य दत्तं वा केन हेतुना

किं मया चात्रवक्तव्यं गन्तव्यं वानवाक्वचित्। मौनमास्थायतिष्ठेयंबालभावादतन्द्रितः

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे शुकवैराग्यवर्णनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

षोडशोऽध्यायः

विष्णुम्प्रतिमहालक्ष्मीवाक्यम्

व्यास उवाच

दृष्ट्वा तं विस्मितं देवंशयानंवटपत्रके। उवाचसस्मितंवाक्यंविष्णोकिंविस्मितोह्यसि

महाशक्तयाः प्रभावेण त्वं मां विस्मृतवान्पुरा। प्रभवे प्रलये जातेभूत्वाभूत्वापुनःपुनः

निर्गुणा सा परा शक्तिः सगुणस्त्वं तथाऽप्यहम् ।
सात्त्विकी किल या शक्तिस्तां शक्तिं विद्धि मामिकाम् ॥ ३ ॥

त्वन्नाभिकमलाद्ब्रह्मा भविष्यति प्रजापतिः । सकर्त्तासर्वलोकस्यरजोगुणसमन्वितः
स तदा तप आस्थाय प्राप्य शक्तिमनुत्तमाम् । रजसा रक्तवर्णंच करिष्यतिजगत्त्रयम्
सगुणान्पञ्चभूतांश्च समुत्पाद्यमहामतिः । इन्द्रियाणीन्द्रियेशांश्च मनः पूर्वान्समन्ततः
करिष्यति ततःसर्गन्तेनकर्ता स उच्यते । विश्वस्यास्यमहाभाग त्वंवै पालयितातथा
तद्भ्रुवोर्मध्यदेशाच्चक्रोधाद्रुद्रोभविष्यति । तपःकृत्वामहाघोरं प्राप्यशक्तिन्तुतामसीम्

कल्पान्ते सोऽपि संहर्ता भविष्यति महामते ।
तेनाऽहं त्वामुपायाता सात्त्विकीन्त्वमवेहि माम् ॥ ६ ॥

स्थास्येऽहं त्वत्समीपस्था सदाऽहं मधुसूदन । हृदयेतेकृतावासाभवामिसततङ्किल ॥

विष्णुरुवाच

श्लोकस्यार्धंमयापूर्वंश्रुतं देवि स्फुटाक्षरम् । तत्केनोक्तम्वरारोहेरहस्यम्परमं शिवम् ॥
तन्मे ब्रूहिवरारोहे संशयोऽयं वरानने । निर्धनोहि यथा द्रव्यं तत्स्मरामि पुनः पुनः॥

व्यास उवाच

विष्णोस्तद्वचनं श्रुत्वामहालक्ष्मीःस्मितानना । उवाचपरयाप्रीत्यावचनञ्चारुहासिनी

महालक्ष्मीरुवाच

शृणुशौरेवचोमह्यंसगुणाऽहंचतुर्भुजा । मांजानासिन जानासि निर्गुणांसगुणालयाम्

त्वं जानीहि महाभाग ! तया तत्प्रकटीकृतम् ।
पुण्यं भागवतं विद्धि वेदसारं शुभावहम् ॥ १५ ॥

कृपाञ्च महतींमन्ये देव्याःशत्रुनिषूदन । यथाप्रोक्तम्परं गुह्यं हिताय तव सुव्रत !॥१६॥
रक्षणीयंसदाचित्तेन विस्मार्यंकुदाचन । सारं हि सर्वशास्त्राणांमहाविद्याप्रकाशितम्
नातः परं वेदितव्यं वर्तते भुवनत्रये । प्रियोऽसिखलु देव्यास्त्वंतेन ते व्याहृतम्वचः

व्यास उवाच

इति श्रुत्वावचो देव्या महालक्ष्म्याश्चतुर्भुजः । दधारहृदयेनित्यं मत्वामन्त्रमनुत्तमम्

कालेनकियता तत्र तन्नाभिकमलोद्भवः । ब्रह्मा दैत्यभयात्त्रस्तो जगाम शरणं हरेः ॥
ततः कृत्वामहायुद्धंहत्वातौ मधुकैटभौ । जजापभगवान्विष्णुःश्लोकार्धंविशदाक्षरम्
जपन्तं वासुदेवञ्च दृष्ट्वा देवः प्रजापतिः । पप्रच्छ परमप्रीतः कञ्जजः कमलापतिम् ॥
किं त्वं जपसि देवेश !! त्वत्तःकोऽप्यधिकोऽस्ति वै ।
यत्स्मृत्वा पुण्डरीकाक्ष ! प्रीतोऽसि जगदीश्वर !॥ २३ ॥

हरिरुवाच

मयित्वयिचयाशक्तिः क्रियाकारणलक्षणा । विचारयमहाभाग या सा भगवतीशिवा
यस्याधारेजगत्सर्वं तिष्ठत्यत्र महार्णवे । साकारा या महाशक्तिरमेया च सनातनी ॥
यया विसृज्यते विश्वं जगदेतच्चराचरम् । सैषा प्रसन्ना वरदा नृणां भवति मुक्तये ॥
सा विद्या परमामुक्तेर्हेतुभूता सनातनी । संसारबन्धहेतुश्च सैव सर्वेश्वरेश्वरी ॥२७॥
अहंत्वमखिलंविश्वंतस्याश्चिच्छक्तिसम्भवम् । विद्धिब्रह्मन्नसंदेहः कर्त्तव्यःसर्वदाऽनघ
श्लोकार्धेनतयाप्रोक्तं तद्वैभागवतं किल । विस्तरोभविताऽस्य द्वापरादौ युगे तथा ॥

व्यास उवाच

ब्रह्मणा संगृहीतञ्च विष्णोस्तु नाभिपङ्कजे । नारदाय च तेनोक्तं पुत्रायाऽमितबुद्धये
नारदेन तथा मह्यं दत्तं हि मुनिना पुरा । मया कृतमिदं पूर्णं द्वादशस्कन्धविस्तरम् ॥
तत्पठस्व महाभाग .पुराणं ब्रह्मसम्मितम् । पञ्चलक्षणयुक्तञ्च देव्याश्चरितमुत्तमम् ॥
तत्त्वज्ञानरसोपेतं सर्वेषामुत्तमोत्तमम् । धर्मशास्त्रसमं पुण्यं वेदार्थेनोपबृंहितम् ॥३३
वृत्रासुरवधोपेतं नानाख्यानकथायुतम् । ब्रह्मविद्यानिधानन्तु संसारार्णवतारकम् ॥
गृहाणत्वं महाभाग योग्योऽसिमतिमत्तरः । पुण्यं भागवतं नाम पुराणं पुरुषर्षभ !॥
अष्टादशसहस्राणां श्लोकानां कुरुसंग्रहम् । अज्ञाननाशनन्दिव्यं ज्ञानभास्करबोधकम्
सुखदंशान्तिदं धन्यं दीर्घायुष्यकरंशिवम् । शृण्वतां पठतां चेदं पुत्रपौत्रविवर्धनम् ॥
शिष्योऽयंममधर्मात्मालोमहर्षणसम्भवः । पठिष्यतित्वयासार्द्धंपुराणींसहितांशुभाम्

सूत उवाच

इत्युक्तं तेन पुत्राय मह्यं च कथितं किल । मया गृहीतन्तत्सर्वम्पुराणञ्चातिविस्तरम्

शुकोऽधीत्य पुराणन्तु स्थितोव्यासाश्रमेशुभे । नलेभेशर्मकर्मात्माब्रह्मात्मजइवापरः
एकान्तसेवीविकलः स शून्य इव लक्ष्यते । नात्यन्तभोजनासक्तो नोपवासरतस्तथा

चिन्ताविष्टं शुकं दृष्ट्वा व्यासःप्राह सुतम्प्रति ।

किं पुत्र ! चिन्त्यते नित्यं कस्माद् व्यग्रोऽसि मानद ! ॥ ४२ ॥

आस्सेध्यानपरो नित्यमृणग्रस्तइवाऽधनः । का चिन्ता वर्तते पुत्रमयितातेतु तिष्ठति
सुखं भुक्ष्वयथाकाममुञ्चशोकं मनोगतम् । ज्ञानञ्चिन्तय शास्त्रोक्तं विज्ञानेचमतिंकुरु
न चेन्मनसि ते शान्तिर्वचसा मम सुव्रत । गच्छ त्वं मिथिलां पुत्र पालिताञ्जनकेनह
स ते मोहं महाभाग नाशयिष्यतिभूपतिः । जनको नाम धर्मात्माविदेहःसत्यसागरः
तं गत्वा नृपतिंपुत्र सन्देहंस्वंनिवर्तय । वर्णाश्रमाणां धर्मांस्त्वं पृच्छ पुत्रयथातथम्
जीवन्मुक्तःसराजर्षिर्ब्रह्मज्ञानमतिःशुचिः । तथ्यवक्ताऽतिशान्तश्च योगीयोगप्रियःसदा

सूत उवाच

तच्छ्रुत्वा वचनन्तस्य व्यासस्यामिततेजसः । प्रत्युवाचमहातेजाःशुकश्चारणिसम्भवः

दम्भोऽयं किल धर्मात्मन्भाति चित्ते ममाऽधुना ।

जीवन्मुक्तो विदेहश्च राज्यं शास्ति मुदाऽन्वितः ॥ ५० ॥

वन्ध्यापुत्रइवाभातिराजाऽसौजनकःपितः । कुर्वन्राज्यंविदेहः किं सन्देहोऽयंममाद्भुतः
द्रष्टुमिच्छाम्यहं भूप विदेहं नृपसत्तमम् । कथं तिष्ठति संसारे पद्मपत्रमिवाम्भसि ॥
सन्देहोऽयं महांस्तात विदेहे परिवर्तते । मोक्षः किं वदतां श्रेष्ठ सौगतानामिवापरः
कथं भुक्तमभुक्तस्यादकृतञ्च कृतं कथम् । व्यवहारः कथन्त्याज्य इन्द्रियाणांमहामते
मातापुत्रस्तथाभार्या भगिनीकुलटातथा । भेदाभेदः कथं न स्याद्यद्येतन्मुक्तताकथम्
कटुक्षारन्तथा तीक्ष्णं कषायंमिष्टमेव च । रसना यदि जानाति भुंक्तेभोगाननुत्तमान्
शीतोष्णसुखदुःखादिपरिज्ञानं यदा भवेत् । मुक्तता कीदृशीतात सन्देहोऽयंममाद्भुतः
शत्रुमित्रपरिज्ञानं वैरप्रीतिकरं सदा । व्यवहारे परे तिष्ठन्कथं न कुरुते नृपः ॥ ५८ ॥
चौरंवातापसम्पाऽपिसमानंमन्यते कथम् । असमायदिबुद्धिःस्यान्मुक्ततातर्हिकीदृशी
दृष्टपूर्वोनमे कश्चिज्जीवन्मुक्तश्च भूपतिः । शङ्केयं महती तात गृहे मुक्तः कथं नृपः ॥६०

विद्वृक्षामहतोजाताश्रुत्वातं भूपतिं तथा । सन्देहविनिवृत्यर्थं गच्छामि मिथिलांप्रति

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे
शुकप्रतिव्यासोपदेशवर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

सप्तदशोऽध्यायः

जनकस्य परीक्षार्थं शुकस्य मिथिलागमनम्

सूत उवाच

इत्युक्त्वा पितरं पुत्रः पादयोःपतितः शुकः । बद्धाञ्जलिरुवाचेदं गन्तुकामो महामनाः
आपृच्छे त्वां महाभाग प्राह्यन्ते वचनंमया । विदेहान्द्रष्टुमिच्छामिपालिताञ्जनकेनतु
विना दण्डं कथं राज्यं करोति जनकः किल । धर्मे न वर्ततेलोको दण्डश्चेन्नभवेद्यदि
धर्मस्य कारणं दण्डो मन्वादिप्रहितः सदा । स कथं वर्तते तात संशयोऽयंमहान्मम
मम माता त्वियंवन्ध्यातद्वद्वातिविचेष्टितम् । पृच्छामित्वांमहाभागगच्छामिचपरन्तप

सूत उवाच

तं दृष्ट्वा गन्तुकामं च शुकं सत्यवतीसुतः । आलिंग्योवाच पुत्रंतंज्ञानिनंनिःस्पृहंदृढम्

व्यास उवाच

स्वस्त्यस्तु शुक दीर्घायुर्भव पुत्र महामते । सत्यां वाचंप्रदत्त्वामेगच्छतातयथासुखम्
आगन्तव्यं पुनर्गत्वा ममाश्रममनुत्तमम् । न कुत्रापि च गन्तव्यं त्वया पुत्र कथञ्चन
सुखं जीवामि पुत्राऽहं दृष्ट्वा ते मुखपङ्कजम् । अपश्यन्दुःखमाप्नोमिप्राणस्त्वमसिमेसुत
दृष्ट्वा त्वं जनकं पुत्र ! सन्देहं विनिवर्त्य च । अत्रागत्य सुखंतिष्ठ वेदाध्ययनतत्परः ॥

सूत उवाच

इत्युक्तः सोऽभिवाद्याऽऽयं कृत्वा चैव प्रदक्षिणाम् ।
चलितस्तरसाऽतीव धनुर्मुक्तः शरो यथा ॥ ११ ॥

सम्पश्यन्विविधान्देशाँल्लोकांश्चविभवर्मिणः। वनानिपादपांश्चैवक्षेत्राणिफलितानिच

तापसांस्तप्यमानांश्च याजकान्दीक्षयाऽन्वितान् ।
योगाभ्यासरतान्योगिवानप्रस्थान्वनौकसः ॥ १३ ॥
शैवान्पाशुपतांश्चैव सौराञ्छाक्तांश्च वैष्णवान् ।
वीक्ष्य नानाविधान्धर्मांश्चगामातिस्मयन्मुनिः ॥ १४ ॥

वर्षद्वयेन मेरुञ्च समुल्लङ्घ्य महामतिः । हिमाचलञ्च वर्षेण जगाम मिथिलाम्प्रति ॥

प्रविष्टो मिथिलाम्मध्ये पश्यन्सर्वर्द्धिमुत्तमाम् ।
प्रजाश्च सुखिताः सर्वाः सदाचाराः सुसंस्थिताः ॥ १६ ॥

क्षत्त्रा निवारितस्तत्र कस्त्वमत्र समागतः । किं ते कार्यं वदस्वेति पृष्टस्तेननवाब्रवीत्

निःसृत्य नगरद्वारात्स्थितः स्थाणुरिवाचलः ।
विस्मितोऽतिहसंस्तस्थौ वचो नोवाच किञ्चन ॥ १८ ॥

प्रतीहार उवाच

ब्रूहि मूकोऽसि किं ब्रह्मन्किमर्थं त्वमिहागतः । चलनंवचिनाकार्यंनभवेदितिमे मतिः
राजाज्ञया प्रवेष्टव्यं नगरेऽस्मिन्सदा द्विज । अज्ञातकुलशीलस्य प्रवेशोनाऽत्र सर्वथा
तेजस्वी भासि नूनं त्वं ब्राह्मणो वेदवित्तमः । कुलं कार्यंचमेब्रूहि यथेष्टंगच्छमानद

शुक उवाच

यदर्थमागतोऽस्म्यत्र तत्प्राप्तं वचनात्तव । विदेहनगरं द्रष्टुं प्रवेशो यत्र दुर्लभः॥२२॥
मोहोऽयं मम दुर्बुद्धेः समुल्लंघ्य गिरिद्वयम् । राजानंद्रष्टुकामोऽहं पर्यटन्समुपागतः
वञ्चितोऽहं स्वयं पित्रा दूषणं कस्य दीयते । भ्रामितोऽहंमहाभागकर्मणावा महीतले
धनाशापुरुषस्येहपरिभ्रमणकारणम्।सामेनास्तितथाऽप्यत्रसम्प्राप्तोऽस्मिभ्रमात्किल
निराशस्य सुखं नित्यंयदिमोहेनमज्जति । निराशोऽहंमहाभागमग्नोऽस्मिन्मोहसागरे
क्व मेरुर्मिथिला क्वेयं पद्भ्यां च समुपागतः । परिभ्रमफलंकिमेवञ्चितोविधिनाकिल
प्रारब्धं किल भोक्तव्यंशुभं वाऽप्यथवाऽशुभम् । उद्यमस्तद्वशोनित्यंकारयत्येवसर्वथा
न तीर्थं न च वेदोऽत्र यदर्थमिह मे श्रमः । अप्रवेशः पुरे जातो विदेहो नाम भूपतिः

इत्युक्त्वा विररामाशुमौनीभूत इवस्थितः । ज्ञातोहिप्रतिहारेणज्ञानीकश्चिद्द्विजोत्तमः
सामपूर्वमुवाचाऽसौतं क्षत्तासंस्थितंमुनिम् । गच्छभो यत्रते कार्यंयथेष्टं द्विजसत्तम
अपराधो मम ब्रह्मन्यन्निवारितवानहम् । तत्क्षन्तव्यं महाभाग विमुक्तानांक्षमा बलम्

शुक उवाच

किं तेऽत्र दूषणं क्षत्तः परतन्त्रोऽसि सर्वदा । प्रभुकार्यंप्रकर्तव्यं सेवकेन यथोचितम्
न भूपदूषणं चात्र यदहं रक्षितस्त्वया । चोरशत्रुपरिज्ञानं कर्तव्यं सर्वथा बुधैः ॥३४॥
ममैव सर्वथा दोषो यदहं समुपागतः । गमनं परगेहे यल्लघुतायाश्च कारणम् ॥३५

प्रतीहार उवाच

किंसुखंद्विज! किं दुःखंकिंकार्यं शुभमिच्छता । कःशत्रुर्हितकर्ताकोब्रूहि सर्वंममाऽद्यवै

शुक उवाच

द्वैविध्यं सर्वलोकेषु सर्वत्र द्विविधोजनः । रागी चैव विरागीचतयोश्चित्तंद्विधा पुनः
विरागी त्रिविधःकामंज्ञातोऽज्ञातश्चमध्यमः । रागीचद्विविधःप्रोक्तोमूर्खश्चचतुरस्तथा
चातुर्यं द्विविधं प्रोक्तंशास्त्रजम्मतिजंतथा । मतिस्तुद्विविधालोकेयुक्ताऽयुक्तेतिसर्वथा

प्रतीहार उवाच

यदुक्तं भवता विद्वन्नार्थज्ञोऽहं द्विजोत्तम । तत्सर्वं विस्तरेणाऽद्य यथार्थं वद सत्तम!

शुक उवाच

रागो यस्यास्तिसंसारे स रागीत्युच्यतेध्रुवम् । दुःखंबहुविधंतस्यसुखंचविविधंपुनः
धनं प्राप्य सुतान्दारान्मानंचविजयं तथा । तदप्राप्य महद्दुःखं भवत्येव क्षणेक्षणे ॥
कार्यं तस्य सुखोपायःकर्तव्यंसुखसाधनम् । तस्यारातिःसविज्ञेयःसुखविघ्नंकरोतियः
सुखोत्पादयिता मित्रं रागयुक्तस्य सर्वदा । चतुरो नैव मुह्येत मूर्खः सर्वत्र मुह्यति ॥
विरक्तस्यात्मरक्तस्य सुखमेकान्तसेवनम् । आत्मानुचिन्तनंचैववेदान्तस्यचचिन्तनम्
दुःखं तदेतत्सर्वं हि संसारकथनादिकम् । शत्रवो बहवस्तस्य विज्ञस्य शुभमिच्छतः

कामः क्रोधः प्रमादश्च शत्रवो विविधाः स्मृताः ।
बन्धुः सन्तोष एवाऽस्य नान्योऽस्ति भुवनत्रये ॥ ४७ ॥

सूत उवाच

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्यमत्वातंज्ञानिनंद्विजम् । क्षत्ताप्रवेशयामासकक्षांचातिमनोरमाम्
नगरं वीक्षमाणः संस्तैर्विध्यजनसङ्कुलम् । नानाविपणिद्रव्याढ्यं क्रयविक्रयकारकम्
रागद्वेषयुतं कामलोभमोहाकुलं तथा । विवदत्सुजनाकीर्णं वसुपूर्णं महत्तरम् ॥५०॥
पश्यन्स त्रिविधाँल्लोकान्प्रासरद्राजमन्दिरम् । प्राप्तःपरमतेजस्वीद्वितीय इव भास्करः
निवारितश्च तत्रैव प्रतीहारेण काष्ठवत् । तत्रैव च स्थितोद्वारि मोक्षमेवानुचिन्तयन्
छायायामातपे चैव समदर्शीमहातपाः । ध्यानंकृत्वातथैकान्तेस्थितःस्थाणुरिवाचलः
तं मुहूर्तादुपागत्य राज्ञोऽमात्यः कृताञ्जलिः । प्रावेशयत्ततःकक्षां द्वितीयांराजवेश्मनः
तत्र दिव्यंमनोरम्यंपुष्पितंदिव्यपादपम् । तद्वनं दर्शयित्वातुकृत्वाचातिथिसत्क्रियाम्
वारमुख्याः स्त्रियस्तत्र राजसेवापरायणाः । गीतवादित्रकुशलाःकामशास्त्रविशारदाः
ताश्चादिश्यचसेवार्थंशुकस्यमन्त्रिसत्तमः । निर्गतःसदनात्तस्माद्व्यासपुत्रःस्थितस्तदा
पूजितः परयाभक्त्या ताभिःस्त्रीभिर्यथाविधि । देशकालोपपन्नेननानान्नेनातितोषितः
ततोऽन्तःपुरवासिन्यस्तस्यान्तःपुरकाननम् । रम्यं संदर्शयामासुरङ्गनाःकाममोहिताः
स युवा रूपवान्कान्तो मृदुभाषी मनोरमः । दृष्ट्वा तामुमुहुःसर्वास्तंचकाममिवापरम्
जितेन्द्रियं मुनिं मत्वा सर्वाः पर्यचरंस्तदा । आरणेयस्तु शुद्धात्मामातृभावमकल्पयत्

आत्मारामो जितक्रोधो न हृष्यति न तृप्यति ।

पश्यंस्तासां विकारांश्च स्वस्थ एव स तस्थिवान् ॥ ६२ ॥

तस्मै शय्यांसुरम्यांचदुर्नार्यःसुसंस्कृताम् । परार्ध्यास्तरणोपेतांनानोपस्करसंवृताम्
स कृत्वापादशौचं च कुशपाणिरतन्द्रितः । उपास्यपश्चिमांसन्ध्यांध्यानमेवान्वपद्यत
याममेकं स्थितोध्याने सुष्वाप तदनन्तरम् । सुप्त्वा यामद्वयंतत्र चोदतिष्ठत्ततःशुकः

पाश्चात्यं यामिनीयामं ध्यानमेवान्वपद्यत ।

स्नात्वा प्रातःक्रियाः कृत्वा पुनरास्ते समाहितः ॥ ६६ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे
शुकस्य राजमन्दिरेप्रवेशवर्णनं नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

अष्टादशोऽध्यायः

शुकाय जनकोपदेशवर्णनम्

सूत उवाच

श्रुत्वा तमागतं राजा मन्त्रिभिःसहितःशुचिः । पुरःपुरोहितंकृत्वागुरुपुत्रंसमभ्ययात्
कृत्वाऽर्हणां नृपः सम्यग्दत्त्वासनमनुत्तमम् । प्रपच्छ कुशलंगांच विनिवेद्यपयस्विनीम्
स च तां नृपपूजां वै प्रत्यगृह्णाद्यथाविधि । प्रपच्छ कुशलं राज्ञेस्वं निवेद्य निरामयम्
स कृत्वा कुशलप्रश्नमुपविष्टः सुखासने । शुकं व्याससुतं शान्तं पर्यपृच्छत पार्थिवः
किं निमित्तंमहाभाग निःस्पृहस्यच मां प्रति । जातं ह्यागमनंब्रूहि कार्यंतन्मुनिसत्तम

शुक उवाच

व्यासेनोक्तो महाराज कुरु दारपरिग्रहम् । सर्वेषामाश्रमाणां च गृहस्थाश्रम उत्तमः ॥
मयानाऽङ्गीकृतं वाक्यंमत्वाबन्धंगुरोरपि । नबन्धोऽस्तीतितेनोक्तोनाहंतत्कृतवान्पुनः
इति सन्दिग्धमनसं मत्वामां मुनिसत्तमः । उवाच वचनं तथ्यंमिथिलांगच्छमाशुचः

थाज्योऽस्ति जनकस्तत्र जीवन्मुक्तो नराधिपः ।
विदेहो लोकविदितः पाति राज्यमकंटकम् ॥ ६ ॥

कुर्वन्राज्यं तथा राजा मायापाशैर्न बध्यते । त्वं बिभेषि कथं पुत्र वनवृत्तिः परन्तपः
पश्य तं नृपशार्दूलं त्यज मोहं मनोगतम् । कुरुदारान्महाभाग पृच्छवाभूपतिं च तम्
सन्देहं ते मनोजातं कथयिष्यति पार्थिवः । तच्छ्रुत्वा वचनंतस्य मामेहि तरसा सुत
सम्प्राप्तोऽहं महाराजत्वत्पुरेच तदाज्ञया । मोक्षकामोऽस्मिराजेन्द्रब्रूहिकृत्यंममाऽनघ
तपस्तीर्थव्रतेज्याश्च स्वाध्यायस्तीर्थसेवनम् । ज्ञानंवावदराजेन्द्र मोक्षंप्रतिचकारणम्

जनक उवाच

शृणु विप्रेण कर्तव्यं मोक्षमार्गाश्रितेन यत् । उपनीतो वसेदादौ वेदाभ्यासायवैगुरौ
अधीत्य वेदवेदान्तान्दत्त्वा च गुरुदक्षिणाम् ।

समावृत्तस्तु गार्हस्थ्ये सदारो निवसेन्मुनिः ॥ १६ ॥
नाऽन्यवृत्तिस्तु सन्तोषी निराशी गतकल्मषः ।
अग्निहोत्रादिकर्माणि कुर्वाणः सत्यवाक्छुचिः ॥ १७ ॥

पुत्रं पौत्रं समासाद्यवानप्रस्थाश्रमे वसेत् । तपसा षड्रिपूञ्जित्वा भार्यांपुत्रेनिवेश्य च
सर्वानग्नीन्यथान्यायमात्मन्यारोप्य धर्मवित् । वसेत्तुर्याश्रमे शान्तःशुद्धेवैराग्यसंभवे

विरक्तस्याधिकारोऽस्ति सन्न्यासे नान्यथा क्वचित् ।
वेदवाक्यमिदं तथ्यं नान्यथेति मतिर्मम ॥ २० ॥
शुकाऽष्टचत्वारिंशद्वै संस्कारा वेदबोधिताः ।
चत्वारिंशद् गृहस्थस्य प्रोक्तास्तत्र महात्मभिः ॥ २१ ॥

अष्टौ च मुक्तिकामस्यप्रोक्ताःशमदमादयः । आश्रमादाश्रमंगच्छेदितिशिष्टानुशासनम्

श्रीशुक उवाच

उत्पन्नेहृदि वैराग्ये ज्ञानविज्ञानसम्भवे । अवश्यमेव वस्तव्यमाश्रमेषु वनेषु वा ॥

जनक उवाच

इन्द्रियाणि बलिष्ठानिमनियुक्तानि मानद । अपक्वस्य प्रकुर्वन्ति विकारांस्ताननेकशः

भोजनेच्छां सुखेच्छाञ्च शय्येच्छामात्मजस्य च ।
यती भूत्वा कथं कुर्याद्विकारे समुपस्थिते ॥ २५ ॥

दुर्जरं वासनाजालं न शान्तिमुपयाति वै । अतस्तच्छमनार्थाय क्रमेण च परित्यजेत्
ऊर्ध्वं सुतः पतत्येव न शयानः पतत्यधः । परिव्रज्य परिभ्रष्टो न मार्गं लभते पुनः
यथापिपीलिका मूलाच्छाखायामधिरोहति । शनैः शनैः फलंयातिसुखेनपदगामिनी
विहङ्गस्तरसा याति विघ्नशङ्कामुदस्यवै । श्रान्तोभवति विश्रम्यसुखंयाति पिपीलिका
मनस्तु प्रबलं काममजेयमकृतात्मभिः । अतः क्रमेण जेतव्यमाश्रमानुक्रमेण च ॥

गृहस्थाश्रमसंस्थोऽपि शान्तः सुमतिरात्मवान् ।
न च हृष्येन्न च तपेल्लाभालाभे समो भवेत् ॥ ३१ ॥

विहितं कर्मकुर्वाणस्त्यजंश्चिन्तान्वितंच यत् । आत्मलाभेनसंतुष्टोमुच्यतेनात्रसंशयः

पश्याऽहं राज्यसंस्थोऽपि जीवन्मुक्तो यथाऽनघ ।
विचरामि यथा कामं न मे किंचित्प्रजायते ॥ ३३ ॥
भुञ्जानो विविधान्भोगान्कुर्वन्कार्याण्यनेकशः ।
भविष्यामि यथाऽहं त्वं तथा मुक्तो भवाऽनघ ॥ ३४ ॥

कथ्यते खलु यद् दृश्यमदृश्यं बध्यते कुतः । दृश्यानि पञ्चभूतानिगुणास्तेषांतथापुनः
आत्मागम्योऽनुमानेन प्रत्यक्षो न कदाचन । स कथं बध्यते ब्रह्मन्निर्विकारोनिरञ्जनः
मनस्तु सुखदुःखानां महतां कारणं द्विज । जाते तु निर्मले ह्यस्मिन्सर्वंभवतिनिर्मलम्
भ्रमन्सर्वेषु तीर्थेषु स्नात्वा स्नात्वा पुनः पुनः । निर्मलं नमनोयावत्तावत्सर्वंनिरर्थकम्
न देहो न च जीवात्मा नेन्द्रियाणि परन्तपः । मनएवमनुष्याणांकारणंबन्धमोक्षयोः

शुद्धो मुक्तः सदैवाऽऽत्मा न वै बध्येत कर्हिचित् ।
बन्धमोक्षौ मनःसंस्थौ तस्मिञ्छान्ते प्रशाम्यति ॥ ४० ॥

शत्रुर्मित्रमुदासीनो भेदाः सर्वे मनोगताः । एकात्मत्वे कथंभेदः सम्भवेद्द्वैतदर्शनात्
जीवो ब्रह्म सदैवाऽहं नाऽत्रकार्या विचारणा । भेदबुद्धिस्तु संसारे वर्तमाना प्रवर्तते
अविद्येयं महाभाग विद्या चैतन्निवर्तनम् । विद्याविद्ये च विज्ञेये सर्वदैव विचक्षणैः ॥

विनाऽऽतपं हि च्छायायाज्ञायते च कथं सुखम् ।
अविद्यया विना तद्वत्कथं विद्याञ्च वेत्ति वै ॥ ४४ ॥

गुणागुणेषु वर्तन्ते भूतानिव तथैवच । इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेषुकोदोषस्तत्र चाऽऽत्मनः
मर्यादा सर्वरक्षार्थं कृतावेदेषु सर्वशः । अन्यथा धर्मनाशःस्यात्सौगतानामिवाऽनघ!॥
धर्मनाशेविनष्टःस्याद्वर्णाचारोऽतिवर्तितः । अतो वेदप्रतिष्ठेन मार्गेणगच्छतां शुभम्

श्रीशुक उवाच

सन्देहो वर्तते राजन्न निवर्तति मे क्वचित् । भवता कथितं यत्तच्छृण्वतो मे नराधिप
वेदधर्मेषु हिंसा स्यादधर्मबहुला हि सा । कथं मुक्तिप्रदो धर्मो वेदोक्तो बत भूपते! ॥
प्रत्यक्षेण त्वनाचारः सोमपानं नराधिप । पशूनां हिंसनं तद्वद्भक्षणञ्चामिषस्य च ॥
सौत्रामणौ तथा प्रोक्तःप्रत्यक्षेणसुराग्रहः । द्यूतक्रीडातथाप्रोक्ता व्रतानिविविधानिच

श्रूयतेस्म पुराह्यासीच्छशबिन्दुर्नृपोत्तमः । यज्वाधर्मपरो नित्यं वदान्यस्सत्यसागरः
गोप्ताचधर्मसेतूनांशास्ताचोत्पथगामिनाम् । यज्ञाश्चविहितास्तेन बहवोभूरिदक्षिणाः
चर्मणांपर्वतोजातो विन्ध्याचलसमः पुनः । मेघाम्बुप्लावनाज्जातानदी चर्मण्वतीशुभा
सोऽपि राजा दिवं यातःकीर्तिरस्याचला भुवि । एवंधर्मेषुवेदेषु न मे बुद्धि प्रवर्तते ॥
स्त्रीसङ्गेनसदाभोगे सुखंप्राप्नोतिमानवः । अलाभे दुःखमत्यन्तंजीवन्मुक्तःकथम्भवेत्

जनक उवाच

हिंसा यज्ञेषुप्रत्यक्षासाऽहिंसापरिकीर्तिता । उपाधियोगतोहिंसानान्यथेतिविनिर्णयः
यथाचेन्धनसंयोगादग्नौ धूमः प्रवर्तते । तद्वियोगात्तथातस्मिन्निर्धूमत्वंविभाति वै ॥
अहिंसाञ्च तथा विद्धि वेदोक्तां मुनिसत्तमः ।
रागिणां साऽपि हिंसैव निःस्पृहाणां न सा मता ॥ ५६ ॥
अरागेण च यत्कर्म तथाऽहङ्कारवर्जितम् । अकृतं वेदविद्वांसः प्रवदन्ति मनीषिणः॥
गृहस्थानान्तुहिंसैव या यज्ञे द्विजसत्तम । अरागेण च यत्कर्म तथाऽहङ्कारवर्जितम् ॥
साऽहिंसैव महाभाग ! मुमुक्षूणां जितात्मनाम् ॥ ६२ ॥
इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे
शुकाय जनकोपदेशवर्णनं नामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

एकोनविंशोऽध्यायः

शुकस्य जनकम्प्रति स्वकीयसन्देहनिवारणार्थं पुनः प्रश्नः

श्रीशुक उवाच

सन्देहोऽयं महाराज वर्तते हृदये मम । मायामध्ये वर्तमानः स कथं निःस्पृहो भवेत्
शास्त्रज्ञानञ्चसम्प्राप्यनित्यानित्यविचारणम् । त्यजते न मनो मोहंसकथम्मुच्यतेनरः
अन्तर्गतं तमश्छेतुं शास्त्राद्बोधोहिन क्षमः । यथा न नश्यतितमः कृतयादीपवार्तया

अद्रोहः सर्वभूतेषु कर्तव्यः सर्वदा बुधैः । स कथं राजशार्दूल गृहस्थस्य भवेत्तथा ॥
वित्तैषणा न ते शान्ता तथाराज्यसुखैषणा । जयैषणावसंग्रामे जीवन्मुक्तःकथम्भवेत्
चौरेषु चौरबुद्धिस्ते साधुबुद्धिस्तु तापसे । स्वपरत्वं तवाप्यस्ति विदेहस्त्वंकथंनृप
कटुतीक्ष्णकषायाम्लरसान्वेत्सि शुभाशुभान् । शुभेषु रमतेचित्तंनाशुभेषु तथा नृप ॥
जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिश्चतवराजन्भवन्ति हि । अवस्थास्तु यथाकालं तुरीयातु कथं नृप
पदात्यश्वरथेभाश्च सर्वे वै वशगा मम । स्वाम्यहं चैव सर्वेषां मन्यसे त्वं न मन्यसे

मिष्टमत्सि सदा राजन्मुदितो विमनास्तथा ।
मालायाञ्च तथा सर्पे समदृक् क नृपोत्तम ! ॥ १० ॥

विमुक्तस्तु भवेद्राजन्समलोष्टाश्मकाञ्चनः । एकात्मबुद्धिः सर्वत्र हितकृत्सर्वजन्तुषु ॥
न मेऽद्य रमते चित्तं गृहदारादिषु क्वचित् । एकाकीनिःस्पृहोऽत्यर्थञ्चरेयमितिमेमतिः
निःसङ्गोनिर्ममःशान्तः पत्रमूलफलाशनः । मृगवद्विचरिष्यामि निर्द्वन्द्वोनिष्परिग्रहः॥
किं मे गृहेण वित्तेन भार्यया च सुरूपया । विरागमनसःकामं गुणातीतस्य पार्थिव॥

चिन्त्यसे विविधाकारं नानारागसमाकुलम् ।
दम्भोऽयं किल ते भाति विमुक्तोऽस्मीति भाषसे ॥ १५ ॥
कदाचिच्छत्रुजा चिन्ता धनजा च कदाचन ।
कदाचित्सैन्यजा चिन्ता निश्चिन्तोऽसि कदा नृप !॥ १६ ॥

वैखानसायेमुनयोमिताहाराजितव्रताः । तेऽपिमुह्यन्तिसंसारे जानंतोऽपिह्यसत्यताम्
तव वंशसमुत्थानां विदेहाइति भूपते । कुटिलं नाम जानीहि नान्यथेति कदाचन ॥
विद्याधरोयथामूर्खोजन्मान्धस्तुदिवाकरः । लक्ष्मीधरो दरिद्रश्च नाम तेषां निरर्थकम्
तववंशोद्भवा येये श्रुताः पूर्वे मया नृपाः । विदेहा इति विख्याता नामतःकर्मतो न ते
निमिनामाऽभवद्राजा पूर्वं तव कुले नृपः । यज्ञार्थं स तु राजर्षिर्वसिष्ठंस्वगुरुं मुनिम्
निमन्त्रयामास तदा तमुवाच नृपं मुनिः । निमन्त्रितोऽस्मियज्ञार्थंदेवेन्द्रेणाधुनाकिल
कृत्वा तस्य मखं पूर्णं करिष्यामि तवापि वै । तावत्कुरुष्व राजेन्द्रसंसारंतुशनैःशनैः
इत्युक्त्वा निर्ययौसोऽथ महेन्द्रयजने मुनिः । निमिरन्यं गुरुं कृत्वाचकारमखमुत्तमम्

तच्छ्रुत्वा कुपितोऽत्यर्थं वसिष्ठो नृपतिं पुनः। शशाप च पतत्वद्य देहस्ते गुल्लोपक
राजाऽपितं शशापाथतवापिचपतत्वयम्। अन्योन्यशापात्पतितौ तावेवचमयाश्रुतम्
विदेहेन च राजेन्द्र कथं शप्तो गुरुः स्वयम्। विनोद इव मे चित्ते विभाति नृपसत्तम

जनक उवाच

सत्यमुक्तं त्वया नात्र मिथ्याकिंचिदिदं मतम्। तथाऽपिशृणुविप्रेन्द्रगुरुर्ममसुपूजितः
पितुः सङ्गम्परित्यज्य त्वं वनं गन्तुमिच्छसि। मृगैःसह सुसम्बन्धोमविताते नसंशयः
महाभूतानि सर्वत्र निःसङ्गः क भविष्यसि।
आहारार्थं सदा चिन्ता निश्चितः स्याः कथं मुने! ॥ ३० ॥
दण्डाजिनकृता चिन्ता यथा तथवनेऽपिच। तथैवराज्यचिन्तामेचिन्तयानस्यवानघ
विकल्पोपहतस्त्वं वै दूरदेशमुपागतः। न मे विकल्प सन्देहोनिर्विकल्पोऽस्मिसर्वथा
सुखंस्वपिमि विप्राहंसुखंभुंजामि सर्वदा। नबद्धोऽस्मीतिबुद्ध्याऽहंसर्वदैवसुखीमुने
त्वं तु दुःखी सदैवासि बद्धोऽहमितिशङ्कया। इतिशङ्काम्परित्यज्यसुखीभवसमाहितः
देहोऽयं ममबन्धोऽयं नममेति च मुक्तता। तथा धनं गृहं राज्यं न ममेति च निश्चयः

सूत उवाच

तच्छ्रुत्वावचनं तस्यशुकःप्रीतमनाभवत्। आपृच्छ्यतंजगामाशुव्यासस्याश्रममुत्तमम्
आगच्छन्तं सुतं दृष्ट्वाव्यासोऽपिसुखमाप्तवान्। आलिंग्याघ्रायमूर्धानंप्रपच्छकुशलंपुनः
स्थितस्तत्राश्रमे रम्ये पितुः पार्श्वे समाहितः। वेदाध्ययनसम्पन्नः सर्वशास्त्रविशारदः
जनकस्य दशां दृष्ट्वा राज्यस्थस्य महात्मनः। सनिर्वृतिपरांप्राप्यपितुराश्रमसंस्थितः
पितॄणां सुभगा कन्या पीवरी नाम सुन्दरी।
शुकश्चकार पत्नीं तां योगमार्गस्थितोऽपि हि ॥ ४० ॥
स तस्यां जनयामास पुत्रांश्चतुर एव हि। कृष्णं गौरप्रभं चैव भूरिं देवश्रुतं तथा ॥
कन्यां कीर्तिं समुत्पाद्यव्यासपुत्रःप्रतापवान्। ददौ विभ्राजपुत्रायत्वणुहायमहात्मने॥
अणुहस्य सुतः श्रीमान्ब्रह्मदत्तः प्रतापवान्। ब्रह्मज्ञः पृथिवीपालः शुककन्यासमुद्भवः
कालेन कियता तस्य नारदस्योपदेशतः। ज्ञानं परमकं प्राप्य योगमार्गमनुत्तमम् ॥

पुत्रे राज्यं निधायाथ गतोबदरिकाश्रमम् । मायाबीजोपदेशेन तस्यज्ञानं निरर्गलम्
नारदस्य प्रसादेन जातं सद्यो विमुक्तिदम् । कैलासशिखरेरम्ये त्यक्त्वासङ्गंपितुःशुकः
ध्यानमास्थाय विपुलंस्थितः सङ्गपराङ्मुखः । उत्पपातगिरेःश्रृङ्गात्सिद्धिंचपरमांगतः
आकाशगो महातेजा विरराज यथा रविः । गिरेः श्रृङ्गंद्विधाजातंशुकस्योत्पतनेतदा
उत्पाताबहवोजाताःशुकश्चाकाशगोऽभवत् । अन्तरिक्षेयथावायुःस्तूयमानःसुरर्षिभिः
तेजसाऽतिविराजन्वैद्वितीयइवभास्करः । व्यासस्तुविरहाक्रान्तःक्रन्दन्पुत्रेतिचासकृत्
गिरेः श्रृङ्गेगतस्तत्रशुकोयत्रस्थितोऽभवत् । क्रन्दमानंतदादीनंव्यासंमत्वाश्रमाकुलम्
सर्वभूतगतः साक्षी प्रतिशब्दमदात्तदा । तत्राद्यापि गिरेः श्रृङ्गे प्रतिशब्दस्फुटोऽभवत्
रुदन्तं तं समालक्ष्य व्यासंशोकसमन्वितम् । पुत्र पुत्रेति भाषन्तंविरहेण परिप्लुतम्
शिवस्तत्र समागत्य पाराशर्यमबोधयत् । व्यास शोकं मा कुरुत्वंपुत्रस्तेयोगवित्तमः
परमांगतिमापन्नो दुर्लभां चाकृतात्मभिः । तस्यशोकोनकर्तव्यस्त्वयाऽशोकंविजानता
कीर्तिस्ते विपुला जाता तेन पुत्रेण चाऽनघ ! ।

व्यास उवाच

न शोको याति देवेश ! किं करोमि जगत्पते ! ॥ ५६ ॥
अतृप्ते लोचने मेऽद्य पुत्रदर्शनलालसे ।

महादेव उवाच

छायां द्रक्ष्यसि पुत्रस्य पार्श्वस्थां सुमनोहराम् ॥ ५७ ॥
तां वीक्ष्य मुनिशार्दूल ! शोकं जहि परन्तप ! ।

सूत उवाच

तदा ददर्श व्यासस्तु च्छायां पुत्रस्य सुप्रभाम् ॥५८ ॥
दत्त्वा वरं हरस्तस्मै तत्रैवाऽन्तरधीयत । अन्तर्हिते महादेवे व्यासः स्वाश्रममभ्यगात्
शुकस्य विरहेणाऽपि तप्तः परमदुःखितः ॥ ६० ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे
शुकस्य विवाहादिकार्यवर्णनंनामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

विंशोऽध्यायः

शुकनिर्गमनोत्तरं व्यासकृत्योपवर्णनम्

ऋषय ऊचुः

शुकस्तु परमां सिद्धिमाप्तवान्देवसत्तमः। किं चकारततोव्यासस्तन्नोब्रूहिसविस्तरम्

सूत उवाच

शिष्याव्यासस्ययेऽप्यासन्वेदाभ्यासपरायणाः। आज्ञामादायतेसर्वेगताःपूर्वंमहीतले
असितोदेवलश्चैव वैशम्पायन एव च। जैमिनिश्च सुमन्तुश्च गताः सर्वे तपोधनाः॥
तानेतान्वीक्ष्य पुत्रं च लोकान्तरितमच्युत।
व्यासः शोकसमाक्रान्तो गमनायाऽकरोन्मतिम्॥ ४॥
सस्मारमनसाव्यासस्तांनिषादसुतांशुभाम्। मातरंजाह्नवीतीरेमुक्तांशोकसमन्विताम्
स्मृत्वा सत्यवतीं व्यासस्त्यक्त्वा तं पर्वतोत्तमम्।
आजगाम महातेजा जन्मस्थानं स्वकं मुनिः॥ ६॥
द्वीपं प्राप्याथ पप्रच्छ क गतासा वरानना। निषादास्तेसमाचख्युर्दत्ताराज्ञेतुकन्यका
दाशराजोऽपि सम्पूज्य व्यासं प्रीतिपुरःसरम्।
स्वागतेनाऽभिसत्कृत्य प्रोवाच विहिताञ्जलिः॥ ८॥

दाशराज उवाच

अद्य मे सफलं जन्म पावितं नः कुलं मुने। देवानामपि दुर्दर्शं यज्जातं तव दर्शनम्॥
यदर्थमागतोऽसि त्वंतद्ब्रूहि द्विजसत्तम!। अपिदारा धनं पुत्रास्त्वदायत्तमिदंविभो
सरस्वत्यास्तटे रम्ये चकाराश्रममण्डलम्। व्यासस्तपः समायुक्तस्तत्रैवाससमाहितः
सत्यवत्याः सुतौ जातौ शन्तनोरमितद्युतेः। मत्वानौभ्रातरौव्यासःसुखमापवनेस्थितः
चित्राङ्गदः प्रथमजो रूपवाञ्छत्रुतापनः। बभूव नृपतेः पुत्रः सर्वलक्षणसंयुतः॥१३॥
विचित्रवीर्यनामाऽसौ द्वितीयः समजायत। सोऽपिसर्वगुणोपेतः शन्तनोःसुखवर्धनः
गाङ्गेयः प्रथमस्तस्य महावीरोबलाधिकः। तत्रैव तौ सुतौ जातौसत्यवत्यांमहाबलौ
शन्तनुस्तान्सुतान्वीक्ष्यसर्वलक्षणसंस्थितान्। अमंस्ताजय्यमात्मानंदेवादीनांमहामनाः
अथ कालेन कियता शन्तनुः कालपर्ययात्। तत्याजदेहंधर्मात्मादेहीजीर्णमिवाम्बरम्

कालधर्मं गते राज्ञि भीष्मश्चक्रे विधानतः । प्रेतकार्याणिसर्वाणिदानानिविविधानिच

विचित्राङ्गदं ततो राज्ये स्थापयामास वीर्यवान् ।

स्वयं न कृतवान्राज्यं तस्माद्देवव्रतोऽभवत् ॥ १६ ॥

चित्राङ्गदस्तु वीर्येण प्रमत्तः परदुःखदः । बभूव बलवान्वीरः सत्यवत्यात्मजः शुचिः

अथैकदा महाबाहुः सैन्येनमहता वृतः । प्रचचार वनोद्देशान्पश्यन्वध्यान्मृगान्रुरून्

चित्राङ्गदस्तु गन्धर्वो दृष्ट्वा तं मार्गगं नृपम् । उत्ततारान्तिकं भूमेर्विमानवरमाश्रितः

तत्राऽभूच्च महद्युद्धं तयोःसदृशवीर्ययोः । कुरुक्षेत्रे महास्थाने त्रीणि वर्षाणि तापसाः

इन्द्रलोकमवापाशु गन्धर्वेण हतो रणे । भीष्मः श्रुत्वा चकाराशु तस्यौर्ध्वदैहिकंतदा

गाङ्गेयः कृतशोकस्तु मन्त्रिभिः परिवारितः । विचित्रवीर्यनामानं राज्येशंच चकारह

मन्त्रिभिर्बोधिता पश्चाद् गुरुभिश्च महात्मभिः ।

स्वपुत्रं राज्यगं दृष्ट्वा पुत्रशोकहताऽपि च ॥ २६ ॥

सत्यवत्यतिसंतुष्टा बभूव वरवर्णिनी । व्यासोऽपि भ्रातरंश्रुत्वाराजानंमुदितोऽभवत्

यौवनं परमं प्राप्तःसत्यवत्याःसुतःशुभः । चकारचिन्ताभीष्मोऽपिविवाहार्थंकनीयसः

काशिराजसुतास्तिस्रः सर्वलक्षणसंयुताः । तेनराज्ञा विवाहार्थं स्थापिताश्चस्वयंवरे

राजानो राजपुत्राश्च समाहूताः सहस्रशः । इच्छास्वयम्वरार्थंवैपूज्यमानाःसमागताः

तत्र भीष्मो महातेजास्ता जहार बलेन वै । निर्मथ्य राजकं सर्वं रथेनैकेन वीर्यवान्

स जित्वा पार्थिवान्सर्वांस्ताश्चादाय महारथः ।

बाहुवीर्येण तेजस्वी ह्याससाद गजाह्वयम् ॥ ३२ ॥

मातृवद्भगिनीवच्च पुत्रीवच्चिंतयन्किल । तिस्रः समानयामास कन्यका वामलोचनाः

सत्यवत्यै निवेद्याशु द्विजानाहूय सत्वरः । दैवज्ञान्वेदविदुषः पर्यपृच्छच्छुभं दिनम्

कृत्वा विवाहसम्भारं यथावै भ्रातरं निजम् । विचित्रवीर्यंधर्मिष्ठंविवाहयतिता यदा

तदा ज्येष्ठाऽप्युवाचेदं कन्यका जाह्नवीसुतम् ।

लज्जमानाऽसितापाङ्गी तिसृणाञ्चारुलोचना ॥ ३६ ॥

गङ्गापुत्र! कुरुश्रेष्ठ! धर्मज्ञ! कुलदीपक ! । मया स्वयम्वरे शाल्वो वृतोऽतिमनसा नृपः

वृताऽहंतेनराजाऽवै चित्ते प्रेमसमाकुले । यथायोग्यं कुरुष्वाऽद्य कुलस्याऽस्य परन्तप!
तेनाहंवृतपूर्वाऽस्मि त्वं च धर्मभृतां वरः । बलवानसि गाङ्गेय ! यथेच्छसि तथाकुरु

सूत उवाच

एवमुक्तस्तया तत्र कन्यया कुरुनन्दनः । अपृच्छद्ब्राह्मणान्वृद्धान्मातरं सचिवांस्तथा
सर्वेषां मतमाज्ञाय गाङ्गेयो धर्मवित्तमः । गच्छेति कन्यकामाह यथारुचि वरानने!॥
विसर्जिताऽथसातेन गताशाल्वनिकेतनम् । उवाच तं वरारोहा राजानंमनसेप्सितम्
विनिर्मुक्तास्मिभीष्मेणत्वन्मनस्केतिधर्मतः । आगताऽस्मिमहाराज!गृहाणाऽद्यकरंमम
धर्मपत्नी तवाऽत्यन्तं भवामिनृपसत्तम । चिन्तितोऽसि मयापूर्वं त्वयाऽहंनात्रसंशयः

शाल्व उवाच

गृहीता त्वं वरारोहे भीष्मेण पश्यतो मम । रथे संस्थापिता तेन न ग्रहीष्येकरं तव
परोच्छिष्टाशङ्कःकन्यांगृह्णातिमतिमान्नरः। अतोऽहंनग्रहीष्यामित्यक्तांभीष्मेणमातृवत्
रुदती विलपन्ती सा त्यक्तातेन महात्मना । पुनर्भीष्मं समागत्य रुदती चेदमब्रवीत्
शाल्वोमुक्तांत्वयावीर!नगृह्णातिगृहाणमाम् ।धर्मज्ञोसिमहाभाग!मरिष्याम्यन्यथाह्यहम्

भीष्म उवाच

अन्यचित्तां कथन्त्वांवै गृह्णामि वरवर्णिनि !। पितरं त्वं वरारोहे व्रजशीघ्रंनिराकुला
तथोक्ता सा तु भीष्मेण जगाम वनमेव हि । तपश्चकार विजने तीर्थे परमपावने ॥
द्वे भार्येचातिरूपाढ्येतस्य राज्ञो बभूवतुः । अम्बालिकाचाम्बिकाचकाशिराजसुतेशुभे
राजा विचित्रवीर्योऽसौ ताभ्यां सह महाबलः । रेमेनानाविहारैश्च गृहेचोपवने तथा
वर्षाणिनवराजेन्द्रःकुर्वन्क्रीडांमनोरमाम् । प्रापासौ मरणं भूयो गृहीतोराजयक्ष्मणा
मृते पुत्रेऽतिदुःखार्ताजातासत्यवतीतदा । कारयामास पुत्रस्यप्रेतकार्याणिमन्त्रिभिः
भीष्ममाहतदैकान्ते वचनञ्चातिदुःखिता । राज्यं कुरु महाभाग पितुस्तेशन्तनोःसुत
भ्रातुर्भार्यांगृहाणत्वं वंशञ्च परिरक्षय । यथा न नाशमायाति ययातेर्वंश इत्युत ॥

भीष्म उवाच

प्रतिज्ञा मे श्रुता मातःपित्रर्थे या मयाकृता । नाहंराज्यंकरिष्यामि नचाहंदारसंग्रहम्

सूत उवाच

तदा चिन्तातुराजाता कथंवंशो भवेदिति । नालसाद्विसुखं मह्यं समुत्पन्ने ह्यराजके॥
गाङ्गेयस्तामुवाचेदं मां चिन्तां कुरु भामिनि । पुत्रं विचित्रवीर्यस्य क्षेत्रजञ्चोपपादय
कुलीनन्द्विजमाहूय वध्वासह नियोजय । नात्रदोषोऽस्ति वेदेऽपिकुलरक्षाविधौकिल
पौत्रञ्चैवं समुत्पाद्य राज्यन्देहि शुचिस्मिते । अहंचपालयिष्यामि तस्य शासनमेवहि
तच्छ्रुत्वा वचनंतस्य कानीनं स्वसुतंमुनिम् । जगाममनसाव्यासं द्वैपायनमकल्मषम्

स्मृतमात्रस्ततो व्यास आजगाम स तापसः ।
कृत्वा प्रमाणं मात्रेऽथ संस्थितो दीप्तिमान्मुनिः ॥ ६३ ॥

भीष्मेण पूजितःकामंसत्यवत्याचमानितः । तस्थौतत्रमहातेजा विधूमोऽग्निरिवापरः
समुवाच मुनिं माता पुत्रमुत्पादयाधुना । क्षेत्रे विचित्रवीर्यस्य सुन्दरंतव वीर्यजम् ॥
व्यासःश्रुत्वावचोमातुरात्तवाक्यममन्यत।ओमित्युक्त्वास्थितस्तत्रऋतुकालमचिन्तयत्
अम्बिका च यदास्नाता नारीऋतुमतीतदा । सङ्गंप्राप्यमुनेः पुत्रमसूताऽन्धं महाबलम्
जन्मान्धञ्च सुतं वीक्ष्य दुःखितासत्यवत्यपि । द्वितीयाञ्चवधूमाह पुत्रमुत्पादयाशु वै
ऋतुकालेऽथसम्प्राप्तेव्यासेनसहसङ्गता । तथाचाऽम्बालिकाराज्ञी गर्भन्नारीदधारसा

सोऽपि पाण्डुः सुतो जातो राज्ययोग्यो न सम्मतः ।
पुत्रार्थे प्रेरयामास वर्षान्ते च पुनर्वधूम् ॥ ७० ॥

आहूय च ततो व्याससम्प्रार्थ्यमुनिसत्तमम् । प्रेषयामासराज्ञीसा शयनागारमुत्तमम्
न गता च वधूस्तत्रप्रेष्यासम्प्रेषितातया । तस्याञ्च विदुरोजातोदास्यांधर्मांशतःशुभः
एवं व्यासेन ते पुत्राधृतराष्ट्रादयस्त्रयः । उत्पादिता महावीरवंशरक्षणहेतवे ॥ ७२ ॥
एतद्वःसर्वमाख्यातं तस्य वंशसमुद्भवम् । व्यासेन रक्षितोवंशो भ्रातृधर्मविदाऽनघाः॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे
धृतराष्ट्रादीनामुत्पत्तिवर्णनं नाम विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

वेदाष्टेन्दुक्षितिमितैःसार्धैःश्लोकैःसविस्तरम् । देवीभागवतस्यास्यप्रथमस्कन्धईरितः

——०*०——

* श्रीगणेशायनमः *

देवीभागवतपुराणम्

द्वितीयं स्कन्धम्

प्रथमोऽध्यायः

सत्यवतीव्यासयोश्चरित्रवर्णनम्

ऋषय ऊचुः

आश्चर्यङ्करमेतत्ते वचनं गर्भहेतुकम् । सन्देहोऽत्र समुत्पन्नः सर्वेषां नस्तपस्विनाम् ॥
माता व्यासस्यमेधाविन्नाम्नासत्यवतीतिच । विवाहितापुराज्ञातारज्ञाशन्तनुनायथा
तस्याःपुत्रः कथं व्यासःसतीस्वभवनेस्थिता । ईदृशीसा कथं राज्ञा पुनःशन्तनुनावृता
तस्यां पुत्रावुभौ जातौ तत्त्वं कथय सुव्रत । विस्तरेण महाभाग कथांपरमपावनीम्
उत्पत्तिं वेदव्यासस्य सत्यवत्यास्तथा पुनः । श्रोतुकामाः पुनःसर्वेऋषयःसंशितव्रताः

सूत उवाच

प्रणम्य परमांशक्तिंचतुर्वर्गप्रदायिनीम् । आदिशक्तिंवदिष्यामिकथांपौराणिकीं शुभाम्
यस्योच्चारणमात्रेण सिद्धिर्भवतिशाश्वती । व्याजेनापिहिबीजस्य वाग्भवस्यविशेषतः
सम्यक्सर्वात्मना सर्वैः सर्वकामार्थसिद्धये ।
स्मर्तव्या सर्वथा देवी वाञ्छितार्थप्रदायिनी ॥ ८ ॥

राजोपरिचरो नाम धार्मिकः सत्यसङ्गरः । चेदिदेशपतिःश्रीमान्बभूव द्विजपूजकः ॥
तपसा तस्य तुष्टेन विमानं स्फाटिकं शुभम् । दत्तमिन्द्रेणतत्तस्मैसुन्दरंप्रियकाम्यया
तेनारूढस्तु सर्वत्र याति दिव्येन भूपतिः । न भूमावुपरिस्थोऽसौ तेनोपरिचरो वसुः
विख्यातः सर्वलोकेषु धर्मनित्यः स भूपतिः । तस्यभार्यावरारोहागिरिकानामसुन्दरी
पुत्राश्चास्य महावीर्या पञ्चासन्नमितौजसः । पृथग्देशेषुराजानः स्थापितास्तेनभूभुजा
वसोस्तु पत्नी गिरिकाकामान्काले न्यवेदयत् । ऋतुकालमनुप्राप्तास्नातापुंसवनेशुचिः
तदहः पितरश्चैनमूचुर्जहि मृगानिति । तच्छ्रुत्वा चिन्तयामास भार्यामृतुमतीं तथा
पितृवाक्यंगुरुंमत्वाकर्तव्यमितिनिश्चितम् । चचार मृगयांराजागिरिकांमनसास्मरन्

वने स्थितः स राजर्षिश्चित्ते सस्मार भामिनीम् ।
अतीव रूपसम्पन्नां साक्षाच्छ्रियमिवापराम् ॥ १७ ॥

तस्य रेतः प्रचस्कन्द स्मरतस्तांचकामिनीम् । वटपत्रेतुतद्राजास्कन्नमात्रंसमाक्षिपत्
इदं वृथा परिस्कन्नं रेतो वै न भवेत्कथम् । ऋतुकालञ्च विज्ञाय मतिंचक्रे नृपस्तदा
अमोघंसर्वथा वीर्यं मम चैतन्न संशयः । प्रियायै प्रेषयाम्येतदिति बुद्धिमकल्पयत् ॥
शुक्रप्रस्थापने कालं महिष्याः प्रसमीक्ष्य सः । अभिमन्त्र्याऽथतद्वीर्यं वटपर्णपुटेकृतम्
पार्श्वस्थंश्येनमाभाष्य राजोवाचद्विजम्प्रति। गृहाणेदं महाभाग गच्छ शीघ्रं गृहं मम
मत्प्रियार्थयिदं सौम्य गृहीत्वा त्वं गृहंनय । गिरिकायैप्रयच्छाशुतस्यास्त्वार्तवमद्यवै

सूत उवाच

इत्युक्त्वा प्रददौपर्णं श्येनाय नृपसत्तमः । स गृहीत्वोत्पपाताशु गगनं गतिवित्तमः ॥
गच्छन्तं गगनंश्येनं धृत्वा चञ्चुपुटेपुटम् । तमपश्यदथायान्तं खगं श्येनस्तथाऽपरः॥
आमिषं स तु विज्ञाय शीघ्रमभ्यद्रवत्खगम् । तुण्डयुद्धमथाकाशे तावुभौ सम्प्रचक्रतुः
युद्ध्यतोरपतद्रेतस्तच्चापि यमुनाम्भसि । खगौ तौ निर्गतौ कामं पुटके पतिते तदा ॥
एतस्मिन्समये काचिदद्रिकानाम चाप्सराः । ब्राह्मणंसमनुप्राप्तं सन्ध्यावन्दनतत्परम्
कुर्वन्ती जलकेलिंसा जलेमग्ना चचारसा । जग्राह चरणं नारी द्विजस्य वरवर्णिनी ॥
प्राणायामपरःसोऽथदृष्ट्वातांकामचारिणीम् । शशापभवमत्सीत्वंध्यानविघ्नकरीयतः

सा शप्ता विप्रमुख्येन बभूव यमुनाचरी । शफरी रूपसम्पन्ना ह्यद्रिकाच वराप्सराः ॥
श्येनपादपरिभ्रष्टंतच्छुक्रमथवासवी । जग्राह तरसाऽभ्येत्य साऽद्रिकामत्स्यरूपिणी
अथकालेनकियतामत्सींतांमत्स्यजीवनः । सम्प्राप्ते दशमे मासि बबन्धतांमनोरमाम्
उदरंविददाराशु स तस्या मत्स्यजीवनः । युग्मंविनिःसृतंतस्मादुदरान्मानुषाकृतिः ॥
बालः कुमारःसुभगस्तथाकन्याशुभामना । दृष्ट्वाऽऽश्चर्यमिदं सोऽथ विस्मयंपरमङ्गतः
राज्ञे निवेदयामास पुत्रौ द्वौतु झषोद्भवौ । राजाऽपिविस्मयाविष्टःसुतंजग्राहतं शुभम्
स मत्स्योनामराजाऽसौधार्मिकःसत्यसंगरः । वसुपुत्रोमहातेजाःपित्रातुल्यपराक्रमः
कालिकावसुनादत्तातरसाजलजीविने । नाम्नाकालीतिविख्यातातथामत्स्योदरीतिच
मत्स्यगन्धेति नाम्नावै गुणेन समजायत । विवर्धमानादासस्यगृहे सा वासवी शुभा

ऋषय ऊचुः

अद्रिकामुनिना शप्ता मत्सीजाता वराप्सरा. । विदारिताचदाशेनमृताचभक्षितापुनः
किं बभूवपुनस्तस्याअप्सरायावदस्व तत् । शापस्यान्तं कथं सूत कथं स्वर्गमवापसा

सूत उवाच

शप्तायदासा मुनिना विस्मिता सम्बभूवह । स्तुतिं चकार विप्रस्य दीनेव रुदतीतदा
दयावान्ब्राह्मणःप्राहतांतदारुदतींस्त्रियम् । मा शोकंकुरुकल्याणिशापान्तंतेवदाम्यहम्
मत्क्रोधशापभोगेनमत्स्ययोनिंगताशुभे । मानुषौजनयित्वात्वं शापमोक्षमवाप्स्यसि
इत्युक्तातेनसाप्रापमत्स्यदेहं नदीजले । बालकौ जनयित्वा सा मृतामुक्ताचशापतः ॥
सन्त्यज्यरूपं मत्स्यस्य दिव्यंरूपमवाप्य च । जगामामरमार्गंश्चशापान्ते वरवर्णिनी॥
एवंजातावरापुत्री मत्स्यगन्धा वरानना । पुत्रीव पाल्यमाना सा दाशगेहे व्यवर्धत

मत्स्यगन्धातदाजाताकिशोरीचातिसुप्रभा ।
तस्य कार्याणि कुर्वाणा वासवी चाऽतिसुप्रभा ॥ ४८ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां द्वितीयस्कन्धे
मत्स्यगन्धोत्पत्तिर्नाम प्रथमोऽध्यायः ॥१ ॥

द्वितीयोऽध्यायः

पराशरमुनिचरित्रवर्णनम्

सूत उवाच

एकदा तीर्थयात्रायां व्रजन्पाराशरोमुनिः । आजगाममहातेजाःकालिन्द्यास्तटमुत्तमम्
निषादमाह धर्मात्मा कुर्वन्तं भोजनं तदा । प्रापयस्व परं पारं कालिन्द्याउडुपेनमाम्
दाशःश्रुत्वामुनेर्वाक्यंकुर्वाणोभोजनंतटे । उवाचतांसुतांबालां मत्स्यगन्धांमनोरमाम्
उडुपेन मुनिं बाले परं पारं नयस्वह । गन्तुकामोऽस्तिधर्मात्मातापसोऽयंशुचिस्मिते
इत्युक्तासातदापित्रामत्स्यगन्धाऽथवासवी । उडुपेमुनिमासीनं सम्वाहयतिभामिनी
व्रजन्सूर्यसुतातोये भावित्वाद्दैवयोगतः । कामार्तस्तुमुनिर्जातो दृष्ट्वातां चारुलोचनाम्
ग्रहीतुकामःस मुनिर्दृष्ट्वा व्यञ्जितयौवनाम् । दक्षिणेन करेणैनामस्पृशद्दक्षिणे करे ॥७॥
तमुवाचाऽसितापाङ्गी स्मितपूर्वमिदंवचः । कुलस्यसदृशं वः किं श्रुतस्यतपसश्चकिम्
त्वं वै वसिष्ठदायादःकुलशीलसमन्वितः । किं चिकीर्षसि धर्मज्ञ मन्मथेन प्रपीडितः
दुर्लभंमानुषं जन्म भुवि ब्राह्मणसत्तम ! । तत्राऽपि दुर्लभं मन्ये ब्राह्मणत्वं विशेषतः॥

कुलेन शीलेन तथा श्रुतेन द्विजोत्तमस्त्वंकिल धर्मविच्च ।
अनार्यभावं कथमागतोऽसि विप्रेन्द्र! मां वीक्ष्य च मीनगन्धाम् ॥ ११ ॥
मदीये शरीरे द्विजामोघबुद्धे शुभं किं समालोक्य पाणिं ग्रहीतुम् ।
समीपं समायासि कामातुरस्त्वं कथं नाऽभिजानासि धर्मं स्वकीयम् ॥१२॥
अहो मन्दबुद्धिर्द्विजोऽयं ग्रहीष्यञ्जले मग्न एवाद्य मां वै गृहीत्वा ।
मनो व्याकुलम्पञ्चबाणाऽतिविद्धं न कोऽपीह शक्तः प्रतीपंहि कर्तुम् ॥ १३ ॥

इति सञ्चिन्त्यसा बाला तमुवाच महामुनिम्। धैर्यं कुरु महाभाग परम्पारं नयामि वै

सूत उवाच

पराशरस्तुतच्छ्रुत्वा वचनं हितपूर्वकम्। करं त्यक्त्वा स्थितस्तत्रसिन्धोःपारंगतःपुनः॥

मत्स्यगन्धाञ्जग्राह मुनिः कामातुरस्तदा ।

वेपमाना तु सा कन्या समुवाच पुरःस्थितम् ॥ १६ ॥

दुर्गन्धाऽहं मुनिश्रेष्ठ कथं त्वं नोपशंकसे । समानरूपयोः कामसंयोगस्तु सुखावहः
इत्युक्तेन तु सा कन्याक्षणमात्रेणभामिनी । कृता योजनगन्धा तु सुरूपा चवरानना॥
मृगनाभिसुगन्धां तांकृत्वाकान्तांमनोहराम् । जग्राहदक्षिणेपाणौमुनिर्मन्मथपीडितः
ग्रहीतुकामन्तंप्राह नाम्ना सत्यवतीशुभा । मुने पश्यति लोकोऽयंपिताचैव तटस्थितः
पशुधर्मो न मे प्रीतिं जनयत्यतिदारुणः । प्रतीक्षस्व मुनिश्रेष्ठ ! यावद्भवति यामिनी ॥
रात्रौव्यवाय उद्दिष्टोदिवानमनुजस्यहि । दिवा संगे महान्दोषःपश्यन्तिकिलमानवाः
कामंयच्छमहाबुद्धे लोकनिन्दादुरासदा । तच्छ्रुत्वा वचनन्तस्या युक्तमुक्तमुदारधीः ॥
नीहारंकल्पयामास शीघ्रंपुण्यबलेन वै । नीहारे च समुत्पन्ने तटेऽतितमसा युते ॥२४
कामिनी तं मुनिं प्राह मृदुपूर्वमिदंवचः। कन्याऽहंद्विजशार्दूलभुक्त्वागन्तासिकामतः
अमोघवीर्यस्त्वं ब्रह्मन्का गतिर्मे भवेदिति । पितरं किं ब्रवीम्यद्य सगर्भाचेद्भवाम्यहम्

त्वङ्गमिष्यसि भुक्त्वा मां किं करोमि वदस्व तत् ।

पराशर उवाच

कान्तेऽद्य मत्प्रियं कृत्वा कन्यैव त्वं भविष्यसि ॥ २७ ॥

वृणीष्व च वरं भीरु ! यं त्वमिच्छसि भामिनि !।

सत्यवत्युवाच

यथा मे पितरौ लोके न जानीतो हि मानद ! ॥ २८ ॥

कन्याव्रतं न मे हन्यात्तथा कुरु द्विजोत्तम !। पुत्रश्च त्वत्समःकामं भवेदद्भुतवीर्यवान्

गन्धोऽयं सर्वदा मे स्याद्यौवनञ्च नवं नवम् ।

पराशर उवाच

शृणु सुन्दरि ! पुत्रस्ते विष्ण्वंशसम्भवः शुचिः ॥ ३० ॥

भविष्यतिचविख्यातस्त्रैलोक्येवरवर्णिनि । केनचित्कारणेनाहं जातःकामातुरस्त्वयि
कदाऽपि च न संमोहो भूतपूर्वोवरानने । दृष्ट्वा चाप्सरसां रूपं सदाऽहं धैर्यमावहम्

दैवयोगेनवीक्ष्यत्वांकामस्यवशगोऽभवम् । तत्किञ्चित्कारणंविद्धिनैवंहितुरतिक्रमम्

दृष्ट्वाऽहं चातिदुर्गन्धां त्वां कथं मोहमाप्नुयाम् ।
पुराणकर्ता पुत्रस्ते भविष्यति वरानने ! ॥ ३४ ॥
वेदविद्भागकर्ता च ख्यातश्च भुवनत्रये ।

सूत उवाच

इत्युक्त्वा तां वशं यातां भुक्त्वा स मुनिसत्तमः ॥ ३५ ॥

जगामतरसास्नात्वा कालिन्दीसलिलेमुनिः । साऽपिसत्यवतीजातासद्योगर्भवतीसती
सुषुवे यमुनाद्वीपे पुत्रं काममिवापरम् । जातमात्रस्तु तेजस्वी तामुवाच स्वमातरम्
तपस्येवमनःकृत्वाविविशेवाऽतिवीर्यवान् । गच्छमातर्यथाकामंगच्छाम्यहमतः परम्
तपःकर्तुंमहाभागे दर्शयिष्यामि वै स्मृतः । मातर्यदा भवेत्कार्यं तव किञ्चिदनुत्तमम्

स्मर्तव्योऽहं तदा शीघ्रमागमिष्यामि भामिनि ! ।
स्वस्ति तेऽस्तु गमिष्यामि त्यक्त्वा चिन्तां सुखं वस ॥ ४० ॥
इत्युक्त्वा निर्ययौ व्यासः साऽपि पित्रन्तिकं गता ।
द्वीपे न्यस्तस्तया बालस्तस्माद् द्वैपायनोऽभवत् ॥ ४१ ॥

जातमात्रो जगामाशु वृद्धिं विष्ण्वंशयोगतः । तीर्थे तीर्थे कृतस्नानश्चचारतप उत्तमम्
एवं द्वैपायनो जज्ञे सत्यवत्यां पराशरात् । चकारवेदशाखाश्च प्राप्तंज्ञात्वा कलेर्युगम्
वेदविस्तारकरणाद्व्यासनामाऽभवन्मुनिः । पुराणसंहिताश्चक्रे महाभारतमुत्तमम् ॥
शिष्यानध्यापयामास वेदान्कृत्वाविभागशः । सुमन्तुं जैमिनिं पैलं वैशम्पायनमेवच

असितं देवलञ्चैव शुकञ्चैव स्वमात्मजम् ।

सूत उवाच

एतद्व कथितं सर्वं कारणं मुनिसत्तमाः ॥ ४६ ॥
सत्यवत्याः सुतस्याऽपि समुत्पत्तिस्तथा शुभा ।
संशयोऽत्र न कर्तव्यः सम्भवे मुनिसत्तमाः ॥ ४७ ॥

महतां चरिते चैव गुणा ग्राह्यामुनेरिति । कारणाच्च समुत्पत्तिः सत्यवत्याझषोदरे

पराशरेण संयोगः पुनः शन्तनुना तथा । अन्यथा तु मुनेश्चित्तं कथं कामाकुलं भवेत्
अनार्यजुष्टं धर्मज्ञः कृतवान्स कथंमुनिः । सकारणेयमुत्पत्तिः कथिताऽऽश्चर्यकारिणी
श्रुत्वा पापाच्च निर्मुक्तो नरो भवति सर्वथा । यएतच्छुभमाख्यानंशृणोतिश्रुतिमाकरः
न दुर्गतिमवाप्नोति सुखी भवति सर्वदा ॥ ५२ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां द्वितीयस्कन्धे
व्यासजन्मवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः

ऋषीणां शन्तनुचरित्रविषयेप्रश्नेकृते सूतेनमहाभिषराज्ञश्चरित्रवर्णनम्

ऋषय ऊचुः

उत्पत्तिस्तु त्वया प्रोक्ता व्यासस्यामिततेजसः ।
सत्यवत्यास्तथा सूत ! विस्तरेण त्वयाऽनघ ॥ १ ॥

तथाऽप्येकस्तु संदेहश्चित्तेऽस्माकं सुसंस्थितः । ननिवर्ततेतिधर्मज्ञकथितेनत्वयाऽनघ
माता व्यासस्य याप्रोक्तानाम्नासत्यवतीशुभा । साकथंनृपतिप्राप्ताशन्तनुंधर्मवित्तमम्
निषादपुत्रीं स कथंवृतवान्नृपतिःस्वयम् । धर्मिष्ठः पौरवो राजा कुलहीनामसंवृताम्
शन्तनोः प्रथमा पत्नी का ह्यभूत्कथयाधुना । भीष्मःपुत्रोऽथमेधावीवसोरंशःकथंपुनः
त्वया प्रोक्तं पुरा सूतराजाचित्राङ्गदःकृतः । सत्यवत्याःसुतोवीरोभीष्मेणामिततेजसा
चित्राङ्गदेहते वीरे कृतस्तदनुजस्तथा । विचित्रवीर्यनामाऽसौ सत्यवत्याः सुतो नृपः
ज्येष्ठे भीष्मे स्थितेपूर्वं धर्मिष्ठेरूपवत्यपि । कृतवान्सकथंराज्येंस्थापितस्तेनजानता
मृते विचित्रवीर्ये तु सत्यवत्यतिदुःखिता । वधूभ्यांगोलकौपुत्रौजनयामाससाकथम्
कथं राज्यं न भीष्माय ददौ सा वरवर्णिनी । न कृतस्तु कथं तेन वीरेण दारसंग्रहः
अधर्मस्तु कृतः कस्मात्तु व्यासेनाऽमिततेजसा ।

ज्येष्ठेन भ्रातृभार्यायां पुत्रावुत्पादिताविति ॥ ११ ॥

पुराणकर्ता धर्मात्मा स कथं कृतवान्मुनिः । सेवनंपरदाराणां भ्रातुश्चैव विशेषतः ॥
जुगुप्सितमिदं कर्म स कथं कृतवान्मुनिः । शिष्टाचारः कथं सूत वेदानुमितिकारकः
व्यासशिष्योऽसि मेधाविन्संदेहं छेत्तुमर्हसि । श्रोतुकामा वयं सर्वेधर्मक्षेत्रेकृतक्षणाः

सूत उवाच

इक्ष्वाकुवंशप्रभवो महाभिष इति स्मृतः । सत्यवान्धर्मशीलश्च चक्रवर्ती नृपोत्तमः ॥
अश्वमेधसहस्रेण वाजपेयशतेन च । तोषयामास देवेन्द्रं स्वर्गं प्राप महामतिः ॥१६॥
एकदा ब्रह्मसदनं गतो राजा महाभिषः । सुराः सर्वे समाजग्मुः सेवनार्थं प्रजापतिम्
गङ्गा महानदी तत्र संस्थिता सेवितुं विभुम् । तस्यावासःसमुद्धूतंमारुतेनतरस्विना

अधोमुखाः सुराः सर्वे न विलोक्यैव तां स्थिताः ।
राजा महाभिषस्तां तु निःशङ्कः समपश्यत ॥ १९ ॥

साऽपि तं प्रेमसंयुक्तं नृपं ज्ञातवती नदी । दृष्ट्वा तौ प्रेमसंयुक्तौ निर्लज्जौकाममोहितौ
ब्रह्मा चुकोप तौ तूर्णं शशाप च रुषान्वितः । मर्त्यलोकेषुभूपालजन्म प्राप्य पुनर्दिवम्
पुण्येन महताऽऽविष्टस्त्वमवाप्स्यसि सर्वथा । गङ्गां तथोक्तवान्ब्रह्मावीक्ष्यप्रेमवतींनृपे

विमनस्कौ तु तौ तूर्णं निःसृतौ ब्रह्मणोऽन्तिकात् ।
स नृपश्चिन्तयित्वाऽथ भूलोके धर्मतत्परान् ॥ २३ ॥

प्रतीपं चिन्तयामास पितरं पुरुवंशजम् । एतस्मिन्समयेचाष्टौ वसवः स्त्रीसमन्विताः
वसिष्ठस्याऽऽश्रमं प्राप्तारममाणायदृच्छया । पृथ्वादीनांवसूनांचमध्येकोऽपिवसूत्तमः
द्यौर्नामा तस्य भार्याऽथ नन्दिनीं गां ददर्श ह । दृष्ट्वा पतिंसा प्रपच्छकस्येयंधेनुरुत्तमा
द्यौस्तामाह वसिष्ठस्य गोरियंशृणुसुन्दरि । दुग्धमस्याःपिबेद्यस्तुनारीवापुरुषोऽथवा
अयुतायुर्भवेन्नूनं सदैवाऽगतयौवनः । तच्छुत्वा सुन्दरी प्राह मृत्युलोकेऽस्तिमेसखी
उशीनरस्य राजर्षेः पुत्री परमशोभना । तस्याहेतोर्महाभाग सवत्सां गां पयस्विनीम्

आनयस्वाऽऽश्रमश्रेष्ठं नन्दिनीं कामदां शुभाम् ।
यावदस्याः पयः पीत्वा सखी मम सदैव हि ॥ ३० ॥

मानुषेषु भवेदेका जरारोगविवर्जिता । तच्छ्रुत्वा वचनं तस्या द्यौर्जहारचनन्दिनीम्
अवमन्य मुनिं दान्तं पृथ्वाद्यैःसहितोऽनघः । हृतायामथनन्दिन्यांवसिष्ठस्तुमहातपाः
आजगामाऽऽश्रमपदं फलान्यादाय सत्वरः । नापश्यतयदाधेनुंसवत्सांस्वाश्रमे मुनिः
मृगयामास तेजस्वी गह्वरेषु वनेष्वपि । नासादिता यदा धेनुश्चुकोपाऽतिशयंमुनिः
वारुणिश्चापि विज्ञाय ध्यानेन वसुभिर्हृताम् । वसुभिर्मे हृताधेनुर्यस्मान्मामवमन्यवै

तस्मात्सर्वे जनिष्यन्ति मानुषेषु न संशयः ।
एवं शशाप धर्मात्मा वसूंस्तान्वारुणिः स्वयम् ॥ ३६ ॥

श्रुत्वा विमनसः सर्वे प्रययुर्दुःखिताश्चते । शप्ताः स्म इति जानन्तं ऋषिंतमुपचक्रमुः
प्रसादयन्तस्तमृषिं वसवः शरणंगताः । मुनिस्तानाहधर्मात्मावसून्दीनान्पुरःस्थितान्
अनुसम्वत्सरं सर्वे शापमोक्षमवाप्स्यथ । येनेयं विहृता धेनुर्नन्दिनी मम वत्सला ॥
तस्माद्द्यौर्मानुषे देहे दीर्घकालं वसिष्यति । तेशप्ताःपथिगच्छन्तींगङ्गांदृष्ट्वासरिद्वराम्

ऊचुस्तां प्रणताः सर्वे शप्तां चिन्तातुरां नदीम् ।
भविष्यामो वयं देवि कथं देवाः सुधाशनाः ॥ ४१ ॥

मानुषाणां च जठरे चिन्तेयं महती हि नः । तस्मात्त्वंमानुषीभूत्वाजनयास्मान्सरिद्वरे
शन्तनुर्नाम राजर्षिस्तस्यभार्या भवाऽनघे । जाताञ्जाताञ्जलेचास्मान्निक्षिपस्वसुरापगे
एवंशापविनिर्मोक्षो भवितानात्र संशयः । तथेत्युक्ताश्च ते सर्वे जग्मुर्लोकंस्वकंपुनः
गङ्गाऽपि निर्गता देवी चिन्त्यमानापुनःपुनः । महाभिषोनृपोजातः प्रतीपस्यसुतस्तदा
शन्तनुर्नाम राजर्षिर्धर्मात्मा सत्यसंग्रहः । प्रतीपस्तु स्तुतिं चक्रे सूर्यस्यामिततेजसः
तदा च सलिलात्तस्मान्निःसृता वरवर्णिनी । दक्षिणंशालसंकाशमूरुं भेजे शुभानना
अङ्के स्थितांस्त्रियं चाह मापृष्टार्किवरानने । ममोरावास्थिताऽसित्वंकिमर्थंदक्षिणेशुभे
सा तमाह वरारोहा यदर्थं राजसत्तम । स्थिताऽस्म्यङ्केकुरुश्रेष्ठकामयानांभजस्वमाम्
तामवोचदथो राजा रूपयौवनशालिनीम् । नाहं परस्त्रियं कामाद्गच्छेयंववर्णिनीम्

स्थिता दक्षिणमूरुं मे त्वमाश्लिष्य च भामिनि !।
अपत्यानां स्नुषाणां च स्थानं विद्धि शुचिस्मिते ! ॥ ५१ ॥

स्नुषा मे भवकल्याणि जातेपुत्रेऽतिवाञ्छिते । भविष्यतिवमेपुत्रस्तवपुण्यान्नसंशयः
तथेत्युक्त्वा गता सावैकामिनीदिव्यदर्शना । राजाचापिगृहंप्राप्तश्चिन्तयंस्तांस्त्रियंपुनः
ततः कालेन कियता जातेपुत्रे यशस्विनि । वनं जिगमिषू राजा पुत्रं वृत्तांतमूचिवान्
वृत्तान्तं कथयित्वा तु पुनरूचे निजं सुतम् । यदिप्रयातिसाबालात्वांवनेचारुहासिनी
कामयाना वरारोहातांभजेथामनोरमाम् । न प्रष्टव्यात्वयाकाऽसिममनियोगान्नराधिप
धर्मपत्नीं च तां कृत्वा भविता त्वं सुखी किल ।

सूत उवाच

एव संदिश्य तं पुत्रं भूपतिः प्रीतमानसः ॥ ५७ ॥
दत्त्वा राज्यश्रियंसर्वां वनंराजाविवेश ह । तत्रापिचतपस्तप्त्वासमाराध्यपराम्बिकाम्
जगाम स्वर्गं राजाऽसौ देहं त्यक्त्वा स्वतेजसा ।
राज्यं प्राप महातेजाः शन्तनुः सार्वभौमिकम् ॥ ५६ ॥
प्रजां वै पालयामास धर्मदण्डो महीपतिः ॥ ६० ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां द्वितीयस्कन्धे
प्रतीपसकाशात् शन्तनुजन्मवर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः

गङ्गयासह शन्तनोर्विवाहवर्णनम्

सूत उवाच

प्रतीपेऽथ दिवं यातेशन्तनुःसत्यविक्रमः । बभूवमृगयाशीलो निघ्नन्व्याघ्रान्मृगान्नृपः
सकदाचिद्वने घोरे गङ्गातीरे चरन्नृपः । ददर्श मृगशावाक्षीं सुन्दरीं चारुभूषणाम् ॥
दृष्ट्वा तां नृपतिर्मग्नः पित्रोक्तेयं वरानना । रूपयौवनसम्पन्ना साक्षाल्लक्ष्मीरिवापरा ॥
पिबन्मुखाम्बुजं तस्या नतृप्तिमगमन्नृपः । हृष्टरोमाऽभवत्तत्र व्यासक्तचित्त इवाऽनघ ॥

महाभिषं साऽपि मत्वा प्रेमयुक्ता बभूव ह । किञ्चिन्मन्दस्मितंकृत्वातस्थावग्रेनृपस्यच

वीक्ष्य तामसितापाङ्गीं राजा प्रीतमना भृशम् ।
उवाच मधुरं वाक्यं सान्त्वयञ्छ्लक्ष्णया गिरा ॥ ६ ॥

देवीवा त्वंचवामोरुमानुषीवावरानने । गन्धर्वीवाऽथयक्षीवानागकन्याऽप्सराऽपिवा याऽसि काऽसि वरारोहे भार्या मे भवसुन्दरि । प्रेमयुक्तस्मितैवत्वंधर्मपत्नीभवाद्यमे

सूत उवाच

राजा तां नाभिजानाति गङ्गेयमितिनिश्चितम् । महाभिषंसमुत्पन्नंनृपंजानातिजाह्नवी पूर्वप्रेमसमायोगात्श्रुत्वावाचंनृपस्यताम् । उवाच नारी राजानंस्मितपूर्वमिदंवचः ॥

स्त्र्युवाच

जानामि त्वां नृपश्रेष्ठप्रतीपतनयं शुभम् । कानवाञ्छतिचार्वङ्गीभावित्वात्सदृशंपतिम् वाग्बन्धेन नृपश्रेष्ठ वरिष्यामि पतिं किल । शृणु मे समयं राजन्वृणोमित्वांनृपोत्तम यच्चकुर्यामहं कार्यंशुभंवा यदिवाऽशुभम् । ननिषेध्या त्वयाराजन्नवक्तव्यंतथाऽप्रियम् यदा च त्वं नृपश्रेष्ठ न करिष्यसि मे वचः । तदा मुक्त्वागमिष्यामियथेष्टंदेशमारिष स्मृत्वा जन्म वसूनां सा प्रार्थनापूर्वकंहृदि । महाभिषस्यप्रेमायविचिन्त्यैवचजाह्नवी तथेत्युक्ताऽथसा देवी चकारनृपतिं पतिम् । एवं वृता नृपेणाऽथ गङ्गामानुषरूपिणी नृपस्य मन्दिरं प्राप्ता सुभगावरवर्णिनी । नृपतिस्तां समासाद्य चिक्रीडोपवने शुभे साऽपितं रमयामास भावज्ञा वै वराङ्गना । न बुबोध नृपः क्रीडन्गतान्वर्षगणानथ स तयामृगशावाक्ष्याशच्याशतक्रतुर्यथा । सा सर्वगुणसम्पन्नासोऽपिकामविचक्षणः रेमाते मन्दिरे दिव्ये रमानारायणाविव । एवं गच्छति कालेसा दधार नृपतेस्तदा ॥ गर्भं गङ्गा वसुंपुत्रं सुषुवे चारुलोचना । जातमात्रं सुतं वारि चिक्षेपैवं द्वितीयके ॥ तृतीयेऽथ चतुर्थेऽथ पञ्चमे षष्ठ एव च । सप्तमे वा हते पुत्रे राजा चिन्तापरोऽभवत् किं करोम्यद्य वंशोमे कथंस्यात्सुस्थिरो भुवि । सप्तपुत्रा हतानूनमनया पापरूपया निवारयामियदिमांत्यक्त्वायास्यतिसर्वथा । अष्टमोऽयंसुसम्प्राप्तोगर्भोमेमनसीप्सितः न वारयामि चेदद्य सर्वथेयं जले क्षिपेत् । भविता वा न वाचाग्रेसंशयोऽयं ममाद्भुतः

सम्भवेऽपि च कुष्टेयं रक्षयेद्वा न रक्षयेत्। क्षयं संशयिते कार्ये किंकर्तव्यंमयाऽधुना
वंशस्य रक्षणार्थं हि यत्नः कार्यः परो मया। ततःकालेयदाजातः पुत्रोऽयमष्टमो वसुः
मुनेर्येन हृताधेनुनन्दिनी स्त्रीजितेन हि। तं दृष्ट्वा नृपतिः पुत्रं तामुवाच पतत्पदे॥
दासोऽस्मि तव तन्वङ्गि प्रार्थयामि शुचिस्मिते। पुत्रमेकंपुषाम्यद्य देहिजीवन्तमद्यमे
हिंसिताः सप्त पुत्रा मे करभोरु त्वयाशुभाः। अष्टमं रक्ष सुश्रोणिपतामि तवपादयोः
अन्यद्वै प्रार्थितं तेऽद्य ददाम्यथ च दुर्लभम्। वंशोमे रक्षणीयोऽद्य त्वया परमशोभने
अपुत्रस्य गतिर्नास्ति स्वर्गे वेदविदो विदुः। तस्मादद्य वरारोहे प्रार्थयाम्यष्टमंसुतम्

इत्युक्ताऽपि गृहीत्वा तं यदा गन्तुं समुत्सुका।
तदाऽपि कुपितो राजा तामुवाचातिदुःखितः॥ ३३॥

पापिष्ठे किंकरोम्यद्यनिरयान्नबिभेषिकिम्। काऽसिपापाकराणांत्वंपुत्रीपापरतासदा
यथेच्छं गच्छ वा तिष्ठ पुत्रो मेस्थीयतामिह। किंकरोमित्वयापापेवंशान्तकरयाऽनया
एवं वदति भूपाले सागृहीत्वा सुतं शिशुम्। गच्छन्ती वचनंकोपसंयुता तमुवाच ह
पुत्रकामा सुतं त्वेनं पालयामि वनेगता। समयोमेगमिष्यामि वचनं ह्यन्यथा कृतम्
गङ्गां मां वै विजानीहि देवकार्यार्थमागताम्। वसवस्तुपुराशप्ता वसिष्ठेनमहात्मना
व्रजन्तु मानुषीं योनिंस्थितांचिन्तातुरास्तुमाम्। दृष्ट्वेदं प्रार्थयामासुर्जननीनोभवानघे
तेभ्यो दत्त्वा वरं जाता पत्नी ते नृपसत्तम। देवकार्यार्थसिद्ध्यर्थंजानीहिसम्भवोमम
सप्त ते वसवः पुत्रा मुक्ताः शापाद्वृषेस्तुते। कियन्तं कालमेकोऽयंतवपुत्रोभविष्यति
गङ्गादत्तमिमं पुत्रं गृहाण शन्तनोस्त्वयम्। वसुंदेवं विदित्वैनं सुखं भुंक्ष्व सुतोद्भवम्
गाङ्गेयोऽयं महाभाग भविष्यति बलाधिकः। अद्यतत्रनयाम्येनं यत्रत्वं वै मया वृतः
दास्यामि यौवनंप्राप्तं पालयित्वामहीपते। न मातृरहितः पुत्रो जीवेच्च सुखी भवेत्
इत्युक्त्वाऽन्तर्दधेगङ्गातंगृहीत्वाचबालकम्। राजाचातीवदुःखार्तःसंस्थितोनिजमंदिरे
भार्याविरहजं दुःखं तथा पुत्रस्यचाद्भुतम्। सर्वदाचिन्तयन्नास्ते राज्यं कुर्वन्महीपतिः
एवं गच्छति कालेऽथ नृपतिर्मृगयाङ्गतः। निघ्नन्मृगगणान्बाणैर्महिषान्सूकरानपि
गङ्गातीरमनुप्राप्तः स राजा शन्तनुस्तदा। नदीं स्तोकजलां दृष्ट्वाविस्मितःसमहीपतिः

तत्रापश्यत्कुमारं तं मुञ्चन्तं विशिखान्बहून् । आकृष्य च महाचापंक्रीडन्तंसरितस्तटे
तंवीक्ष्यविस्मितो राजानसमजानातिकिञ्चन । नोपलेभेस्मृतिंभूपः पुत्रोऽयंममवानवा
दृष्ट्वाऽप्यमानुषं कर्म बाणेषुलघुहस्तताम् । विद्यांवाऽप्रतिमांरूपंतस्यवै स्मरसन्निभम्

पप्रच्छ विस्मितो राजा कस्य पुत्रोऽसि चाऽनघ ।
नोवाच किञ्चिद्वीरोऽसौ मुञ्चञ्छिलीमुखानथ ॥ ५२ ॥
अन्तर्धानं गतः सोऽथ राजा चिन्तातुरोऽभवत् ।
कोऽयं मम सुतो बालः किंकरोमि व्रजामि कम् ॥ ५३ ॥

गङ्गांतुष्टावभूपालः स्थितस्तत्रसमाहितः । दर्शनं सा ददौचाथ चारुरूपा यथापुरा ॥
दृष्ट्वा तां चारुसर्वाङ्गीं बभाषे नृपतिःस्वयम् । कोऽयंगङ्गेगतोबालो ममत्वंदर्शयाधुना

गङ्गोवाच

पुत्रोऽयंतव राजेन्द्र रक्षितश्चाष्टमे वसुः । ददामि तव हस्ते तु गाङ्गेयोऽयं महातपाः
कीर्तिकर्ताकुलस्यास्यभवितातव सुव्रतः । पाठितस्त्वखिलान्वेदान्धनुर्वेदञ्चशाश्वतम्
वसिष्ठस्याश्रमेदिव्येसंस्थितोऽयं सुतस्तव । सर्वविद्याविधानज्ञः सर्वार्थकुशलःशुचिः
यद्वेद जामदग्न्योऽसौ तद्वेदायं सुतस्तव । गृहाण गच्छ राजेन्द्र सुखी भव नराधिप
इत्युक्त्वान्तर्दधेगङ्गादत्त्वापुत्रंनृपाय वै । नृपतिस्तुमुदा युक्तो बभूवातिसुखान्वितः
समालिंग्य सुतं राजा समाघ्रायच मस्तकम् । समारोप्यरथेपुत्रं स्वपुरं स प्रचक्रमे ॥
गत्वागजाह्वयं राजा चकारोत्सवमुत्तमम् । दैवज्ञञ्च समाहूय पप्रच्छच शुभंदिनम् ॥
समाहृत्यप्रजाःसर्वाःसचिवान्सर्वशःशुभान् । यौवराज्येऽथगाङ्गेयंस्थापयामासपार्थिवः
कृत्वातंयुवराजानंपुत्रं सर्वगुणान्वितम् । सुखमास स धर्मात्मानसस्मारचजाह्नवीम्

सूत उवाच

एतद्वःकथितं सर्वं कारणंवसुशापजम् । गाङ्गेयस्य तथोत्पत्तिं जाह्नव्याः सम्भवन्तथा
गङ्गावतरणं पुण्यं वसूनां सम्भवन्तथा । यः शृणोतिनरः पापान्मुच्यते नात्र संशयः
पुण्यंपवित्रमाख्यानं कथितं मुनिसत्तमाः । यथामयाश्रुतंव्यासात्पुराणंवेदसम्मितम्
श्रीमद्भागवतं पुण्यं नानाख्यानकथान्वितम् । द्वैपायनमुखोद्भूतं पञ्चलक्षणसंयुतम् ॥

शृण्वतां सर्वपापघ्नं शुभदं सुखदं तथा । इतिहासमिमं पुण्यं कीर्तितं मुनिसत्तमाः॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यांसंहितायां द्वितीयस्कन्धे
देवव्रतोत्पत्तिवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पञ्चमोऽध्यायः

शन्तनोः सत्यवत्यासहविवाहवर्णनम्

ऋषय ऊचुः

वसूनां सम्भवःसूत कथितः शापकारणात् । गाङ्गेयस्य तथोत्पत्तिःकथितालोमहर्षणे
माताव्यासस्यधर्मज्ञनाम्ना सत्यवतीसती । कथं शन्तनुना प्राप्ता भार्यागन्धवतीशुभा
तन्ममाचक्ष्व विस्तारं दाशपुत्री कथम्वृता । राज्ञाधर्मवरिष्ठेन संशयं छिन्धि सुव्रत

सूत उवाच

शन्तनुर्नाम राजर्षिर्मृगयानिरतः सदा । वनं जगाम निघ्नन्वै मृगांश्च महिषान्रुरून् ॥
चत्वार्येव तु वर्षाणि पुत्रेण सह भूपतिः । रममाणः सुखं प्राप कुमारेण यथा हरः ॥
एकदा विक्षिपन्बाणान्विनिघ्नन्खड्गसूकरान् ।
स कदाचिद्वनं प्राप्तः कालिन्दीं सरिताम्वराम् ॥ ६ ॥
महीपतिरनिर्देश्यमाजिघ्रद्गन्धमुत्तमम् । तस्य प्रसभमन्विच्छन्सञ्चचार वनन्तदा ॥
न मन्दारस्यगन्धोऽयंमृगनाभिमदस्यन । चम्पकस्य न मालत्या न केतक्यामनोहरः
कुतोऽयमेति वायुर्वै मम घ्राणविमोहनः ॥ ६ ॥
इति सञ्चिन्त्यमानोऽसौ बभ्रामवनमण्डलम् । मोहितोगन्धलोभेनशन्तनुःपवनानुगः
सददर्शनदीतीरेसंस्थितांचारुदर्शनाम् । शृङ्गारसहितांकान्तांसुस्थितांमलिनाम्बराम्
दृष्ट्वातामसितापांगींविस्मितःसमहीपतिः । अस्यादेहस्यगन्धोऽयमितिसञ्जातनिश्चयः
तदद्भुतं रूपमतीव सुन्दरं तथैव गन्धोऽखिललोकसम्मतः ।

वयश्चताङ्क्‌ नवयौवनं शुभं दृष्ट्वैव राजा किल विस्मितोऽभवत् ॥ १३ ॥
केयं कुतो वा समुपागताऽधुना देवाङ्गना वा किमु मानुषी वा ।
गन्धर्वपुत्री किल नागकन्या जाने कथं गन्धवतीं नु कामिनीम् ॥ १४ ॥
सञ्चिन्त्य चैवं मनसा नृपोऽसौ न निश्चयं प्राप यदा ततः स्वयम् ।
गङ्गां स्मरन्कामवशं गतोऽथ पप्रच्छ कान्तां तटसंस्थिताञ्च ॥ १५ ॥
काऽसि प्रिये ! कस्य सुताऽसि कस्मादिह स्थिता त्वं विजने वरोरु ! ।
एकाकिनी किं वद चारुनेत्रे ! विवाहिता वा न विवाहिताऽसि ॥ १६ ॥
सञ्जातकामोऽहमरालनेत्रे त्वां वीक्ष्य कान्ताञ्च मनोरमाञ्च ।
ब्रूहि प्रिये ! याऽसि चिकीर्षसि त्वं किञ्चेति सर्वं मम विस्तरेण ॥ १७ ॥
इत्येवमुक्ता सुदती नृपेण प्रोवाच तं सस्मितमम्बुजेक्षणा ।
दासस्य पुत्रीं त्वमवेहि राजन्कन्यां पितुः शासनसंस्थिताञ्च ॥ १८ ॥
तरीमिमां धर्मनिमित्तमेव सम्वाहयामीह जले नृपेन्द्र ! ।
पिता गृहे मेऽद्य गतोऽस्ति कामं सत्यं ब्रवीम्यर्थपते तवाग्रे ॥ १९ ॥
इत्येवमुक्त्वा विरराम बाला कामातुरस्तां नृपतिर्बभाषे ।
कुरुप्रवीरं कुरु मां पतिं त्वं वृथा न गच्छेत्तनु यौवनन्ते ॥ २० ॥
न चाऽस्ति पत्नी मम वै द्वितीया त्वं धर्मपत्नी मम वै मृगाक्षि ! ।
दासोऽस्मि तेऽहं वशगः सदैव मनोभवस्तापयति प्रिये ! माम् ॥ २१ ॥
गता प्रिया मां परिहृत्य कान्ता नाऽन्या वृताऽहं विधुरोऽस्मि कान्ते ! ।
त्वां वीक्ष्य सर्वावयवातिरम्यां मनो हि जातं विवशं मदीयम् ॥ २२ ॥
श्रुत्वाऽमृतास्वादरसं नृपस्य वचोऽतिरम्यं खलु दासकन्या ।
उवाच तं सात्त्विकभावयुक्ता कृत्वाऽतिधैर्यं नृपतिं सुगन्धा ॥ २३ ॥
यदात्थ राजन्मयि तत्तथैव मन्येऽहमेतत्तु यथा ब्रवस्ते ।
नाऽस्मि स्वतन्त्रा त्वमवेहि कामं दाता पिता मेऽर्थय तं त्वमाशु ॥ २४ ॥
न स्वैरिणीहाऽस्म्यपि दासपुत्री पितुर्वशेऽहं सततं चरामि ।

स चेद्दाति प्रथितः पिता मे गृहाण पाणिं वशगाऽस्मि तेऽहम् ॥ २५ ॥
मनोभवस्त्वां नृप किं दुनोति यथा पुनर्मामभयौवनाढ्यम् ।
दुनोति तत्राऽपि हि रक्षणीया धृतिः कुलाचारपरम्परासु ॥ २६ ॥

सूत उवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तस्या नृपतिःकाममोहितः । गतोदासपतेर्गेहं तस्या याचनहेतवे ॥२७
दृष्ट्वा नृपतिमायान्तं दाशोऽतिविस्मयंगतः । प्रणामं नृपतेः कृत्वा कृताञ्जलिरभाषत

दाश उवाच

दाशोऽस्मि तव भूपाल कृतार्थोऽहंतवाऽऽगमे । आज्ञान्देहिमहाराजयदर्थमिहचागमः

राजोवाच

धर्मपत्नींकरिष्यामि सुतामेतान्तवाऽनघ । त्वया चेद्दीयते मह्यं सत्यमेतद् ब्रवीमि ते॥

दाश उवाच

कन्यारत्नं मदीयं चेद्यत्त्वं प्रार्थयसे नृप । दातव्यं तु प्रदास्यामि न त्वदेयं कदाचन
तस्याः पुत्रो महाराजत्वदन्तेपृथिवीपतिः । सर्वथाचाभिषेक्तव्यो नान्यःपुत्रस्तवेतिवै

सूत उवाच

श्रुत्वावाक्यंतुदाशस्यराजाचिन्तातुरोऽभवत् । गाङ्गेयंमनसाकृत्वानोवाचनृपतिस्तदा
कामातुरो गृहं प्राप्तश्चिन्ताविष्टो महीपतिः । न सस्नौ बुभुजे नाथ न सुष्वापगृहंगतः
चिन्तातुरन्तु तं दृष्ट्वा पुत्रो देवव्रतस्तदा । गत्वाऽपृच्छन्महीपालं तदसन्तोषकारणम्
दुर्जयःकोऽस्ति शत्रुस्ते करोमि वशगं तव । का चिन्तानृपशार्दूल सत्यं वद नृपोत्तम

किं तेन जातेन सुतेन राजन्दुःखं न जानाति न नाशयेद्यः ।
ऋणं ग्रहीतुं समुपागतोऽसौ प्राग्जन्मजं नात्र विचारणाऽस्ति ॥ ३७ ॥
विमुच्य राज्यं रघुनन्दनोऽपि ताताज्ञया दाशरथिस्तु रामः ।
वनंगतो लक्ष्मणजानकीभ्यां सहैव शैलं किल चित्रकूटम् ॥ ३८ ॥
सुतोहरिश्चन्द्रनृपस्य राजन्यो रोहिताश्वेति प्रसिद्धनामा ।
क्रीतोऽथ पित्रा विपणोद्यतश्च दासार्पितो विप्रगृहे तु नूनम् ॥ ३९ ॥

तथाऽजिगर्तस्य सुतो वरिष्ठो नाम्ना शुनःशेप (फ) इति प्रसिद्धः ।
क्रीतस्तु पित्राऽप्यथ यूपबद्धः संमोचितो गाधिसुतेन पश्चात् ॥ ४० ॥
पित्राज्ञया जामदग्न्येन पूर्वं छिन्नं शिरो मातुरिति प्रसिद्धम् ।
अकार्यमप्याचरितञ्च तेन गुरोरनुज्ञा च गरीयसी कृता ॥ ४१ ॥
इदं शरीरं तव भूपते ! न क्षमोऽस्मि नूनं वद किं करोम्यहम् ।
न शोचनीयं मयि वर्तमानेऽप्यसाध्यमर्थं प्रतिपादयाम्यदः ॥ ४२ ॥
प्रब्रूहि राजँस्तव काऽस्ति चिन्ता निवारयाम्यद्य धनुर्गृहीत्वा ।
देहेन मे चेच्चरितार्थता वा भवत्वमोघा भवतश्चिकीर्षा ॥ ४३ ॥
धिक्तं सुतं यः पितुरीप्सितार्थं क्षमोऽपि सन्न प्रतिपादयेद्यः ।
जातेन किं तेन सुतेन कामं पितुर्न चिन्तां हि समुद्धरेद्यः ॥ ४४ ॥

सूत उवाच

निशम्येति वचस्तस्य पुत्रस्य शन्तनुर्नृपः । लज्जमानस्तु मनसा तमाह त्वरितं सुतम्

राजोवाच

चिन्तामेमहतीपुत्रयस्त्वमेकोऽसिमे सुतः । शूरोऽतिबलवान्मानीसंग्रामेष्वपराङ्मुखः
एकापत्यस्यमे तात वृथेदं जीवितंकिल । मृतेत्वयिमृधे क्वापि किं करोमिनिराश्रयः
एषा मे महती चिन्ता तेनाऽद्य दुःखितोऽस्म्यहम् ।
नान्या चिन्ताऽस्ति मे पुत्र ! यां तवाग्रे वदाम्यहम् ॥ ४८ ॥

सूत उवाच

तदाकर्ण्याथगाङ्गेयो मन्त्रिवृद्धानपृच्छत । न मां वदति भूपालोलज्जयाऽद्यपरिप्लुतः॥
वित्तवार्तांनृपस्याद्यपृष्ट्वायूयंविनिश्चयात् । सत्यं ब्रुवन्तु मां सर्वं तत्करोमिनिराकुलः
तच्छ्रुत्वातेनृपंगत्वासम्विज्ञायचकारणम् । शशंसुर्विदितार्थस्तुगाङ्गेयस्तदचिन्तयत् ॥
सहितस्तैर्जगामाऽऽशु दासस्य सदनं तदा । प्रेमपूर्वमुवाचेदं विनम्रो जाह्नवीसुतः ॥

गाङ्गेय उवाच

पित्रे देहि सुतां तेऽद्य प्रार्थयामि सुमध्यमाम् ।

माता मेऽस्तु सुतेयन्ते दासोऽस्म्यस्याः परन्तप ! ॥ ५३ ॥

दाश उवाच

त्वं गृहाण महाभाग पत्नीं कुरुनृपात्मज । पुत्रोऽस्या न भवेद्राजावर्तमानेत्वयीतिवै

गाङ्गेय उवाच

मातेयंममदाशेयीराज्यंनैव करोम्यहम् । पुत्रोऽस्याः सर्वथा राज्यं करिष्यतिनसंशयः

दाश उवाच

सत्यंवाक्यंमयाज्ञातंपुत्रस्तेबलवान्भवेत् । सोऽपिराज्यंबलान्नूनंगृह्णीयादितिनिश्चयः

गाङ्गेय उवाच

न दारसंग्रहं नूनं करिष्यामि हि सर्वथा । सत्यं मे वचनं तात मया भीष्मं व्रतं कृतम्

सूत उवाच

एवं कृतां प्रतिज्ञान्तु निशम्य झषजीवकः । ददौ सत्यवतींतस्मै राज्ञेसर्वाङ्गशोभनाम्

अनेन विधिनातेन वृता सत्यवती प्रिया । न जानातिपरं जन्म व्यासस्य नृपसत्तमः

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां द्वितीयस्कन्धे

देवव्रतप्रतिज्ञावर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ १ ॥

षष्ठोऽध्यायः

व्यासाद् धृतराष्ट्रादीनामुत्पत्तिवर्णनम्

सूत उवाच

एवं सत्यवती तेन वृता शन्तनुना किल । द्वौपुत्रौचतथा जातौ मृतौ कालवशादपि

व्यासवीर्यात्तु सञ्जातोधृतराष्ट्रोऽन्ध एव च । मुनिं दृष्ट्वाऽथकामिन्यानेत्रसंमीलने कृते

श्वेतरूपायतोजातादृष्ट्वाव्यासंनृपात्मजा । व्यासकोपात्समुत्पन्नःपाण्डुस्तेनन संशयः

सन्तोषितस्तया व्यासो दास्या कामकलाविदा ।

विदुरस्तु समुत्पन्नो धर्मांशः सत्यवाक्छुचिः ॥ ४ ॥
राज्ये संस्थापितः पाण्डुः कनीयानपि मन्त्रिभिः ।
अन्धत्वाद् धृतराष्ट्रोऽसौ नाऽधिकारे नियोजितः ॥ ५ ॥
भीष्मस्यानुमते राज्यंप्राप्तःपाण्डुर्महाबलः । विदुरोऽप्यथमेधावीमन्त्रकार्येनियोजितः
धृतराष्ट्रस्य द्वेभार्येगान्धारीसौबलीस्मृता । द्वितीयाचतथावैश्यागार्हस्थ्येषुप्रतिष्ठिता
पाण्डोरपितथापत्न्यौ द्वे प्रोक्तेवेदवादिभिः। शौरसेनी तथा कुन्ती माद्रीचमद्रदेशजा
गान्धारी सुषुवे पुत्रशतं परमशोभनम् । वैश्याऽप्येकंसुतं कान्तं युयुत्सुंसुषुवेप्रियम्
कुन्ती तु प्रथमं कन्या सूर्यात्कर्णंमनोहरम् । सुषुवे पितृगेहस्था पश्चात्पांडुपरिग्रहः॥

ऋषय ऊचुः

किमेतत्सूतचित्रन्त्वं भाषसे मुनिसत्तम । जनितश्च सुतः पूर्वं पाण्डुनासाविवाहिता
सूर्यात्कर्णःकथंजातःकन्यायांवदविस्तरात् । कन्याकथंपुनर्जातापांडुनासाविवाहिता

सूत उवाच

शूरसेनसुताकुन्तीबालभावेयदा द्विजाः । कुन्तीभोजेन राजातु प्रार्थिताकन्यकाशुभा
कुन्तिभोजेनसाबालापुत्रीतुपरिकल्पिता । सेवनार्थन्तुदत्तस्य विहिता चारुहासिनी
दुर्वासास्तुमुनिःप्राप्तश्चातुर्मास्येस्थितोद्विजः। परिचर्याकृताकुन्त्यामुनिस्तोषंजगामह
ददौमन्त्रंशुभंतस्यै येनाहूतः सुरःस्वयम् । समायास्यतितथाकामंपूरयिष्यतिवाञ्छितम्
गतेमुनौततःकुन्तीनिश्चयार्थंगृहे स्थिता । चिन्तयामासमनसा कं सुरं समचिन्तये ॥
उदितश्च तदा भानुस्तयाहूष्टो दिवाकरः । मन्त्रोच्चारंतथाकृत्वा चाहूतस्तिग्मगुस्तदा
मण्डलान्मानुषंरूपं कृत्वा सर्वातिपेशलम् । अवातरत्तदाऽऽकाशात्समीपेतत्र मन्दिरे
दृष्ट्वादेवंसमायान्तं कुन्ती भानुंसुविस्मिता । वेपमानारजोदोषं प्राप्तासद्यस्तुभामिनी
कृताञ्जलिः स्थितासूर्यम्बभाषेचारुलोचना । सुप्रीतादर्शनेनाद्यगच्छत्वंनिजमण्डलम्

सूर्य उवाच

आहूतोऽस्मिकथंकुन्तित्वयामन्त्रबलेनवै । न मां भजसिकस्मात्त्वंसमाहूयपुरोगतम
कामार्तोऽस्म्यसितापांगि भज मां भावसंयुतम् ।

मन्त्रेणाऽधीनतां प्राप्तं क्रीडितुं नय मामिति॥ २३ ॥

कुन्त्युवाच

कन्याऽस्म्यहंतुधर्मज्ञसर्वसाक्षिन्नमाम्यहम्। तवाप्यहंनदुर्वाच्याकुलकन्याऽस्मिसुव्रत

सूर्य उवाच

लज्जामेमहतीचाद्य यदि गच्छाम्यहं वृथा। वाच्यतां सर्वदेवानां यास्याम्यत्रनसंशयः

शप्स्यामितंद्विजंचाद्ययेनमन्त्रःसमर्पितः। त्वांचापिसुभृशंकुन्तिमोचेन्मांत्वंभजिष्यसि

कन्याधर्मः स्थिरस्ते स्यान्नज्ञास्यन्ति जनाः किल।

मत्समस्तु तथा पुत्रो भविता ते वरानने!॥ २७ ॥

इत्युक्त्वा तरणिः कुन्तीं तन्मनस्कां सुलज्जिताम्।

भुक्त्वा जगाम देवेशो वरं दत्त्वाऽतिवाञ्छितम् ॥ २८ ॥

गर्भं दधार सुश्रोणी सुगुप्तेमन्दिरेस्थिता। धात्रीवेदप्रियाचैका न मातानजनस्तथा

गुप्तः सद्मनि पुत्रस्तु जातश्चाऽतिमनोहरः। कवचेनाऽतिरम्येणकुण्डलाभ्यांसमन्वितः

द्वितीय इव सूर्यस्तु कुमार इव चापरः। करे कृत्वाऽथ धात्रेयीतामुवाचसुलज्जिताम्

कां चिन्तां करभोरु! त्वमाधत्सेऽद्य स्थिताऽस्म्यहम्।

मञ्जूषायां सुतं कुन्ती मुञ्चन्ती वाक्यमब्रवीत् ॥ ३२ ॥

किं करोमि सुतार्ताऽहं त्यजे त्वां प्राणवल्लभम्।

मन्दभाग्या त्यजामि त्वां सर्वलक्षणसंयुतम् ॥ ३३ ॥

पातु त्वां सगुणागुणाभगवती सर्वेश्वरी चाऽम्बिका

स्तन्यं सैव ददातु विश्वजननी कात्यायनी कामदा।

द्रक्ष्येऽहं मुखपङ्कजं सुललितं प्राणप्रियाऽहं कदा

त्यक्त्वा त्वां विजने वने रविसुतं दुष्टा यथा स्वैरिणी ॥३४॥

पूर्वस्मिन्नपि जन्मनि त्रिजगतां माता न वाऽऽराधिता

न ध्यातं पदपङ्कजं सुखकरं देव्याः शिवायाश्चिरम्।

तेनाऽहं सुत! दुर्भगाऽस्मि सततं त्यक्त्वा पुनस्त्वां वने

तप्स्यामि प्रिय पातकं स्मृतवती बुद्ध्या कृतं यत्स्वयम् ॥

सूत उवाच

इत्युक्त्वा तं सुतं कुन्ती मञ्जूषायां धृतं किल । धात्रीहस्तेददौभीताजनदर्शनतस्तथा
ज्ञात्वा त्रस्ता तदाकुन्ती पितृवेश्मन्युवास सा । मञ्जूषावहमानाचप्राप्ताह्यधिरथेनवै

राधा सूतस्य भार्या वै तयाऽसौ प्रार्थिता सुतः ।
कर्णोऽभूद्व बलवान्वीरः पालितः सूतसद्मनि ॥ ३८ ॥

कुन्ती विवाहिता कन्यापाण्डुनासास्वयम्वरे । माद्रीचैवापराभार्यामद्रराजसुताशुभा
मृगयारममाणस्तु वनेपाण्डुर्महाबलः । जघान मृगबुद्ध्या तु रममाणं मुनिं वने ॥
शप्तस्तेनतदा पाण्डुर्मुनिना कुपितेन च । स्त्रीसङ्गं यदिकर्ताऽसि तदा ते मरणं ध्रुवम्
इति शप्तस्तु मुनिनापाण्डुःशोकसमन्वितः । त्यक्त्वाराज्यंवनेवासंचकारभृशदुःखितः
कुन्ती माद्री च भार्ये द्वे जग्मतुः सहसङ्गते । सेवनार्थं सतीधर्मं संश्रिते मुनिसत्तमाः
गङ्गातीरे स्थितः पाण्डुर्मुनीनामाश्रमेषु च । शृण्वानोधर्मशास्त्राणि चकारदुश्चरंतपः
कथायां वर्तमानायां कदाचिद्धर्मसंश्रितम् । अशृणोद्वचनं राजा सुपुष्टंमुनिभाषितम्
अपुत्रस्य गतिर्नास्ति स्वर्गं गन्तुं परन्तपः । येनकेनाप्युपायेन पुत्रस्य जननं चरेत् ॥
अंशजः पुत्रिकापुत्रःक्षेत्रजोगोलकस्तथा । कुण्डःसहोढःकानीनःक्रीतःप्राप्तस्तथा वने
दत्तः केनापि चाशक्तौ धनग्राहिसुताःस्मृताः । उत्तरोत्तरतः पुत्रानिकृष्टा इतिनिश्चयः
इत्याकर्ण्य तदा प्राहकुन्तींकमललोचनाम् । सुतमुत्पादयाशुत्वंमुनिंगत्वातपोन्वितम्
ममाऽऽज्ञया नदोषस्तेपुराराज्ञामहात्मना । वसिष्ठाज्जनितःपुत्रः सौदासेनेतिमेश्रुतम्
तं कुन्ती वचनं प्राह ममममन्त्रोऽस्ति कामदः । दत्तोदुर्वाससापूर्वंसिद्धिदःसर्वथाप्रभो
निमन्त्रयेऽहं यं देवं मन्त्रेणानेन पार्थिव । आगच्छेत्सर्वथासोवै ममपार्श्वेनियंत्रितः
भर्तुर्वाक्येन सा तत्र स्मृत्वा धर्मं सुरोत्तमम् । सङ्गम्य सुषुवे पुत्रंप्रथमंचयुधिष्ठिरम्
वायोर्वृकोदरं पुत्रं जिष्णुं चैव शतक्रतोः । वर्षे वर्षे त्रयःपुत्राःकुन्त्यांजातामहाबलाः
माद्री प्राह पतिं पाण्डुं पुत्रंमेकुरुसत्तम । किं करोमि महाराजदुःखंनाशय मे प्रभो
प्रार्थिता पतिना कुन्ती ददौ मन्त्रं दयान्विता । एकपुत्रप्रबन्धेन माद्रीपतिमते स्थिता

स्नुत्वा तदाऽश्विनौ देवौ मद्रराज सुता सुतौ । नकुलः सहदेवश्च सुषुवे वरवर्णिनी
एवंते पाण्डवाः पञ्चक्षेत्रोत्पन्नाःसुरात्मजाः । वर्षंवर्षान्तरेजातावनेतस्मिन्द्विजोत्तमाः
एकस्मिन्समयेपाण्डुर्माद्रीं दृष्ट्वाऽथनिर्जने । आश्रमे चातिकामार्तो जग्राहागतवैशसः
मामामामेति बहुधा निषिद्धोऽपि तयाभृशम् । आलिलिङ्गप्रियांदैवात्पपातधरणीतले
यथा वृक्षगता वल्लीछिन्ने पतति वै द्रुमे । तथा सा पतिता बाला कुर्वन्ती रोदनंबहु
प्रत्यागता तदा कुन्ती रुदती बालकास्तथा । मुनयश्चमहाभागाःश्रुत्वा कोलाहलंतदा
मृतः पाण्डुस्तदा सर्वे मुनयः संशितव्रताः । सहाग्निभिर्विधिकृत्वागङ्गातीरेतदाऽदहन्
चक्रेसहैव गमनं माद्रीदत्वा सुतौ शिशू । कुन्त्यैधर्मं पुरस्कृत्यसतीनां सत्यकामतः
जलदानादिकं कृत्वा मुनयस्तत्रवासिनः । पञ्चपुत्रयुतां कुन्तीमनयन्हस्तिनापुरम्
तां प्राप्तां च समाज्ञाय गाङ्गेयोविदुरस्तथा । नागराधृतराष्ट्रस्य सर्वे तत्र समाययुः
पप्रच्छुश्च जनाः सर्वेकस्यपुत्रावरानने । पाण्डोःशापंसमाज्ञाय कुन्तीदुःखान्वितातदा
तानुवाच सुराणांवैपुत्राःकुरुकुलोद्भवाः । विश्वासार्थं समाहूताःकुन्त्यासर्वेसुरास्तदा
आगत्य खे तदा तैस्तु कथितं नः सुताः किल ।
भीष्मेण सत्कृतं वाक्यं देवानां सत्कृताः सुताः ॥ ६९ ॥
गता नागपुरं सर्वे तानादाय सुतान्वधूम् । भीष्मादयः प्रीतचित्ताःपालयामासुरर्थतः
एवं पार्थाः समुत्पन्ना गाङ्गेयेनाऽथ पालिताः ॥ ७१ ॥
इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां द्वितीयस्कन्धे
युधिष्ठिरादीनामुत्पत्तिवर्णनंनाम षष्ठोऽध्यायः ॥ १६ ॥

सप्तमोऽध्यायः

पाण्डवानांकथानकवर्णनम्

सूत उवाच

पञ्चानां द्रौपदी भार्या सामान्या सा पतिव्रता ।
पञ्च पुत्रास्तु तस्याः स्युर्भर्तृभ्योऽतीव सुन्दराः ॥ १ ॥

अर्जुनस्य तथा भार्या कृष्णस्य भगिनीशुभा । सुभद्रायाहृतापूर्वं जिष्णुनाहरिसम्मते तस्यां जातोमहावीरोनिहतोऽसौ रणाजिरे । अभिमन्युर्हतास्तत्रद्रौपद्याश्चसुताःकिल अभिमन्योर्वरा भार्या वैराटी चातिसुन्दरी । कुलान्तेसुषुवेपुत्रंमृतोबाणाग्निनाशिशुः जीवितः सतु कृष्णेन भागिनेयसुतः स्वयम् । द्रौणिबाणाग्निनिर्दग्धःप्रतापेनाद्भुतेनच परिक्षीणेषु वंशेषु जातोयस्माद्वरः सुतः । तस्मात्परीक्षितोनाम विख्यातःपृथिवीतले निहतेषु च पुत्रेषु धृतराष्ट्रोऽतिदुःखितः । तस्थौ पाण्डवराज्येवभीमवाग्बाणपीडितः गान्धारी चतथाऽतिष्ठत्पुत्रशोकातुराभृशम् । सेवांतयोर्दिवारात्रंचकारार्तोयुधिष्ठिरः विदुरोऽप्यति धर्मात्मा प्रज्ञानेत्रमबोधयत् । युधिष्ठिरस्यानुमते भ्रातृपार्श्वेन्यतिष्ठत धर्मपुत्रोऽपिधर्मात्मा चकारसेवनं पितुः । पुत्रशोकोद्भवं दुःखंतस्य विस्मारयन्निव

यथा शृणोति वृद्धोऽसौ तथा भीमोऽतिरोषितः ।
वाग्बाणेनाऽहनत्तं तु श्रावयन्संस्थिताञ्जनान् ॥ ११ ॥

मया पुत्रा हताः सर्वे दुष्टस्यान्धस्यते रणे । दुःशासनस्य रुधिरंपीतं हृद्यं तथाभृशम् भुनक्ति पिण्डमन्धोऽयं मयादत्तं गतत्रपः । ध्वांक्षवद्वा श्ववद्वापिवृथाजीवत्यसौजनः एवम्विधानिरूक्षाणिश्रावयत्यनुवासरम् । आश्वासयतिधर्मात्मामूर्खोऽयमितिचब्रुवन् अष्टादशैव वर्षाणि स्थित्वा तत्रैव दुःखितः । धृतराष्ट्रोवनेयानं प्रार्थयामास धर्मजम् अयाचत धर्मपुत्रं धृतराष्ट्रो महीपतिः । पुत्रेभ्योऽहं ददाम्यद्य निवापं विधिपूर्वकम् वृकोदरेण सर्वेषां कृतमत्रौर्ध्वदैहिकम् । न कृतं मम पुत्राणां पूर्ववैरमनुस्मरन् ॥१७

ददासि चेद्धनं मह्यं कृत्वा चैवौर्ध्वदैहिकम् । गमिष्येऽहं वनं तप्तुं तपःस्वर्गफलप्रदम्
एकान्ते विदुरेणोक्तो राजा धर्मसुतः शुचिः । धनं दातुं मनश्चक्रे धृतराष्ट्राय चार्थिने
समाहूय निजान्सर्वानुवाच पृथिवीपतिः । धनं दास्ये महाभागाःपित्रेनिर्वापकामिने

तच्छ्रुत्वा वचनं भ्रातुर्ज्येष्ठस्याऽमिततेजसः ।
संग्रहेऽस्य महाबाहुर्मारुतिः कुपितोऽब्रवीत् ॥ २१ ॥

धनं देयं महाभाग दुर्योधनहितायकिम् । अन्धोऽपि सुखमाप्नोतिमूर्खत्वंकिमतःपरम्
तव दुर्मन्त्रितेनाऽथ दुःखं प्राप्तावनेवयम् । द्रौपदी च महाभागा समानीतादुरात्मना
विराटभवने वासः प्रसादात्तव सुव्रत !। दासत्वंच कृतं सर्वैर्मत्स्यस्याऽमितविक्रमैः॥
देविता त्वं नचेज्ज्येष्ठः प्रभवेत्संक्षयःकथम् । सूपकारोविराटस्यहत्वाऽभूवंतुमागधम्
बृहन्नला कथं जिष्णुर्भवेद्बालस्य नर्तकः । कृत्वा वेषं महाबाहुर्योषायावासवात्मजः
गाण्डीवशोभितौहस्तौकृतौकङ्कणशोभितौ । मानुषंचवपुःप्राप्यकिं दुःखंस्यादतःपरम्

दृष्ट्वा वेणीं कृतां मूर्ध्नि कज्जलं लोचने तथा ।
असिं गृहीत्वा तरसा च्छेतुम्यहं नाऽन्यथा सुखम् ॥ २८ ॥

अपृष्ट्वा च महीपालंनिक्षिप्तोऽग्निर्मयागृहे । दग्धुकामश्चपापात्मानिर्दग्धोऽसौपुरोजनः
कीचका निहताः सर्वे त्वामपृष्ट्वा जनाधिप । न तथा निहताःसर्वेसभार्याधृतराष्ट्रजाः
मूर्खत्वं तव राजेन्द्र! गन्धर्वेभ्यश्च मोचिताः । दुर्योधनादयःकामं शत्रवो निगडीकृताः
दुर्योधनहितायाद्य धनं दातुं त्वमिच्छसि । नाहं ददे महीपाल सर्वथा प्रेरितस्त्वया
इत्युक्त्वा निर्गते भीमे त्रिभिः परिवृतोनृपः । ददौ वित्तंसुबहुलं धृतराष्ट्राय धर्मजः॥

कारयामास विधिवत्पुत्राणां चौर्ध्वदैहिकम् ।
ददौ दानानि विप्रेभ्यो धृतराष्ट्रोऽम्बिकासुतः ॥ ३४ ॥

कृत्वौर्ध्वदैहिकं सर्वं गान्धारीसहितो नृपः । प्रविवेशवनंतूर्णं कुन्त्या च विदुरेण च
सञ्जयेन परिज्ञातो निर्गतोऽसौ महामतिः । पुत्रैर्निवार्यमाणाऽपि शूरसेनसुता गता॥
विलपन्भीमसेनोऽपितथाऽन्येचापिकौरवाः । गङ्गातीरात्परावृत्यययुःसर्वे गजाह्वयम्
ते गत्वा जाह्नवीतीरे शतयूपाश्रमं शुभम् । कृत्वा तृणैः कुटीं तत्र तपस्तेपुःसमाहिताः

गतान्यब्दानि षट् तेषां यदा याताहितापसाः । युधिष्ठिरस्तुविरहादनुजानिदमब्रवीत्
स्वप्ने दृष्टा मया कुन्ती दुर्बला वनसंस्थिता । मनोमेजायतेद्रष्टुं मातरं पितरौ तथा
विदुरं च महात्मानं सञ्जयं च महामतिम् । रोचते यदि वः सर्वान्व्रजामइतिमे मतिः
ततस्ते भ्रातरः सर्वे सुभद्रा द्रौपदी तथा । वैराटी च महाभागा तथा नागरिकोजनः
प्राप्ताः सर्वजनैः सार्धं पाण्डवा दर्शनोत्सुकाः । शतयूपाश्रमं प्राप्य ददृशुः सर्व एव ते

विदुरो न यदा दृष्टो धर्मस्तं पृष्टवांस्तदा ।
काऽऽस्ते स विदुरो धीमांस्तमुवाचाऽम्बिकासुतः ॥ ४४ ॥

विरक्तश्चरते क्षत्तानिरीहोनिष्परिग्रहः । कुत्राप्येकान्तसम्वासीध्यायतेऽन्तःसनातनम्
गङ्गां गच्छन्द्वितीयेऽह्नि वने राजा युधिष्ठिरः । ददर्शविदुरं क्षामं तपसा संशितव्रतम्
दृष्ट्वोवाच महीपालो वन्देऽहंत्वां युधिष्ठिरः । तस्थौश्रुत्वाचविदुरः स्थाणुभूतइवानघः
क्षणेन विदुरस्यास्यान्निःसृतंतेजअद्भुतम् । लीनंयुधिष्ठिरस्यास्ये धर्मांशत्वात्परस्परम्
क्षत्ता जहौ तदा प्राणाञ्छुशोचाऽति युधिष्ठिरः । दाहार्थंतस्य देहस्य कृतवानुद्यमंनृपः
शृण्वतस्तु तदा राज्ञो वागुवाचाशरीरिणी । विरक्तोऽयं न दाहार्हो यथेष्टंगच्छभूपते
श्रुत्वा ते भ्रातरः सर्वे सस्नुर्गङ्गाजलेऽमले । गत्वानिवेदयामासुर्धृतराष्ट्रायविस्तरात्
स्थितास्तत्राऽऽश्रमे सर्वे पाण्डवानागरैःसह । तत्र सत्यवतीसूनुर्नारदश्च समागतः ॥
मुनयोऽन्ये महात्मानश्चागता धर्मनन्दनम् । कुन्तीप्राह तदाव्यासंसंस्थितंशुभदर्शनम्
कृष्ण ! कर्णस्तु पुत्रो मे जातमात्रस्तुवीक्षितः । मनोमे तप्यतेसर्वं दर्शयस्व तपोधन!

समर्थोऽसि महाभाग ! कुरु मे वाञ्छितं प्रभो ! ।

गान्धार्युवाच

दुर्योधनो रणेऽगच्छद्वीक्षितो न मया मुने! ॥ ५५ ॥
तं दर्शय मुनिश्रेष्ठ ! पुत्रं मे त्वं सहानुजम् ।

सुभद्रोवाच

अभिमन्युं महावीरं प्राणादप्यधिकं प्रियम् ॥ ५६ ॥
द्रष्टुकामाऽस्मि सर्वज्ञ ! दर्शयाऽद्य तपोधन ! ।

सूत उवाच

एवम्विधानि वाक्यानि श्रुत्वा सत्यवतीसुतः ॥ ५७ ॥
प्राणायामंततःकृत्वादध्यौदेवींसनातनीम् । सन्ध्याकालेऽथसम्प्राप्तेगङ्गायांमुनिसत्तमः
सर्वांस्तांश्च समाहूय युधिष्ठिरपुरोगमान् । तुष्टाव विश्वजननीं स्नात्वा पुण्यसरिज्जले
प्रकृतिं पुरुषारामां सगुणां निर्गुणां तथा । देवदेवीं ब्रह्मरूपां मणिद्वीपाधिवासिनीम्
यदा न वेधा न च विष्णुरीश्वरो न वासवो नैव जलाधिपस्तथा ।
न वित्तपो नैव यमश्च पावकस्तदाऽसि देवि ! त्वमहं नमामि ताम् ॥ ६१ ॥
जलं न वायुर्न धरा न चाऽम्बरं गुणा न तेषां च न चेन्द्रियाण्यहम् ।
मनो न बुद्धिर्न च तिग्मगुः शशी तदाऽसि देवि ! त्वमहं नमामि ताम् ॥६२॥
इमं जीवलोकं समाधाय चित्ते गुणैर्लिङ्गकोशं च नीत्वा समाधौ ।
स्थिता कल्पकालं नयस्याऽऽत्मतन्त्रा न कोऽप्यस्तिवेत्ता विवेकं गतोऽपि
प्रार्थयत्येष मां लोकोमृतानांदर्शनंपुनः । नाहं क्षमोऽस्मिमातस्त्वंदर्शयाशुजनान्मृतान्

सूत उवाच

एवं स्तुता तदा देवी माया श्रीभुवनेश्वरी । स्वर्गादाहूयसर्वान्वैदर्शयामासपार्थिवान्
दृष्ट्वाकुन्तीचगान्धारीसुभद्राचविराटजा । पाण्डवाश्चमुहुःसर्वेवीक्ष्यप्रत्यागतान्स्वकान्
पुनर्विसर्जितास्तेनव्यासेनाऽमिततेजसा । स्मृत्वादेवीं महामायामिन्द्रजालमिवोद्यतम्
तदा पृष्ट्वा ययुः सर्वे पाण्डवा मुनयस्तथा । राजा नागपुरंप्राप्तः कुर्वन्व्यासकथांपथि

इति श्री देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां द्वितीयस्कन्धे
पाण्डवानांकथानकंमृतानांदर्शनवर्णनंनाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अष्टमोऽध्यायः

यदुकुलसंहारवर्णनपूर्वकपरीक्षिद्राज्ञश्चरित्रवर्णनम्

सूत उवाच

ततो दिने तृतीये च धृतराष्ट्रः सः भूपतिः । दावाग्निनावनेदग्धः सभार्यः कुन्तिसंयुतः
सञ्जयस्तीर्थयात्रायां गतस्त्यक्त्वा महीपतिम् ।
श्रुत्वा युधिष्ठिरो राजा नारदाद् दुःखमाप्तवान् ॥ २ ॥

षट्त्रिंशेऽथ गते वर्षे कौरवाणां क्षयात्पुनः । प्रभासेयादवाःसर्वेविप्रशापात्क्षयंगताः
ते पीत्वा मदिरांमत्ताःकृत्वायुद्धंपरस्परम् । क्षयंप्राप्तामहात्मानःपश्यतोरामकृष्णयोः
देहंतत्याज रामस्तु कृष्णः कमललोचनः । व्याधबाणहतः शापं पालयन्भगवान्हरिः
वसुदेवस्तु तच्छ्रुत्वा देहत्यागं हरेरथः । जहौप्राणाञ्छुचीन्कृत्वाचित्तेश्रीभुवनेश्वरीम्
अर्जुनस्तु ततो गत्वाप्रभासेचाऽतिदुःखितः । संस्कारं तत्र सर्वेषांयथायोग्यंचकार ह
समीक्ष्याथ हरेर्देहं कृत्वाकाष्ठस्य सञ्चयम् । अष्टाभिः सहपत्नीभिर्दाहयामासपार्थिवः
देहं रामस्य रेवत्या सह दग्ध्वा विभावसौ । अर्जुनोद्वारकामेत्यपुरान्निष्कामयज्जनम्
पुरी सा वासुदेवस्यप्लावितोदधिना ततः । अर्जुनः सर्वलोकान्वै गृहीत्वानिर्गतस्तदा
अनिरुद्धसुतो नाम्नापार्थेनाऽमिततेजसा । व्यासाय कथितंदुःखंतेनोक्तोऽसौमहारथः
पुनर्यदा हरिस्त्वंच भवितासिमहामते । कृष्णपत्न्यस्तदामार्गेचौराभीरैश्च लुण्ठिताः
धनं सर्वं गृहीतं च निस्तेजाश्चार्जुनोऽभवत् । इन्द्रप्रस्थेसमागम्यवज्रोराजाकृतस्ततः
तदा तेजस्तवात्युग्रं भविष्यति पुनर्युगे । तच्छ्रुत्वा वचनं पार्थो गत्वा नागपुरेऽर्जुनः
दुःखितो धर्मराजानं वृत्तान्तं सर्वमब्रवीत् । देहत्यागं हरेः श्रुत्वा यादवानांक्षयंतथा
गमनाय मतिं चक्रे राजाहैमाचलं प्रति । षट्त्रिंशद्वार्षिकंराज्येस्थापयित्वोत्तरासुतम्
निर्जगाम वनं राजा द्रौपद्याभ्रातृभिःसह । षट्त्रिंशच्चैव वर्षाणिकृत्वाराज्यंगजाह्वये
गत्वा हिमाचले षट् ते जहुः प्राणान्पृथासुताः ।

परीक्षिदपि राजर्षिः प्रजाः सर्वाः सुधार्मिकः ॥ १८ ॥

अपालयच्च राजेन्द्रः षष्टिवर्षाण्यतन्द्रितः । बभूव मृगयाशीलो जगाम च वनं महत् ॥
विद्धं मृगं विचिन्वानोमध्याह्नेभूपतिःस्वयम् । तृषितश्चपरिश्रान्तःक्षुधितश्चोत्तरासुतः
राजा धर्मेण सन्तप्तो ददर्शमुनिमन्तिके ध्याने । स्थितं मुनिंराजा जलंपप्रच्छचातुरः

नोवाच किञ्चिन्मौनस्थश्चुकोप नृपतिस्तदा ।

मृतं सर्पं तदाऽऽदाय धनुष्कोट्या तृषातुरः ॥ २२ ॥

कलिनाऽऽविष्टचित्तस्तु कण्ठे तस्यन्यवेशयत् । आरोपितेतथासर्पेनोवाचमुनिसत्तमः

न चचाल समाधिस्थो राजाऽपि स्वगृहं गतः ।

तस्य पुत्रोऽतितेजस्वी गवि जातो महातपाः ॥ २४ ॥

महाशक्तोऽथ शुश्रावक्रीडमानोवनान्तिके । मित्राण्याहुश्च तत्पुत्रंपितुःकण्ठेतवाधुना
लम्बितोऽस्तिमृतःसर्पः केनाऽपीति मुनीश्वर । तेषांतद्वचनंश्रुत्वा चुकोपातिशयं तदा
शशाप नृपतिंक्रुद्धो गृहीत्वाऽऽशुकरेजलम् । पितुःकण्ठेऽद्यमेयेनविनिक्षिप्तोमृतोरगः
तक्षकः सप्तरात्रेण तं दशेत्पापपूरुषम् । मुनेः शिष्योऽथ राजानं समुपेत्यगृहेस्थितम्
शापं निवेदयामास मुनिपुत्रेणचार्पितम् । अभिमन्युसुतः श्रुत्वा शापं दत्तं द्विजेन वै
अनिवार्यञ्च विज्ञाय मन्त्रि वृद्धानुवाच ह । शप्तोऽहं द्विजरूपेण मम द्वेषादसंशयम् ॥

किं विधेयं मयाऽमात्या उपायश्चिन्त्यतामिह ।

मृत्युः किलानिवार्योऽसौ वदन्ति वेदवादिनः ॥ ३१ ॥

यत्नस्तथाऽपि शास्त्रोक्तःकर्तव्यःसर्वथाबुधैः । उपायवादिनःकेचित्प्रवदन्तिमनीषिणः
विज्ञोपायेन सिध्यन्ति कार्याणिनेतरस्यच । मणिमन्त्रौषधीनांवैप्रभावाःखलुदुर्विदः
न भवेदिति किंतैस्तु मणिमद्भिःसुसाधितैः । सर्पदष्टापुराभार्यामुनेः सञ्जीविता मृता
दत्त्वाऽर्धमायुषस्तेन मुनिना सा वराप्सराः । भवितव्येनविश्वासःकर्तव्यःसर्वथाबुधैः
प्रत्यक्षं तत्र दृष्टान्तंपश्यन्तुसचिवाकिल । दिविकोऽपिपृथिव्यांवादृश्यतेपुरुषःक्वचित्
दैवेमतिं समाधाय यस्तिष्ठेत्तु निरुद्यमः । विरक्तस्तु यतिर्भूत्वाभिक्षार्थंयातिसर्वथा
गृहस्थानां गृहेकाममाहूतोप्यऽथवाऽन्यथा । यदृच्छयोपपन्नं च क्षिप्तंकेनापिवा मुखे

उद्यमेनविना चास्यादुदरे संविशेत्कथम् । प्रयत्नश्चोद्यमे कार्यो यदासिद्धिर्भवत्यलम्

तदा दैवं स्थितं चेति चित्तमालम्बयेद् बुधः ।

मन्त्रिण ऊचुः

को मुनिर्येन दत्त्वाऽर्धमायुषो जीविता प्रिया ॥ ४० ॥

कथं मृता महाराज! तन्नो ब्रूहि सविस्तरम् ।

राजोवाच

भृगोर्भार्या वरारोहा पुलोमा नाम सुन्दरी ॥ ४१ ॥

तस्यां तु च्यवनोनाममुनिर्जातोऽतिविश्रुतः । च्यवनस्यचशर्यातेःसुकन्यानामसुन्दरी
तस्यां जज्ञे सुतः श्रीमान्प्रमतिर्नाम विश्रुतः । प्रमतेस्तु प्रियाभार्याप्रतापीनामविश्रुता
रुरुर्नाम सुतोजातस्तथा परमतापसः । तस्मिंश्च समये कश्चित्स्थूलकेशश्च विश्रुतः
बभूव तपसायुक्तो धर्मात्मा सत्यसम्मतः । एतस्मिन्नन्तरे मान्यामेनकाचवराप्सराः
क्रीडां चक्रे नदीतीरे त्रिषु लोकेषु सुन्दरी । गर्भं विश्वावसोः प्राप्यनिर्गतावरवर्णिनी
स्थूलकेशाश्रमे गत्वा विससर्ज वराप्सराः । कन्यकां च नदीतीरेत्रिषुलोकेषुसुन्दरीम्
दृष्ट्वाऽनाथां तदा कन्यां जग्राहमुनिसत्तमः । पुपोषस्थूलकेशस्तु नाम्नाचक्रे प्रमद्वराम्
सा काले यौवनंप्राप्तासर्वलक्षणसंयुता । रुरुर्दृष्ट्वाऽथतांबालां कामबाणार्दितोह्यभूत्

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां द्वितीयस्कन्धे
रुरुचरित्रवर्णनंनामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

नवमोऽध्यायः

रुरुचरित्रवर्णनम्

परीक्षिदुवाच

कामार्तः स मुनिर्गत्वा रुरुस्सुतोनिजाश्रमे । पितापप्रच्छदीनंतंकिं रुरोविमनाअसि

ससमाहातिकामार्तः स्थूलकेशस्य चाऽऽश्रमे । कन्या प्रमद्वरानामसामेभार्याभवेदिति
सगत्वा प्रमतिस्तूर्णं स्थूलकेशं महामुनिम् । प्रमुख सुमुखं कृत्वा ययाचेतांवराननाम्
ददौ वाचं स्थूलकेशः प्रदास्यामि शुभेऽहनि । विवाहार्थं च सम्भारं रचयामासतुर्वने
प्रमतिः स्थूलकेशश्च विवाहार्थं समुद्यतौ । बभूवतुर्महात्मानौ समीपस्थौ तपोवने
तस्मिन्नवसरे कन्या रममाणागृहाङ्गणे । प्रसुप्तं पन्नगं पादेनाऽस्पृशच्चारुलोचना ॥६॥
दष्टा तु पन्नगेनाथ सा ममार वराङ्गना । कोलाहलस्तदा जातोमृतां दृष्ट्वाप्रमद्वराम्
मिलिता मुनयःसर्वे चुक्रुशुःशोकसंयुताः । भूमौतांपतितांदृष्ट्वापितातस्याऽतिदुःखितः
रुरोद विगतप्राणां दीप्यमानां सुतेजसा । रुरुः श्रुत्वा तदाऽऽक्रन्दन्दर्शनार्थंसमागतः
ददर्श पतितां तत्र सजीवामिव कामिनीम् । रुदन्तं स्थूलकेशंचदृष्ट्वाऽन्यानृषिसत्तमान्
रुरुः स्थानाद्बहिर्गत्वा रुरोद विरहाकुलः । अहो दैवेन सर्पोऽयम्प्रेषितः परमाद्भुतः॥
मम शर्मविघाताय दुःखहेतुरयं किल । किं करोमि क्व गच्छामि मृता मे प्राणवल्लभा

न वै जीवितुमिच्छामि वियुक्तः प्रिययाऽनया ।
नाऽऽलिङ्गिता वरारोहा न मया चुम्बिता मुखे ॥ १३ ॥

न पाणिग्रहणं प्राप्तं मन्दभाग्येन सर्वथा । लाजाहोमस्तथाचाग्नौ न कृतस्त्वनया सह
मानुष्यं धिगिदं कामंगच्छन्त्वद्यममासवः । दुःखितस्यनचामृत्युर्वाञ्छितःसमुपैतिहि
सुखं तर्हि कथं दिव्यमाप्यते भुवि वाञ्छितम् । प्रपतामिह्रदे घोरे पावके प्रपताम्यहम्
विषमद्मि गलेपाशं कृत्वा प्राणांस्त्यजाम्यहम् । विलप्यैवंरुरुस्तत्रविचार्यमनसा पुनः
उपायं चिन्तयामास स्थितस्तस्मिन्नदीतटे । मरणात्किंफलंमेस्यादात्महत्यादुरत्यया

दुःखितश्च पिता मे स्याज्जननी चाऽतिदुःखिता ।
दैवस्तुष्टो भवेत्कामं दृष्ट्वा मां त्यक्तजीवितम् ॥ १६ ॥

सर्वः प्रमुदितश्च स्यान्मत्क्षये नाऽत्रसंशयः । उपकारः प्रियायाः कः परलोके भवेदपि
मृते मय्यात्मघातेन विरहात्पीडितेऽपि च । परलोकेप्रियासाऽपिनमेस्यादात्मघातिनः
एतदर्थं मृते दोषामयिनैवामृतेपुनः । विमृश्यैवंरुरुस्तत्र स्नात्वाऽऽचम्यशुचिः स्थितः
अब्रवीद्वचनं कृत्वा जलं पाणावसौमुनिः । यन्मया सुकृतं किञ्चित्कृतंदेवार्चनादिकम्

गुरवः पूजिता भक्त्या हुतं जप्तंतपः कृतम्। अधीतास्त्वखिलावेदागायत्रीसंस्कृतायदि
रविराराधितस्तेन सञ्जीवतु मम प्रिया। यदि जीवेन्न मे कान्ता त्यजे प्राणानहं ततः

इत्युक्त्वा तज्जलं भूमौ चिक्षेपाऽऽराध्य देवताः।

राजोवाच

एवं विलपतस्तस्य भार्यया दुःखितस्य च ॥ २६ ॥

देवदूतस्तदाऽभ्येत्य वाक्यमाह रुरुं ततः।

देवदूत उवाच

मा कार्षीः साहसं ब्रह्मन्कथं जीवेन्मृता प्रिया ॥ २७ ॥

गतायुरेषा सुश्रोणी गन्धर्वाप्सरसोःसुता। अन्यां कामयचार्वङ्गीं मृतेयंवाविवाहिता

किं रोदिषि सुदुर्बुद्धे! का प्रीतिस्तेऽनया सह।

रुरुरुवाच

देवदूत! न चान्यां वै वरिष्याम्यहमङ्गनाम् ॥ २९ ॥

यदि जीवेन्न जीवेद्वा मर्तव्यं चाऽधुना मया।

राजोवाच

विदित्वेति हठं तस्य देवदूतो मुदाऽन्वितः ॥ ३० ॥

उवाच वचनं तथ्यं सत्यं चातिमनोहरम्। उपायं शृणु विप्रेन्द्र विहितं यत्सुरैः पुरा

आयुषोऽर्धप्रदानेन जीवयाऽऽशु प्रमद्वराम्।

रुरुरुवाच

आयुषोऽर्धं प्रयच्छामि कन्यायै नाऽत्र संशयः ॥ ३२ ॥

अद्य प्रत्यावृतप्राणा प्रोत्तिष्ठतु मम प्रिया। विश्वावसुस्तदा तत्र विमानेन समागतः
ज्ञात्वा पुत्रीं मृतां चाशु स्वर्गलोकात्प्रमद्वराम्। ततो गन्धर्वराजश्च देवदूतश्च सत्तमः
धर्मराजमुपेत्येदं वचनं प्रत्यभाषताम्। धर्मराज रुरोः पत्नी सुता विश्वावसोस्तथा॥
मृता प्रमद्वरा कन्या दष्टा सर्पेण चाधुना। सा रुरोरायुषोऽर्धेन मर्तुकामस्य सूर्यज॥

समुत्तिष्ठतु तन्वङ्गी व्रतचर्याप्रभावतः।

धर्म उवाच

किंभावद्युसुतां कन्यां देवदूत ! यदीच्छसि ॥ ३७ ॥
उत्तिष्ठत्वायुषोऽर्धेन रुरुङ्कृत्वा त्वमर्पय ।

राजोवाच

एवमुक्तस्ततो गत्वा जीवयित्वा प्रमद्वराम् ॥ ३८ ॥
रुरोः समर्पयामास देवदूतस्त्वरान्वितः । ततः शुभेऽह्विविधिना रुरुणाऽपिविवाहिता
इत्थं चोपाययोगेन मृताऽप्युज्जीविता तदा । उपायस्तु प्रकर्तव्यःसर्वथाशास्त्रसम्मतः
मणिमन्त्रौषधीभिश्चविधिवत्प्राणरक्षणे। इत्युक्त्वासचिवाश्राजाकल्पयित्वासुरक्षकान्
कारयित्वाऽथ प्रासादं सप्तभूमिकमुत्तमम् । आरुरोहोत्तरासूनुः सचिवैःसहतत्क्षणम्
मणिमन्त्रधराः शूराः स्थापितास्तत्र रक्षणे । प्रेषयामास भूपालो मुनिं गौरमुखं ततः
प्रसादार्थं सेवकस्य क्षमस्वेति पुनः पुनः । ब्राह्मणान्सिद्धमन्त्रज्ञान्रक्षणार्थमितस्ततः
मन्त्रिपुत्रः स्थितस्तत्रस्थापयामासदन्तिनः । न कश्चिदारुहेत्तत्र प्रासादेवातिरक्षिते
वातोपि न चरेत्तत्र प्रवेशोविनिवार्यते । भक्ष्यभोज्यादिकं राजा तत्रस्थश्चचकार सः
स्नानसन्ध्यादिकंकर्मतत्रैवविनिवर्त्य च । राजकार्याणिसर्वाणि तत्रस्थश्चाकरोन्नृपः
मन्त्रिभिः सहसंमन्त्र्यगणयन्दिवसानपि । कश्चिच्च कश्यपोनामब्राह्मणोमन्त्रिसत्तमः
शुश्राव च तथा शापं प्राप्तं राज्ञा महात्मना । सधनार्थीद्विजश्रेष्ठःकश्यपःसमचिन्तयत्
व्रजामि तत्र यत्रास्तेशप्तोराजा द्विजेन ह । । इतिकृत्वामतिंविप्रःस्वगृहान्निःसृतःपथि
कश्यपो मन्त्रविद्विद्वान्धनार्थी मुनिसत्तमः ॥ ५१ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां द्वितीयस्कन्धे
परीक्षिद्राज्ञोगुप्तगृहेवासवर्णनंनाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दशमोऽध्यायः

तक्षकद्विजयोःसम्भाषणवर्णनम्

सूत उवाच

तस्मिन्नेव दिने नाम्नातक्षकस्तं नृपोत्तमम् । शप्तंज्ञात्वा गृहात्तूर्णंनिःसृतःपुरुषोत्तमः
वृद्धब्राह्मणवेषेण तक्षकः पथि निर्गतः । अपश्यत्कश्यपं मार्गे व्रजन्तंनृपतिं प्रति ॥
तमपृच्छत्पन्नगोऽसौ ब्राह्मणं मन्त्रवादिनम् ।
क्व भवांस्त्वरितो याति किञ्च कार्यं चिकीर्षति ॥ ३ ॥

कश्यप उवाच

परीक्षितं नृपश्रेष्ठं तक्षकश्च प्रधक्ष्यति । तत्राहं त्वरितोयामि नृपं कर्तुमपज्वरम् ॥
मन्त्रोऽस्ति ममविप्रेन्द्र विषनाशकरःकिल । जीवयिष्याम्यहंतंवैजीवितव्येऽधुनाकिल

तक्षक उवाच

अहंसपन्नगोब्रह्मंस्तंधक्ष्यामिमहीपतिम् । निवर्तस्वन शक्तस्त्वंमयादष्टंचिकित्सितुम्

कश्यप उवाच

अहं दष्टं त्वया सर्प नृपं शप्तं द्विजेन वै । जीवयिष्याम्यसन्देहं कामं मन्त्रबलेन वै

तक्षक उवाच

यदि त्वं जीवितं यासि मयादष्टं नृपोत्तमम् । मन्त्रशक्तिबलंविप्रदर्शयत्वं [ममानघ
धक्ष्याम्येनं च न्यग्रोधं विषदंष्ट्राभिरद्य वै ।

कश्यप उवाच

जीवयिष्ये त्वया दष्टं दग्धं वा पन्नगोत्तम ! ॥ ६ ॥

सूत उवाच

अदशत्पन्नगोवृक्षं भस्मसाच्च चकारतम् । उवाच कश्यपं भूयो जीवयैनं द्विजोत्तम !॥
दृष्ट्वा भस्मीकृतं वृक्षं पन्नगेन विषाग्निना । सर्वं भस्म समाहृत्यकश्यपोवाक्यमब्रवीत्

पश्यमन्त्रबलं मेऽद्य न्यग्रोधं पन्नगोत्तम । जीवयाम्यद्य वृक्षं वै पश्यतस्ते महाविष !॥।
इत्युक्त्वाजलमादायकश्यपोमन्त्रवित्तमः । सिषेच भस्मराशिं तं मन्त्रितेनैव वारिणा
तद्वारिसेचनाज्जातोन्यग्रोधःपूर्ववच्छुभः । विस्मयंतक्षकःप्राप्तो दृष्ट्वातंजीवितन्नगम् ॥
तमाह कश्यपं नागः किमर्थं ते परिश्रमः । सम्पादयामितंकामंब्रूहिवाडव वाञ्छितम्

कश्यप उवाच

वित्तार्थी नृपतिं मत्वा शप्तं पन्नग निःसृतः । गृहादहं चोपकर्तुं विद्यया नृपसत्तमम् ॥

तक्षक उवाच

वित्तंगृहाणविप्रेन्द्रयावदिच्छसिपार्थिवात् । ददामिस्वगृहंयाहिसकामोऽहंभवाम्यतः

सूत उवाच

तच्छ्रुत्वा वचनंतस्यकश्यपःपरमार्थवित् । चिन्तयामास मनसा किं करोमिपुनः पुनः
धनं गृहीत्वा स्वगृहं प्रयामि यद्यहंपुनः । भविष्यतिन मेकीर्त्तिर्लोके लोभसमाश्रयात्
जीविते‌ऽथ नृपश्रेष्ठेकीर्तिःस्यादचलामम । धनप्राप्तिश्च बहुधा भवेत्पुण्यञ्चजीवनात्
रक्षणीयंयशःकामं धिग्धनं यशसा विना । सर्वस्वं रघुणापूर्वं दत्तं विप्राय कीर्त्तये ॥
हरिश्चन्द्रेण कर्णेन कीर्त्यर्थं बहुविस्तरम् । उपेक्षेयं कथं भूपं दह्यमानं विषाग्निना ॥
जीविते‌ऽद्य मया राज्ञि सुखं सर्वजनस्य च । अराजके प्रजानाशोभवितानात्र संशयः
प्रजानाशस्य पापंमे भविष्यति मृते नृपे । अपकीर्तिश्च लोकेषु धनलोभाद्भविष्यति
इतिसञ्चिन्त्यमनसाध्यानंकृत्वास कश्यपः । गतायुषंच नृपतिं ज्ञानवान्बुद्धिमत्तरः ॥
आपन्नमृत्युंराजानंज्ञात्वाध्यानेन कश्यपः । गृहं ययौ स धर्मात्माधनमादायतक्षकात्
निवर्त्य कश्यपं सर्पः सप्तमे दिवसेनृपम् । हन्तुकामो जगामाशु नगरं नागसाह्वयम्
शुश्रावनगरस्यान्ते प्रासादस्थंपरीक्षितम् । मणिमन्त्रौषधैःकामं रक्ष्यमाणमतन्द्रितम्
चिन्ताविष्टस्तदानागो विप्रशापभयाकुलः । चिन्तयामासयोगेन प्रविशेऽयंगृहं कथम्
वञ्चयामिकथञ्चैनं राजानं पापकारिणम् । विप्रशापाद्धतं मूढं विप्रपीडाकरं शठम् ॥
पाण्डवानां कुलेजातःकोऽपिनैतादृशोभवेत् । तापसस्य गले येन मृतःसर्पोनिवेशितः
कृत्वा विगर्हितंकर्म जानन्कालगतिं नृपः । रक्षकान्भवने कृत्वा प्रासादमभिगम्य च

मृत्युं वञ्चयते राजा वर्ततेऽद्य निराकुलः । तं कथं वञ्चयिष्यामिविप्रवाक्येनचोदितः
नजानातिच मन्दात्मामरणेहानिवर्तनम् । तेनासौरक्षकान्स्थाप्यसौधारूढोऽद्यमोदते
यदि वै विहितो मृत्युर्दैवेनाऽमिततेजसा । स कथं परिवर्तेतकृतैर्यत्नैस्तु कोटिभिः॥
पाण्डवस्यच दायादो जानन्मृत्युंगतंनृपः । जीवनेमतिमास्थायस्थितःस्थानेनिराकुलः
दानपुण्यादिकंराजा कर्तुमर्हति सर्वथा । धर्मेणहन्यते व्याधिर्येनाऽऽयुःशाश्वतंभवेत्

नोचेन्मृत्युविधिंकृत्वा स्नानदानादिकाः क्रियाः ।
मरणं स्वर्गलोकाय नरकायाऽन्यथा भवेत् ॥ ३८ ॥

द्विजपीडाकृतं पापं पृथग्वाऽस्य च भूपते । विप्रशापस्तथाघोर आसन्ने मरणेकिल
नकोऽपिब्राह्मणःपार्श्वे य एवं प्रतिबोधयेत् । वेधसाविहितोमृत्युरनिवार्यस्तुसर्वथा

इति सञ्चिन्त्य सर्पोऽसौ स्वान्नागान्निकटेस्थितान् ।
कृत्वा तापसवेषांस्तान्प्राहिणोत्सुभुजङ्गमान् ॥ ४१ ॥

फलमूलादिकं गृह्य राज्ञे नागोऽथ तक्षकः । स्वयञ्चकीटरूपेण फलमध्ये ससार ह ॥

निर्गतास्ते तदा नागाः फलान्यादाय सत्वराः ।
ते राजभवनम्प्राप्य स्थिताः प्रासादसन्निधौ ॥ ४३ ॥
रक्षकास्तापसान्दृष्ट्वा पप्रच्छुस्तच्चिकीर्षितम् ।
ऊचुस्ते भूपतिं द्रष्टुं प्राप्ताः स्मोऽद्य तपोवनात् ॥ ४४ ॥

अभिमन्युसुतंवीरं कुलार्कञ्चारुदर्शनम् । परिवर्धयितुं प्राप्ता मन्त्रैराथर्वणैस्तथा ॥४५

निवेदयध्वं राजानं दर्शनार्थागतान्मुनीन् ।
कृत्वाऽभिषेकान्यास्यामो दत्त्वा मिष्टफलानिच ॥ ४६ ॥

भारतानांकुलेकोऽपि न दृष्टा द्वाररक्षकाः । न श्रुतं तापसानान्तु राज्ञोऽसन्दर्शनंकिल
आरोहामोवयंतत्र यत्र राजा परीक्षितः । आशीर्भिर्वर्धयित्वैनं दत्ताज्ञाः प्रव्रजामहे ॥

सूत उवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तेषां तापसानांतुरक्षकाः । प्रत्यूचुस्तान्द्विजान्मत्वानिदेशंभूपतेर्यथा
नाऽद्यवो दर्शनंविप्रा राज्ञःस्यादितिनोमतिः। श्वः सर्वंतापसैरत्रत्वागंतव्यं नृपालये ॥

अनारोहस्तुप्रासादो विप्राणांमुनिसत्तमाः । विप्रशापभयाद्राज्ञाविहितोऽस्तिनसंशयः
तदोचुस्तानथोविप्राःफलमूलजलानिच । विप्राशिषश्चराज्ञेऽथ प्राहयन्तु सुरक्षकाः ॥
तेगत्वानृपतिंप्रोचुस्तापसानागताञ्जनाः। राजोवाचाऽनयध्वं वै फलमूलादिकञ्च यत्
पृच्छध्वं तापसान्कार्यं प्रातरागमनंपुनः । प्रणामं कथयध्वंमे नाऽद्य संदर्शनंमम ॥५४
ते गत्वाऽथ समादाय फलमूलादिकञ्च यत् । राज्ञे समर्पयामासुर्बहुमानपुरःसरम् ॥
गतेषुतेषु नागेषु विप्रवेषावृतेषु च । फलान्यादाय राजाऽसौ सचिवानिदमब्रवीत् ॥
सुहृदो भक्षयंत्वद्य फलान्येतानि सर्वशः । अद्म्यहञ्चैकमेतद्धैफलं विप्राऽर्पितं महत् ॥

इत्युक्त्वा तत्फलं दत्त्वा सुहृद्भ्यश्चोत्तरासुतः ।
करे कृत्वा फलं पक्वं ददार नृपतिः स्वयम् ॥ ५८ ॥

विदारितं फलं राज्ञा तत्र क्रिमिरभूदणुः । स कृष्णनयनस्ताम्रो दृष्टोभूपतिनास्वयम्
तंदृष्ट्वानृपतिःप्राह सचिवान्विस्मितानथ । अस्तमभ्येति सविता विषादद्यन मे भयम्
अङ्गीकरोमितंशापंकृमिकोमांदशत्वयम् । एवमुक्त्वासराजेन्द्रो ग्रीवायांसन्यवेशयत्
अस्तं जातंदिवानाथेधृतःकण्ठेथकीटकः । तक्षकस्तुतदाजातः कालरूपी भयानकः ॥
राजासम्वेष्टितस्तेन दष्टश्चापि महीपतिः । मन्त्रिणो विस्मयं प्राप्तारुरुदुर्भृशदुःखिताः
घोररूपमहिं वीक्ष्य दुद्रुवुस्ते भयार्दिताः । चुक्रुशू रक्षकाः सर्वे हाहाकारोमहानभूत्
वेष्टितो भोगिभोगेन विनष्टबहुपौरुषः । नोवाचनृपतिः किञ्चिन्न चचालोत्तरासुतः
उत्थिताग्निशिखा घोरा विषजा तक्षकाननात् । प्रजज्वालनृपंत्वाशुगतप्राणंचकारह
हत्वाऽऽशु जीवितं राज्ञस्तक्षको गगनेगतः । जगद्दग्धं तु कुर्वाणं ददृशुस्तं जना इह
स पपात गतप्राणो राजा दग्ध इवद्रुमः । चुक्रुशुश्चजनाः सर्वे मृतं दृष्ट्वा नराधिपम्

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यांसंहितायां द्वितीयस्कन्धे
परीक्षिन्मरणंनामदशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

एकादशोऽध्यायः

जनमेजयसमीपेमुनिरुत्तङ्कस्यागमनम् रुरोराख्यानकथनञ्च

सूत उवाच

गतप्राणं तु राजानं बालंपुत्रं समीक्ष्य च । चक्रुश्चमन्त्रिणःसर्वेपरलोकस्यसत्क्रियाः
गङ्गातीरे दग्धदेहं भस्मप्रायंमहीपतिम् । अगुरुभिश्चाभियुक्तायांचितायामध्यरोपयन्
दुर्मरणे मृतस्यास्य चक्रुश्चैवौर्ध्वदैहिकीम् । क्रियां पुरोहितास्तस्यवेदमन्त्रैर्विधानतः
ददुर्दानानि विप्रेभ्यो गाः सुवर्णं यथोचितम् । अन्नंबहुविधं तत्रवस्त्राणिविविधानिच
सुमुहूर्ते सुतं बालं प्रजानां प्रीतिवर्धनम् । सिंहासने शुभे तत्र मन्त्रिणः सन्यवेशयन्
पौरजानपदा लोकाश्चक्रुस्तं नृपतिं शिशुम् । जनमेजयनामानं राजलक्षणसंयुतम् ॥
धात्रेयी शिक्षयामास राजचिह्नानि सर्वशः। दिने दिने वर्धमानः स बभूव महामतिः
प्राप्तेचैकादशे वर्षे तस्मै कुलपुरोहितः । यथोचितां ददौ विद्यां जग्राहसयथोचिताम्
धनुर्वेदं कृपः पूर्णं ददावस्मै सुसंस्कृतम् । अर्जुनाय यथा द्रोणः कर्णायभार्गवो यथा
सम्प्राप्तविद्योबलवान्बभूवदुरतिक्रमः । धनुर्वेदे तथा वेदे पारगः परमार्थवित् ॥१०॥
धर्मशास्त्रार्थकुशलः सत्यवादी जितेन्द्रियः । चकार राज्यं धर्मात्मापुराधर्मसुतोयथा
ततः सुवर्णवर्माख्यो राजाकाशिपतिः किल । वपुष्टमां शुभांकन्यां ददौपारीक्षितायच
स तांप्राप्याऽसितापाङ्गीं मुमुदेजनमेजयः । काशिराजसुतांकान्तांप्राप्यराजायथापुरा
विचित्रवीर्यो मुमुदे सुभद्रां च यथाऽर्जुनः । विजहार महीपालोवनेषूपवनेषु च॥१४॥
तयाकमलपत्राक्ष्या शच्या शतक्रतुर्यथा । प्रजास्तस्य सुसन्तुष्टाबभूवुः सुखलालिताः
मन्त्रिणः कर्मकुशलाश्चक्रुः कार्याणि सर्वशः । एतस्मिन्नेव कालेतु मुनिरुत्तङ्कनामकः
तक्षकेणपरिक्लिष्टोहस्तिनापुरमभ्यगात् । वैरस्यापचितिंकोऽस्यप्रकुर्यादितिचिन्तयन्
परीक्षितसुतं मत्वा तं नृपं समुपागतः । कार्याकार्यंनजानासि समये नृपसत्तम !॥
अकर्तव्यं करोष्यद्य कर्तव्यंन करोषि च । किं त्वां संप्रार्थयाम्यद्यगतामर्षनिरुद्यमम्

अवैरममतन्त्रज्ञं बालचेष्टासमन्वितम् ।

जनमेजय उवाच

किं वैरं न मया ज्ञातं न किं प्रतिकृतं मया ॥ २० ॥
तद्वद त्वं महाभाग ! करोमि यदनन्तरम् ।

उत्तङ्क उवाच

पिता ते निहतो भूप ! तक्षकेण दुरात्मना ॥ २१ ॥
मन्त्रिणस्त्वं समाहूय पृच्छस्व पितृनाशनम् ।

सूत उवाच

तच्छ्रुत्वा वचनं राजा पप्रच्छ मन्त्रिसत्तमान् ॥ २२ ॥
ऊचुस्ते द्विजशापेन दष्टः सर्पेण वै मृतः ।

जनमेजय उवाच

शापोऽत्र कारणं राज्ञः शप्तस्य मुनिना किल ॥ २३ ॥
तक्षकस्य तु को दोषो ब्रूहि मे मुनिसत्तम !।

उत्तङ्क उवाच

तक्षकेण धनं दत्त्वा कश्यपः सन्निवारितः ॥ २४ ॥
न स किं तक्षको वैरी पितृहा तव भूपते । भार्या रुरोः पुरा भूप दष्टासर्पेण सामृता
अविवाहिता तु मुनिना जीविताचपुनःप्रिया । रुरुणाऽपिकृतातत्रप्रतिज्ञाचातिदारुणा
यं यं सर्पं प्रपश्यामि तं तं हन्म्यायुधेन वै । एवं कृत्वा प्रतिज्ञांस शस्त्रपाणीरुरुस्तदा
व्यचरत्पृथिवीं राजन्निघ्नन्सर्पान्यतस्ततः । एकदा स वने घोरं डुण्डुभंजरसान्वितम्
अपश्यद्दण्डमुद्यम्य हन्तुं तं समुपाययौ । अभ्यहन्रुषितो विप्रस्तमुवाचाऽथडुण्डुभः
नाऽपराध्नोमि ते विप्र! कस्मान्मामभिहंसि वै ।

रुरुरुवाच

प्राणप्रिया मे दयिता दष्टा सर्पेण सा मृता ॥ ३० ॥
प्रतिज्ञेयं तदा सर्प दुःखितेन मया कृता ।

डुण्डुभ उवाच

नाऽहं दशामि तेऽन्ये वै ये दशन्ति भुजङ्गमाः ॥ ३१ ॥

शरीरसमयोगेन न मां हिंसितुमर्हसि ।

उत्तङ्क उवाच

श्रुत्वा तां मानुषीं वाणीं सर्पेणोक्तां मनोहराम् ॥ ३२ ॥

रुरुः प्रपच्छ कोऽसि त्वं कस्माड्डुण्डुभतां गतः ।

सर्प उवाच

ब्राह्मणोऽहं पुरा विप्र सखा मे खगमाऽभिधः ॥ ३३ ॥

विप्रो धर्मभृतां श्रेष्ठः सत्यवादी जितेन्द्रियः ।

स मया वञ्चितो मौर्ख्यात्सर्पं कृत्वा च तार्णकम् ॥ ३४ ॥

भयं च प्रापितोऽत्यर्थमग्निहोत्रगृहे स्थितः । तेन भीतेन शप्तोऽहं विह्वलेनातिवेपिना

भव सर्पो मन्दबुद्धे! येनाहंधर्षितस्त्वया । मया प्रसादितोऽत्यर्थंसर्पेणाऽसौद्विजोत्तमः

मामुवाचाऽथ तत्क्रोधात्किञ्चिच्छांतिमवाप्य च ।

रुरुस्ते मोचिता शापस्याऽस्य सर्प ! भविष्यति ॥ ३७ ॥

प्रमतेस्तु सुतो नूनमिति मां सोऽब्रवीद्वचः । सोऽहं सर्पो रुरुस्त्वंचशृणुमेपरमंवचः

अहिंसा परमोधर्मो विप्राणां नाऽत्रसंशयः । दया सर्वत्र कर्तव्या ब्राह्मणेनविजानता

यज्ञादन्यत्र विप्रेन्द्र न हिंसा याज्ञिकी मता ।

उत्तङ्क उवाच

सर्पयोनेर्विनिर्मुक्तो ब्राह्मणोऽसौ रुरुस्ततः ॥ ४० ॥

कृत्वा तस्य च शापान्तं परित्यक्तंचहिंसनम् । विवाहितातेनबालामृतासञ्जीविता पुनः

कदनं सर्वसर्पाणां कृतं वैरमनुस्मरन् । त्वं तु वैरं समुत्सृज्य वर्तसे पन्नगेष्वथ ॥

विमन्युर्भरतश्रेष्ठ पितृघातकरेषु वै । अन्तरिक्षे मृतस्तातः स्नानदानविवर्जितः ॥४३॥

तस्योद्धारं च राजेन्द्र कुरु हत्वाऽथ पन्नगान् । पितुर्वैरंनजानातिजीवन्नेवमृतोहिसः

दुर्गतिस्ते पितुस्तावद्यावत्तान्न हनिष्यसि । अश्वमेधमिषंकृत्वा कुरु यत्नं नृपोत्तम

सर्पसत्रं महाराज ! पितुर्वैरमनुस्मरन् ।

सूत उवाच

इति तस्य वचः श्रुत्वा राजा जन्मेजयस्तदा ॥ ४६ ॥

नेत्राभ्यामश्रुपातं च चकाराऽतीव दुःखितः । धिङ् मामस्तुसुदुर्बुद्धेर्वृथामानकरस्यवै
पिता यस्य गतिंघोरां प्राप्तः पन्नगपीडितः । अद्याहंमखमारम्भ्यकरोम्यपचितिंपितुः
हत्वा सर्पानसंदिग्धो दीप्यमानेविभावसौ । आहूयमन्त्रिणःसर्वान्राजावचनमब्रवीत्
कुर्वन्तु यज्ञसम्भारं यथार्हं मन्त्रिसत्तमाः । गङ्गातीरे शुभांभूमिमापयित्वाद्विजोत्तमैः

कुर्वन्तु मण्डपं स्वस्थाः शतस्तम्भं मनोहरम् ।

वेदी यज्ञस्य कर्तव्या ममाऽद्य सचिवाः खलु ॥ ५१ ॥

तदङ्गत्वे विधेयोवै सर्पसत्रः सुविस्तरः । तक्षकस्तु पशुस्तत्र होतोत्तङ्को महामुनिः

शीघ्रमाहूयतां विप्राः सर्वज्ञा वेदपारगाः ।

सूत उवाच

मन्त्रिणस्तु तदा चक्रुर्भूपवाक्यैर्विचक्षणाः ॥ ५३ ॥

यज्ञस्य सर्वसम्भारं वेदिं यज्ञस्य विस्तृताम् । हवने वर्तमाने तु सर्पाणां तक्षको गतः

इन्द्रम्प्रति भयार्तोऽहं त्राहिमाऽमिति चाऽब्रवीत् ।

भयभीतं समाश्वास्य स्वाऽऽसने सन्निवेश्य च ॥ ५५ ॥

ददावभयमत्यर्थं निर्भयो भव पन्नग । तमिन्द्रशरणं ज्ञात्वा मुनिर्दत्ताभयं तथा ॥५६॥
उत्तङ्कोऽह्वयदुद्विग्नः सेन्द्रं कृत्वा निमन्त्रणम् । स्मृतस्तदा तक्षकेण यायावरकुलोद्भवः
आस्तीको नाम धर्मात्मा जरत्कारुसुतो मुनिः । तत्रागत्यमुनेर्बालस्तुष्टावजनमेजयम्
राजा तमर्चयामासदृष्ट्वा बालंसुपण्डितम् । अर्चयित्वानृपस्तंतुछन्दयामासवाञ्छितैः
स तु वव्रे महाभाग यज्ञोऽयं विरमत्विति । सत्यबद्धो नृपस्तेन प्रार्थितश्च पुनस्तथा॥
होमं निवर्तयामास सर्पाणां मुनिवाक्यतः । भारतं श्रावयामासवैशम्पायनविस्तरात्

श्रुत्वाऽपि नृपतिः कामं न शान्तिमभिजग्मिवान् ।

व्यासं पप्रच्छ भूपालो मम शान्तिः कथं भवेत् ॥ ६२ ॥

मनोऽतिदह्यते कामं किं करोमि वदस्व मे । पिता मे दुर्मगस्यैव मृतःपार्थसुतात्मजः
क्षत्रियाणां महाभाग संग्रामे मरणं वरम् । रणे वा मरणं व्यास गृहेवाविधिपूर्वकम्
मरणं न पितुर्मेऽभूदन्तरिक्षेमृतोऽवशः । शान्त्युपायं वदस्वाऽत्र त्वं च सत्यवतीसुत
यथा स्वर्गं व्रजेदाशु पिता मे दुर्गतिं गतः ॥ ६६ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां द्वितीयस्कन्धे सर्पसत्रवर्णनंनामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

द्वादशोऽध्यायः

जरत्कारुमुनिकथानकवर्णनम्

सूत उवाच

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य व्यासः सत्यवतीसुतः । उवाच वचनं तत्र सभायांनृपतिंवतम्

व्यास उवाच

शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि पुराणं गुह्यमद्भुतम् । पुण्यं भागवतं नाम नानाख्यानयुतंशिवम्
अध्यापितं मया पूर्वं शुकायात्मसुताय वै । श्रावयामि नृप त्वांहिरहस्यं परमं मम
धर्मार्थकाममोक्षाणां कारणं श्रवणात्किल । शुभदं सुखदं नित्यं सर्वागमसमुद्धृतम्

जनमेजय उवाच

आस्तीकोऽयंसुतः कस्य विप्रार्थं कथमागतः । प्रयोजनंकिमत्रास्यसर्पाणांरक्षणेप्रभो
कथयैतन्महाभाग विस्तरेण कथानकम् । पुराणं च तथा सर्वं विस्तराद्वद सुव्रत

व्यास उवाच

जरत्कारुर्मुनिः शान्तो न चकार गृहाश्रमम् । तेन दृष्टा वने गर्तेलम्बमानाःस्वपूर्वजाः
ततस्तमाहुः कुरु पुत्र ! दारान्यथा च नः स्यात्परमा हि तृप्तिः ।
स्वर्गे व्रजामःखलु दुःखमुक्ता वयं सदाचारयुते सुते वै ॥ ८ ॥

स तानुवाचाऽथ लभे समानामयाचितां चाऽतिवशानुगाञ्च ।
तदा गृहारम्भमहं करोमि ब्रवीमि तथ्यं मम पूर्वजा वै ॥ ९ ॥

इत्युक्त्वा ताञ्जरत्कारुर्गतस्तीर्थान्प्रति द्विजः । तदैवपन्नगाःशप्तामात्राग्नौनिपतन्त्विति
कश्यपस्यमुनेः पत्न्यौ कद्रूश्च विनतातथा । दृष्ट्वाऽऽदित्यरथे चाश्वमूचतुश्चपरस्परम्
तं दृष्ट्वा च तदा कद्रूर्विनतामिदमब्रवीत् । किम्वर्णोऽयं हयो भद्रे सत्यंप्रब्रूहिमाचिरम्

विनतोवाच

श्वेत एवाश्वराजोऽयं किं वा त्वं मन्यसे शुभे । ब्रूहिवर्णंत्वमप्यस्यततस्तुविपणावहे

कद्रूरुवाच

कृष्णवर्णमहं मन्ये हयमेनं शुचिस्मिते । एहि सार्द्धंमया दिव्यं दासीभावायभामिनि

सूत उवाच

कद्रूश्च स्वसुतानाह सर्वान्सर्पान्वशे स्थितान् ।
वालाञ्छ्यामान्प्रकुर्वन्तु यावन्तोऽश्वशरीरके ॥ १५ ॥

नेति केचन तत्राहुस्तानथाऽसौ शशाप ह । जनमेजयस्य यज्ञे वै गमिष्यथहुताशनम्
अन्ये चक्रुर्हयं सर्पाः कर्बुरंवर्णभोगकैः । वेष्टयित्वाऽस्यपुच्छन्तु मातुःप्रियचिकीर्षया
भगिन्यौ च सुसंयुक्ते गत्वा ददृशतुर्हयम् । कर्बुरं तं हयं दृष्ट्वा विनता चातिदुःखिता
तदाऽऽजगाम गरुडः सुतस्तस्या महाबलः । स दृष्ट्वा मातरं दीनामपृच्छत्पन्नगाशनः

मातः ! कथं सुदीनाऽसि रुदितेव विभासि मे ।
जीवमाने मयि सुते तथाऽन्ये रविसारथौ ॥ २० ॥
दुःखिताऽसि ततो वां धिग्जीवितं चारुलोचने !।
किं जातेन सुतेनाऽथ यदि माता सुदुःखिता ॥ २१ ॥
शंस मे कारणं मातः ! करोमि विगतज्वराम् ।

विनतोवाच

सपत्न्या दास्यहं पुत्र ! किं ब्रवीमि वृथा क्षता ॥ २२ ॥
वह मां स ब्रवीत्यद्य तेनाऽस्मि दुःखिता सुत !।

गरुड उवाच

वहिष्येऽहं तत्र किल यत्र सा गन्तुमुत्सुका ॥ २३ ॥
मा शोकं कुरु कल्याणि! निश्चिन्तां त्वां करोम्यहम् ।

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा सा गता पार्श्वं कद्र्वाश्च विनता तदा ॥ २४ ॥
दासीभावमपाकर्तुं गरुडोऽपि महाबलः । उवाह तां सपुत्रां वै सिन्धोःपारं जगाम ह
गत्वा तां गरुडः प्राह ब्रूहि मातर्नमोऽस्तु ते । कथं मुच्येतमेमातादासीभावादसंशयम्

कद्रूरुवाच

अमृतं देवलोकात्त्वं बलादानीयमे सुतान् । समर्पयसुताऽद्याऽऽशुमातरंमोचयाबलाम्

व्यास उवाच

इत्युक्तः प्रययौ शीघ्रमिन्द्रलोकं महाबलः । कृत्वायुद्धंजहाराऽऽशुसुधाकुम्भंखगोत्तमः
समानीयामृतं मात्रे वैनतेयः समर्पयत् । मोचिता विनता तेन दासीभावादसंशयम्
अमृतं सञ्जहारेन्द्रःस्नातुं सर्पा यदा गताः । दासीभावाद्विनिर्मुक्ताविनताविपतेर्बलात्
तत्राऽऽस्तीर्णाः कुशास्तैस्तु लीढाः पन्नगनायकैः ।
द्विजिह्वास्ते सुसम्पन्नाः कुशाग्रस्पर्शमात्रतः ॥ ३१ ॥
मात्राशप्ताश्च ये नागा वासुकिप्रमुखाःशुचा । ब्रह्माणंशरणंगत्वातेह्योचुःशापजंभयम्
तानाह भगवान्ब्रह्मा जरत्कारुर्महामुनिः । वासुकेर्भगिनींतस्मै अर्पयध्वं सनामिकाम्
तस्यांयोजायतेपुत्रःस वस्त्राताभविष्यति । आस्तीकइतिनामाऽसौभविताऽनात्रसंशयः
वासुकिस्तु तदाकर्ण्यवचनंब्रह्मणःशिवम् । वनंगत्वा सुतां तस्मै ददौ विनयपूर्वकम्॥
समानान्तां मुनिर्ज्ञात्वाजरत्कारुरुवाचतम् । अप्रियंमेयदाकुर्यात्तदातांसन्त्यजाम्यहम्
वाग्बन्धंतादृशंकृत्वामुनिर्जग्राह तां स्वयम् । दत्त्वाचवासुकिःकामंभवनं स्वं जगामह
कृत्वापर्णकुटींशुभ्रां जरत्कारुर्महावने । तया सह सुखं प्राप्त रममाणः परन्तप !॥३८॥
एकदाभोजनंकृत्वासुप्तोऽसौमुनिसत्तमः । भगिनीवासुकेस्तत्र संस्थिता वरवर्णिनी
न सम्बोधयितव्योऽहंत्वयाकान्तेकथञ्चन । इत्युक्त्वातुगतोनिद्रां मुनिस्तांसुव्रतींतदा

रविरस्तगिरिंप्राप्तःसन्ध्याकालउपस्थिते । किंकरोमिनमेशान्तिस्त्यजेन्मांबोधितःपुनः

धर्मलोपभयाद्भीता जरत्कारुरचिन्तयत् ।

नोचेत्प्रबोधयाम्येनं सन्ध्याकालो वृथा व्रजेत् ॥ ४२ ॥

धर्मनाशाद्वरं त्यागस्तथाऽपि मरणं ध्रुवम् । धर्महानिर्नराणां हि नरकाय भवेत्पुनः॥

इति सञ्चिन्त्य सा बाला तं मुनिं प्रत्यबोधयत् ।

सन्ध्याकालोऽपि संजात उत्तिष्ठोत्तिष्ठ सुव्रत ! ॥ ४४ ॥

उत्थितोऽसौ मुनिः कोपात्तामुवाच व्रजाम्यहम् ।

त्वं तु भ्रातृगृहं याहि निद्राविच्छेदकारिणि !॥ ४५ ॥

वेपमानाऽब्रवीद्वाक्यमित्युक्तामुनिनातदा । भ्राता दत्ता यदर्थं तत्कथंस्यादमितप्रभ !॥

मुनिःप्राहजरत्कारुं तदस्तीति निराकुलः । गता सा मुनिनात्यक्ता वासुकेःसदनं तदा

पृष्टा भ्रात्राऽब्रवीद्वाक्यं यथोक्तं पतिना तदा ।

अस्तीत्युक्त्वा च हित्वा मां गतोऽसौ मुनिसत्तमः ॥ ४८ ॥

वासुकिस्तुतदाकर्ण्यसत्यवाग्मुनिरित्युत । विश्वासंचपरंकृत्वा भगिनींतांसमाश्रयत्

ततःकालेनकियताजातोऽसौमुनिबालकः। आस्तीकइतिनामाऽसौविख्यातःकुरुसत्तम

तेनाऽयंरक्षितोयज्ञस्तव पार्थिवसत्तम । मातृपक्षस्य रक्षार्थं मुनिना भावितात्मना ॥

भव्यंकृतंमहाराज मानितोऽयंत्वयामुनिः । यायावरकुलोत्पन्नो वासुकेर्भगिनीसुतः ॥

स्वस्तितेऽस्तुमहाबाहो भारतंसकलं श्रुतम् । दानानिबहुदत्तानिपूजिता मुनयस्तथा

कृतेन सुकृतेनापि न पिता स्वर्गतिं गतः । पावितं न कुलं कृत्स्नं त्वया भूपतिसत्तम

देव्याश्चाऽऽयतनंभूपविस्तीर्णंकुरु भक्तितः । येन वै सकलासिद्धिस्तव स्याज्जनमेजय

पूजितापरयाभक्त्या शिवासकलदा सदा । कुलवृद्धिकरोत्येव राज्यञ्च सुस्थिरं सदा

देवीमखं विधानेन कृत्वा पार्थिवसत्तम । श्रीमद्भागवतं नाम पुराणं परमं शृणु ॥५७॥

त्वामहंश्रावयिष्यामिकथांपरमपावनीम् । संसारतारिणींदिव्यां नानारससमाहृताम्

न श्रोतव्यंपरं चास्मात्पुराणाद्विद्यतेभुवि । नाराध्यंविद्यते राजन्देवीपादाम्बुजादृते ॥

ते सभाग्याः कृतप्रज्ञा धन्यास्ते नृपसत्तम । येषां चित्ते सदा देवी वसति प्रेमसंकुले

सुदुःखितास्ते दृश्यन्ते भुवि भारत भारते ।
नाऽऽराधिता महामाया यैर्जनैश्चसदाऽम्बिका ॥ ६१ ॥
ब्रह्मादयः सुराः सर्वे यदाराधनतत्पराः ।
वर्तन्ते सर्वदा राजन्स्तां न सेवेत कोजनः ॥ ६२ ॥
य इदं शृणुयान्नित्यं सर्वान्कामानवाप्नुयात् ।
भगवत्या समाख्यातं विष्णवे यदनुत्तमम् ॥ ६३ ॥
तेन श्रुतेन ते राजंश्चित्तशान्तिर्भविष्यति ।
पितॄणां चाक्षयः स्वर्गोः पुराणश्रवणाद्भवेत् ॥ ६४ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां द्वितीयस्कन्धे श्रोतृप्रवक्तृप्रसंगो नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

स्कन्धश्चायं समाप्तः ॥ २ ॥

द्वाविंशत्यधिकसंख्यैःपद्यैःसप्तशतैः शुभैः । श्रीमद्व्यासमुखोद्गीतैर्द्वितीयस्कन्धईरितः

———०*०———

* श्रीगणेशायनमः *

देवीभागवतपुराणम्

तृतीयं स्कन्धम्

——*——

प्रथमोऽध्यायः

भुवनेश्वरीनिर्णयवर्णनम्

जनमेजय उवाच

भगवन्भवता प्रोक्तं यज्ञमम्बामिधं महत् । सा का कथंसमुत्पन्नाकुत्रकस्माच्चकिंगुणा

कीदृशश्च मखस्तस्याः स्वरूपं कीदृशंतथा । विधानंविधिवद्ब्रूहिसर्वज्ञोऽसिदयानिधे

ब्रह्माण्डस्य तथोत्पत्तिं वद विस्तरतस्तथा । यथोक्तं यादृशं ब्रह्मन्नखिलं वेत्सि भूसुर

ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च त्रयो देवा मयाश्रुताः । सृष्टिपालनसंहारकारकाःसगुणास्त्वमी

स्वतन्त्रास्ते महात्मानः पाराशर्य ! वदस्व मे ।

आहोस्वित्परतन्त्रास्ते श्रोतुमिच्छामि साम्प्रतम् ॥ ५ ॥

मृत्युधर्माश्च ते नोवासच्चिदानन्दरूपिणः । अधिभूतादिभिर्युक्तानवादुःखैस्त्रिधात्मकैः

कालस्य वशगा नो वा ते सुरेन्द्रामहाबलाः । कथंतेवैसमुत्पन्नाःकस्मादितिचसंशयः

हर्षशोकयुतास्तेवैनिद्राऽऽलस्यसमन्विताः । सप्तधातुमयास्तेषांदेहाःकिंवाऽन्यथामुने

कैर्द्रव्यैर्निर्मितास्ते वै कैर्गुणैरिन्द्रियैस्तथा । भोगश्च कीदृशस्तेषां प्रमाणमायुषस्तथा
निवासस्थानमप्येषां विभूतिंवदस्वमे । श्रोतुमिच्छाम्यहंब्रह्मन्विस्तरेणकथामिमाम् ।

व्यास उवाच

दुर्गमः प्रश्नभारोऽयंकृतो राजंस्त्वयाऽधुना । ब्रह्मादीनांसमुत्पत्तिःकस्मादितिमहामते
एतदेव मयापूर्वं पृष्टोऽसौ नारदो मुनिः । विस्मितः प्रत्युवाचेदमुत्थितः शृणु भूपते
कस्मिंश्च समये चाऽहं गङ्गातीरे स्थितं मुनिम् । अपश्यंनारदंशान्तंसर्वज्ञंवेदवित्तमम्
दृष्ट्वाऽहं मुदितो गत्वा पादयोरपतं मुनेः । तेनाऽऽज्ञप्तः समीपेऽस्यसम्विष्टश्च वरासने

श्रुत्वा कुशलवार्तां वै तमपृच्छं विधेः सुतम् ।
निविष्टं जाह्नवीतीरे निर्जने सूक्ष्मवालुके ॥ १५ ॥

मुनेऽतिविततस्यास्य ब्रह्माण्डस्य महामते । कः कर्ता परमःप्रोक्तस्तन्मेब्रूहिविधानतः
कस्मादेतत्समुत्पन्नं ब्रह्माण्डं मुनिसत्तम । अनित्यं वा तथानित्यंतदाचक्ष्वद्विजोत्तम
एककर्तृकमेतद्वा बहुकर्तृकमन्यथा । अकर्तृकं न कार्यं स्याद्विरोधोऽयं विभाति मे ॥
इति सन्देहसन्दोहे मग्नंमांतारयाऽधुना । विकल्पकोटीःकुर्वाणंसंसारेऽस्मिन्प्रविस्तरे
ब्रुवन्ति शङ्करं केचिन्मत्वा कारणकारणम् । सदाशिवं महादेवं प्रलयोत्पत्तिवर्जितम्
आत्मारामं सुरेशं च त्रिगुणं निर्मलंहरम् । संसारतारकंनित्यंसृष्टिस्थित्यंतकारणम्
अन्ये विष्णुं स्तुवन्त्येनं सर्वेषां प्रभुमीश्वरम् । परमात्मानमव्यक्तंसर्वशक्तिसमन्वितम्
भुक्तिदं मुक्तिदं शान्तं सर्वादिं सर्वतोमुखम् । व्यापकं विश्वशरणमनादिनिधनंहरिम्
धातारं च तथा चाऽन्ये ब्रुवन्ति सृष्टिकारणम् । तमेव सर्ववेत्तारं सर्वभूतप्रवर्तकम्
चतुर्मुखं सुरेशानं नाभिपद्मभवं विभुम् । स्रष्टारं सर्वलोकानां सत्यलोकनिवासिनम्
दिनेशं प्रवदन्त्यन्ये सर्वेशं वेदवादिनः । स्तुवन्ति चैव गायन्ति सायंप्रातरतन्द्रिताः
यजन्ति च तथा यज्ञे वासवं च शतक्रतुम् । सहस्राक्षं देवदेवं सर्वेषां प्रभुमुत्तमम् ॥

यज्ञाधीशं सुराधीशं त्रिलोकेशं शचीपतिम् ।
यज्ञानां चैव भोक्तारं सोमपं सोमपप्रियम् ॥ २८ ॥

वरुणं च तथा सोमं पावकं पवनं तथा । यमं कुबेरं धनदं गणाधीशं तथाऽपरे ॥२९

हेरम्बं गजवक्त्रं च सर्वकार्यप्रसाधकम् । स्मरणात्सिद्धिदं कार्यं कामदं कामगंपरम्
भवानीं केचनाचार्याःप्रवदन्त्यखिलार्थदाम् । आदिमायांमहाशक्तिंप्रकृतिं पुरुषानुगाम्
ब्रह्मैकतासमापन्नां सृष्टिस्थित्यन्तकारिणीम् । मातरं सर्वभूतानां देवतानां तथैव च
अनादिनिधनांपूर्णांव्यापिकांसर्वजन्तुषु । ईश्वरीं सर्वलोकानांनिर्गुणांसगुणांशिवाम्

वैष्णवीं शाङ्करीं ब्राह्मीं वासवीं वारुणीं तथा ।

वाराहीं नारसिंहीं च महालक्ष्मीं तथाऽद्भुताम् ॥ ३४ ॥

वेदमातरमेकां च विद्यां भवतरोःस्थिराम् । सर्वदुःखनिहन्त्रींचस्मरणात्सर्वकामदाम्
मोक्षदांच मुमुक्षूणांकामदांचफलार्थिनाम् । त्रिगुणातीतरूपांचगुणविस्तारकारकाम्
निर्गुणांसगुणांतस्मात्तांध्यायन्तिफलार्थिनः । निरञ्जनंनिराकारंनिर्लेपं निर्गुणं किल
अरूपं व्यापकं ब्रह्म प्रवदन्ति मुनीश्वराः । वेदोपनिषदि प्रोक्तस्तेजोमय इति क्वचित्
सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्रनयनस्तथा । सहस्रकरकर्णश्च सहस्रास्यः सहस्रपात् ॥३६॥
विष्णोः पादमथाकाशं परमं समुदाहृतम् । विराजं विरजं शान्तं प्रवदन्तिमनीषिणः
पुरुषोत्तमं यथा चान्ये प्रवदन्ति पुराविदः । नैकोऽपीतिवदन्त्यन्ये प्रभुरीशःकदाचन
अनीश्वरमिदं सर्वं ब्रह्माण्डमिति केचन । न कदाऽपीशजन्यं यज्जगदेतदचिन्तितम् ॥
सदैवेदमनीशं च स्वभावोत्थं सदेदृशम् । अकर्ताऽसौ पुमान्प्रोक्तः प्रकृतिस्तुतथाचसा
एवं वदन्ति सांख्याश्च मुनयः कपिलादयः । एते सन्देहसन्दोहाः प्रभवन्ति तथाऽपरे
विकल्पोपहतं चेतः किं करोमि मुनीश्वर । धर्माधर्मविवक्षायां न मनोमे स्थिरंभवेत्
कोधर्मःकीदृशोऽधर्मश्चिह्नंनैवोपलभ्यते । देवाःसत्त्वगुणोत्पन्नाः सत्यधर्मव्यवस्थिताः
पीड्यन्तेदानवैःपापैःकुत्रधर्मव्यवस्थितिः । धर्मस्थिताःसदाचाराःपाण्डवाममवंशजाः

दुःखं बहुविधं प्राप्तास्तत्र धर्मस्य का स्थितिः ।

अतो मे हृदयं तात! वेपतेऽतीव संशये ॥ ४८ ॥

कुरु मेऽसंशयं चेतः समर्थोऽसि महामुने । त्राहिसंसारवार्धेस्त्वं ज्ञानपोतेन मां मुने

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां तृतीयस्कन्धे
भुवनेश्वरीवर्णनंनामप्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः

विमानेनब्रह्मादीनाङ्गतिवर्णनम्

व्यास उवाच

यस्त्वया च महाबाहो पृष्टोऽहं कुरुसत्तम । तान्प्रश्नान्नारदः प्राह मया पृष्टो मुनीश्वरः

नारद उवाच

व्यास किं ते ब्रवीम्यद्य पुराऽयं संशयो मम । उत्पन्नोहृदयेऽत्यर्थंसन्देहासारपीडितः
गत्वाऽहंपितरंस्थाने ब्रह्माणममितौजसम् । अपृच्छंयत्त्वयापृष्टंव्यासाद्यप्रश्नमुत्तमम्
पितः कुतः समुत्पन्नंब्रह्माण्डमखिलंविभो । भवत्कृतेनवासम्यक्किंवाविष्णुकृतंत्विदम्
रुद्रकृतं वाविश्वात्मन्ब्रूहि सत्यंजगत्पते । आराधनीयः कः कामंसर्वोत्कृष्टश्चकः प्रभुः
तत्सर्वंवद मे ब्रह्मन्सन्देहांश्छिन्धि चानघ । निमग्नो ह्यस्मि संसारेदुःखरूपेऽनृपोत्तमे
सन्देहान्दोलितंचेतो न प्रशाम्यति कुत्रचित् । न तीर्थेषु न देवेषु साधनेष्वितरेषुच
अविज्ञाय परंतत्त्वं कुतः शान्तिः परन्तप । विकीर्णं बहुधा चित्तं नकुत्रस्थिरतांव्रजेत्

कं स्मरामि यजे कम्वा कम्व्रजाम्यर्चयामि कम् ।

स्तौमि कं नाऽभिजानामि देवं सर्वेश्वरेश्वरम् ॥ ६ ॥

ततो मां प्रत्युवाचेदं ब्रह्मा लोकपितामहः । मया सत्यवतीसूनो कृते प्रश्ने सुदुस्तरे

ब्रह्मोवाच

किंब्रवीमिसुताद्याहंदुर्बोधंप्रश्नमुत्तमम् । त्वयाशक्यंमहाभाग विष्णोरपिसुनिश्चयात्

रागी कोऽपि न जानाति संसारेऽस्मिन्महामते ।

विरक्तश्च विजानाति निरीहो यो विमत्सरः ॥ १२ ॥

एकार्णवे पुरा जाते नष्टे स्थावरजङ्गमे । भूतमात्रे समुत्पन्ने संजज्ञे कमलादहम् ॥
नापश्यं तरणिं सोमं न वृक्षांश्च च पर्वतान् । कर्णिकायां समाविष्टश्चिन्तामकरवंतदा
कस्मादहंसमुद्भूतः सलिलेऽस्मिन्महार्णवे । को मे त्राताप्रभुःकर्तासंहर्तावायुगात्यये

न च भूर्विद्यते स्पष्टा यदाधारं जलं त्विदम्। पङ्कजं कथमुत्पन्नं प्रसिद्धं रूढियोगयोः
पश्याम्यधास्य पङ्कं तं मूलं वै पङ्कजस्य च। भविष्यति धरातत्र मूलंनास्त्यत्रसंशयः
उत्तरं सलिले तत्र यावद्वर्षसहस्रकम्। अन्वेषमाणो धरणीं नाऽवापं तां यदा तदा ॥
तपस्तपेति चाऽऽकाशे वागभूदशरीरिणी। ततोमया तपस्तप्तं पद्मे वर्षसहस्रकम् ॥

सृजेति पुनरुद्भूता वाणी तत्र श्रुता मया।
विमूढोऽहं तदाकर्ण्य कं सृजामि करोमि किम् ॥ २० ॥

तदा दैत्यावतिप्रामौ दारुणौ मधुकैटभौ। ताभ्यां विभीषितश्चाहं युद्धाय मकरालये
ततोऽहं नालमालंब्य वारिमध्यमवातरम्। तदा तत्र मया दृष्टः पुरुषः परमाद्भुतः
मेघश्यामशरीरस्तु पीतवासाश्चतुर्भुजः। शेषशायी जगन्नाथो वनमालाविभूषितः ॥
शङ्खचक्रगदापद्माद्यायुधैः सुविराजितः। तमद्राक्षं महाविष्णुं शेषपर्यङ्कशायिनम् ॥

योगनिद्रासमाक्रान्तमविस्पन्दिनमच्युतम्।
शयानं तं समालोक्य भोगिभोगोपरि स्थितम् ॥ २५ ॥

चिन्ताममाद्भुता जाताकिंकरोमीति नारद। मयास्मृतातदादेवीस्तुतानिद्रास्वरूपिणी
देहान्निर्गत्य सा देवीगगनेसंस्थिताशिवा। अचिन्त्यशरीरासा दिव्याभरणमण्डिता
विष्णोर्देहं विहायाशु विरराज नभःस्थिता। उदतिष्ठदमेयात्मा तया मुक्तो जनार्दनः
पञ्चवर्षसहस्राणि कृतवान्युद्धमुत्तमम्। तदा विलोकितौ दैत्यौ हरिणाविनिपातितौ
उत्सङ्गं विपुलं कृत्वा तत्रैवनिहतौचतौ। रुद्रस्तत्रैवसम्प्राप्तोयत्राऽऽवांसंस्थितावुभौ

त्रिभिः संवीक्षिताऽस्माभिः स्वस्था देवी मनोहरा।
संस्तुता परमा शक्तिरुवाचाऽस्मानवस्थितान् ॥ ३१ ॥
कृपावलोकनैः कृत्वा पावनैर्मुदितानथ।

देव्युवाच

काजेशाः स्वानि कार्याणि कुरुध्वं समतन्द्रिताः ॥ ३२ ॥

सृष्टिस्थितिविनाशानिहतावेतौमहासुरौ। कृत्वास्वानिनिकेतानिवसध्वंविगतज्वराः

प्रजाश्चतुर्विधाः सर्वाः सृजध्वं स्वविभूतिभिः।

ब्रह्मोवाच

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्याः पेशलं सुखदं मृदु ।
अब्रूम तामशक्ताःस्मःकथंकुर्मस्त्विमाःप्रजाः । न महीविततामातः सर्वत्रविततंजलम्
न भूतानि गुणाश्चापि तन्मात्राणीन्द्रियाणि च ।
तदाकर्ण्य वचोऽस्माकं शिवा जाता स्मितानना ॥ ३६ ॥
झटित्येवाऽऽगतं तत्र विमानं गगनाच्छुभम् ।
सोवाचाऽस्मिन्सुराः कामं विशध्वं गतसाध्वसाः ॥ ३७ ॥
विमाने ब्रह्मविष्ण्वीशा दर्शयाम्यद्य चाऽद्भुतम् ।
तन्निशम्य वचस्तस्या ओमित्युक्त्वा पुनर्वयम् ॥ ३८ ॥
समारुह्योपविष्टाः स्मोविमानेरत्नमण्डिते । मुक्तादामसुलम्बीतेर्किंकिणीजालशब्दिते
सुरसद्मनिभेरम्येत्रयस्तत्राविशङ्किताः । सोपविष्टांस्ततोदृष्ट्वादेव्यस्मान्विजितेन्द्रियान्
स्वशक्त्या तद्विमानं वै नोदयामास चाऽम्बरे ॥ ४१ ॥
इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां तृतीयस्कन्धे
विमानेनब्रह्मादीनाङ्गतिवर्णनंनाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः

विमानस्थैर्हरादिभिर्देवीदर्शनम्

ब्रह्मोवाच

विमानं तन्मनोवेगं यत्रस्थानान्तरे गतम् । नजलंतत्रपश्यामोविस्मिताःस्मोवयंतदा
वृक्षाः सर्वफला रम्याःकोकिलारावमण्डिताः । महीमहीधराःकामंवनान्युपवनानिच
नार्यश्च पुरुषाश्चैव पशवश्च सरिद्वराः । वाप्यःकूपास्तडागाश्चपल्वलानि च निर्झराः
पुरतो नगरं रम्यं दिव्यप्राकारमण्डितम् । यज्ञशालासमायुक्तं नानाहर्म्यविराजितम्

प्रत्यभिज्ञा तदा जाताऽप्यस्माकं प्रेक्ष्य तत्पुरम् ।
स्वर्गोऽयमिति केनाऽसौ निर्मितोऽस्ति तदाऽद्भुतम् ॥ ५ ॥

राजानं देवसङ्काशं व्रजन्तंमृगयांवने । अस्माभिःसंस्थितादृष्टा विमानोपरिवाम्बिका क्षणाच्चचाल गगने विमानं पवनेरितम् । मुहूर्ताद्वाततः प्राप्तं देशे चाऽन्ये मनोहरे ॥ नन्दनं च वनं तत्र दृष्टमस्माभिरुत्तमम् । पारिजाततरुच्छायासंश्रितासुरभिःस्थिता चतुर्दन्तोगजस्तस्याःसमीपे समवस्थितः । तत्राऽप्सरसां वृन्दानि मेनकाप्रभृतीनिच क्रीडन्ति विविधैर्भावैर्गानिनृत्यसमन्वितैः । गन्धर्वाःशतशस्तत्रयक्षाविद्याधरास्तथा मन्दारवाटिकामध्ये गायन्तिच रमन्तिच । दृष्टः शतक्रतुस्तत्र पौलोम्या सहितः प्रभुः वयन्तु विस्मिताश्चास्म दृष्ट्वात्रैविष्टपं तदा । यादः पतिं कुबेरञ्च यमं सूर्यं विभावसुम्

विलोक्य विस्मिताश्चास्म वयं तत्र सुरान्स्थितान् ।
तदा विनिर्गतो राजा पुरात्तस्मात्सुमण्डितात् ॥ १३ ॥

देवराज इवाऽक्षोभ्योनरवाह्यावनौ स्थितः । विमानत्था वयं तच्च चचालतरसागतम् ब्रह्मलोकं तदा दिव्यं सर्वदेवनमस्कृतम् । तत्र ब्रह्माणमालोक्य विस्मितौ हरकेशवौ सभायां तत्र वेदाश्च सर्वे सांगाः स्वरूपिणः । सागराःसरितश्चैव पर्वताःपन्नगोरगाः मामूचतुश्चतुर्वक्त्र कोऽयं ब्रह्मा सनातनः । तावचोचमहं नैव जाने सृष्टिपतिं पतिम् कोऽहंकोऽयंकिमर्थंवाभ्रमोऽयंमम चेश्वरौ । क्षणादथविमानंतच्चचालाऽऽशुमनोजवम् कैलासशिखरेप्राप्तं रम्ये यक्षगणान्विते । मन्दारवाटिकारम्ये कीरकोकिलकूजिते ॥ वीणामुरजवाद्यैश्च नादिते सुखदे शिवे । यदा प्राप्तं विमानं तत्तदैव सदनाच्छुभात् ॥ निर्गतो भगवाञ्छम्भुर्वृषारूढस्त्रिलोचनः । पञ्चाननो दशभुजः कृतसोमार्धशेखरः ॥ व्याघ्रचर्मपरीधानो गजचर्मोत्तरीयकः । पार्ष्णिरक्षौमहावीरौ गजाननषडाननौ ॥२२ शिवेन सह पुत्रौ द्वौ व्रजमानौ विरेजतुः । नन्दिप्रभृतयः सर्वे गणपाश्च वराश्च ते ॥ जयशब्दं प्रयुंजाना व्रजन्ति शिवपृष्ठगाः । तं वीक्ष्य शङ्करंचान्यं विस्मितास्तत्रनारद मातृभिःसंशयाविष्टस्तत्राहं न्यवसं मुने । क्षणात्तस्माद्गिरेः शृङ्गाद्विमानं वाततरंहसा वैकुण्ठसदनम्प्राप्तं रमारमणमन्दिरम् । असम्भाव्या विभूतिश्च तत्र दृष्टा मया सुत!॥

विसिस्मिये तदा विष्णुर्दृष्ट्वा तत्पुरमुत्तमम् । सद्मनाग्रे ययौ तावद्धरिः कमललोचनः
अतसीकुसुमाभासः पीतवासाश्चतुर्भुजः । द्विजराजाधिरूढश्च दिव्याभरणभूषितः ॥
वीज्यमानस्तदा लक्ष्म्या कामिन्या चामरैः शुभैः ।
तं वीक्ष्य विस्मिताः सर्वे वयं विष्णुं सनातनम् ॥ २६ ॥
परस्परं निरीक्षन्तः स्थितास्तस्मिन्वरासने । ततश्चचाल तरसा विमानं वातरंहसा॥
सुधासमुद्रःसम्प्राप्तोमिष्टवारिमहोर्मिमान् । यादोगणसमाकीर्णश्चलद्वीचिविराजितः
मन्दारपारिजाताद्यैःपादपैरतिशोभितः । नानाऽऽस्तरणसंयुक्तोनानाचित्रविचित्रितः
मुक्तादामपरिक्लिष्टो नानादामविराजितः । अशोकबकुलाख्यैश्च वृक्षैःकुरुबकादिभिः॥
संवृतःसर्वतःसौम्यैः केतकीचम्पकैर्वृतः । कोकिलारावसम्पुष्टो दिव्यगन्धसमन्वितः
द्विरेफातिरणत्कारै रञ्जितः परमाद्भुतः । तस्मिन्द्वीपे शिवाकारः पर्यङ्कः सुमनोहरः ॥
रत्नालिखचितोऽत्यर्थंनानारत्नविराजितः । दृष्टोऽस्माभिर्विमानस्थैर्दूरतःपरिमण्डितः
नानास्तरणसञ्छन्न इन्द्रचापसमन्वितः । पर्यंकप्रवरे तस्मिन्नुपविष्टा वरांगना ॥३७
रत्नमाल्याम्बरधरा रक्तगन्धानुलेपना । सुरक्तनयना कान्ता विद्युत्कोटिसमप्रभा ॥
सुचारुवदना रक्तदन्तच्छदविराजिता । रमाकोट्यधिकाकान्त्यासूर्यबिम्बनिभाखिला
वरपाशाङ्कुशाभीष्टधरा श्रीभुवनेश्वरी । अदृष्टपूर्वासा दृष्टा सुन्दरी स्मितभूषणा ॥४०
ह्रींकारजपनिष्ठैस्तु पक्षिवृन्दैर्निषेविता । अरुणाकरुणामूर्तिः कुमारी नवयौवना ॥
सर्वशृङ्गारवेषाढ्या मन्दस्मितमुखाम्बुजा । उद्यत्पीनकुचद्वंद्वनिर्जिताम्भोजकुड्मला
नानामणिगणाकीर्णभूषणैरुपशोभिता । कनकाङ्गदकेयूरकिरीटपरिशोभिता ॥ ४३ ॥
कनच्छ्रीचक्रताटङ्कविटङ्कवदनाम्बुजा । हृल्लेखा भुवनेशीति नामजापपरायणैः ॥ ४४॥
सखीवृन्दैः स्तुता नित्यं भुवनेशीमहेश्वरी । हृल्लेखाद्याभिरमरकन्याभिःपरिवेष्टिताः
अनङ्गकुसुमाद्याभिर्देवीभिः परिवेष्टिता । देवीषट्कोणमध्यस्थ यन्त्रराजोपरिस्थिता
दृष्ट्वा तां विस्मिताः सर्वे वयं तत्र स्थिता भवन् ।
केयं कान्ता च किं नाम न जानीमोऽत्र संस्थिता ॥ ४७ ॥
सहस्रनयनारामा सहस्रकरसंयुता । सहस्रवदना रम्या भाति दूरादसंशयम् ॥ ४८ ॥

नाप्सरा नापि गन्धर्वी नेयं देवांगनाकिल । इति संशयमापन्नास्तत्रनारद संस्थिताः

तदाऽसौ भगवान्विष्णुर्दृष्ट्वा तां चारुहासिनीम् ।

उवाचाऽम्बां स्वविज्ञानात्कृत्वा मनसि निश्चयम् ॥ ५० ॥

एषाभगवती देवी सर्वेषां कारणं हि नः । महाविद्या महामाया पूर्णाप्रकृतिरव्यया ॥
दुर्ज्ञेयाऽल्पधियांदेवीयोगगम्यादुराशया । इच्छापरात्मनःकामंनित्यानित्यस्वरूपिणी
दुराराध्याऽल्पभाग्यैश्चदेवीविश्वेश्वरीशिवा । वेदगर्भाविशालाक्षीसर्वेषामादिरीश्वरी
एषासंहृत्यसकलंविश्वं क्रीडति संक्षये । लिङ्गानिसर्वजीवानां स्वशरीरेनिवेश्य च ॥
सर्वबीजमयीह्येषा राजतेसाम्प्रतंसुरौ । विभूतयःस्थिताःपार्श्वेपश्यतांकोटिशःक्रमात्
दिव्याभरणभूषाढ्या दिव्यगन्धानुलेपनाः । परिचर्यापराः सर्वाःपश्यन्तं ब्रह्मशङ्करौ ॥
धन्यावयंमहाभागाःकृतकृत्याःस्मसाम्प्रतम् । यदत्रदर्शनंप्राप्ताभगवत्याःस्वयंत्विदम्
तपस्तप्तं पुरायत्नात्तस्येदं फलमुत्तमम् । अन्यथा दर्शनं कुत्र भवेदस्माकमादरात् ॥
पश्यन्तिपुण्यपुञ्जायेये वदान्यास्तपस्विनः । रागिणोनैवपश्यन्तिदेवींभगवतींशिवाम्
मूलप्रकृतिरेवैषा सदा पुरुषसङ्गता । ब्रह्माण्डं दर्शयत्येषा कृत्वा वै परमात्मने ॥६०॥
दृष्टाऽसौदृश्यमखिलं ब्रह्माण्डं देवतास्सुरौ । तस्यैषाकारणंसर्वामाया सर्वेश्वरीशिवा
काहं वा क सुराः सर्वे रमाद्याःसुरयोषितः । लक्षांशेन तुलामस्या न भवामःकथञ्चन
सैषा वराङ्गना नाम या दृष्टा वै महार्णवे । बालभावे महादेवी दोलयन्तीव मां मुदा
शयानंवटपत्रेच पर्यंके सुस्थिरे दृढे । पादाङ्गुष्ठं करे कृत्वा निवेश्य मुखपङ्कजे ॥६४
लेलिहन्तञ्च क्रीडन्तमनेकैर्बालचेष्टितैः । रममाणं कोमलाङ्गं वटपत्रपुटे स्थितम् ॥६५

गायन्ती दोलयन्ती च बालभावान्मयि स्थिते ।

सेयं सुनिश्चितं ज्ञानं जातं मे दर्शनादिव ॥ ६६ ॥

कामंनो जननी सैषा श्रृणुतं प्रवदाम्यहम् । अनुभूते मया पूर्वं प्रत्यभिज्ञा समुत्थिता

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां तृतीयस्कन्धे
विमानस्थैर्हरादिभिर्देवीदर्शनंनाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः

विष्णुनाकृतंदेवीस्तोत्रम्

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वाभगवान्विष्णुःपुनराहजनार्दनः । वयं गच्छेम पार्श्वेऽस्याःप्रणमन्तः पुनःपुनः
सेयम्वरामहामायादास्यत्येषावरान्हिनः । स्तुवामः सन्निधिंप्राप्य निर्भयाश्चरणांतिके

यदि नो वारयिष्यन्ति द्वारस्थाः परिचारकाः ।
पठिष्यामश्च तत्रस्थाः स्तुतिं देव्याः समाहिताः ॥ ३ ॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्ते हरिणावाक्ये सुप्रहृष्टौ सुसंस्थितौ । जातौ प्रमुदितौ कामं निकटेगमनायच
ओमित्युक्त्वाहरिःसर्वे विमानात्त्वरितास्त्रयः । उत्तीर्यनिर्गताद्वारिशङ्कमानामनस्यलम्

द्वारस्थान्वीक्ष्य तान्सर्वान्देवी भगवती तदा ।
स्मितं कृत्वा चकाराऽऽशु तांस्त्रीन्स्त्रीरूपधारिणः ॥ ६ ॥

वयं युवतयोजाताःसुरूपाश्चारुभूषणाः । विस्मयंपरमं प्राप्ता गतास्तत्सन्निधिं पुनः ॥
सादृष्ट्वानःस्थितांस्तत्र स्त्रीरूपांश्चरणान्तिके । व्यलोकयत्तचार्वंगी प्रेमसम्पूर्णया दृशा
प्रणम्यतां महादेवीं पुरतः संस्थिता वयम् । परस्परं लोकयन्तः स्त्रीरूपाश्चारुभूषणाः
पादपीठं प्रेक्षमाणानानामणिविभूषितम् । सूर्यकोटिप्रतीकाशं स्थितास्तत्र वयं त्रयः
काश्चिद्रक्ताम्बरास्तत्रसहचर्यःसहस्रशः । काश्चिन्नीलाम्बरानार्यस्तथापीताम्बराःशुभाः
देव्यःसर्वाःशुभाकाराविचित्राम्बरभूषणाः । विरेजुःपार्श्वतस्तस्याःपरिचर्यापराःकिल
जगुश्चननृतुश्चान्याःपर्युपासततास्त्रियः । वीणामास्तवाद्यानिवादयन्त्योमुदाऽन्विताः
शृणुनारदवक्ष्यामियद्दृष्टं तत्र चाद्भुतम् । नखदर्पणमध्ये वै देव्याश्चरणपङ्कजे ॥१४॥
ब्रह्माण्डमखिलं सर्वं तत्र स्थावरजङ्गमम् । अहंविष्णुश्चरुद्रश्च वायुरग्निर्यमो रविः ॥
वरुणः शीतगुस्त्वष्टा कुबेरः पाकशासनः । पर्वताःसागरा नद्यो गन्धर्वाप्सरसस्तथा

विश्वावसुश्चित्रकेतुः श्वेतश्चित्रांगदस्तथा । नारदस्तुम्बुरुश्चैव हाहा हूहूस्तथैव च ॥
अश्विनौवसवःसाध्याःसिद्धाश्चपितरस्तथा । नागाःशेषादयःसर्वे किन्नरोरगराक्षसाः
वैकुण्ठो ब्रह्मलोकश्च कैलासः पर्वतोत्तमः । सर्वं तदखिलं दृष्टंनखमध्यस्थितञ्च न ॥
मज्जन्मपङ्कजं तत्र स्थितोऽहं चतुराननः । शेषशायी जगन्नाथस्तथा च मधुकैटभौ ॥

श्रीभगवानुवाच

एवं दृष्टं मया तत्र पादपद्मनखे स्थितम् । विस्मितोऽहंततोवीक्ष्यकिमेतदितिशङ्कितः
विष्णुश्च विस्मयाविष्टः शङ्करश्च तथा स्थितः । तांतदामेनिरेदेवींवयंविश्वस्यमातरम्
ततोवर्षशतं पूर्णं व्यतिक्रान्तं प्रपश्यतः । सुधामये शिवे द्वीपे विहारं विविधं तदा
सख्य इवतदा तत्र मेनिरेऽस्मानवस्थितान् । देव्यःप्रमुदिताकारानानाभरणमण्डिताः
वयमप्यतिरम्यत्वाद्बभूविम विमोहिताः । प्रहृष्टमनसः सर्वेपश्यन्भावान्मनोरमान्
एकदा तां महादेवीं देवीं श्रीभुवनेश्वरीम् । तुष्टाव भगवान्विष्णुर्युवतीभावसंस्थितः

श्रीभगवानुवाच

नमोदेव्यै प्रकृत्यैच विधात्र्यैसततं नमः । कल्याण्यैकामदायैचवृद्ध्यैसिद्ध्यैनमोनमः
सच्चिदानन्दरूपिण्यै संसारारणये नमः । पञ्चकृत्यविधात्र्यैते भुवनेश्यै नमो नमः ॥
सर्वाधिष्ठानरूपायै कूटस्थायै नमो नमः । अर्धमात्रार्थभूतायै हृल्लेखायै नमो नमः ॥
ज्ञातं मयाऽखिलमिदं त्वयि सन्निविष्टं त्वत्तोऽस्य सम्भवलयावपि मातरद्य
शक्तिश्च तेऽस्य करणे विततप्रभावा ज्ञाताऽधुना सकललोकमयीति नूनम् ॥
विस्तार्य सर्वमखिलं सदसद्विकारं संदर्शयस्यविकलं पुरुषाय काले ।
तत्त्वैश्च षोडशभिरेव च सप्तभिश्च भासीन्द्रजालमिव नः किल रञ्जनाय॥३२॥
न त्वामृते किमपि वस्तु गतंविभातिव्याप्यैवसर्वमखिलं त्वमवस्थिताऽसि
शक्तिं विना व्यवहृतौ पुरुषोऽप्यशक्तो वंभण्यते जननि ! बुद्धिमता जनेन ॥
प्रीणाऽसि विश्वमखिलं सततं प्रभावैः स्वैस्तेजसा च सकलंप्रकटीकरोषि।
अत्स्येव देवि! तरसा किल कल्पकाले को वेद देवि! चरितं तव वैभवस्य ॥
त्राता वयं जननि ! ते मधुकैटभाभ्यां लोकाश्च ते सुवितताः खलुदर्शिता वै ।

नीताः सुखस्य भवने परमां च कोटिं यद्दर्शनं तव भवानि ! महाप्रभावम् ॥
नाऽहं भवो न चविरिञ्चिविवेद मातः कोऽन्योहि वेत्तिचरितंतवदुर्विभाव्यम्
कानीह सन्ति भुवनानि महाप्रभावे ह्यस्मिन्भवानि चरिते रचनाकलापे ॥
अस्माभिरत्र भुवने हरिरन्य एव दृष्टः शिवः कमलजः प्रथितप्रभावः ।
अन्येषु देवि! भुवनेषु न सन्ति किं ते किं विद्म देवि! विततं तव सुप्रभावम् ॥
याचेऽम्ब तेऽङ्घ्रिकमलं प्रणिपत्य कामं चित्ते सदा वसतु रूपमिदं तवैतत् ।
नामापिवक्त्रकुहरे सततं तवैव संदर्शनं तव पदाम्बुजयोः सदैव ॥ ३७ ॥
भृत्योऽयमस्ति सततं मयि भावनीयं त्वां स्वामिनीति मनसा ननुचिन्तयामि
एषाऽऽवयोरविरता किल देवि ! भूयाद्व्याप्तिः सदैव जननीसुतयोरिवार्ये ॥
त्वं वेत्सि सर्वमखिलं भुवनप्रपञ्चं सर्वज्ञतापरिसमाप्तिनितान्तभूमिः ।
किम्पामरेण जगदम्ब! निवेदनीयं यद्युक्तमाचर भवानि! तवेङ्गितं स्यात् ॥३६॥
ब्रह्मा सृजत्यवति विष्णुरुमापतिश्च संहारकारक इयं तु जने प्रसिद्धः ।
किं सत्यमेतदपि देवि! तवेच्छया वै कर्तुं क्षमा वयमजे तव शक्तियुक्ताः ॥
धात्री धराधरसुतेन जगद्दु बिभर्ति आधारशक्तिरखिलं तव वै बिभर्ति ।
सूर्योऽपि भाति वरदे ! प्रभया युतस्ते त्वं सर्वमेतदखिलं विरजाविभासि ॥
ब्रह्माऽहमीश्वरवरः किल ते प्रभावात्सर्वे वयं जनियुता न यदा तु नित्याः ।
केऽन्येसुराः शतमखप्रमुखाश्च नित्या नित्या त्वमेव जननी प्रकृतिः पुराणा
त्वं चेद्भवानि दयसे पुरुषं पुराणं जानेऽहमद्य तव संनिधिगः सदैव ।
नोचेदहं विभुरनादिरनीह ईशो विश्वात्मधीरिति तमः प्रकृतिः सदैव ॥ ४३ ॥
विद्या त्वमेव ननु बुद्धिमतां नराणां शक्तिस्त्वमेव किल शक्तिमतां सदैव ॥
त्वं कीर्तिकान्तिकमलामलतुष्टिरूपा मुक्तिप्रदा विरतिरेव मनुष्यलोके ॥
गायत्र्यसि प्रथमवेदकला त्वमेव स्वाहा स्वधा भगवती सगुणाऽर्धमात्रा ।
आम्नाय एवविहितो निगमो भवत्या सञ्जीवनाय सततं सुरपूर्वजानाम् ॥
मोक्षार्थमेव रचयस्यखिलं प्रपञ्चं तेषां गताः खलु यतो ननु जीवभावम् ।

अंशा अनादिनिधनस्य किलाऽनघस्य पूर्णार्णवस्य वितता हि यथा तरङ्गाः॥
जीवो यदा तु परिवेत्ति तवैव कृत्यं त्वं संहरस्यखिलमेदिति प्रसिद्धम्।
नाट्यं नटेन रचितं वितथेऽन्तरङ्गे कार्ये कृते विरमसे प्रथितप्रभावा ॥ ४७ ॥
त्राता त्वमेव मम मोहमयाद्भवाब्धेस्त्वामम्बिके सततमेमि महार्तिदे च।
रागादिभिर्विरचिते वितथे किलान्ते मामेव पाहि बहुदुःखकरे च काले ॥
नमोदेविमहाविद्ये नमामि चरणौ तव। सदा ज्ञानप्रकाशं मे देहि सर्वार्थदे शिवे ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां तृतीयस्कन्धे विष्णुनाकृतंदेवीस्तोत्रंनामचतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पञ्चमोऽध्यायः

शिवकृतंदेवीस्तोत्रम्

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा विरते विष्णौ देवदेवे जनार्दने। उवाच शङ्करः शर्वः प्रणतः पुरतः स्थितः

शिव उवाच

यदि हरिस्तव देवि! विभावजस्तदनु पद्मज एव तवोद्भवः।
किमहमत्र तवाऽपि न सद्गुणः सकललोकविधौ च तुरा शिवे!
त्वमसि भूः सलिलं पवनस्तथा खमपिवह्निगुणश्च तथा पुनः।
जननि! तानि पुनः करणानि च त्वमसिबुद्धिमनोऽप्यथहंकृतिः॥३॥
न च विदन्ति वदन्ति च येऽन्यथा हरिहराजकृतं निखिलं जगत्।
तव कृताव्रय एव सदैव ते विरचयन्ति जगत्सचराचरम् ॥ ४ ॥
अवनिवायुखवह्निजलादिभिः स विषयैः सगुणैश्च जगद्भवेत्।
यदि तदा कथमद्य च तत्स्फुटं प्रभवतीति तवाम्ब कलासृते ॥ ५ ॥

भवसि सर्वमिदं सचराचरं त्वमजविष्णुशिवाकृतिकल्पितम् ।
विविधवेषविलासकुतूहलैर्विरमसे रमसेऽम्ब यथारुचि ॥ ६ ॥
सकललोकसिसृक्षुरहं हरिः कमलभूश्च भवाम यदाऽम्बिके ।
तव पदाम्बुजपांसुपरिग्रहं समधिगम्य तदा ननु चक्रिम ॥ ७ ॥
यदि दयार्द्रमना न सदाऽम्बिके कथमहं विहितश्च तमोगुणः ।
कमलजश्च रजोगुणसम्भवः सुविहितः किमु सत्त्वगुणो हरिः॥ ८ ॥
यदि न ते विषमा मतिरम्बिके कथमिदं बहुधा विहितं जगत् ।
सचिवभूपतिभृत्यजनावृतं बहुधनैरधनैश्च समाकुलम् ॥ ९ ॥
तव गुणास्त्रय एव सदा क्षमाः प्रकटनावनसंहरणेषु वै ।
हरिहरद्रुहिणाश्च क्रमास्त्वया विरचितास्त्रिजगतां किल कारणम् ॥
परिचितानि मया हरिणा तथा कमलजेन विमानगतेन वै ।
पथि गतैर्भुवनानि कृतानि वा कथय केन भवानि नवानि च ॥११॥
सृजसि पासि जगज्जगदम्बिके स्वकलया कियदिच्छसि नाशितुम् ।
रमयसे स्वपतिं पुरुषं सदा तव गतिं न हि विद्म वयं शिवे ! ॥१२॥
जननि ! देहि पदाम्बुजसेवनं युवतिभावगतानपि नः सदा ।
पुरुषतामधिगम्य पदाम्बुजाद्विरहिताः क्व लभेम सुखं स्फुटम् ॥१३॥
न रुचिरस्ति ममाम्ब पदाम्बुजं तव विहाय शिवे भुवनेष्वलम् ।
निवसितुं नरदेहमवाप्य च त्रिभुवनस्य पतित्वमवाप्य वै ॥ १४ ॥
सुदति! नास्ति मनागपि मे रतिर्युवतिभावमवाप्य तवाऽन्तिके ।
पुरुषता क्व सुखाय भवत्यलं तव पदं न यदीक्षणगोचरः ॥ १५ ॥
त्रिभुवनेषु भवत्वियमम्बिके मम सदैव हि कीर्तिरनाविला ।
युवतिभावमवाप्य पदाम्बुजं परिचितं तव संसृतिनाशनम् ॥१६॥
भुवि विहाय तवान्तिकसेवनं क इह वाञ्छति राज्यमकण्टकम् ।
त्रुटिरसौ किल याति युगात्मतां न निकटं यदि तेऽङ्घ्रिसरोरुहम् ॥

तपसि ये निरता मुनयोऽमलास्तव विहाय पदाम्बुजपूजनम् ।

जननि! ते विधिना किल वञ्चिताः परिभवो विभवे परिकल्पतः ॥

न तपसा न दमेन समाधिना न च तथा विहितैः क्रतुभिर्यथा ।

तव पदाब्जपरागनिषेवणाद्भवति मुक्तिरजे भवसागरात् ॥ १९ ॥

कुरु दयां दयसे यदि देवि ! मां कथय मन्त्रमनाविलमद्भुतम् ।

समभवं प्रजपन्सुखितो ह्यहं सुविशदं च नवार्णमनुत्तमम् ॥ २० ॥

प्रथमजन्मनि चाधिगतो मया तदधुना न विभाति नवाक्षरः ।

कथय मां मनुमद्य भवार्णवाज्जननि तारय तारय तारके !॥ २१ ॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्ता सा तदा देवी शिवेनाद्भुततेजसा । उच्चचाराम्बिका मन्त्रं प्रस्फुटं नवाक्षरम्
तं गृहीत्वा महादेवः परां मुदमवाप ह । प्रणम्य चरणौ देव्यास्तत्रैवाऽवस्थितः शिवः
जपन्नवाक्षरं मन्त्रं कामदं मोक्षदं तथा । बीजयुक्तं शुभोच्चारं शङ्करस्तस्थिवांस्तदा ॥
तं तथाऽवस्थितं दृष्ट्वा शङ्करं लोकशङ्करम् । अवोचंतांमहामायांसंस्थितोऽहंपदान्तिके ।

न वेदास्त्वामेवं कलयितुमिहासन्नपटवो

यतस्ते नोचुस्त्वां सकलजनधात्रीमविकलाम् ।

स्वाहाभूता देवी सकलमखहोमेषु विहिता

तदा त्वं सर्वज्ञा जननि ! खलु जाता त्रिभुवने ॥ २६ ॥

कर्ताऽहं प्रकरोमि सर्वमखिलं ब्रह्माण्डमत्यद्भुतम्

कोऽन्योऽस्तीह चराचरे त्रिभुवने मत्तः समर्थः पुमान् ।

धन्योऽस्म्यत्र न संशयः किलयदा ब्रह्माऽस्मिलोकातिगो

मग्नोऽहं भवसागरे प्रवितते गर्वाभिवेशादिति ॥ २७ ॥

अद्याऽहं तव पादपङ्कजपरागादानगर्वेण वै

धन्योऽस्मीति यथार्थवादनिपुणो जातः प्रसादाच्च ते ।

याचे त्वां भवभीतिनाशचतुरां मुक्तिप्रदां चेश्वरीं

हित्वा मोहकृतं महातिनिगडं त्वद्भक्तियुक्तं कुरु ॥ २८ ॥
अतोऽहं च जातो विमुक्तः कथं स्यां सरोजादमेयात्त्वदाविष्कृताद्वै ।
तवाऽऽज्ञाकरः किं करोऽमीति नूनं शिवे! पाहिमां मोहमग्नं भवाब्धौ ॥२९॥
न जानन्ति ये मानवास्ते वदन्ति प्रभुं मां तवाद्यं चरित्रं पवित्रम् ।
यजन्तीह ये याजकाः स्वर्गकामा न ते ते प्रभावं विदन्त्येव कामम् ॥ ३० ॥
त्वया निर्मितोऽहं विधित्वे विहारं विकर्तुं चतुर्धा विधायादिसर्गम् ।
अहं वेद्मि कोऽन्यो विवेदाऽऽदिमाये क्षमस्वाऽपराधं त्वहंकारजं मे ॥३१॥
श्रमं येऽष्टधा योगमार्गे प्रवृत्ताः प्रकुर्वन्ति मूढाः समाधौ स्थिता वै ।
न जानन्ति ते नाम मोक्षप्रदं वा समुच्चारितं जातु मातर्मिषेण ॥ ३२ ॥
विचारे परे तत्त्वसंख्याविधाने पदे मोहिता नाम ते संविहाय ।
न किं ते विमूढा भवाब्धौ भवानि! त्वमेवाऽसि संसारमुक्तिप्रदा वै ॥ ३३ ॥
परं तत्त्वविज्ञानमाद्यैर्जनैर्यैरजे चानुभूतं त्यजन्त्येव ते किम् ।
निमेषार्धमात्रं पवित्रं चरित्रं शिवा चाऽम्बिका शक्तिरीशेति नाम ॥ ३४ ॥
न किं त्वं समर्थोऽसि विश्वं विधातुं दृशैवाऽऽशु सर्वं चतुर्धा विभक्तम् ।
विनोदार्थमेवं विधिं मां विधायाऽऽदिसर्गे किलेदं करोषीति कामम् ॥३५॥
हरिः पालकः किं त्वयाऽसौ मधोर्वा तथा कैटभाद्रक्षितः सिन्धुमध्ये ।
हरः संहृतः किं त्वयाऽसौ न काले कथं मे भ्रुवोर्मध्यदेशात्स जातः ॥ ३६ ॥
न ते जन्म कुत्राऽपि दृष्टं श्रुतं वा कुतः सम्भवस्ते न कोऽपीह वेद ।
किलाद्याऽसि शक्तिस्त्वमेका भवानि स्वतन्त्रैः समस्तैरतो बोधिताऽसि ॥
त्वया संयुतोऽहं विकर्तुं समर्थो हरिस्त्रातुमम्ब त्वया संयुतश्च ।
हरः संप्रहर्तुं त्वयैवेह युक्तः क्षमा नाऽद्य सर्वे त्वया विप्रयुक्ताः ॥ ३८ ॥
यथाऽहं हरिः शङ्करः किं तथाऽन्ये न जाता न सन्तीह नो वा भविष्यन् ।
न मुह्यन्ति केऽस्मिंस्तवात्यंतचित्रे विनोदे विवादास्पदेऽल्पाशयानाम् ॥३९॥
अकर्ता गुणस्पृष्ट एवाऽऽद्यदेवो निरीहोऽनुपाधिः सदैवाकलश्च ।

तथाऽपीश्वरस्ते वितीर्णं विनोदं सुसम्पश्यतीत्याहुरेवं विधिज्ञाः ॥ ४० ॥

दृष्टादृष्टविभेदेऽस्मिन्प्राक्त्वत्तो वै पुमान्परः ।

नाऽन्यः कोऽपि तृतीयोऽस्ति प्रमेये सुविचारिते ॥ ४१ ॥

नमिथ्यावेदवाक्यं वै कल्पनीयं कदाचन । विरोधोऽयं मयाऽत्यन्तंहृदयेतु विशङ्कितः
एकमेवाद्वितीयं यद्ब्रह्मवेदा वदन्ति वै । सा किंत्वंवाप्यऽसौवाकिंसन्देहंविनिवर्तय
निःसंशयं न मे चेतः प्रभवत्यविशङ्कितम् । द्वित्वैकत्वविचारेऽस्मिन्निमग्नंक्षुल्लकंमनः
स्वमुखेनाऽपि सन्देहं छेत्तुमर्हसि मामकम् । पुण्ययोगाच्चमे प्राप्तासंगतिस्तवपादयोः

पुमानसि त्वं स्त्री वाऽसि वद विस्तरतो मम ।

ज्ञात्वाऽहं परमां शक्तिं मुक्तः स्यां भवसागरात् ॥ ४६ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां तृतीयस्कन्धे
हरब्रह्मकृतास्तुतिवर्णनंनामपञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

षष्ठोऽध्यायः

ब्रह्मणेश्रीदेव्याउपदेशः

ब्रह्मोवाच

इति पृष्टा मया देवी विनयावनतेन च । उवाच वचनंश्लक्ष्णमाद्या भगवती हि सा

देव्युवाच

सदैकत्वं न भेदोऽस्ति सर्वदैव ममास्य च ।

योऽसौ साऽहमहं योऽसौ भेदोऽस्ति मतिविभ्रमात् ॥ २ ॥

आवयोरन्तरं सूक्ष्मं यो वेदमतिमान्हि सः । विमुक्तःस तुसंसारान्मुच्यतेनात्रसंशयः
एकमेवाद्वितीयं वै ब्रह्मनित्यं सनातनम् । द्वैतभावं पुनर्याति काल उत्पित्सुसंज्ञके ॥
यथा दीपस्तथोपाधेर्योगात्संजायते द्विधा । छायेवादर्शमध्येवाप्रतिबिम्बंतथाऽऽवयोः

भेदउत्पत्तिकालेवै सर्गार्थंःप्रभवत्यजः । दृश्यादृश्यविभेदोऽयं द्वैविध्ये सति सर्वथा
नाहंस्त्री नपुमांश्चाहंनक्लीबं सर्गसंक्षये । सर्गे सति विभेदःस्यात्कल्पितोऽयंधियापुनः
अहंबुद्धिरहंश्रीश्चधृतिःकृतिःस्मृतिस्तथा । श्रद्धामेधादयालज्जाक्षुधा तृष्णातथा क्षमा

कान्तिः शान्तिः पिपासा च निद्रा तन्द्रा जराऽजरा ।
विद्याऽविद्या स्पृहा वाञ्छा शक्तिश्चाशक्तिरेव च ॥ ६ ॥

वसामज्जाचत्वक्चाहंदृष्टिर्वागनृतानृता । परामध्याचपश्यन्तीनाड्योऽहंविविधाश्चयाः
किंनाहंपश्यसंसारेमद्वियुक्तंकिमस्तिहि । सर्वमेवाऽहमित्येवं निश्चयं विद्धि पद्मज !॥
एतैर्मे निश्चितै रूपैर्विहीनं किं वदस्व मे । तस्मादहंविधेवास्मिन्सर्गेवैवितताऽभवम्
नूनं सर्वेषु देवेषु नानानामधराह्यहम् । भवामि शक्तिरूपेण करोमि च पराक्रमम् ॥

गौरी ब्राह्मी तथा रौद्री वाराही वैष्णवी शिवा ।
वारुणी चाथ कौबेरी नारसिंही च वासवी ॥ १४ ॥

उत्पन्नेषु समस्तेषुकार्येषुप्रविशामितान् । करोमिसर्वकार्याणि निमित्तं तं विधायवै
जलेशीतंतथा वह्नावौष्ण्यंज्योर्तिदिवाकरे । निशानाथेहिमाकामंप्रभवामि यथा तथा
मयात्यक्तंविधेनूनं स्पन्दितुंनक्षमं भवेत् । जीवजातं च संसारेनिश्चयोऽयंब्रुवेत्वयि
अशक्तःशङ्करोहन्तुं दैत्यान्किलमयोज्झितः । शक्तिहीनंनरं ब्रूते लोकश्चैवाति दुर्बलम्
रुद्रहीनं विष्णुहीनं न वदन्ति जनाः किल । शक्तिहीनं यथासर्वे प्रवदन्ति नराधमम्
पतितः स्खलितोभीतः शांतःशत्रुवशंगतः । अशक्तःप्रोच्यतेलोके नारुद्रःकोऽपिकथ्यते
तद्विद्धिकारणंशक्तिर्यंयात्वञ्चसिसृक्षसि । भविताचयदायुक्तःशक्त्याकर्तातदाऽखिलम्
तथा हरिस्तथाशम्भुस्तथेन्द्रोऽथविभावसुः । शशी सूर्यो यमस्त्वष्टावरुणःपवनस्तथा
धरास्थिरातदाधर्तुं शक्तियुक्तायदा भवेत् । अन्यथा चेदशक्ता स्यात्परमाणोश्चधारणे

तथा शेषस्तथा कूर्मो येऽन्ये सर्वे च दिग्गजाः ।
मद्युक्ता वै समर्थाश्च स्वानि कार्याणि साधितुम् ॥ २४ ॥

जलंपिबामिसकलंसंहरामिविभावसुम् । पवनंस्तम्भयाम्यद्ययदिच्छामितथाऽवसम्
तत्त्वानांचैवसर्वेषां कदाऽपि कमलोद्भव! । असतां भावसन्देहः कर्तव्यो न कदाचन॥

कदाचित्प्रागभावःस्यात्प्रध्वंसाभाववत्तथा । मृत्पिण्डेषुकपालेषुघटाभावो यथातथा
अथाऽत्र पृथिवीनास्ति क गतेतिविचारणे । सञ्जातादितिविज्ञेया अस्यास्तुपरमाणवः
शाश्वतंक्षणिकं शून्यं नित्यानित्यंसकर्तृकम् । अहंकाराग्रिमञ्चैव सप्तभेदैर्विवक्षितम्
गृहाणाज महत्तत्त्वमहंकारस्तदुद्भवः । ततः सर्वाणि भूतानि रचयस्व यथापुरा ॥

व्रजन्तु स्वानि धिष्ण्यानि विरच्यानि वसन्तु वः ।
स्वानि स्वानि च कार्याणि कुर्वन्तु दैवभाविताः ॥ ३१ ॥

गृहाणेमां विधे शक्तिं सुरूपांचारुहासिनीम् । महासरस्वतीनाम्नारजोगुणयुतांवराम्
श्वेताम्बरधरांदिव्यां दिव्यभूषणभूषिताम् । वरासनसमारूढां क्रीडार्थंसहचारिणीम्
एषासहचरीनित्यंभविष्यतिवराङ्गना । माऽवमंस्थाविभूतिं मे मत्वापूज्यतमांप्रियाम्
गच्छत्वमनयासार्धं सत्यलोकंवताशु वै । बीजाच्चतुर्विधं सर्वं समुत्पादय साम्प्रतम्

लिंगकोशाश्च जीवैस्तैः सहिताः कर्मभिस्तथा ।
वर्तन्ते संस्थिताः काले तान्कुरु त्वं यथापुरा ॥ ३६ ॥

कालकर्मस्वभावाख्यैः कारणैः सकलं जगत् । स्वभावस्वगुणैर्युक्तंपूर्ववत्सचराचरम्
माननीयस्त्वयाविष्णुः पूजनीयश्च सर्वदा । सत्त्वगुणप्रधानत्वादधिकःसर्वतःसदा ॥
यदा यदाहि कार्यस्वोभविष्यतिदुरत्यम् । करिष्यति पृथिव्यां वै अवतारं तदाहरिः
तिर्यग्योनावथान्यत्र मानुषीं तनुमाश्रितः । दानवानां विनाशञ्चै करिष्यतिजनार्दनः
भवोऽयं ते सहायश्च भविष्यतिमहाबलः । समुत्पाद्यसुरान्सर्वान्विहरस्व यथासुखम्
ब्राह्मणाःक्षत्रियावैश्यानानायज्ञैःसदक्षिणैः । यजिष्यन्तिविधानेनसर्वांवःसुसमाहिताः
मन्त्रामोच्चारणात्सर्वे मखेषु सकलेषु च । सदातृप्ताश्च सन्तुष्टा भविष्यध्वंसुराःकिल
शिवश्च माननीयोवै सर्वथा यत्तमोगुणः । यज्ञकार्येषु सर्वेषु पूजनीयः प्रयत्नतः ॥
यदापुनःसुराणाम्वै भयन्दैत्याद्भविष्यति । शक्तयो मे तदोत्पन्ना हरिष्यन्तिसुविग्रहाः
वाराहीवैष्णवीगौरी नारसिंहीसदाशिवा । एताश्चान्याश्चकार्याणिकुरुत्वंकमलोद्भव
नवाक्षरमिमं मन्त्रं बीजध्यानयुतं सदा । जपन्सर्वाणि कार्याणि कुरु त्वं कमलोद्भव
मन्त्राणामुत्तमोऽयं वै त्वं जानीहिमहामते । हृदये ते सदा धार्यः सर्वकामार्थसिद्धये

इत्युक्त्वा मां जगन्माता हरिं प्राह शुचिस्मिता ।
विष्णो व्रज गृहाणेमां महालक्ष्मीं मनोहराम् ॥ ४६ ॥
सदावक्षःस्थलेस्थाने भवितानात्र संशयः । क्रीडार्थं ते मयादत्ताशक्तिःसर्वार्थदाशिवा
त्वयेयंनावमन्तव्या माननीयाचसर्वदा । लक्ष्मीनारायणाख्योऽयंयोगोवैविहितोमया
जीवनार्थं कृता यज्ञा देवानां सर्वथा मया । अविरोधेन संगेन वर्तितव्यं त्रिभिः सदा
त्वंचवेधाःशिवस्त्वेतेदेवामद्गुणसम्भवाः । मान्याःपूज्याश्चसर्वेषां भविष्यतिनसंशयः
ये विभेदं करिष्यन्ति मानवाः मूढचेतसः । निरयन्ते गमिष्यन्ति विभेदान्नात्रसंशयः
यो हरिः स शिवः साक्षाद्यो शिवः स स्वयंहरिः । एतयोर्भेदमातिष्ठन्नरकाय भवेन्नरः
तथैव द्रुहिणोज्ञेयोनात्रकार्याविचारणा । अपरो गुणभेदोऽस्ति शृणुविष्णोब्रवीमिते
मुख्यः सत्त्वगुणस्तेऽस्तु परमात्मविचिन्तने ।
गौणत्वेऽपि परौ ख्यातौ रजोगुणतमोगुणौ ॥ ५७ ॥
लक्ष्म्यासह विकारेषु नानाभेदेषु सर्वदा । रजोगुणयुतोभूत्वा विहरस्वाऽनया सह ॥
वाग्बीजं कामराजञ्चमायाबीजंतृतीयकम् । मन्त्रोऽयं त्वं रमाकान्त मद्दत्तःपरमार्थदः
गृहीत्वा जप तं नित्यंविहरस्व यथासुखम् । न ते मृत्युभयंविष्णोनकालप्रभवंभयम्
यावदेष विहारो मे भविष्यति सुनिश्चयः । संहरिष्याम्यहंसर्वं यदा विश्वं चराचरम्
भवन्तोऽपितदानूनंमयिलीनाभविष्यथ । स्मर्तव्योऽयंसदामन्त्रःकामदोमोक्षदस्तथा
उद्गीथेन च संयुक्तः कर्तव्यः शुभमिच्छता । कारयित्वाऽथ वैकुण्ठंवस्तव्यंपुरुषोत्तम
विहरस्व यथाकामं चिन्तयन्मां सनातनीम् ।

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा वासुदेवं सा त्रिगुणा प्रकृतिः परा ॥ ६४ ॥
निर्गुणा शङ्करं देवमवोचदमृतं वचः ॥

देव्युवाच

गृहाण हर! गौरीं त्वं महाकालीं मनोहराम् ॥ ६५ ॥
कैलासं कारयित्वा च विहरस्व यथासुखम् ।

मुख्यस्तमोगुणस्तेऽस्तु गौणौ सत्त्वरजोगुणौ ॥ ६६ ॥
विहराऽसुरनाशार्थं रजोगुणतमोगुणौ । तपस्तप्तुं तथा कर्तुं स्मरणं परमात्मनः ॥
शर्वःसत्त्वगुणःशान्तोग्रहीतव्यःसदाऽनघ । सर्वथात्रिगुणायूयंसृष्टिस्थित्यन्तकारकाः
एभिर्विहीनं संसारेवस्तुनैवात्रकुत्रचित् । वस्तु मात्रंतु यद्दृश्यं संसारेत्रिगुणंहि तत्
दृश्यञ्च निर्गुणं लोके न भूतं नो भविष्यति । निर्गुणःपरमात्माऽसौनतुदृश्यःकदाचन
सगुणा निर्गुणाचाहं समये शङ्करोत्तमा । सदाऽहं कारणं शम्भो न च कार्यंकदाचन
सगुणाकारणत्वाद्वै निर्गुणा पुरुषान्तिके । महत्तत्त्वमहंकारो गुणाः शब्दादयस्तथा
कार्यकारणरूपेण संसरन्ते त्वहर्निशम् । सदुद्भूतस्त्वहंकारस्तेनाऽहं कारणं शिव॥
अहंकारश्चमेकार्यंत्रिगुणोऽसौप्रतिष्ठितः । अहंकारान्महत्तत्त्वं बुद्धिः सा परिकीर्तिता
महत्तत्त्वंहिकार्यंस्यादहंकारोहिकारणम् । तन्मात्राणि त्वहंकारादुत्पद्यन्ते सदैव हि
कारणम्पञ्चभूतानां तानि सर्वसमुद्भवे । कर्मेन्द्रियाणि पञ्चैव पञ्च ज्ञानेन्द्रियाणि च
महाभूतानि पञ्चैव मनःषोडशमेव च । कार्यञ्च कारणञ्चैव गणोऽयं षोडशात्मकः ॥
परमात्मापुमानाद्योन कार्यं न च कारणम् । एवं समुद्भवः शम्भो सर्वेषामादिसम्भवे
संक्षेपेण मया प्रोक्तस्तव तत्र समुद्भवः । व्रजन्त्वद्य विमानेन कार्यार्थं मम सत्तमाः॥
स्मरणाद्दर्शनंतुभ्यंदास्येऽहं विषमेस्थिते । स्मर्तव्याऽहं सदा देवाः परमात्मासनातन
उभयोः स्मरणादेव कार्यसिद्धिरसंशयम् ।

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा विससर्जाऽस्मान्दत्त्वा शक्तीः सुसंस्कृतान् ॥ ८१ ॥
विष्णवेऽथ महालक्ष्मीं महाकालीं शिवाय च ।
महासरस्वतीं मह्यं स्थानात्तस्माद्विसर्जिताः ॥ ८२ ॥
स्थलान्तरं समासाद्य ते जाताः पुरुषावयम् । चिन्तयन्तःस्वरूपंतत्प्रभावंपरमाद्भुतम्
विमानन्तत्समासाद्यसंरूढास्तत्रवैत्रयः । न द्वीपोऽसौनसादेवी सुधासिन्धुस्तथैवच
पुनर्दृष्टंविमानम्वै तत्रास्माभिर्नचाऽन्यथा ॥ ८४ ॥
आसाद्य तस्मिन्विततै विमाने प्राप्ता वयंपङ्कजसन्निधौ च ।

महार्णवे यत्र हतौ दुरत्ययौ सुरारिणा तौ मधुकैटभाख्यौ ॥ ८५ ॥
इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां तृतीयस्कन्धे
ब्रह्मणेश्रीदेव्याउपदेशवर्णनंनामषष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सप्तमोऽध्यायः

तत्त्वनिरूपणम्

ब्रह्मोवाच

एवंप्रभावासादेवीमयादृष्टाऽथविष्णुना । शिवेनापिमहाभाग तास्तादेव्यःपृथक्पृथक्

व्यास उवाच

इत्याकर्ण्य पितुर्वाक्यंनारदो मुनिसत्तमः । पप्रच्छ परमप्रीतः प्रजापतिमिदं वचः ॥

नारद उवाच

पुमानाद्योऽविनाशीयोनिर्गुणोऽच्युतिरव्ययः । दृष्टश्चैवानुभूतश्च तद्वदस्व पितामह ॥
त्रिगुणावीक्षिताशक्तिर्निर्गुणाकीदृशीपितः । तस्याःस्वरूपं मे ब्रूहि पुरुषस्यच पद्मज॥
यदर्थंश्रमयातप्तं श्वेतद्वीपे महातपः । दृष्टाः सिद्धा महात्मानस्तापसा गतमन्यवः ॥
परमात्मा न मयाप्राप्तो मयाऽसौदृष्टिगोचरः । पुनःपुनस्तपस्तीव्रं कृतंतत्र प्रजापते॥
भवता सगुणाशक्तिर्दृष्टा तात! मनोरमा । निर्गुणा निर्गुणश्चैव कीदृशौ तौ वदस्व मे

व्यास उवाच

इति पृष्टः पिता तेन नारदेन प्रजापतिः । उवाच वचनन्तथ्यं स्मितपूर्वं पितामहः॥८॥

ब्रह्मोवाच

निर्गुणस्य मुने रूपं न भवेद्दृष्टिगोचरम् । दृश्यञ्च नश्वरं यस्मादरूपं दृश्यते कथम् ॥
निर्गुणा दुर्गमा शक्तिर्निर्गुणश्च तथापुमान् । ज्ञानगम्यौ मुनीनांतुभावनीयौतथा पुनः
अनादिनिधनौ विद्धि सदा प्रकृतिपूरुषौ ।

विश्वासेनाऽभिगम्यौ तौ नाऽविश्वासे न कर्हिचित् ॥ ११ ॥
चैतन्यं सर्वभूतेषु यत्तद्विद्धि परात्मकम् । तेजः सर्वत्रगं नित्यं नानाभावेषु नारद ॥
तंचतांचमहाभागव्यापकौविद्धि सर्वगौ । ताभ्यांविहीनंसंसारे न किञ्चिद्वस्तुविद्यते
तौ विचिन्त्यौ सदा देहे मिश्रीभूतौ सदाऽव्ययौ ।
एकरूपौ चिदात्मानौ निर्गुणौ निर्मलावुभौ ॥ १४ ॥
याशक्तिःपरमात्माऽसौ योऽसौसापरमामता । अन्तरंनैतयोःकोऽपिसूक्ष्मंवेदचनारद
अधीत्यसर्वशास्त्राणिवेदान्साङ्गांश्च नारद । न जानातितयोः सूक्ष्ममन्तरंविरतिंविना
अहंकारकृतं सर्वं विश्वं स्थावरजङ्गमम् । कथं तद्रहितं पुत्र! भवेत्कल्पशतैरपि ॥१७॥
निर्गुणं सगुणः पुत्र कथम्पश्यति चक्षुषा । सगुणश्च महाबुद्धे चेतसा सम्विचारय ॥
पित्तेनाच्छादिता जिह्वा चक्षुश्च मुनिसत्तम । कटुपित्तंविजानाति रसं रूपं न तत्तथा
गुणैः समावृतं चेतः कथं जानाति निर्गुणम् । अहंकारोद्भवंतच्च तद्विहीनं कथं भवेत्
यावन्न गुणविच्छेदस्तावत्तद्दर्शनं कुतः । तं पश्यति तदा चित्ते यदाऽहंकारवर्जितः॥

नारद उवाच

स्वरूपंदेवदेवेश त्रयाणामेवविस्तरात् । गुणानां यत्स्वरूपोऽस्तिह्यहंकारस्त्रिरूपकः
सात्त्विकोराजसश्चैव तामसश्च तथाऽपरः । विभेदेन स्वरूपाणि वदस्व पुरुषोत्तम ॥
यज्ज्ञात्वा विप्रमुच्येऽहं ज्ञानं तद्वदमे प्रभो । गुणानांलक्षणान्येव विततानिविभागशः

ब्रह्मोवाच

त्रयाणां शक्तयस्तिस्रस्तद्ब्रवीमि तवानघ । ज्ञानशक्तिःक्रियाशक्तिरर्थशक्तिस्तथाऽपरा
सात्त्विकस्य ज्ञानशक्ती राजसस्य क्रियात्मिका ।
द्रव्यशक्तिस्तामसस्य तिस्रश्च कथितास्तव ॥ २६ ॥
तेषां कार्याणि वक्ष्यामि श्रृणुनारदतत्त्वतः । तामस्या द्रव्यशक्तेश्च शब्दस्पर्शसमुद्भवः
रूपं रसश्च गन्धश्च तन्मात्राणि प्रचक्षते । शब्दैकगुणमाकाशं वायुः स्पर्शगुणस्तथा
सुरूपकगुणोऽग्निश्चजलंरसगुणात्मकम् । पृथ्वी गन्धगुणाज्ञेया सूक्ष्माण्येतानिनारद
दशैतानि मिलित्वा तु द्रव्यशक्तियुतानिवै । तामसाहंकारजःस्यात्सर्गस्तद्नुवृत्तिकः

राजस्याश्च क्रियाशक्तेरुत्पन्नानि शृणुष्वमे । श्रोत्रं त्वग्रसनाचक्षुर्घ्राणञ्चैव च पञ्चमम्
ज्ञानेन्द्रियाणिचैतानितथाकर्मेन्द्रियाणिच । वाक्पाणिपादपायुश्चगुह्यान्तानिचपञ्चवै
प्राणोऽपानश्चव्यानश्च समानोदानवायवः । पञ्चदश मिलित्वैव राजसः सर्ग उच्यते
साधनानि किलैतानि क्रियाशक्तिमयानि च । उपादानं किलैतेषां चिदनुवृत्तिरुच्यते
ज्ञानशक्तिसमायुक्ताःसात्त्विकाश्च समुद्भवाः । दिशो वायुश्चसूर्यश्चवरुणश्चाश्विनावपि
ज्ञानेन्द्रियाणां पञ्चानांपञ्चाधिष्ठातृदेवताः । चन्द्रो ब्रह्मा तथा रुद्रः क्षेत्रज्ञश्चचतुर्थकः॥
इत्यन्तःकरणाख्यस्यबुद्ध्यादेश्चाधिदैवतम् । चत्वार्येवतथाप्रोक्ताःकिलाधिष्ठातृदेवताः
मनसा सह चैतानि नूनंपञ्चदशैवतु । सात्त्विकस्यतुसर्गोऽयंसात्त्विकाख्यःप्रकीर्तितः
स्थूलसूक्ष्मादिभेदेन द्वे रूपे परमात्मनः । ज्ञानरूपं निराकारं निदानं तत्प्रचक्षते ॥
साधकस्य तु ध्यानादौ स्थूलरूपं प्रचक्षते । शरीरं सूक्ष्ममेवेदं पुरुषस्य प्रकीर्तितम् ॥
ममचैव शरीरं वै सूत्रमित्यभिधीयते । स्थूलं शरीरं वक्ष्यामि ब्रह्मणः परमात्मनः ॥
शृणुनारद यत्नेन यच्छ्रुत्वाविप्रमुच्यते । तन्मात्राणिपुरोक्तानिभूतसूक्ष्माणियानिवै
पञ्चीकृत्य तु तान्येव पञ्चभूतसमुद्भवः । पञ्चीकरणभेदोऽयं शृणु संवदतः किल ॥
प्रथमं रसतन्मात्रामुपादाय मनस्यपि । कल्पयेच्च तथा तद्वै यथा भवति चोदकम्
शिष्टानां चैव भूतानामंशान्कृत्वा पृथक्पृथक् । उदके मिश्रयेच्चांशान्कृते रसमयेततः
तदा भूतविभागे च चैतन्ये च प्रकाशिते । चैतन्यस्य प्रवेशाच्चतदाऽहमिति संशयः ॥
प्रतीयमाने तेनैव विशेषेणाऽभिमानतः । आदिनारायणो देवो भगवानिति चोच्यते
घनीभूतेऽथ भूतानां विभागे स्पष्टतां गते । वृद्धिं प्राप्यगुणैश्चेत्थमेकैकगुणवृद्धितः
आकाशस्य गुणश्चैकः शब्दएव न चापरः । शब्दस्पर्शौचवायोश्चद्वौगुणौपरिकीर्तितौ
अग्नेः शब्दश्च स्पर्शश्च रूपमेते त्रयो गुणाः । शब्दस्पर्शरूपरसाश्चत्वारो वै जलस्यच
स्पर्शशब्दरसारूपं गन्धश्च पृथिवीगुणाः । एवं मिलितयोगैश्च ब्रह्माण्डोत्पत्तिरुच्यते
सर्वे जीवा मिलित्वैव ब्रह्माण्डांशसमुद्भवाः । चतुरशीतिलक्षाश्च प्रोक्तावैजीवजातयः

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां तृतीयस्कन्धे
तत्त्वनिरूपणवर्णनंनाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अष्टमोऽध्यायः

गुणानांरूपसंस्थानादिवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

सर्गोऽयंकथितस्तातयत्पृष्टोऽहंत्वयाऽधुना। गुणानांरूपसंस्थाञ्शृणुष्वैकाग्रमानसः
सत्त्वंप्रीत्यात्मकंज्ञेयं सुखात्प्रीतिसमुद्भवः। आर्जवंचतथासत्यंशौचंश्रद्धा क्षमाधृतिः

अनुकम्पा तथा लज्जा शान्तिः सन्तोष एव च।
एतैः सत्त्वप्रतीतिश्च जायते निश्चला सदा॥ ३॥

श्वेतवर्णं तथा सत्त्वं धर्मप्रीतिकरंसदा। सच्छ्रद्धोत्पादकंनित्यमसच्छ्रद्धा निवारकम्

सात्त्विकी राजसी चैव तामसी च तथाऽपरा।
श्रद्धा तु त्रिविधा प्रोक्ता मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः॥ ५॥

रक्तवर्णं रजः प्रोक्तमप्रीतिकरमद्भुतम्। अप्रीतिर्दुःखयोगत्वाद्भवत्येव सुनिश्चिता॥६॥
प्रद्वेषोऽथ तथा द्रोहोमत्सरःस्तम्भएवच। उत्कण्ठाचतथानिद्रा श्रद्धा तत्रच राजसी
मानो मदस्तथा गर्वो राजसःकिलजायते। प्रत्येतव्यं रजस्त्वेतैर्लक्षणैश्च विचक्षणैः
कृष्णवर्णं तमः प्रोक्तं मोहनञ्च विषादकृत्। आलस्यञ्च तथाऽज्ञानं निद्रादैन्यंभयंतथा
विवादश्चैव कार्पण्यं कौटिल्यं रोषएव च। वैषम्यंचाऽतिनास्तिक्यंपरदोषानुदर्शनम्
प्रत्येतव्यं तमस्त्वेतैर्लक्षणैः सर्वथा बुधैः। तामस्या श्रद्धया युक्तं परस्तापोपपादकम्
सत्त्वं प्रकाशयितव्यं नियन्तव्यं रजःसदा। संहर्तव्यं तमः कामं जनेन शुभमिच्छता

अन्योन्याभिभवाच्चैते विरुध्यन्ति परस्परम्।
तथाऽन्योन्याश्रयाः सर्वे न तिष्ठन्ति निराश्रयाः॥ १३॥

सत्त्वंनकेवलंक्कापिनरजोनतमस्तथा। मिलिताश्चसदासर्वे तेनाऽन्योन्याश्रयाःस्मृताः
अन्योन्यमिथुनाश्चैवविस्तारंकथयाम्यहम्। शृणुनारदयज्ज्ञात्वामुच्यते भवबन्धनात्

सन्देहोऽत्र न कर्तव्यो ज्ञात्वेत्युक्तं मया वचः।

ज्ञातं तदनुभूतं यत्परिज्ञातं फले सति ॥ १६ ॥
श्रवणाद्दर्शनाच्चैव सपद्येव महामते । संस्कारानुभवाच्चैव परिज्ञातं न जायते ॥१७
श्रुतं तीर्थम्पवित्रञ्च श्रद्धोत्पन्ना च राजसी । निर्गतस्तत्र तीर्थे वै दृष्टंचैव यथाश्रुतम्
स्नातस्तत्र कृतंकृत्यं दत्तं दानञ्च राजसम् । स्थितस्तत्र कियत्कालं रजोगुणसमावृतः
रागद्वेषान्न निर्मुक्तःकामक्रोधसमावृतः । पुनरेव गृहं प्राप्तो यथा पूर्वं तथा स्थितः ॥
श्रुतञ्च नानुभूतम्वै तेन तीर्थं मुनीश्वर । न प्राप्तं च फलं यस्मादश्रुतं विद्धि नारद ॥
निष्पापत्वंफलंविद्धितीर्थस्यमुनिसत्तमः । कृषेःफलं यथा लोकेनिष्पन्नान्नस्यभक्षणम्
पापदेहविकारा ये कामक्रोधादयःपरे । लोभो मोहस्तथा तृष्णा द्वेषोरागस्तथामदः
असूयेर्ष्याऽक्षमाऽशान्तिःपापन्येतानिनारद । न निर्गतानिदेहात्तु तावत्पापयुतोनरः ॥
कृते तीर्थे यदैतानि देहान्न निर्गतानि चेत् । निष्फलःश्रम एवैकः कर्षकस्ययथा तथा
श्रमेणपीडितंक्षेत्रं कृष्टाः भूमिः सुदुर्घटा । उप्तं बीजं महार्घञ्च हिता वृत्तिरुदाहृता ॥
अहोरात्रंपरिक्लिष्टो रक्षणार्थम्फलोत्सुकः । कालेसुप्तस्तुहेमन्ते वनेव्याघ्रादिभिर्भृशम्
भक्षितं शलभैः सर्वं निराशश्च कृतः पुनः । तद्वत्तीर्थश्रमः पुत्र कष्टदो न फलप्रदः ॥२८
सत्त्वं समुत्कटं जातं प्रवृद्धं शास्त्रदर्शनात् । वैराग्यं तत्फलं जातं तामसार्थेषु नारद
प्रसह्याभिभवत्येव तद्रजस्तमसी उभे । रजः समुत्कटं जातं प्रवृत्तं लोभयोगतः ॥३०
तत्तथाऽभिभवत्येव तमःसत्त्वे तथा उभे । तमस्तयोत्कटं भूत्वा प्रवृद्धं मोहयोगतः॥
तत्सत्त्वरजसीचोभे संगम्याभिभवत्यपि । विस्तरं कथयाम्यद्य यथाऽभिभवतीतिवै
यदा सत्त्वं प्रवृद्धं वै मतिर्धर्मे स्थितातदा । न चिन्तयति बाह्यार्थं रजस्तमःसमुद्भवम्
अर्थसत्त्वसमुद्भूतं गृह्णाति चनचान्यथा । अनायासकृतञ्चार्थं धर्मं यज्ञञ्च वाञ्छति ॥
सात्त्विकेष्वेव भोगेषु कामं वै कुरुते तदा । राजसेषु न मोक्षार्थी तामसेषुपुनः कुतः
एवं जित्वारजः पूर्वं ततश्च तमसोजयः । सत्त्वं च केवलं पुत्र तदा भवति निर्मलम्
यदा रजःप्रवृद्धंवैत्यजत्वाधर्मान्सनातनान् । अन्यथाकुरुतेधर्मान्श्रद्धांप्राप्यतुराजसीम्
राजसादर्थसम्वृद्धिस्तथा भोगस्तु राजसः । सत्त्वं विनिर्गतं तेन तमसश्चापिनिग्रहः
यदा तमो विवृद्धं स्यादुत्कटं सम्बभूव ह । तदा वेदे न विश्वासोधर्मशास्त्रे तथैव च

श्रद्धां च तामसीं प्राप्य करोतिच धनात्ययम् । द्रोहंसर्वत्रकुरुतेनशान्तिमधिगच्छति
जित्वा सत्त्वं रजश्चैव क्रोधनो दुर्मतिः शठः । वर्तते कामचारेण भावेषु विततेषु च
एकं सत्त्वं न भवति रजश्चैकं तमस्तथा । सहैवाश्रित्य वर्तन्ते गुणा मिथुनधर्मिणः
रजोविना न सत्त्वं स्याद्रजः सत्त्वं विना क्वचित् । तमोविनानचैवैतेवर्तन्ते पुरुषर्षभ
तमस्ताभ्यां विहीनं तु केवलं न कदाचन । सर्वेमिथुनधर्माणो गुणाःकार्यान्तरेषु वै
अन्योन्यसंश्रिताः सर्वेतिष्ठन्ति नवियोजिताः । अन्योन्यजनकाश्चैवयतःप्रसवधर्मिणः
सत्त्वं कदाचिच्च रजस्तमसी जनयत्युत । कदाचित्तु रजः सत्त्वतमसी जनयत्यपि॥
कदाचित्तु तमः सत्त्वरजसी जनयत्युभे । जनयन्त्येवमन्योन्यं मृत्पिण्डश्च घटं यथा
बुद्धिस्थास्ते गुणाः कामान्बोधयन्ति परस्परम् । देवदत्तविष्णुमित्रयज्ञदत्तादयोयथा
यथा स्त्री पुरुषश्चैव मिथुनौ च परस्परम् । तथागुणाःसमायान्तियुग्मभावंपरस्परम्
रजसो मिथुने सत्त्वं सत्त्वस्यमिथुने रजः । उभे ते सत्त्वरजसी तमसो मिथुने विदुः

नारद उवाच

इत्येतत्कथितंपित्रा गुणरूपमनुत्तमम् । श्रुत्वाऽप्येतत्सएवाहं ततोऽपृच्छं पितामहम्

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायांप्रथमस्कन्धे
गुणानांरूपसंस्थानादिवर्णनंनामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

नवमोऽध्यायः

पुनरपिगुणानांलक्षणमधिकृत्यनारदप्रश्नः

नारद उवाच

गुणानां लक्षणं तात ! भवता कथितं किल ।
न तृप्तोऽस्मि पिबन्मिष्टं त्वन्मुखात्प्रच्युतं रसम् ॥ १ ॥
गुणानां तु परिज्ञानं यथावदनुवर्णय । येनाऽहं परमां शान्तिमधिगच्छामिचेतसी ॥

व्यास उवाच

इतिपृष्टस्तु पुत्रेण नारदेन महात्मना । उवाच च जगत्कर्ता रजोगुणसमुद्भवः ॥ ३ ॥

ब्रह्मोवाच

श्रृणुनारद वक्ष्यामि गुणानां परिवर्णनम् । सम्यङ् नाहंविजानामियथामतिवदामिते
सत्त्वं तु केवलं नैव कुत्राऽपि परिलक्ष्यते । मिश्रीभावात्तुतेषांवैमिश्रत्वंप्रतिभातिवै
यथा काचिद्वरा नारी सर्वभूषणभूषिता । हावभावयुताकामं भर्तुःप्रीतिकरी भवेत्
मातापित्रोस्तथा सैव बन्धुवर्गस्य प्रीतिदा । दुःखं मोहं सपत्नीषुजनयत्यपिसैव हि
एवं सत्त्वेन तेनैव स्त्रीत्वमापादितेन च । रजसस्तमसश्चैव जनितावृत्तिरन्यथा॥
रजसा स्त्रीकृतेनैव तमसा च तथा पुनः । अन्योन्यस्यसमायोगादन्यथाप्रतिभाति वै
अवस्थानात्स्वभावेषुनवैजात्यन्तराणि च । लक्ष्यन्तेविपरीतानियोगान्नारदकुत्रचित्
यथा रूपवती नारी यौवनेन विभूषिता । लज्जामाधुर्ययुक्ता च तथा विनयसंयुता ॥
कामशास्त्रविभिज्ञा च धर्मशास्त्रेऽपिसम्मता । भर्तुःप्रीतिकरीभूत्वासपत्नीनांचदुःखदा
मोहदुःखस्वभावत्वात्सत्त्वस्थेत्युच्यते जनैः । तथासत्त्वंविकुर्वाणमन्यभावंविभातिवै
चौरैरुपद्रुतानां हि साधूनां सुखदा भवेत् । दुःखामूढाचदस्यूनां सैव सेना तथागुणा
विपरीतप्रतीतिं वै जनयन्ति स्वभावतः । यथा च दुर्दिनं जातं महामेघघनावृतम् ॥
विद्युत्स्तनितसंयुक्तं तिमिरेणावगुण्ठितम् । सिंचद्भूमिं प्रवर्षद्वै तमोरूपमुदाहृतम् ॥
यदेतत्कर्षकाणाम्वै तदेवाऽतीव दुर्दिनम् । बीजोपस्करयुक्तानां सुखदम्प्रभवत्युत ॥
अप्रच्छन्नगृहाणाञ्च दुर्भगानां विशेषतः । तृणकाष्ठगृहीतानां दुःखदं गृहमेधिनाम् ॥
प्रोषितभर्तृकाणाम्वै मोहदं प्रवदन्त्यपि । स्वभावस्थागुणाःसर्वे विपरीताविभातिवै
लक्षणानि पुनस्तेषां श्रृणु पुत्र ब्रवीम्यहम् । लघुप्रकाशकं सत्त्वं निर्मलं विषदम्सदा
यदांऽगानि लघून्येव नेत्रादीनीन्द्रियाणि च । निर्मलञ्चतथाचेतोगृह्णातिविषयाञ्चवान्
तदासत्त्वंशरीरेवै मन्तव्यञ्च समुत्कटम् । जृम्भांस्तम्भं च तन्द्राञ्च चलञ्चैव रजःपुनः
यदा तदुत्कटं जातं देहे यस्य च कस्यचित् ।
कलिं सृजयते कर्तुं गन्तुं ग्रामान्तरं तथा ॥ २३ ॥

चलचित्तश्च सोऽत्यर्थं विवादे चोद्यतस्तथा। गुरुमावरणं कामं तमोभवति तदा ॥
तदाऽङ्गानि गुरूण्याशुप्रभवन्त्यावृतानिच। इन्द्रियाणिमनःशून्यंनिद्रांनैवाभिवाञ्छति
गुणानां लक्षणान्येव विज्ञेयानीह नारद ! ।

नारद उवाच

विभिन्नलक्षणाः प्रोक्ताः पितामह! गुणास्त्रयः ॥ २६ ॥
कथमेकत्रसंस्थानेकार्यंकुर्वन्तिशाश्वतम्। परस्परं मिलित्वाहि विभिन्नाःशत्रवःकिल
एकत्रस्थाः कथं कार्यं कुर्वंतीति वदस्व मे।

ब्रह्मोवाच

श्रृणु पुत्र ! प्रवक्ष्यामि गुणास्ते दीपवृत्तयः ॥ २८ ॥
प्रदीपश्च यथाकार्यंप्रकरोत्यर्थदर्शनम्। वर्तिस्तैलं यथाऽर्चिश्च विरुद्धाश्च परस्परम् ॥
विरुद्धं हि तथा तैलमग्निना सह संगतम्। तैलं वर्तिविरोध्येव पावकोपि परस्परम्
एकत्रस्थाः पदार्थानां प्रकुर्वन्ति प्रदर्शनम्।

नारद उवाच

एवं प्रकृतिजाः प्रोक्ता गुणाः सत्यवतीसुत ! ॥ ३१ ॥
विश्वस्य कारणं ते वै मया पूर्वं यथाश्रुतम्।

व्यास उवाच

इत्युक्तं नारदेनाऽथ मम सर्वं सविस्तरम् ॥ ३२ ॥
गुणानां लक्षणं सर्वं कार्यं चैव विभागशः। आराध्या परमाशक्तिर्ययासर्वमिदंततम्
सगुणा निर्गुणा चैव कार्यभेदे सदैव हि। अकर्ता पुरुषःपूर्णो निरीहः परमोऽव्ययः
करोत्येषा महामायाविश्वंसदसदात्मकम्। ब्रह्माविष्णुस्तथारुद्रःसूर्यश्चन्द्रःशचीपतिः
अश्विनौ वसवस्त्वष्टाकुबेरो यादसाम्पतिः। वह्निर्वायुस्तथापूषासेनानीश्चविनायकः
सर्वे शक्तियुताः शक्ताः कर्तुं कार्याणि स्वानि च।
अन्यथा तेऽप्यशक्ता वै प्रस्पन्दितुमनीश्वराः ॥ ३७ ॥
सा चैवकारणं राजञ्जगतः परमेश्वरी। समाराधय तां भूप कुरु यज्ञं जनाधिप !॥

पूजनं परया भक्त्या तस्या एव विधानतः । महालक्ष्मीर्महाकालीतथामहासरस्वती
ईश्वरी सर्वभूतानां सर्वकारणकारणम् । सर्वकामार्थदा शान्ता सुखसेव्यादयान्विता
नामोच्चारणमात्रेण वाञ्छितार्थफलप्रदा । देवैराराधिता पूर्वं ब्रह्मविष्णुमहेश्वरैः ॥
मोक्षकामैश्च विविधैस्तापसैर्विजितात्मभिः ।
अस्पष्टमपि यन्नाम प्रसङ्गेनाऽपि भाषितम् ॥ ४२ ॥
ददाति वाञ्छितानर्थान्दुर्लभानपि सर्वथा । ऐऐ इति भयार्तेन दृष्ट्वाव्याघ्रादिकं वने
बिन्दुहीनमपीत्युक्तं वाञ्छितं प्रददाति वै । तत्र सत्यव्रतस्यैव दृष्टान्तो नृपसत्तम
प्रत्यक्ष एव चास्माकंमुनीनांभावितात्मनाम् । ब्राह्मणानांसमाजेषुतस्योदाहरणंबुधैः
कथ्यमानं मया राजञ्छ्रुतं सर्वं सविस्तरम् । अनक्षरोमहामूर्खोनाम्नासत्यव्रतोद्विजः
श्रुत्वाऽक्षरं कोलमुखात्समुच्चार्यस्वयंततः । बिन्दुहीनंप्रसङ्गेन जातोऽसौविबुधोत्तमः
ऐकारोच्चारणाद्देवी तुष्टा भगवती तदा । चकार कविराजं तं दयार्द्रा परमेश्वरी ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां तृतीयस्कन्धे
गुणपरिज्ञानवर्णनंनामनवमोऽध्यायः ॥ ६ ॥

दशमोऽध्यायः

सत्यव्रताख्यानवर्णनम्

जनमेजय उवाच

कोऽसौ सत्यव्रतो नामब्राह्मणो द्विजसत्तमः । कस्मिन्देशेसमुत्पन्नःकीदृशश्चवदस्वमे
कथं तेन श्रुतःशब्दःकथमुच्चारितःपुनः । सिद्धिश्चकीदृशीजातातस्यविप्रस्यतत्क्षणात्
कथं तुष्टा भवानी सा सर्वज्ञासर्वसंस्थिता । विस्तरेणब्रहत्वायकथामेतांमनोरमाम्

सूत उवाच

इतिपृष्टस्तदा राज्ञा व्यासः सत्यवतीसुतः । उवाच परमोदारं वचनं रसवच्छुचि ॥

व्यास उवाच

शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि कथां पौराणिकीं शुभाम् । श्रुतामुनिसमाजेषुमयापूर्वं कुरूद्वह
एकदाऽहं कुरुश्रेष्ठ कुर्वंस्तीर्थाटनं शुचि । सम्प्राप्तो नैमिषारण्यं पावनं मुनिसेवितम्
प्रणम्याहं मुनीन्सर्वान्स्थितस्तत्रवराश्रमे । विधिपुत्रास्तुयत्रासञ्जीवन्मुक्तामहाव्रताः
कथाप्रसङ्ग एवाऽऽसीत्तत्र विप्रसमागमे । जमदग्निस्तु पप्रच्छ मुनीनेवं समास्थितः

जमदग्निरुवाच

सन्देहोऽस्ति महाभागाममचेतसितापसाः । समाजेषु मुनीनांवैनिःसन्देहोभवाम्यहम्
ब्रह्माविष्णुस्तथा रुद्रो मघवा वरुणोऽनलः । कुबेरःपवनस्त्वष्टासेनानीश्च गणाधिपः
सूर्योऽश्विनौ भगः पूषा निशानाथो ग्रहास्तथा ।
आराधनीयतमः कोऽत्र वाञ्छितार्थफलप्रदः ॥ ११ ॥
सुखसेव्यश्च सततं चाऽऽशुतोषश्च मानदाः । ब्रुवन्तुमुनयः शीघ्रं सर्वज्ञाः संशितव्रताः
एवं प्रश्ने कृते तत्र लोमशो वाक्यमब्रवीत् । जमदग्नेशृणुष्वैतद्यत्पृष्टं वै त्वयाऽधुना
सेवनीयतमा शक्तिः सर्वेषांशुभमिच्छताम् । परा प्रकृतिराद्या च सर्वगा सर्वदाशिवा
देवानां जननी सैव ब्रह्मादीनांमहात्मनाम् । आदिप्रकृतिर्मूलं सा संसारपादपस्य वै
स्मृता चोच्चारिता देवी ददाति किल वाञ्छितम् ।
सर्वदैवाऽऽर्द्रचित्ता सा वरदानाय सेविता ॥ १६ ॥
इतिहासम्प्रवक्ष्यामि शृण्वन्तुमुनयः शुभम् । अक्षरोच्चारणादेवयथाप्राप्तं द्विजेन वै ॥
कोसलेषु द्विजः कश्चिद्देवदत्तेति विश्रुतः । अनपत्यश्चकारेष्टिं पुत्राय विधिपूर्वकम् ॥
तमसातीरमाश्रित्य कृत्वा मण्डपमुत्तमम् । द्विजानाहूय वेदज्ञान्सत्रकर्मविशारदान् ॥
कृत्वावेदिं विधानेन स्थापयित्वाविभावसून् । पुत्रेष्टिं विधिवत्तत्र चकार द्विजसत्तमः
ब्रह्माणं कल्पयामास सुहोत्रंमुनिसत्तमम् । अध्वर्युं याज्ञवल्क्यञ्चहोतारञ्चबृहस्पतिम्
प्रस्तोतारन्तथापैलमुद्गातारंचगोभिलम् । सभ्यानन्यान्मुनीन्कृत्वा विधिवत्प्रददौवसु
उद्गातासामगः श्रेष्ठः सप्तस्वरसमन्वितम् । रथन्तरमगायत्तु स्वरितेन समन्वितम् ॥
तदाऽस्य स्वरभङ्गोऽभूत्कृते श्वासेमुहुर्मुहुः । देवदत्तश्चुकोपाऽऽशुगोभिलंप्रत्युवाचह

मूर्खोऽसिमुनिमुख्याद्य स्वरभंगस्त्वयाकृतः । काम्यकर्मणिसञ्जातेपुत्रार्थयजतश्च मे ॥
गोभिलस्तु तदोवाच देवदत्तं सुकोपितः । मूर्खस्ते भवितापुत्रः शठः शब्दविवर्जितः
सर्वप्राणिशरीरेतु श्वासोच्छ्वासः सुदुर्ग्रहः । न मेऽत्र दूषणंकिञ्चित्स्वरभंगे महामते
तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य गोभिलस्यमहात्मनः । शापाद्भीतोदेवदत्तस्तमुवाचातिदुःखितः
कथं क्रुद्धोऽसिविप्रेन्द्रवृथामयिनिरागसि । अक्रोधना हि मुनयोभवन्तिसुखदाः सदा
स्वल्पेऽपराधेविप्रेन्द्र कथंशप्तस्त्वयाह्यहम् । अपुत्रोऽहं सुतप्तः प्राक्तापयुक्तः पुनःकृतः
मूर्खपुत्रादपुत्रत्वं वरं वेदविदो विदुः । तथाऽपि ब्राह्मणो मूर्खः सर्वेषां निन्द्य एव हि
पशुवच्छूद्रवच्चैव न योग्यः सर्वकर्मसु । किं करोमीह मूर्खेण पुत्रेण द्विजसत्तम ॥
यथा शूद्रस्तथा मूर्खो ब्राह्मणोनात्रसंशयः । न पूजार्हो न दानार्हो निंद्यश्च सर्वकर्मसु
देशे वै वसमानश्च ब्राह्मणो वेदवर्जितः । करदः शूद्रवच्चैव मन्तव्यः स च भूभुजा ॥
नासने पितृकार्येषु देवकार्येषु स द्विजः । मूर्खः समुपवेष्यश्च कार्यस्य फलमिच्छता

राज्ञा शूद्रसमो ज्ञेयो न योज्यः सर्वकर्मसु ।
कर्षकस्तु द्विजः कार्यो ब्राह्मणो वेदवर्जितः ॥ ३६ ॥

विना विप्रेण कर्तव्यं श्राद्धंकुशवटेन वै । न तु विप्रेण मूर्खेण श्राद्धं कार्यं कदाचन
आहारादधिकं चान्नं न दातव्यमपण्डिते । दातानरकमाप्नोति ग्रहीता तु विशेषतः॥
धिग्राज्यं तस्यराज्ञोवैयस्यदेशेऽबुधाजनाः । पूज्यन्तेब्राह्मणामूर्खा दानमानादिकैरपि
आसने पूजने दाने यत्र भेदो न चाण्वपि । मूर्खपण्डितयोर्भेदो ज्ञातव्यो विबुधेन वै
मूर्खा यत्र सुगर्विष्ठा दानमानपरिग्रहैः । तस्मिन्देशेन वस्तव्यं पण्डितेन कथञ्चन ॥
असतामुपकाराय दुर्जनानां विभूतयः । पिचुमन्दः फलाढ्योऽपि काकैरेवोपभुज्यते
भुक्त्वाऽन्नंवेदविद्विप्रोवेदाभ्यासंकरोतिवै । क्रीडन्तिपूर्वजास्तस्यस्वर्गेप्रमुदिताःकिल
गोभिलातः किमुक्तं वै त्वया वेदविदुत्तम । संसारे मूर्खपुत्रत्वं मरणाद्गतिगर्हितम्
कृपां कुरुमहाभाग शापस्यानुग्रहं प्रति । दीनोद्धारणशक्तोऽसि पतामितव पादयोः॥

लोमश उवाच

इत्युक्त्वा देवदत्तस्तु पतितस्तस्यपादयोः । स्तुवन्दीनहृदत्यर्थं कृपणः साश्रुलोचनः ॥

गोमिलस्तुतदातत्र दृष्ट्वा तं दीनचेतसम् । क्षणकोपामहान्तोवै पापिष्ठाःकल्पकोपनाः
जलं स्वभावतः शीतंपावकातपयोगतः । उष्णं भवति तच्छीघ्रं तद्विनाशिशिरं भवेत्
दयावान्गोमिलस्त्वाह देवदत्तंसुदुःखितम् । मूर्खोभूत्वासुतस्तेवैविद्वानपिभविष्यति
इतिदत्तवरः सोऽथ मुदितोऽभूद्द्विजर्षभः । इष्टिंसमाप्यविप्रान्वै विससर्जयथाविधि
कालेन कियता तस्य भार्यारूपवती सती । गर्भन्दधारकालेसारोहिणीरोहिणीसमा
गर्भाधानादिकंकर्म चकार विधिवद्द्विजः । पुंसवनविधानञ्च शृङ्गारकरणं तथा ॥
सीमन्तोन्नयनञ्चैव कृतं वेदविधानतः । ददौ दानानि मुदितो मत्वेष्टिं सफलान्तथा
शुभेऽह्नि सुषुवे पुत्रं रोहिणी रोहिणीयुते । दिनेलग्ने शुभेऽत्यर्थं जातकर्मचकार सः
पुत्रदर्शनकं कृत्वा नामकर्म चकार च । उतथ्य इति पुत्रस्य कृतं नाम पुराविदा ॥
स चाऽष्टमे तथा वर्षे शुभे वै शुभवासरे । तस्योपनयनं कर्म चकार विधिवत्पिता ॥
वेदमध्यापयामास गुरुस्तं वै व्रते स्थितम् । नोच्चचार तथोतथ्यःसंस्थितोमुग्धवत्तदा

बहुधा पाटितः पित्रा न दधार मतिं शठः ।
मूढवत्तिष्ठतेऽत्यर्थं तं शुशोच पिता तदा ॥ ५८ ॥

एवंकुर्वन्सदाऽभ्यासंजातोद्वादशवार्षिकः । नवेदविधिवत्कर्तुंसन्ध्यावन्दनकंविधिम्
मूर्खोऽभूदितिलोकेषु गताधार्ताऽतिविस्तरम् । ब्राह्मणेषु चसर्वेषु तापसेष्वितरेषु च
जहासलोकस्तंविप्रंयत्रतत्र गतं वने । पिता माता निनिन्दाथ मूर्खं तमभिभर्त्सयन्
निन्दितोऽथ जनैः कामं पितृभ्यामथबान्धवैः । वैराग्यमगमद्विप्रोजगाम वनमप्यसौ
अन्धो वरन्तथापंगुर्नमूर्खस्तुवरः सुतः । इत्युक्तोऽसौ पितृभ्यां वै विवेशकाननम्प्रति
गङ्गातीरेशुभेस्थानेकृत्वोटजमनुत्तमम् । वन्याम्वृत्तिञ्च सङ्कल्प्य स्थितस्तत्रसमाहितः
नियमञ्च परं कृत्वा नासत्यं प्रवदाम्यहम् । स्थितस्तत्राश्रमेरम्येब्रह्मचर्यव्रतो हि सः

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां तृतीयस्कन्धे
सत्यव्रताख्यानवर्णनंनाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

———

एकादशोऽध्यायः

सत्यव्रताख्यानवर्णनम्

लोमश उवाच

नवेदाध्ययनंकिञ्चिज्ज्ञानातिन जपं तथा। ध्यानंन देवतानाञ्च न चैवाऽऽराधनं तथा
नाऽऽसनं वेदविप्रोऽसौप्राणायामन्तथापुनः। प्रत्याहारन्तुनोवेदभूतशुद्धिञ्चकारणम्
न मन्त्रं कीलकंजाप्यंगायत्रीञ्च न वेद सः। शौचंज्ञानविधिञ्चैवतथाऽऽचमनकं पुनः
प्राणाग्निहोत्रं नो वेदबलिदानंनचातिथिम्। नसन्ध्यांसमिधोहोमंविवेदचतथा मुनिः

सोऽकरोत्प्रातरुत्थाय यत्किञ्चिद्दन्तधावनम्।
स्नानञ्च शूद्रवत्तत्र गङ्गायां मन्त्रवर्जितम्॥ ५॥

फलान्यादायवन्यानिमध्याह्नेऽपियदृच्छया। भक्ष्याभक्ष्यपरिज्ञानंनजानातिशठस्तथा
सत्यम्ब्रूते स्थितस्तत्रनानृतंवदते पुनः। जनैःसत्यतपा नाम कृतमस्य द्विजस्य वै॥
नाहितंकस्यचित्कुर्यान्न तथाऽविहितंक्वचित्। सुखंस्वपितितत्रैवनिर्भयश्चिन्तयन्निति
कदामेमरणम्भावि दुःखंजीवामि कानने। जीवितं धिक्चमूर्खस्य तरसा मरणंध्रुवम्

दैवेनाऽहं कृतो मूर्खो नान्योऽत्र कारणं मम।
प्राप्य चैवोत्तमं जन्म वृथा जातं ममाधुना॥ १०॥

यथा वन्ध्यासुरूपाच यथावानिष्फलोद्रुमः। अदुग्धदोहाधेनुश्चतथाऽहंनिष्फलःकृतः
किन्तु निन्दाम्यहं दैवंनूनं कर्म ममेदृशम्। न दत्तं पुस्तकं दत्वा ब्राह्मणाय महात्मने
न वै विद्या मया दत्तापूर्वजन्मनिनिर्मला। तेनाहं कर्मयोगेन शठोऽस्मिच द्विजाधमः
नचतीर्थेतपस्तप्तंसेवितानचसाधवः। न द्विजाः पूजिता द्रव्यैस्तेनजातोऽस्मिदुष्टधीः
वर्तन्ते मुनिपुत्राश्च वेदशास्त्रार्थपारगाः। अहं सुमूढः सञ्जातो दैवयोगेन केनचित्॥

न जानामि तपस्तप्तुं किं करोमि सुसाधनम्।
मिथ्याऽयं मेऽत्र सङ्कल्पो न मे भाग्यं शुभं किल॥ १६॥

दैवमेवपरं मन्ये धिक्पौरुषमनर्थकम् । वृथा श्रमकृतं कार्यं दैवाद्भवति सर्वथा ॥१७॥
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च शक्राद्या किलदेवताः । कालस्यवशगाःसर्वे कालोहिदुरतिक्रमः
एवंविधान्वितर्कांस्तुकुर्वाणोऽहर्निशंद्विजः । स्थितस्तत्राश्रमेतीरेजाह्नव्याःपावनेस्थले
विरक्तःसतुसञ्जातःस्थितस्तत्राऽऽश्रमेद्विजः । कालातिवाहनं शान्तश्चकारविजने वने

एवं स्थितस्य तु वने विमलोदके वै वर्षाणि तत्र नव पञ्च गतानि कामम् ।
नाऽऽराधनं न च जपं न विवेद मन्त्रं कालातिवाहनमसौ कृतवान्वने वै ॥
जानाति तस्य विततं व्रतमेव लोकः सत्यं वदत्यपि मुनिःकिल नाम जातम्
जातं यशश्च सकलेषु जनेषु कामं सत्यव्रतोऽयमनिशं न मृषाभिभाषी ॥२२॥
तत्रैकदा तु मृगयां रममाण एव प्राप्तो निषादनिशठो धृतचापबाणः ।
क्रीडन्वनेऽतिविपुले यमतुल्यदेहः क्रूराकृतिर्हननकर्मणि चाऽतिदक्षः ॥ २३ ॥
तेनाऽतिकृष्टेन शरेण विद्धः कोलः किरातेन धनुर्धरेण ।
पलायमानो भयविह्वलश्च मुनेः समीपं विद्रुतो जगाम ॥ २४ ॥
विकम्पमानो रुधिरार्द्रदेहो यदा जगामाऽऽश्रममण्डलम्वै ।
कोलस्तदाऽतीव दयार्द्रभावं प्राप्तो मुनिस्तत्र समीक्ष्य दीनम् ॥ २५ ॥
अग्रे व्रजन्तं रुधिरार्द्रदेहं दृष्ट्वा मुनिः सूकरमाशु विद्धम् ।
दयाभिवेशादतिकम्पमानः सारस्वतं बीजमथोच्चचार ॥ २६ ॥
अज्ञातपूर्वश्च तथाऽश्रुतश्च दैवान्मुखे वै समुपागतश्च ।
न ज्ञातवान्बीजमसौ विमूढो ममज्ज शोके स मुनिर्महात्मा ॥ २७ ॥
कोलः प्रविश्याऽऽश्रममण्डलं तद्गतो निकुञ्जे प्रविलीय गूढम् ।
अप्राप्तमार्गो दृढनिर्विण्णचेताः प्रवेपमानः शरपीडितत्वात् ॥ २८ ॥
ततः क्षणादाकरणांतकृष्टं चापं दधानोऽतिकरालदेहः ।
प्राप्तस्तदन्ते स च मृग्यमाणो निषादराजः किल काल एव ॥ २९ ॥
दृष्ट्वा मुनिं तत्र कुशासने स्थितं नाम्ना तु सत्यव्रतमद्वितीयम् ।
व्याधः प्रणम्य प्रमुखे स्थितोऽसौ पप्रच्छ कोलः क गतो द्विजेश !॥ ३० ॥

जानामि तेऽहं सुव्रतम्प्रसिद्धं तेनाऽद्यपृच्छे मम बाणविद्धः ।
क्षुधार्दितं मे सकलं कुटुम्बं बिभर्तुकामः किल आगतोऽस्मि ॥ ३१ ॥
वृत्तिर्ममैषा विहिता विधात्रा नान्याऽस्ति विप्रेन्द्र ऋतं ब्रवीमि ।
भर्तव्यमेवेह कुटुम्बमञ्जसा केनाप्युपायेन शुभाशुभेन ॥ ३२ ॥
सत्यम्ब्रवीत्वद्य सत्यव्रतोऽसि क्षुधातुरो वर्तते पोष्यवर्गः ।
काऽसौ गतः सूकरो बाणविद्धः पृच्छाम्यहं पाण्डव ब्रूहि तूर्णम् ॥ ३३ ॥
तेनेति पृष्टः स मुनिर्महात्मा वितर्कमग्नः प्रबभूव कामम् ।
सत्यव्रतं मेऽद्य भवेन्न भग्नं न दृष्ट इत्युच्चरितेन किं वै ॥ ३४ ॥
गतोऽत्र कोलः शरविद्धदेहः कथं ब्रवीम्यद्य मृषाऽमृषा वा ।
क्षुधार्दितोऽयं परिपृच्छतीव दृष्ट्वा हनिष्यत्यपि सूकरं वै ॥ ३५ ॥
सत्यं न सत्यं खलु यत्र हिंसा दयान्वितं चानृतमेव सत्यम् ।
हितं नराणां भवतीह येन तदेव सत्यं न तथाऽन्यथैव ॥ ३६ ॥
हितं कथं स्यादुभयोर्विरुद्धयोस्तदुत्तरं किं न यथा मृषा वचः ।
विचारयन्वाडव धर्मसङ्कटे न प्राप वक्तुं वचनं यथोचितम् ॥ ३७ ॥
बाणाहतं वीक्ष्य दयान्वितं च कोलं तदन्ते समुदाहृतं वचः ।
तेन प्रसन्ना निजबीजतः शिवा विद्यां दुरापां प्रददौ च तस्मै ॥ ३८ ॥
बीजोच्चारणतो देव्या विद्या प्रस्फुरिताऽखिला ।
वाल्मीकेश्च यथा पूर्वं तथा स ह्यभवत्कविः ॥ ३९ ॥

समुवाच द्विजो व्याधंसम्मुखस्थंधनुर्धरम् । सत्यकामस्तुधर्मात्माश्लोकमेकंदयापरः या पश्यतिन साब्रूतेयाब्रूतेसानपश्यति । अहोव्याधस्वकार्यार्थिन्किंपृच्छसिपुनःपुनः इत्युक्तस्तु तदातेन गतोऽसौ पशुहा पुनः । निराशः सूकरे तस्मिन्परावृत्तोनिजालये ब्राह्मणस्तु कविर्जातः प्राचेतस इवापरः । प्रसिद्धःसर्वलोकेषु नाम्ना सत्यव्रतो द्विजः

सारस्वतं ततोबीजं जजाप विधिपूर्वकम् ।
पण्डितश्चाऽतिविख्यातो द्विजोऽसौ धरणीतले ॥ ४४ ॥

प्रतिपर्वसु गायन्ति ब्राह्मणायद्यशःसदा । आख्यानंजातिविस्तीर्णंस्तुवन्तिमुनयःकिल
तच्छ्रुत्वा सदनं तस्य समागम्य तदाश्रमे । येनत्यक्तः पुरातेन गृहं नीतोऽतिमानितः
तस्माद्राजन्सदा सेव्यापूजनीया चभक्तितः । आदिशक्तिः परादेवीजगतांकारणंहिसा
तस्या यज्ञं महाराज कुरुवेदविधानतः । सर्वकामप्रदं नित्यं निश्चयं कथितं पुरा ॥

स्मृता सम्पूजिता भक्त्या ध्याता चोच्चारिता स्तुता ।
ददाति वाञ्छितानर्थान्कामदा तेन कीर्त्यते ॥ ४६ ॥

अनुमानमिदंराजन्कर्तव्यं सर्वथा बुधैः । दृष्ट्वा रोगयुतान्दीनान्क्षुधितान्निर्धनाञ्छठान्

जनानार्तांस्तथा मूर्खान्पीडितान्वैरिभिः सदा ।
दासानाज्ञाकरान्क्षुद्रान्विकलान्विह्वलानथ ॥ ५१ ॥
अतृप्ता भोजने भोगे सदाऽऽर्तानजितेन्द्रियान् ।
तृष्णाधिकानशक्तांश्च सदाऽऽधिपरिपीडतान् ॥ ५२ ॥

तथा विभवसम्पन्नान्पुत्रपौत्रविवर्धनान् । पुष्टदेहांश्च सम्भोगैः संयुतान्वेदवादिनः
राजलक्ष्म्या युताञ्छूरान्वशीकृतजनानथ । स्वजनैरवियुक्तांश्च सर्वलक्षणलक्षितान् ॥
व्यतिरेकान्वयाभ्याञ्च विचेतव्यं विचक्षणैः । एभिर्नपूजिता देवीसर्वार्थफलदाशिवा

समाराधिता च तथा नृभिरेभिः सदाऽम्बिका ।
यतोऽमी सुखिनः सर्वे संसारेऽस्मिन्न संशयः ॥ ५६ ॥

व्यास उवाच

इतिराजञ्छ्रुतं तत्र मयामुनिसमागमे । लोमशस्य मुखात्कामंदेवीमाहात्म्यमुत्तमम्
इतिसञ्चिन्त्य राजेन्द्र कर्तव्यं च सदाऽर्चनम् । भक्त्यापरमयादेव्याःप्रीत्याचपुरुषर्षभ

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां द्वितीयस्कन्धे
सत्यव्रताख्यानवर्णनंनामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

द्वादशोऽध्यायः

सात्त्विकराजसतामसभेदेनाम्बायज्ञविधिवर्णनम्

राजोवाच

वद यज्ञविधिं सम्यग्देव्यास्तस्याः समन्ततः ।
श्रुत्वा करोम्यहं स्वामिन्यथाशक्ति ह्यतन्द्रितः ॥ १ ॥

पूजाविधिंचमन्त्रांश्च होमद्रव्यमसंशयम् । ब्राह्मणाः कतिसंख्याश्चदक्षिणाश्चतथापुनः

व्यास उवाच

शृणुराजन्प्रवक्ष्यामि देव्याः यज्ञं विधानतः । त्रिविधंतु सदाज्ञेयंविधिदृष्टेन कर्मणा
सात्त्विकं राजसं चैव तामसंच तथाऽपरम् ।
मुनीनां सात्त्विकं प्रोक्तं नृपाणां राजसं स्मृतम् ॥ ४ ॥

तामसं राक्षसानां वैज्ञानिनांतुगुणोज्झितम् । विमुक्तानांज्ञानमयंविस्तरात्प्रब्रवीमिते
देशःकालस्तथाद्रव्यंमन्त्राश्चब्राह्मणास्तथा। श्रद्धाचसात्त्विकीयत्रतंयज्ञंसात्त्विकंविदुः
द्रव्यशुद्धिः क्रियाशुद्धिर्मन्त्रशुद्धिश्चभूमिप । भवेद्यदि तदापूर्णंफलंभवति नाऽन्यथा ॥
अन्यायोपार्जितेनैव द्रव्येण सुकृतं कृतम् । न कीर्तिरिहलोके च परलोकेन तत्फलम्
तस्मान्न्यायार्जितेनैव कर्तव्यं सुकृतं सदा । यशसे परलोकाय भवत्येव सुखाय च॥
प्रत्यक्षं तव राजेन्द्र पाण्डवैस्तु मखः कृतः । राजसूयः क्रतुवरः समाप्तवरदक्षिणः ॥
यत्र सक्षाद्धरिःकृष्णोयादवेन्द्रो महामनाः । ब्राह्मणाः पूर्णविद्याश्चभारद्वाजादयस्तथा
कृत्वा यज्ञं सुसम्पूर्णं मासमात्रेणपाण्डवैः । प्राप्तं महत्तरं कष्टं वनवासश्च दारुणः
पीडनंचैव पाञ्चाल्यास्तथाद्यूते पराजयः । वनवासो महत्कष्टं क गतं मखजं फलम्
दासत्वञ्च विराटस्य कृतं सर्वैर्महात्मभिः । कीचकेन परिक्लिष्टा द्रौपदी च प्रमद्वरा॥
आशीर्वादाद्विजातीनां क गता शुद्धचेतसाम् । भक्तिर्वावासुदेवस्यक्वगता तत्र सङ्कटे॥
न रक्षिता तदा बाला केनाऽपि द्रुपदात्मजा । प्राप्तकेशग्रहाकालेसाध्वीच वरवर्णिनी

किमत्रचिन्तनीयम्वै धर्मवैगुण्यकारणम् । केशवे सति देवेशे धर्मपुत्रे युधिष्ठिरे ॥१७

भवितव्यमिति प्रोक्ते निष्फलः स्यात्तदाऽऽगमः ।

वेदमन्त्रास्तथाऽन्ये वै वितथाः स्युरसंशयम् ॥ १८ ॥

साधनं निष्फलं सर्वमुपायश्च निरर्थकः । भवितव्यम्भवत्येव वचने प्रतिपादके ॥१६

आगमोऽप्यर्थवादः स्यात्क्रियाः सर्वा निरर्थकाः ।

स्वर्गार्थञ्च तपो व्यर्थं वर्णधर्मश्च वै तथा ॥ २० ॥

सर्वप्रमाणं व्यर्थं स्याद्भवितव्ये कृते हृदि । उभयञ्चापि मन्तव्यं दैवं चोपाय एव च

कृते कर्मणि चेत्सिद्धिर्विपरीता यदा भवेत् ।

वैगुण्यं कल्पनीयं स्यात्प्राज्ञैः पण्डितमौलिभिः ॥ २२ ॥

तत्कर्म बहुधा प्रोक्तं विद्वद्भिःकर्मकारिभिः । कर्तृभेदान्मन्त्रभेदाद्द्रव्यभेदात्तथा पुनः

यथा मघवतापूर्वं विश्वरूपो वृतो गुरुः । विपरीतं कृतं तेन कर्म मातृहिताय वै ॥

देवेभ्योदानवेभ्यस्तुस्वस्तीत्युक्त्वा पुनःपुनः । असुरामातृपक्षीयाःकृतंतेषाञ्च रक्षणम्

दैत्यान्दृष्ट्वाऽतिसम्पुष्टांश्चुकोप मघवातदा । शिरांसितस्य वज्रेण चिच्छेदतरसाहरिः

क्रियावैगुण्यमत्रैव कर्तृभेदादसंशयम् । नोचेत्पञ्चालराजेनरोषेणापि कृता क्रिया ॥

भारद्वाजविनाशाय पुत्रस्योत्पादनाय च ।

धृष्टद्युम्नः समुत्पन्नो वेदिमध्याच्च द्रौपदी ॥ २८ ॥

पुरा दशरथेनापि पुत्रेष्टिस्तु कृता यदा । अपुत्रस्य सुतास्तस्य चत्वारः सम्प्रजज्ञिरे

अतः क्रियाकृतायुक्त्यासिद्धिदासर्वदाभवेत् । अयुक्त्याविपरीतास्यात्सर्वथानृपसत्तम

पाण्डवानांयथा यज्ञे किञ्चिद्वैगुण्ययोगतः । विपरीतं फलं प्राप्तं वर्जितास्ते दुरोदरे

सत्यवादी तथा राजन्धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ।

द्रौपदी च तथा साध्वी तथाऽन्येऽप्यनुजाः शुभाः ॥ ३२ ॥

कुद्रव्ययोगाद्वैगुण्यं समुत्पन्नं मखेऽथवा । साभिमानैःकृताद्वाऽपिदूषणंसमुपस्थितम्

सात्विकस्तुमहाराजदुर्लभोवैमखःस्मृतः । वैखानसमुनीनां हिविहितोऽसौमहामखः

सात्त्विकं भोजनं ये वै नित्यं कुर्वन्ति तापसाः ।

न्यायार्जितञ्च धन्यञ्च तथा ऋष्यं सुसंस्कृतम् ॥ ३५ ॥
पुरोडाशपरा नित्यं वियूपा मन्त्रपूर्वकाः ।
श्रद्धाधिका मखा राजन्सात्त्विकाः परमाः स्मृताः ॥ ३६ ॥

राजसाद्रव्यबहुलाःसयूपाश्चसुसंस्कृताः । क्षत्रियाणांविशाञ्चैवसाभिमानाश्चवै मखाः

तामसा दानवानां चै सक्रोधा मददर्शकाः ।
सामर्षाः संस्कृताः क्रूरा मखाः प्रोक्ता महात्मभिः ॥ ३८ ॥
मुनीनां मोक्षकामानां विरक्तानां महात्मनाम् ।
मानसस्तु स्मृतो यागः सर्वसाधनसंयुतः ॥ ३९ ॥

अन्येषुसर्वयज्ञेषु किञ्चिन्न्यूनम्भवेदपि । द्रव्येण श्रद्धया वाऽपि क्रिययाब्राह्मणैस्तथा
देशकालपृथग्द्रव्यसाधनैः सकलैस्तथा । नान्यो भवति पूर्णो वै तथा भवति मानसः
प्रथमंतु मनःशोध्यं कर्तव्यं गुणवर्जितम् । शुद्धे मनसि देहो चै शुद्ध एव न संशयः ॥
इन्द्रियार्थपरित्यक्तं यदा जातं मनःशुचि । तदातस्यमखस्यासौ प्रभवेदधिकारवान्
तदाऽसौमण्डपंकृत्वाबहुयोजनविस्तृतम् । स्तम्भैश्चविपुलैः श्लक्ष्णैर्याज्ञियद्रुमसम्भवैः

वेदिञ्च विशदान्तत्रमनसा परिकल्पयेत् ।
अग्नयोऽपि तथा स्थाप्या विधिवन्मनसा किल ॥ ४५ ॥

ब्राह्मणानाञ्चवरणं तथैव प्रतिपाद्य च । ब्रह्माऽध्वर्युस्तथा होताप्रस्तोताविधिपूर्वकम्
उद्गाताप्रतिहर्ताच सभ्याश्चान्ये यथाविधि । पूजनीयाः प्रयत्नेनमनसैव द्विजोत्तमाः
प्राणोऽपानस्तथाव्यानःसमानोदानएवच । पावकाःपञ्चएवैतेस्थाप्यावेद्यां विधानतः

गार्हपत्यस्तदा प्राणोऽपानश्चाहवनीयकः ।
दक्षिणाग्निस्तथा व्यानः समानश्चावसथ्यकः ॥ ४९ ॥

सभ्योदानः स्मृता ह्येते पावकाःपरमोत्कटाः । द्रव्यञ्चमनसाभाव्यंनिर्गुणं परमं शुचि
मन एव तदा होता यजमानस्तथैव तत् । यज्ञाधिदेता ब्रह्म निर्गुणञ्च सनातनम् ॥५१
फलदानिर्गुणाशक्तिःसदानिर्वेददाशिवा । ब्रह्मविद्याऽखिलाधाराव्याप्यसर्वत्रसंस्थिता
तदुद्देशेनतद्द्रव्यं हुनेत्प्राणाग्निषु द्विजः । पश्चाच्चित्तंनिरालम्बं कृत्वा प्राणानपिप्रभो

कुण्डलीमुखमार्गेण हुनेद् ब्रह्मणि शाश्वते ।
स्वानुभूत्या स्वयं साक्षात्स्वात्मभूतां महेश्वरीम् ॥ ५४ ॥
समाधिनैवयोगेन ध्यायेच्चेतस्यनाकुलः । सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि
यदा पश्यति भूतात्मा तदा पश्यति तां शिवाम् ।
दृष्ट्वा तां ब्रह्मविद् भूयात्सच्चिदानन्दरूपिणीम् ॥ ५६ ॥
तदा मायादिकं सर्वं दग्धं भवति भूमिप !। प्रारब्धकर्ममात्रन्तु यावद्देहश्च तिष्ठति ॥
जीवन्मुक्तस्तदाजातोमृतोमोक्षमवाप्नुयात् । कृतकृत्योभवेत्तातयोभजेज्जगदम्बिकाम्
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन ध्येया श्रीभुवनेश्वरी । श्रोतव्याश्चैवमन्तव्या गुरुवाक्यानुसारतः
राजन्नेवं कृतोयज्ञोमोक्षदोनात्रसंशयः । अन्ये यज्ञाःसकामास्तु प्रभवन्तिक्षयोन्मुखाः
अग्निष्टोमेनविधिवत्स्वर्गकामोयजेदिति । वेदानुशासनं चैतत्प्रवदंतिमनीषिणः ॥६१॥
क्षीणे पुण्येमृत्युलोकंविशन्तिचयथामति । तस्मात्तु मानसःश्रेष्ठोयज्ञोऽप्यक्षयएवसः
न राज्ञासाधितुंयोग्योमखोऽसौजयमिच्छता । तामसस्तुकृतःपूर्वंसर्पयज्ञस्त्वयाऽधुना
वैरंनिर्वाहितं राजंस्तक्षकस्य दुरात्मनः । यत्कृतेनिहताः सर्पास्त्वयाऽग्नौकोटिशःपरे
देवीयज्ञं कुरुष्वाऽद्य विततं विधिपूर्वकम् । विष्णुना यःकृतः पूर्वंसृष्ट्यादौनृपसत्तम
तथा त्वं कुरु राजेन्द्रविधिंतेप्रब्रवीम्यहम् । ब्राह्मणाःसंतिराजेन्द्रविधिज्ञावेदवित्तमाः
देवीबीजविधानज्ञा मंत्रमार्गविचक्षणाः । याजकास्ते भविष्यंति यजमानस्त्वमेवहि
कृत्वा यज्ञं विधानेन दत्त्वा पुण्यं मखार्जितम् । समुद्धर महाराजपितरं दुर्गतिं गतम्
विप्रावमानजं पापं दुर्घटं नरकप्रदम् । तथैव शापजो दोषः प्राप्तः पित्रा तवाऽनघ ॥
तथा दुर्मरणं प्राप्तं सर्पदंशेन भूभुजा । अन्तराले तथामृत्युर्न भूमौ कुशसंस्तरे ॥
न संग्रामे न गङ्गायां स्नानदानादिवर्जितम् । मरणं ते पितुस्तत्र सौधे जातं कुरूद्वह
कूपूणानिव सर्वाणि नरकस्य नृपोत्तम । तत्रैकं कारणन्तस्य न जातं चातिदुर्लभम्
यत्र यत्र स्थितः प्राणी ज्ञात्वा कालं समागतम् ।
साधनानामभावेऽपि ह्यवशश्चातिसङ्कटे ॥ ७३ ॥
यदानिर्वेदमायाति मनसा निर्मलेन वै । पञ्चभूतात्मको देहो मम किं चात्रदुःखदम्

एतत्त्वद्य यथाकामं मुक्तोऽहंनिर्गुणोऽव्ययः। नाशात्मकानितस्मात्तस्मकापरिवेदना
ब्रह्मैवाऽहं न संसारी सदामुक्तः सनातनः। देहे न मम सम्बन्धःकर्मणा प्रतिपादितः
तानिसर्वाणि मुक्तानि शुभानि चेतराणिच। मनुष्यदेहयोगेन सुखदुःखानुसाधनात्
विमुक्तोऽतिभयाद्व घोरादस्मात्संसारसंकटात्।
इत्येवं चिन्त्यमानस्तु स्नानदानविवर्जितः॥ ७८॥
मरणञ्चेदवाप्नोति स मुच्येज्जन्मदुःखतः। एषाकाष्ठा पराप्रोक्तायोगिनामपि दुर्लभा
पिता ते नृपशार्दूल श्रुत्वा शापं द्विजोदितम्। देहे ममत्वं कृतवान्न निर्वेदमवाप्तवान्
नीरोगो मम देहोऽयंराज्यंनिहतकण्टकम्। कथं जीवाम्यहं कामं मन्त्रज्ञानानयन्तुवै
औषधं मणिमन्त्रञ्च यन्त्रं परमकं तथा। आरोहणन्तथा सौधे कृतवान्नृपतिस्तदा
न स्नानं न कृतन्दानं न देव्याः स्मरणं कृतम्। न भूमौ शयनञ्चैव देवं मत्वापरन्तथा
मग्नो मोहार्णवेघोरे मृतःसौधेऽहिनाहतः। कृत्वापापं कलेर्योगात्तापसस्यावमानजम्
अवश्यमेव नरक एतैराचरणैर्भवेत्। तस्मात्त्वं पितरं पापात्समुद्धर नृपोत्तमम्॥८५

सूत उवाच

इति श्रुत्वावचस्तस्यव्यासस्यामिततेजसः। साश्रुकण्ठोऽतिदुःखार्तोबभूवजनमेजयः
धिगिदंजीवितं मेऽद्य पितामेनरकेस्थितः। तत्करोमि यथैवाद्य स्वर्गंयात्युत्तरासुतः

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां तृतीयस्कन्धे
अम्बायज्ञविधिवर्णनंनामद्वादशोऽध्यायः॥ १२॥

त्रयोदशोऽध्यायः

अम्बिकामखस्यविष्णुनाऽनुष्ठानम्

राजोवाच

हरिणा तु कथं यज्ञःकृतः पूर्वं पितामह। जगत्कारणरूपेण विष्णुना प्रभविष्णुना॥

के सहायास्तुतत्राऽऽसन्ब्राह्मणाःके महामते । ऋत्विजोवेदतत्त्वज्ञास्तन्मे ब्रूहिपरन्तप
पश्चात्करोम्यहं यज्ञं विधिदृष्टेनकर्मणा । श्रुत्वाविष्णुकृतंयागमम्बिकायाःसमाहितः

व्यास उवाच

राजञ्छृणु महाभाग विस्तरम्परमाद्भुतम् । यथा भगवतीयज्ञःकृतश्च विधिपूर्वकः ॥
विसर्जितायदादेव्यादत्त्वाशक्तीश्चतास्त्रयः । काजेशाः पुरुषाजाताविमानवरमास्थिताः
प्राप्ता महार्णवं घोरं त्रयस्ते विबुधोत्तमाः ।
चक्रुःस्थानानि वासार्थं समुत्पाद्य धरां स्थिताः ॥ ६ ॥
आधारशक्तिरचलामुक्ता देव्यास्वयंततः । तदाधारास्थिता जाताधरामेदःसमन्विता
मधुकैटभयोर्मेदःसंयोगान्मेदिनी स्मृता । धारणाच्चधराप्रोक्तापृथ्वीविस्तारयोगतः॥
मही चापि महीयस्त्वाद्धृतासाशेषमस्तके । गिरयश्चकृताःसर्वेधारणार्थं प्रविस्तराः
लोहकीलंयथाकाष्ठे तथाते गिरयः कृताः । महीधरा महाराज प्रोच्यन्तेविबुधैर्जनैः
जातरूपमयो मेरुर्बहुयोजनविस्तरः । कृतोमणिमयैः शृङ्गैः शोभितः परमाद्भुतः ॥११
मरीचिर्नारदोऽत्रिश्च पुलस्त्यः पुलहःक्रतुः । दक्षो वसिष्ठ इत्येतेब्रह्मणःप्रथिताःसुताः
मरीचेः कश्यपो जातो दक्षकन्यास्त्रयोदश । ताभ्योदेवाश्चदैत्याश्चसमुत्पन्नाह्यनेकशः
ततस्तु काश्यपी सृष्टिः प्रवृत्ता चातिविस्तरा । मनुष्यपशुसर्पादिजातिभेदैरनेकधा
ब्रह्मणश्चार्धदेहात्तु मनुः स्वायम्भुवोऽभवत् । शतरूपातथानारी सञ्जाता वामभागतः
प्रियव्रतोत्तानपादौ सुतौ तस्याः बभूवतुः । तिस्रःकन्या वरारोहाह्यभवन्नातिसुन्दरीः
एवं सृष्टिं समुत्पाद्य भगवान्कमलोद्भवः । चकार ब्रह्मलोकञ्च मेरुशृङ्गे मनोहरम् ॥
वैकुण्ठंभगवान्विष्णू रमारमणमुत्तमम् । क्रीडास्थानंसुरम्यञ्चसर्वलोकोपरिस्थितम्
शिवोऽपि परमं स्थानं कैलासाख्यं चकारह । समासाद्यभूतगणं विजहारयथारुचि
स्वर्गस्त्रिविष्टपो मेरुशिखरोपरि कल्पितः । तत्रस्थानं सुरेन्द्रस्यनानारत्नविराजितम्
समुद्रमथनात्प्राप्तः पारिजातस्तरूत्तमः । चतुर्दन्तस्तथा नागः कामधेनुश्च कामदा ॥
उच्चैःश्रवास्तथाऽश्वो वै रम्भाद्यप्सरसस्तथा ।
इन्द्रेणोपात्तमखिलं जातं वै स्वर्गभूषणम् ॥ २२ ॥

धन्वन्तरिश्चन्द्रमाश्च सागराश्च समुद्बभौ । स्वर्गेस्थितौविराजेते देवौ बहुगणैर्वृतौ
एवं सृष्टिःसमुत्पन्ना त्रिविधा नृपसत्तम । देवतिर्यङ्मनुष्यादिभेदैर्विविधकल्पिता ॥
अण्डजाःस्वेदजाश्चैवचोद्भिज्जाश्चजरायुजाः । चतुर्भेदैःसमुत्पन्नाजीवाःकर्मयुताःकिल
एवंसृष्टिःसमासाद्य ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः । विहारं स्वेषुस्थानेषु चक्रुःसर्वेयथेप्सितम्
एवं प्रवर्तिते सर्गे भगवान्प्रभुरच्युतः । महालक्ष्म्या समं तत्र विक्रीड भुवने स्वके ॥

एकस्मिन्समये विष्णुर्वैकुण्ठे संस्थितः पुरा ।

सुधासिन्धुस्थितं द्वीपं सस्मार मणिमण्डितम् ॥ २८ ॥

यत्र दृष्ट्वा महामायामन्त्रश्चालादितःशुभः । स्मृत्वातांपरमांशक्तिंश्रीभावंगमितोयया
यज्ञं कर्तुं मनश्चक्रे अम्बिकाया रमापतिः । उत्तीर्य भुवनात्तस्मात्समाहूय महेश्वरम् ॥
ब्रह्माणं वरुणं शक्रं कुबेरं पावकं यमम् । वसिष्ठं कश्यपं दक्षं वामदेवं बृहस्पतिम् ॥
सम्भारं कल्पयामास यज्ञार्थञ्चातिविस्तरम् । महाविभवसंयुक्तंसात्त्विकं चमनोहरम्

मण्डपं विततं तत्र कारयामास शिल्पिभिः ।

ऋत्विजो वरयामास सप्तविंशतिसुव्रतान् ॥ ३३ ॥

चितिश्चकारयामासवेदीश्चैवसुविस्तराः । प्रजेपुर्ब्राह्मणा मन्त्रान्देव्या बीजसमन्वितान्
जुहुवुस्ते हविः कामं विधिवत् परिकल्पिते । कृते तु विततेहोमेवागुवाचाशरीरिणी
विष्णुं तदा समाभाष्य सुस्वरा मधुराक्षरा । विष्णोत्वंभवदेवानां हरेःश्रेष्ठतमःसदा
मान्यश्च पूजनीयश्च समर्थश्च सुरेष्वपि । सर्वे त्वामर्चयिष्यन्तिब्रह्माद्याश्चसवासवाः
प्रभविष्यन्ति भो भक्त्यामानवा भुवि सर्वतः । वरदस्त्वं चसर्वेषांभवितामानवेषु वै
कामदः सर्वदेवानां परमः परमेश्वरः । सर्वयज्ञेषु मुख्यस्त्वं पूज्यः सर्वैश्च याज्ञिकैः ॥

त्वां जनाः पूजयिष्यन्ति वरदस्त्वं भविष्यसि ।

श्रयिष्यन्ति च देवास्त्वां दानवैरतिपीडिताः ॥ ४० ॥

शरण्यस्त्वं च सर्वेषां भविता पुरुषोत्तम । पुराणेषु च सर्वेषु वेदेषु विततेषु च ॥
त्वं वैपूज्यतमः कामं कीर्तिस्तव भविष्यति । यदा यदाहिधर्मस्यग्लानिर्भवतिभूतले
तदांऽशेनावतीर्याशु कर्तव्यंधर्मरक्षणम् । अवताराः सुविख्याताः पृथिव्यांतवभागशः

भविष्यन्ति धरायां वै माननीया महात्मनाम् । अवतारेषु सर्वेषुनानायोनिषुमाधव
विख्यातः सर्वलोकेषु भविता मधुसूदन । अवतारेषु सर्वेषु शक्तिस्ते सहचारिणी ॥
भविष्यति ममांशेन सर्वकार्यप्रसाधिनी । वाराही नारसिंही च नानाभेदैरनेकधा ॥
नानायुधाःशुभाकाराःसर्वाभरणमण्डिताः।ताभिर्युक्तःसदाविष्णोसुरकार्याणिमाधव
साधयिष्यसि तत्सर्वं मद्दत्तवरदानतः । तास्त्वया नावमन्तव्याः सर्वदागर्वलेशतः ॥
पूजनीयाः प्रयत्नेन माननीयाश्च सर्वथा । नूनं ता भारतेखण्डे शक्तयःसर्वकामदाः॥
भविष्यन्ति मनुष्याणांपूजिताःप्रतिमासुच । तासांतवचदेवेशकीर्तिःस्याद्खिलेऽवपि
द्वीपेषु सप्तस्वपि च विख्याता भुविमण्डले । ताश्चत्वांवैमहाभागमानवाभुविमण्डले
अर्चयिष्यन्तिवाञ्छार्थं सकामाः सततं हरे । अर्चासुचोपहारैश्चनानाभावसमन्विताः
पूजयिष्यन्ति वेदोक्तैर्मन्त्रैर्नामजपैस्तथा । महिमा तव भूलोके स्वर्गे च मधुसूदन !॥
पूजनाद्देवदेवेश !वृद्धिमेष्यति मानवैः ।

व्यास उवाच

इति दत्त्वा वरान्वाणी विरराम खसम्भवा ॥ ५४ ॥
भगवानपि प्रीतात्मा ह्यभवच्छ्रवणादिव । समाप्यविधिवद्यज्ञं भगवान्हरिरीश्वरः ॥
विसर्जयित्वा तान्देवान्ब्रह्मपुत्रान्मुनीनथ । जगामानुचरैः सार्द्धं वैकुण्ठं गरुडध्वजः
स्वानि स्वानि च धिष्ण्यानि पुनः सर्वे सुरास्ततः ।
मुनयो विस्मिता वार्ता कुर्वन्तस्ते परस्परम् ॥ ५७ ॥
ययुः प्रमुदिताः कामं स्वाश्रमान्पावनानथ ॥ ५८ ॥
श्रुत्वा वाणीं परमविशदां व्योमजां श्रोत्ररम्यां
सर्वेषां वै प्रकृतिविषये भक्तिभावश्च जातः ।
चक्रुः सर्वे द्विजमुनिगणाः पूजनं भक्तियुक्ता-
स्तस्याः कामं निखिलफलदं चाऽऽगमोक्तं मुनीन्द्राः ॥ ५९ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां तृतीयस्कन्धे
अम्बिकामखस्यविष्णुनाऽनुष्ठानवर्णनंनामत्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

चतुर्दशोऽध्यायः

जनमेजयप्रश्नोत्तरंव्यासेनध्रुवसन्धिनृपाख्यानवर्णनम्

जनमेजय उवाच

श्रुतोवै हरिणाक्लृप्तोयज्ञो विस्तरतो द्विज। महिमानं तथाऽम्बायावदविस्तरतोमम
श्रुत्वा देव्याश्चरित्रं वै कुर्वेमखमनुत्तमम्। प्रसादात्तव विप्रेन्द्रभविष्यामि च पावनः

व्यास उवाच

शृणुराजन्प्रवक्ष्यामि देव्याश्चरितमुत्तमम्। इतिहासपुराणं च कथयामिसुविस्तरम्
कोसलेषु नृपश्रेष्ठः सूर्यवंशसमुद्भवः। पुष्पपुत्रो महातेजा ध्रुवसंधिरिति स्मृतः॥
धर्मात्मा सत्यसन्धश्चवर्णाश्रमहिते रतः। अयोध्यायांसमृद्धायां राज्यंचक्रेशुचिव्रतः

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चान्ये तथा द्विजाः।
स्वां स्वां वृत्तिं समास्थाय तद्राज्ये धर्मतोऽभवन्॥ ६॥

नचौराःपिशुनाधूर्तास्तस्यराज्येचकुत्रचित्। दम्भाःकृतघ्नामूर्खाश्चवसन्तिकिलमानवाः
एवं वै वर्तमानस्य नृपस्य कुरुसत्तम। द्वे पत्न्यौ रूपसम्पन्ने ह्यासतुः कामभोगदे॥
मनोरमा धर्मपत्नीसुरूपाऽतिविचक्षणा। लीलावतीद्वितीया चसाऽपिरूपगुणान्विता
विजहार सपत्नीभ्यां गृहेषूपवनेषु च। क्रीडागिरौदीर्घिकासु सौधेषु विविधेषु च
मनोरमा शुभेकाले सुषुवे पुत्रमुत्तमम्। सुदर्शनाभिधं पुत्रं राजलक्षणसंयुतम्॥
लीलावत्यपि तत्पत्नी मासेनैकेन भामिनी। सुषुवे सुन्दरंपुत्रं शुभे पक्षे दिने तथा
चकार नृपतिस्तत्र जातकर्मादिकं द्वियोः। ददौ दानानि विप्रेभ्यः पुत्रजन्मप्रमोदितः
प्रीतिं तयोः समां राजा चकार सुतयोर्नृप। नृपश्चकारसौहार्देष्वन्तरं न कदाचन
चूडाकर्म तयोश्चक्रे विधिना नृपसत्तमः। यथा विभवमेवाऽसौ प्रीतियुक्तः परन्तपः
कृतचूडौ सुतौकामं जह्रतुर्नृपतेर्मनः। क्रीडमानावुभौ कान्तौ लोकानामनुरञ्जकौ
तयोः सुदर्शनो ज्येष्ठो लीलावत्याःसुतःशुभः। शत्रुजित्संज्ञकःकामंचाटुवाक्योबभूवह

नृपतेः प्रीतिजनको मञ्जुवाक्चारुदर्शनः । प्रजानां वल्लभः सोऽभूत्तथामन्त्रिजनस्यवै
यथा तस्मिन्नृपः प्रीतिं चकार गुणयोगतः । मन्दभाग्यान्मन्दभावोनतथा वै सुदर्शने
एवं गच्छति काले तु ध्रुवसन्धिर्नृपोत्तमः । जगाम वनमध्येऽसौ मृगयाभिरतःसदा
निघ्नन्मृगान्रुरून्कम्बून्सूकरान्गवयाञ्छशान् । महिषाञ्छरभान्खड्गांश्चिक्रीडनृपतिर्वने
क्रीडमाने नृपे तत्र वने घोरेऽतिदारुणे । उदतिष्ठन्निकुञ्जात्तु सिंहः परमकोपनः ॥
राज्ञाशिलीमुखेनादौ विद्धः कोपवशङ्गतः । दृष्ट्वाऽग्रे नृपतिं सिंहो ननादमेघनिःस्वनः
कृत्वाचोर्ध्वं स लांगूलं प्रसारितबृहत्सटः । हन्तुं नृपतिमाकाशादुत्पपातातिकोपनः
नृपतिस्तरसा वीक्ष्य दधारासिं करे तदा । वामे चर्मसमादाय स्थितः सिंह इवापरः

सेवकास्तस्य ये सर्वे तेऽपि बाणान्पृथक्पृथक् ।
मुञ्चन्प्रकुपिताः कामं सिंहोपरि रुषान्विताः ॥ २६ ॥

हाहाकारो महानासीत्संप्रहारश्च दारुणः । उत्पपात ततः सिंहो नृपस्योपरिदारुणः
तं पतन्तं समालोक्य खड्गेनाभ्यहनन्नृपः । सोऽपिक्रूरैर्नखाग्रैश्च तत्राऽगत्यविदारितः
स नखैराहतो राजा पपातच ममार वै । चुक्रुशुः सैनिकास्तेतु निजघ्नुर्विशिखैस्तदा
मृतः सिंहोऽपि तत्रैव भूपतिश्च तथामृतः । सैनिकैर्मन्त्रिमुख्याश्चतत्रागत्यनिवेदिताः
परलोकगतं भूपं श्रुत्वा ते मन्त्रिसत्तमाः । संस्कारं कारयामासुर्गत्वातत्र वनान्तिके
परलोकक्रियां सर्वां वसिष्ठो विधिपूर्वकम् । कारयामास तत्रैव परलोकसुखावहम्
प्रजाः प्रकृतयश्चैव वसिष्ठश्च महामुनिः । सुदर्शनं नृपं कर्तुं मन्त्रं चक्रुः परस्परम् ॥
धर्मपत्नी सुतः शान्तः पुरुषश्च सुलक्षणः । अयं नृपासनार्हश्च ह्यब्रुवन्मन्त्रिसत्तमाः
वसिष्ठोऽपितथैवाऽऽहयोग्योऽयंनृपतेःसुतः । बालोऽपिधर्मवाञ्राजानृपासनमिहार्हति
कृते मन्त्रे मन्त्रिवृद्धैर्युधाजिन्नाम पार्थिवः । तत्राऽऽजगामतरसाश्रुत्वातूज्जयिनीपतिः

मृतं जामातरं श्रुत्वा लीलावत्याः पिता तदा ।
तत्राऽऽजगाम त्वरितो दौहित्रप्रियकाम्यया ॥ ३७ ॥

वीरसेनस्तथाऽऽयातः सुदर्शनहितेच्छया । कलिङ्गाधिपतिश्चैव मनोरमापिता नृपः

उभौ तौ सैन्यसंयुक्तौ नृपौ साध्वससंस्थितौ ।

अकर्तुर्मन्त्रिमुख्यैस्तैर्मन्त्रं राज्यस्य कारणात् ॥ ३९ ॥
युधाजित्तु तदाऽपृच्छज्ज्येष्ठः कः सुतयोर्द्वयोः ।
राज्यं प्राप्नोति ज्येष्ठो वै न कनीयान्कदाचन ॥ ४० ॥

वीरसेनोऽपितत्राऽऽहधर्मपत्नीसुतःकिल। राज्यार्हःसयथाराजञ्छास्त्रज्ञेभ्योमयाश्रुतम्
युधाजित्पुनराहेदं ज्येष्ठोऽयं च यथा गुणैः । राजलक्षणसंयुक्तो न तथाऽयंसुदर्शनः॥
विवादोऽत्र सुसम्पन्नो नृपयोस्तत्रलुब्धयोः । कः सन्देहमपाकर्तुंक्षमःस्यादऽतिसङ्कटे
युधाजिन्मन्त्रिणः प्राह यूयंस्वार्थपराः किल । सुदर्शनं नृपं कृत्वाधनंभोक्तुंकिलेच्छथ

युष्माकं तु विचारोऽयं मया ज्ञातस्तथेङ्गितैः ।
शत्रुजित्सबलस्तस्मात्सम्मतो वो नृपासने ॥ ४५ ॥

मयि जीवतिकःकुर्यात्कनीयांसंनृपंकिल । त्यक्त्वाज्येष्ठंगुणार्हंचसेनयाचसमन्वितम्
नूनंयुद्धं करिष्यामि तस्मिन्खड्गस्य मेदिनी। धारयाचद्विधाभूयाद्युष्माकंतत्रकाकथा
वीरसेनस्तु तच्छ्रुत्वा युधाजितमभाषत । बालौ द्वौ सदृशप्रज्ञौकोभेदोऽत्रविचक्षणः
एवं विवदमानौ तौ संस्थितौनृपतीसदा । प्रजाश्चऋषयश्चैव बभूवुर्व्यग्रमानसाः ॥
समाजग्मुश्चसामन्ताःससैन्याःक्लेशतत्पराः । विग्रहंचाभिकांक्षन्तःपरस्परमतन्द्रिताः
निषादा ह्यययुस्तत्र शृङ्गवेरपुराश्रयाः । राज्यद्रव्यमुपाहर्तुं मृतं श्रुत्वा महीपतिम् ॥
पुत्रौ च बालकौश्रुत्वा विग्रहं च परस्परम् । चौरास्तत्र समाजग्मुर्देशदेशान्तरादपि
संमर्दस्तत्रसञ्जातः कलहे समुपस्थिते । युधाजिद्वीरसेनश्चयुद्धकामौ बभूवतुः ॥

इति श्री देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां तृतीयस्कन्धे
युधाजिद्वीरसेनयोर्युद्धार्थंसन्नीभवनंनामचतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

पञ्चदशोऽध्यायः

युधाजिद्वीरसेनयोर्दौहित्रार्थयुद्धम्

व्यास उवाच

संयुगे च सति तत्र भूपयोराहवाय समुपात्तशस्त्रयोः ।
क्रोधलोभवशयोः समन्ततः सम्बभूव तुमुलस्तु विमर्दः ॥ १ ॥
संस्थितः स समरे धृतचापः पार्थिवः पृथुलबाहुयुधाजित् ।
संयुतः स्वबलवाहनादिकैराहवाय कृतनिश्चयो नृपः ॥ २ ॥
वीरसेन इह सैन्यसंयुतः क्षात्त्रधर्ममनुसृत्य सङ्गरे ।
पुत्रिकात्मजहिताय पार्थिवः संस्थितः सुरपतेः समतेजाः ॥ ३ ॥
स बाणवृष्टिं विससर्ज पार्थिवो युधाजितं वीक्ष्य रणेस्थितञ्च ।
गिरिं तडित्वानिव तोयवृष्टिभिः क्रोधान्वितः सत्यपराक्रमोऽसौ ॥ ४ ॥
तं वीरसेनो विशिखैः शिलाशितैः समावृणोदाशुगमैरजिह्मगैः ।
चिच्छेद बाणैश्च शिलीमुखानसौ तेनैव मुक्तानतिवेगपातिनः ॥ ५ ॥
गजरथतुरगाणां संबभूवाऽतियुद्धं सुरनरमुनिसंघैर्वीक्षितं चातिघोरम् ।
विततविहगवृन्दैरावृतं व्योमसद्यः पिशितमशितुकामैः काकगृध्रादिभिश्च ॥
तत्राद्भुता क्षतजसिन्धुरवाहघोरा वृन्देभ्य एव गजवीरतुरङ्गमाणाम् ।
त्रासावहा नयनमार्गगतानराणां पापात्मनां रविजमार्गभवेव कामम् ॥ ७ ॥
कीर्णानि भिन्नपुलिने नरमस्तकानि केशावृतानि च विभान्ति यथैवसिन्धौ ।
तुम्बीफलानि विहितानि विहर्तुकामैर्बालैर्यथा रविसुताप्रभवैश्च नूनम् ॥
वीरं मृतं भुवि गतं पतितं रथाद्वै गृध्रः पलार्थमुपरि भ्रमतीति मन्ये ।
जीवोऽप्यसौ निजशरीरमवेक्ष्यकान्तं कांक्षत्यहोऽतिविवशोऽपिपुनःप्रवेष्टुम्
आजौ हतोऽपि नृवरः सुविमानरूढः स्वांके स्थितां सुरवधूं प्रवदत्यभीष्टम् ।

पश्याधुना मम शरीरमिदं पृथिव्यां बाणाहतं निपतितं करभोरु कान्तम् ॥१०॥
एको हतस्तु रिपुणैव गतोऽन्तरिक्षं देवांगनां समधिगम्य युतो विमाने ।
तावत्प्रिया हुतवहे सुसमर्प्य देहं जग्राह कान्तमबला सबला स्वकीया ॥ ११ ॥
युद्धे मृतौ च सुभटौ दिवि सङ्गतौ तावन्योन्यशस्त्रनिहतौ सह सम्प्रयातौ ।
तत्रैव जघ्नतुरलं परमाहितावेकाप्सरोऽर्थविहतौ कलहाकुलौ च ॥ १२ ॥
कश्चिद्युवा समधिगम्य सुराङ्गनाम्वै रूपाधिकां गुणवतीं किल भक्तियुक्तः ।
स्वीयान्गुणान्प्रवितताद्प्रवदंस्तदाऽसौ तां प्रेमदामनुचकार च योगयुक्तः ॥१३॥
भौमं रजोऽतिविततं दिवि संस्थितञ्च रात्रिञ्चकार तरणिं च समावृणोद्यम् ।
मग्नं तदेव रुधिराम्बुनिधावकस्मात्प्रादुर्बभूव रविरप्यतिकान्तियुक्तः ॥ १४ ॥
कश्चिद्गतस्तु गगनं किल देवकन्यां सम्प्राप्य चारुवदनां किल भक्तियुक्ताम् ।
नांगीचकार चतुरो व्रतनाशभीतो यास्यत्ययं मम वृथा ह्यनुकूलशब्दः ॥ १५ ॥
संग्रामे सम्वृते तत्र युधाजित्पृथिवीपतिः । जघान वीरसेनन्तं बाणैस्तीव्रैः सुदारुणैः
निहतःस पपातोर्व्यां छिन्नमूर्धा महीपतिः । प्रभग्नं तद्बलं सर्वं निर्गतञ्च चतुर्दिशम्
मनोरमा हतं श्रुत्वा पितरं रणमूर्धनि । भयत्रस्ताऽथ सञ्जाता पितुर्वैरमनुस्मरन् ॥

हनिष्यति युधाजिद्वै पुत्रं मम दुराशयः ।
राज्यलोभेन पापात्मा सेति चिन्तापराऽभवत् ॥ १६ ॥

किं करोमि क्व गच्छामिपितामेनिहतोरणे । भर्ताचापिमृतोऽद्यैव पुत्रोऽयंमम बालकः
लोभोऽतीवचपापिष्ठस्तेनको न वशीकृतः । किं न कुर्यात्तदाविष्टःपापंपार्थिवसत्तमः
पितरं मातरं भ्रातृन्गुरून्स्वजनबान्धवान् । हन्तिलोभसमाविष्टोजनो नात्रविचारणा
अभक्ष्यभक्षणं लोभादगम्यागमनं तथा । करोति किल तृष्णार्तो धर्मत्यागन्तथापुनः
नसहायोऽस्तिमेकश्चिन्नगरेऽत्रमहाबलः । यदाधारेस्थिता चाहं पालयामि सुतं शुभम्
हतेपुत्रेनृपेणाद्य किंकरिष्याम्यहम्पुनः । नमेभ्राताऽस्ति भुवने येन वै सुस्थिता ह्यहम्

साऽपि वैरयुता कामं सपत्नी सर्वदा भवेत् ।
लीलावती न मे पुत्रे भविष्यति दयावती ॥ २६ ॥

युधाजितिसमायाते न मे निःसरणंभवेत् । ज्ञात्वाबालंसुतंसोऽद्यकारागारंनयिष्यति
श्रूयते हि पुरेन्द्रेण मातुर्गर्भगतः शिशुः । कृन्तितः सप्तधापश्चात्कृतास्ते सप्त सप्तधा
प्रविश्य चोदरंमातुःकरेकृत्वाऽल्पकंपविम् । एकोनपञ्चाशदपि तेऽभवन्मरुतो दिवि॥
सपत्न्यै गरलं दत्तं सपत्न्या नृपभार्यया । गर्भनाशार्थमुद्दिश्य पुरैतद्वै मया श्रुतम् ॥
जातस्तु बालकःपश्चाद्देहेविषयुतः किल । तेनासौ सगरो नाम विख्यातोभुविमण्डले
जीवमानोऽथभर्त्तावै कैकेय्या नृपभार्यया । रामः प्रव्राजितोज्येष्ठो मृतो दशरथोनृपः

मन्त्रिणस्त्ववशाः कामं ये मे पुत्रं सुदर्शनम् ।
राजानं कर्तुकामा वै युधाजिद्वशगाश्च ते ॥ ३३ ॥

नमेभ्राताथाशूरो यो मे बन्धात्प्रमोचयेत् । महत्कष्टञ्च सम्प्राप्तंमयावैदैवयोगतः ॥
उद्यमःसर्वथाकार्यःसिद्धिर्दैवाद्धि जायते । उपायं पुत्ररक्षार्थ करोम्यद्य त्वरान्विता ॥

इति सञ्चिन्त्य सा बाला विदल्लं चातिमानिनम् ।
निपुणं सर्वकार्येषु चिन्त्यं मन्त्रिवरोत्तमम् ॥ ३६ ॥

समाहूय तमेकान्ते प्रोवाच बहुदुःखिता । गृहीत्वा बालकंहस्ते रुदती दीनमानसा ॥
पिता मे निहतःसंख्ये पुत्रोऽयंबालकस्तथा । युधाजिद्बलवान्राजा किंविधेयंवदस्वमे
तामुवाचविदल्लोऽसौनात्रस्थातव्यमेव च । गमिष्यामोवनेकामंवाराणस्याःपुनःकिल
तत्र मे मातुलःश्रीमान्वर्तते बलवत्तरः । सुबाहुरिति विख्यातो रक्षिता स भविष्यति
युधाजिद्दर्शनोत्कण्ठमनसा नगराद्बहिः । निर्गत्यरथमारुह्य गन्तव्यं नाऽत्र संशयः॥

इत्युक्ता तेन सा राज्ञी गत्वा लीलावतीम्प्रति ।
उवाच पितरं द्रष्टुं गच्छाम्यद्य सुलोचने! ॥ ४२ ॥

इत्युक्त्वारथमारुह्य सैरन्ध्रीसंयुता तदा । विदल्लेन च संयुक्तानिःसृता नगराद्बहिः
त्रस्ताह्यार्ताऽतिकृपणापितुःशोकसमाकुला । दृष्ट्वा युधाजितं भूपंपितरं गतजीवितम्
संस्कार्यं च त्वरायुक्ता वेपमानाभयाकुला । दिनद्वयेन सम्प्राप्ताराज्ञीभागीरथीतटम्
निषादैर्लुण्ठितातत्रगृहीतं सकलं वसु । रथं चापि गृहीत्वा ते निर्गता दस्यवःशठाः
रुदतीसुतमादाय चारुवक्त्रा मनोरमा । निर्ययौ जाह्नवीतीरे सैरन्ध्रीकरलम्बिता ॥

आरुह्य च मयाच्छीघ्रमुडुपं सा भयाकुला । तीर्त्वा भागीरथीं पुण्यां ययौ त्रिकूटपर्वतम्
भारद्वाजाश्रमं प्राप्ता त्वरयाच भयाकुला । संवीक्ष्य तापसांस्तत्र सञ्जाता निर्भया तदा
मुनिना सा ततः पृष्टा काऽसि कस्य परिग्रहः । कष्टेनात्र कथं प्राप्ता सत्यं ब्रूहि शुचिस्मिते

देवी वा मानुषी वाऽसि बालपुत्रा वने कथम् ।

राज्यभ्रष्टेव वामोरु! भासि त्वं कमलेक्षणे !॥ ५१ ॥

एवं सा मुनिना पृष्टा नोवाच वरवर्णिनी । रुदती दुःखसन्तप्ता विदल्लञ्च समादिशत्
विदल्लस्तमुवाचेदं ध्रुवसन्धिर्नृपोत्तमः । तस्य भार्या धर्मपत्नी नाम्ना चेयं मनोरमा ॥
सिंहेन निहतो राजा सूर्यवंशी महाबलः । पुत्रोऽयं नृपतेस्तस्य नाम्ना चैव सुदर्शनः॥
अस्याः पिताऽतिधर्मात्मा दौहित्रार्थं मृतो रणे । युधाजिद्भयसंत्रस्ता सम्प्राप्ता विजने वने
त्वामेव शरणं प्राप्ता बालपुत्रा नृपात्मजा । त्राता भव महाभाग त्वमस्या मुनिसत्तम
आर्तस्य रक्षणे पुण्यं यज्ञाधिकमुदाहृतम् । भयत्रस्तस्य दीनस्य विशेषफलदं स्मृतम्

ऋषिरुवाच

निर्भया वस कल्याणि पुत्रं पालय सुव्रते । न ते भयं विशालाक्षि कर्तव्यं शत्रुसम्भवम्
पालयस्व सुतं कान्तं राजाते ऽयं भविष्यति । नात्र दुःखं तथा शोकः कदाचित्सम्भविष्यति

व्यास उवाच

इत्युक्ता मुनिना राज्ञी स्वस्था सा सम्बभूव ह । उटजे मुनिना दत्ते वीतशोका तदाऽवसत्
सैरन्ध्री सहिता तत्र विदल्लेन च संयुता । सुदर्शनं पालयाना न्यवसत्सा मनोरमा॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां तृतीयस्कन्धे
मनोरमयाभारद्वाजाश्रमप्रतिगमनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

षोडशोऽध्यायः

युधाजितःसुदर्शनजिघांसयाभारद्वाजाश्रमम्प्रतिगमनम्

व्यास उवाच

युधाजित्स्वथसंग्रामादागत्वाऽयोध्यांमहाबलः। मनोरमां च पप्रच्छ सुदर्शनजिघांसया
सेवकान्प्रेषयामास क्व गतेतिमुहुर्वदन्। शुभेदिनेऽथदौहित्रं स्थापयामास चाऽऽसने
मन्त्रिभिश्च वसिष्ठेन मन्त्रैराथर्वणैः शुभैः। अभिषिक्तश्च सम्पूर्णैःकलशैर्जलपूरितैः॥
भेरीशङ्खनिनादैश्च तूर्याणांचाथ निःस्वनैः। उत्सवस्तु नगर्यां वै सम्बभूव कुरूद्वह

विप्राणां वेदपाठैश्च बन्दिनां स्तुतिभिस्तथा।

अयोध्या मुदितेवाऽऽसीज्जयशब्दैः सुमङ्गलैः॥ ५॥

हृष्टपुष्टजनाकीर्णा स्तुतिवादित्रनिःस्वना। नवेतस्मिन्महीपाले पूर्वभौ नूतनेव सा.

केचित्साधुजना ये वै चक्रुः शोकं गृहे स्थिताः।

सुदर्शनं विचिन्त्याद्य क्व गतोऽसौ नृपात्मजः॥ ७॥

मनोरमाऽतिसाध्वी सा क्व गता सुतसंयुता।

पिताऽस्या निहतः संख्ये राज्यलोभेन वैरिणा॥ ८॥

इत्येवं चिन्त्यमानास्ते साधवः समबुद्धयः। अतिष्ठन्दुःखितास्तत्र शत्रुजिद्वशवर्तिनः॥

युधाजिदपि दौहित्रं स्थापयित्वा विधानतः।

राज्यञ्च मन्त्रिसात्कृत्वा चलितः स्वां पुरीम्प्रति॥ १०॥

श्रुत्वासुदर्शनन्तत्र मुनीनामाश्रमे स्थितम्। हन्तुकामोजगामाऽऽशुचित्रकूटंसपर्वतम्
निषादाधिपतिशूरं पुरस्कृत्य बलाभिधम्। दुर्दर्शाख्यमगादाशु शृङ्गवेरपुराधिपम्॥
श्रुत्वा मनोरमातत्रबभूवातिसुदुःखिता। आगच्छन्तंबालपुत्राभयार्ता सैन्यसंयुतम्

तमुवाचाऽतिशोकार्ता मुनिं साऽश्रुविलोचना।

किं करोमि क्व गच्छामि युधाजित्समुपस्थितः॥ १४॥

पितामे निहतोऽनेन दौहित्रोभूपतिःकृतः । सुतंमे हन्तुकामोऽत्रसमायातिबलान्वितः

पुरा श्रुतं मया स्वामिन्पाण्डवा वै वने स्थिताः ।

मुनीनामाश्रमे पुण्ये पाञ्चाल्या सहितास्तदा ॥ १६ ॥

गतास्तेमृगयां पार्था भ्रातरः पञ्च एव ते । द्रौपदीसंस्थितातत्र मुनीनामाश्रमे शुभे

धौम्योऽत्रिर्गालवः पैलो जाबालिर्गौतमो भृगुः ।

च्यवनश्चाऽत्रिगोत्रश्च कण्वश्चैव जतुः क्रतुः ॥ १८ ॥

वीतिहोत्रः सुमन्तुश्च यज्ञदत्तोऽथ वत्सलः । राशासनःकहोडश्च यवक्रीर्यज्ञकृत्क्रतुः॥

एतेचान्येचमुनयोभारद्वाजादयः शुभाः । वेदपाठयुताः सर्वे संस्थिताश्चाश्रमेस्थिताः

दासीभिःसहितातत्र याज्ञसेनी स्थितामुने । आश्रमेचारुसर्वाङ्गी निर्भया मुनिसम्वृते

पार्थामृगानुगास्तावत्प्रयाताश्च वनाद्वनम् । धनुर्बाणधरावीराः पञ्चैव शत्रुतापनाः ॥

तावत्सिन्धुपतिः श्रीमान्मार्गस्थो बलसंयुतः ।

आगतश्चाश्रमाभ्याशे श्रुत्वा तु निगमध्वनिम् ॥ २३ ॥

श्रुत्वा वेदध्वनिं राजा मुनीनां भावितात्मनाम् । उत्ततार रथात्तूर्णंदर्शनाकांक्षयान्नृपः

यदा निरगमत्तत्र भृत्यद्वयसमन्वितः । वेदपाठयुतान्वीक्ष्य मुनीनुद्यमसंस्थितः ॥

कृताञ्जलिपुटः स्वामिन्संस्थितोऽथ जयद्रथः । आश्रमे मुनिभिर्जुष्टेभूपतिःसंविवेशह

तत्रोपविष्टंराजानंद्रष्टुकामाःस्त्रियस्तदा । आययुर्मुनिभार्याश्चकोऽयमित्यब्रुवन्नृपम्

तासां मध्ये वरारोहा याज्ञसेनी समागता । जयद्रथेन दृष्टा सा रूपेण श्रीरिवापरा

तां विलोक्याऽसितापाङ्गीं देवकन्यामिवापराम् ।

पप्रच्छ नृपतिर्धौम्यं केयं श्यामा वरानना ॥ २६ ॥

भार्याकस्य सुताकस्य नाम्नाका वरवर्णिनी । रूपलावण्यसंयुक्ता शचीव वसुधाङ्गता

बर्बूलवनमध्यस्था लवङ्गलतिका यथा । राक्षसीवृन्दगा नूनंरम्भेवाऽऽभातिभामिनी

सत्यंवद महाभाग कस्येयं वल्लभाऽबला । राजपत्नीव चाऽऽभाति नैवामुनिवधूर्द्विज

धौम्य उवाच

पाण्डवानां प्रिया भार्याद्रौपदी शुभलक्षणा । पाञ्चालीसिन्धुराजेन्द्रवसत्यत्रवराश्रमे

जयद्रथ उवाच

क्व गताः पाण्डवाः पञ्चशूराःसम्प्रतिविश्रुताः । वसन्त्यत्रवनेवीरावीतशोकामहाबलाः

धौम्य उवाच

मृगयार्थंगताःपञ्चपाण्डवारथसंस्थिताः । आगमिष्यन्तिमध्याह्नेमृगानादायपार्थिवाः
तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य उदतिष्ठदसौनृपः । द्रौपदीसन्निधौ गत्वा प्रणम्येदमुवाच ह
कुशलं ते वरारोहे क्व गताः पतयश्च ते । एकादश गतान्यद्य वर्षाणि च वने किल ॥

द्रौपदी तु तदोवाच स्वस्ति तेऽस्तु नृपात्मज !।
विश्रमस्वाश्रमाभ्याशे क्षणादायान्ति पाण्डवाः ॥ ३८ ॥

एवं ब्रुवन्त्यां तस्यांतुलोभाविष्टःस भूपतिः । जहारद्रौपदींवीरोऽनादृत्यमुनिसत्तमान्
कस्यचिन्नैव विश्वासःकर्तव्यःसर्वथाबुधैः । कुर्वन्दुःखमवाप्नोतिदृष्टान्तस्त्वत्रवैबलिः
वैरोचनसुतः श्रीमान्धर्मिष्ठः सत्यसङ्गरः । यज्ञकर्ता च दाता च शरण्यः साधुसम्मतः
नाधर्मे निरतः क्वापि प्रह्लादस्य च पौत्रकः । एकोनशतयज्ञान्वै स चकारसदक्षिणान्

सत्त्वमूर्तिः सदाविष्णुः सेव्यः स योगिनामपि ।
निर्विकारोऽपि भगवान्देवकार्यार्थसिद्धये ॥ ४३ ॥

कश्यपाच्च समुद्भूतो विष्णुः कपटवामनः । राज्यंछलेनहृतवान्महीं चैवससागराम्
सोऽभवत्सत्यवाग्राजा बलिर्वैरोचनिस्तदा । कपटं कृतवान्विष्णुरिन्द्रार्थेतुमयाश्रुतम्
अन्यः किं न करोत्येवं कृतं वै सत्त्वमूर्तिना । वामनं रूपमास्थाययज्ञपातंचिकीर्षता
नचविश्वसितव्यंवैकदाचित्केनचित्तथा । लोभश्चेतसिचेत्स्वामिन्कोद्भवपापकृतंभयम्

लोभाहताः प्रकुर्वन्ति पापानि प्राणिनः किल ।
परलोकाद्भयं नास्ति कस्यचित्कर्हिचिन्मुने ॥ ४८ ॥

मनसा कर्मणा वाचा परस्वादानहेतुतः । प्रपतन्ति नराः सम्यग्लोभोपहतचेतसः ॥
देवानाराध्य सततं वाञ्छन्ति च धनं नराः । नदेवास्तत्करेकृत्वासमर्थादातुमञ्जसा
अन्यस्यानीय तेवित्तंप्रयच्छन्तिमनीषितम् । वाणिज्येनाथदानेन चौर्येणापिबलेनवा
विक्रयार्थं गृहीत्वाच धान्यवस्त्रादिकं बहु । देवानर्चयते वैश्यो महर्द्धिर्मेभवेदिति ॥

नाऽत्र किम्परवित्तेच्छा वाणिज्येनपरन्तपः । ग्रहणकालेतुसम्प्राप्तेमहर्षंचापिकांक्षति
एवं हि प्राणिनः सर्वे परस्वादानतत्पराः । वर्तन्ते सततंब्रह्मन्विश्वासः कीदृशः पुनः
वृथातीर्थं वृथादानं वृथाऽध्ययनमेव च । लोभमोहवृतानां वै कृतं तदकृतं भवेत् ॥
तस्मादेनं महाभाग विसर्जय गृहंप्रति । सपुत्राऽहं वसिष्यामिज्ञानकीवद् द्विजोत्तम

इत्युक्तोऽसौ मुनिस्तावद्गत्वा युधाजितं नृपम् ।
उवाच वचनं राज्ञे भारद्वाजः प्रतापवान् ॥ ५७ ॥

गच्छराजन्यथाकामं स्वपुरं नृपसत्तम । नेयं मनोरमाऽस्येति बालपुत्रा सुदुःखिता

युधाजिदुवाच

मुने मुञ्च हठं सौम्यंविसर्जयमनोरमाम् । नच यास्याम्यहंमुक्त्वानेष्याम्यद्यबलात्पुनः

ऋषिरुवाच

नयस्वयदि शक्तिस्ते बलेनाद्य ममाश्रमात् । विश्वामित्रो यथाधेनुंवसिष्ठस्यमुनेःपुरा

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां तृतीयस्कन्धे
युधाजिद्भारद्वाजयोःसम्वादवर्णनंनामषोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

सप्तदशोऽध्यायः

वृद्धमन्त्रिणासहयुधाजितःपरामर्शः

व्यास उवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तस्य मुनेस्तत्रावनीपतिः । मन्त्रिवृद्धं समाहूयपप्रच्छ समतन्द्रितः॥
किं कर्तव्यं सुबुद्धेऽत्र मयाऽद्य वदसुव्रत । बलान्नयामि तांकामंसपुत्रांचसुभाषिणीम्
रिपुरल्पोऽपि नोपेक्ष्यः सर्वथा शुभमिच्छता । राजयक्ष्मेवसंवृद्धोमृत्यवेपरिकल्पयेत्
नाऽत्रसैन्यंनयोद्धाऽस्तियोमामत्रनिवारयेत् । गृहीत्वाहन्मितंतत्रदौहित्रस्यरिपुंकिल
निष्कण्टकं भवेद्राज्यं यतास्यद्य बलादहम् । हते सुदर्शनेनूनंनिर्भयोऽसौ भवेदिति ॥

प्रधान उवाच

साहसं न हि कर्तव्यं श्रुतंराजन्मुनेर्वचः । विश्वामित्रस्यदृष्टान्तःकथितस्तेन मारिष
पुरागाधिसुतःश्रीमान्विश्वामित्रोऽतिविश्रुतः । विचरन्सनृपश्रेष्ठोवसिष्ठाश्रममभ्यगात्
नमस्कृत्य च तं राजा विश्वामित्रः प्रतापवान् । उपविष्टोनृपश्रेष्ठो मुनिनादत्तविष्टरः
निमन्त्रितोवसिष्ठेनभोजनायमहात्मना । ससैन्यश्चस्थितोराजागाधिपुत्रोमहायशाः
नन्दिन्याऽऽसादितं सर्वं भक्ष्यभोज्यादिकं च यत् ।
भुक्त्वा राजा ससैन्यश्च वाञ्छितं तत्र भोजनम् ॥ १० ॥
प्रतापं तं च नन्दिन्याः परिज्ञायसपार्थिवः । ययाचेनन्दिनींराजावसिष्ठंमुनिसत्तमम्

विश्वामित्र उवाच

मुने धेनुसहस्रं ते घटोध्नीनां ददाम्यहम् । नन्दिनीं देहि मे धेनुं प्रार्थयामि परन्तप

वसिष्ठ उवाच

होमधेनुरियं राजन्न ददामि कथञ्चन । सहस्रंचापि धेनूनां तवेदं तव तिष्ठतु ॥ १३ ॥

विश्वामित्र उवाच

अयुतं वाऽथ लक्षंवा ददामिमनसेप्सितम् । देहिमे नन्दिनींसाधोग्रहीष्यामिबलादथ

वसिष्ठ उवाच

कामं गृहाणनृपते बलादद्य यथारुचि । नाहं ददामि ते राजन्स्वेच्छयानन्दिनींगृहात्
तच्छ्रुत्वा नृपतिर्भृत्यानादिदेशमहाबलान् । नयध्वं नन्दिनीं धेनुं बलदर्पसुसंस्थिताः
ते भृत्याजगृहुर्धेनुं हठादाक्रम्य यन्त्रिताम् । वेपमाना मुनिंप्राहसुरभिः साश्रुलोचना
मुनेत्यजसिमांकस्मात्कर्षयन्तिसुयन्त्रिताम् । मुनिस्तांप्रत्युवाचेदंत्यजेनाऽहंसुदुग्धदे
बलाज्जयति राजाऽसौ पूजितोऽद्य मया शुभे !।
किं करोमि न चेच्छामि त्यक्तुं त्वां मनसा किल ॥ १६ ॥
इत्युक्ता मुनिनाधेनुः क्रोधयुक्ता बभूव ह । हंभारवं चकाराऽऽशु क्रूरशब्दं सुदारुणम्
उद्गतास्तत्र देहात्तु दैत्याघोरतरास्तदा । सायुधास्तिष्ठ तिष्ठेति ब्रुवन्तः कवचावृताः
सैन्यंसर्वंहतंतैस्तुनन्दिनीप्रतिमोचिता । एकाकीनिर्गतोराजाविश्वामित्रोऽतिदुःखितः

हन्त पापोऽतिदीनात्मा निन्दन्क्षात्त्रबलं महत् ।
ब्राह्मं बलं दुराराध्यं मत्वा तपसि संस्थितः ॥ २३ ॥

तप्त्वा बहूनिवर्षाणितपोघोरं महावने । ऋषित्वंप्रापगाधेयस्त्यक्त्वाक्षात्त्रंविधिंपुनः
तस्मात्त्वमपि राजेन्द्र माकुथावैरमद्भुतम् । कुलनाशकरं नूनं तापसैः सह संयुगम्
मुनिवर्यंव्रजाद्यत्वंसमाश्वास्यतपोनिधिम् । सुदर्शनोऽपि राजेन्द्रतिष्ठत्वत्रयथासुखम्
बालोऽयंनिर्धनः किं ते करिष्यतिनृपाहितम् । वृथातेवैरभावोऽयमनाथेदुर्बले शिशौ
दया सर्वत्र कर्तव्या दैवाधीनमिदञ्जगत् । ईर्ष्यया किं नृपश्रेष्ठ यद्भाव्यं तद्भविष्यति ॥
वज्रं तृणायते राजन्दैवयोगान्न संशयः । तृणं वज्रायते क्वाऽपि समये दैवयोगतः २९

शशको हन्ति शार्दूलं मशको वै यथा गजम् ।
साहसं मुञ्च मेधाविन्कुरु मे वचनं हितम् ॥ ३० ॥

व्यास उवाच

तच्छ्रुत्वा वचनन्तस्य युधाजिन्नृपसत्तमः । प्रणम्य तं मुनिं मूर्ध्ना जगामस्वपुरं नृपः
मनोरमाऽपि स्वस्थाऽभूदाश्रमेतत्रसंस्थिता । पालयामासपुत्रं तं सुदर्शनमृतव्रतम् ॥
दिने दिने कुमारोऽसौ जगामोपचयं ततः । मुनिबालगतः क्रीडन्निर्भयःसर्वतः शुभः॥
एकस्मिन्समये तत्र विदल्लं समुपागतम् । क्लीबेति मुनिपुत्रस्तमामन्त्रयत्तदन्तिके ॥
सुदर्शनस्तु तच्छ्रुत्वा दधारैकाक्षरं स्फुटम् । अनुस्वारयुतं तच्च प्रोवाचाति पुनः पुनः
बीजं वै कामराजाख्यं गृहीतंमनसातदा । जजापबालकोऽत्यर्थंधृत्वा चेतसिसादरम्
भावियोगान्महाराज कामराजाख्यमद्भुतम् । स्वभावेनैव तेनेत्थं गृहीतं बालकेन वै
तदाऽसौ पञ्चमेवर्षेप्राप्यमन्त्रमनुत्तमम् । ऋषिच्छन्दोविहीनञ्चध्यानन्यासविवर्जितम्

प्रजपन्मनसा नित्यं क्रीडत्यपि स्वपित्यपि ।
विसस्मार न तं मन्त्रं ज्ञात्वा सारमिति स्वयम् ॥ ३६ ॥

वर्षेचैकादशे प्राप्तेकुमारोऽसौनृपात्मजः । मुनिना चोपनीतोऽथ वेदमध्यापितस्तथा
धनुर्वेदंतथासाङ्गं नीतिशास्त्रं विधानतः । अभ्यस्ताःसकलाविद्यास्तेन मन्त्रबलाद्विभो
कदाचित्सोऽपि प्रत्यक्षं देवीरूपं ददर्श ह । रक्ताम्बरं रक्तवर्णं रक्तसर्वाङ्गभूषणम् ॥

गरुडे वाहने संस्थां वैष्णवीं शक्तिमद्भुताम् । दृष्ट्वा प्रसन्नवदनः स बभूव नृपात्मजः॥
वने तस्मिन्स्थितः सोऽथ सर्वविद्यार्थतत्त्ववित् । मातरं सेवमानस्तु विजहार नदीतटे
शरासनञ्च सम्प्राप्तं विशिखाश्च शिलाशिताः । तूणीरं कवचं तस्मै दत्तं चाम्बिकया वने
एतस्मिन्समये पुत्री काशीराजस्य सुप्रिया । नाम्ना शशिकला दिव्या सर्वलक्षणसंयुता
शुश्राव नृपपुत्रं तं वनस्थञ्च सुदर्शनम् । सर्वलक्षणसम्पन्नं शूरं काममिवापरम् ॥ ४७
बन्दीजनमुखाच्छ्रुत्वा राजपुत्रं सुसम्मतम् । चकमे मनसा तम्वै वरं वरयितुं धिया ॥
स्वप्ने तस्याः समागम्य जगदम्बा निशान्तरे । उवाच वचनञ्चेदं समाश्वास्य सुसंस्थिता
वरं वरय सुश्रोणि! मम भक्तः सुदर्शनः । सर्वकामप्रदस्तेऽस्तु वचनान्मम भामिनि !

एवं शशिकला दृष्ट्वा स्वप्ने रूपं मनोहरम् ।
अम्बाया वचनं स्मृत्वा जहर्ष भृशमानिनी ॥ ५१ ॥

उत्थिता सा मुदा युक्ता पृष्टा मात्रा पुनः पुनः । प्रमोदे कारणं बाला नोवाचातित्रपान्विता
जहास मुदमापन्ना स्मृत्वा स्वप्नं मुहुर्मुहुः । सखीम्प्राह तदाऽन्याम्वै स्वप्नवृत्तं सविस्तरम्
कदाचित्सा विहारार्थमवापोपवनं शुभम् । सखीयुक्ता विशालाक्षी चम्पकैरुपशोभितम्

पुष्पाणि चिन्वती बाला चम्पकाधः स्थिताऽबला
अपश्यद्ब्राह्मणं मार्गे आगच्छन्तं त्वरान्वितम् ॥ ५५ ॥

तं प्रणम्य द्विजं श्यामा बभाषे मधुरं वचः । कुतो देशान्महाभाग कृतमागमनं त्वया ॥

द्विज उवाच

भारद्वाजाश्रमाद्बाले नूनमागमनं मम । जातम्वै कार्ययोगेन किं पृच्छसि वदस्व माम्

शशिकलोवाच

तत्राश्रमे महाभाग वर्णनीयं किमस्ति वै । लोकातिगं विशेषेण प्रेक्षणीयतमं किल ॥

ब्राह्मण उवाच

ध्रुवसन्धिसुतः श्रीमानास्ते सुदर्शनो नृपः । यथार्थनामा सुश्रोणि वर्तते पुरुषोत्तमः
तस्यलोचनमत्यन्तं निष्फलम्प्रतिभाति मे । ये न दृष्टो न वामोरु कुमारस्तु सुदर्शनः
एकत्र निहिता धात्रा गुणाः सर्वे सिसृक्षुणा । गुणानामाकरं द्रष्टुं मन्ये तेनैव कौतुकात्

तव योग्यः कुमारोऽसौ भर्ता भवितुमर्हति ।
योगोऽयं विहितोऽप्यासीन्मणिकाञ्चनयोरिव ॥ ६२ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यांसंहितायां तृतीयस्कन्धे विश्वामित्रकथोत्तरंराजपुत्रस्यकामबीजप्राप्तिवर्णनंनाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

अष्टादशोऽध्यायः

काशीराजसुतयाशशिकलयामनसापतिरूपेणसुदर्शनवरणम्

व्यास उवाच

श्रुत्वा तद्वचनंश्यामाप्रेमयुक्ताबभूवह । प्रतस्थे ब्राह्मणस्तस्मात्स्थानादुक्त्वासमाहितः
सा तु पूर्वानुरागार्द्रे मग्नाप्रेम्णाऽतिचञ्चला । कामबाणहतेवासगते तस्मिन्द्विजोत्तमे
अथ कामार्दिताप्राह सखीं छन्दोनुवर्तिनीम् । विकारश्च समुत्पन्नो देहेयच्छ्रवणादनु
अज्ञातरसविज्ञानं कुमारं कुलसम्भवम् । दुनोति मदनः पापःकिंकरोमि क्व यामि च
स्वप्नेषु वा मया दृष्टः पञ्चबाण इवाऽपरः । तपते मे मनोऽत्यर्थं विरहाकुलितं मृदु॥
चन्दनन्देहलग्नं मे विषवद्भातिभामिनि । स्रगियं सर्पवच्चैव चन्द्रपादाश्च वह्निवत् ॥
नच हर्म्यवनेशंमे दीर्घिकायां न पर्वते । न दिवा न निशायां वा न सुखं सुखसाधनैः
न शय्या न च ताम्बूलं न गीतं न च वादनम् । प्रीणयन्तिमनोमेऽद्य नतृप्तेममलोचने
प्रयाम्यद्य वने तत्र यत्रासौ वर्तते शठः । भीताऽस्मिकुललज्जायाःपरतन्त्रापितुस्तथा
स्वयम्वरं पितामेऽद्य न करोति करोमि किम् ।
दास्यामि राजपुत्राय कामं सुदर्शनाय वै ॥ १० ॥
संत्यन्येपृथिवीपालाःशतशःसम्भृतर्द्धयः । रमणीयान मे तेऽद्यराज्यहीनोऽप्यसौमतः

व्यास उवाच

एकाकी निर्धनश्चैव बलहीनः सुदर्शनः । वनवासीफलाहारस्तस्याश्चित्ते सुसंस्थितः

वाग्बीजस्य जपात्सिद्धिस्तस्या एषाऽप्युपस्थिता ।
सोऽपि ध्यानपरोऽत्यन्तं जजाप मन्त्रमुत्तमम् ॥ १३ ॥
स्वप्ने पश्यत्यसौ देवीं विष्णुमायामखण्डिताम् ।
विश्वमातरमव्यक्तां सर्वसम्पत्कराम्बिकाम् ॥ १४ ॥

शृङ्गवेरपुराध्यक्षो निषादः समुपेत्यतम् । ददौ रथवरं तस्मै सर्वोपस्करसंयुतम् ॥
चतुर्भिस्तुरगैर्युक्तं पताकावरमण्डितम् । जैत्रं राजसुते ज्ञात्वा ददौ चोपायनं तदा ॥

सोऽपि जग्राह तत्प्रीत्या मित्रत्वेन सुसंस्थितम् ।
वन्यैर्मूलफलैः सम्यगर्चयामास शम्बरम् ॥ १७ ॥

कृतातिथ्येगते तस्मिन्निषादाधिपतौ तदा । मुनयः प्रीतियुक्तास्ते तमूचुस्तपसा मिथः
राजपुत्रध्रुवंराज्यंप्राप्स्यसि त्वं च सर्वथा । स्वल्पैरहोभिरव्यग्रः प्रतापान्नात्रसंशयः
प्रसन्नातेऽम्बिकादेवी वरदा विश्वमोहिनी । सहायस्तु सुसम्पन्नोनचिन्तांकुरु सुव्रत
मनोरमां तथोचुस्ते मुनयःसंस्थितव्रताः । पुत्रस्तेऽद्यधराधीशोभविष्यतिशुचिस्मिते

सा तानुवाच तन्वङ्गी वचनं वोऽस्तु सत्फलम् ।
दासोऽयं भवतां विप्राः किं चित्रं सदुपासनात् ॥ २२ ॥

न सैन्यं सचिवाःकोशोनसहायश्चकश्चन । केन योगेन पुत्रोमे राज्यं प्राप्तुमिहार्हति
आशीर्वादैश्च वोनूनंपुत्रोऽयं मे महीपतिः । भविष्यतिनसन्देहोभवन्तोमन्त्रवित्तमाः

व्यास उवाच

रथारूढः स मेधावी यत्रयातिसुदर्शनः । अक्षौहिणीसमावृत्त इवाऽऽमातिस तेजसा
प्रतापो मन्त्रबीजस्य नान्यः कश्चन भूपते । एवं वै जपतस्तस्य प्रीतियुक्तस्य सर्वदा

संप्राप्य सद्गुरोर्बीजं कामराजाख्यमद्भुतम् ।
जपेद्यस्तु शुचिः शान्तः सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥ २७ ॥

न तदस्ति पृथिव्यां वा दिविवापिसुदुर्लभम् । प्रसन्नायाशिवायाश्चयदप्राप्यंनृपोत्तम
तेमन्दास्तेऽतिदुर्भाग्यारोगैस्तेचाभिद्रुताः । येषांचित्तेनविश्वासोभवेदम्बार्चनादिषु
या मातासर्वदेवानां युगादौ परिकीर्तिता । आदिमातेतिविख्याता नाम्नातेनकुरूद्वह

बुद्धिः कीर्तिर्धृतिर्लक्ष्मीः शक्तिः श्रद्धा मतिः स्मृतिः ।
सर्वेषां प्राणिनां सा वै प्रत्यक्षं वै विभासते ॥ ३१ ॥

न जानन्ति नरायेवैमोहितामायया किल । नभजन्तिकुतर्कज्ञादेवींविश्वेश्वरींशिवाम्
ब्रह्माविष्णुस्तथा शम्भुर्वासवोवरुणो यमः । वायुरग्निः कुबेरश्चत्वष्टापूषाऽश्विनौभगः

आदित्यावसवो रुद्रा विश्वेदेवा मरुद्गणाः ।
सर्वे ध्यायन्ति तां देवीं सृष्टिस्थित्यंतकारिणीम् ॥ ३४ ॥

कोनसेवेतविद्वान्वै तांशक्तिपरमात्मिकाम् । सुदर्शनेनसा ज्ञाता देवी सर्वार्थदा शिवा
ब्रह्मैवसाऽतिदुष्प्रापाविद्याऽविद्यास्वरूपिणी । योगगम्यापराशक्तिर्मुमुक्षूणाञ्चवल्लभा
परमात्मस्वरूपं को वेत्तुमर्हति तां विना । यासृष्टिंत्रिविधांकृत्वादर्शयत्यखिलात्मने
सुदर्शनस्तु तां देवीं मनसापरिचिन्तयन् । राज्यलाभात्परंप्राप्यसुखं वैकाननेस्थितः
साऽपिचन्द्रकलात्यर्थं कामबाणप्रपीडिता । नानोपचारैरनिशं दधार दुःखितं वपुः
तावत्तस्याःपिताज्ञात्वाकन्यांपुत्रवरार्थिनीम् । सुबाहुःकारयामासस्वयम्वरमतन्द्रितः
स्वयम्वरस्तुत्रिविधोविद्वद्भिःपरिकीर्तितः । राज्ञांविवाहयोग्योवैनान्येषांकथितःकिल
इच्छास्वयम्वरश्चैको द्वितीयश्चपणाभिधः । यथारामेणभग्नं वै त्र्यंबकस्य शरासनम्
तृतीयःशौर्यशुल्कश्च शूराणां परिकीर्तितः । इच्छास्वयम्वरं तत्र चकार नृपसत्तमः ॥

शिल्पिभिः कारिता मञ्चाः शुभैरास्तरणैर्युताः ।
ततश्च विविधाकाराः सुक्लृप्ताः सभ्यमण्डपाः ॥ ४४ ॥

एवंकृतेऽतिसम्भारे विवाहार्थंसुविस्तरे । सखीं शशिकलाप्राह दुःखिता चारुलोचना
इदं मे मातरं ब्रूहि त्वमेकान्तेवचोमम । मया वृतः पतिश्चित्ते ध्रुवसन्धिसुतः शुभः ॥
नाऽन्यं वरंवरिष्यामि तमृते वै सुदर्शनम् । स मे भर्तानृपसुतोभगवत्या प्रतिष्ठितः॥

व्यास उवाच

इत्युक्ता सा सखीगत्वामातरं प्राह सत्वरा । वैदर्भीविजनेवाक्यंमधुरंमञ्जुभाषिणी

पुत्री ते दुःखिता प्राह साध्वि ! त्वां मन्मुखेन यत् ।
शृणु त्वं कुरु कल्याणि ! तद्धितं त्वरिताऽधुना ॥ ४६ ॥

भारद्वाजाश्रमेपुण्येध्रुवसन्धिसुतोऽस्ति यः । स मे भर्त्ताकृतश्चित्तेनान्यंभूपं वृणोम्यहम्

व्यास उवाच

राज्ञीतद्वचनं श्रुत्वा स्वपतौ गृहमागते । निवेदयामास तदा पुत्रीवाक्यं यथातथम् ॥
तच्छ्रुत्वा वचनं राजा विस्मितःप्रहसन्मुहुः । भार्यामुवाचवैदर्भीं सुबाहुस्तुऋतंवचः
सुभ्रुजानासिबालोऽसौराज्यान्निष्कासितोवने । एकाकीसहमात्रावैवसतेनिर्जने वने
तत्कृते निहतो राजा वीरसेनोयुधाजिता । सकथंनिर्धनोभर्तायोग्यःस्याच्चारुलोचने

ब्रूहि पुत्रीं ततो वाक्यं कदाचिदपि विप्रियम् ।
आगमिष्यन्ति राजानः क्षितिमन्तः स्वयम्वरे ॥ ५५ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां तृतीयस्कन्धे
शशिकलयामातरंप्रतिसन्देशप्रेषणंनामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

एकोनविंशोऽध्यायः

मात्रास्वपुत्र्यर्थसन्तोषप्रदवार्ताकथनम्

व्यास उवाच

भर्त्रा साऽभिहिता बालां पुत्रीं कृत्वांऽकसंस्थिताम् ।
उवाच वचनं श्लक्ष्णं समाश्वास्य शुचिस्मिताम् ॥ १ ॥

किं वृथा सुदति त्वंहिविप्रियं मम भाषसे । पितातें दुःखमाप्नोति वाक्येनानेसुव्रते
सुदर्शनोऽतिदुर्भाग्योराज्यभ्रष्टोनिराश्रयः । बलकोशविहीनश्च परित्यक्तस्तुबान्धवैः॥
मात्रा सह वनं प्राप्तः फलमूलाशनःकृशः । न ते योग्यो वरोऽयंवै वनवासीच दुर्भगः
राजपुत्राः कृतप्रज्ञा रूपवन्तः सुसंमताः । तवार्हाःपुत्रि सन्त्यन्ये राजचिह्नैरलंकृताः ॥
भ्राताऽस्य वर्ततेकान्तः स राज्यं कोसलेषु वै । करोति रूपसम्पन्नःसर्वलक्षणसंयुतः
अन्यच्चकारणंसुभ्रुशृणुयच्चमया श्रुतम् । युधाजित्सततन्तस्यवधकामोऽस्तिभूमिपः ॥

दौहित्रः स्थापितस्तेन राज्येकृत्वाऽतिसंगरम् ।
वीरसेनं नृपं हत्वा सम्मन्त्र्य सचिवैः सह ॥ ८ ॥
भारद्वाजाश्रमंप्राप्तंहन्तुकामःसुदर्शनम् । मुनिनावारितःपश्चाज्जगाम निजमन्दिरम् ॥

शशिकलोवाच

मातर्ममेप्सितः कामेवनस्थोऽपिनृपात्मजः । शर्यातिवचनेनैव सुकन्याच पतिव्रता ॥
च्यवनं च यथाप्राप्य पतिशुश्रूषणे रता । भर्तृशुश्रूषणंस्त्रीणां स्वर्गदं मोक्षदं तथा ॥
अकैतवकृतं नूनं सुखदं भवति स्त्रियाः । भगवत्या समादिष्टं स्वप्ने वरमनुत्तमम् ॥
तस्मृतेऽहंकथञ्चान्यं संश्रयामिनृपात्मजम् । मच्चित्तभित्तौलिखितो भगवत्यासुदर्शनः
तं विहाय प्रियं कान्तं करिष्येऽहं न चापरम् ।

व्यास उवाच

प्रत्यादिष्टाऽथ वैदर्भी तया बहुनिदर्शनैः ॥ १४ ॥
भर्तारं सर्वमाचष्ट पुत्र्योक्तं वचनं भृशम् । विवाहस्य दिनादर्वाग्गाप्तं श्रुतसमन्वितम्
द्विजं शशिकलातत्र प्रेषयामास सत्वरम् । यथानवेद मे तातस्तथागच्छ सुदर्शनम् ॥
भारद्वाजाश्रमे ब्रूहि मद्वाक्यात्तरसा विभो । पित्रा मे संभृतःकामं मदर्थेन स्वयम्वरः
आगमिष्यन्तिराजानो बलयुक्ताह्यनेकशः । मयात्वं वै वृतश्चित्ते सर्वथाप्रीतिपूर्वकम्
भगवत्या समादिष्टः स्वप्ने मम सुरोपम । विषमग्निहुताशे वा प्रपतामि प्रदीपिते॥
वरयेत्वद्दृतेनान्यं पितृभ्यांप्रेरिताऽपि वा । मनसा कर्मणा वाचा सम्वृतस्त्वंमयावरः
भगवत्या प्रसादेन शर्माचाभ्यांभविष्यति । आगन्तव्यंत्वयाऽत्रैवदैवंकृत्वापरम्बलम्
यदधीनंजगत्सर्वं वर्तते सचराचरम् । भगवत्या यदादिष्टं न तन्मिथ्या भविष्यति
यद्वशे देवताः सर्वा वर्तन्ते शङ्करादयः । वक्तव्योऽसौ त्वया ब्रह्मन्नेकान्तेवैनृपात्मजः
यथाभवति मे कार्यंतत्कर्तव्यंत्वयानघ । इत्युक्त्वादक्षिणांदत्त्वामुनिर्व्यापारितस्तदा
गत्वा सर्वं निवेद्याऽऽशु तत्र प्रत्यागतो द्विजः ।
सुदर्शनस्तु तज्ज्ञात्वा निश्चयं गमने तदा ॥ २५ ॥
चकार मुनिना तेन प्रेरितः परमादरात् ।

व्यास उवाच

गमनायोद्यतं पुत्रं तमुवाच मनोरमा ॥ २८ ॥

वेपमानाऽतिदुःखार्ता जातत्रासाऽश्रुलोचना । कुत्रगच्छसितत्रायसमाजेभूभृतांकिल
एकाकीकृतवैरश्च किंचिन्तियस्वयम्वरे । युधाजिद्धंतुकामस्त्वां समेष्यतिमहीपतिः
न तेऽन्योऽस्ति सहायश्च तस्मान्मा व्रज पुत्रक !।
एकपुत्राऽतिदीनाऽस्मि तवाऽऽधारा निराश्रया ॥ २९ ॥
नार्हसित्वं महाभागनिराशां कर्तुमद्यमाम् । पितामेनिहतोयेनसोऽपितत्रागतो नृपः॥
एकाकिनं गतन्तत्र युधाजित्त्वां हनिष्यति ।

सुदर्शन उवाच

भवितव्यं भवत्येव नाऽत्र कार्या विचारणा ॥ ३१ ॥

आदेशाच्च जगन्मातुर्गच्छाम्यद्य स्वयम्वरे । माशोकंकुरु कल्याणिक्षत्रियासिवरानने
न बिभेमि प्रसादेन भगवत्या निरन्तरम् ।

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा रथमारुह्य गन्तुकामं सुदर्शनम् ॥ ३३ ॥

दृष्ट्वा मनोरमा पुत्रमाशीर्भिश्चान्वमोदयत् । अग्रतस्तेऽम्बिका पातु पार्वतीपातुपृष्ठतः
(पार्वतीपार्श्वयोःपातुशिवःसर्वत्रसाम्प्रतम्)। वाराहीविषमेमार्गेदुर्गादुर्गेषुकर्हिचित्
कालिका कलहे घोरे पातु त्वां परमेश्वरी ॥ ३५ ॥
मण्डपे तत्र मातङ्गी तथासौम्यास्वयंवरे । भवानीभूपमध्ये तु पातु त्वां भवमोचनी
गिरिजा गिरिदुर्गेषु चामुण्डाचत्वरेषुच । कामगा काननेष्वेवं रक्षतु त्वां सनातनी
विवादे वैष्णवी शक्तिरवतात्त्वांरघूद्वह । भैरवी च रणे सौम्य शत्रूणां वै समागमे
सर्वदा सर्वदेशेषु पातु त्वां भुवनेश्वरी । महामाया जगद्धात्री सच्चिदानन्दरूपिणी ॥

व्यास उवाच

इत्युक्त्वातं तदामातावेपमानाभयाकुला । उवाचाहं त्वयासार्धमागमिष्यामिसर्वथा
निमिषार्धं विना त्वांवै नाहंस्थातुमिहोत्सहे । सहैवनयमांवत्सयत्रते गमने मतिः॥

इत्युक्त्वा निःसृतामाता धात्रेयी संयुता तदा । विप्रैर्दत्ताशिषःसर्वे निर्ययुर्हर्षसंयुताः
वाराणस्यां ततः प्राप्तो रथेनैकेन राघवः । ज्ञातः सुबाहुना तत्रपूजितश्चार्हणादिभिः
निवेशार्थं गृहं दत्तमन्नपानादिकं तथा । सेवकं समनुज्ञाप्य परिचर्यार्थमेव च ॥४४॥

मिलितास्त्वथ राजानो नानादेशाधिपाः किल ।
युधाजिदपि सम्प्राप्तो दौहित्रेण समन्वितः ॥ ४५ ॥

करूषाधिपतिश्चैव तथा मद्रेश्वरो नृपः । सिंधुराजस्तथावीरो योद्धा माहिष्मतीपतिः
पाञ्चालःपर्वतीयश्चकामरूपोऽति वीर्यवान् । कार्णाटश्चोलदेशीयोवैदर्भश्च महाबलः ॥
अक्षौहिणीत्रिषष्टिश्चमिलितासंख्यायातदा । वेष्टितानगरीसातु सैन्यैःसर्वत्र संस्थितैः
एते चान्ये च बहवः स्वयंवरदिदृक्षया । मिलितास्तत्र राजानो वरवारणसंयुताः ॥
अन्योऽन्यंनृपपुत्रास्तइत्यूचुर्मिलितास्तदा । सुदर्शनोनृपसुतो ह्यागतोऽस्तिनिराकुलः

एकाकी रथमारुह्य मात्रा सह महामतिः ।
विवाहार्थमिहायातः काकुत्स्थःकिन्नु साम्प्रतम् ॥ ५१ ॥
एतान्राजसुतांस्त्यक्त्वा ससैन्यान्सायुधानथ ।
किमेनं राजपुत्री सा वरिष्यति महाभुजम् ॥ ५२ ॥

युधाजिदथ राजेशस्तानुवाचमहीपतीन् । अहमेनंहनिष्यामिकन्यार्थे नात्र संशयः ॥
केरलाधिपतिः प्राह तं तदा नीतिसत्तमः । नात्रयुद्धं प्रकर्तव्यं राजन्निच्छास्वयंवरे ॥
बलेनहरणंनास्ति नात्र शुल्कस्वयंवरः । कन्येच्छयाऽत्रवरणं विवादः कीदृशस्त्विह
अन्यायेन त्वयापूर्वमसौराज्यात्प्रवासितः । दौहित्रायार्पितं राज्यं बलवन्नृपसत्तम
काकुत्स्थोऽयं महाभागकोसलाधिपतेः सुतः । कथमेनंराजपुत्रंहनिष्यसिनिरागसम्

लप्स्यसे तत्फलं नूनमनयस्य नृपोत्तम !।
शास्ताऽस्ति कश्चिदायुष्माञ्जगतोऽस्य जगत्पतिः ॥ ५८ ॥

धर्मोजयतिनाऽधर्मः सत्यं जयतिनाऽनृतम् । माऽनयं कुरु राजेन्द्रत्यजपापमतिंकिल
दौहित्रस्तवसंप्राप्तःसोऽपिरूपसमन्वितः । राज्ययुक्तस्तथा श्रीमान्कथंतंन वरिष्यति
अन्येराजसुताःकामंवर्तन्ते बलवत्तराः । कन्यास्वयम्वरेकन्यास्वीकरिष्यतिसाम्प्रतम्

वृत्तेत्तथाविवादःकःप्रवदन्तु महीभुजः । परस्परं विरोधोऽत्र न कर्तव्यो विजानता ॥
इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्त्र्यां संहितायां तृतीयस्कन्धे
राजसम्वादवर्णनंनामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

विंशोऽध्यायः

राजसम्वादवर्णनम्

व्यास उवाच

इतिवादिनि भूपाले केरलाधिपतौ तदा । प्रत्युवाच महाभाग युधाजिदपि पार्थिवः॥
नीतिरियं महीपाल यद्व्रवीति भवानिह ।
समाजः पार्थिवानाम्वै सत्यवाग्विजितेन्द्रियः ॥ २ ॥
योग्येषुवर्तमानेषु कन्यारत्नंकुलोद्वह । अयोग्योऽर्हतिभूपालन्यायोऽयं तव रोचते ॥
भागंसिंहस्य गोमायुर्भोक्तुमर्हतिवा कथम् । तथासुदर्शनोऽयंवैकन्यारत्नं किमर्हति
बलंवेदो हि विप्राणां भूभुजांचापजंबलम् । किमन्याय्यं महाराज ब्रवीम्यहमिहाधुना
बलं शुल्कं यथा राज्ञां विवाहेपरिकीर्तितम् । बलवानेव गृह्णातुनाबलस्तु कदाचन ॥
तस्मात्कन्यां पणं कृत्वा नीतिरत्र विधीयताम् ।
अन्यथा कलहः कामं भविष्यति महीभुजाम् ॥ ७ ॥
एवं विवादे सम्वृत्ते राज्ञां तत्र परस्परम् । आहूतस्तु सभामध्ये सुबाहुर्नृपसत्तमः ॥
समाहूयनृपाःसर्वे तमूचुस्तत्त्वदर्शिनः । राजन्नीतिस्त्वया कार्याविवाहेऽत्रसमाहिता
किंते चिकीर्षितं राजंस्तद्वदस्वसमाहितः । पुत्र्याः प्रदानं कस्मैते रोचते नृप चेतसि

सुबाहुरुवाच

पुत्र्या मे मनसा कामंवृतःकिल सुदर्शनः । मया निवारिताऽत्यर्थं नसाप्रत्येतिमेवचः
किं करोमिसुताया मे न वशेवर्ततेमनः । सुदर्शनस्तथैकाकीसम्प्राप्तोऽस्तिनिराकुलः

व्यास उवाच

सम्पन्नभूभुजः सर्वे समाहूय सुदर्शनम् । ऊचुः समागतं शांतमेकाकिनमनन्द्रिताः ॥
राजपुत्र महाभाग केनाहूतोऽसि सुव्रत । एकाकी यः समायातःसमाजे भूभृतामिह॥
न वै सैन्यं नसचिवा न कोशोन बृहद्बलम् । किमर्थञ्च समायातस्तत्त्वंब्रूहि महामते
युद्धकामानृपतयोवर्तन्तेऽत्रसमागमे । कन्यार्थं सैन्यसम्पन्नाः किंत्वं कर्तुमिहेच्छसि

भ्राता ते सुबलः शूरः सम्प्राप्तोऽस्ति जिघृक्षया ।
युधाजिच्च महाबाहुः साहाय्यं कर्तुमागतः ॥ १७ ॥

गच्छ वा तिष्ठ राजेन्द्र याथातथ्यमुदाहृतम् । त्वयि सैन्यविहीने च यथेष्टंकुरुसुव्रत

सुदर्शन उवाच

न बलं न सहायो मे न कोशो दुर्गसंश्रयः । नमित्राणिनसौहार्दो न नृपारक्षका मम
अत्र स्वयम्वरं श्रुत्वा द्रष्टुकामइहागतः । स्वप्नेदेव्याप्रेरितोऽस्मिभगवत्यानसंशयः
नान्यच्चिकीर्षितं मेऽद्य मामाहजगदीश्वरी । तया यद्विहितं तच्च भविताऽद्यन संशयः
नशत्रुरस्तिसंसारे कोऽप्यत्र जगदीश्वराः । सर्वत्रपश्यतोमेऽद्य भवानींजगदम्बिकाम्
यःकरिष्यतिशत्रुत्वंमयासहनृपात्मजाः । शास्तातस्यमहाविद्यानाहंजानामिशत्रुताम्
यद्भावितद्वैभवितानान्यथानृपसत्तमाः । का चिन्ताह्यत्रकर्तव्यादेवाधीनोऽस्मिसर्वदा
देवभूतमनुष्येषु सर्वभूतेषु सर्वदा । सर्वेषां तत्कृता शक्तिर्नान्यथा नृपसत्तमाः ॥२५
सायंचिकीर्षते भूपं तं करोति नृपाधिपाः । निर्धनं वा नरं कामंकाचिन्तावै तदामम
तामृते परमांशक्तिं ब्रह्मविष्णुहरादयः । न शक्ताः स्पन्दितुंदेवाःकाचिन्तामेतदा नृपाः

अशक्तो वा सशक्तो वा यादृशस्तादृशस्त्वहम् ।
तदाज्ञया नृपाऽद्यैव सम्प्राप्तोऽस्मि स्वयम्वरे ॥ २८ ॥

सायदिच्छतितत्कुर्यान्मम किं चिन्तनेनवै । नात्रशङ्काप्रकर्तव्यात्तु यमेतद्ब्रवीम्यहम्
जयेपराजयेलज्जानमेऽत्राण्वपिपार्थिवाः। भगवत्यास्तुलज्जाऽस्तितदधीनोऽस्मिसर्वदा

व्यास उवाच

इति तस्य तदाकर्ण्य वचनं राजसत्तमाः । ऊचुः परस्परं प्रेक्ष्य निश्चयज्ञा नराधिपाः

सत्यमुक्तं त्वया साधो! न मिथ्या कर्हिचिद्भवेत् ।
तथाऽप्युज्जयिनीनाथस्त्वां हन्तुं परिकाङ्क्षति ॥ ३२ ॥
त्वत्कृतेन दयादिष्टा त्वां ब्रवीमीमहामते । यद्युक्तं तत्त्वयाकार्यं विचार्य मनसाऽनघ

सुदर्शन उवाच

सत्यमुक्तंभवद्भिश्च कृपावद्भिःसुहृज्जनैः । किं ब्रवीमिपुनर्वाक्यमुक्त्वा नृपतिसत्तमाः ॥
न मृत्युःकेनचिद्वाच्यः कस्यचिद्वाकदाचन । दैवाधीनमिदं सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम्
स्ववशोऽयंनजीवोऽस्तिस्वकर्मवशगःसदा । तत्कर्मत्रिविधंप्रोक्तंविद्वद्भिस्तत्त्वदर्शिभिः
संचितं वर्तमानञ्च प्रारब्धञ्च तृतीयकम् । कालकर्मस्वभावैश्च ततंसर्वमिदं जगत् ॥
न देवो मानुषं हन्तुं शक्तः कालागमंविना । हतंनिमित्तमात्रेण हन्तिकालः सनातनः
यथा पितामे निहतः सिंहेनामित्रकर्षणः । तथा मातामहोऽप्येवं युद्धेयुधाजिता हतः
यत्नकोटिं प्रकुर्वाणो हन्यते दैवयोगतः । जीवेद्वर्षसहस्राणि रक्षणेन विना नरः ॥
नाहंबिभेमिधर्मिष्ठा.कदाचिद्वयुधाजितः । दैवमेवपरंमत्वा सुस्थितोऽस्मिसदा नृपाः
स्मरणं सततंनित्यंभगवत्याःकरोम्यहम् । विश्वस्यजननीदेवीकल्याणंसा करिष्यति
पूर्वार्जितंहिभोक्तव्यंशुभंवाऽप्यशुभंतथा । स्वकृतस्यचभोगेनकोदृक्छोकोविजानताम्
स्वकर्मफलयोगेन प्राप्यदुःखमचेतनः । निमित्तकारणेवैरं करोत्यल्पमतिः किल ॥
न तथाऽहं विजानामि वैरंशोकं भयंतथा । निःशङ्कमिहसम्प्राप्तः समाजे भूभृतामिह
एकाकी द्रष्टुकामोऽहं स्वयंवरमनुत्तमम् ।
भविष्यति च यद्भाव्यं प्राप्तोऽस्मि चण्डिकाज्ञया ॥ ४६ ॥
भगवत्याःप्रमाणं मे नान्यं जानामि संयतः । तत्कृतंचसुखंदुःखं भविष्यतिचनान्यथा
युधाजित्सुखमाप्नोतु न मेवैरं नृपोत्तमाः । यः करिष्यति मेवैरंसप्राप्स्यतिफलंतथा

व्यास उवाच

इत्युक्तास्ते तथातेनसंतुष्टाभूभुजःस्थिताः । सोऽपिस्वमाश्रमंप्राप्यसुस्थितःसंबभूवह
अपरेऽह्नि शुभे काले नृपाःसम्मन्त्रिताः किल । सुबाहुना नृपेणाथरुचिरेवैस्वमण्डपे
दिव्यास्तरणयुक्तेषु मञ्चेषु रचितेषु च । उपविष्टाश्च राजानः शुभालङ्करणैर्युताः ॥

दिव्यवेषधराः कामं विमानेष्वमरा इव । दीप्यमानाः स्थितास्तत्रस्वयम्बरदिदृक्षया
इति चिन्तापराः सर्वे कदासाऽप्यागमिष्यति । भाग्यवन्तंनृपश्रेष्ठंश्रुतपुण्यंवरिष्यति
यदा सुदर्शनं दैवात्तदाजालम्भूपयेदिह । विवादोवै नृपाणां च भविता नाऽत्र संशयः
इत्येवं चिन्त्यमानास्ते भूपामञ्चेषुसंस्थिताः । वादित्रघोषःसुमहानुत्थितोनृपमण्डपे
अथकाशीपतिःप्राहसुतांस्नातांस्वलंकृताम् । मधूकमालासंयुक्तांक्षौमवासोविभूषिताम्

विवाहोपस्करैर्युक्तां दिव्यां सिन्धुसुतोपमाम् ।

चिन्तापरां सुवसनां स्मितपूर्वमिदं वचः ॥ ५७ ॥

उत्तिष्ठ पुत्रिसुनसेकरैर्धृत्वा शुभांस्रजम् । व्रजमण्डपमध्येऽद्य समाजं पश्य भूभुजाम्
गुणवान्रूपसम्पन्नः कुलीनश्च नृपोत्तमः । तवचित्ते वसेद्यस्तु तंवृणुष्व सुमध्यमे
देशदेशाधिपाः सर्वे मञ्चेषु रचितेषु च । संविष्टाः पश्य तन्वङ्गि ! वरयस्वयथारुचि

व्यास उवाच

तं तथा भाषमाणं वै पितरं मितभाषिणी । उवाचवचनं बाला ललितं धर्मसंयुतम्

शशिकलोवाच

नाऽहं दृष्टिपथेराज्ञां गमिष्यामि पितः! किल ।

कामुकानां नरेशानां गच्छन्त्यन्याश्च योषितः ॥ ६२ ॥

धर्मशास्त्रे श्रुतं तात! मयेदं वचनं किल । एक एववरो नार्या निरीक्ष्यःस्यान्नचापरः
सतीत्वं निर्गतं तस्या या प्रयातिबहूनथ । सङ्कल्पयन्तिते सर्वे दृष्टामे भवतात्विति
स्वयंवरे स्रजं धृत्वा यदागच्छति मण्डपे । सामान्या सा तदाजाताकुलटेवापरावधूः
वारस्त्री विपणेगत्वा यथावीक्ष्यनरान्स्थितान् । गुणागुणपरिज्ञानंकरोतिनिजमानसे

नैक भावा यथावेश्या वृथा पश्यति कामुकम् ।

तथाऽहं मण्डपे गत्वा कुर्वे वारस्त्रिया कृतम् ॥ ६७ ॥

वृद्धैरेतैः कृतं धर्मं न करिष्यामि साम्प्रतम् । पतीव्रतंतथा कामं चरिष्येऽहं धृतव्रता
सामान्या प्रथमं गत्वा कृत्वा सङ्कल्पितं बहु । वृणोतिचैकंतद्वद्वैवृणोमि कथमद्य वै
सुदर्शनो मया पूर्ववृतः सर्वात्मना पितः । तमृते नान्यथा कर्तुमिच्छामि नृपसत्तम

विवाहविधिना देहि कन्यादानं शुभेऽह्नि । सुदर्शनाय नृपते! यदीच्छसि शुभं मम ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां तृतीयस्कन्धे
स्वपितरम्प्रतिशशिकलावाक्यंनामविंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

एकविंशोऽध्यायः

सुबाहुनाराज्ञांसमीपेप्रार्थनाकरणम्

व्यास उवाच

सुबाहुरपि तच्छ्रुत्वा युक्तमुक्तन्तया तदा । चिन्ताविष्टोबभूवाशुकिंकर्तव्यमितःपरम्
सङ्गताः पृथिवीपालाः ससैन्याः सपरिग्रहाः । उपविष्टाश्चमंचेषुयोद्धुकामामहाबलाः
यदि ब्रवीमितान्सर्वान्सुतानायातिसाम्प्रतम् । तथाऽपिकोपसंयुक्ताहन्युर्मांदुष्टबुद्धयः
न मे सैन्यबलंतादृङ् न दुर्गबलमद्भुतम् । येनाऽहंनृपतीन्सर्वान्प्रत्यादेष्टुमिहोत्सहे
सुदर्शनस्तथैकाकी ह्यसहायोऽधनः शिशुः । किंकर्तव्यं निमग्नोऽहं सर्वथादुःखसागरे
इति चिन्तापरो राजा जगाम नृपसन्निधौ । प्रणम्य तानुवाचाथ प्रश्रयावनतोनृपः
किं कर्तव्यं नृपाःकामंनैतिमेमण्डपेसुता । बहुशःप्रेर्यमाणाऽपिसामात्राऽपिमयापिच

मूर्ध्ना पतामि पादेषु राज्ञां दासोऽस्मि साम्प्रतम् ।
पूजादिकं गृहीत्वाऽद्य व्रजन्तु सदनानि वः ॥ ८ ॥

ददामिबहुरत्नानि वस्त्राणिचगजान्रथान् । गृहीत्वाऽद्य कृपां कृत्वाव्रजन्तुभवनान्युत
न वशेमेसुताबालाम्रियेतयदिखेदिता । तदामेस्यान्महद्दुःखंतेनचिन्तातुरोऽस्म्यहम्
भवन्तः करुणावन्तो महाभाग्या महौजसः । किमेतयादुहित्रा मे मन्दयादुर्विनीतया
अनुग्राह्योऽस्मि वः कामंदासोऽहमितिसर्वथा । सुतासुतेवमन्तव्याभवद्भिःसर्वथामम

व्यास उवाच

श्रुत्वा सुबाहुवचनंनोचुःकेचनभूमिपाः । युधाजित्क्रोधताम्राक्षस्तमुवाचरुषाऽन्वितः

राजन्मूर्खोऽसि किं ब्रूपेकृत्वाकार्यंसुनिन्दितम् । स्वयंवरःकथंमोहाद्रचितःसंशयेसति
मिलिताभूभुजः सर्वे त्वयाहूताः स्वयंवरे । कथमद्यनृपागन्तुं योग्यास्ते स्वगृहान्प्रति
अवमान्यनृपान्सर्वांस्त्वंकिंसुदर्शनाय वै । दातुमिच्छसि पुत्रीं चकिमनार्यमतः परम्
विचार्य पुरुषेणादौ कार्यं वैशुभमिच्छता । आरब्धव्यं त्वयातत्तु कृतं राजन्नजानता
एतान्विहाय नृपतीन्बलवाहनसंयुतान् । वरं सुदर्शनं कर्तुं कथमिच्छसि साम्प्रतम्

अहं त्वां हन्मि पापिष्ठं तथा पश्चात्सुदर्शनम् ।
दौहित्रायाऽद्य मे कन्यां दास्यामीति विनिश्चयः ॥ १६ ॥
मयि तिष्ठति कोऽन्योऽस्ति यः कन्यां हर्तुमिच्छति ।
सुदर्शनः कियानद्य निर्धनो निर्बलः शिशुः ॥ २० ॥

भारद्वाजाश्रमे पूर्वं मुक्तोमुनिकृतेमया । नाद्याहं मोचयिष्यामि सर्वथाजीवितंशिशोः
तस्माद्विचार्य सम्यक्त्वं पुत्र्याचभार्ययासह । दौहित्रायप्रियांकन्यांदेहिमेसुभ्रुवंकिल
सम्बन्धीभवदत्वा त्वं पुत्रीमेतां मनोरमाम् । उच्चाश्रयःप्रकर्तव्यःसर्वदाशुभमिच्छता

सुदर्शनाय दत्वा त्वं पुत्रीं प्राणप्रियां शुभाम् ।
एकाकिनेऽप्यराज्याय किं सुखं प्राप्तुमिच्छसि ॥ २४ ॥

"कुलं वित्तंबलंरूपं राज्यंदुर्गं सुहज्जनम् । दृष्ट्वाकन्यांप्रदातव्यानान्यथासुखमृच्छति"
परिचिन्तयधर्मंत्वंराज्यनीतिंचशाश्वतीम् । कुरुकार्यं यथा योग्यं माकृथामतिमन्यथा
सुहृदसि ममात्यर्थं हितं ते प्रब्रवीम्यहम् । समानय सुतां राजन्मण्डपेतांसखीवृताम्
सुदर्शनमृतेचेयंवरिष्यतियदाऽप्यसौ । विग्रहो मे तदा न स्याद्विवाहोऽस्तुतवेप्सितः
अन्येनृपतयः सर्वे कुलीनाः सबलाः समाः । विरोधः कीदृशस्त्वेनंवृणोत्वद्यनृपोत्तम

अन्यथाऽहं हरिष्येऽद्य बलात्कन्यामिमां शुभाम् ।
मा विरोधं सुदुःसाध्यं गच्छ पार्थिवसत्तम ! ॥ २६ ॥

व्यास उवाच

युधाजिता समादिष्टः सुबाहुः शोकसंयुतः । निःश्वसन्भवनंगत्वाभार्यांप्राहशुचावृतः
पुत्रीं ब्रूहि सुधर्मज्ञे कलहे समुपस्थिते । किं कर्तव्यंमया शक्यंत्वद्वशोऽस्मिसुलोचने

व्यास उवाच

सा श्रुत्वा पतिवाक्यं तु गत्वा प्राह सुतान्तिकम् ।
वत्से ! राजाऽतिदुःखार्तः पिता तेऽद्यापि वर्तते ॥ ३२ ॥
त्वदर्थे विग्रहः कामं समुत्पन्नोऽद्य भूभृताम् । अन्यं वरय सुश्रोणि सुदर्शनमृतेनृपम्
यदि सुदर्शनं वत्से!हठात्त्वं वै वरिष्यसि । युधाजित्त्वांचमांचैवहनिष्यतिबलान्वितः
सुदर्शनं च राजाऽसौ बलमत्तः प्रतापवान् । द्वितीयस्तेपतिःपश्चाद्भविता कलहे सति
तस्मात्सुदर्शनंत्यक्त्वावरयान्यं नृपोत्तमम् । सुखमिच्छसि चेन्मह्यंतुभ्यंवामृगलोचने
इति मात्रा बोधितां तां पश्चाद्राजाऽप्यबोधयत् ॥ ३६ ॥
उभयोर्वचनं श्रुत्वा निर्भयोवाच कन्यका ।

कन्योवाच

सत्यमुक्तं नृपश्रेष्ठ ! जानासि च व्रतं मम ॥ ३७ ॥
नान्यं वृणोमि भूपालं सुदर्शनमृते क्वचित् । बिभेषि यदि राजेन्द्रनृपेभ्यःकिलकातरः
सुदर्शनाय दत्त्वा मां विसर्जय पुराद्बहिः । स मांरथेसमारोप्यनिर्गमिष्यतितेपुरात्
भवितव्यंतुपश्चाद्वै भविष्यतिमचान्यथा । नाऽत्रचिन्तात्वयाकार्याभवितव्ये नृपोत्तम
यद्भावि तद्भवत्येव सर्वथाऽत्र न संशयः ।

राजोवाच

न पुत्रि! साहसं कार्यं मतिमद्भिः कदाचन ॥ ४१ ॥
बहुभिर्न विरोधव्यमिति वेदविदो विदुः । विसृक्ष्यामिकथं कन्यांदत्त्वाराजसुतायच
राजानो वैरसंयुक्ताः किंन कुर्युरसाम्प्रतम् । यदिते रोचतेवत्से! पणंसंविदधाम्यहम्
जनकेन यथा पूर्वं कृतः सीतास्वयम्वरे । शैवंधनुर्यथातेन धृतं कृत्वा पणं तथा ॥
तथाऽहमपि तन्वङ्गि करोम्यद्य दुरासदम् । विवादोयेन राज्ञांवै कृते सति शमंव्रजेत्
पालयिष्यति यःकामंसतेभर्ताभविष्यति । सुदर्शनस्तथाऽन्योवा यःकश्चिद्बलवत्तरः
पालयित्वा पणं त्वां वै वरयिष्यति सर्वथा ।
एवं कृते नृपाणां तु विवादः शमितो भवेत् ॥ ४७ ॥

सुखेनाऽहं विवाहं ते करिष्यामि ततः परम् ।

कन्योवाच

सन्देहे नैव मज्जामि मूर्खकृत्यमिदं यतः ॥ ४८ ॥

मया सुदर्शनः पूर्वं धृतश्चेतसि नाऽन्यथा । कारणं पुण्यपापानां मन एव महीपते॥
मनसा विधृतं त्यक्त्वा कथमन्यंवृणे पितः । कृते पणे महाराज सर्वेषां वशगाह्यहम्
चकः पालयिता क्लीवाबहवोवाभवन्तिचेत् । किं कर्तव्यंतदाताता विवादेसमुपस्थिते
संशयाधिष्ठितेकार्ये मतिनाहंकरोम्यतः । मा चिन्तांकुरुराजेन्द्र देहि सुदर्शनाय माम्
विवाहंविधिनाकृत्वाशंविधास्यतिचण्डिका । यन्नामकीर्तनादेवदुःखौघोविलयंव्रजेत्
तां स्मृत्वा परमांशक्तिं कुरुकार्यमतन्द्रितः । गत्वावद नृपेभ्यस्त्वंकृताञ्जलिपुटोऽद्यवै
आगन्तव्यंचश्वःसर्वैरिहभूपैःस्वयम्वरे । इत्युक्त्वात्वंविसृज्याऽऽशुसर्वंनृपतिमण्डलम्
विवाहं कुरु रात्रौमे वेदोक्तविधिनानृप । पारिबर्हं यथायोग्यं दत्त्वा तस्मै विसर्जय
गमिष्यति गृहीत्वा मांध्रुवसन्धिसुतःकिल । कदाचित्तेनृपाःक्रुद्धाःसंग्रामंकर्तुमुद्यताः

भविष्यन्ति तदा देवी साहाय्यं नः करिष्यति ।

सोऽपि राजसुतैस्तैस्तु संग्रामं संविधास्यति ॥ ५८ ॥

दैवान्मृधे मृते तस्मिन्मरिष्याम्यहमप्युत । स्वस्तितेस्तुगृहेतिष्ठ दत्त्वामांसहसैन्यक

एकैवाऽहं गमिष्यामि तेन सार्द्धं रिरंसया ।

व्यास उवाच

इति तस्या वचः श्रुत्वा राजाऽसौ कृतनिश्चयः ॥ ६० ॥

मतिं चक्रे तथा कर्तुं विश्वासं प्रतिपद्य च ।

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यांसंहितायांतृतीयस्कन्धे
कन्ययास्वपितरम्प्रतिसुदर्शनेनसहविवाहार्थकथनंनामैकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

द्वाविंशोऽध्यायः

स्वपुत्रीवाक्यंश्रुत्वासुबाहुनासुदर्शनेनसहस्वकन्याविवाहकरणम्

व्यास उवाच

श्रुत्वा सुतावाक्यमनिन्दितात्मा नृपांश्च गत्वा नृपतिर्जगाद।
व्रजन्तु कामं शिबिराणि भूपाः! श्वो वा विवाहं किल संविधास्ये ॥ १ ॥
भक्ष्याणि पेयानि मयाऽर्पितानि गृह्णन्तु सर्वे मयि सुप्रसन्नाः।
श्वो भावि कार्यं किल मण्डपेऽद्य समेत्य सर्वैरिह संविधेयम् ॥ २ ॥
नाऽऽयाति पुत्री किल मण्डपेऽद्य करोमि किं भूपतयोऽत्र कामम्।
प्रातः समाश्वास्य सुतां नयिष्ये गच्छन्तु तस्माच्छिबिराणि भूपाः! ॥ ३ ॥
न विग्रहो बुद्धिमतां निजाश्रिते कृपा विधेया सततं ह्यपत्ये।
विधाय तां प्रातरिहानयिष्ये सुतां तु गच्छन्तु नृपा यथेष्टम् ॥ ४ ॥
इच्छापणं वा परिचिन्त्य चित्ते प्रातः करिष्याम्यथ संविवाहम्।
सर्वैः समेत्यात्र नृपैः समेतैः स्वयम्वरः सर्वमतेन कार्यः ॥ ५ ॥
श्रुत्वा नृपास्तेऽवितथं विदित्वावचो ययुः स्वानि निकेतनानि।
विधाय पार्श्वे नगरस्य रक्षां चक्रुः क्रिया मध्यदिनोदिताश्च ॥ ६ ॥
सुबाहुरप्यार्यजनैः समेतश्चकार कार्याणि विवाहकाले।
पुत्रीं समाहूय गृहे सुगुप्ते पुरोहितैर्वेदविदां वरिष्ठैः ॥ ७ ॥
स्नानादिकं कर्म वरस्य कृत्वा विवाहभूषाकरणं तथैव।
आनाय्य वेदीरचिते गृहे वै तस्यार्हणां भूमिपतिश्चकार ॥ ८ ॥
सविष्टरं चाऽऽचमनीयमर्घ्यं वस्त्रद्वयं गामथ कुण्डले द्वे।
समर्प्य तस्मै विधिवन्नरेन्द्र ऐच्छत्सुतादानमहीनसत्त्वः ॥ ९ ॥
सोऽप्यग्रहीत्सर्वमदीनचेता शशाम चिन्ताऽथ मनोरमायाः।

कन्यां सुकेशीं निधिकल्पकाखमां मेने तदाऽऽत्मानमनुत्तमञ्च ॥ १० ॥
सुपूजितं भूषणवस्त्रदानैर्वरोत्तमं तं सचिवास्तदानीम् ।
निन्युश्च ते कौतुकमण्डपान्तर्मुदाऽन्विता वीतभयाश्च सर्वे ॥ ११ ॥
समानभूषां विधिवद्विधिज्ञाः स्त्रियश्च तां राजसुतां सुयाने ।
आरोप्य निन्युर्वरसंनिधानं चतुष्कयुक्ते किल मण्डपे वै ॥ १२ ॥
अग्निं समाधाय पुरोहितः स हुत्वा यथावच्च तदन्तराले ।
आह्वाययत्तौ कृतकौतुकौ तु वधूवरौ प्रेमयुतौ निकामम् ॥ १३ ॥
लाजाविसर्गं विधिवद्विधाय कृत्वा हुताशस्य प्रदक्षिणां च ।
तौ चक्रतुस्तत्र यथोचितं तत्सर्वं विधानं कुलगोत्रजातम् ॥ १४ ॥
शतद्वयं चाश्वयुजां रथानां सुभूषितं चापि शरौघसंयुतम् ।
ददौ नृपेन्द्रस्तु सुदर्शनाय सुपूजितं पारिबर्हं विवाहे ॥ १५ ॥
मदोत्कटान्हेमविभूषितांश्च गजान्गिरेः शृङ्गसमानदेहान् ।
शतं सपादं नृपसूनवेऽसौ ददावथ प्रेमयुतो नृपेन्द्रः ॥ १६ ॥
दासीशतं काञ्चनभूषितं च करेणुकानां च शतं सुचारु ।
समर्पयामास वराय राजा विवाहकाले मुदितोऽनुवेलम् ॥ १७ ॥
अदात्पुनर्दाससहस्रमेकं सर्वायुधैः संभृतभूषितं च ।
रत्नानि वासांसि यथोचितानि दिव्यानि चित्राणि तथाऽऽविकानि ॥ १८ ॥
ददौ पुनर्वासगृहाणि तस्मै रम्याणि दीर्घाणि विचित्रतानि ।
सिन्धूद्भवानां तुरगोत्तमानामदात्सहस्रद्वितयं सुरम्यम् ॥ १९ ॥
क्रमेलकानां च शतत्रयं वै प्रत्यादिशद्भारभृतां सुचारु ।
शतद्वयं वै शकटोत्तमानां तस्मै ददौ धान्यरसैः प्रपूरितम् ॥ २० ॥
मनोरमां राजसुतां प्रणम्य जगाद वाक्यं विहिताञ्जलिः पुरः ।
दासोऽस्मि ते राजसुते ! वरिष्ठे ! तद् ब्रूहि यत्स्यात्सु मनोगतं ते ॥ २१ ॥
तं चारुवाक्यं निजगादि साऽपि स्वस्त्यस्तु ते भूपकुलस्य वृद्धि. ।

सम्मानिताऽहं मम सूनवे त्वया दत्ता यतो रत्नवरा स्वकन्या ॥ २२ ॥
न बन्दिपुत्री नृपमागधी वा स्तौमीह किं त्वां स्वजनं महत्त्वम् ।
सुमेरुतुल्यस्तु कृतः सुतोऽद्य मे सम्बन्धिना भूपतिनोत्तमेन ॥ २३ ॥
अहोऽतिचित्रं नृपतेश्चरित्रं परं पवित्रं तव किं वदामि ।
यद् भ्रष्टराज्याय सुताय मेऽद्य दत्ता त्वया पूज्यसुता वरिष्ठा ॥ २४ ॥
वनाधिवासाय किलाऽधनाय पित्रा विहीनाय विसैन्यकाय ।
सर्वानिमान्भूमिपतीन्विहाय फलाशनायार्थविवर्जिताय ॥ २५ ॥
समानवित्तेऽथ कुले बले च ददाति पुत्रीं नृपतिश्च भूयः ।
न कोऽपि मे भूप सुतेऽर्थहीने गुणान्वितां रूपवतीं च दद्यात् ॥ २६ ॥
वैरं तु सर्वैः सह संविधाय नृपैर्वरिष्ठैर्बलसंयुतैश्च ।
सुदर्शनायाऽथ सुताऽर्पिता मे किं वर्णये धैर्यमिदं त्वदीयम् ॥ २७ ॥
निशम्य वाक्यानि नृपः प्रहृष्टः कृताञ्जलिर्वाक्यमुवाच भूयः ।
गृहाण राज्यं मम सुप्रसिद्धं भवामि सेनापतिरद्य चाहम् ॥ २८ ॥
नोचेत्तदर्धं प्रतिगृह्य चाऽत्र सुतान्वितो राज्यफलानि भुङ्क्ष्व ।
विहाय वाराणसिकानिवासं वने पुरे वासमतो न मेऽस्ति ॥ २९ ॥
नृपास्तु संत्येव रुषान्विता वै गत्वा करिष्ये प्रथमं तु सान्त्वनम् ।
ततः परं द्वावपरावुपायौ नोचेत्ततो युद्धमहं करिष्ये ॥ ३० ॥
जयाजयौ दैववशौ तथाऽपि धर्मे जयो नैव कृतेऽप्यधर्मे ।
तेषां किलाऽधर्मवतां नृपाणां कथं भविष्यत्यनुचिन्तितं वै ॥ ३१ ॥
आकर्ण्य तद्भाषितमर्थवच्च जगाद वाक्यं हितकारकं तम् ।
मनोरमा मानमवाप्य तस्मात्सर्वात्मना मोदयुता प्रसन्ना ॥ ३२ ॥
राजन्छिवं तेस्तु कुरुष्व राज्यं त्यक्त्वा भयं त्वं स्वसुतैः समेतः
सुतोऽपि मे नूनमवाप्य राज्यं साकेतपुर्यां प्रचरिष्यतीह ॥ ३३ ॥
विसर्जयाऽस्मान्निजसद्म गन्तुं शिवं भवानी तव संविधास्यति । ।

न काऽपि चिन्ता मम भूप! वर्तते सञ्चिन्तयन्त्याः परमाम्बिकां वै ॥ ३४ ॥
दोषा गता विविधवाक्यपदै रसालैरन्योन्यभाषणपदैरमृतोपमैश्च ।
प्रातर्नृपाः समधिगम्य कृतं विवाहं रोषान्विता नगरबाह्यगतास्तथोचुः ॥
अद्यैव तं नृपकलङ्कधरं च हत्वा बालं तथैव किल तं न विवाहयोग्यम् ।
गृह्णीम तां शशिकलां नृपतेश्च लक्ष्मीं लज्जामवाप्य निजसद्म कथं व्रजेम ॥
शृण्वन्तु तूर्यनिनदान्किल वाद्यमानाञ्छङ्खस्वनानभिभवन्ति मृदङ्गशब्दाः ।
गीतध्वनिं च विविधं निगमस्वनं च मन्यामहे नृपतिनाऽत्र कृतो विवाहः ॥
अस्मान्प्रतार्य वचनैर्विधिवच्चकार वैवाहिकेन विधिना करपीडनं वै ।
कर्त्तव्यमद्य किमहो प्रविचिन्तयन्तु भूपाः परस्परमतिं च समर्थयन्तु ॥३८॥
एवं वदत्सु नृपतिष्वथ कन्यकायाः कृत्वा विवाहविधिमप्रतिमप्रभावः ।
भूपान्निमन्त्रयितुमाशु जगाम राजा काशीपतिः स्वसुहृदैः प्रथितप्रभावैः
आगच्छन्तं च तं दृष्ट्वा नृपाः काशीपतिं तदा ।
नोचुः किञ्चिदपि क्रोधान्मौनमाधाय संस्थिताः ॥ ४० ॥

स गत्वा प्रणिपत्याह कृताञ्जलिरभाषत । आगन्तव्यं नृपैः सर्वैर्भोजनार्थं गृहे मम
कन्यययाऽसौवृतोभूपःकिंकरोमिहिताहितम् । भवद्भिस्तुशमःकार्योमहान्तोहिदयालवः
तन्निशम्य वचस्तस्य नृपाः क्रोधपरिप्लुताः । प्रत्यूचुर्भुक्तमस्माभिः स्वगृहं नृपते व्रज
कुरुकार्याण्यशेषाणियथेष्टंसुकृतं कृतम् । नृपाःसर्वेप्रयान्त्वद्यस्वानिस्वानिगृहाणिवै
सुबाहुरपितच्छुत्वाजगामशङ्कितोगृहम् । किंकरिष्यन्तिसंविग्नाःक्रोधयुक्तानृपोत्तमाः
गते तस्मिन्महीपालाश्चक्रुश्च समयंपुनः । रुद्ध्वामार्गंग्रहीष्यामःकन्यांहत्वासुदर्शनम्
केचनोचुः किमस्माकं हृतं तेन नृपेण वै । दृष्ट्वा तु कौतुकंसर्वं गमिष्यामोयथागतम्
इत्युक्त्वा ते नृपाःसर्वेमार्गमाक्रम्यसंस्थिताः । चकारोत्तरकार्याणिसुबाहुःस्वगृहंगतः

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां तृतीयस्कन्धे
सुदर्शनशशिकल्योर्विवाहवर्णनंनामद्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

त्रयोविंशोऽध्यायः

सुदर्शनेनसहयुधाजिद्राज्ञोयुद्धकरणम्

व्यास उवाच

तस्मैवौरवभोज्यानि विधायविधिवत्तदा । वासराणिचषड्राजाभोजयामासभक्तितः
एवं विवाहकार्याणिकृत्वासर्वाणि पार्थिवः । पारिबर्हंप्रदत्त्वाऽथमन्त्रयन्सचिवैःसह
दूतैस्तु कथितं श्रुत्वा मार्गसंरोधनं कृतम् । बभूव विमना राजासुबाहुरमितद्युतिः
सुदर्शनस्तदोवाच श्वशुरं संहितव्रतः । अस्मान्विसर्जयाशु त्वंगमिष्यामोहाशङ्किताः
भारद्वाजाश्रमंपुण्यंगन्त्वातत्र समाहिताः । निवासायविचारो वै कर्तव्यः सर्वथा नृप
नृपेभ्यश्च न कर्तव्यंभयंकिञ्चित्त्वयाऽनघ । जगन्माताभवानी मे साहाय्यंवैकरिष्यति

व्यास उवाच

तस्येतिमतमाज्ञाय जामातुर्नृपसत्तमः । विससर्ज धनन्दत्त्वा प्रतस्थेसोऽपिसत्वरः॥
बलेनमहताऽऽविष्टो ययावनुनृपोत्तमः । सुदर्शनो वृतस्तत्र चचाल पथि निर्भयः ॥
रथैः परिवृतः शूरः सदारो रथसंस्थितः । गच्छन्ददर्श सैन्यानि नृपाणां रघुनन्दनः ॥
सुबाहुरपितान्वीक्ष्य चिन्ताविष्टोबभूवह । विधिवत्स शिवांचित्ते जगाम शरणं मुदा
जजापैकाक्षरंमन्त्रं कामराजमनुत्तमम् । निर्भयो वीतशोकश्च पत्न्यासह नवोढया ॥

ततः सर्वे महीपालाः कृत्वा कोलाहलं तदा ।
उत्थिताः सैन्यसंयुक्ता हन्तुकामास्तु कन्यकाम् ॥ १२ ॥

काशीराजस्तुतान्दृष्ट्वा हन्तुकामोबभूव ह । निवारितस्तदाऽत्यर्थं राघवेणजिघांसया
तत्रापिनेदुःशङ्खाश्च भेर्यश्चानकदुंदुभिः । सुबाहोश्च नृपाणाञ्च परस्परजिघांसताम् ॥
शत्रुजित्तु सुसम्भृत्तः स्थितस्तत्रजिघांसया । युधाजित्तत्सहायार्थंसन्नद्धः प्रबभूवह ॥
केचिच्चप्रेक्षकास्तस्यसहानीकैःस्थितास्तदा । युधाजिदग्रतोगत्वा सुदर्शनमुपस्थितः
शत्रजित्तेनसहितो हन्तुंभ्रातरमानुजः । परस्परं ते बाणौघैस्ततक्षुःक्रोधमूर्च्छिताः ॥

सम्मर्दः सुमहांस्तत्र संप्रवृत्तः सुमार्गणैः । काशीपतिस्तदातूर्णं सैन्येन बहुना वृतः॥
साहाय्यार्थं जगामाशु जामातरमनिन्दितम् । एवंप्रवृत्ते संग्रामे दारुणे लोमहर्षणे ॥
प्रादुर्बभूव सहसा देवी सिंहोपरि स्थिता । नानायुधधरा रम्या वराभूषणभूषिता ॥
दिव्याम्बरपरीधाना मन्दारस्रक्सुसंयुता । तां दृष्ट्वातेऽथभूपालाविस्मयं परमं गताः॥

केयं सिंहसमारूढा कुतो वेति समुत्थिता ।

सुदर्शनस्तु तां वीक्ष्य सुबाहुमिति चाब्रवीत् ॥ २२ ॥

पश्य राजन्महादेवीमागतांदिव्यदर्शनाम् । अनुग्रहाय मे नूनं प्रादुर्भूता दयान्विता ॥
निर्भयोऽहंमहाराजजातोऽस्मिनिर्भयादपि । सुदर्शनःसुबाहुश्चतामालोक्य वराननाम्
प्रणामं चक्रतुस्तस्या मुदितौ दर्शनेनच । ननादचतथासिंहो गजाश्चत्रासाश्चकम्पिरे ॥
ववुर्वाता महाघोरा दिशश्चासन्सुदारुणाः । सुदर्शनस्तदाप्राह निजं सेनापतिं प्रति ॥

मार्गे व्रज त्वं तरसा भूपाला यत्र संस्थिताः ।

किं करिष्यन्ति राजानः कुपिता दुष्टचेतसः ॥ २७ ॥

शरणार्थञ्च सम्प्राप्ता देवीभगवतीहिनः । निरातङ्कैश्च गन्तव्यंमार्गेऽस्मिन्भूपसंकुले ॥
स्मृतामयामहादेवी रक्षाणार्थमुपागता । तच्छ्रुत्वाचवचनं सेनापतिस्तेनपथाऽव्रजत् ॥

युधाजित्तु सुसंक्रुद्धस्तानुवाच महीपतीन् ।

किं स्थिता भयसन्त्रस्ता निघ्नन्तु कन्यकान्वितम् ॥ ३० ॥

अवमन्यच नःसर्वान्बलहीनोबलाधिकान् । कन्यांगृहीत्वासंयातिनिर्भयस्तरसाशिशुः

किं भीताः कामिनीं वीक्ष्य सिंहोपरि सुसंस्थिताम् ।

नोपेक्ष्यो हि महाभाग ! हन्तव्योऽत्र समाहितैः ॥ ३२ ॥

हत्वैनंसंग्रहीष्यामःकन्यांचारुविभूषणाम् । नायंकेसरिणाऽऽदत्तांछेत्तुमर्हतिजम्बुकः

इत्युक्त्वा सैन्यसंयुक्तः शत्रुजित्सहितस्तदा ।

योद्धुकामः सुसम्प्राप्तो युधाजित्क्रोधसंवृतः ॥ ३४ ॥

मुमोचविशिखांस्तूर्णंसमपुंखाञ्छिलाशितान् । धनुराकृष्यकर्णान्तंकर्मारपरिमार्जितान्
हन्तुकामः सुदुर्मेधाः सुदर्शनमथोपरि । सुदर्शनस्तु तान्बाणैश्चिच्छेदापततः क्षणात्

एवं युद्धे प्रवृत्तेऽथ सुकोपचण्डिका भृशम् । दुर्गादेवीमुमोचाथ बाणान्युधाजितम्प्रति
नानारूपा तदाजाता नानाशस्त्रधरा शिवा । सम्प्राप्ता तुमुलं तत्र चकार जगदम्बिका॥
शत्रुजिन्निहतस्तत्र युधाजिदपि पार्थिवः । पतितौ तौ रथाभ्यान्तु जयशब्दस्तदाऽभवत्
विस्मयं परमं प्राप्ताः भूपाः सर्वे विलोकयतान् । निधनं मातुलस्यापि भागिनेयस्य संयुगे
सुबाहुरपि तं दृष्ट्वा निधनं संयुगे तयोः । तुष्टाव परमप्रीतो दुर्गां दुर्गतिनाशिनीम् ॥

सुबाहुरुवाच

नमो देव्यै जगद्धात्र्यै शिवायै सततं नमः । दुर्गायै भगवत्यै ते कामदायै नमो नमः ॥
नमः शिवायै शान्त्यै ते विद्यायै मोक्षदे नमः । विश्वव्याप्त्यै जगन्मातर्जगद्धात्र्यै नमः शिवे

नाऽहं गतिं तव धिया परिचिन्तयन्वै जानामि देवि! सगुणः किल निर्गुणायाः।
किं स्तौमि विश्वजननि ! प्रकटप्रभावां भक्तार्तिनाशनपरां परमाञ्च शक्तिम् ॥
वाग्देवता त्वमसि सर्वगतैव बुद्धिर्विद्यामतिश्च गतिरप्यसि सर्वजन्तोः ।
त्वां स्तौमि किं त्वमसि सर्वमनोनियन्त्री किं स्तूयते हि सततं खलु चात्मरूपम्
ब्रह्मा हरश्च हरिरप्यनिशं स्तुवन्तो नान्तं गताः सुरवराः किल ते गुणानाम् ।
काऽहं विभेदमतिरम्ब गुणैर्वृतो वै वक्तुं क्षमस्तव चरित्रमहो प्रसिद्धः ॥ ४६ ॥
सत्सङ्गतिः कथमहो न करोति कामं प्रासङ्गिकाऽपि विहिता खलु चित्तशुद्धिः ।
जामातुरस्य विहितेन समागमेन प्राप्तं मयाऽद्भुतमिदं तव दर्शनं वै ॥ ४७ ॥
ब्रह्माऽपि वाञ्छति सदैव हरो हरिश्च सेन्द्राः सुराश्च मुनयो विदितार्थतत्त्वाः ।
यद्दर्शनं जननि! तेऽद्य मया दुरापं प्राप्तं विना दमशमादिसमाधिभिश्च ॥ ४८ ॥
काऽहं सुमन्दमतिराशु तवावलोकं क्वेदं भवानि! भवभेषजमद्वितीयम् ।
ज्ञाताऽसि देवि ! सततं किल भावयुक्ता भक्तानुकम्पनपराऽमरवर्गपूज्या ॥४९॥
किं वर्णयामि तव देवि ! चरित्रमेतद्यद्रक्षितोऽस्ति विषमेऽत्र सुदर्शनोऽयम् ।
शत्रू हतौ सुबलितौ तरसा त्वया यद्भक्तानुकम्पि चरितं परमं पवित्रम् ॥ ५० ॥
नाश्चर्यमेतदिति देवि! विचारितेऽर्थे त्वं पासि सर्वमखिलं स्थिरजङ्गमं वै ।
त्रातस्त्वया च विनिहत्य रिपुर्दयातः संरक्षितोऽयमधुना ध्रुवसन्धिसूनुः ॥५१॥

भक्तस्य सेवनपरस्य यशोऽतिदीप्तं कर्तुं भवानि! रचितं चरितं त्वयैतत् ।
नो चेत्कथं सुपरिगृह्य सुतां मदीयां युद्धे भवेत्कुशलवाननवद्यशीलः ॥ ५२ ॥
शक्ताऽसि जन्ममरणादिभयान्विहन्तुं किं चित्रमत्र किल भक्तजनस्य कामम् ।
त्वं गीयसे जननि! भक्तजनैरपारा त्वं पापपुण्यरहिता सगुणाऽगुणा च ॥५३॥
त्वद्दर्शनादहमहो सुकृती कृतार्थो जातोऽस्मि देवि ! भुवनेश्वरि ! धन्यजन्मा ।
बीजं न ते न भजनं किल वेद्मि मातर्ज्ञातस्तवाऽद्य महिमा प्रगटप्रभावः ॥ ५४ ॥

व्यास उवाच

एवं स्तुता तदा देवी प्रसन्नवदना शिवा । उवाच च नृपं देवी वरं वरय सुव्रत !॥५५॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां तृतीयस्कन्धे
सुबाहुकृतादेवीस्तुतिवर्णननामत्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

चतुर्विंशोऽध्यायः

देवीमहिमावर्णनं काश्यांदुर्गावासश्च

व्यास उवाच

तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा भवान्याः स नृपोत्तमः । प्रोवाचवचनंतत्र सुबाहुर्भक्तिसंयुतः॥

सुबाहुरुवाच

एकतो देवलोकस्य राज्यं भूमण्डलस्य च । एकतो दर्शनन्ते वै न च तुल्यं कदाचन
दर्शनात्सदृशंकिंचित्त्रिषुलोकेषुनास्ति मे । कं वरंदेवि! याचेऽहं कृतार्थोऽस्मिधरातले
एतदिच्छाम्यहं मातर्याचितुंवाञ्छितंवरम् । तवभक्तिःसदामेऽस्तुनिश्चलाह्यनपायिनी
नगरेऽत्रत्वयामातःस्थातव्यंममसर्वदा । दुर्गादेवीतिनाम्ना वै त्वं शक्तिरिहसंस्थिता
रक्षा त्वया च कर्तव्या सर्वदा नगरस्य ह । यथा सुदर्शनस्त्रातो रिपुसङ्घादनामयः ॥
तथाऽत्र रक्षा कर्तव्या वाराणस्यास्त्वयाऽम्बिके ।

यावत्पुरी भवेद्भूमौ सुप्रतिष्ठा सुसंस्थिता ॥ ७ ॥
तावत्त्वयाऽत्रस्थातव्यंदुर्गे देविकृपानिधे । वरोऽयं ममतेदेयः किमन्यत्प्रार्थयाम्यहम्
विविधान्सकलान्कामान्देहिमेविद्विषोजहि । अभद्राणांविनाशञ्च कुरुलोकस्यसर्वदा

व्यास उवाच

इतिसम्प्रार्थितादेवी दुर्गादुर्गार्तिनाशिनी । तमुवाच नृपस्तत्र स्तुत्वा वै संस्थितंपुरः

दुर्गोवाच

राजन्सदानिवासो मे मुक्तिपुर्याम्भविष्यति । रक्षार्थं सर्वलोकानांयावत्तिष्ठतिमेदिनी
अथोसुदर्शनस्तत्र समागम्य मुदाऽन्वितः । प्रणम्यपरयाभक्त्या तुष्टाव जगदम्बिकाम्

अहो कृपा ते कथयाम्यहं किं त्रातस्त्वया यत्किल भक्तिहीनः ।
भक्तानुकम्पी सकलो जनोऽस्ति विमुक्तभक्तेरवनं व्रतन्ते ॥ १३ ॥
त्वं देवि! सर्वं सृजसि प्रपञ्चं श्रुतं मया पालयसि स्वसृष्टम् ।
त्वमत्सि संहारपरे च काले न तेऽत्र चित्रं मम रक्षणं वै ॥ १४ ॥
करोमि किं ते वद देवि ! कार्यं क्व वा व्रजामीत्यनुमोदयाऽऽशु ।
कार्ये विमूढोऽस्मि तवाज्ञयाऽहं गच्छामि तिष्ठे विरहामि मातः !॥ १५ ॥

व्यास उवाच

तंतथाभाषमाणन्तुदेवीप्राहदयान्विता । गच्छायोध्यांमहाभागकुरुराज्यं कुलोचितम्
स्मरणीयासदाऽहन्ते पूजनीयाप्रयत्नतः । शं विधास्याम्यहंनित्यं राज्ये ते नृपसत्तम
अष्टम्याञ्चचतुर्दश्यां नवम्याञ्च विशेषतः । मम पूजा प्रकर्तव्या बलिदानविधानतः ॥
अर्चा मदीयानगरे स्थापनीयात्वयाऽनघ । पूजनीया प्रयत्नेन त्रिकालम्भक्तिपूर्वकम्
शरत्काले महापूजा कर्तव्या मम सर्वदा । नवरात्रविधानेन भक्तिभावयुतेन च ॥२०
चैत्रेऽश्विने तथाऽऽषाढेमाघेकार्योमहोत्सवः । नवरात्रे महाराजपूजा कार्याविशेषतः
कृष्णपक्षेचतुर्दश्यां मम भक्तिसमन्वितैः । कर्तव्या नृपशार्दूलतथाऽष्टम्यां सदाबुधैः॥

व्यास उवाच

इत्युक्त्वांऽन्तर्हितादेवी दुर्गादुर्गार्तिनाशिनी । नतासुदर्शनेनाथ स्तुताच बहुविस्तरम्

अन्तर्हितां तु तां दृष्ट्वा राजानः सर्व एव ते । प्रणेमुस्तं समागम्य यथाशक्रंसुरास्तथा
सुबाहुरपितंनत्वास्थितश्चाग्रेमुदाऽन्वितः । ऊचुःसर्वमहीपालाअयोध्याधिपतिस्तदा
त्वमस्माकंप्रभुःशास्तासेवकास्तेवयंसदा । कुरुराज्यमयोध्यायांपालयास्मान्नृपोत्तम
त्वत्प्रसादान्महाराज दृष्टाविश्वेश्वरीशिवा । आदिशक्तिर्भवानीसा चतुर्वर्गफलप्रदा॥
धन्यस्त्वं कृतकृत्योऽसि बहुपुण्योधरातले । यस्मात्त्वत्कृतेदेवी प्रादुर्भूतासनातनी
नजानोमोवयं सर्वे प्रभावं नृपसत्तम । चण्डिकायास्तमोयुक्तामायया मोहिताःसदा
धनदारसुतानाञ्च चिन्तनेऽभिरताः सदा । मग्नामहार्णवे घोरे कामक्रोधझषाकुले ॥

पृच्छामस्त्वां महाभाग! सर्वज्ञोऽसि महामते !।
केयं शक्तिः कुतो जाता किं प्रभावा वदस्व तत् ॥ ३१ ॥
भव त्वं नौश्च संसारे साधवोऽतिदयापराः ।
तस्मान्नो वद काकुत्स्थ ! देवीमाहात्म्यमुत्तमम् ॥ ३२ ॥

यत्प्रभावाचसादेवीयत्स्वरूपायदुद्भवा । तत्सर्वंश्रोतुमिच्छामस्त्वं ब्रूहि नृवरोत्तम !॥

व्यास उवाच

इतिपृष्टस्तदातैस्तु ध्रुवसन्धिसुतो नृप । विचिन्त्य मनसादेवींतानुवाचमुदाऽन्वितः॥

सुदर्शन उवाच

किंब्रवीमिमहीपालास्तस्याश्चरितमुत्तमम् । ब्रह्मादयोनजानन्ति सेशा.सुरगणास्तथा

सर्वस्याऽऽद्या महालक्ष्मीर्वरेण्या शक्तिरुत्तमा ।
सात्त्विकीयं महीपाला ! जगत्पालनतत्परा ॥ ३६ ॥

सृजते या रजोरूपा सत्त्वरूपा च पालने । संहारेचतमोरूपा त्रिगुणा सा सदा मता
निर्गुणा परमाशक्तिः सर्वकामफलप्रदा । सर्वेषां कारणं साहि ब्रह्मादीनां नृपोत्तमाः
निर्गुणासर्वथाज्ञातुमशक्यायोगिभिर्नृपाः । सगुणासुखसेव्यासाचिन्तनीयासदाबुधैः

राजान ऊचुः

बाल एव वनं प्राप्तस्त्वं तु नूनं भयातुरः । कथं ज्ञातात्वया देवी परमा शक्तिरुत्तमा
उपासिता कथं चैवपूजिताच कथं नृप । या प्रसन्नातु साहाय्यंचकारत्वरयाऽन्विता

सुदर्शन उवाच

बालभावान्मयाप्राप्तंबीजंतस्याःसुसंमतम् । स्मरामिप्रजपन्नित्यंकामबीजाभिधं नृपाः
ऋषिभिः कथ्यमाना सा मया ज्ञाताऽम्बिका शिवा ।
स्मरामि तां दिवारात्रं भक्त्या परमया पराम् ॥ ४३ ॥

व्यास उवाच

तन्निशम्य वचस्तस्य राजानोभक्तितत्पराः । तांमत्वापरमांशक्तिंनिर्ययुःस्वगृहान्प्रति।
सुबाहुरगमत्काश्यांतमापृच्छ्यसुदर्शनम् । सुदर्शनोऽपिधर्मात्मानिर्जगामसुकोशलान्।
मन्त्रिणस्तु नृपं श्रुत्वा हतं शत्रुजितम्मृधे । जितं सुदर्शनं चैव बभूवुः प्रेमसंयुताः ॥
आगच्छन्तं नृपं श्रुत्वा तं साकेतनिवासिनः । उपायनान्युपादायप्रययुःसंमुखे जनाः
तथा प्रकृतयः सर्वे नानोपायनपाणयः । ध्रुवसन्धिसुतंमत्वा मुदिता प्रययुः प्रजाः ॥
स्त्रियोपसंयुतःसोऽथप्राप्यायोध्यांसुदर्शनः । संमान्यसर्वलोकांश्चययौराजानिवेशनम्
बन्दिभिःस्तूयमानस्तुवन्द्यमानश्चमन्त्रिभिः।कन्याभिःकीर्यमाणश्चलाजैःसुमनसैस्तथा।

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां तृतीयस्कन्धे
सुदर्शनेनदेवीमहिमावर्णनंनामचतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

पञ्चविंशोऽध्यायः

अयोध्याङ्गत्वासुदर्शनेनशत्रुजिन्मातरम्प्रतिप्रार्थनाकरणम्

व्यास उवाच

गत्वाऽयोध्यां नृपश्रेष्ठोगृहंराज्ञः सुहृद्वृतः । शत्रुजिन्मातरं प्राहप्रणम्यशोकसङ्कुलाम्
मातर्न ते मया पुत्रः संग्रामे निहतः किल । न पिता ते युधाजिच्चशपेतेचरणौ तथा
दुर्गया तौ हतौ संख्ये नाऽपराधो ममात्र वै । अवश्यं भाविभावेषुप्रतीकारोनविद्यते।
न शोकोऽत्र त्वया कार्यो मृतपुत्रस्य मानिनि ! ।

स्वकर्मवशगो जीवो भुङ्क्ते भोगान्शुभाशुभान् ॥ ४ ॥

दासोऽस्मि तव भो मातर्यथामम मनोरमा । तथात्वमपिधर्मज्ञेनमेदोऽस्तिमनागपि
अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् । तस्मान्नशोचितव्यंते सुखेदुःखे कदाचन॥

दुःखे दुःखाधिकान्पश्येत्सुखे पश्येत्सुखाधिकम् ।
आत्मानं शोकहर्षाभ्यां शत्रुभ्यामिव नाऽर्पयेत् ॥ ७ ॥

दैवाधीनमिदं सर्वं नाऽऽत्माधीनंकदाचन । नशोकेनतदाऽऽत्मानंशोषयेन्मतिमान्नरः
यथा दारुमयी योषा नटादीनां प्रचेष्टते । तथा स्वकर्मवशगो देही सर्वत्र वर्तते ॥
अहं वनगतो मातर्नाऽभवं दुःखमानसः । चिन्तयन्स्वकृतं कर्म भोक्तव्यमितिवेद्मि च
मृतो मातामहोऽत्रैव विधुरा जननी मम । भयातुरा गृहीत्वा मां निर्ययौगहनं वनम्
लुण्ठिता तस्करैर्मार्गे वस्त्रहीना तथा कृता । पाथेयञ्च हृतं सर्वंबालपुत्रा निराश्रया
माता गृहीत्वामांप्राप्ताभारद्वाजाश्रमंप्रति । विदल्लोऽयंसमायातस्तथाधात्रेयिकाबला
मुनिभिर्मुनिपत्नीभिर्दयायुक्तैः समन्ततः । पोषिताः फलनीवारैर्वयं तत्र स्थितास्त्रयः
दुःखं न मे तदाह्यासीत्सुखं नाऽद्यधनागमे । न वैरंनचमात्सर्यं मम चित्तेतुकर्हिचित्
नीवारभक्षणं श्रेष्ठं राजभोगात्परन्तपे । तदाशी नरकं याति न नीवाराशनः कश्चित्
धर्मस्याचरणं कार्यं पुरुषेषु विजानता । संजित्येन्द्रियवर्गं वै यथा न नरकं व्रजेत्
मानुष्यं दुर्लभं मातःखण्डेऽस्मिन्भारते! शुभे । आहारादिसुखंनूनंभवेत्सर्वासुयोनिषु
प्राप्य तं मानुषं देहं कर्तव्यंधर्मसाधनम् । स्वर्गमोक्षप्रदं नृणां दुर्लभं चाऽन्ययोनिषु

व्यास उवाच

इत्युक्ता सा तदा तेन लीलावत्यतिलज्जिता । पुत्रशोकंपरित्यज्यत्तमाहाश्रुविलोचना
सापराधाऽस्मि पुत्राहं कृता पित्रायुधाजिता । हत्वामातामहं तेऽत्रहृतंराज्यंतुयेनवै
न तं वारयितुं शक्ता तदाऽहं न सुतंमम । यत्कृतंकर्मतेनैवनाऽपराधोऽस्ति मे सुत !
तौ मृतौ स्वकृतेनैव कारणंत्वंतयोर्न च । नाऽहंशोचामितंपुत्रंसदाशोचामितत्कृतम्
पुत्रस्त्वमसि कल्याण! भगिनीमे मनोरमा । न क्रोधोनचशोकोमेत्वयिपुत्रमनागपि
कुरु राज्यं महाभाग प्रजाः पालय सुव्रत । भगवत्याः प्रसादेन प्राप्तमेतदकण्टकम्

तदाकर्ण्य वचोमातुर्नत्वा तां नृपनन्दनः। जगाम भुवनं रम्यं यत्र पूर्वं मनोरमा॥
न्यवसंत्तत्र गत्वातु सर्वानाहूय मन्त्रिणः। दैवज्ञानथ पप्रच्छ मुहूर्तं दिवसं शुभम्
सिंहासनं तथा हैमं कारयित्वा मनोहरम्। सिंहासनेस्थितांदेवींपूजयिष्येसदाप्यहम्

स्थापयित्वाऽऽसने देवीं धर्मार्थकाममोक्षदाम्।

राज्यं पश्चात्करिष्यामि यथा रामादिभिः कृतम्॥ २९॥

पूजनीयासदा देवी सर्वैर्नागरिकैर्जनैः। माननीयाशिवा शक्तिः सर्वकामार्थसिद्धिदा

इत्युक्ता मन्त्रिणस्ते तु चक्रुर्वै राजशासनम्।

प्रासादं कारयामासुः शिल्पिभिः सुमनोरमम्॥ ३१॥

प्रतिमां कारयित्वाऽथ मुहूर्तेऽथ शुभेदिने। द्विजानाहूयवेदज्ञान्स्थापयामास भूपतिः
हवनंविधिवत्कृत्वापूजयित्वाऽथदेवताम्। प्रासादेमतिमान्देव्याःस्थापयामासभूमिपः
उत्सवस्तत्र संवृत्तो वादित्राणांचनिःस्वनैः। ब्राह्मणानांवेदघोषैर्गानैस्तु विविधैर्नृप

व्यास उवाच

प्रतिष्ठाप्यशिवांदेवींविधिवद्वेदवादिभिः। पूजांनानाविधांराजाचकाराऽतिविधानतः

कृत्वा पूजाविधिं राजा राज्यं प्राप्य स्वपैतृकम्।

विख्यातश्चाऽम्बिका देवी कोसलेषु बभूव ह॥ ३६॥

राज्यं प्राप्य नृपःसर्वसामन्तकनृपानथ। वशे चक्रेऽतिधर्मिष्ठान्सद्धर्मविजयी नृपः
यथारामः स्वराज्येऽभूद्दिलीपस्यरघुर्यथा। प्रजानांवैसुखंतद्वन्मर्यादाऽपितथाऽभवत्
धर्मो वर्णाश्रमाणांच चतुष्पादभवत्तथा। नाऽधर्मे रमते चित्तं केषामपि महीतले॥
ग्रामे ग्रामे च प्रासादांश्चक्रुःसर्वे जनाधिपाः। देव्याःपूजातदाप्रीत्याकोसलेषुप्रवर्तिता

सुबाहुरपि काश्यां तु दुर्गायाःप्रतिमां शुभाम्।

कारयित्वा च प्रासादं स्थापयामास भक्तितः॥ ४१॥

तत्र तस्या जनाः सर्वेप्रेमभक्तिपरायणाः। पूजां चक्रुर्विधानेनयथा विश्वेश्वरस्य ह
विख्याता सा बभूवाथ दुर्गादेवी धरातले। देशेदेशे महाराज तस्याभक्तिःर्व्यवर्धत
सर्वत्र भारते लोके सर्ववर्णेषु सर्वथा। भजनीया भवानी तु सर्वेषामभवत्सदा

शक्तिभक्तिरताः सर्वे मानिनश्चाभवन्नृप । आगमोक्तैरथ स्तोत्रैर्जपध्यानपरायणाः
नवरात्रेषु सर्वेषु चक्रुः सर्वे विधानतः । अर्चनं हवनं यागं देव्या भक्तिपरा जनाः ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यांसंहितायां तृतीयस्कन्धे
देवीस्थापनवर्णनंनामपञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

षड्विंशोऽध्यायः

नवरात्रविधेर्नृपायव्यासेनकथनम्

जनमेजय उवाच

नवरात्रे तु सम्प्राप्ते किं कर्तव्यं द्विजोत्तम । विधानं विधिवद्ब्रूहि शरत्कालेविशेषतः
किं फलं खलुकस्तत्र विधिः कार्यो महामते । एतद्विस्तरतो ब्रूहि कृपया द्विजसत्तम

व्यास उवाच

शृणुराजन्प्रवक्ष्यामि नवरात्रव्रतं शुभम् । शरत्काले विशेषेण कर्तव्यं विधिपूर्वकम्
वसन्ते च प्रकर्तव्यं तथैव प्रेमपूर्वकम् । द्वावृतू यमदंष्ट्राख्यौ नूनं सर्वजनेषु च ॥
शरद्वसन्तनामानौ दुर्गमौप्राणिनामिह । तस्माद्यत्नादिदं कार्यं सर्वत्र शुभमिच्छता
द्वावेव सुमहाघोरावृतू रोगकरौनृणाम् । वसन्तशरदावेवजननाशकरावुभौ ॥
तस्मात्तत्र प्रकर्तव्यं चण्डिकापूजनं बुधैः । चैत्रेऽश्विनेशुभेमासेभक्तिपूर्वं नराधिप !॥
अमावास्यां च सम्प्राप्य सम्भारं कल्पयेच्छुभम् । हविष्यंचाशनंकार्यमेकभुक्तंतुतद्दिने
मण्डपस्तु प्रकर्तव्यः समेदेशे शुभे स्थले । हस्तषोडशमानेन स्तम्भध्वजसमन्वितः ॥
गौरमृद्गोमयाभ्यां च लेपनं कारयेत्ततः । तन्मध्ये वेदिकाशुभ्रा कर्तव्याचसमास्थिरा
चतुर्हस्ताचहस्तोच्छ्रापीठार्थंस्थानमुत्तमम् । तोरणानिविचित्राणिवितानंचप्रकल्पयेत्
रात्रौद्विजानथामन्त्र्य देवीतत्त्वविशारदान् । आचारनिरतान्दान्तान्वेदवेदाङ्गपारगान्
प्रतिपद्दिवसे कार्यं प्रातःस्नानं विधानतः । नद्यां नदे तडागेवा वाप्यां कूपे गृहेऽथवा

प्रातर्नित्यं पुरः कृत्वा द्विजानां वरणं ततः । अर्घ्यपाद्यादिकं सर्वं कर्तव्यंमधुपूर्वकम्
वस्त्रालंकरणादीनि देयानिचस्वशक्तितः । वित्तशाठ्यं नकर्तव्यंविभवेसतिकर्हिचित्
विप्रैः सन्तोषितैःकार्यंसम्पूर्णंसर्वथाभवेत् । नवपञ्चत्रयश्चैकोदेव्याःपाठेद्विजाःस्मृताः
वरयेद् ब्राह्मणं शान्तं पारायणकृते तदा । स्वस्तिवाचनकं कार्यं वेदमन्त्रविधानतः

वेद्यां सिंहासनं स्थाप्य क्षौमवस्त्रसमन्वितम् ।
तत्र स्थाप्याऽम्बिका देवी चतुर्हस्ताऽऽयुधान्विता ॥ १८ ॥

रत्नभूषणसंयुक्ता मुक्ताहारविराजिता । दिव्याम्बरधरा सौम्या सर्वलक्षणसंयुता ॥
शङ्खचक्रगदापद्मधरा सिंहे स्थिताशिवा । अष्टादशभुजावाऽपि प्रतिष्ठाप्या सनातनी
अर्चाभावे तथा यन्त्रं नवार्णमन्त्रसंयुतम् । स्थापयेत्पीठपूजार्थंकलशं तत्र पार्श्वतः
पञ्चपल्लवसंयुक्तं वेदमन्त्रैः सुसंस्कृतम् । सुतीर्थजलसम्पूर्णं हेमरत्नैः समन्वितम् ॥
पार्श्वेपूजार्थसम्भारान्परिकल्प्य समन्ततः । गीतावादित्रनिर्घोषान्कारयेन्मङ्गलाय वै
तिथौ हस्तान्वितायां चनन्दायांपूजनंवरम् । प्रथमेदिवसेराजन्विधिवत्कामदंनृणाम्
नियमं प्रथमं कृत्वा पश्चात्पूजां समाचरेत् । उपवासेननक्तेन चैकभक्तेन वा पुनः
करिष्यामि व्रतं मातर्नवरात्रमनुत्तमम् । साहाय्यंकुरु मेदेवि ! जगदम्बममाखिलम्
यथाशक्तिप्रकर्तव्यो नियमोव्रतहेतवे । पश्चात्पूजा प्रकर्तव्या विधिवन्मन्त्रपूर्वकम्
चन्दनागुरुकर्पूरैः कुसुमैश्चसुगन्धिभिः । मन्दारकरजाशोकचम्पकैः करवीरकैः ॥२८
मालतीब्रह्मकापुष्पैस्तथा विल्वदलैः शुभैः । पूजयेज्जगतांधात्रीं धूपैर्दीपैर्विधानतः ॥
फलैर्नानाविधैरर्घ्यं प्रदातव्यं च तत्र वै । नारिकेलैर्मातुलिङ्गैर्दाडिमीकदलीफलैः ॥
नारङ्गैः पनसैश्चैवतथा पूर्णफलैः शुभैः । अन्नदानं प्रकर्तव्यं भक्तिपूर्वं नराधिप !॥
मांसाशनं ये कुर्वन्ति तैः कार्यं पशुहिंसनम् । महिषाजवराहाणां बलिदानंविशिष्यते
देव्यग्रे निहतायान्ति पशवः स्वर्गमव्ययम् । न हिंसा पशुजा तत्रनिघ्नतांतत्कृतेऽनघ
अहिंसा याज्ञिकी प्रोक्ता सर्वशास्त्रविनिर्णये । देवतार्थे विसृष्टानांपशूनां स्वर्गतिर्ध्रुवा
होमार्थंचैवकर्तव्यंकुण्डंचैवत्रिकोणकम् । स्थण्डिलंवाप्रकर्तव्यंत्रिकोणंमानतःशुभम्
त्रिकालं पूजनंनित्यं नानाद्रव्यैर्मनोहरैः । गीतवादित्रनृत्यैश्च कर्तव्यश्च महोत्सवः ॥

नित्यं भूमौ च शयनं कुमारीणां च पूजनम् । वस्त्रालङ्करणैर्दिव्यैर्भोजनैश्च सुधामयैः एकैकां पूजयेन्नित्यमेकवृद्ध्या तथा पुनः । द्विगुणंत्रिगुणंवाऽपिप्रत्येकं नवकं च वा विभवस्यानुसारेण कर्तव्यं पूजनं किल । वित्तशाठ्यं न कर्तव्यंराजञ्छक्तिमखेसदा एकवर्षा न कर्तव्या कन्यापूजाविधौनृप । परमज्ञा तु भोगानांगन्धादीनांचबालिका कुमारिका तु सा प्रोक्ताद्विवर्षायामवेदिह । त्रिमूर्तिश्चत्रिवर्षाचकल्याणीचतुरब्दिका रोहिणीपञ्चवर्षाचषड्वर्षाकालिकास्मृता । चण्डिकासप्तवर्षास्यादष्टवर्षाचशाम्भवी नववर्षा भवेद् दुर्गा सुभद्रा दशवार्षिकी । अतऊर्ध्वं न कर्तव्या सर्वकार्यविगर्हिता एभिश्चनामभिः पूजाकर्तव्या विधिसंयुता । तासांफलानिवक्ष्यामिनवानांपूजनेसदा कुमारीपूजिताकुर्याद्दुःखदारिद्र्यनाशनम् । शत्रुक्षयं धनायुष्यं बलवृद्धिंकरोति वै त्रिमूर्तिपूजनादायुस्त्रिवर्गस्यफलं भवेत् । धनधान्यागमश्चैव पुत्रपौत्रादिवृद्धयः ॥

विद्यार्थी विजयार्थी च राज्यार्थी यश्च पार्थिवः ।
सुखार्थी पूजयेन्नित्यं कल्याणीं सर्वकामदाम् ॥ ४७ ॥

कालिकां शत्रुनाशार्थं पूजयेद्भक्तिपूर्वकम् । ऐश्वर्यधनकामश्च चण्डिकां परिपूजयेत् पूजयेच्छाम्भवीं नित्यं नृपसम्मोहनाय च । दुःखदारिद्र्यनाशायसंग्रामेविजयाय च क्रूरशत्रुविनाशार्थं तथोग्रकर्मसाधने । दुर्गांचपूजयेद्भक्त्या परलोकसुखाय च ॥५०॥ वाञ्छितार्थस्य सिद्ध्यर्थं सुभद्रांपूजयेत्सदा । रोहिणीं रोगनाशायपूजयेद्विधिवन्नरः श्रीरस्त्विति च मन्त्रेण पूजयेद्भक्तितत्परः । श्रीयुक्तमन्त्रैरथवा बीजमन्त्रैरथापिवा कुमारस्यचतत्त्वानि यासृजत्यपिलीलया । कादीनपिचदेवांस्तान्कुमारींपूजयाम्यहम्

सत्त्वादिभिस्त्रिमूर्तिर्या तैर्हि नानास्वरूपिणी ।
त्रिकालव्यापिनी शक्तिस्त्रिमूर्तिं पूजयाम्यहम् ॥ ५४ ॥
कल्याणकारिणी नित्यं भक्तानां पूजिताऽनिशम् ।
पूजयामि च तां भक्त्या कल्याणीं सर्वकामदाम् ॥ ५५ ॥

रोहयन्तीचबीजानि प्राग्जन्मसञ्चितानिवै । यादेवीसर्वभूतानांरोहिणीं पूजयाम्यहम् कालीकालयतेसर्वं ब्रह्माण्डं सचराचरम् । कल्पान्तसमयेयातांकालिकांपूजयाम्यहम्

चण्डिकां चण्डरूपाञ्च चण्डमुण्डविनाशिनीम् ।
तां चण्डपापहरिणीं चण्डिकाम्पूजयाम्यहम् ॥ ५८ ॥
अकारणात्समुत्पत्तिर्यन्मयैः परिकीर्तिता ।
यस्यास्तांसुखदां देवीं शाम्भवीं पूजयाम्यहम् ॥ ५९ ॥
दुर्गात्त्रायतिभक्तं यासदादुर्गार्तिनाशिनी । दुर्ज्ञेया सर्वदेवानां तां दुर्गां पूजयाम्यहम्
सुभद्राणिच भक्तानां कुरुते पूजितासदा । अभद्रनाशिनीं देवीं सुभद्राम्पूजयाम्यहम् ॥
एभिर्मन्त्रैः पूजनीयाः कन्यकाः सर्वदा बुधैः । वस्त्रालङ्करणैर्माल्यैर्गन्धैरुच्चावचैरपि

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां तृतीयस्कन्धे
कुमारीपूजावर्णनंनामषड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

सप्तविंशोऽध्यायः

पूजाविधौवर्जितकन्यानाम्वर्णनम्

व्यास उवाच

हीनाङ्गीं वर्जयेत्कन्यां कुष्ठयुक्तां व्रणाङ्किताम् ।
गन्धस्फुरितहीनाङ्गीं विशालकुलसम्भवाम् ॥ १ ॥
जात्यन्धां केकरां काणीं कुरूपां बहुरोमशाम् ।
सन्त्यजेद्रोगिणीं कन्यां रक्तपुष्पादिनांऽकिताम् ॥ २ ॥
क्षामांगर्भसमुद्भूतांगोलकांकन्यकोद्भवाम् । वर्जनीयाःसदाचैताःसर्वपूजादिकर्मसु ॥
अरोगिणींसुरूपांगीं सुन्दरीं व्रणवर्जिताम् । एकवंशसमुद्भूतांकन्यांसम्यक्प्रपूजयेत्
ब्राह्मणीसर्वकार्येषुजयार्थे नृपवंशजा । लाभार्थे वैश्यवंशोत्था मता वा शूद्रवंशजा ॥
ब्राह्मणैर्ब्रह्मजाः पूज्या राजन्यैर्ब्रह्मवंशजा । वैश्यैस्त्रिवर्गजाः पूज्याश्चतस्रः पादसम्भवैः
कारुभिश्चैव वंशोत्था यथायोग्यं प्रपूजयेत् । नवरात्रविधानेन भक्तिपूर्वं सदैव हि ॥

अशक्तो नियतं पूजां कर्तुं चेन्नवरात्रके । अष्टम्याञ्च विशेषेण कर्तव्यं पूजनं सदा ॥८
पुराऽष्टम्यां भद्रकाली दक्षयज्ञविनाशिनी । प्रादुर्भूतामहाघोरा योगिनीकोटिभिःसह
अतोऽष्टम्यांविशेषेण कर्तव्यं पूजनं सदा । नानाविधोपहारैश्च गन्धमाल्यानुलेपनैः ॥
पायसैरामिषैर्होमैर्ब्राह्मणानाञ्च भोजनैः । फलपुष्पोपहारैश्च तोषयेज्जगदम्बिकाम् ॥
उपवासे ह्यशक्तानां नवरात्रव्रते पुनः । उपोषणत्रयं प्रोक्तं यथोक्तं फलदं नृप !॥१२॥
सप्तम्याञ्च तथाऽष्टम्यां नवम्यांभक्तिभावतः । त्रिरात्रकरणात्सर्वंफलम्भवतिपूजनात्
पूजाभिश्चैव होमैश्च कुमारीपूजनैस्तथा । सम्पूर्णं तद्व्रतं प्रोक्तंविप्राणाञ्चैव भोजनैः
व्रतानियानि चान्यानि दानानिविविधानि च । नवरात्रव्रतस्यास्यनैवतुल्यानिभूतले
धनधान्यप्रदंनित्यं सुखसन्तानवृद्धिदम् । आयुरारोग्यदञ्चैव स्वर्गदं मोक्षदं तथा ॥
विद्यार्थीवाधनार्थीवापुत्रार्थीवाभवेन्नरः । तेनेदंविधिवत्कार्यं व्रतं सौभाग्यदं शिवम्

विद्यार्थी सर्वविद्याम्वै प्राप्नोति व्रतसाधनात् ।
राज्यभ्रष्टो नृपो राज्यं समवाप्नोति सर्वथा ॥ १८ ॥

पूर्वजन्मनि यैर्नूनं न कृतं व्रतमुत्तमम् । ते व्याधिनो दरिद्राश्च भवन्ति पुत्रवर्जिताः ॥
वन्ध्या च या भवेन्नारी विधवा धनवर्जिता । अनुमानञ्चकर्त्तव्या नेयं कृतवती व्रतम्
नवरात्रव्रतं प्रोक्तं न कृतं येन भूतले । स कथं विभवं प्राप्य मोदते च तथा दिवि ॥
रक्तचन्दनसंमिश्रैः कोमलैर्बिल्वपत्रकैः । भवानी पूजिता येन स भवेन्नृपतिः क्षितौ

नाऽऽराधिता येन शिवा सनातनी दुःखार्तिहा सिद्धिकरी जगद्धरा ।
दुःखावृतः शत्रुयुतश्च भूतले नूनं दरिद्रो भवतीह मानवः ॥ २३ ॥
यां विष्णुरिन्द्रो हरपद्मजौ तथा वह्निः कुबेरो वरुणो दिवाकरः ।
ध्यायन्ति सर्वार्थसमाप्तिनन्दितास्तां किं मनुष्या न भजन्ति चण्डिकाम् ॥
स्वाहा स्वधानाम मनुप्रभावैस्तृप्यन्ति देवाः पितरस्तथैव ।
यज्ञेषु सर्वेषु मुदा हरन्ति यन्नामयुग्मश्रुतिभिर्मुनीन्द्राः ॥ २५ ॥
यस्येच्छया सृजति विश्वमिदं प्रजेशो नानावतारकलनं कुरुते हरिश्च ।
नूनं करोति जगतः किल भस्म शम्भुस्तां शर्मदां न भजते नु कथं मनुष्यः ॥

नैकोऽस्ति सर्वभवनेषु तया विहीनो देवो नरोऽथ विहगः किल पन्नगो वा ।
गन्धर्वराक्षसपिशाचनगेषु नूनं यः स्पन्दितुं भवति शक्तियुतो यथेच्छम् ॥२७॥

तांनसेवेतकश्चण्डींसर्वकामार्थदांशिवाम् । व्रतंतस्यानकः कुर्याद्वाञ्छन्नर्थचतुष्टयम् ॥
महापातकसंयुक्तो नवरात्रव्रतं चरेत् । मुच्यते सर्वपापेभ्यो नात्र कार्या विचारणा
पुरा कश्चिद्वणिक्क्षीणोधनहीनःसुदुःखितः । कुटुम्बीचाभवत्कश्चित्कौशलेनृपसत्तम

अपत्यानि बहून्यस्याऽभवन्क्षुत्पीडितानि च ।
भक्ष्यं किंचित्तु सायाह्ने प्रापुस्तस्य च बालकाः ॥ ३१ ॥

भुंक्ते स्म कार्यकर्ताऽसौ परस्याथ बुभुक्षितः । कुटुम्बभरणं तत्र चकारातिनिराकुलः
सदा धर्मरतः शान्तः सदाचारश्च सत्यवाक् । अक्रोधनश्चधृतिमान्निर्मदश्चानसूयकः
सम्पूज्यदेवतानित्यंपितृनप्यतिथींस्तथा । भुञ्जानेपोष्यवर्गेऽथ कृतवान्भोजनंवणिक्
एवंगच्छतिकालेवैसुशीलोनामतोगुणैः । दारिद्र्यार्तोद्विजंशान्तं पप्रच्छातिबुभुक्षितः

सुशील उवाच

भो भूदेव कृपां कृत्वा वदस्वाऽद्य महामते । कथं दारिद्र्यनाशःस्यादितिमेनिश्चयेनवै
धनेषणामेनैवास्तिधनीस्यामितिमानद । कुटुम्बभरणार्थंवै पृच्छामि त्वां द्विजोत्तम
पुत्रीसुतस्तु मे बालो भक्षार्थी रोदतेभृशम् । तावन्मात्रंगृहेनान्नंमुष्टिमेकां ददाम्यहम्
विसर्जितो यतो गेहाद्गतो बालोरुदन्मया । अतो मे दह्यतेऽत्यर्थं किंकरोमिधनंविना

विवाहोऽस्ति सुताया मे नास्ति वित्तं करोमि किम् ।
दशवर्षाधिकायास्तु दानकालोऽपि यात्यलम् ॥ ४० ॥

तेन शोचामि विप्रेन्द्र सर्वज्ञोऽसिदयानिधे । तपोदानव्रतंकिञ्चिद्ब्रूहिमन्त्रंजपं तथा
येनाहंपोष्यवर्गस्यकरोमि द्विजपोषणम् । तावन्मे स्याद्धनप्राप्तिर्नाधिकं प्रार्थये किल
त्वत्प्रसादात्कुटुम्बं मे सुखितं प्रभवेदिह । तत्कुरुष्व महाभाग ज्ञानेन परिचिन्त्यच

व्यास उवाच

इति पृष्टस्तथातेन ब्राह्मणः संशितव्रतः । उवाच परमप्रीतस्तं वैश्यं नृपसत्तम !॥४४॥
वैश्यवर्य! कुरुष्वाऽद्य नवरात्रव्रतंशुभम् । पूजनं भगवत्याश्च हवनं भोजनं तथा ॥

वेदपारायणंशक्तिजपहोमादिकं तथा । कुरुष्वाद्य यथाशक्ति तव कार्यं भविष्यति ॥
एतस्मादपरं किञ्चिद्व्रतं नास्ति धरातले । नवरात्राभिधंवैश्य पावनं सुखदन्तथा ॥
ज्ञानदं मोक्षदञ्चैव सुखसन्तानवर्धनम् । शत्रुनाशकरं कामं नवरात्रव्रतं सदा ॥ ४८॥
राज्यभ्रष्टेन रामेण सीताविरहितेन च । किष्किन्धायां व्रतञ्चैतत्कृतं दुःखातुरेणवै
व्रतमेनाऽपि रामेण सीताविरहवह्निना । विधिवत्पूजिता देवी नवरात्रव्रतेन वै॥५०॥
तेन प्राप्ताऽथ वैदेही कृत्वा सेतुंमहार्णवे । हत्वा मन्दोदरीनाथं कुम्भकर्णं महाबलम्
मेघनादंसुतंहत्वाकृत्वाभूपंविभीषणम् । पश्चादयोध्यामागत्य प्राप्तं राज्यमकण्टकम्
नवरात्रव्रतस्यास्य प्रभावेणविशाम्वर । सुखं भूमितले प्राप्तं रामेणाऽमिततेजसा ॥

व्यास उवाच

इति विप्रवचः श्रुत्वासवैश्यस्तंद्विजंगुरुम् । कृत्वाजग्राहसन्मन्त्रंमायाबीजाभिधं नृप
जजाप परयाभक्त्या नवरात्रमतन्द्रितः । नानाविधोपहारैश्च पूजयामास सादरम् ॥
नवसंवत्सरं चैव मायाबीजपरायणः । नवमे वत्सरान्ते तु महाष्टम्याम्महेश्वरी ॥५६
अर्धरात्रे तु सञ्जाते प्रत्यक्षं दर्शनं ददौ । नानावरप्रदानैश्च कृतकृत्यं चकार तम् ॥५७

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां तृतीयस्कन्धे
देवीपूजामहत्त्ववर्णनंनामसप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

अष्टाविंशोऽध्यायः

जनमेजयस्यरामचरित्रविषयेप्रश्नेकृतेव्यासेनतच्चरित्रवर्णनम्

जनमेजय उवाच

कथं रामेण तच्चीर्णं व्रतं देव्याः सुखप्रदम् । राज्यभ्रष्टःकथंसोऽथ कथंसीताहृतापुनः

व्यास उवाच

राजादशरथः श्रीमानयोध्याधिपतिः पुरा । सूर्यवंशधरश्चासीद्देवब्राह्मणपूजकः ॥ २

चत्वारोऽभवंस्तस्य पुत्रा लोकेषु विश्रुताः । रामलक्ष्मणशत्रुघ्ना भरतश्चेति नामतः ॥
राज्ञः प्रियङ्कराः सर्वे सदृशा गुणरूपतः । कौसल्यायाःसुतोरामःकैकेय्याभरतःस्मृतः
सुमित्रातनयौ जातौ यमलौ द्वौ मनोहरौ । ते जातावैकिशोराश्चधनुर्बाणधराःकिल
सूनवःकृतसंस्कारा भूपतेः सुखवर्धकाः । कौशिकेन तदाऽऽगत्य प्रार्थितो रघुनन्दनः
राघवंमखरक्षार्थंसूनुंषोडशवार्षिकम् । तस्मैसोऽयं ददौ रामं कौशिकायसलक्ष्मणम्
तौ समेत्यमुनिमार्गे जग्मतुश्चारुदर्शनौ । ताटकानिहता मार्गे राक्षसी घोरदर्शना ॥
रामेणैकेन बाणेन मुनीनां दुःखदासदा । यज्ञरक्षा कृता तत्र सुबाहुर्निहतः शठः ॥१०॥
मारीचोऽथ मृतप्रायो निक्षिप्तोबाणवेगतः । एवं कृत्वा महत्कर्म यज्ञस्य परिरक्षणम्

गतास्ते मिथिलां सर्वे रामलक्ष्मणकौशिकाः ।

अहल्या मोचिता शापान्निष्पापा सा कृताऽबला ॥ ११ ॥

विदेहनगरे तौ तु जग्मतुर्मुनिना सह । बभञ्ज शिवचापञ्च जनकेन पणीकृतम् ॥
उपमेये ततःसीतां जानकींश्चरमांशजाम् । लक्ष्मणायददौ राजापुत्रीमेकांतथोर्मिलाम्
कुशध्वजसुते कन्ये प्रापतुर्भ्रातरावुभौ । तथा भरतशत्रुघ्नौ सुशीलौ शुभलक्षणौ ॥
एवंदारक्रियास्तेषां भ्रातॄणांचाभवन्नृप । चतुर्णांमिथिलायान्तुयथाविधिविधानतः
राज्ययोग्यं सुतं दृष्ट्वा राजादशरथस्तदा । राघवाय धुरं दातुं मनश्चक्रे निजाय वै ॥
सम्भारं विहितं दृष्ट्वा कैकेयी पूर्वकल्पितौ । वरौ सम्प्रार्थयामास भर्तारं वशवर्तिनम्
राज्यं सुताय चैकेन भरताय महात्मने । रामाय वनवासञ्च चतुर्दश समास्तथा ॥
रामस्तु वचनात्तस्याः सीतालक्ष्मणसंयुतः । जगाम दण्डकारण्यंराक्षसैरुपसेवितम्
राजा दशरथः पुत्रविरहेण प्रपीडितः । जहौ प्राणानमेयात्मा पूर्वशापमनुस्मरन्॥२०
भरतः पितरं दृष्ट्वा मृतं मातृकृतेन वै । राज्यमृद्धं न जग्राह भ्रातुः प्रियचिकीर्षया ॥
पञ्चवट्यां वसन्रामो रावणावरजांवने । शूर्पणखां विरूपाम्वै चकारातिस्मरातुराम्
खरादयस्तु तां दृष्ट्वा छिन्ननासां निशाचराः । चक्रुःसंग्राममतुलं रामेणाऽमिततेजसा
सजघानखरादींश्चदैत्यानतिबलान्वितान् । मुनीनांहितमन्विच्छन् रामःसत्यपराक्रमः
गत्वा शूर्पणखा लङ्कां खरदूषणघातनम् । दूषिता कथयामास रावणायचराघवात् ॥

सोऽपि श्रुत्वा विनाशंतं जातःक्रोधवशःखलः । जगामरथमारुह्यमारीचस्याश्रमंतदा
कृत्वा हेममृगंनेतुं प्रेषयामास रावणः । सीताप्रलोभनार्थाय मायाविनमसम्भवम् ॥
सोऽथहेममृगोभूत्वासीतादृष्टिपथं गतः । मायावी चातिचित्राङ्गश्चरन्प्रबलमन्तिके
तं दृष्ट्वा जानकी प्राह राघवंदैवनोदिता । चर्मानयस्व कान्तेति स्वाधीनपतिकायथा
अविचार्याथ रामोऽपितत्र संस्थाप्यलक्ष्मणम् । सशरंधनुरादाय ययौ मृगपदानुगः
सारंगोऽपिहरिंदृष्ट्वामायाकोटिविशारदः । दृश्यादृश्योबभूवाथ जगाम च वनान्तरम्
मत्वा हस्तगतं रामःक्रोधाकृष्टधनुः पुनः । जघानचातितीक्ष्णेन शरेण कृत्रिमंमृगम् ॥
सहतोऽतिबलात्तेनचुक्रोशभृशदुःखितः । हालक्ष्मणहतोऽस्मीतिमायावीनश्वरःखलः॥
स शब्दस्तुमुलस्तावज्जानक्यासंश्रुतस्तदा । राघवस्येतिसामत्वादीनादेवरमब्रवीत्॥
गच्छलक्ष्मणतूर्णंत्वंहतोऽसौरघुनंदनः । त्वामाह्वयतिसौमित्रेसाहाय्यं कुरु सत्वरम
तत्राऽऽहलक्ष्मणःसीतामंब रामवधादपि । नाहंगच्छेऽद्यमुक्त्वात्वामसहायामिहाश्रमे
आज्ञामेराघवस्यात्र तिष्ठेतिजनकात्मजे । तदतिक्रमभीतोऽहं नत्यजामि तवांतिकम्
दूतं वै राघवं दृष्ट्वावनेमायाविनाकिल । त्यक्त्वा त्वांनाधिगच्छामिपदमेकंशुचिस्मते
कुरुधैर्यंनमन्येऽधरामंहंतुं क्षमंक्षितौ । नाहं त्यक्त्वा गमिष्यामिविलंघ्यरामभाषितम्

व्यास उवाच

रुदती सुदती प्राहतंतदा विधिनोदिता । अक्रूरा वचनं क्रूरं लक्ष्मणं शुभलक्षणम् ॥
अहं जानामि सौमित्रे सानुरागं च मां प्रति । प्रेरितं भरतेनैव मदर्थमिह संगतम् ॥
नाहं तथाविधानारीस्वैरिणीकुहकाधमा । मृते रामे पतिंत्वांनकर्तुमिच्छामिकामतः
नागमिष्यतिचेद्रामोजीवितंसंत्यजाम्यहम् । विनातेननजीवामिविधुरादुःखिताभृशम्
गच्छ वा तिष्ठसौमित्रेनजानेऽहंतवेप्सितम् । क गतं तेऽत्रसौहार्दंज्येष्ठे धर्मरतेकिल
तच्छ्रुत्वा वचनंतस्यालक्ष्मणोदीनमानसः । प्रोवाचरुद्धकंठस्तुतांतदाजनकात्मजाम्
किमात्थक्षितिजेवाक्यंमयिक्रूरतरंकिल । किं वदस्यत्यनिष्टंतेभाविजानेधियाह्यहम्
इत्युक्त्वानिर्ययौवीरस्तांत्यक्त्वाप्ररुदन्भृशम् ।अग्रजस्यययौपश्यञ्छोकार्तःपृथिवीपते
गतेऽथ लक्ष्मणे तत्र रावणः कपटाकृतिः । भिक्षुवेषं ततः कृत्वा प्रविवेश तदाश्रमे॥

जानकी तंयतिमत्वादृत्वाऽर्घवन्यमादरात् । भैक्ष्यं समर्पयामास रावणाय दुरात्मने
तां पप्रच्छसदुष्टात्मानम्रपूर्वंमृदुस्वरम् । काऽसिपद्मपलाशाक्षि वने चैकाकिनीप्रिये॥

पिता कस्तेऽथ वामोरु! भ्राता कः कः पतिस्तव ।

मूढैवैकाकिनी चाऽत्र स्थिताऽसि वरवर्णिनि !॥ ५१ ॥

निर्जनेविपिनेकिंत्वं सौधार्हा त्वमसि प्रिये । उटजे मुनिपत्नीवद्देवकन्यासमप्रभा ॥

व्यास उवाच

इति तद्वचनं श्रुत्वाप्रत्युवाचविदेहजा । दिव्यं दिष्ट्या यतिंज्ञात्वामंदोदर्याःपतिं तदा
राजा दशरथःश्रीमांश्चत्वारस्तस्यवैसुताः । तेषांज्येष्ठःपतिर्मेऽस्तिरामनामेति विश्रुतः
विवासितोऽथकैकेय्या कृते भूपतिनावरे । चतुर्दश समा रामो वसतेऽत्र सलक्ष्मणः
जनकस्य सुताचाहंसीतानाम्नीतिविश्रुता । भंक्त्वा शैवंधनुःकामंरामेणाहंविवाहिता
रामबाहुबलेनात्र वसामो निर्भया वने । कांचनं मृगमालोक्य हंतुं मेनिर्गतः पतिः ॥
लक्ष्मणोऽपि पुनःश्रुत्वारवंभ्रातुर्गतोऽधुना । तयोर्बाहुबलादत्र निर्भयाऽहं वसामिवै
मयेदं कथितं सर्ववृत्तांतं वनवासकम् । तेऽत्रागत्यार्हणां तेवै करिष्यंति यथाविधि

यतिर्विष्णुस्वरूपोऽसि तस्मात्त्वं पूजितो मया ।

आश्रमो विपिने घोरे कृतोऽस्ति रक्षसां कुले ॥ ६० ॥

तस्मात्त्वांपरिपृच्छामिसत्यंब्रूहि ममाग्रतः । कोऽसित्रिदंडीरूपेणविपिनेत्वंसमागतः

रावण उवाच

लंकेशोऽहं मरालाक्षिश्रीमान्मंदोदरीपतिः । त्वत्कृते तु कृतं रूपं मयेत्थं शोभनाकृते
आगतोऽहं वरारोहे भगिन्याप्रेरितोऽत्रवै । जनस्थानेहतौश्रुत्वाभ्रातरौ खरदूषणौ ॥
अङ्गीकुरु नृपं मांत्वं त्यक्त्वातमानुषंपतिम् । हृतराज्यंगतश्रीकं निर्बलं वनवासिनम्
पट्टराज्ञीभवत्वंमेमंदोदर्युपरिस्फुटम् । दासोऽस्मितव तन्वंगि स्वामिनीभवभामिनि !
जेताऽहं लोकपालानांपतामित्वपादयोः । करंगृहाणमेऽद्य त्वं सनाथं कुरु जानकि !
पिता तेयाचितःपूर्वंमयावैत्वत्कृतेऽबले । जनको मामुवाचेत्थं पणबंधो मया कृतः ॥
रुद्रचापभयात्राहं संप्राप्तस्तु स्वयंवरे । मनो मे संस्थितं तावन्निमग्नं विरहातुरम् ॥

वनेऽत्र संस्थितां श्रुत्वा पूर्वानुरागमोहितः ।
आगतोऽस्म्यसितापांगि सफलं कुरु मे श्रमम् ॥ ६६ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां तृतीयस्कन्धे
रामचरित्रवर्णनंनामाऽष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

ऊनत्रिंशोऽध्यायः

रावणकृतसीताहरणवर्णनम्

व्यास उवाच

तदाकर्ण्य वचोदुष्टंजानकीभयविह्वला । वेपमाना स्थिरं कृत्वा मनोवाचमुवाच ह॥
पौलस्त्यकिमसद्वाक्यंत्वमात्थस्मरमोहितः । नाहंवैस्वैरिणीकिंतुजनकस्यकुलोद्भवा
गच्छलंकांदशास्य त्वंरामस्त्वांवैहनिष्यति । मत्कृतेमरणंतत्रभविष्यति न संशयः॥
इत्युक्त्वापर्णशालायां गता सावह्निसन्निधौ । गच्छगच्छेतिवदतीरावणंलोकरावणम्
सोऽथकृत्वानिजंरूपंजगामोटजमंतिकम् । बलाज्जग्राहतांबालांरुदतीं भयविह्वलाम् ॥
रामरामेतिक्रंदंती लक्ष्मणेति मुहुर्मुहुः । गृहीत्वा निर्गतः पापो रथमारोप्य सत्वरः ॥
गच्छन्नरुणपुत्रेण मार्गे रुद्धो जटायुषा । संग्रामोऽभून्महारौद्रस्तयोस्तत्र वनांतरे ॥
हत्वातं तां गृहीत्वाच गतोऽसौराक्षसाधिपः । लंकायांक्रंदती तातकुररीवदुरात्मना
अशोकवनिकायांसास्थापिताराक्षसीयुता । स्ववृत्तान्नैवचलितासामदानादिभिःकिल

रामोऽपि तं मृगं हत्वा जगामाऽऽदाय निर्वृतः ।
आयांतं लक्ष्मणं वीक्ष्य किं कृतं तेऽनुजासमम् ॥ १० ॥

एकाकिनींप्रियांहित्वाकिमर्थंत्वमिहागतः । श्रुत्वास्वनंतुपापस्यराघवस्त्वब्रवीदिदम्

सौमित्रिस्त्वब्रवीद्वाक्यं सीतावाग्बाणताडितः ।
प्राप्तोऽत्राऽहं समायातः कालयोगान्न संशयः ॥ १२ ॥

तदा तौपर्णशालायांगत्वावीक्ष्यातिदुःखितौ । जानक्यन्वेषणेयत्नमुभौकर्तुंसमुद्यतौ॥

मार्गमाणौतुसंप्राप्तौ यत्रास्ते पतितः खगः । जटायुःप्राणशेषस्तुपतितः पृथिवीतले ॥
तेनोक्तंरावणेनाद्यहृताऽसौजनकात्मजा । मया निरुद्धःपापात्मापातितोऽहंमृधेपुनः॥
इत्युक्त्वाऽसौगतप्राणःसंस्कृतोराघवेण वै । कृत्वौर्ध्वदैहिकंरामलक्ष्मणौनिर्गतौततः
कबंधंघातयित्वाऽसौशापाच्चामोचयत्प्रभुः । वचनात्तस्यहरिणासख्यंचक्रेऽथराघवः
हत्वाचबालिनंवीरंकिष्किधाराज्यमुत्तमम् । सुग्रीवायददौरामःकृतसख्याय कार्यतः॥
तत्रैववार्षिकान्मासांस्तस्थौलक्ष्मणसंयुतः । चिंतयञ्जानकींचित्तेदशाननहृतां प्रियाम्
लक्ष्मणं प्राह रामस्तु सीताविरहपीडितः । सौमित्रे कैकयसुता जातापूर्णमनोरथा॥
नप्राप्ता जानकी नूनंनाहंजीवामितांविना । नागमिष्याम्ययोध्यायामृतेजनकनंदिनीम्
गतंराज्यंवनेवासोमृतस्तातो हृता प्रिया । पीडयन्मांसदुष्टात्मादैवोऽग्रेकिंकरिष्यति
दुर्ज्ञेयंभवितव्यंहिप्राणिनांभरतानुज । आवयोःका गतिस्तात भविष्यति सुदुःखदा ॥
प्राप्यजन्ममनोर्वंशे राजपुत्रावुभौकिल । वनेऽतिदुःखभोक्तारौ जातौ पूर्वकृतेन च ॥
त्यक्त्वात्वमपिभोगांस्तुमयासहविनिर्गतः । दैवयोगाच्चसौमित्रेभुंक्ष्वदुःखंदुरत्ययम्
नकोप्यस्मत्कुलेपूर्वंमत्समोदुःखभाङ्नरः । अकिंचनोऽक्षमःक्लिष्टोनभूतोनभविष्यति
किंकरोम्यद्यसौमित्रेमग्नोऽस्मिदुःखसागरे । नचास्तितरणोपायोह्यसहायस्यमेकिल
न वित्तंनबलंवीर त्वमेकःसहचारकः । कोपंकस्मिन्करोम्यद्यभोगेऽस्मिन्स्वकृतेऽनुज
गतंहस्तगतंराज्यंक्षणाद्दिव्यसभोपमम् । वनेवासस्तु संप्राप्तःको वेद विधिनिर्मितम्॥
बालभावाच्चवैदेही चलिता चावयोःसह । नीतादैवेनदुष्टेनश्यामादुःखतरांदशाम् ॥
लंकेशस्यगृहेश्यामाकथंदुःखंभविष्यति । पतिव्रतासुशीलाचमयि प्रीतियुता भृशम् ॥
नच लक्ष्मणवैदेहीसातस्यवशगाभवेत् । स्वैरिणीववरारोहाकथंस्याज्जनकात्मजा॥
त्यजेत्प्राणान्प्रियंतूत्वेमैथिलीभरतानुज । न रावणस्य वशगा भवेदिति सुनिश्चितम्॥
मृताचेज्जानकीवीरप्राणांस्त्यक्ष्याम्यसंशयम् । मृताचेदसितापांगीकिंमेदेहेनलक्ष्मण
एवंविलपमानंतं रामं कमललोचनम् । लक्ष्मणः प्राह धर्मात्मा सांत्वयन्नृतया गिरा
धैर्यंकुरुमहाबाहोत्यक्त्वाकातरतामिह । आनयिष्यामिवैदेहींहत्वा तंराक्षसाधमम्॥
आपदिसंपदितुल्याधैर्याद्भवंतिते धीराः । अल्पधियस्तुनिमग्नाःकष्टेभवंतिविभवेऽपि

संयोगो विप्रयोगश्च दैवाधीनावुभावपि । शोकस्तुकीदृशस्तत्रदेहेनाऽत्मनिचक्वचित्
राज्याद्यथा वने वासोवैदेह्याहरणंयथा । तथाकाले समीचीनेसंयोगोऽपिभविष्यति
प्राप्तव्यं सुखदुःखानां भोगान्निर्वर्तनं क्वचित् ।
नाऽन्यथा जानकीजाने ! तस्माच्छोकं त्यजाऽधुना ॥ ४० ॥
वानराःसन्तिभूयांसोगमिष्यन्तिचतुर्दिशम् । शुद्धिंजनकनन्दिन्याआनयिष्यन्तितेकिल
ज्ञात्वा मार्गस्थितिं तत्र मत्वा कृत्वा पराक्रमम् ।
हत्वा तं पापकर्माणमानयिष्यामि मैथिलीम् ॥ ४२ ॥
ससैन्यं भरतंवाऽपिसमाहूयसहानुजम् । हनिष्यामोवयं शत्रुं किं शोचसि वृथाऽग्रज
रघुणैकरथेनैवजिताः सर्वा दिशः पुरा । तद्वंशजः कथं शोकं कर्तुमर्हसि राघव ! ॥
एकोऽहंसकलाञ्जेतुंसमर्थोऽस्मि सुरासुरान् । किंपुनःससहायोवैरावणंकुलपांसनम्
जनकं वा समानीय साहाय्ये रघुनन्दन । हनिष्यामि दुराचारं रावणं सुरसङ्कटम्
सुखस्यानन्तरं दुःखं दुःखस्यानन्तरं सुखम् । चक्रनेमिरिवैकं तन्न भवेद्रघुनन्दन !॥
मनोऽतिकातरं यस्य सुखदुःखसमुद्भवे । स शोकसागरेमग्नो न सुखीस्यात्कदाचन
इन्द्रेण व्यसने प्राप्तं पुरा वै रघुनन्दन । नहुषः स्थापितो देवैः सर्वैर्मघवतः पदे ॥
स्थितः पङ्कजमध्ये च बहुवर्षगणानपि । अज्ञातवासं मघवाभीतस्त्यक्त्वा निजं पदम्
पुनः प्राप्तं निजं स्थानंकाले विपरिवर्तते । नहुषः पतितो भूमौ शापादजगराकृतिः ॥
इन्द्राणीं कामयानस्तुब्राह्मणानवमन्य च । अगस्तिकोपात्सञ्जातःसर्पदेहो महीपतिः
तस्माच्छोकोनकर्तव्योव्यसनेसतिराघव । उद्यमेचित्तमास्थायस्थातव्यंवैविपश्चिता
सर्वज्ञोऽसि महाभाग समर्थोऽसि जगत्पते । किं प्राकृतइवात्यर्थं कुरुषेशोकमात्मनि

व्यास उवाच

इतिलक्ष्मणवाक्येन बोधितो रघुनन्दनः । त्यक्त्वा शोकं तथाऽत्यर्थंबभूवविगतज्वरः
इति श्रीदेवीभागवतेमहापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यांसंहितायांतृतीयस्कन्धे
लक्ष्मणकृतरामशोकसान्त्वनंनामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

त्रिंशोऽध्यायः

नारदेनरामम्प्रतिव्रतकथनम्

व्यास उवाच

एवं तौ संविदं कृत्वायावत्तूष्णींबभूवतुः । आजगामतदाऽऽकाशान्नारदोभगवानृषिः
रणयन्महतीं वीणां स्वरग्रामविभूषिताम् । गायन्बृहद्रथं साम तदा तमुपतस्थिवान्
दृष्ट्वा तं राम उत्थाय ददावथ वृषं शुभम् । आसनं चार्घपाद्यं च कृतवानमितद्युतिः
पूजां परमिकांकृत्वा कृताञ्जलिरुपस्थितः । उपविष्टे समीपे तु कृताज्ञो मुनिनाहरिः
उपविष्टं तदा रामं सानुजं दुःखमानसम् । पप्रच्छ नारदः प्रीत्या कुशलंमुनिसत्तमः
कथं राघव शोकार्तो यथावै प्राकृतो नरः । हृता सीता च जानामिरावणेनदुरात्मना
सुरसद्मगतश्चाऽहं श्रुतवाञ्जनकात्मजाम् । पौलस्त्येन हृतां मोहान्मरणं स्वमजानता
तव जन्म च काकुत्स्थ पौलस्त्यनिधनायवै । मैथिलीहरणंजातमेतदर्थं नराधिप
पूर्वजन्मनि वैदेही मुनिपुत्री तपस्विनी । रावणेन वने दृष्टा तपस्यन्ती शुचिस्मिता॥
प्रार्थिता रावणेनासौ भव भार्येति राघव । तिरस्कृतस्तयाऽसौवैजग्राहकबरंबलात्
शशाप तत्क्षणं राम रावणंतापसी भृशम् । कुपितात्यक्तुमिच्छन्तीदेहंसंस्पर्शदूषितम्
दुरात्मंस्तव नाशार्थं भविष्यामि धरातले । अयोनिजा वरानारीत्युक्त्वादेहंजहावपि
सेयं रमांशसंभूतागृहीता तेनरक्षसा । विनाशार्थं कुलस्यैवव्याली स्रगिव संभ्रमात्॥
तव जन्म च काकुत्स्थ तस्यनाशाय चामरैः । प्रार्थितस्यहरेरंशादजवंशेऽप्यजन्मनः
कुरु धैर्यं महाबाहो तत्रसावर्ततेऽवशा । सतीधर्मरता सीतात्वांध्यायन्तीदिवानिशम्
कामधेनुपयः पात्रे कृत्वामघवता स्वयम् । पानार्थं प्रेषितं तस्याःपीतं चैवामृतं तथा
सुरभीदुग्धपानात्सा क्षुत्तृड्दुःखविवर्जिता । जाताकमलपत्राक्षीवर्तते वीक्षितामया
उपायं कथयाम्यद्य तस्यनाशाय राघव । व्रतं कुरुष्व श्रद्धायानाश्विनेमासिसाम्प्रतम्
नवरात्रोपवासं च भगवत्याःप्रपूजनम् । सर्वसिद्धिकरं राम जपहोमविधानतः ॥१६॥

मेध्यैश्च पशुभिर्देव्या बलिंदत्त्वा विशंसितैः । दशांशंहवनंकृत्वासुशक्तस्त्वंभविष्यसि
विष्णुना चरितं पूर्वं महादेवेन ब्रह्मणा । तथा मघवता चीर्णं स्वर्गमध्यस्थितेन वै
सुखिना राम कर्तव्यं नवरात्रव्रतं शुभम् । विशेषेण च कर्तव्यं पुंसा कष्टगतेन वै
विश्वामित्रेण काकुत्स्थ कृतमेतन्न संशयः । भृगुणाऽथ वसिष्ठेन कश्यपेन तथैव च
गुरुणा हृतदारेण कृतमेतन्महाव्रतम् । तस्मात्त्वं कुरु राजेन्द्र रावणस्य वधाय च ॥
इन्द्रेण वृत्रनाशाय कृतंव्रतमनुत्तमम् । त्रिपुरस्य विनाशाय शिवेनाऽपि पुराकृतम् ॥
हरिणा मधुनाशाय कृतं मेरौ महामते । विधिवत्कुरु काकुत्स्थ व्रतमेतदतन्द्रितः ॥

श्रीराम उवाच

का देवीकिंप्रभावासाकुतोजाताकिमाह्वया । व्रतंकिंविधिवद्ब्रूहिसर्वज्ञोऽसिदयानिधे

नारद उवाच

शृणु राम सदा नित्या शक्तिराद्या सनातनी । सर्वकामप्रदादेवीपूजितादुःखनाशिनी
कारणं सर्वजन्तूनां ब्रह्मादीनांरघूद्वह । तस्याःशक्तिंविनाकोऽपिस्पन्दितुंनक्षमोभवेत्

विष्णोः पालनशक्तिः सा कर्तृशक्तिः पितुर्मम ।

रुद्रस्य नाशशक्तिः सा त्वन्यशक्तिः परा शिवा ॥ ३० ॥

यच्चकिंचित्क्वचिद्वस्तु सदसद्भुवनत्रये । तस्य सर्वस्य या शक्तिस्तदुत्पत्तिःकुतोभवेत्
न ब्रह्मा न यदा विष्णुर्न रुद्रोनदिवाकरः । न चेन्द्राद्याः सुराः सर्वे नधरानधराधराः
तदा सा प्रकृतिः पूर्णा पुरुषेण परेण वै । संयुता विहरत्येवयुगादौ निर्गुणा शिवा ॥
सा भूत्वा सगुणापश्चात्करोतिभुवनत्रयम् । पूर्वंसंसृज्यब्रह्मादीन्दत्त्वाशक्तीश्चसर्वशः
तां ज्ञात्वामुच्यतेजन्तुर्जन्मसंसारबन्धनात् । सा विद्यापरमाज्ञेयावेदाद्यावेदकारिणी

असंख्यातानि नामानि तस्या ब्रह्मादिभिः किल ।

गुणकर्मविधानैस्तु कल्पितानि च किं ब्रुवे ॥ ३६ ॥

अकारादिक्षकारान्तैः स्वरैर्वर्णैस्तु योजितैः । असंख्येयानि नामानिभवन्तिरघुनन्दन

राम उवाच

विधिंमे ब्रूहि विप्रर्षेव्रतस्यास्य समासतः । करोम्यद्यैवश्रद्धावाञ्श्रीदेव्याः पूजनं तथा

नारद उवाच

पीठं कृत्वा समे स्थानेसंस्थाप्यजगदम्बिकाम् । उपवासान्नवैवत्वंकुरुरामविधानतः
आचार्योऽहंभविष्यामिकर्मण्यस्मिन्महीपते । देवकार्यविधानार्थमुत्साहंप्रकरोम्यहम्

व्यास उवाच

तच्छ्रुत्वा वचनं सत्यं मत्वा रामः प्रतापवान् ।
कारयित्वा शुभं पीठं स्थापयित्वाऽम्बिकां शिवाम् ॥ ४१ ॥

विधिवत्पूजनं तस्याश्चकार व्रतवान्हरिः । सम्प्राप्तेचाश्विनेमासितस्मिन्गिरिवरेतदा
उपवासपरो रामःकृतवान्व्रतमुत्तमम् । होमं च विधिवत्तत्र बलिदानं च पूजनम् ॥
भ्रातरौ चक्रतुः प्रेम्णा व्रतंनारदसम्मतम् । अष्टम्यां मध्यरात्रे तु देवी भगवतीहि सा
सिंहारूढा ददौ तत्र दर्शनंप्रतिपूजिता । गिरिश्रृङ्गेस्थितोवाच राघवं सानुजं गिरा
मेघगम्भीरया चेदं भक्तिभावेन तोषिता ।

देव्युवाच

राम! राम! महाबाहो! तुष्टाऽस्म्यद्य व्रतेन ते ॥ ४६ ॥

प्रार्थयस्व वरं कामं यत्ते मनसि वर्तते । नारायणांशसंभूतस्त्वं वंशे मानवेऽनघे ॥
रावणस्य वधायैव प्रार्थितस्त्वमरैरसि । पुरा मत्स्यतनुं कृत्वाहत्वाघोरं चराक्षसम्
त्वयावै रक्षितावेदाःसुराणांहितमिच्छता । भूत्वाकच्छपरूपस्तुधृतवान्मन्दरंगिरिम्
अकूपारं प्रमन्थानं कृत्वा देवानपोषयः । कोलरूपं पुरा कृत्वादशनाग्रेण मेदिनीम्
धृतवानसि यद्राम हिरण्याक्षं जघान च । नारसिंहीं तनुंकृत्वा हिरण्यकशिपुं पुरा ॥
प्रह्लादं राम रक्षित्वा हतवानसि राघव । वामनं वपुरास्थाय पुरा छलितवान्बलिम्
भूत्वेन्द्रस्यानुजः कामं देवकार्यप्रसाधकः । जमदग्निसुतस्त्वंमे विष्णोरंशेन सङ्गतः
कृत्वाऽन्तं क्षत्रियाणांतुदानंभूमेरदाद्द्विजे । तथेदानींतुकाकुत्स्थजातोदशरथात्मजः
प्रार्थितस्तु सुरैः सर्वैं रावणेनातिपीडितैः । कपयस्ते सहायावै देवांशा बलवत्तराः
भविष्यन्ति नरव्याघ्र! मच्छक्तिसंयुता ह्यमी ।
शेषांशोऽप्यनुजस्तेऽयं रावणात्मजनाशकः ॥ ५६ ॥

भविष्यति न सन्देहः कर्तव्योऽत्र त्वयानघ । वसन्ते सेवनंकार्यंत्वया तत्रातिश्रद्धया
हत्वाऽथ रावणं पापं कुरुराज्यंयथासुखम् । एकादश सहस्राणिवर्षाणि पृथिवीतले
कृत्वा राज्यं रघुश्रेष्ठ गन्तासि त्रिदिवं पुनः ।

व्यास उवाच

इत्युक्त्वांऽतर्दधे देवी रामस्तु प्रीतिमानसः ॥ ५६ ॥
समाप्य तद्व्रतं चक्रे प्रयाणं दशमीदिने । विजया पूजनंकृत्वा दत्त्वा दानान्यनेकशः
कपिपतिबलयुक्तः सानुजः श्रीपतिश्च प्रकटपरमशक्त्या प्रेरितः पूर्णकामः ।
उदधितटगतोऽसौ सेतुबन्धं विधायात्यहनदमरशत्रुं रावणं गीतकीर्तिः ॥
यः शृणोति नरो भक्त्या देव्याश्चरितमुत्तमम् ।
स भुक्त्वा विपुलान्भोगान्प्राप्नोति परमं पदम् ॥ ६२ ॥
सन्त्यन्यानि पुराणानिविस्तराणिबहूनिच । श्रीमद्भागवतस्यास्यनतुल्यानीतिमेमतिः
इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यांसंहितायां तृतीयस्कन्धे
रामायदेवीवरदानंनाम त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

॥ इति तृतीयस्कन्धम् सम्पूर्णम् ॥

देवीभागवतस्यास्य तृतीयस्कन्धविस्तरम् ।
सार्धैः षडब्धिशैलेन्दु पद्यैर्व्यासोव्यरीरचत् ॥

——०*०——

* श्रीगणेशायनमः *

देवीभागवतपुराणम्

चतुर्थ स्कन्धम्

प्रथमोऽध्यायः

जनमेजयस्यकृष्णावतारविषयकःप्रश्नः

जनमेजय उवाच

वासवेय मुनिश्रेष्ठ सर्वज्ञाननिधेऽनघ । प्रष्टुमिच्छाम्यहं स्वामिन्नस्माकं कुलवर्धन ॥
शूरसेनसुतः श्रीमान्वसुदेवः प्रतापवान् । श्रुतं मया हरिर्यस्य पुत्रभावमवाप्तवान् ॥
देवानामपिपूज्योऽभून्नाम्नाचाऽऽनकदुन्दुभिः । कारागारेकथंबद्धःकंसस्यधर्मतत्परः
देवक्या भार्ययासार्धंकिमागःकृतवानसौ । देवक्या बालषट्कस्यविनाशश्चकृतः पुनः
तेन कंसेन कस्माद्वै ययातिकुलजेन च । कारागारे कथं जन्म वासुदेवस्य वै हरेः॥
गोकुलेचकथंनीतोभगवान्सात्वतांपतिः । गतोजन्मान्तरंकस्मात्पितरौनिगडेस्थितौ
देवकीवसुदेवौच कृष्णस्यामिततेजसः । कथं न मोचितौ वृद्धौ पितरौहरिणाऽमुना
जगत्कर्तुंसमर्थेन स्थितेन जनकोदरे । प्राक्तनं किं तयोः कर्म दुर्विज्ञेयं महात्मभिः ॥
जन्म वै वासुदेवस्य यात्राऽऽसीत्परमात्मनः ।

के ते पुत्राश्च का बाला या कंसेन विपोथिता ॥ ६ ॥

शालायां निर्गतान्योन्निजातात्वष्टभुजा पुनः । गार्हस्थ्यञ्चहरेर्ब्रूहि बहुभार्यस्यचानघ
कार्याणि तत्र तान्येव देहत्यागश्च तस्य वै । किं वदन्त्याश्रुतंयत्तन्मनोमोहयतीव मे
चरितं वासुदेवस्य त्वमाख्याहियथातथम् । नरनारायणौदेवौ पुराणावृषिसत्तमौ ॥
धर्मपुत्रौ महात्मानौ तपश्चेरतुरुत्तमम् । यौ मुनी बहुवर्षाणि पुण्ये बदरिकाश्रमे ॥

निराहारौ जितात्मानौ निःस्पृहौ जितषड्गुणौ ।

विष्णोरंशौ जगत्स्थेम्ने तपश्चेरतुरुत्तमम् ॥ १४ ॥

तयोरंशावतारौहिजिष्णुकृष्णौ महाबलौ । प्रसिद्धौमुनिभिःप्रोक्तौसर्वज्ञैर्नारदादिभिः
विद्यमानशरीरौतौ कथं देहान्तरं गतौ । नरनारायणौदेवौ पुनःकृष्णार्जुनौ कथम् ॥
यौ चक्रतुस्तपश्चोग्रं मुक्त्यर्थंमुनिसत्तमौ । तौ कथं प्रापतुर्देहौ प्राप्तयोगौ महातपौ ॥
शूद्रःस्वधर्मनिष्ठस्तुदेहान्तेक्षत्रियस्तुसः । शुभाचारोमृतो यो वै सशूद्रोब्राह्मणोभवेत्
ब्राह्मणोनिःस्पृहःशांतो भवरोगाद्विमुच्यते । विपरीतमिदं भाति नरनारायणौ च तौ
तपसाशोषितात्मानौ क्षत्रियौतौ बभूवतुः । केन तौ कर्मणाशांतौजातौशापेनवापुनः
ब्राह्मणौक्षत्रियौजातौ कारणं तन्मुने वद । यादवानां विनाशश्च ब्रह्मशापादितिश्रुतः
कृष्णस्याऽपि हि गान्धार्याः शापेनैव कुलक्षयः । प्रद्युम्नहरणञ्चैव शम्बरेण कथंकृतम्
वर्तमाने वासुदेवे देवदेवे जनार्दने । पुत्रस्य सूतिकागेहाद्धरणं चातिदुर्घटम् ॥ २३ ॥

द्वारकादुर्गमध्याद्वै हरिवेश्माद् दुरत्ययात् ।

न ज्ञातं वासुदेवेन तत्कथं दिव्यचक्षुषा ॥ २४ ॥

सन्देहोऽयंमहान्ब्रह्मन्निःसन्देहंकुरुप्रभो । यत्पत्न्योवासुदेवस्यदस्युभिर्लुण्ठिताहृताः
स्वर्गते देवदेवे तु तत्कथं मुनिसत्तम । संशयोजायते ब्रह्मंश्चित्तान्दोलनकारकः ॥
विष्णोरंशःसमुद्भूतःशौरिर्भूभारहारकृत् । स कथं मथुराराज्यंभयात्यक्तवाञ्जनार्दनः
द्वारवत्यां गतःसाधो ससैन्यः ससुहृद्गणः । अवतारो हरेः प्रोक्तो भूभारहरणाय वै
पापात्मनांविनाशाय धर्मसंस्थापनायच । तत्कथं वासुदेवेन चौरास्तेन निपातिताः
यैर्हृतावासुदेवस्ययत्न्यःसंलुंठिताश्च ताः । स्तेनास्ते किं न विज्ञाताःसर्वज्ञेनसतापुनः

भीष्मद्रोणवधः कामं भूभारहरणे मतः । अचिताश्च महात्मानः पाण्डवाधर्मतत्पराः
कृष्णभक्ताःसदाचारायुधिष्ठिरपुरोगमाः । ते कृत्वाराजसूयञ्च यज्ञराजं विधानतः ॥
दक्षिणाविविधादत्त्वा ब्राह्मणेभ्योऽतिभावतः । पांडुपुत्रास्तुदेवांशावासुदेवाश्रितामुने
घोरंदुःखंकथं प्राप्ताः क्व गतं सुकृतञ्च तत् । किं तत्पापंमहारौद्रं येन तेपीडिताःसदा
द्रौपदीचमहाभागावेदीमध्यात्समुत्थिता । रमांशजाच साध्वीचकृष्णभक्तियुतातथा
साकथंदुःखमतुलं प्रापघोरं पुनः पुनः । दुःशासनेन सा केशे गृहीता पीडिता भृशम्
रजस्वला सभायान्तुनीताभीतैकवाससा । विराटनगरेदासी जातामत्स्यस्यसापुनः
धर्षिताकीचकेनाथ रुदती कुररी यथा । हृता जयद्रथेनाथ क्रंदमानाऽतिदुःखिता ॥
मोचितापाण्डवैःपश्चाद्बलवद्भिर्महात्मभिः । पूर्वजन्मकृतंपापं किं तद्येनच पीडिताः
दुःखान्यनेकान्याप्तास्ते कथयाद्य महामते । राजसूयं क्रतुवरं कृत्वा ते मम पूर्वजाः॥
दुःखं महत्तरं प्राप्ताः पूर्वजन्मकृतेन वै । देवांशानां कथं तेषां संशयोऽयं महान्हि मे

सदाचारैस्तु कौन्तेयैर्भीष्मद्रोणादयो हताः ।
छलेन धनलोभार्थं जानानैर्नश्वरं जगत् ॥ ४२ ॥

प्रेरिता वासुदेवेन पापेघोरे महात्मना । कुलं क्षयितवन्तस्ते हरिणा परमात्मना ॥
वरंभिक्षाटनं साधोर्नीचारैर्जीवनं वरम् । योधाग्रहत्वालोभेन शिल्पेन जीवनं वरम् ॥
विच्छिन्नस्तुत्वयावंशोरक्षितोमुनिसत्तम । समुत्पाद्यसुतानाशुगोलकाञ्छत्रुनाशनात्
सोऽल्पेनैव तु कालेन विराटतनयासुतः । तापसस्य गलेसर्पं न्यस्तवान्कथमद्भुतम् ॥
नकोऽपि ब्राह्मणं द्वेष्टि क्षत्रियस्यकुलोद्भवः । तापसंमौनसंयुक्तंपित्राकिंतत्कृतंमुने ॥
एतैरन्यैश्च सन्देहैर्विकलं मे मनोऽधुना । स्थिरंकुरुपितःसाधो सर्वज्ञोऽसिदयानिधे

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां चतुर्थस्कन्धे
जनमेजयप्रश्नो नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः

कर्मणोजन्मादिकारणत्वनिरूपणम्

सूत उवाच

एवं पृष्टः पुराणज्ञो व्यासः सत्यवतीसुतः । परीक्षितसुतं शान्तं ततो वै जनमेजयम्
उवाच संशयच्छेतृवाक्यं वाक्यविशारदः ।

व्यास उवाच

राजन्किमेतद्वक्तव्यं कर्मणां गहना गतिः ॥ २ ॥

दुर्ज्ञेयाकिलदेवानांमानवानाञ्चकाकथा । यदासमुत्थितंचैतद्ब्रह्माण्डं त्रिगुणात्मकम्
कर्मणैव समुत्पत्तिःसर्वेषांनात्रसंशयः । अनादिनिधनाजीवाः कर्मबीजसमुद्भवाः ॥४
नानायोनिषुजायन्ते म्रियन्तेचपुनःपुनः । कर्मणा रहितो देहसंयोगो न कदाचन ॥५
शुभाशुभैस्तथा मिश्रैः कर्मभिर्वेष्टितं त्विदम् ।
त्रिविधानि हितान्याहुर्बुधास्तत्त्वविदश्च ये ॥ ६ ॥
सञ्चितानिभविष्याणिप्रारब्धानितथापुनः । वर्तमानानिदेहेऽस्मिंस्त्रैविध्यंकर्मणांकिल
ब्रह्मादीनाञ्चसर्वेषां तद्वशत्वं नराधिप । सुखदुःखजरामृत्युहर्षशोकादयस्तथा ॥ ८ ॥
कामक्रोधौच लोभश्च सर्वेदेहगतागुणाः । दैवाधीनाश्च सर्वेषां प्रभवन्ति नराधिप!॥
रागद्वेषादयोभावाः स्वर्गेऽपि प्रभवन्ति हि । देवानां मानवानाञ्चतिरश्चाञ्चतथा पुनः
विकाराःसर्व एवैते देहेन सह संगताः । पूर्ववैरानुयोगेन स्नेहयोगेन वै पुनः ॥११॥
उत्पत्तिःसर्वजन्तूनांविनाकर्मन विद्यते । कर्मणा भ्रमते सूर्यः शशांकः क्षयरोगवान्॥
कपालीच तथारुद्रः कर्मणैव न संशयः । अनादिनिधनं चैतत्कारणं कर्मसम्भवे ॥१३
तेनेहशाश्वतं सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम् । नित्यानित्यविचारेऽत्र निमग्ना मुनयः सदा
न जानन्ति किमेतद्वै नित्यंवानित्यमेवच । मायायां विद्यमानायां जगन्नित्यंप्रतीयते
कार्याभावःकथं वाच्यः कारणे सतिसर्वथा । मायानित्याकारणञ्चसर्वेषांसर्वदाकिल

कर्मबीजंततोऽनित्यं चिंतनीयं सदा बुधैः । भ्रमत्येव जगत्सर्वं राजन्कर्मनियन्त्रितम्
नानायोनिषु राजेन्द्र नानाधर्ममयेषु च । इच्छया च भवेज्जन्म विष्णोरमिततेजसा
युगेयुगेष्वनेकासु नीचयोनिषु तत्कथम् । त्यक्त्वावैकुण्ठसम्वासंसुखभोगाननेकशः

विण्मूत्रमन्दिरे वासं संत्रस्तःकोऽभिवाञ्छति ।
पुष्पावचयलीला च जलकेलिः सुखासनम् ॥ २० ॥
त्यक्त्वा गर्भगृहे वासं कोऽभिवाञ्छति बुद्धिमान् ।
तूलिकां मृदुलंयुक्तां दिव्यां शय्यां विनिर्मिताम् ॥ २१ ॥
त्यक्त्वाऽधोमुखवासं च कोऽभिवाञ्छति पण्डितः ।
गीतं नृत्यं च वाद्यञ्च नानाभावसमन्वितम् ॥ २२ ॥
मुक्त्वा को नरके वासं मनसाऽपि विचिन्तयेत् ।
सिन्धुजाद्भुतभावानां रसं त्यक्त्वा सुदुस्त्यजम् ॥ २३ ॥

विण्मूत्ररसपानञ्च क इच्छेन्मतिमान्नरः । गर्भवासात्परो नास्ति नरको भुवनत्रये ॥
तद्भीताश्चप्रकुर्वन्ति मुनयो दुस्तरं तपः । हित्वाभोगञ्च राज्यञ्च वने यान्तिमनस्विनः
यद्भीतास्तुविमूढात्माकस्तंसेवितुमिच्छति । गर्भेतुदन्तिकृमयो जठराग्निस्तपत्यधः ॥
वपासम्वेष्टनं क्रूरं किं सुखं तत्र भूपते । वरं कारागृहेवासो बन्धनं निगडैर्वरम् ॥२७
अल्पमात्रंक्षणंनैव गर्भवासः कचिच्छुभः । गर्भवासेमहद्दुःखं दशमासनिवासनम् ॥
तथानिःसरणे दुःखं योनियन्त्रेऽतिदारुणे । बालभावे तथा दुःखं मूकाज्ञभावसंयुतम्
क्षुत्तृडावेदनाशक्तः परतन्त्रोऽतिकातरः । क्षुधिते रुदिते बाले माता चिन्तातुरा तदा

भेषजं पातुमिच्छन्ती ज्ञात्वा व्याधिव्यथां दृढाम् ।
नानाविधानि दुःखानि बालभावे भवन्ति वै ॥ ३१ ॥

किं सुखंविबुधादृष्ट्वाजन्मवाञ्छन्तिचेच्छया । संग्राममसुरैःसार्धंसुखंत्यक्त्वानिरन्तरम्
कर्तुमिच्छेच्च को मूढः श्रमदं सुखनाशनम् । सर्वथैव नृपश्रेष्ठ ! सर्वेब्रह्मादयः सुराः ॥
कृतकर्मविपाकेन प्राप्नुवन्ति सुखासुखे । अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् ॥

देहवद्भिर्न्द्भिर्देवैस्तिर्यग्भिश्च नृपोत्तम !॥ ३४ ॥

तत्प्रसादान्नयश्चेश्च मानवश्चेन्द्रतां व्रजेत् । क्षीणेपुण्येऽथशक्रोऽपि पतत्येवन संशयः ॥
रामावतारयोगेन देवावानरतां गताः । तथा कृष्णसहायार्थं देवा यादवतां गताः ॥
एवं युगे युगे विष्णुरवतारानेनेकशः । करोति धर्मरक्षार्थं ब्रह्मणा प्रेरितो भृशम् ॥
पुनःपुनर्हरेरेवं नानायोनिषु पार्थिवः । अवतारा भवन्त्यन्ये रथचक्रवदद्भुताः॥ ३८ ॥
दैत्यानांहननं कर्मकर्तव्यं हरिणास्वयम् । अंशांशेनपृथिव्यां वै कृत्वाजन्ममहात्मना
तदहंसम्प्रवक्ष्यामि कृष्णजन्मकथांशुभाम् । स एव भगवान्विष्णुरवतीर्णोयदोः कुले
कश्यपस्य मुनेरंशो वसुदेवः प्रतापवान् । गोवृत्तिरभवद्राजन्मपूर्वशापानुभावतः ॥
कश्यपस्य च द्वे पत्न्यौ शापादत्र महीतले । अदितिः सुरसा चैवमास्तुः पृथिवीपते
देवकी रोहिणी चोभे भगिन्यौ भरतर्षभ । वरुणेनमहाञ्छापो दत्तःकोपादितिश्रुतम्

राजोवाच

किं कृतं कश्यपेनाऽऽगो येनशप्तोमहानृषिः । सभार्यः स कथं जातस्तद्वदस्वमहामने
कथञ्चभगवान्विष्णुस्तत्र जातोऽस्तिगोकुले । वासीवैकुण्ठनिलयेरमापतिरखण्डितः
निदेशात्कस्य भगवान्वर्तते प्रभुरव्ययः । नारायणः सुरश्रेष्ठो युगादिः सर्वधारकः ॥
स कथं सदनं त्यक्त्वा कर्मवानिव मानुषे । करोतिजननंकस्मादत्रमे संशयोमहान् ॥
प्राप्यमानुषदेहन्तु करोतिच विडम्बनम् । भावान्नानाविधांस्तत्र मानुषे दुष्टजन्मनि
कामःक्रोधोऽमर्षशोकौ वैरंप्रीतिश्चकर्हिचित् । सुखंदुःखंभयंनृणां दैन्यमार्जनमेवच ॥
दुष्कृतं सुकृतञ्चैव वचनं हननं तथा । पोषणं चलनं तापो विमर्शश्च विकत्थनम् ॥
लोभोदम्भस्तथा मोहःकपटंशोचनंतथा । एतेचान्येतथाभावा मानुष्येसम्भवन्ति हि
स कथं भगवान्विष्णुस्त्यक्त्वासुखमनश्वरम् । करोतिमानुषंजन्म भावैरेतैरभिद्रुतम्
किं सुखंमानुषंप्राप्यभुविजन्म मुनीश्वर । किं निमित्तं हरिः साक्षाद्गर्भवासंकरोतिवै
गर्भदुःखं जन्मदुःखं बालभावे तथा पुनः । यौवने कामजंदुःखं गार्हस्थ्येऽतिमहत्तरम्
दुःखान्येतान्यवाप्नोति मानुषे द्विजसत्तम । कथं स भगवान्विष्णुरवतारान्पुनः पुनः
प्राप्यरामावतारं हि हरिणा ब्रह्मयोनिना । दुःखं महत्तरं प्राप्तं वनवासेऽतिदारुणे ॥
सीताविरहजं दुःखं संग्रामश्च पुनः पुनः । कान्तात्यागोऽप्यनेनैवमनुभूतो महात्मना

तथा कृष्णाऽवतारेऽपि जन्मरक्षागृहेपुनः । गोकुले गमनञ्चैव गवांचारणमित्युत ॥
कंसस्य हननं कष्टाद्द्वारकागमनं पुनः । नानासंसारदुःखानि भुक्तवान्भगवान्कथम्
स्वेच्छयाकःप्रतीक्षेतमुक्तोदुःखानिज्ञानवान् । संशयं छिन्धिसर्वज्ञ मम चित्तप्रशान्तये
इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां चतुर्थस्कन्धे
कर्मणोजन्मादिकारणत्वनिरूपणंनामद्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः

कश्यपशापवार्त्तावर्णनम्

व्यास उवाच

कारणानि बहून्यत्राप्यवतारे हरेः किल । सर्वेषाञ्चैव देवानामंशावतरणेष्वपि ॥१॥
वसुदेवावतारस्य कारणं शृणुतत्त्वतः । देवक्याश्चैव रोहिण्या अवतारस्य कारणम्
एकदा कश्यपः श्रीमान्यज्ञार्थं धेनुमाहरन् । याचितोऽयं बहुविधं नददौ धेनुमुत्तमाम्

वरुणस्तु ततो गत्वा ब्रह्माणं जगतः प्रभुम् ।
प्रणम्योवाच दीनात्मा स्वदुःखं विनयान्वितः ॥ ४ ॥
किं करोमि महाभाग! मत्तोऽसौ न ददाति गाम् ।
शापो मया विसृष्टोऽस्मै गोपालो भव मानुषे ॥ ५ ॥

भार्ये द्वे अपितत्रैव भवेताञ्चातिदुःखिते । ततोवत्सारुदन्त्यत्रमातृहीनाः सुदुःखिताः
मृतवत्सादितिस्तस्माद्भविष्यतिधरातले । कारागारनिवासाचतेनापिबहुदुःखिता ॥

व्यास उवाच

तच्छ्रुत्वावचनन्तस्य यादोनाथस्यपद्मभूः । समाहूय मुनिं तत्र तमुवाच प्रजापतिः ॥
कस्मात्त्वया महाभाग लोकपालस्यधेनवः । हृताःपुनर्नदत्ताश्च किमन्यायं करोषि वै
जानन्न्यायंमहाभाग परवित्तापहारणम् । कृतवान्कथमन्यायं सर्वज्ञोऽसि महामते!॥

अहो लोभस्य महिमा महतोऽपि न मुञ्चति । लोभंनरकदं नूनं पापाकरमसम्मतम् ॥

कश्यपोऽपि न तं त्यक्तुं समर्थः किं करोम्यहम् ।

सर्वदेवाधिकस्तस्माल्लोभोवै कलितो मया ॥ १२ ॥

धन्यास्ते मुनयः शांता जितोयैर्लोभपव्रच । वैखानसैः शमपरैःप्रतिग्रहपराङ्मुखैः ॥

संसारे बलवाञ्छत्रुर्लोभोऽमेध्यावरः सदा । कश्यपोऽपिदुराचारःकृतस्नेहोदुरात्मना

ब्रह्माऽपि तं शशापाऽथ कश्यपं मुनिसत्तमम् ।

मर्यादारक्षणार्थं हि पौत्रं परमवल्लभम् ॥ १५ ॥

अंशेनत्वंपृथिव्यांवैप्राप्यजन्मयदोःकुले । भार्याभ्यांसंयुतस्तत्रगोपालत्वंकरिष्यसि

व्यास उवाच

एवं शप्तः कश्यपोऽसौ वरुणेनच ब्रह्मणा । अंशावतरणार्थाय भूभारहरणाय च॥१७

तथा दित्याऽदितिः शप्ता शोकसन्तप्तया भृशम् ।

जाता जाता विनश्येरंस्तव पुत्रास्तु सप्त वै ॥ १८ ॥

जनमेजय उवाच

कस्माद्दित्या च भगिनी शप्तेन्द्रजननी मुने । कारणंवदशापे च शोकस्तु मुनिसत्तम

सूत उवाच

पारीक्षितेन पृष्टस्तु व्यासः सत्यवतीसुतः । राजानं प्रत्युवाचेदं कारणं सुसमाहितः

व्यास उवाच

राजन्दक्षसुते द्वे तु दितिश्चादितिरुत्तमे । कश्यपस्य प्रिये भार्ये बभूवतुरुरुक्रमे ॥२१

अदित्यां मघवा पुत्रो यदाऽभूदतिवीर्यवान् । तदातु तादृशंपुत्रं चकमे दितिरोजसा॥

पतिमाहासितापांगी पुत्रं मे देहि मानद । इन्द्रतुल्यं बलं वीरं धर्मिष्ठं वीर्यवत्तमम्

तामुवाच मुनिःकान्ते स्वस्था भव मयोदिते । व्रतान्तेभवितातुभ्यं शतक्रतुसमःसुतः

सा तथेति प्रतिश्रुत्य चकारव्रतमुत्तमम् । निषिक्तं मुनिना गर्भं बिभ्राणा सुमनोहरम्

भूमौ चकार शयनं पयोव्रतपरायणा । पवित्रा धारणा युक्ता बभूव वरवर्णिनी ॥

एवंजातःसुसम्पूर्णोयदागर्भोऽतिवीर्यवान् । शुभ्रांशुमतिदीप्ताङ्गीं दितिं दृष्ट्वातुदुःखिता

मघवत्सदृशः पुत्रो भविष्यतिमहाबलः । दित्यास्तदा मम सुतस्तेजोहीनोभवेत्किल
इतिचिन्तापरापुत्रमिन्द्रंचोवाचमानिनी । शत्रुस्तेऽद्यसमुत्पन्नोदितिगर्भेऽतिवीर्यवान्
उपायंकुरुनाशायशत्रोरद्य विचिन्त्य च । उत्पत्तिरेव हन्तव्या दित्यागर्भस्य शोभन

वीक्ष्य तामसितापांगीं सपत्नीभावमास्थिताम् ।
दुनोति हृदये चिन्ता सुखमर्मविनाशिनी ॥ ३१ ॥

राजयक्ष्मेव संवृद्धो नष्टो नैव भवेद्रिपुः । तस्मादंकुरितं हन्याद् बुद्धिमानहितंकिल॥
लोहशंकुरिव क्षिप्तो गर्भो वै हृदये मम । येनकेनाऽप्युपायेन पातयाऽद्य शतक्रतो ! ॥
सामदानबलेनापि हिंसनीयस्त्वयासुतः । दित्यागर्भोमहाभागमम चेदिच्छसिप्रियम्

व्यास उवाच

श्रुत्वा मातृवचः शक्रो विचिन्त्यमनसाततः । जगामापरमातुः स समीपममराधिपः
ववन्दे विनयात्पादौ दित्याः पापमतिर्नृप । प्रोवाचविनयेनासौ मधुरं विषगर्भितम्॥

इन्द्र उवाच

मातस्त्वं व्रतयुक्ताऽसि क्षीणदेहाऽतिदुर्बला । सेवार्थमिहसम्प्राप्तःकिंकर्तव्यंवदस्वमे
पादसम्वाहनंतेऽहं करिष्यामि पतिव्रते । गुरुशुश्रूषणात्पुण्यं लभते गतिमक्षयाम्

न मे किमपि भेदोऽस्ति तथाऽदित्या शपे किल ।
इत्युक्त्वा चरणौ स्पृष्ट्वा सम्वाहनपरोऽभवत् ॥ ३८ ॥

सम्वाहनसुखं प्राप्य निद्रामापसुलोचना । श्रान्ताव्रतकृशा सुप्ता विश्वस्तापरमासती

तां निद्रावशमापन्नां विलोक्य प्राविशत्तनुम् ।
रूपं कृत्वाऽतिसूक्ष्मञ्च शस्त्रपाणिः समाहितः ॥ ४१ ॥

उदरं प्रविवेशाशु तस्या योगबलेन वै । गर्भं चकर्त वज्रेण सप्तधा पविनायकः ॥४२
रुरोद च तदा बालो वज्रेणाभिहतस्तथा । मा रुदेति शनैर्वाक्यमुवाच मघवानमुम्
शकलानि पुनः सप्त सप्तधा कर्तितानिच । तदाचैकोनपञ्चाशन्मरुतश्चाभवन्नृप ॥४४
तदाप्रबुद्धा सुदती ज्ञात्वा गर्भं तथाकृतम् । इन्द्रेण छलरूपेण चुकोप भृशदुःखिता
भगिनीकृतन्तु सा बुद्ध्वा शशापकुपिता तदा । अदितिं मघवन्तञ्चसत्यव्रतपरायणा

यथा मे कर्तितो गर्भस्तव पुत्रेण छद्मना । तथातन्नाशमायातु राज्यं त्रिभुवनस्य तु
यथा गुप्तेन पापेन मम गर्भो निपातितः । अदित्यापापचारिण्या यथामेघातितःसुतः
तस्याःपुत्रास्तुनश्यन्तुजाताजाताःपुनःपुनः । कारागारेवसत्वेषापुत्रशोकातुरा भृशम्
अन्यजन्मनि चाप्येव मृतापत्या भविष्यति ।

व्यास उवाच

इत्युत्सृष्टं तदा श्रुत्वा शापं मरीचिनन्दनः ॥ ५० ॥
उवाच प्रणयोपेतो वचनं शमयन्निव । मा कोपं कुरु कल्याणि ! पुत्रास्ते बलवत्तराः
भविष्यन्ति सुराः सर्वेमरुतो मघवत्सखाः । शापोऽयंतववामोरु त्वष्टाविंशेऽथद्वापरे
अंशेनमानुषंजन्मप्राप्यभोक्ष्यतिभामिनी । वरुणेनापि दत्तोऽस्तिशापःसन्तापितेनच
उभयोः शापयोगेन मानुषीयं भविष्यति ।

व्यास उवाच

पतिनाऽऽश्वासिता देवी सन्तुष्टा साऽभवत्तदा ॥ ५४ ॥
नोवाच विप्रियं किंचित्ततःसा वरवर्णिनी । इतिते कथितं राजन्पूर्वशापस्यकारणम्
अदितिर्देवकी जाता स्वांशेन नृपसत्तम !॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां चतुर्थस्कन्धे
दित्याअदित्यैशापदानंनामतृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः

अधमजगतःस्थितिवर्णनम्

राजोवाच

विस्मितोऽस्मि महाभाग ! श्रुत्वाऽऽख्यानं महामते ! ।
संसारोऽयं पापरूपः कथं मुच्येत बन्धनात् ॥ १ ॥

कश्यपस्यापिदायादस्त्रिलोकीविभवे सति। कृतवानीदृशंकर्मकोनकुर्याज्जुगुप्सितम्
गर्भे प्रविश्यबालस्य हननं दारुणं किल। सेवामिषेण मातुश्च कृत्वाशपथमद्भुतम्॥
शास्ताधर्मस्यगोप्ताच त्रिलोक्याःपतिरप्युत। कृतवानीदृशंकर्म कोन कुर्यादसाम्प्रतम्
पितामहाद्ये संग्रामे कुरुक्षेत्रेऽतिदारुणम्। कृतवन्तस्तथाऽऽश्चर्यंदुष्टं कर्मजगद्गुरो
भीष्मोद्रोणः कृपःकर्णोधर्मांशोऽपियुधिष्ठिरः। सर्वे विरुद्धधर्मेणवासुदेवेननोदिताः
असारतांविजानन्तः संसारस्य सुमेधसः। देवांशाश्च कथं चक्रुर्निन्दितं धर्मतत्पराः॥

काऽऽस्था धर्मस्य विप्रेन्द्र! प्रमाणं किं विनिश्चितम्।
चलचित्तोऽस्मि सञ्जातः श्रुत्वा चैतत्कथानकम्॥ ८॥

आप्तवाक्यं प्रमाणं चेदाप्तः कः परदेहवान्। पुरुषोविषयासक्तोरागीभवति सर्वथा
रागो द्वेषो भवेन्नूनमर्थनाशादसंशयम्। द्वेषादसत्यवचनंवक्तव्यं स्वार्थसिद्धये॥१०
जरासन्धविघातार्थं हरिणासत्वमूर्तिना। छलेन रचितंरूपं ब्राह्मणस्य विजानतः॥
तदाप्तः कः प्रमाणं किं सत्त्वमूर्तिरपीदृशः। अर्जुनोऽपि तथैवात्र कार्ये यज्ञविनिर्मिते
कीदृशोऽयं कृतो यज्ञः किमर्थंशमवर्जितः। परलोकपदार्थंवा यशसे वाऽन्यथा किल
धर्मस्य प्रथमःपादः सत्यमेतच्छ्रुतेर्वचः। द्वितीयस्तु तथा शौचं दयापादस्तृतीयकः
दानम्पादश्चतुर्थश्च पुराणज्ञावदन्ति वै। तैर्विहीनः कथं धर्मस्तिष्ठेदिह सुसम्मतः॥
धर्महीनं कृतं कर्म कथं तत्फलदम्भवेत्। धर्मे स्थिरामतिःक्वापि न कस्यापिप्रतीयते
छलार्थञ्च यदा विष्णुर्वामनोऽभूज्जगत्प्रभुः। येन वामनरूपेण वञ्चितोऽसौबलिर्नृपः
विहर्ताशतयज्ञस्य वेदाज्ञापरिपालकः। धर्मिष्ठो दानशीलश्च सत्यवादी जितेन्द्रियः॥

स्थानात्प्रभ्रंशितोऽकस्माद्विष्णुना प्रभविष्णुना।
जितं केन तयोः कृष्ण बलिना वामनेन वा॥ १६॥

छलकर्मविदा चायं सन्देहोऽत्र महान्मम। वञ्चयित्वा वञ्चितेन सत्यं वद द्विजोत्तम

पुराणकर्ता त्वमसि धर्मज्ञश्च महामतिः।

व्यास उवाच

जितं वै बलिना राजन्दत्ता येन च मेदिनी॥ २१॥

त्रिविक्रमोऽपिनाम्नायः प्रथितोवामनोऽभवत् । छलनार्थमिदंराजन्वामनत्वंनराधिप
सम्प्राप्तं हरिणाभूयो द्वारपालत्वमेव च । सत्यादन्यतरन्नास्ति मूलं धर्मस्य पार्थिवः
दुःसाध्यं देहिनां राजन्सत्यंसर्वात्मनाकिल । माया बलवती भूपत्रिगुणाबहुरूपिणी

यथेदं निर्मितं विश्वं गुणैः शबलितं त्रिभिः ।
तस्माच्छलवता सत्यं कुतोऽपिद्धं भवेन्नृप ॥ २५ ॥

मिश्रेण जनितश्चैव स्थितिरेषा सनातनी । वैखानसाश्चमुनयोनिःसङ्गा निष्प्रतिग्रहाः
सत्ययुक्ता भवंत्यत्र वीतरागा गततृषः । दृष्टान्तदर्शनार्थाय निर्मितास्ते च तादृशाः
अन्यत्सर्वं शबलितं गुणैरेभिस्त्रिभिर्नृप । नैकं वाक्यं पुराणेषु वेदेषु नृपसत्तम ! ॥
धर्मशास्त्रेषु चाङ्गेषु सगुणे रचितेष्विह । सगुणः सगुणं कुर्यान्निर्गुणो न करोति वै

गुणास्ते मिश्रिताः सर्वे न पृथग्भावसङ्गताः ।
निर्व्यलीके स्थिरे धर्मे मतिः कस्यापि न स्थिरा ॥ ३० ॥

भवोद्भवे महाराज मायया मोहितस्य वै । इन्द्रियाणि प्रमाथीनि तदासक्तंमनस्तथा

करोति विविधान्भावान्गुणैस्तैः प्रेरितो भृशम् ।
ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्ताः प्राणिनः स्थिरजङ्गमाः ॥ ३२ ॥

सर्वेमायावशा राजन्साऽनुक्रीडति तैरिह । सर्वान्वै मोहयत्यैषाविकुर्वत्यनिशंजगत्
असत्यो जायते राजन्कार्यवान्प्रथमं नरः । इन्द्रियार्थांश्चिन्तयानोनप्राप्नोति यदानरः
तदर्थं छलमादत्ते छलात्पापे प्रवर्तते । कामः क्रोधश्च लोभश्च वैरिणो बलवत्तराः ॥
कृताकृतं न जानन्ति प्राणिनस्तद्वशं गताः । विभवे सत्यहंकारः प्रबलः प्रभवत्यपि
अहङ्काराद्भवेन्मोहो मोहान्मरणमेव च । सङ्कल्पा बहवस्तत्रविकल्पाः प्रभवन्ति च ॥
ईर्ष्याऽसूया तथा द्वेषःप्रादुर्भवतिचेतसि । आशातृष्णातथादैन्यंदम्भोऽधर्ममतिस्तथा
प्राणिनां प्रभवन्त्येते भावा मोहसमुद्भवाः । यज्ञदानानि तीर्थानिव्रतानिनियमास्तथा
अहङ्काराभिभूतस्तु करोति पुरुषोऽन्वहम् । अहं भावकृतं सर्वंप्रभवेद्वै न शौचवत्
रागलोभात्कृतं कर्म सर्वाङ्गं शुद्धिवर्जितम् । प्रथमं द्रव्यशुद्धिश्चद्रष्टव्याविबुधैः किल
अद्रोहेणार्जितं द्रव्यं प्रशस्तं धर्मकर्मणि । द्रोहार्जितेन द्रव्येण यत्करोति शुभं नरः

विपरीतं भवेत्तत्तु फलकालेनृपोत्तम। मनोऽतिनिर्मलं तस्य स सम्यक्फलभाग्भवेत्
तस्मिन्विकारयुक्ते तु न यथार्थफलं लभेत्। कर्त्तारःकर्मणांसर्वेआचार्यश्चत्विजादयः
स्युस्ते विशुद्धमनसस्तदा पूर्णं भवेत्फलम्। देशकालक्रिया द्रव्यकर्तॄणांशुद्धतायदि
मन्त्राणां च तदा पूर्णं कर्मणां फलमश्नुते। शत्रूणां नाशमुद्दिश्यस्वबुद्धिं परमां तथा
करोतिसुकृतं तद्वद्विपरीतं भवेत्किल। स्वार्थसक्तःपुमान्नित्यं नजानाति शुभाशुभम्
दैवाधीनः सदा कुर्य्यात्पापमेव न सत्कृतम्। प्राजापत्याःसुराःसर्वेह्यसुराश्चतदुद्भवाः
सर्वे ते स्वार्थनिरताः परस्परविरोधिनः। सत्त्वोद्भवाःसुराःसर्वेऽप्युक्तावेदेषुमानुषाः
रजोद्भवास्तामसास्तु तिर्यञ्चः परिकीर्तिताः। सत्त्वोद्भवानां तैर्वैरं परस्परमनारतम्
तिरश्चामत्र किं चित्रं जातिवैरसमुद्भवे। सदा द्रोहपरा देवास्तपोविघ्नकरास्तथा
असन्तुष्टा द्वेषपराः परस्परविरोधिनः। अहङ्कारसमुद्भूतः संसारोऽयं यतो नृपः॥
रागद्वेषविहीनस्तु स कथं जायते नृप !।

इति श्री देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां चतुर्थस्कन्धे
अथमजगतःस्थितिवर्णनंनामचतुर्थोऽध्यायः॥ ४॥

पञ्चमोऽध्यायः

नरनारायणकथावर्णनम्

व्यास उवाच

अथ किं बहुनोक्तेनसंसारेस्मिन्नृपोत्तम। धर्मात्माद्रोहबुद्धिस्तुकश्चिद्भवतिकर्हिचित्
रागद्वेषावृतं विश्वं सर्वंस्थावरजङ्गमम्। आद्ये युगेऽपि राजेन्द्र किमद्यकलिदूषिते॥
देवाः सेर्ष्याश्च सद्रोहाश्छलकर्मरताः सदा। मानुषाणांतिरश्चांचकावार्तानृपमण्यते
द्रोहपरे द्रोहपरो भवेदिति समानता। अद्रोहिणि तथा शान्ते विद्वेषः खलता स्मृता
यः कश्चित्तापसः शान्तोजपध्यानपरायणः। भवेत्तस्य जपेविघ्नकर्त्ता वै मघवा परम्

सतां सत्ययुगं साक्षात्सर्वदैवाऽसतां कलिः ।
मध्यमो मध्यमानां तु क्रियायोगौ युगेस्मृतौ ॥ ६ ॥
कश्चित्कदाचिद्भवति सत्यधर्मानुवर्तकः । अन्यथाऽन्ययुगानांवै सर्वे धर्मपरायणाः
वासना कारणं राजन्सर्वत्र धर्मसंस्थितौ । तस्यांवैमलिनायांतुधर्मोऽपिमलिनोभवेत्
मलिना वासना सत्यं विनाशयति सर्वथा ।
ब्रह्मणो हृदयाज्जातः पुत्रो धर्म इति स्मृतः ॥ ९ ॥
ब्राह्मणः सत्यसम्पन्नो वेदधर्मरतः सदा । दक्षस्य दुहितारो हि वृतादश महात्मना
विवाहविधिनासम्यङ् मुनिनागृहधर्मिणा । तास्वजीजनयत्पुत्रान्धर्मःसत्यवतांवरः
हरिंकृष्णं नरंचैव तथा नारायणं नृप । योगाभ्यासरतो नित्यं हरिः कृष्णो बभूव ह
नरनारायणौ चैव चेरतुस्तप उत्तमम् ।
प्रालेयाद्रिं समागत्य तीर्थे बदरिकाश्रमे ॥ १३ ॥
तपस्विषु धुरीणौतौ पुराणौ मुनिसत्तमौ । गृणन्तौ तत्परं ब्रह्म गङ्गाया विपुले तटे
हरेरंशौस्थितौ तत्र नरनारायणावृषी । पूर्णंवर्षसहस्रन्तु चक्राते तप उत्तमम् ॥१५॥
तापितञ्च जगत्सर्वं तपसा सचराचरम् । नरनारायणाभ्याञ्च शक्रः क्षोभं तदा ययौ
चिन्ताविष्टः सहस्राक्षो मनसा समकल्पयत् ।
किं कर्तव्यं धर्मपुत्रौ तापसौ ध्यानसंयुतौ ॥ १७ ॥
सिद्धार्थौ सुभृशं श्रेष्ठमासनं न ग्रहीष्यतः । विघ्नः कथं प्रकर्तव्यस्तपो येन भवेन्न हि
उत्पाद्यकामंक्रोधञ्चलोभंवाऽप्यतिदारुणम् । इत्युद्दिश्यसहस्राक्षःसमारुह्यगजोत्तमम्
विघ्नकामस्तु तरसा जगामगन्धमादनम् । गत्वातत्राऽऽश्रमेपुण्येतावपश्यच्छतक्रतुः
तपसा दीप्तदेहौ तु भास्कराविव चोदितौ ।
ब्रह्मविष्णू किमेतौ वै प्रकटौ वा विभावसू ॥ २१ ॥
धर्मपुत्रावृषी एतौ तपसा किं करिष्यतः । इतिसञ्चिन्त्य तौ दृष्ट्वा तदोवाचशचीपतिः
किंवांकार्यंमहाभागौब्रूतंधर्मसुतौकिल । ददामि वां वरं श्रेष्ठं दातुंयातोऽस्म्यहमृषी
अदेयमपि दास्यामि तुष्टोऽस्मि तपसा किल ।

व्यास उवाच

एवं पुनः पुनः शक्रस्तावुवाच पुरः स्थितः ॥ २४ ॥

नोचतुस्तावृषी ध्यानसंस्थितौ दृढचेतसौ । ततोवैमोहिनींमायां चकारभयदां वृषः
वृकान्सिहांश्चव्याघ्रांश्चसमुत्पाद्याबिभीषयत् । वर्षवातं तथा वह्निं समुत्पाद्यपुनःपुनः
भीषयामास तौ शक्रो मायां कृत्वा विमोहिनीम् ।

भयतोऽपि वशं नीतौ न तौ धर्मसुतौ मुनी ॥ २७ ॥

नरनारायणौ दृष्ट्वा शक्रः स्वभवनं गतः । वरदानेप्रलुब्धौ न न भीतौ वह्निवायुतः ॥
व्याघ्रसिंहादिभिः क्रान्तौ चलितौ नाश्रमात्स्वकात् ।

न तयोर्ध्यानभङ्गं वै कर्तुं कोऽपि क्षमोऽभवत् ॥ ३१ ॥

इन्द्रोऽपिसदनंगत्वाचिन्तयामासदुःखितः । चलितौभयलोभाभ्यांनेमौमुनिवरोत्तमौ
चिन्तयन्तौमहाविद्यामादिशक्तिंसनातनीम् । ईश्वरींसर्वलोकानां परां प्रकृतिमद्भुताम्
ध्यायतां कः क्षमोलोकेबहुमायाविदप्युत । यन्मूलाः सकलामाया देवासुरकृताःकिल
ते कथं बाधितुं शक्याध्यायन्तिगतकल्मषाः ।

वाग्बीजंकामबीजं च मायाबीजंतथैवच ॥ ३३ ॥

चिन्तयेयस्यभवेत्तंतुबाधितुंकोऽपिन क्षमः । माययामोहितःशक्रोभूयस्तस्यप्रतिक्रियाम्
कर्तुं कामवसन्तौतु समाहूयाऽब्रवाद्वचः । मनोभववसन्तेन रत्यायुक्तो व्रजाऽधुना ॥
अप्सरोभिः समायुक्तस्तरसा गन्धमादनम् । नरनारायणौ तत्र पुराणावृषिसत्तमौ
कुरुतस्तप एकान्ते स्थितौ बदरिकाश्रमे । गत्वा तत्र समीपे तु तयोर्मन्मथमार्गणैः
चित्तं कामातुरं कार्यं कुरु कार्यं ममाऽधुना ।

मोहयित्वोच्चाटयित्वा विशिखैस्ताडयाऽऽशु च ॥ ३८ ॥

वशीकुरुमहाभाग मुनीधर्मसुतावपि । को ह्यस्मिन्सर्वसंसारे देवो दैत्योऽथ मानवः
यस्तेबाणवशंप्राप्तोन यातिभृशताडितः । ब्रह्माऽहंगिरिजानाथश्चन्द्रोवह्निर्विमोहितः
गणनाकाऽन्ययोःकामत्वद्बाणानांपराक्रमे । वाराङ्गनागणोऽयं ते सहायार्थंमयेरितः
आगमिष्यति तत्रैव रम्भादीनां मनोरमः । एका तिलोत्तमात्माकार्यंसाधयितुंक्षमा

त्वमेवैकःक्षमःकामंमिलितैकस्तुसंशयः । कुरु कार्यं महाभाग ददामि तववाञ्छितम्
प्रलोभितौ मयाऽत्यर्थं वरदानैस्तपस्विनौ ।
स्थानान्न चलितौ शान्तौ वृथाऽयं मे गतः श्रमः ॥ ४४ ॥
तथावैमाययाकृत्वाभीषितौतापसौभृशम् ।तथाऽपिनोत्थितौस्थानाद्देहरक्षापरौनतौ

व्यास उवाच

इतितस्यवचःश्रुत्वा शक्रंप्राहमनोभवः । वासवाद्य करिष्यामि कार्यन्तेमनसेप्सितम्
यदिविष्णुंमहेशंवाब्रह्माणंवादिवाकरम् । ध्यायन्तौतौतदाऽस्माकंभवितारौवशौमुनी
देवीभक्तं वशीकर्तुं नाहं शक्तः कथञ्चन । कामराजं महाबीजं चिन्तयन्तं मनस्यलम्
तांदेवींचेन्महाशक्तिं संश्रितौभक्तिभावतः । न तदा मम बाणानांगोचरौतापसौकिल

इन्द्र उवाच

गच्छ त्वं च महाभाग सर्वैस्तत्रसमुद्यतैः । कार्यं ममातिदुःसाध्यंकर्ताहितमनुत्तमम्

व्यास उवाच

इतितेनसमादिष्टा ययुः सर्वे समुद्यताः । तत्र तौ धर्मपुत्रौ द्वौ तेपाते दुष्करन्तपः ॥
इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यांसंहितायां चतुर्थस्कन्धे
नरनारायणकथावर्णनंनामपञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

षष्ठोऽध्यायः

नरनारायणयोःसमीपेवसन्तगमनम्

व्यास उवाच

प्रथमं तत्र सम्प्राप्तो वसन्तःपर्वतोत्तमे । पुष्पिताःपादपाः सर्वे द्विरेफालिविराजिताः
आम्राश्च बकुला रम्यास्तिलकाः किंशुकाः शुभाः ।
सालास्तालास्तमालाश्च मधूकाः पुष्पिता बभुः ॥ २ ॥

बभूवुः कोकिलाऽऽलापा वृक्षाग्रेषु मनोहराः ।
बल्ल्योऽपि पुष्पिताः सर्वा आलिलिंगुर्नगोत्तमान् ॥ ३ ॥
प्राणिनः स्वासुभार्यासु प्रेमयुक्ताः स्मराऽऽतुराः ।
बभूवुश्चातिमत्ताश्च क्रीडासक्ताः परस्परम् ॥ ४ ॥
ववुर्मन्दाः सुगन्धाश्च सुस्पर्शा दक्षिणाऽनिलाः ।
इन्द्रियाणि प्रमाथीनि मुनीनामपि चाऽभवन् ॥ ५ ॥

रतियुक्तस्ततः कामःपूरयन्पञ्चमार्गणान् । चकारत्वरितस्तत्र वासं बदरिकाऽश्रमे ॥
रम्भातिलोत्तमाद्याश्च गत्वातत्रवराऽऽश्रमे । गानञ्चक्रुःसुगीतज्ञाःस्वरतानसमन्वितम्
तच्छ्रुत्वामधुरोद्गीतंकोकिलानाञ्चकूजितम् । भ्रमरालिविरावञ्चप्रबुद्धौ तौ मुनीश्वरौ
ऋतुराजमकाले तु दृष्ट्वा तौ पुष्पितंवनम् । जातौचिन्तापरौतत्र नरनारायणावृषी ॥
किमद्यशिशिरापायःसम्वृत्तःसमयंविना । प्राणिनोविह्वलाःसर्वेलक्ष्यंतेऽतिस्मरातुराः
कालधर्मविपर्यासःकथमद्य दुरासदः । नरं नारायणः प्राह विस्मयोत्फुल्ललोचनः ॥

नारायण उवाच

पश्य भ्रातरिमे वृक्षाः पुष्पिताः प्रतिभांति वै ।
कोकिलाऽऽलापसंघुष्टा भ्रमरालिविराजिताः ॥ १२ ॥

शिशिरं भीममातङ्गं दारयन्स्वखरैर्नखैः । वसन्तकेशरी प्राप्तः पलाशकुसुमैर्मुने ॥१३॥

रक्ताशोककरा तन्वी देवर्षे किंशुकांघ्रिका ।
नीलाऽशोककचा श्यामा विकासिकमलाऽऽनना ॥ १४ ॥

नीलेन्दीवरनेत्रा सा बिल्ववृक्षफलस्तनी । प्रोत्फुल्लकुन्दरदना मञ्जरीकर्णशोभिता ॥
बन्धुजीवाधराशुभ्रा सिन्धुवारनखाद्भुता । पुंस्कोकिलस्वरापुण्या कदम्बवसनाशुभा
बर्हिवृन्दकलापाचसारसस्वननूपुरा । वासन्तीबद्धरशना मत्तहंसगतिस्तथा ॥ १७॥
पुत्रजीवांशुकन्यस्तरोमराजिविराजिता । वसन्तलक्ष्मीः सम्प्राप्ता ब्रह्मन्बदरिकाश्रमे
अकाले किमियम्प्राप्ता विस्मयोयंममाऽधुना । तपोविघ्नकरानूनं देवर्षे परिचिन्तय
श्रूयते सुरनारीणां गानं ध्यानविनाशनम् । आवयोस्तपिभङ्गाय कृतं मघवता किल

ऋतुराडन्यथाऽकाले प्रीतिं सञ्जनयेत्कथम् ।
विघ्नोऽयं विहितो भाति भीतेनाऽसुरशत्रुणा ॥ २१ ॥

वाताःसुगन्धाःशीताश्च समायान्तिमनोहराः । नान्यत्कारणमस्तीहशतक्रतुकृतिंविना
इति ब्रुवति विप्राऽग्रेघ देवेनारायणेविभौ । सर्वे दृष्टिपथं प्राप्ता मन्मथप्रमुखास्तदा
ददर्श भगवान्सर्वान्नरो नारायणस्तथा । विस्मयाविष्टमनसौ बभूवतुरुभावपि ॥२४
मन्मथंमेनकाञ्चैव रम्भाञ्चैव तिलोत्तमाम् । पुष्पगन्धांसुकेशीञ्च महाश्वेतांमनोरमाम्
प्रमद्वरांघृताचीञ्चगीतज्ञांचारुहासिनीम् । चन्द्रप्रभाञ्चसोमाञ्चकोकिलालापमण्डिताम्

विद्युन्मालाम्बुजाक्षीं च तथा काञ्चनमालिनीम् ।
एताश्चान्या वरारोहा दृष्टास्ताभ्यां तदाऽन्तिके ॥ २७ ॥
तासां द्व्यष्टसहस्राणि पञ्चाशदधिकानि च ।
वीक्ष्य तौ विस्मितौ जातौ कामसैन्यं सुविस्तरम् ॥ २८ ॥
प्रणम्याऽग्रे स्थिताः सर्वा देववाराङ्गनास्तदा ।
दिव्याऽऽभरणभूषाढ्या दिव्यमाल्योपशोभिताः ॥ २९ ॥

जगुश्छलेनताःसर्वाःपृथिव्यामतिदुर्लभम् । तत्तथाऽवस्थितंदिव्यंमन्मथातिविवर्धनम्
शुश्रावभगवान्विष्णुर्नरोनारायणस्तदा । श्रुत्वाप्रोवाचताऽस्तत्रप्रीत्यानारायणोमुनिः

आस्यतां सुखमत्रैव करोम्यातिथ्यमद्भुतम् ।
भवन्त्योऽतिथिधर्मेण प्राप्ताः स्वर्गात्सुमध्यमाः ॥ ३२ ॥

व्यास उवाच

साभिमानस्तुसञ्जातस्तदा नारायणोमुनिः । इन्द्रेणप्रेषितानूनंतथा विघ्नचिकीर्षया
वराक्यःकाइमाःसर्वाःसृजाम्यद्यनवाःकिल । एताभ्योदिव्यरूपाश्चदर्शयामितपोबलम्
इतिसञ्चिन्त्यमनसा करेणोरुं प्रताड्य वै । तरसोत्पादयामास नारीं सर्वाङ्गसुन्दरीम्
नारायणोरुसम्भूता ह्युर्वशीति ततः शुभा । ददृशुस्ताःस्थितास्तत्रविस्मयंपरमंययुः ॥
तासाञ्चपरिचर्यार्थं तावतीश्चातिसुन्दरीः । प्रादुश्चकारतरसा तदा मुनिरसम्भ्रमः ॥
गायन्त्यश्चहसन्त्यश्चनानोपायनपाणयः । प्रणेमुस्तामुनीसर्वाःस्थिताःकृत्वाऽञ्जलिपुटः

ता वीक्ष्य विभ्रमकरीं तपसो विभूतिं देवाङ्गनाहि मुमुहुः प्रविमोहयन्त्यः ।
ऊचुश्च तौ प्रमुदितानन पद्मशोभा रोमोद्गमोल्लसितचारुनिजाङ्गवल्ल्यः ॥३९॥
कुर्युः कथं स्तुतिमहो तपसो महत्त्वं धैर्यं तथैव भवतामभिवीक्ष्य बालाः ।
अस्मत्कटाक्षविषदिग्धशरेण दग्धः को वा न तत्र भवतां मनसो व्यथा न ॥
ज्ञातौ युवां नरहरेः परमांशभूतौ देवौ मुनी शमदमादिनिधी सदैव ।
सेवानिमित्तमिह नो गमनं न कामं कार्यं हरेः शतमखस्य विधातुमेव ॥४१॥
भाग्येन केन युवयोः किल दर्शनं नः सम्पादितं न विदितं खलु संचितं तत् ।
चित्तं क्षमं निजजने विहितं युवाभ्यामस्मद्विधे किल कृतागसि तापमुक्तम् ॥
कुर्वन्ति नैव विबुधास्तपसो व्ययं वै शापेन तुच्छफलदेन महानुभावाः ।

व्यास उवाच

इत्थं निशम्य वचनं सुरकामिनीनां तावूचतुर्मुनिवरौ विनयानतानाम् ॥४३॥
प्रीतौ प्रसन्नवदनौ जितकामलोभौ धर्मात्मजौ निजतपोरुचिशोभिताङ्गे ।

नरनारायणावूचतुः

ब्रुवन्तु वाञ्छितान्कामान्ददावस्तुष्टमानसौ ॥ ४४ ॥
यान्तु स्वर्गं गृहीत्वेमामुर्वशीं चारुलोचनाम् ॥
उपायनमियं बाला गच्छत्वद्य मनोहरा ॥ ४५ ॥
दत्ताऽऽवाभ्यांमघवतः प्रीणनायोरुसम्भवा । स्वस्त्यस्तुसर्वदेवेभ्योयथेष्टंप्रव्रजन्तुच
न कस्याऽपि तपोविघ्नं प्रकर्तव्यमतः परम् ।

देव्य ऊचुः

क गच्छामो महाभाग प्राप्तास्ते पादपङ्कजम् । नारायणसुरश्रेष्ठ भक्त्या परमया मुदा
वाञ्छितश्चेद्वरं नाथ ददासि मधुसूदन । तुष्टः कमलपत्राक्ष ब्रवीमो मनसेप्सितम् ॥
पतिस्त्वं भव देवेश वरमेनं परन्तप । भवामः प्रीतियुक्तास्त्वां सेवितुं जगदीश्वर ॥
त्वया चोत्पादिता नार्यः सन्त्यन्याश्चारुलोचनाः ।
उर्वश्याद्यास्तथा यान्तु स्वर्गास्वै भवदाज्ञया ॥ ५० ॥

स्त्रीणांषोडशसाहस्रंतिष्ठत्वत्रशतार्धकम् । सेवान्तेऽत्रकरिष्यामोयुवयोस्तापसोत्तमौ
वाञ्छितंदेहि देवेश सत्यवाग्भव माधव । आशाभङ्गोहिनारीणांहिंसनंपरिकीर्तितम्
कामार्तानां च मुनिभिर्धर्मज्ञैस्तत्त्वदर्शिभिः ।
भाग्ययोगादिह प्राप्ताः स्वर्गात्प्रेमपरिप्लुताः ॥ ५३ ॥
त्यक्तुं नार्हसि देवेश ! समर्थोऽसि जगत्पते !।

नारायण उवाच

पूर्णंवर्षसहस्रं तु तपस्तप्तं मयाऽत्र वै ॥ ५४ ॥
जितेन्द्रियेण चार्वंग्यः कथं भङ्गं करोम्यतः । नेच्छाकामेसुखेकाचित्सुखधर्मविनाशके
पशूनामपि साधर्म्ये रमेत मतिमान्कथम् ।

अप्सरस ऊचुः

शब्दादीनां च पञ्चानां मध्ये स्पर्शसुखं वरम् ॥ ५६ ॥
आनन्दरसमूलंवै नान्यदस्तिसुखं किल । अतोऽस्माकंमहाराज वचनं कुरु सर्वथा
निर्भरं सुखमासाद्यचरस्वगन्धमादने । यदिवाऽछसिनाकत्वंनाऽधिकोगन्धमादनात्
रमस्वाऽत्र शुभे स्थाने प्राप्य सर्वाःसुराङ्गनाः ।
इति श्रीदेवीभागते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां तृतीयस्कन्धे
अप्सरसांनारायणसमीपेप्रार्थनाकरणंनामषष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सप्तमोऽध्यायः

अहङ्कारावर्तनवर्णनम्

व्यास उवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तासां धर्मपुत्रः प्रतापवान् । विमर्शमकरोच्चित्ते किं कर्तव्यं मयाऽधुना
हास्योऽहं मुनिवृन्देषुभविष्याम्यद्यसङ्गमात् । अहङ्कारादिदंप्राप्तंदुःखंनाऽत्रविचारणा

मूलं धर्मविनाशस्य प्रथमं यदहंकृतिः ॥ २ ॥

मूलं संसारवृक्षस्ययतः प्रोक्तोमहात्मभिः । दृष्ट्वामौनंसमाधायनस्थितोऽहंसमागतम्

वाराङ्गनागणं जुष्टं नेनाऽऽसंदुःखभाजनम् । उत्पादितास्तथानार्योमयाधर्मक्षयेनवै

तास्तुमां बाधितुंवृत्ताःकामार्ताःप्रमदोत्तमाः । ऊर्णनाभिरिवाद्याऽहंजालेनस्वकृतेनवै

बद्धोऽस्मि सुदृढेनाऽत्र किंकर्तव्यमितः परम् ।

यदि चिन्तां समुत्सृज्य संत्यजाम्यबला इमाः ॥ ६ ॥

शप्त्वा भ्रष्टा व्रजिष्यन्ति सर्वाभग्नमनोरथाः । मुक्तोऽहंसञ्चरिष्यामिविजनेपरमं तपः

तस्मात्क्रोधं समुत्पाद्य त्यक्षामि सुन्दरीगणम् ।

व्यास उवाच

इति संचिन्त्यमनसा मुनिर्नारायणस्तदा ॥ ८॥

विमर्शमकरोच्चित्ते सुखोत्पादनसाधने । द्वितीयोऽयं महाशत्रुः क्रोधः संतापकारकः

कामादप्यधिको लोके लोभादपि च दारुणः ।

क्रोधाभिभूतः कुरुते हिंसां प्राणविघातिनीम् ॥ १० ॥

दुःखदां सर्वभूतानां नरकागमदीर्घिकाम् । यथाग्निर्घर्षणाज्जातः पादपं प्रदहेत्तथा ॥

देहोत्पन्नस्तथा क्रोधो देहं दहति दारुणः ।

व्यास उवाच

इति संचिन्त्यमानं तं भ्रातरं दीनमानसम् ॥ १२ ॥

उवाच वचनं तथ्यं नरो.धर्मसुतोऽनुजः ।

नर उवाच

नारायण ! महाभाग ! कोपं यच्छ महामते !॥ १३ ॥

शान्तभ्भावंसमाश्रित्यनाशयाऽहंकृतिपराम् । पुराहंकारदोषेणतपोनष्टंकिलाऽऽवयोः

संग्रामश्चाभवत्ताभ्यां भावाभ्यामसुरेण ह । दिव्यवर्षसहस्रं तु प्रह्लादेन महाद्भुतम् ॥

दुःखं बहुतरं प्राप्तं तत्राऽऽवाभ्यांसुरोत्तम । तस्मात्क्रोधंपरित्यज्यशांतोभवमुनीश्वर

"शान्तत्वं तपसोमूलं मुनिभिः परिकीर्तितम् ।"

व्यास उवाच

इति तस्य वचः श्रुत्वा शान्तोऽभूद्धर्मनन्दनः ॥

जनमेजय उवाच

संशयोऽयं मुनिश्रेष्ठ ! प्रह्लादेन महात्मना ॥ १७ ॥

विष्णुभक्तेन शान्तेन कथं युद्धं कृतं पुरा । कृतवन्तौ कथं युद्धं नरनारायणावृषी ॥
तापसौ धर्मपुत्रौ द्वौ सुशान्तमानसावुभौ । समागमः कथं जातस्तयोर्दैत्यसुतस्य च
संग्रामस्तु कथंताभ्यांकृतस्तेनमहात्मना । प्रह्लादोप्यतिधर्मात्माज्ञानवान्विष्णुतत्परः
नरनारायणौ तद्वत्तापसौ सत्त्वसंस्थितौ । तेन ताभ्यां समुद्भूतं वैरं यदि परस्परम्
तदा तपसि धर्मेच श्रमएवहि केवलम् । क जपः क तपश्चर्या पुरा सत्ययुगेऽपि च
तादृशैर्न जितंचित्तं क्रोधाऽहङ्कारसंवृतम् । न क्रोधो न च मात्सर्यमहङ्काराङ्कुरंविना
अहङ्कारात्समुत्पन्नाः कामक्रोधादयः किल । वर्षकोटिसहस्रंतुतपःकृत्वाऽतिदारुणम्
अहङ्काराङ्कुरे जाते व्यर्थं भवतिसर्वथा । यथा सूर्योदये जाते तमोरूपं न तिष्ठति ॥
अहङ्काराङ्कुरस्याऽग्रे तथा पुण्यं न तिष्ठति । प्रह्लादोऽपि महाभाग हरिणासमयुध्यत
तदाव्यर्थं कृतं सर्वं सुकृतं किल भूपते । नरनारायणौ शान्तौ विहाय परमं तपः ॥
कृतवन्तौ यदायुद्धं क शमः सुकृतं पुनः । ईदृग्भ्यां सत्त्वयुक्ताभ्यामजेया यद्यहंकृतिः
मादृशानां च का वार्ता मुनेऽहंकारसंक्षये । अहङ्कारपरित्यक्तः कोप्यऽस्तिभुवनत्रये
न भूतो भविता नैव यस्त्यक्तस्तेन सर्वथा । मुच्यते लोहनिगडैर्बद्धः काष्ठमयैस्तथा
अहङ्कारनिबद्धस्तु न कदाचिद्विमुच्यते । अहङ्कारावृतं सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम्
भ्रमत्येव हि संसारे विष्ठामूत्रप्रदूषिते । ब्रह्मज्ञानं कुतस्तावत्संसारे मोहसंवृते ॥
मतं मीमांसकानां वैसम्मतंभातिसुव्रत । महान्तोऽपिसदायुक्ताःकामक्रोधादिभिर्मुने
मादृशानां कलावस्मिन्का कथा मुनिसत्तम !।

व्यास उवाच

कार्यं वै कारणाद्भिन्नं कथं भवति भारत ! ॥ ३४ ॥

कटकं कुण्डलं चैव सुवर्णसदृशं भवेत् । अहङ्कारोद्भवं सर्वं ब्रह्माण्डं सचराचरम्

पटस्तंतुवशः प्रोतस्तद्वियुक्तः कथंभवेत् । मायागुणैस्त्रिभिःसर्वंरचितंस्थिरजङ्गमम्
सतृणस्तम्बपर्यन्तं का तत्र परिदेवना । ब्रह्माविष्णुस्तथारुद्रस्तेचाहङ्कारमोहिताः
भ्रमन्त्यस्मिन्महागाधे संसारे नृपसत्तम । वशिष्ठनारदाद्याश्च मुनयोज्ञानिनः परम्

तेऽभिभूताः संसरन्ति संसारेऽस्मिन्पुनः पुनः ।
न कोऽप्यस्ति नृपश्रेष्ठ! त्रिषु लोकेषु देहभृत् ॥ ३९ ॥
यस्त्रिभिर्मायागुणैर्मुक्तः शान्त आत्मसुखे स्थितः ।
कामःक्रोधो तथा लोभो मोहोऽहङ्कारसम्भवः ॥ ४० ॥

न मुञ्चन्ति नरं सर्वं देहवन्तं नृपोत्तम । अधीत्य वेदशास्त्राणिपुराणानिविचिन्त्यच
कृत्वा तीर्थाटनं दानं ध्यानंचैवसुराऽर्चनम् । करोति विषयासक्तःसर्वंकर्मचचौरवत्
विचारयति नो पूर्वं काममोहमदान्वितः । कृते युगेऽपि त्रेतायां द्वापरे कुरुनन्दन !॥

विद्रोऽत्रास्ति च धर्मोऽपि का कथाऽद्य कलौ पुनः ।
स्पर्धा सदैव सद्रोहा लोभामर्षौ च सर्वदा ॥ ४४ ॥
एवंविधोऽस्ति संसारो नाऽत्र कार्या विचारणा ।
साधवो विरला लोके भवन्ति गतमत्सराः ॥ ४५ ॥
जितक्रोधा जितामर्षा दृष्टान्तार्थं व्यवस्थिताः ।

राजोवाच

ते धन्याः कृतपुण्यास्ते मदमोहविवर्जिताः ॥ ४६ ॥

जितेन्द्रियाः सदाचारा जितंतैर्भुवनत्रयम् । दुनोमि पातकंस्मृत्वापितुर्ममहात्मनः
कृतस्तपस्विनः कण्ठे मृतसर्पोह्यवं विना । अतस्तस्य मुनिश्रेष्ठ भविता किं ममाग्रतः
न जाने बुद्धिसंमोहात्किंवा कार्यं भविष्यति । मधुपश्यतिमूढात्मा प्रपातंनैवपश्यति
करोति निन्दितं कर्म नरकान्न बिभेति च । कथं युद्धं पुरा वृत्तं विस्तरात्सद्वदस्व मे
प्रह्लादेन यथा चोग्रं नरनारायणस्य वै । प्रह्लादस्तु कथं यातः पातालात्सद्वदस्व मे ॥
सारस्वते महातीर्थे पुण्ये बदरिकाश्रमे । नरनारायणौ शान्तौ तापसौ मुनिसत्तमौ
कृतवन्तौ तथा युद्धं हेतुना केन मानद । वैरं भवति वित्तार्थं दारार्थं वा परस्परम्

पवनाराहितौ कस्माच्चक्रतुः प्रधनं महत् । प्रह्लादोऽपिच धर्मात्मा ज्ञात्वादेवौसनातनौ
कृतवान्स कथं युद्धं नरनारायणौमुनी । एतद्विस्तरतोब्रह्मञ्छ्रोतुमिच्छामि कारणम्
इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां चतुर्थस्कन्धे
अहङ्कारावर्तनवर्णनंनामसप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अष्टमोऽध्यायः

च्यवनमुनिनापातालेप्रह्लादसमीपेगमनम्

सूत उवाच

इतिपृष्टस्तदा विप्रोराज्ञा पारीक्षितेन वै । उवाच विस्तरात्सर्वं व्यासःसत्यवतीसुतः
जनमेजयोऽपि धर्मात्मा निर्वेदं परमं गतः । चित्तं दुश्चरितं मत्वा वैराटीतनयस्यवै
तस्यैवोद्धरणार्थाय चकार सततं मनः । विप्रावमानपापेन यमलोकंगतस्य वै ॥
पुन्नामनरकाद्यस्मात्त्रायते पितरं स्वकम् । पुत्रेतिनाम सार्थं स्यात्तेन तस्यमुनीश्वराः
सर्पदष्टं नृपं श्रुत्वा हर्म्योपरिमृतं तथा । विप्रशापादौत्तरेयं स्नानदानविवर्जितम् ॥
पितुर्गतिं निशम्याऽसौ निर्वेदंगतवान्नृपः । पारीक्षितो महाभागःसन्तप्तोभयविह्वलः
पप्रच्छाऽथ मुनिं व्यासं गृहागतमनिन्दितः । नरनारायणस्येमांकथांपरमविस्तृताम्

व्यास उवाच

स यदा निहतो रौद्रोहिरण्यकशिपुर्नृप । अभिषिक्तस्तदा राज्येप्रह्लादो नाम तत्सुतः
तस्मिञ्छासति दैत्येन्द्रे देवब्राह्मणपूजके । मखैर्भूम्यांनृपतयोयजन्तः श्रद्धयाऽन्विताः
ब्राह्मणाश्च तपोधर्मतीर्थयात्राश्च कुर्वते । वैश्याश्चस्वस्ववृत्तिस्थाःशूद्राः शुश्रूषणेरताः
नृसिंहेन च पाताले स्थापितः सोऽथ दैत्यराट् । राज्यंचकारतत्रैवप्रजापालनतत्परः

कदाचिद्भृगुपुत्रोऽथ च्यवनाख्यो महातपाः ।
जगाम नर्मदां स्नातुं तीर्थं वै व्याहृतीश्वरम् ॥ १२ ॥

रेवां महानदीं दृष्ट्वा ततस्तस्यामथातरत् । उत्तरन्तं प्रजग्राह नागो विषभयङ्करः ॥
गृहीतो भयभीतस्तु पाताले मुनिसत्तमः । सस्मार मनसा विष्णुं देवदेवं जनार्दनम्
संस्मृते पुण्डरीकाक्षे निर्विषोऽभून्महोरगः । न प्रापच्च्यवनोदुःखंनीयमानोरसातलम्
द्विजिह्वेनमुनिस्त्यक्तोनिर्विण्णेनाऽतिशङ्किना । मांशपेतमुनिःक्रुद्धस्तापसोऽयंमहानिति
चचार नागकन्याभिः पूजितो मुनिसत्तमः । विवेशाप्यथनागानांदानवानांमहत्पुरम्
कदाचिद्भृगुपुत्रंतं विचरन्तं पुरोत्तमे । ददर्शदैत्यराजोऽसौ प्रह्लादो धर्मवत्सलः
दृष्ट्वा तं पूजयामास मुनिं दैत्यपतिस्तदा । पप्रच्छ कारणं किं ते पातालगमने वद ॥
प्रेषितोऽसि किमिन्द्रेण सत्यं ब्रूहि द्विजोत्तम । दैत्यविद्वेषयुक्तेनमम राज्यदिदृक्षया

च्यवन उवाच

किं मे मघवता राजन्यदहं प्रेषितः पुनः । दूतकार्यं प्रकुर्वाणः प्राप्तवान्नगरे तव ॥२१॥
विद्धि मां भृगुपुत्रं तं स्वनेत्रं धर्मतत्परम् । मा शङ्कां कुरु दैत्येन्द्र वासवप्रेषितम्यवै
स्नानार्थं नर्मदां प्राप्तः पुण्यतीर्थे नृपोत्तम । नद्यामेवावतीर्णोऽहं गृहीतश्च महाहिना

जातोऽसौ निर्विषः सर्पो विष्णोः संस्मरणादिव ।
मुक्तोऽहं तेन नागेन प्रभावात्स्मरणस्य वै ॥ २४ ॥

अत्राऽऽगतेनराजेन्द्रमयाऽऽसंतवदर्शनम् । विष्णुभक्तोऽसिदैत्येन्द्रतद्भक्तंमांविचिन्तय

व्यास उवाच

तन्निशम्य वचःश्लक्ष्णंहिरण्यकशिपोःसुतः । प्रपच्छपरयाप्रीत्यातीर्थानिविविधानिच

प्रह्लाद उवाच

पृथिव्यां कानि तीर्थानि पुण्यानि मुनिसत्तम !।
पाताले च तथाऽऽकाशे तानि नो वद विस्तरात् ॥ २७ ॥

च्यवन उवाच

मनोवाक्कायशुद्धानां राजंस्तीर्थं पदेपदे । तथामलिनचित्तानांगङ्गाऽपि कीकटाधिका
प्रथमं चेन्मनः शुद्धं जातं पापविवर्जितम् । तदा तीर्थानिसर्वाणिपावनानि भवन्तिवै
गङ्गातीरे हि सर्वत्र वसन्तिनगराणि च । व्रजाश्चैवाकराग्रामाः सर्वे खेटास्तथाऽपरे

निषादानां निवासाश्च कैवर्तानां तथाऽपरे। हूणवङ्गखसानां चम्लेच्छानांदैत्यसत्तम
पिबन्ति सर्वदा गाङ्गं जलंब्रह्मोपमंसदा। स्नानंकुर्वन्तिदैत्येन्द्र त्रिकालंस्वेच्छयाजनाः
तत्रैकोऽपि विशुद्धात्मा न भवत्येवमारिष। किं फलं तर्हितीर्थस्यविषयोपहतात्मसु
कारणं मनएवाऽत्र नाऽन्यद्राजन्विचिन्तय। मनःशुद्धिःप्रकर्तव्यासततंशुद्धिमिच्छता
तीर्थवासीमहापापी भवेत्तत्रान्यवञ्चनात्। तत्रैवाऽऽचरितं पापमानन्त्याय प्रकल्पते
यथेन्द्रवारुणं पक्वं मिष्टं नैवोपजायते। भावदुष्टस्तथा तीर्थकोटिस्नातो न शुध्यति
प्रथमं मनसः शुद्धिः कर्तव्या शुभमिच्छता। शुद्धेमनसिद्रव्यस्यशुद्धिर्भवतिनाऽन्यथा
तथैवाऽऽचारशुद्धिः स्यात्ततस्तीर्थं प्रसिध्यति।
अन्यथा तु कृतं सर्वं व्यर्थं भवति तत्क्षणात्॥ ३८॥
"हीनवर्णस्यसंसर्गं तीर्थेगत्वा सदात्यजेत्"। भूतानुकम्पनंचैव कर्तव्यंकर्मणाधिया
यदि पृच्छसि राजेन्द्र! तीर्थं वक्ष्याम्यनुत्तमम्॥ ३६॥
प्रथमं नैमिषंपुण्यं चक्रतीर्थंच पुष्करम्। अन्येषां चैवतीर्थानांसंख्यानास्ति तमहीतले
पावनानि च स्थानानि बहूनि नृपसत्तम!।

व्यास उवाच

तच्छ्रुत्वा वचनं राजा नैमिषं गन्तुमुद्यतः॥ ४१॥
नोदयामास दैत्यान्वै हर्षनिर्भरमानसः।

प्रह्लाद उवाच

उत्तिष्ठन्तु महाभागा! गमिष्यामोऽद्य नैमिषम्॥ ४२॥
द्रक्ष्यामः पुण्डरीकाक्षं पीतवाससमच्युतम्।

व्यास उवाच

इत्युक्ता विष्णुभक्तेन सर्वे ते दानवास्तदा॥ ४३॥
तेनैवसहपातालान्निर्ययुः परया मुदा। ते समेत्य च दैतेया दानवाश्च महाबलाः॥
नैमिषारण्यमासाद्य स्नानं चक्रुर्मुदाऽन्विताः। प्रह्लादस्तत्रतीर्थेषु चरन्दैत्यैःसमन्वितः
सरस्वतीं महापुण्यां ददर्शविमलोदकाम्। तीर्थे तत्र नृपश्रेष्ठ प्रह्लादस्य महात्मनः॥

मनः प्रसन्नं सञ्जातं ज्ञात्वा सारस्वतेजले । विधिवत्तत्र दैत्येन्द्रः स्नानदानादिकंशुभे
चकाराऽतिप्रसन्नात्मा तीर्थे परमपावने ।

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां चतुर्थस्कन्धे
प्रह्लादतीर्थयात्रावर्णनंनामाऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

नवमोऽध्यायः

प्रह्लादनारायणयोःसमागमवर्णनम्

व्यास उवाच

कुर्वंस्तीर्थविधिं तत्र हिरण्यकशिपोः सुतः । न्यग्रोधं सुमहच्छायमपश्यत्पुरतस्तदा
ददर्श बाणान्बहूनानाजातीयकांस्तदा ।
गृध्रपक्षयुतांस्तीक्ष्णाञ्छिलाधौतान्महोज्ज्वलान् ॥ २ ॥
चिन्तयामास मनसा यस्येमे विशिखास्त्विह । ऋषीणामाश्रमेपुण्ये तीर्थे परमपावने
एवं चिन्तयताऽनेन कृष्णाजिनधरौ मुनी । समुन्नतजटाभारौ दृष्टौ धर्मसुतौ तदा
तयोरग्रे धृते शुभ्रे धनुषी लक्षणान्विते । शार्ङ्गमाजगवं चैव तथाऽक्षय्यौ महेषुधी ॥
ध्यानस्थौतौमहाभागौ नरनारायणावृषी । दृष्ट्वा धर्मसुतौ तत्र दैत्यानामधिपस्तदा
क्रोधरक्तेक्षणस्तौतुप्रोवाचाऽसुरपालकः । किमिदंभवद्भ्यांसमारब्धोदम्भोधर्मविनाशनः
न श्रुतं नैवदृष्टंहि संसारेऽस्मिन्कदाऽपिहि । क्व तपश्चरणंतीव्रंतथाचापस्यधारणम्
विरोधोऽयंयुगेवाऽऽद्येकथंयुक्तंकलिप्रियम् । ब्राह्मणस्यतपोयुक्तंतत्रकिं चापधारणम्
क्व जटाधारणंदेहे क्वेषुधीच विडम्बनौ । धर्मस्याऽऽचरणं युक्तंयुवयोर्दिव्यभावयोः

व्यास उवाच

इतितस्यवचःश्रुत्वानरःप्रोवाचभारत । कातेचिन्ताऽत्रदैत्येन्द्रवृथातपसिवाऽऽवयोः
सामर्थ्ये सतियः कुर्यात्तत्संपद्येत तस्यहि । आवांकार्यद्वयेमन्दसमर्थौलोकविश्रुतौ ॥

युद्धेतपसिसामर्थ्यं त्वं पुनःकिंकरिष्यसि । गच्छमार्गं यथाकामंकस्माद्व्रविकत्थसे
ब्रह्मतेजोदुराराध्यंन त्वं वेदविमोहितः । विप्रवर्चान कर्तव्याप्राणिभिःसुखमीप्सुभिः

प्रह्लाद उवाच

तापसौ मन्दबुद्धीस्थौ मृषा वां गर्भमोहितौ । मयि तिष्ठति दैत्येन्द्रे धर्मसेतुप्रवर्तके
न युक्तमेतत्तीर्थेऽस्मिन्नधर्माऽऽचरणंपुनः । काशक्तिस्तवयुद्धेऽस्ति दर्शयाऽद्यतपोधन

व्यास उवाच

तदाऽऽकर्ण्यवचस्तस्य नरस्तं प्रत्युवाचह । युध्यस्वाऽद्यमयासार्धंयदितेमतिरीदृशी
अद्य ते स्फोटयिष्यामि मूर्धानमसुराधम । युद्धेश्रद्धानते पश्चाद्भविष्यति कदाचन ॥

व्यास उवाच

तन्निशम्य वचस्तस्य दैत्येन्द्रः कुपितस्तदा ॥ १८ ॥
प्रह्लादो बलवानत्र प्रतिज्ञामारुरोह सः । येनकेनाप्युपायेन जेष्यामितावुभावपि ॥
नरनारायणौ दान्तावृषी तपिसमन्वितौ ।

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा वचनं दैत्यः प्रतिगृह्य शरासनम् ॥ २० ॥
आकृष्य तरसा चापं ज्याशब्दञ्च चकारह ।
नरोऽपि धनुरादाय शरांस्तीव्राञ्छिलाशितान् ॥ २१ ॥
मुमोच बहुशःक्रोधात्प्रह्लादोपरि पार्थिव ! ॥ २२ ॥
तान्दैत्यराजस्तपनीयपुंखैश्चिच्छेद बाणैस्तरसा समेत्य ।
समीक्ष्य छिन्नांश्च नरः स्वसृष्टानन्यान्मुमोचाऽऽशु रुषाऽन्वितो वै ॥ २३ ॥
दैत्याऽधिपस्तानपि तीव्रवेगैश्छित्त्वा जघानोरसि तं मुनीन्द्रम् ।
नरोऽपि तं पञ्चभिराशुगैश्च क्रुद्धोऽहनद्दैत्यपतिं बाहुदेशे ॥ ॥ २४ ॥
सेन्द्राः सुरास्तत्र तयोर्हि युद्धं द्रष्टुं विमानैर्गगनस्थिताश्च ।
नरस्य वीर्यं युधि संस्थितस्य ते तुष्टुवुर्दैत्यपतेश्च भूयः ॥ २५ ॥
ववर्ष दैत्याधिप आत्तचापः शिलीमुखानम्बुधरो यथाऽऽपः ।

आदाय शार्ङ्गं धनुरप्रमेयं मुमोच बाणाञ्छितहेमपुंखान् ॥ २६ ॥
बभूव युद्धं तुमुलं तयोस्तु जयैषिणो पार्थिवदेवदैत्ययोः ।
ववर्षुराकाशपथे स्थितास्ते पुष्पाणि दिव्यानि प्रहृष्टचित्ताः ॥ २७ ॥
चुकोप दैत्याधिपतिर्हरौ स मुमोच बाणानतितीव्रवेगान् ।
चिच्छेद तान्धर्मसुतः सुतीक्ष्णैर्धनुर्विमुक्तैर्विशिखैस्तदाऽऽशु ॥ २८ ॥
ततो नारायणंबाणैः प्रह्लादश्चातितर्पितैः । ववर्ष सुस्थितं वीरं धर्मपुत्रं सनातनम् ॥
नारायणोऽपि तं वेगान्मुक्तैर्बाणैःशिलाशितैः ।
तुतोदाऽतीव पुरतो दैत्यानामधिपं स्थितम् ।
सन्निपातोऽम्बरे तत्र दिदृक्षूणां बभूव ह ॥ ३० ॥
देवानां दानवानाञ्च कुर्वतां जयघोषणम् । उभयोः शरवर्षेणच्छादिते गगने तदा ॥
दिवाऽपि रात्रिसदृशं बभूव तिमिरं महत् । ऊचुःपरस्परंदेवादैत्याश्चातीवविस्मिताः
अदृष्टपूर्वंयुद्धं वै वर्ततेऽद्य सुदारुणम् । देवर्षयोऽथ गन्धर्वा यक्षकिन्नरपन्नगाः ॥
विद्याधराश्चारणाश्च विस्मयं परमं ययुः । नारदः पर्वतश्चैव प्रेक्षणार्थं स्थितौ मुनी ॥
नारदः पर्वतं प्राह नेदृशं चाभवत्पुरा । तारकासुरयुद्धञ्च तथा वृत्रासुरस्य च ॥३५॥
मधुकैटभयोर्युद्धं हरिणाचेदृशं कृतम् । प्रह्लादः प्रबलः शूरो यस्मान्नारायणेन च ॥
करोति सदृशं युद्धं सिद्धेनाऽद्भुतकर्मणा ।

व्यास उवाच

दिनेदिने तथा रात्रौ कृत्वा कृत्वा पुनः पुनः ॥ ३७ ॥
चक्रतुः परमं युद्धं तौ तदा दैत्यतापसौ । नारायणस्तु चिच्छेद प्रह्लादस्यशरासनम्
तरसैकेनबाणेन स चाऽन्यद्धनुरादवे । नारायणस्तु तरसा मुक्त्वाऽन्यञ्चशिलीमुखम्
तदैव मध्यतश्चापं चिच्छेद लघुहस्तकः । छिन्नं छिन्नं पुनर्दैत्यो धनुरन्यत्समाददे ॥
नारायणस्तु चिच्छेदविशिखैराऽऽशु कोपितः । छिन्नेधनुषिदैत्येन्द्रःपरिघन्तुसमाददे
जघान धर्मजं तूर्णं बाहोर्मध्येऽतिकोपनः । तमायान्तं स बलवान्मार्गणैर्नवभिर्मुनिः
चिच्छेद परिघं घोरं दशभिस्तमताडयत् । गदामादाय दैत्येन्द्रःसर्वायसमयीं दृढाम्

आनुदेशे जघानाऽऽशुदेवंनारायणं रुषा । गदयावापिगिरिवत्संस्थितःस्थिरमानसः
धर्मपुत्रोऽतिबलवान्मुमोचाऽऽशु शिलीमुखान् ।
गदां चिच्छेद भगवांस्तदा दैत्यपतेर्द्रुढाम् ॥ ४५ ॥
विस्मयं परमं जग्मुः प्रेक्षकागगने स्थिताः । स तु शक्तिं समादाय प्रह्लादः परवीरहा
चिक्षेप तरसा क्रुद्धो बलान्नारायणोरसि । तामापतन्तींसंवीक्ष्य बाणेनैकेन लीलया
सप्तधा कृतवानाशु सप्तभिस्तं जघान ह । दिव्यवर्षसहस्रं तु तद्युद्धं परमं तयोः ॥
जातं विस्मयदं राजन्सर्वेषां तत्र चाऽऽश्रमे । तदाऽऽजगामतरसापीतवासाश्चतुर्भुजः
प्रह्लादस्याऽऽश्रमं तत्र जगाम च गदाधरः । चतुर्भुजो रमाकान्तो रथाङ्गदरपद्मभृत् ॥
दृष्ट्वा समागतं तत्र हिरण्यकशिपोःसुतः । प्रणम्य परया भक्त्या प्राञ्जलिःप्रत्युवाच ह

प्रह्लाद उवाच

देवदेव ! जगन्नाथ ! भक्तवत्सल ! माधव ! ॥ ५१ ॥
कथं न जितवानाजावहमेतौ तपस्विनौ ।
संग्रामस्तु मया देव ! कृतः पूर्णं शतं समाः ॥ ५२ ॥
सुराणां न जितौ कस्मादिति मे विस्मयो महान् ।

विष्णुरुवाच

सिद्धाविमौ मदंशौ च विस्मयः कोऽत्र मारिष ! ॥ ५३ ॥
तापसौनजितात्मानौनरनारायणौजितौ । गच्छत्वंवितलंराजन्कुरुभक्तिममाऽचलाम्
नाऽऽभ्यां कुरु विरोधं त्वं तापसाभ्यां महामते !।

व्यास उवाच

इत्याज्ञप्तो दैत्यराजो निर्ययावसुरैः सह ॥ ५५ ॥
नरनारायणौ भूयस्तपोयुक्तौ बभूवतुः ॥ ५६ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्यां संहितायां चतुर्थस्कन्धे प्रह्लादनारायणयोर्युद्धेविष्णोरागमनवर्णनंनामनवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दशमोऽध्यायः

नरनारायणयोःकथंयुद्धबुद्धिरितिजनमेजयप्रश्नः

जनमेजय उवाच

सन्देहोऽयं महानत्रपाराशर्य कथानके। नरनारायणौ शान्तौ वैष्णवांशौ तपोधनौ
तीर्थाश्रयौ सत्त्वयुक्तौवन्याशनपरौसदा। धर्मपुत्रौमहात्मानौतापसौसत्यसंस्थितौ
कथं रागसमायुक्तौ जातौयुद्धेपरस्परम्। संग्रामंचक्रतुःकस्मात्यक्त्वातपिमनुत्तमाम्
प्रह्लादेन समं पूर्णं दिव्यवर्षशतं किल। हित्वा शान्तिसुखं युद्धं कृतवन्तौ कथं मुनी
कथं तौ चक्रतुर्युद्धं प्रह्लादेन समं मुनी। कथयस्व महाभाग, कारणं विग्रहस्य वै ॥
"कामिनी कनकं कार्यं कारणं विग्रहस्यवै"। युद्धबुद्धिःकथंजातातयोश्चतद्विरक्तयोः
तथाविधं तपस्तप्तं ताभ्यां च केन हेतुना ॥ ६ ॥
मोहार्थं सुखभोगार्थं स्वर्गार्थं वा परन्तप। कृतमत्युत्कटंताभ्यांतपः सर्वफलप्रदम्
मुनिभ्यां शान्तचित्ताभ्यां प्राप्तं किंफलमद्भुतम्। तपसापीडितोदेहःसंग्रामेणपुनःपुनः
दिव्यवर्षशतं पूर्णं श्रमेण परिपीडितौ। न राज्यार्थे धने वाऽपि न दारेषु गृहेषु च
किमर्थं तु कृतं युद्धं ताभ्यां तेन महात्मना। निरीहःपुरुषःकस्मात्प्रकुर्याद्युद्धमीदृशम्
दुःखदं सर्वथा देहे जानन्धर्मं सनातनम्। सुबुद्धिः सुखदानीह कर्माणि कुरुते सदा
न दुःखदानि धर्मज्ञ स्थितिरेषा सनातनी। धर्मपुत्रौ हरेरंशौ सर्वज्ञौ सर्वभूषितौ ॥
कृतवन्तौ कथं युद्धे दुःखं धर्मविनाशकम्।
त्यक्त्वा ततः समाधीतं सुखारामं महत्फलम् ॥ १३ ॥
संयुगं दारुणंकृष्णनैवमूर्खोऽपिवाञ्छति। श्रुतोमयाययातिस्तुच्युतःस्वर्गान्महीपतिः
अहंकारभवात्पापात्पातितः पृथिवीतले। यज्ञकृद्दानकर्ता च धार्मिकः पृथिवीपतिः
शब्दोच्चारणमात्रेण पातितो वज्रपाणिना। अहङ्कारमृते युद्धं न भवत्येव निश्चयः ॥
किं फलं तस्य युद्धस्य मुनेः पुण्यविनाशनम्।

व्यास उवाच

राजन्संसारमूलं हि त्रिविधः परिकीर्तितः ॥ १७ ॥

अहङ्कारस्तु सर्वज्ञैर्मुनिभिर्धर्मनिश्चये । स कथं मुनिना त्यक्तुं योग्यो देहभृता किल
कारणेन विना कार्यं न भवत्येवनिश्चयः । तपोदानंयथायज्ञाःसात्त्विकात्प्रभवन्तिते

राजसाद्वा महाभाग! तामसात्कलहस्तथा ।

क्रिया स्वल्पाऽपि राजेन्द्र !नाऽहङ्कारं विना क्वचित् ॥ २० ॥

शुभा वाऽप्यशुभा वाऽपि प्रभवत्यविनिश्चयः ।

अहङ्काराद्बन्धकारी नाऽन्योस्ति जगतीतले ॥ २१ ॥

तेनेदं रचितं विश्वं कथंतद्रहितं भवेत् । ब्रह्मा रुद्रस्तथाविष्णुरहङ्कारयुतास्त्वमी ॥
अन्येषां चैवकावार्ता मुनीनां वसुधाधिप । अहङ्कारावृतंविश्वंभ्रमतीदं चराचरम्
पुनर्जन्म पुनर्मृत्युः सर्वंकर्मवशाऽनुगम् । देवतिर्यङ्मनुष्याणां संसारेऽस्मिन्महीपते
रथांगवद्सर्वार्थंभ्रमणंसर्वदास्मृतम् । विष्णोरप्यवताराणांसंख्यांजानातिन. पुमान्
वितनेऽस्मिंस्तुसंसारउत्तमाधमयोनिषु । नारायणोहरिःसाक्षान्मात्स्यंवपुरुषाश्रितः
कामठं सौकरञ्चैव नारसिंहञ्च वामनम् । युगेयुगे जगन्नाथो वासुदेवो जनार्दनः ॥
अवतारानसंख्यातान्करोति विधियन्त्रितः । वैवस्वते महाराजसप्तमे भगवान्हरिः ॥
मन्वन्तरेऽवतारान्वै चक्रेताञ्छृणु तत्त्वतः । भृगुशापान्महाराज विष्णुर्देववरः प्रभुः

अवताराननेकांस्तु कृतवानखिलेश्वरः ।

राजोवाच

सन्देहोऽयं महाभाग ! हृदये मम जायते ॥ ३० ॥

भृगुणा भगवान्विष्णुः कथं शप्तः पितामह । हरिणाचमुनेस्तस्य विप्रियंकिंकृतं मुने

यद्रोषाद्ब भृगुणा शप्तो विष्णुर्देवनमस्कृतः ।

व्यास उवाच

शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि भृगोः शापस्य कारणम् ॥ ३२ ॥

पुरा कश्यपदायादो हिरण्यकशिपुर्नृपः । यदा तदाऽसुरैः सार्धं कृतं सख्यं परस्परम्

कृते सख्ये जगत्सर्वं व्याकुलं समजायत। हते तस्मिन्नृपे राजा प्रह्लादः समजायत
देवान्स पीडयामास प्रह्लादः शत्रुकर्षणः। संग्रामो ह्यभवद्घोरः शक्रप्रह्लादयोस्तदा॥
पूर्णंवर्षशतं राजँल्लोकविस्मयकारकम्। देवैर्युद्धं कृतं चोग्रं प्रह्लादस्तु पराजितः॥
निर्वेदं परमं प्राप्तो ज्ञात्वा धर्मं सनातनम्। विरोचनसुतं राज्ये प्रतिष्ठाप्य बलिं नृप
जगाम स तपस्तप्तुं पर्वते गन्धमादने। प्राप्य राज्यं बलिः श्रीमान्सुरैर्वैरं चकार ह
ततः परस्परं युद्धं जातं परमदारुणम्। ततः सुरैर्जिता दैत्या इन्द्रेणाऽमिततेजसा
विष्णुना च सहायेन राज्यभ्रष्टाः कृता नृप। ततः पराजिता दैत्याः काव्यस्य शरणं गताः
किं त्वं न कुरुषे ब्रह्मन्साहाय्यं न प्रतापवान्। स्थातुं न शक्नुमो ह्यत्र प्रविशामो रसातलम्
यदि त्वं न सहायोऽसि त्रातुं मन्त्रविदुत्तम।

व्यास उवाच

इत्युक्तः सोऽब्रवीद्दैत्यान्काव्यः कारुणिको मुनिः॥ ४०॥
मा भैष्ट धारयिष्यामि तेजसा स्वेन भो सुराः। मन्त्रैस्तथौषधीभिश्च साहाय्यं वः सदैव हि
करिष्यामि कृतोत्साहा भवन्तु विगतज्वराः।

व्यास उवाच

ततस्ते निर्भया जाता दैत्याः काव्यस्य संश्रयात्॥ ४४॥
देवैः श्रुतस्तु वृत्तान्तः सर्वश्चारमुखात्किल। तत्र सम्मन्त्र्य ते देवाः शक्रेण च परस्परम्
मन्त्रं चक्रुः सुसंविग्ना काव्यमन्त्रप्रभावतः। योद्धुं गच्छामहे तूर्णं यावन्नच्यावयन्ति वै
प्रसह्य हत्वा शिष्टांस्तु पातालं प्रापयामहे। दैत्याञ्जग्मुस्ततो देवाः सरब्धाः शस्त्रपाणयः
जग्मुस्तान्विष्णुसहिता दानवान्हरिणोदिताः।
वध्यमानास्तु ते दैत्याः सन्त्रस्ता भयपीडिताः॥ ४८॥
काव्यस्य शरणं जग्मू रक्ष रक्षेति चाऽब्रुवन्। तान्दृष्ट्वा पीडितान्दृष्ट्वा देवैर्दैत्यान्महाबलान्
मा भैष्टेति वचः प्राह मन्त्रौषधबलाद्विभुः। दृष्ट्वा काव्यं सुराः सर्वे त्यक्त्वा तान्प्रययुः किल
इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां चतुर्थस्कन्धे
भृगुशापकारणवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः॥ १०॥

एकादशोऽध्यायः

शुक्रस्यमन्त्रलाभार्थंगमनम्

व्यास उवाच

तथा गतेषु देवेषु काव्यस्तान्प्रत्युवाच ह। ब्रह्मणापूर्वमुक्तं तच्छृणुध्वं दानवोत्तमाः
विष्णुर्दैत्यवधे युक्तो हनिष्यति जनार्दनः। वाराहरूपं संस्थाय हिरण्याक्षोयथाहतः
यथा नृसिंहरूपेण हिरण्यकशिपुर्हतः। तथा सर्वान्कृतोत्साहोहनिष्यतिनचाऽन्यथा
न मे मन्त्रबलंसम्यक्प्रतिभातियथाहरिम्। जेतुं यूयं समर्थाःस्मयात्राताःसुरानथ
तस्मात्कालं प्रतीक्षध्वंकियन्तंदानवोत्तमाः। अहमद्य महादेवं मन्त्रार्थं प्रव्रजामि वै

प्राप्य मन्त्रान्महादेवादागमिष्यामि साम्प्रतम्।
युष्मभ्यं तान्प्रदास्यामि यथार्थं दानवोत्तमाः॥ ६॥

दैत्या ऊचुः

पराजिताः कथं स्थातुं पृथिव्यां मुनिसत्तम!।
शक्ता भवामोऽप्यबलास्तावत्कालं प्रतीक्षितुम्॥ ७॥

निहता बलिनःसर्वे केचिच्छिष्टाश्चदानवाः। नाद्ययुक्ताश्च संग्रामेस्थातुमेवंसुखावहाः

शुक्र उवाच

यावदहंमन्त्रविद्यामानयिष्यामिशङ्करात्। तावद्भवद्भिःस्थातव्यंतपोयुक्तैः समन्वितैः
सामदानादयःप्रोक्ता विद्वद्भिःसमयोचिताः। देशंकालंबलंधीरैर्ज्ञात्वाशक्तिबलं बुधैः
सेवाऽथ समयेकार्याशत्रूणांशुभकाम्यया। स्वशक्त्युपचयेकाले हंतव्यास्तेमनीषिभिः
तदद्य विनयं कृत्वा सामपूर्वं छलेन वै। तिष्ठध्वं स्वनिकेतेषु मदागमनकांक्षया॥
प्राप्यमन्त्रान्महादेवादागमिष्यामिदानवाः। युध्यामहेपुनर्देवान्मन्त्रमास्थायवैबलम्
इत्युक्त्वाऽथभृगुस्तेभ्यो जगामकृतनिश्चयः। महादेवंमहाराज मन्त्रार्थं मुनिसत्तमः
दानवाः प्रेषयामासुः प्रह्लादं सुरसन्निधौ। सत्यवादिनमव्यग्रं सुराणां प्रत्ययप्रदम्

प्रह्लादस्तु सुरान्प्राह प्रश्रयावनतो नृप । असुरैः सहितस्तत्र वचनं नम्रतायुतम् ॥
न्यस्तशस्त्रा वयं सर्वे निःसन्नाहास्तथैव च । देवास्तपश्चरिष्यामः संवृता वल्कलैर्युता
प्रह्लादस्यैव च श्रुत्वा सत्याऽभिव्याहृतं तु तत् । ततो देवा न्यवर्तन्त विज्वरा मुदिताश्च ते
न्यस्तशस्त्रेषु दैत्येषु विनिवृत्तास्तदा सुराः ।
विश्रब्धाः स्वगृहान्गत्वा क्रीडासक्ताः सुखस्थिताः ॥ १९ ॥
दैत्या दम्भं समालम्ब्य तापसास्तपसि युताः ।
कश्यपस्याऽऽश्रमे वासं चक्रुः काव्याऽऽगमेच्छया ॥ २० ॥
काव्यो गत्वाऽथ कैलासं महादेवं प्रणम्य च । उवाच विभुना पृष्टः किं ते कार्यमिति प्रभुः
मन्त्रानिच्छाम्यहं देव ये न सन्ति बृहस्पतौ । पराजयाय देवानामसुराणां जयाय च

व्यास उवाच

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य सर्वज्ञः शङ्करः शिवः । चिन्तयामास मनसा किं कर्तव्यमतः परम्
सुरेषु द्रोहबुद्ध्याऽसौ मन्त्रार्थमिह साम्प्रतम् ।
प्राप्तः काव्यो गुरुस्तेषां दैत्यानां विजयाय च ॥ २४ ॥
रक्षणीया मया देवा इति सञ्चिन्त्य शङ्करः । दुष्करं व्रतमत्युग्रं तमुवाच महेश्वरः ॥
पूर्णं वर्षसहस्रं तु कणधूममवाक्छिराः । यदि पास्यसि भद्रं ते ततो मन्त्रानवाप्स्यसि
इत्युक्तोऽसौ प्रणम्येशं बाढमित्यब्रवीद्वचः । व्रतं चराम्यहं देव त्वयाऽऽज्ञप्तः सुरेश्वर

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा शङ्करं काव्यश्चकार व्रतमुत्तमम् । धूमपानरतः शान्तो मन्त्रार्थं कृतनिश्चयः
ततो देवाः परिज्ञाय काव्यं व्रतरतं तदा । दैत्यान्दम्भरतांश्चैव बभूवुर्मन्त्रतत्पराः ॥
विचार्य मनसा सर्वे संग्रामायोद्यता नृप । ययुर्धृतायुधास्तत्र यत्र ते दानवोत्तमाः
तानागतान्समीक्ष्याऽथ सायुधान्दंशितांस्तथा ।
आसंस्ते भयसंविग्ना दैत्या देवान्समन्ततः ॥ ३१ ॥
उत्पेतुः सहसा ते वै सन्नद्धान्भयकर्शिताः । अब्रुवन्वचनं तथ्यं ते देवान्बलदर्पितान्
न्यस्तशस्त्रे भयं वत्ति आचार्ये व्रतमास्थिते । दत्त्वाऽभयं पुरा देवाः संप्राप्ता नो जिघांसया

सत्य च क्व गत देवा धर्मश्च श्रुतिनोदित । न्यस्तशस्त्रा नहन्तव्याभीताश्चशरणगता

देवा ऊचु

भवद्भि प्रेषित काव्यो मन्त्रार्थं कुहकेन च । तपो ज्ञातहि युष्माक तेनयुग्मामएवहि सन्ना भवन्तु युद्धाय सरब्धा शस्त्रपाणय । शत्रुश्छिद्रेणहन्तव्य एषधर्म सनातन

व्यास उवाच

तच्छ्रुत्वा वचन दैत्या विचार्य च परस्परम् । पलायनपरा सर्वे निर्गता भयविह्वला शरण दानवा जग्मुर्भीतास्ते काव्यमातरम् । दृष्ट्वा तानतिसन्तप्तानभय च ददावऽथ

काव्यमातोवाच

न भेतव्य न भेतव्य भय त्यजत दानवा । मत्सन्निधौ वर्तमानान्न भीर्भवितुमर्हति

तच्छ्रुत्वा वचन दैत्या स्थितास्तत्र गतव्यथा ।

निरायुधा ह्यसम्भ्रान्तास्तत्राऽऽश्रमवरेऽसुरा ॥ ४० ॥

देवास्ताान्विद्रुतान्वीक्ष्यदानवास्तेपश्चानुगा । अभिजग्मु प्रसह्यैतानविचार्यबलाबलम्

तत्राऽऽगता सुरा सर्वे हन्तु दैत्यान्समुद्यता ।

वारिता काव्यमात्राऽपि जघ्नुस्तानाश्रमस्थितान् ॥ ४१ ॥

हन्यमानान्सुरैर्दृष्ट्वाकाव्यमाताऽतिवेपिता । उवाचसर्वान्सनिद्रान्तपसावैकरोम्यहम् इत्युक्तवाप्रेरितानिद्रा तानागत्यपपातच । सेन्द्रानिद्रावशयाता देवामूकवदास्थिता इन्द्रनिद्राजित दृष्ट्वा दीन विष्णुरभाषत । मात्वप्रविश भद्रन्ते नयेत्वा च सुरोत्तम एवमुक्तस्ततो विष्णु प्रविवेश पुरन्दर । निर्भयो गतनिद्रश्च बभूव हरिरक्षित ॥४६ रक्षित हरिणा दृष्ट्वा शक्र तत्र गतव्ययम् । काव्यमाता तत क्रुद्धा वचन चेदमब्रवीत मघवस्त्वा भक्षयामिसविष्णुवैतपोबलात् । पश्यता सर्वदेवानामादृशा मे तपोबलम्

व्यास उवाच

इत्युक्तौ तु तया देवौ विष्णिवद्रौ योगविद्यया ।

अभिभूतौ महात्मानौ स्तब्धौ तौ सबभूवतु ॥ ४९ ॥

विस्मितास्तुतदादेवादृष्ट्वा तावतिबाधितौ । चक्रु किलकिलाशब्द ततस्तेदीनमानसा

क्रोशमानान्सुरान्दृष्ट्वा विष्णुंप्राहशचीपतिः । विशेषेणाभिभूतोऽस्मित्वत्तोहंमधुसूदन
जहोनां तरसा विष्णो यावन्नौ न दहेत्प्रभो । तपसा दर्पितां दुष्टांमा विचारयमाधव
इत्युक्तो भगवान्विष्णुःशक्रेणप्रथितेन च । चक्रंसस्मारत्वरसाघृणांत्यक्त्वाऽथमाधवः
स्मृतमात्रं तु सम्प्राप्तं चक्रं विष्णुवशानुगम् । वधार्चकरेक्रुद्धो वधार्थं शक्रनोदितः
गृहीत्वा तत्करे चक्रंशिरश्चिच्छेद रंहसा । हतां दृष्ट्वा तु तां शक्रो मुदितश्चाभवत्तदा
देवाश्चातीव सन्तुष्टा हरिं जयजयेति च । तुष्टुवुर्मुदिताः सर्वे सञ्जाता विगतज्वराः

इन्द्राविष्णू तु सञ्जातौ तत्क्षणाद्धृदयव्यथौ ।
स्त्रीवधाच्छङ्कमानौ तु भृगोः शापं दुरत्ययम् ॥ ५७ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां चतुर्थस्कन्धे
शुक्रमातुर्वधवर्णनंनामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

द्वादशोऽध्यायः

भृगुणाहरयेशापदानम्

व्यास उवाच

तं दृष्ट्वा तु वधं घोरं चुक्रोध भगवान्भृगुः । वेपमानोऽतिदुःखार्तःप्रोवाचमधुसूदनम्

भृगुरुवाच

अकृतं ते कृतं विष्णो जानन्पापंमहामते । वधोऽयं विप्रजाताया मनसा कर्तुमक्षमः

आख्यातस्त्वं सत्त्वगुणः स्मृतो ब्रह्मा च राजसः ।
तथाऽसौ तामसः शम्भुर्विपरीतं कथं स्मृतम् ॥ ३ ॥
तामसस्त्वं कथञ्जातः कृतं कर्मातिनिन्दितम् ।
अवध्या स्त्री त्वया विष्णो हता कस्मान्निरागसा ॥ ४ ॥

शपामि त्वांदुराचारंकिमन्यत्प्रकरोमिते । बिभुरोऽहंकृतःपापत्वयाऽहंशक्रकारणात्

न शपेऽहं तथा शक्रं शपे त्वां मधुसूदन । सदा छलपरोऽसि त्वं कीटयोनिदुराशयः
येचत्वां सात्त्विकंप्राहुस्तेमूर्खामुनयः किल । तामसस्त्वंदुराचारः प्रत्यक्षंमे जनार्दन
अवतारा मृत्युलोके सन्तु मच्छापसम्भवाः । प्रायो गर्भभवंदुःखंभुंक्ष्वपापाज्जनार्दन

व्यास उवाच

ततस्तेनाथशापेन नष्टे धर्मे पुनः पुनः । लोकस्य च हितार्थाय जायते मानुषेष्विह

राजोवाच

भृगुभार्याहतातत्र चक्रेणामिततेजसा । गार्हस्थ्यञ्चपुनस्तस्य कथं जातं महात्मनः

व्यास उवाच

इतिशप्त्वाहरिंरोषात्तदादायशिरस्त्वरन् । कायेसंयोज्यतरसाभृगुःप्रोवाचकार्यवित्
अद्यत्वांविष्णुनादेविहतांसञ्जीवयाम्यहम् । यदिकृत्स्नोमयाधर्मोज्ञायतेचरितोऽपिवा
तेनसत्येनजीवेत यदि सत्यं ब्रवीम्यहम् । पश्यन्तु देवताः सर्वा मम तेजोबलं महत्
अद्भिस्तांप्रोक्ष्यशीताभिर्जीवयामितपोबलात् ।सत्यं शौचं तथावेदायदिमेतपसोबलम्

व्यास उवाच

अद्भिःसम्प्रोक्षितादेवीसद्यःसञ्जीवितातदा । उत्थितापरमप्रीताभृगोर्भार्याशुचिस्मिता
ततस्तांसर्वभूतानिदृष्ट्वासुप्तोत्थितामिव । साधुसाध्वितितन्तान्तुतुष्टुवुःसर्वतोदिशम्
एवंसञ्जीवितातेन भृगुणा वरवर्णिनी । विस्मयं परमं जग्मुर्देवाःसेन्द्राविलोक्य तत्

इन्द्रः सुरानथोवाच मुनिना जीविता सती ।
काव्यस्तप्त्वा.तपो घोरं किं करिष्यति मन्त्रवित् ॥ १८ ॥

व्यास उवाच

गतानिद्रासुरेन्द्रस्यदेहेऽक्षेममभून्नृप । स्मृत्वा काव्यस्यवृत्तान्तंमन्त्रार्थमतिदारुणम्
विमृश्य मनसा शक्रो जयन्तीं स्वसुतांतदा । उवाचकन्यांचार्वङ्गींस्मितपूर्वमिदम्वचः
गच्छपुत्रि मयादत्ता काव्यायत्वंतपस्विने । समाराधय तन्वंगि मत्कृते तं वशं कुरु
उपचारैर्मुनितैस्तैः समराध्य मनः प्रियैः । भयं मे तरसा गत्वा हर तत्र वराश्रमे ॥
सा पितुर्वचनं श्रुत्वा तत्रागच्छन्मनोरमा । तमपश्यद्विशालाक्षी पिबन्तं धूममाश्रमे

तस्यदेहंसमालोक्यस्मृत्वा वाक्यंपितुस्तदा । कदलीदलमादायवीजयामासतंमुनिम्
निर्मलं शीतलं वारि समानीयसुवासितम् । पानाय कल्पयामास भक्त्यापरमयालघु
छायांवस्त्रातपत्रेण भास्करे मध्यगे सति । रचयामासतन्वंगी स्वयंधर्मे स्थितासती
फलान्यानीयदिव्यानिपक्कानिमधुराणिच । मुखोचाग्रे मुनेस्तस्यभक्ष्यार्थं विहितानिच
कुशाःप्रादेशमात्राहि हरिताःशुकसन्निभाः । दधाराग्रेऽथ पुष्पाणि नित्यकर्मसमृद्धये
निद्रार्थं कल्पयामास संस्तरं पल्लवान्वितम् ।
तस्मिन्मुनौ चाऽऽदरस्था चकार व्यजनं शनैः ॥ २८ ॥
हावभावादिकंकिञ्चिद्विकारजननंच तत् । न चकार जयन्ती सा शापभीतामुनेस्तदा
स्तुतिंचकारतन्वंगीगीर्भिस्तस्यमहात्मनः । सुभाषिण्यनुकूलाभिःप्रीतिकर्त्रीभिरप्युत
प्रबुद्धे जलमादाय दधाराचमनाय च । मनोनुकूलं सततं कुर्वन्ती व्यचरत्तदा ॥३२॥
इन्द्रोऽपिसेवकांस्तत्र प्रेषयामास चातुरः । प्रवृत्तिं ज्ञातुकामोवैमुनेस्तस्यजितात्मनः
एवं बहूनि वर्षाणि परिचर्यापराऽभवत् । निर्विकाराजितक्रोधा ब्रह्मचर्यपरा सती ॥
पूर्णे वर्षसहस्रे तु परितुष्टो महेश्वरः । वरेण छन्दयामास काव्यं प्रीतमना हरः॥३५॥

ईश्वर उवाच

यच्चकिञ्चिदपि ब्रह्मन्विद्यते भृगुनन्दन !। प्रतिपश्यसि यत्सर्वं यच्च वाच्यंनकस्यचित्
सर्वाभिभावकत्वेन भविष्यसि न संशयः । अवध्यः सर्वभूतानां प्रजेशश्च द्विजोत्तमः

व्यास उवाच

एवं दत्त्वावराञ्छम्भुस्तत्रैवान्तरधीयत । काव्यस्तामथसंवीक्ष्यजयन्तींवाक्यमब्रवीत्
काऽसि कऽस्यासि सुश्रोणि ! ब्रूहि किं ते चिकीर्षितम् ।
किमर्थमिह सम्प्राप्ता कार्यं वद वरोरु! मे ॥ ३६ ॥
किं वाञ्छसि करोम्यद्य दुष्करं चेत्सुलोचने । प्रीतोऽस्मित्वत्कृतेनाद्यवरंवरयसुव्रते
ततः सा तु मुनिं प्राह जयन्ती मुदितानना । चिकीर्षितं मे भगवंस्तपसा ज्ञातुमर्हसि

काव्य उवाच

ज्ञातं मयातथाऽपित्वंब्रूहियन्मनसेप्सितम् । करोमिसर्वथाभद्रंप्रीतोऽस्मिपरिचर्यया

जयन्त्युवाच

शक्रस्याऽहं सुताब्रह्मन्पित्रा तुभ्यं समर्पिता । जयन्तीनामतश्चाहं जयन्तावरजामुने
सकामाऽस्मि त्वयि विभो! वाञ्छितं कुरु मेऽधुना ।
रंस्ये त्वया महाभाग! धर्मतः प्रीतिपूर्वकम् ॥ ४४ ॥

शुक्र उवाच

मया सह त्वं सुश्रोणि! दशवर्षाणि भामिनि । सर्वैर्भूतैरदृश्या च रमस्वेह यदृच्छया

व्यास उवाच

एवमुक्त्वा गृहं गत्वा जयन्त्याःपाणिमुद्वहन् । तयासहावसद्देव्या दशवर्षाणिभार्गवः
अदृश्यः सर्वभूतानां मायया संवृतः प्रभुः । दैत्यास्तमागतं श्रुत्वाकृतार्थंमन्त्रसंयुतम्
अभिजग्मुर्गृहे तस्य मुदितास्ते दिदृक्षवः । नापश्यन्रममाणं ते जयन्त्यासहसंयुतम्
तदा विमनसः सर्वे जाता भग्नोद्यमाश्च ते ।
चिन्तापरातिदीनाश्च वीक्षमाणाः पुनः पुनः ॥ ४६ ॥
अदृष्ट्वा तं तु संवृत्तं प्रतिजग्मुर्यथागतम् । स्वगृहान्दैत्यवर्यास्तेचिन्ताविष्टाभयातुराः
रममाणं तथा ज्ञात्वा शक्रःप्रोवाच तं गुरुम् । बृहस्पतिमहाभागंकिंकर्तव्यमितःपरम्
गच्छाद्य दानवान्ब्रह्मन्मायया त्वं प्रलोभय ।
अस्माकं कुरु कार्यं त्वं बुद्ध्या सञ्चिन्त्य मानद !॥ ५२ ॥
तच्छ्रुत्वा वचनं काव्यं रममाणंसुसंवृतम् । ज्ञात्वातद्रूपमास्थायदैत्यान्प्रतिययौगुरुः
गत्वा तत्राऽतिभक्त्याऽसौ दानवान्समुपाह्वयत् ।
आगतास्तेऽसुराः सर्वे ददृशुः काव्यमग्रतः ॥ ५४ ॥
प्रणम्य संस्थिताः सर्वे काव्यं मत्वाऽतिमोहिताः ।
न विदुस्ते गुरोर्मायां काव्यरूपविभाविनीम् ॥ ५५ ॥
तानुवाच गुरुः काव्यरूपः प्रच्छन्नमायया । स्वागतंममयाज्यानांप्राप्तोऽहंवोहितायवै
अहं वो बोधयिष्यामिविद्यांप्राप्तामममायया । तपसा तोषितःशम्भुर्युष्मत्कल्याणहेतवे
तच्छ्रुत्वा प्रीतमनसोजातास्तेदानवोत्तमाः । कृतकार्यंगुरुं मत्वाजहृषुस्तेविमोहिताः

प्रणेमुस्ते मुदा युक्ता निरातङ्कागतव्यथाः । देवेभ्यश्च भयंत्यक्त्वातस्थुःसर्वेनिरामयाः
इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यांसंहितायां चतुर्थस्कन्धे
जयन्त्याशुक्रसहवासवर्णनंनामद्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

त्रयोदशोऽध्यायः

कथंदेवगुरुणादैत्यवञ्चनेतिविषयेजनमेजयप्रश्नः

राजोवाच

किं कृतं गुरुणा पश्चाद्भृगुरूपेण वर्तता । छलेनैव हि दैत्यानांपौरोहित्येन धीमता
गुरुः सुराणामनिशं सर्वविद्यानिधिस्तथा । सुतोऽङ्गिरसएवाऽसौसकथंछलकृन्मुनिः
धर्मशास्त्रेषु सर्वेषु सत्यं धर्मस्य कारणम् । कथितं मुनिभिर्येनपरमात्माऽपिलभ्यते
वाचस्पतिस्तथा मिथ्यावक्ताचेद्दानवान्प्रति । कःसत्यवक्तासंसारेभविष्यतिगृहाश्रमी
आहारादधिकं भोज्यं ब्रह्माण्डविभवेऽपि न । तदर्थं मुनयोमिथ्या प्रवर्तन्ते कथं मुने
शब्दप्रमाणमुच्छेदं शिष्टाभावे गतं न किम् । छलकर्मप्रवृत्ते वाऽविगीतत्वंगुरौकथम्

देवाः सत्त्वसमुद्भूता राजसा मानवाः स्मृताः ।
तिर्यंचस्तामसाः प्रोक्ता उत्पत्तौ मुनिभिः किल ॥ ७ ॥
अमराणां गुरुः सक्षान्मिथ्यावादी स्वयं यदि ।
तदा कः सत्यवक्तास्याद्राजसस्तामसः पुनः ॥ ८ ॥
क्व स्थितिस्तस्य धर्मस्य सन्देहोऽयं ममाऽऽत्मनः ।
का गतिः सर्वजन्तूनां मिथ्याभूते जगत्त्रये ॥ ९ ॥

हरिर्ब्रह्माशचीकान्तस्तथाऽन्ये सुरसत्तमाः । सर्वेछलविधौ दक्षामनुष्याणांचकाकथा
कामक्रोधाभिसन्तप्ता लोभोपहतचेतसः । छलेदक्षा सुराः सर्वे मुनयश्च तपोधनाः ॥
वसिष्ठो वामदेवश्च विश्वामित्रो गुरुस्तथा । एते पापरताः काऽत्रगतिर्धर्मस्य मानद

इन्द्रोऽग्निश्चन्द्रमा वेधाः परदाराभिलम्पटाः । आर्यत्वं भुवनेष्वेषुस्थितंकुत्रमुने वद
वचनं कस्य मन्तव्यमुपदेशधियाऽनघ । सर्वे लोभाऽभिभूतास्ते देवाश्च मुनयस्तदा

व्यास उवाच

किं विष्णुःकिं शिवो ब्रह्मामघवाकिं बृहस्पतिः । देहवान्प्रभवत्येवविकारैःसंयुतस्तदा
रागीविष्णुःशिवोरागीब्रह्माऽपिरागसंयुतः । "रागवान्किमकृत्यंवैनकरोतिनराधिप"
रागवानपि चातुर्याद्विदेह इव लक्ष्यते ॥ १६ ॥
संप्राप्ते सङ्कटे सोऽपि गुणैःसंबाध्यते किल । कारणाद्रहितं कार्यं कथं भवितुमर्हति
ब्रह्मादीनां च सर्वेषां गुणा एवहिकारणम् । पञ्चविंशत्समुद्भूतादेहास्तेषांनचान्यथा
काले मरणधर्मास्ते सन्देहः कोऽत्र ते नृप । परोपदेशेविस्पष्टंशिष्टाः सर्वेभवन्तिच
विप्लुतिर्हिविशेषेणस्वकार्येसमुपस्थिते । कामःक्रोधस्तथालोभद्रोहाऽहङ्कारमत्सराः
देहवान्कः परित्यक्तुमीशो भवतितान्पुनः । संसारोऽयं महाराज सदैवैवंविधःस्मृतः
नाऽन्यथा प्रभवत्येव शुभाशुभमयः किल । कदाचिद्भगवान्विष्णुस्तपश्चरतिदारुणम्
कदाचिद्विविधान्यज्ञान्वितनोति सुराधिपः । कदाचित्तु रमारङ्गरञ्जितः परमेश्वरः॥
रमतेकिलवैकुण्ठे तद्वशस्तरुणो विभुः । कदाचिद्दानवैः सार्धं युद्धं परमदारुणम् ॥
करोति करुणासिन्धुस्तद्बाणाऽऽपीडितो भृशम् ।
कदाचिज्जयमाप्नोति दैवात्सोऽपि पराजयम् ॥ २५ ॥
सुखदुःखाऽभिभूतोऽसौ भवत्येव न संशयः । शेषे शेते कदाचिद्वैयोगनिद्रासमावृतः
काले जागर्तिविश्वात्मास्वभावप्रतिबोधितः । शर्वोब्रह्माहरिश्चेतइन्द्राद्यायेसुरास्तथा
मुनयश्च विनिर्माणैःस्वायुषोविचरन्तिहि । निशाऽवसानेसञ्जातेजगत्स्थावरजङ्गमम्
म्रियते नाऽत्र सन्देहो नृप! किञ्चित्कदाऽपि च ।
स्वायुषोऽन्ते पद्मजाद्याः क्षयमृच्छन्ति पार्थिव !॥ २६ ॥
प्रभवन्ति पुनर्विष्णुहरशक्रादयः सुराः । तस्मात्कामादिकान्भावान्देहवान्प्रतिपद्यते
नाऽत्रतेविस्मयःकार्यःकदाचिदपिपार्थिव । संसारोऽयंतुसंदिग्धःकामक्रोधादिभिर्नृप
दुर्लभस्तद्विनिर्मुक्तः पुरुषः परमार्थवित् । यो बिभर्तीह संसारे सदाराश्च करोत्यपि

विमुक्तः सर्वसङ्गेभ्यो विचरत्यविशङ्कितः । तस्मात्तुबृहस्पतेर्भार्याशशिनालंभितापुनः
गुरुणा लंभिताभार्या तथाभ्रातुर्यवीयसः । एवंसंसारचक्रेऽस्मिन्रागलोभादिभिर्वृतः
गार्हस्थ्यं चसमास्थायकथंमुक्तोभवेन्नरः । तस्मात्सर्वप्रयत्नेनहित्वासंसारसारताम्
आराधयेन्महेशानीं सच्चिदानन्दरूपिणीम् । तन्मायागुणतश्छन्नं जगदेतच्चराचरम् ॥
भ्रमत्युन्मत्तवत्सर्वं मदिरामत्तवन्नृप । तस्या आराधनेनैव गुणान्सर्वान्विमृद्य च ॥
मुक्तिं भजेतमतिमान्नान्यःपन्थास्त्वितःपरः । आराधितामहेशानीनयावत्कुरुतेकृपाम्

तावद्भवेत्सुखं कस्मात्कोऽन्योऽस्ति दयया युतः ।
करुणासागरामेतां भजेत्तस्मादमायया ॥ ३६ ॥

यस्यास्तु भजनेनैवजीवन्मुक्तत्वमश्नुते । मानुष्यं दुर्लभं प्राप्य सेविता न महेश्वरी॥
निःश्रेणिकाग्रात्पतिता अध इत्येवविद्महे । अहङ्कारावृतंविश्वं गुणत्रयसमन्वितम्
असत्येनापि संबद्धं मुच्यते कथमन्यथा । हित्वा सर्वंततः सर्वैः संसेव्याभुवनेश्वरी

राजोवाच

किं कृतं गुरुणा तत्र काव्यरूपधरेण च । कदाशुक्रः समायातस्तन्मे ब्रूहि पितामह

व्यास उवाच

शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि यत्कृतं गुरुणा तदा । कृत्वा काव्यस्वरूपंचप्रच्छन्नेनमहात्मना

गुरुणा बोधिता दैत्या मत्वा काव्यं स्वकं गुरुम् ।
विश्वासं परमं कृत्वा बभूवुस्तन्मयास्तदा ॥ ४५ ॥

विद्यार्थंशरणंप्राप्ताभृगुंमत्वाऽतिमोहिताः । गुरुणाविप्रलब्धास्तेलोभात्कोवानमुह्यति
दशवर्षात्मकेकालेसम्पूर्णसमयेतदा । जयन्त्यासहक्रीडित्वाकाव्योयाज्यानचिन्तयत्

आशया मम मार्गं ते पश्यन्तः संस्थिताः किल ।
गत्वा तान्वै प्रपश्येऽहं याज्यानतिभयातुरान् ॥ ४८ ॥

माद्देवेभ्यो भयं तेषांमद्भक्तानां भवेदिति । सञ्चिन्त्यबुद्धिमास्थायजयन्तींप्रत्युवाचह
देवानेवोपसंयान्ति पुत्रा मे चारुलोचने । समयस्तेऽद्यसम्पूर्णोजातोऽयं दशवार्षिकः

तस्माद्गच्छाम्यहं देवि! द्रष्टुं याज्यान्सुमध्यमे !।

पुनरेवाऽऽगमिष्यामि तवान्तिकमनुव्रतः ॥ ५१ ॥
तथेति तामुवाचाऽथजयन्ती धर्मवित्तमा। यथेष्टं गच्छ धर्मज्ञ न ते धर्मं विलोपये॥
तच्छ्रुत्वा वचनं काव्यो जगामत्वरितस्ततः। अपश्यद्दानवानांसपार्श्वेवाचस्पतिंतदा।
छद्मरूपंधरं सौम्यंबोधयन्तं छलेन तान्। जैनं धर्मं कृतं स्वेन यज्ञनिन्दापरं तथा॥
भो देवरिपवः सत्यं ब्रवीमि भवतां हितम्। अहिंसापरमोधर्मोऽहन्तव्याह्याततायिनः
द्विजैर्भोगरतैर्वेदे दर्शितं हिंसनं पशोः। जिह्वास्वादपरैः काममहिंसैव परा मता॥
एवं विधानि वाक्यानि वेदशास्त्रपराणि च।
ब्रुवाणं गुरुमाकर्ण्य विस्मितोऽसौ भृगोः सुतः ॥ ५७ ॥
चिन्तयामास मनसाममद्वेष्योगुरुःकिल। वञ्चिताःकिलधूर्तेनयाज्या मे नाऽत्रसंशयः
धिग्लोभं पापबीजं वै नरकद्वारमूर्जितम्। गुरुरप्यनृतं ब्रूतेप्रेरितो येन पाप्मना॥
प्रमाणं वचनं यस्य सोऽपिपाखण्डधारकः। गुरुः सुराणांसर्वेषां धर्मशास्त्रप्रवर्तकः
किं किंनलभते लोभान्मलिनीकृतमानसः। अन्योऽपिगुरुरप्येवंजातःपाखण्डपण्डितः
शैलूषचेष्टितं सर्वं परिगृह्य द्विजोत्तमः। वञ्चयत्यतिसंमूढान्दैत्यान्याज्यान्ममाप्यसौ

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां चतुर्थस्कन्धे
शुक्ररूपेणगुरुणादैत्यवञ्चनावर्णनंनामत्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

चतुर्दशोऽध्यायः

दैत्यानांसमीपेशुक्रगमनम् तान्प्रतिशुक्रस्यशापः

व्यास उवाच

इति सञ्चिन्त्यमनसा तानुवाच हसन्निव। वञ्चितामत्स्वरूपेण दैत्याःकिंगुरुणाकिल
अहं काव्योगुरुश्चाऽयं देवकार्यप्रसाधकः। अनेन वञ्चिता यूयंमद्याज्यानाऽत्रसंशयः
मा श्रद्धध्वं वचोऽस्याऽऽर्या दाम्भिकोऽयं मदाकृतिः।

अनुगच्छत मां याज्यास्त्यजतैनं बृहस्पतिम् ॥ २ ॥

इत्याकर्ण्यवचस्तस्यदृष्ट्वातौसदृशौपुनः । विस्मयंपरमंजग्मुःकाव्योऽयमितिनिश्चिताः
सतान्वीक्ष्य सुसम्भ्रान्तान्गुरुर्वाक्यमुवाच ह । गुरुर्वोवञ्चयत्येवमद्रूपोऽयं बृहस्पतिः
प्राप्तो वञ्चयितुं युष्मान्देवकार्यार्थसिद्धये । माविश्वासंवचस्यस्यकुरुध्वंदैत्यसत्तमाः

प्राप्ता विद्या मया शम्भोर्युष्मानध्यापयामि ताम् ।
देवेभ्यो विजयं नूनं करिष्यामि न संशयः ॥ ७ ॥

इतिश्रुत्वागुरोर्वाक्यंकाव्यरूपधरस्यते । विश्वासंपरमंजग्मुःकाव्योऽयमितिनिश्चयात्
काव्येन बहुधा तत्र बोधिताः किलदानवाः । बुबुधुर्नगुरोर्मायामोहिताःकालपर्ययात्
एवं ते निश्चयं कृत्वा ततोभार्गवमब्रुवन् । अयं गुरुर्नोधर्मात्मा बुद्धिदश्च हिते रतः ॥
दशवर्षाणि सततमयं नःशास्तिभार्गवः । गच्छ त्वंकुहकोभासिनाऽस्माकंगुरुरप्युत

इत्युक्त्वा भार्गवं मूढा निर्भर्त्स्य च पुनः पुनः ।
जगृहुस्तं गुरुं प्रीत्या प्रणिपत्याऽभिवाद्य च ॥ १२ ॥
काव्यस्तु तन्मयान्दृष्ट्वा चुकोपाऽथ शशाप च ।
दैत्यान्विबोधितान्मत्वा गुरुणा चातिवञ्चितान् ॥ १३ ॥

यस्मान्मया बोधिता वै गृह्णीयुर्न च मे वचः । तस्मात्प्रनष्टसंज्ञावैपराभवमवाप्स्यथ
मद्वञ्चाफलं कामं स्वल्पे कालेह्यवाप्स्यथ । तदाऽस्यकपटंसर्वंपरिज्ञानं भविष्यति

व्यास उवाच

इत्युक्त्वाऽसौ जगामाशु भार्गवःक्रोधसंयुतः । बृहस्पतिर्मुदंप्राप्यतस्थौतत्रसमाहितः
ततः शप्तान्गुरुर्ज्ञात्वादैत्यांस्तान्भार्गवेणहि । जगामतरसात्यक्त्वास्वरूपंस्वंविधायच
शक्रोवाच तदा शक्रं कृतं कार्यंमयाध्रुवम् । शप्ताःशुक्रेणतेदैत्यामयात्यक्ताःपुनः किल
निराधाराः कृतानूनं यतध्वं सुरसत्तमाः । संग्रामाय महाभाग! शापदग्धामयाकृताः
इति श्रुत्वा गुरोर्वाक्यं मघवामुदमाप्तवान् । जहृषुश्चसुराः सर्वेप्रतिपूज्य बृहस्पतिम्

संग्रामाय मतिं चक्रुः संविचार्य मिथः पुनः ।
निर्ययुर्मिलिता सर्वे दानवाऽभिमुखाः सुराः ॥ २१ ॥

सुरान्समुद्यताञ्ज्ञात्वा कृतोद्योगान्महाबलान् ।
अन्तर्हितं गुरुञ्चैव बभूवुश्चिन्तयाऽन्विताः ॥ २२ ॥

परस्परमथोचुस्तेमोहितास्तस्यमायया । सम्प्रसाद्योमहात्माचयातोऽसौरुष्टमानसः
वञ्चयित्वागतःपापोगुरुःकपटपण्डितः । भ्रातृशीलम्भन प्रायोमलिनोऽन्तर्बहिःशुचिः
किं कुर्मः क्व च गच्छामःकथंकाव्यंप्रकोपितम् । कुर्वीमहिसहायार्थंप्रसन्नंहृष्टमानसम्
इति सञ्चिन्त्य ते सर्वेमिलितामयकम्पिताः । प्रह्लादंपुरतः कृत्वा जग्मुस्तेभार्गवं पुनः
प्रणेमुश्चरणौ तस्य मुनेर्मौनभृतस्तदा । भार्गवस्तानुवाचाऽथ रोषसंरक्तलोचनः ॥२७
मया प्रबोधिता यूयं मोहिता गुरुमायया । न गृहीतं वचोयोग्यंतदायाज्याहितंशुचि
तदाऽवगणितश्चाहं भवद्भिस्तद्वशं गतैः । प्राप्तं नूनं मदोन्मत्तैर्ममाऽवमानजं फलम्
तत्र गच्छत सद्भ्रष्टा यत्राऽसौ कपटाकृतिः । वञ्चकःसुरकार्यार्थीनाहंतद्वद्विवञ्चकः

व्यास उवाच

एवं ब्रुवन्तं शुक्रं तु वाक्यंसंदिग्धयागिरा । प्रह्लादस्तं तदोवाच गृहीत्वाचरणौ ततः

प्रह्लाद उवाच

भार्गवाऽद्य समायातान्याज्यानस्मांस्तथाऽऽतुरान् ।
त्यक्तुं नाऽर्हसि सर्वज्ञ ! त्वद्धितांस्तनयान्हि नः ॥ ३२ ॥

गते त्वयिनु मन्त्रार्थं शैलूषेण दुरात्मना । त्वद्वेषमधुराऽऽलापैर्वयं तेन प्रवञ्चिताः
अज्ञानकृतदोषेण नैवकुप्यति शान्तिमान् । सर्वज्ञस्त्वं विजानासिचित्तंनःप्रवणंत्वयि
ज्ञात्वानस्तपसा भावं त्यजकोपं महामते । ब्रुवन्ति मुनयः सर्वे क्षणकोपाहिसाधवः
जलं स्वभावतः शीतंवह्न्यातपसमागमात् । भवत्युष्णवियोगाच्चशीतत्वमनुगच्छति
क्रोधश्चाण्डालरूपोऽपि त्यक्तव्यः सर्वथा बुधैः । तस्माद्रोषंपरित्यज्यप्रसादंकुरु सुव्रत

यदि न त्यजसि क्रोधं त्यजस्यस्मान्सुदुःखितान् ।
त्वया त्यक्ता महाभाग ! गमिष्यामो रसातलम् ॥ ३८ ॥

व्यास उवाच

प्रह्लादस्य वचः श्रुत्वा भार्गवोज्ञानचक्षुषा । विलोक्यसुमनाभूत्वातानुवाच हसन्निव

न भेतव्यं न गन्तव्यंदानवाबारसातलम् । रक्षयिष्यामिवोयाज्यान्मन्त्रैरवितथैःकिल
हितं सत्यं ब्रवीम्यद्य श्रृणुध्वंतत्सुनिश्चयम् । वचनं मम धर्मज्ञाःश्रुतं यद्ब्रह्मणः पुरा
अवश्यम्भाविनोभावाप्रभवन्तिशुभाऽशुभाः। दैवंनवाऽन्यथाकर्तुंक्षमःकोऽपिधरातले

अद्य मन्दबला यूयं कालयोगादसंशयम् ।

देवैर्जिताः सकृद्वाऽपि पातालं प्रतिपत्स्यथ ॥ ४३ ॥

प्राप्तः पर्यायकालो वै इतिब्रह्माऽभ्यभाषत । भुक्तं राज्यंभवद्भिश्चपूर्णसर्वसमृद्धिमत्
युगानि दशपूर्णानि देवानाक्रम्य मूर्धनि । दैवयोगाच्चयुष्माभिर्भुक्तंत्रैलोक्यमूर्जितम्

सावर्णिके मनौ राज्यं पुनस्तत्तु भविष्यति ।

पौत्रस्त्रैलोक्यविजयी राज्यं प्राप्स्यसि ते बलिः ॥ ४६ ॥

यदा वामनरूपेणहृतं देवेन विष्णुना । तदैव च भवत्पौत्रः प्रोक्तो देवेन जिष्णुना ॥
हृतं येन बले राज्यं देववाञ्छार्थसिद्धये । त्वमिन्द्रो भविताचाग्रेस्थितेसावर्णिकेमनौ

भार्गव उवाच

इत्युक्तो हरिणापौत्रस्तव प्रह्लाद साम्प्रतम् । अदृश्यः सर्वभूतानां गुप्तश्चरति भीतवत्
एकदा वासवेनासौ बलिगर्दभरूपभाक् । शून्येगृहेस्थितः कामं भयभीतः शतक्रतोः
पृष्टश्च बहुधा तेन वासवेन बलिस्तदा । किमर्थं गार्दभं रूपं कृतवान्दैत्यपुङ्गव !॥
भोक्ता त्वं सर्वलोकस्य दैत्यानांच प्रशासिता । "नलज्जाखररूपेण तव राक्षससत्तम

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा दैत्यराजो बलिस्तदा ॥ ५२ ॥

प्रोवाच वचनं शक्रं कोऽत्रशोकःशतक्रतो !। यथाविष्णुर्महातेजामत्स्यकच्छपताङ्गतः
तथाऽहं खररूपेण संस्थितः कालयोगतः । यथात्वंकमलेलीनःसंस्थितो ब्रह्महत्यया
पीडितश्च तथा ह्यद्य स्थितोऽहंखररूपधृक् । दैवाधीनस्यकिंदुःखंकिंसुखंपाकशासन

कालः करोति वै नूनं यदिच्छति यथा तथा ।

भार्गव उवाच

इति तौ बलिदेवेशौ कृत्वा संविदमुत्तमाम् ॥ ५६ ॥

प्रबोधं प्रापतुः कामं यथास्थानं च जग्मतुः । इत्येतत्ते समाख्यातामयादैवबलिष्ठिता

देवाधीनं जगत्सर्वं सदेवासुरमानुषम् ।
इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां चतुर्थस्कन्धे
प्रह्लादेनशुक्रकोपसान्त्वनंनामचतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

पञ्चदशोऽध्यायः

इन्द्रकृताभगवतीस्तुतिः

व्यास उवाच

इति तस्य वचः श्रुत्वा भार्गवस्य महात्मनः । प्रह्लादस्तुसुसंहृष्टो बभूव नृपनन्दनः
ज्ञात्वा दैवं बलिष्ठं च प्रह्लादस्तानुवाच ह । कृतेऽपि युद्धेनजयोभविष्यति कदाचन
तदा ते जयिनः प्रोचुर्दानवा मदगर्विताः । संग्रामस्तु प्रकर्तव्यो दैवं किं न विदामहे
निरुद्यमानां दैवंहि प्रधानमसुराधिप । केन दृष्टं क वा दृष्टं कीदृशं केन निर्मितम् ॥
तस्माद्युद्धं करिष्यामो बलमास्थय साम्प्रतम् ।
भवाऽग्रे दैत्यवर्य !त्वं सर्वज्ञोऽसि महामते !॥ ५ ॥
इत्युक्तस्तैस्तदा राजन्प्रह्लादः प्रबलारिहा । सेनानीश्च तदा भूत्वादेवान्युद्धेसमाह्वयत्
तेऽपि तत्रासुरान्दृष्ट्वासंग्रामेसमुपस्थितान् । सर्वसंभृतसंभारादेवास्तान्समयोधयन्
संग्रामस्तु तदाघोरः शक्रप्रह्लादयोर्भवत् । पूर्णं वर्षशतं तत्रमुनीनां विस्मयावहः ॥
वर्तमाने महायुद्धे शुक्रेण प्रतिपालिताः । जयमापुस्तदादैत्याः प्रह्लादप्रमुखा नृप ॥
तदैवेन्द्रो गुरोर्वाक्यात्सर्वदुःखविनाशिनीम् ।
सस्मार मनसा देवीं मुक्तिदां परमां शिवाम् ॥ १० ॥

इन्द्र उवाच

जयदेवि! महामाये! शूलधारिणि चाम्बिके! । शङ्खचक्रगदापद्मखड्गहस्तेऽभयप्रदे ॥ ११
नमस्ते भुवनेशानि! शक्तिदर्शननायिके । दशतत्त्वात्मिके ! मातर्महाबिन्दुस्वरूपिणि!

महाकुण्डलिनीरूपे! सच्चिदानन्दरूपिणि !। प्राणाग्निहोत्रविद्ये तेजमोदीपशिखात्मिके
पञ्चकोशान्तरगते पुच्छब्रह्मस्वरूपिणि। आनन्दकलिके मातः सर्वोपनिषदर्चिते ॥

मातः! प्रसीद सुमुखी भव हीनसत्त्वांस्त्रायस्व नो जननि! दैत्यपराजितान्वै।
त्वं देवि! नः शरणदा भुवने प्रमाणा शक्ताऽसिदु खशमनेऽखिलवीर्ययुक्ते ॥

ध्यायन्ति येऽपि सुखिनो नितरां भवन्ति
दुःखान्विता विगतशोकभयास्तथाऽन्ये।
मोक्षार्थिनो विगतमानविमुक्तसङ्गाः संसारवारिधिजलं प्रतरन्ति सन्तः ॥

त्वं देवि! विश्वजननि प्रथितप्रभावा संरक्षणार्थमुदिताऽऽर्तिहरप्रतापा।
संहर्तुमेतदखिलं किल कालरूपा को वेत्ति तेऽम्ब चरितं ननु मन्दबुद्धिः॥१७

ब्रह्मा हरश्च हरिदश्वरथो हरिश्च इन्द्रो यमोऽथवरुणोऽग्निसमीरणौ च।
ज्ञातुं क्षमा न मुनयोऽपि महानुभावा यस्याःप्रभावमतुलं निगमाऽऽगमाश्च

धन्यास्त एव तव भक्तिपरा महान्तः संसारदुःखरहिताः सुखसिन्धुमग्नाः।
ये भक्तिभावरहिता न कदाऽपि दुःखांभोधि जनिक्षयतरङ्गमुमे तरन्ति ॥

ये वीज्यमानाः सितचामरैश्च क्रीडन्ति धन्याः शिविकाधिरूढाः।
तैः पूजिता त्वं किल पूर्वदेहे नानोपहारैरिति चिन्तयामि ॥ २० ॥

ये पूज्यमाना वरवारणस्था विलासिनीवृन्दविलासयुक्ताः।
सामन्तकैश्चोपनतैर्व्रजन्ति मन्ये हि तैस्त्वं किल पूजिताऽसि ॥ २१ ॥

व्यास उवाच

एवं स्तुता मघवता देवीविश्वेश्वरी यदा। प्रादुर्बभूव तरसा सिंहारूढा चतुर्भुजा ॥
शङ्खचक्रगदापद्मान्बिभ्रती चारुलोचना। रक्ताम्बरधरा देवी दिव्यमाल्यविभूषणा ॥
तानुवाच सुरान्देवी प्रसन्नवदनागिरा। भयं त्यजन्तुभोदेवाःशंविधास्येकिलाऽधुना

इत्युक्त्वा सा तदा देवी सिंहाऽऽरूढाऽतिसुन्दरी।
जगाम तरसा तत्र यत्र दैत्या मदान्विताः ॥ २५।

प्रह्लादप्रमुखाः सर्वे दृष्ट्वादेवी पुरःस्थिताम्। ऊचुःपरस्परं भीताःकिंकर्तव्यमितस्तदा

देवं नारायणं चाऽत्र संप्राप्ता चण्डिका किल ।
महिषान्तकरी नूनं चण्डमुण्डविनाशिनी ॥ २७ ॥

न हनिष्यति नः सर्वानऽम्बिकानाऽत्रसंशयः । वक्रदृष्ट्यायया पूर्वंनिहतौ मधुकैटभौ
एवंचिन्ताऽतुरान्वीक्ष्यप्रह्लादस्तानुवाचह । योद्धव्यंनाऽथगन्तव्यंपलाय्यदानवोत्तमाः
नमुचिस्तानुवाचाऽथ पलायनपरानिह । हनिष्यतिजगन्माता रुषिता किल हेतिभिः
तथा कुरु महाभाग! यथा दुःखं न जायते । व्रजामोऽद्यैव पातालंतांस्तुत्वातदनुज्ञया

प्रह्लाद उवाच

स्तौमि देवीं महामायां सृष्टिस्थित्यन्तकारिणीम् ।
सर्वेषां जननीं शक्तिं भक्तानामभयङ्करीम् ॥ ३२ ॥

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा विष्णुभक्तस्तु प्रह्लादः परमार्थवित् । तुष्टाव जगतांधात्रींकृताञ्जलिपुटस्तदा
माल्यसर्पवदाभाति यस्यां सर्वं चराचरम् । सर्वाधिष्ठानरूपायै तस्यै ह्रींमूर्तये नमः
त्वत्तः सर्वमिदं विश्वं स्थावरंजङ्गमंतथा । अन्येनिमित्तमात्रास्तेकर्तारस्तवनिर्मिताः
नमो देवि! महामाये सर्वेषां जननी स्मृता । को भेदस्तव देवेषु दैत्येषु स्वकृतेषु च
मातुः पुत्रेषु कोभेदोऽप्यशुभेषु शुभेषु च । तथैव देवेष्वस्मासु नकर्तव्यस्त्वयाऽधुना
यादृशास्तादृशा मातः सुतास्तेदानवाः किल । यतस्त्वंविश्वजननीपुराणेषुप्रकीर्तिता
तेऽपि स्वार्थपरा नूनं तथैव वयमप्युत । नान्तरं दैत्यसुरयोर्भेदोऽयंमोहसम्भवः ॥
धनदारादिभोगेषु वयं सक्ता दिवानिशम् । तथैव देवा देवेशि! कोभेदोऽसुरदेवयोः॥
तेऽपिकश्यपदायादावयंतत्सम्भवा किल । कुतोविरोधसम्भूतिर्जातामातस्तवाऽधुना
न तथाविहितंमातस्त्वयि सर्वसमुद्भवे । साम्प्रतैव त्वयास्थाप्यादेवेष्वस्मासुचैवहि
गुणव्यतिकरात्सर्वे समुत्पन्नाःसुरासुराः । गुणान्वितास्भवेयुस्तेकथं देह भृतोऽमराः
कामः क्रोधश्चलोभश्चसर्वदेहेषुसंस्थिताः । वर्तन्तेसर्वदातस्मात्कोऽविरोधीभवेज्जनः

त्वया मिथो विरोधोऽयं कल्पितः किल कौतुकात् ।
मन्यामहे विभेदेन नूनं युद्धदिदृक्षया ॥ ४५ ॥

अन्यथाखलुभ्रातृणाविरोध कीदृशोऽनघे। त्वयेमेच्छसिचामुण्डेवीक्षितुकलह किल
जानामिधर्मं धर्मज्ञेवेद्मिचाऽहशतक्रतुम्। तथाऽपिकलहोऽस्माकभोगार्थन्देविसर्वदा

एक कोऽपि न शास्ताऽस्ति ससारे त्वा विनाऽम्बिके।

स्पृहावतस्तु क कर्तु क्षमते वचन बुध ॥ ४८ ॥

देवासुरैश्च सिन्धुर्मथित समये कचित्। विष्णुनाविहितो भेद सुधारत्नच्छलेन वै

त्वयाऽसौ कल्पित शौरि पालकत्वे जगद्गुरु।

तेन लक्ष्मी स्वय लोभाद् गृहाताऽमरसुन्दरी ॥ ५० ॥

ऐरावणस्तथेन्द्रेण पारिजातोऽथकामधुक्। उच्चै श्रवा सुरै सर्वंगृहीतवैष्णवेच्छया
अनयताद्धशङ्कत्वा जातादेवास्तु साधव। अन्यायिन सुरानून पश्यत्व धर्मलक्षणम्

सस्थापिता सुरा नून विष्णुनाऽहुमानिना ॥ ५२ ॥

नून दैत्या पराभूतन्पश्य त्व धर्मलक्षणम्।

क धर्म कीदृशो धम क कार्यं क च साधुता ॥ ५३ ॥

कथयामिचकस्याऽग्रेसिद्धमैमासिकमतम्। तार्किकायुक्तिवादज्ञाविधिज्ञावेदवादका
उक्ता सकृत् कविश्व विवदन्ते जडात्मका। कताभवति वेदस्मिन्ससारे वितते किल
विरोध काद्गशास्त्रश्चैककर्मणि वै मिथ। वेदेनैकमति कस्माच्छास्त्रष्वपितथापुन
नैकवाक्य वचस्तेषामपि वेदविदा पुन। यत स्वार्थपरसर्वंजगत्स्थावरजङ्गमम् ॥
नि स्पृह कोऽपिससारेनभवेन्नभविष्यति। शशिनाऽथगुरोर्भार्याहृताज्ञात्वा बलादपि
गौतमस्यतथेन्द्रेण जानताधर्मनिश्चयम्। गुरुणाऽनुजभायाच भुक्ता गर्भवती बलात्
शप्तो गभगतोऽबाल कृतश्चान्धस्तथापुन। विष्णुनाचशिरश्छिन्नराहोश्चक्रेणवैबलात्
अपराधविनाकाम तदासत्ववताऽम्बिके। पौत्रो धमवता शूर सत्यव्रतपरायण ॥
यज्वा दानपति शात सर्वज्ञ सवपूजक। कृत्वाऽथ वामन रूप हरिणाछलवेदिना
वञ्चितोऽसौबलि सवहृतराज्यपुराकिल। तथाऽपिदेवान्धर्मस्थान्प्रवदन्तिमनीषिण
वदन्तिचाटुवादाश्च धर्मवादाश्रयगता। एव ज्ञात्वा जगन्मातर्यथेच्छसि तथा कुरु

शरणा दानवा सर्वे जहि वा रक्ष वा पुन।

श्रीदेव्युवाच

सर्वे गच्छत पातालं तत्र वासं यथेप्सितम् ॥ ६५ ॥
कुरुध्वं दानवाःसर्वे निर्भयागतमन्यवः । कालःप्रतीक्ष्योयुष्माभिःकारणंसशुभेऽशुभे
सुनिर्वेदपराणां हि सुखंसर्वत्र सर्वदा । त्रैलोक्यस्य चराज्येऽपिनसुखंलोभचेतसाम्
कृतेऽपिनसुखंपूर्णंसंस्पृहाणांफलैरपि । तस्मात्त्यक्त्वा महीमेतां प्रयांत्वद्यमहीतलम्
ममाऽऽज्ञां पुरतः कृत्वा सर्वे विगतकल्मषाः ।

व्यास उवाच

तच्छ्रुत्वा वचनं देव्यास्तथेत्युक्त्वा रसातलम् ॥ ६६ ॥
प्रणम्यदानवाःसर्वे गताःशक्त्याऽभिरक्षिताः । अन्तर्दधेततोदेवी देवाःस्वभुवनंगताः
त्यक्त्वावैरंस्थिताः सर्वे ते तदा देवदानवाः । एतदाख्यानमखिलंयःशृणोतिवदत्यथ
सर्वदुःखविनिर्मुक्तः प्रयाति पदमुत्तमम् ॥ ७१ ॥
इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां चतुर्थस्कन्धे
देवीकथनेनदानवानांरसातलम्प्रतिगमनंनामपञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

षोडशोऽध्यायः

हरेर्नानावताराणाम्वर्णनम्

जनमेजय उवाच

भृगुशापान्मुनिश्रेष्ठ हरेरद्भुतकर्मणः । अवताराः कथं जाताःकस्मिन्मन्वन्तरे विभो
विस्तराद्वद धर्मज्ञ अवतारकथांहरेः । पापनाशकरीं ब्रह्मञ्छ्रुतां सर्वसुखावहाम् ॥२॥

व्यास उवाच

शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि अवतारान्हरेर्यथा । यस्मिन्मन्वन्तरेजाता युगेयस्मिन्नराधिप
येन रूपेण यत्कार्यं कृतं नारायणेन वै । तत्सर्वं नृप! वक्ष्यामि संक्षेपेण तवाऽधुना॥

धर्मस्यैवाऽवतारोऽभूद्यान्तुवैमनुसम्भवे । नरनारायणौ धर्मपुत्रौ ख्यातौ महीतले ॥
अथ वैवस्वताख्येऽस्मिन्द्वितीयेतु युगेपुनः । दत्तात्रेयोऽवतारोऽत्रेःपुत्रत्वमगमद्धरिः
ब्रह्माविष्णुस्तथा रुद्रस्त्रयोऽमीदेवसत्तमाः । पुत्रत्वमगमन्देवास्तस्याऽत्रेर्भार्ययावृताः
अनसूयाऽत्रिपत्नीच सतीनामुत्तमा सती । यया सम्प्रार्थिता देवाः पुत्रत्वमगमंस्त्रयः
ब्रह्माऽभूत्सोमरूपस्तु दत्तात्रेयोहरिःस्वयम् । दुर्वासा रुद्ररूपोऽसौ पुत्रत्वंते प्रपेदिरे
नृसिंहस्यावतारस्तु देवकार्यार्थसिद्धये । चतुर्थे तु युगे जातो द्विधारूपो मनोहरः ॥
हिरण्यकशिपोः सम्यग्वधाय भगवान्हरिः । चक्रेरूपं नारसिंहं देवानां विस्मयप्रदम्
बलेर्नियमनार्थाय श्रेष्ठे त्रेतायुगे तथा । चकार रूपं भगवान्वामनं कश्यपान्मुनेः ॥
छलयित्वामखेभूपंराज्यं तस्य जहार ह । पाताले स्थापयामास बलिं वामनरूपधृक्
युगे चैकोनविंशेऽथ त्रेताख्ये भगवान्हरिः । जमदग्निसुतोजातो रामोनाम महाबलः

क्षत्रियान्तकरः श्रीमान्सत्यवादी जितेन्द्रियः ।
दत्तवान्मेदिनीं कृत्स्नां कश्यपाय महात्मने ॥ १५ ॥

यो वै परशुरामाख्यो हरेरद्भुतकर्मणः । अवतारस्तु राजेन्द्र! कथितः पापनाशनः ॥
त्रेतायुगे रघोर्वंशे रामोदशरथात्मजः । नरनारायणांशौ द्वौ जातौ भुवि महाबलौ
अष्टाविंशेयुगेशस्तौद्वापरेऽर्जुनशौरिणौ । धराभाराऽवतारार्थंजातौ कृष्णार्जुनौभुवि
कृतवन्तौ महायुद्धं कुरुक्षेत्रेऽतिदारुणम् । एवं युगे युगे राजन्नवतारा हरेः किल ॥
भवन्ति बहवः कामं प्रकृतेरनुरूपतः । प्रकृतेरखिलं सर्वं वशमेतज्जगत्त्रयम् ॥ २० ॥
यथेच्छति तथैवेयं भ्रामयत्यनिशंजगत् । पुरुषस्य प्रियार्थंसा रचयत्यखिलञ्जगत् ॥
सृष्ट्वा पुराहि भगवाञ्जगदेनच्चराचरम् । सर्वादिः सर्वगश्चासौ दुर्ज्ञेयः परमोऽव्ययः ॥

निरालम्बो निराकारो निःस्पृहश्च परात्परः ।
उपाधितस्त्रिधा भाति यस्याः सा प्रकृतिः परा ॥ २३ ॥
उत्पत्तिः कालयोगात्सा भिन्ना भाति शिवा तदा ।
सा विश्वं कुरुते कामं सा पालयति कामदा ॥ २४ ॥
कल्पान्ते संहरत्येव त्रिरूपा विश्वमोहिनी ।

तया युक्तोऽसृजद्ब्रह्मा विष्णुः पाति तयाऽन्वितः ॥ २५ ॥
रुद्रःसंहरतेकामंतयासंमिलितः शिवः । साचैवोत्पाद्य काकुत्स्थं पुरा वै नृपसत्तमम्
कुत्रचित्स्थापयामास दानवानांजयायच । एवमस्मिन्भ्रसंसारेसुखदुःखान्विताःकिल
भवन्ति प्राणिनः सर्वे विधितन्त्रनियन्त्रिताः ॥ २८ ॥
इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां चतुर्थस्कन्धे
हरेर्नानावताराणांवर्णनंनामषोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

सप्तदशोऽध्यायः

सुराङ्गनानाम्प्रतिनारायणवरदानम्

जनमेजय उवाच

वाराङ्गनास्त्वयाऽऽख्याता नरनारायणाऽऽश्रमे ।
एकं नारायणं शांतं कामयानाः स्मरातुराः ॥ १ ॥
शप्तुकामस्तदाजातो मुनिर्नारायणश्च ताः । निवारितोनरेणाऽथभ्राताधर्मविदा नृप
किं कृतं मुनिनातेन व्यसने समुपस्थिते । तास्मि सङ्कल्पितेनाऽर्थकामार्थाभिभृशंमुने
शक्रेणोत्पादिताभिश्च बहुप्रार्थनयापुनः । याचितेनविवाहार्थं किं कृतं तेन जिष्णुना
इत्येतच्छ्रोतुमिच्छामि चरितंतस्यमोक्षदम् । नारायणस्यमे ब्रूहि विस्तरेणपितामह

व्यास उवाच

शृणुराजन्प्रवक्ष्यामि यथा तस्य महात्मनः । धर्मपुत्रस्य धर्मज्ञ विस्तरेण वदामि ते
शप्तुकामस्तुसन्दृष्टोनरेणाऽथयदाहरिः । वारितोऽसौसमाश्वास्यमुनिर्नारायणस्तदा
शांतकोपस्तदोवाचतास्तपस्वीमहामुनिः । स्मितपूर्वमिदंवाक्यं मधुरं धर्मनन्दनः ॥
अस्मिञ्जन्मनिचार्वंग्यः कृतसंकल्पवाहनम् । आवाभ्याञ्च न कर्तव्यःसर्वथादारसंग्रहः
तस्माद्गच्छन्तुत्रिदिवं कृपां कृत्वा ममोपरि । धर्मज्ञा न प्रकुर्वन्ति व्रतभङ्गं परस्य वै

शृङ्गारेऽस्मिन्रसेनूनस्थायीभावोरतिःस्मृतः । कथंकरोमिसम्बन्धंतदभावेसुलोचनाः
कारणेनविनाकार्यंन भवेदितिनिश्चयः । कविभिःकथितंशास्त्रेस्थायीभावोरसःकिल
धन्यः सुचारुसर्वाङ्गः सभाग्योऽहंधरातले । प्रीतिपात्रंयतोजातो भवतीनामकृत्रिमम्
भवतीभिः कृपा कृत्वा रक्षणीयव्रतं मम । भविष्यामिमहाभागाः पतिरप्यन्यजन्मनि

अष्टाविंशे विशालाक्ष्यो द्वापरेऽस्मिन्धरातले ।
देवानां कार्यसिद्ध्यर्थम्भविष्यामि सर्वथा ॥ १५ ॥

तदा भवत्यो मद्दाराः प्राप्यजन्मपृथक्पृथक् । भूपतीनांसुताभूत्वापत्नीभावंगमिष्यथ
इत्याश्वास्यहरिस्तास्तु प्रतिश्रुत्य परिग्रहम् । व्यसर्जयत्सभगवाञ्जगुश्चविगतज्वराः
एवं विसर्जितास्तेन गता स्वर्गं तदाङ्गनाः । शक्राय कथयामासु कारणं सकलं पुनः

आश्रुत्य मघवास्ताभ्यो वृत्तान्तं तस्य विस्तरात् ।
तुष्टाव तं महात्मानं नारीदृष्ट्वा तथोर्वशी ॥ १६ ॥

इन्द्र उवाच

अहोधैर्यं मुने कामं तथैवच तपोबलम् । येनोर्वश्यः स्वतपसा तादृग्रूपा प्रकल्पिता ॥
इतिस्तुत्वाप्रसन्नात्माबभूवसुरराण्नृप । नारायणोऽपिधर्मात्मातपस्यभिरतोऽभवत्
इत्येतत्सर्वमाख्यातं मुनेर्वृत्तान्तमद्भुतम् । नारायणस्य सकलं नरस्य च महामुने ॥
तौहिकृष्णार्जुनौ वीरौ भूभारहरणायच । जातौतौ भरतश्रेष्ठ ! भृगो शापवशादिह ॥

राजोवाच

कृष्णावतारचरितं विस्तरेण वदस्व मे । सन्देहो ममचित्तेऽस्तितं निवारय मानद ! ॥
ययो पुत्रत्वमापन्नौ हर्यनन्तौमहाबलौ । देवकीवसुदेवौ तौ दुःखभाजौकथं मुने ! ॥
कंसेननिगडेबद्धौपीडितौबहुवत्सरान् । ययो पुत्रो हरि साक्षात्तपसातोषितोऽभवत्
जातोऽसौमथुरायातुगोकुले स कथंगतः । कंसहत्वाद्वारवत्यां निवासंकृतवान्कथम्
पित्राविसेवितंदेशं समृद्धं पावनं किल । त्यक्त्वा देशान्तरेऽनार्येगतवान्सकथंहरिः
कुलञ्च द्विजशापेन कथमुत्सादितंहरे । भारावतारणं कृत्वा वासुदेवः सनातन ॥
देहमुमोच तरसाजगाम च दिवं हरिः । पापिष्ठानाञ्च भारेण व्याकुलाऽभूच्चमेदिनी

ते हतावासुदेवेन पार्थेनामितकर्मणा । लुण्ठितायैर्हरेः पत्न्यस्ते कथं न निपातिताः॥

भीष्मो द्रोणस्तथा कर्णो बाह्लीकोऽप्यथ पार्थिवः ।

वैराटोऽथ विकर्णश्च धृष्टद्युम्नश्च पार्थिवः ॥ ३२ ॥

सोमदत्तादयःसर्वे निहताः समरे नृप । तेषामुत्तारितो भारश्चौराणां न हृतः कथम्
कृष्णपत्न्यःकथं दुःखं प्राप्ताः प्रान्तेपतिव्रताः । सन्देहोऽयंमुनिश्रेष्ठ चित्तेमे परिवर्तते
वासुदेवस्तु धर्मात्मा पुत्रदुःखेन तापितः । त्यक्तवान्स कथं प्राणानपमृत्युं जगाम ह
पाण्डवा धर्मसंयुक्ताः कृष्णे चनिरताःसदा । ते कथंदुःखभोक्तारो ह्यभवन्मुनिसत्तम
द्रौपदीचमहाभागाकथंदुःखस्यभागिनी । वेदीमध्यात्समुत्पन्नालक्ष्म्यंशसम्भवा किल
सभायाञ्चसमानीता रजोदोषसमन्विता । बाला दुःशासनेनाथ केशग्रहणकर्शिता ॥
पीडिता सिन्धुराज्ञाऽथ वनमध्यगतासती । तथैवकीचकेनापि पीडिताऽरुदती भृशम्
पुत्राः पञ्चैवतस्यास्तु निहता द्रौणिनागृहे । सुभद्रायाः सुतो युद्धेबालएवनिपातित.
तथाच देवकी पुत्राःषट्कंसेन निषूदिताः । समर्थेनाऽपि हरिणा दैवं न कृतमन्यथा
यादवानां तथा शापः प्रभासे निधनंपुनः । कुलक्षयस्तथा तीव्रस्तत्पत्नीनाञ्चलुंठनम्
विष्णुना चेश्वरेणापिसाक्षान्नारायणेन च । उग्रसेनस्य सेवावै दासवत्सततं कृता ॥
सन्देहोऽयं महाभाग तत्र नारायणे मुनौ । सर्वजन्तुसमानत्वं व्यवहारे निरन्तरम्
हर्षशोकादयो भावाः सर्वेषां सदृशाः कथम् । ईश्वरस्यहरेर्जाता कथमप्यन्यथा गतिः
तस्माद्विस्तरतो ब्रूहि कृष्णस्य चरितं महत् । अलौकिकेन हरिणा कृतंकर्म महीतले
हता आयुःक्षये दैत्याः क्लेशेन महता पुनः । क्वैश्वर्यशक्तिःप्रथिताहरिणामुनिसत्तम
रुक्मिणीहरणे नूनं गृहीत्वाऽथ पलायनम् । कृतं हि वासुदेवेन चौरवच्चरितं तदा ॥
मथुरामण्डलं त्यक्त्वा समृद्धं कुलसम्मतम् । जरासन्धभयात्तेन द्वारकागमनं कृतम्
तदा केनाऽपि न ज्ञातोभगवान्हरिरीश्वरः । किंचित्प्रब्रूहि मे ब्रह्मन्कारणंव्रजगोपनम्
एते चान्ये च बहवः संदेहा वासवीसुत । नाशयाऽद्य महाभागसर्वज्ञोऽसिद्विजोत्तम

गोप्यस्तथैकः सन्देहो हृदयान्न निवर्तते ।

पाञ्चाल्याः पञ्चभर्तृत्वं लोके किं न जुगुप्सितम् ॥ ५२ ॥

सदाचारं प्रमाणं हि प्रवदन्ति मनीषिणः । पशुधर्मः कथं तैस्तु समर्थैरपि संश्रितः ॥
भीष्मेणापि कृतं किं वाद्वेवरूपेणभूतले । गोलकौ तौ समुत्पाद्य वसुवंशस्य रक्षणम्
धिग्धर्मनिर्णयः कामं मुनिभिः परिदर्शितः । येनकेनाप्युपायेन पुत्रोत्पादनलक्षणः ॥
इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यांसंहितायां चतुर्थस्कन्धे
सुराङ्गनानाम्प्रतिनारायणवरदानंनाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

अष्टादशोऽध्यायः

दुष्टराजभाराक्रान्तायामेदिन्याब्रह्माणम्प्रतिगमनम्

व्यास उवाच

शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि कृष्णस्य चरितंमहत् । अवतारकारणञ्चैव देव्याश्चरितमद्भुतम्
यदैकदाभराक्रान्तारुदतीचातिकर्षिता । गोरूपधारिणीदीना भीताऽगच्छत्त्रिविष्टपम्
पृष्टाशक्रेण किन्तेऽद्यवर्तते भयमित्यथ । केनवैपीडिताऽसि त्वं किं ते दुःखंवसुन्धरे
तच्छ्रुत्वेला तदोवाच शृणु देवेश! मेऽखिलम् ।
दुःखं पृच्छसि यत्त्वं मे भाराक्रान्ताऽस्मि मानद ॥ ४ ॥
जरासन्धो महापापी मागधेषु पतिर्मम । शिशुपालस्तथाचैद्यः काशिराजःप्रतापवान्
रुक्मी च बलवान्कंसोनरकश्चमहाबलः । शाल्वःसौभपतिः क्रूरः केशीधेनुकवत्सकौ
सर्वधर्मविहीनाश्च परस्परविरोधिनः । पापाचारा मदोन्मत्ता कालरूपाश्च पार्थिवाः
तैरहं पीडिता शक्र! भाराक्रान्ताऽक्षमा विभो !।
किं करोमि क्व गच्छामि चिन्ता मे महती स्थिता ॥ ८ ॥
पीडिताऽहंवराहेणविष्णुना प्रभविष्णुना । शक्रजानीहि हरिणादुःखाद्दुःखतरं गता
यतोऽहंदुष्टदैत्येनकश्यपस्यात्मजेन वै । हृताऽहं हिरण्याक्षेण मग्ना तस्मिन्महार्णवे
तदासूकररूपेणविष्णुनानिहतोऽप्यसौ । उद्धृताऽहं वराहेणस्थापिताहिस्थिराकृता

नोचेद्रसातले स्वस्था स्थिता स्यां सुखशायिनी ।
न शक्ताऽस्म्यद्य देवेश! भारं वोढुं दुरात्मनाम् ॥ १२ ॥
अग्रे दुष्टः समायाति ह्यष्टाविंशस्तथा कलिः ।
तदाऽहं पीडिता शक्र! गन्ताऽस्म्याशु रसातलम् ॥ १३ ॥
तस्मात्त्वं देवदेवेश! दुःखरूपार्णवस्य च । पारदो भव भारं मे हर पादौ नमामि ते॥

इन्द्र उवाच

इते किन्ते करोम्यद्य ब्रह्माणंशरणं व्रज । अहं तत्राऽऽगमिष्यामिसतेदुःखं हरिष्यति
तच्छ्रुत्वा त्वरिता पृथ्वी ब्रह्मलोकं गता तदा । शक्रोपिपृष्ठतः प्राप्तः सर्वदेवपुरःसरः॥
सुरभीमागतांतत्रदृष्टोवाच प्रजापतिः । महीं ज्ञात्वा महाराज ध्यानेन समुपस्थिताम्
कस्माद्रुदसिकल्याणि किं तेदुःखंवदाऽधुना । पीडिताऽसिचकेनत्वंपापाचारेणभूर्वद

धरोवाच

कलिरायातिदुष्टोऽयं बिभेमितद्भयादहम् । पापाचाराःप्रजास्तत्रभविष्यन्तिजगत्पते
राजानश्च दुराचाराः परस्परविरोधिनः । चौरकर्मरताः सर्वे राक्षसाः पूर्णवैरिणः॥
तान्हत्वा नृपतीन्भारं हरमेऽद्यपितामह । पीडिताऽस्मिमहाराजसैन्यभारेणभूभृताम्

ब्रह्मोवाच

नाऽहं शक्तस्तथा देवि भारावतरणे तव । गच्छावः सदनं विष्णोर्देवदेवस्य चक्रिणः
स ते भारापनोदस्वैकरिष्यतिजनार्दनः । पूर्वं मयाऽपि ते कार्यंचिन्तितंसुविचार्य च
तत्र गच्छ सुरश्रेष्ठ! यत्र देवो जनार्दनः ।

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा वेदकर्ताऽसौ पुरस्कृत्य सुरांश्च गाम् ॥ २४ ॥
जगाम विष्णुसदनं हंसारूढश्चतुर्मुखः । तुष्टाव वेदवाक्यैश्च भक्तिप्रवणमानसः ॥२५

ब्रह्मोवाच

सहस्रशीर्षा त्वमसि सहस्राक्षः सहस्रपात् । त्वं वेदपुरुषःपूर्वदेवदेवः सनातनः ॥२६
भूतपूर्वं भविष्यञ्च वर्तमानं च यद्विभो । अमरत्वं त्वया दत्तमस्माकं च रमापते ॥

एतावान्महिमाते ऽस्ति कोनवेत्तिजगन्मये । त्वंकर्ताऽप्यविताहंतात्वं सर्वगतिरीश्वरः
व्यास उवाच
इतीडितः प्रभुर्विष्णुः प्रसन्नो गरुडध्वजः दर्शनञ्च ददौ तेभ्यो ब्रह्मादिभ्योऽमलाशयः
पप्रच्छ स्वागतं देवान्प्रसन्नवदनो हरिः । ततस्त्वागमने तेषां कारणञ्च सविस्तरम्
समुवाचाब्जजोनत्वाधराद्ःखञ्चसंस्मरन् । भारावतरणं विष्णो कर्तव्यं ते जनार्दन
भुविभूत्वाऽवतारं त्वं द्वापरान्ते समागते । हत्वा दुष्टान्नृपानुर्व्या हरभारं दयानिधे
विष्णुरुवाच
नाऽहंस्वतन्त्र एवाऽत्र न ब्रह्मानशिवस्तथा । नेन्द्रोऽग्निर्नयमस्त्वष्टानसूर्योवरुणस्तथा
योगमायावशे सर्वमिदं स्थावरजङ्गमम् । ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तं ग्रथितं गुणसूत्रतः ॥

यथा सा स्वेच्छया पूर्वं कर्तुमिच्छति सुव्रत ।
तथा करोति सुहिता वयं सर्वेऽपि तद्वशाः ॥ ३५ ॥
यद्यहं स्यां स्वतन्त्रो वै चिन्तयन्तु धिया किल ।
कुतोऽभवन्मत्स्यवपुः कच्छपो वा महार्णवे ॥ ३६ ॥
तिर्यग्योनिषु को भोगः का कीर्तिः किं सुखं पुनः ।
किं पुण्यं किं फलं तत्र क्षुद्रयोनिगतस्य मे ॥ ३७ ॥

कोलोवाऽथ नृसिंहोवा वामनोवाऽभवंकुतः । जमदग्निसुत.कस्मात्सम्भवेयंपितामह
नृशंसं वा कथं कर्म कृतवानस्मि भूतले । क्षतजैस्तु ह्रदान्सर्वान्पूरयेयं कथम्पुनः ॥
तत्कथं जमदग्नेश्च पुत्रोभूत्वा द्विजोत्तमः । क्षत्रियान्हतवानादौ निर्दयो गर्भगानपि
रामोभूत्वाऽथ देवेन्द्रप्राविशद्दण्डकंवनम् । पदातिश्चीरवासाश्च जटावल्कलवान्पुनः
असहायो ह्यपाथेयो भीषणे निर्जने वने । कुर्वन्नाखेटकं तत्र व्यचरं विगतत्रपः ॥४२॥
न ज्ञातवान्मृगं हैमं मायया विहितस्तदा । उटजे जानकीत्यक्त्वानिर्गतस्तत्पदानुगः

लक्ष्मणोऽपि च तां त्यक्त्वा निर्गतो मत्पदानुगः ।
वारितोऽपि मयाऽत्यर्थं मोहितः प्राकृतैर्गुणैः ॥ ४४ ॥

भिक्षुरूपं ततःकृत्वा रावणः कपटाकृतिः । जहार तरसा रक्षो जानकीशोककर्शिताम्

दुःखार्तेन मया तत्र रुदितञ्च वनेवने । सुग्रीवेण च मित्रत्वं कृतं कार्यवशान्मया ॥
अन्यायेनहतोवालीशापाच्चैवनिवारितः । सहायान्वानरान्कृत्वालङ्कायांचलितः पुनः
बद्धोऽहं नागपाशैश्चलक्ष्मणश्चममानुजः । विसंज्ञौपतितौ दृष्ट्वा वानराविस्मयं गताः
गरुडेन तदाऽऽगत्य मोचितौ भ्रातरौकिल । चिंतामेमहतीजाता दैवंकिंवाकरिष्यति
हृतंराज्यंवनेवासो मृतस्तातः प्रियाहृता । युद्धंकष्टंददात्येवमग्रे किं वा करिष्यति
प्रथमं तु महादुःखमराज्यस्य वनाश्रयम् । राजपुत्र्याऽन्वितस्यैवधनहीनस्य मे सुराः
चराटिकाऽपि विश्रामे न दत्तावननिर्गमे । पदातिरसहायोऽहं धनहीनश्च निर्गतः ॥
चतुर्दशैववर्षाणि नीतानि च तदा मया । क्षात्रन्धर्मं परित्यज्य व्याधवृत्त्या महावने
दैवाद्युद्धेजयःप्राप्तोनिहतोऽसौमहासुरः । आनीताचपुनःसीताप्राप्ताऽयोध्यामयातथा
वर्षाणिकतिचित्तत्र सुखं संसारसम्भवम् । प्राप्तं राज्यञ्चसम्पूर्णं कोसलानधितिष्ठता
पुरैवं वर्तमानेन प्राप्तराज्येन वै तदा । लोकापवादभीतेन त्यक्ता सीता वने मया ॥

कान्ताविरहजं दुःखं पुनः प्राप्तं दुरासदम् ।
पातालं सा गता पश्चाद्धरां भित्त्वा धरात्मजा ॥ ५७ ॥

एवं रामावतारेऽपि दुःखं प्राप्तं निरन्तरम् । परतन्त्रेणमेनूनं स्वतन्त्रः को भवेत्तदा
पश्चात्कालवशात्प्राप्तःस्वर्गमेभ्रातृभिः सह । परतन्त्रस्यकावार्तावक्तव्याविबुधेनवै
परतन्त्रोऽस्म्यहं नूनं पद्मयोने निशामय । तथा त्वमपि रुद्रश्च सर्वेनान्ये सुरोत्तमाः

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां चतुर्थस्कन्धे
ब्रह्माणम्प्रतिविष्णुवाक्यन्नामाऽष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

ऊनविंशोऽध्यायः

देवैःशक्तिस्तवनम्

व्यास उवाच

इत्युक्त्वाभगवान्विष्णुःपुनराहप्रजापतिम् ।यन्मायामोहितःसर्वस्तत्स्वंजानातिनोजनाः
वयंमायावृताःकामं न स्मरामो जगद्गुरुम् । परमं पुरुषं शांतं सच्चिदानन्दमव्ययम्
अहं विष्णुरहं ब्रह्मा शिवोऽहमिति मोहिताः । नजानीमोवयंधातःपरंवस्तुसनातनम्
यन्माया मोहितश्चाहं सदावर्ते परात्मनः । परवाःदारुपाञ्चालीमायिकस्य यथा वशेः
भवताऽपि तथा दृष्ट्वा विभूतिस्तस्य चाद्भुता । कल्पादौभवयुक्तेनमयाऽपिवसुधार्णवेः
मणिद्वीपेऽथ मन्दारविटपे रासमण्डले । समाजे तत्र सा दृष्टा श्रुतानवचसाऽपि चः

तस्मात्तां परमां शक्तिं स्मरन्त्वद्य सुराः शिवाम् ।
सर्वकामप्रदां मायामाद्यां शक्तिं परात्मनः ॥ ७ ॥

व्यास उवाच

इत्युक्ता हरिणा देवा ब्रह्माद्या भुवनेश्वरीम् । सस्मरुर्मनसा देवींयोगमायांसनातनीम्
स्मृतमात्रा तदादेवी प्रत्यक्षं दर्शनं ददौ । पाशाङ्कुशवराभीतिधरादेवीजपारुणा ॥

दृष्ट्वा प्रमुदिता देवास्तुष्टुवुस्तां सुदर्शनाम् ।

देवा ऊचुः

ऊर्णनाभाद्यथातन्तुर्विस्फुलिङ्गा विभावसोः । तथा जगद्यदेतस्यानिर्गतंतां नतावयम्

यन्मायाशक्तिसंक्लृप्तं जगत्सर्वं चराचरम् ।
तां चित्ते भुवनाधीशां स्मरामः करुणार्णवाम् ॥ ११ ॥

यदज्ञानाद्भवोत्पत्तिर्यज्ज्ञानाद्भवनाशनम् । संविद्रूपां च तां देवींस्मरामःसाप्रचोदयात्
महालक्ष्म्यै च विद्महे सर्वशक्त्यै च धीमहि । तन्नो देवी प्रचोदयात् ॥ १३ ॥

मातर्नताः स्म भुवनार्तिहरे ! प्रसीद शं नो विधेहि कुरु कार्यमिदं दयार्द्रे !

भारं हरस्व विनिहत्य सुरारिवर्गं मह्या महेश्वरि! सतां कुरु शं भवानि ! ॥
यच्चम्बुजाक्षि दयसे न सुरान्कदाचित्कि ते क्षमा रणमुखेऽसिशरैः प्रहर्तुम् ।
एतत्त्वयैव गदितं ननु यक्षरूपं धृत्वा तृणं दह हुताशपदाभिलापैः ॥ १५ ॥
कंसः कुजोऽथ यवनेन्द्रसुतश्च केशी बार्हद्रथो बकबकीखरशाल्वमुख्याः ।
येऽन्ये तथा नृपतयो भुवि सन्ति तांस्त्वं हत्वा हरस्व जगतो भरमाशु मातः!
ये विष्णुना न निहताः किल शङ्करेण ये वा विगृह्य जलजाक्षि ! पुरन्दरेण ।
ते ते मुखं सुखकरं सुसमीक्षमाणास्संख्ये शरैर्विनिहिता निजलीलया ते ॥
शक्तिं विना हरिहरप्रमुखाः सुराश्च नैवेश्वरा विचलितुं तव देवदेवि ! ।
किं धारणाविरहितः प्रभुरप्यनन्तो धर्तुं धरां च रजनीशकलावतंसे !॥ १८ ॥

इन्द्र उवाच

वाचाविना विधिरलं भवतीह विश्वं कर्तुं हरिः किमु रमारहितोऽथ पातुम्
संहर्तुमीश उभयोज्झित ईश्वरः किन्ते ताभिरेव सहिताः प्रभवः प्रजेशाः ॥

विष्णुरुवाच

कर्तुं प्रभुर्न द्रुहिणो न कदाचनाऽहं नाऽपीश्वरस्तव कलारहितस्त्रिलोक्याः ।
कर्तुं प्रभुत्वमनघेऽत्र तथा विहर्तुं त्वं वै समस्तविभवेश्वरि भासि नूनम् ॥

व्यास उवाच

एवं स्तुता तदा देवी तानाह विबुधेश्वरान् । किं तत्कार्यं वदं त्वद्य करोमि विगतज्वराः
असाध्यमपि लोकेस्मिंस्तत्करोमि सुरेप्सितम् । शंसंतु भवतां दुःखं धरायाश्च सुरोत्तमाः

देवा ऊचुः

वसुधेयं भराक्रान्ता संप्राप्ता विबुधान्प्रति । रुदती वेपमाना च पीडिता दुष्टभूभुजैः ॥
भारापहरणं चास्याः कर्तव्यं भुवनेश्वरि । देवानामीप्सितं कार्यमेतद्देवाधुना शिवे !
घातितस्तु पुरा मातस्त्वया महिषरूपभृत् । दानवोऽतिबलाक्रांतस्तत्सहायाश्च कोटिशः
तथा शुम्भो निशुम्भश्च रक्तबीजस्तथाऽपरः । चण्डमुण्डौ महावीर्यौ तथैव धूम्रलोचनः
दुर्मुखो दुःसहश्चैव करालश्चातिवीर्यवान् । अन्ये च बहवः क्रूरास्त्वयैव च निपातिताः

तथव च सुरारींश्च जहिसर्वान्महीश्वरान् । "भारं हर धरायाश्च दुर्धरं दुष्टभूभुजाम्

व्यास उवाच

इत्युक्ता सा तदा देवी देवानाहाम्बिका शिवा ॥ २८ ॥
संप्रहस्याऽसितापाङ्गी मेघगम्भीरया गिरा ।

श्रीदेव्युवाच

मयेदं चिन्तितं पूर्वमंशावतरणं सुराः ॥ २९ ॥
भारावतरणं चैव यथास्याद्दुष्टभूभुजाम् । मया सर्वे निहन्तव्यादैत्येशा ये महीभुजः
मागधाद्या महाभागाः स्वशक्तया मन्दतेजसः । भवद्भिरपि स्वैरंशैरवतीर्यधरातले ॥
मच्छक्तियुक्तैः कर्तव्यं भारावतरणं सुराः । कश्यपो भार्ययासार्धंदितिजानांप्रजापतिः
यादवानां कुलेपूर्वं भविताऽऽनकदुंदुभिः । तथैव भृगुशापाद्वै भगवान्विष्णुरव्ययः
अंशेन भविता तत्र वसुदेवसुतो हरिः । तदाऽहंप्रभविष्यामि यशोदायां च गोकुले
कार्यं सर्वं करिष्यामिसुराणांसुरसत्तमाः । कारागारेगतंविष्णुंप्रापयिष्यामिगोकुले

शेषं च देवकीगर्भात्प्रापयिष्यामि रोहिणीम् ।
मच्छक्त्योपचितौ तौ च कर्तारौ दुष्टसंक्षयम् ॥ ३६ ॥
दुष्टानां भूभुजां कामं द्वापरान्ते सुनिश्चितम् ।
इन्द्रांशोऽप्यर्जुनः साक्षात्करिष्यति बलक्षयम् ॥ ३७ ॥
धर्मांशोऽपि महाराजो भविष्यति युधिष्ठिरः ।
वाय्वंशो भीमसेनश्चाऽश्विन्यंशौ च यमावपि ॥ ३८ ॥

वसोरंशोऽथ गाङ्गेयः करिष्यति बलक्षयम् । व्रजन्तुचभवन्तोऽद्यधराभवतुसुस्थिरा
भारावतरणंनूनंकरिष्यामिसुरोत्तमाः । कृत्वानिमित्तमात्रांस्तान्स्वशक्तयाहंनसंशयः
कुरुक्षेत्रेकरिष्यामिक्षत्रयाणांवसंक्षयम् । असूयेर्ष्यामतिस्तृष्णाममताऽभिमतास्पृहा
जिगीषा मदनोमोहोदोषैर्नंक्ष्यन्तियादवाः । ब्राह्मणस्यचशापेन वंशनाशो भविष्यति
भगवानपिशापेन त्यक्ष्यत्येतत्कलेवरम् । भवन्तोऽपिनिजाङ्गैश्च सहायाःशार्ङ्गधन्वनः

प्रभवन्तु सनारीका मथुरायां च गोकुले ।

व्यास उवाच

इत्युक्त्वांऽर्दधे देवी योगमाया परात्मनः ॥ ४४ ॥

सधरा वै सुराः सर्वे जग्मुः स्वान्यालयानि च ।

धराऽपि सुस्थिरा जाता तस्या वाक्येन तोषिता ॥ ४५ ॥

ओषधीवीरुधोपेता बभूव जनमेजय !। प्रजाश्च सुखिनो जाता द्विजाश्चापुर्महोदयम्

सन्तुष्टा मुनयः सर्वे बभूवुर्धर्मतत्पराः ।

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां चतुर्थस्कन्धे

देवान्प्रतिदेवीवाक्यवर्णनंनामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

विंशोऽध्यायः

भारावतरणोपक्रमेवासुदेवांशावतारकथावर्णनम्

व्यास उवाच

शृणुभारत वक्ष्यामि भारावतरणं तथा । कुरुक्षेत्रे प्रभासे च क्षपितं योगमायया ॥
यदुवंशे समुत्पत्तिर्विष्णोरमिततेजसः । भृगुशापप्रतापेन महामायाबलेन च ॥ २ ॥
क्षितिभारसमुत्तारनिमित्तमिति मे मति । माययाविहितोयोगोविष्णोर्जन्मधरातले
किं चित्रं नृप देवी सा ब्रह्मविष्णुसुरानपि । नर्तयत्यनिशं मायात्रिगुणानपरान्किमु
गर्भवासोद्भवं दुःखं विण्मूत्रस्नायुसंयुतम् । विष्णोरापादितंसम्यग्यथाविगतलीलया
पुरा रामावतारेऽपि निर्जरा वानराः कृताः । विदितंतेयथाविष्णुर्दुःखपाशेनमोहितः
अहं ममेति पाशेन सुदृढेन नराधिप !। योगिनो मुक्तसङ्गाश्च भुक्तिकामा मुमुक्षवः ॥
तामेव समुपासन्ते देवीं विश्वेश्वरीं शिवाम् । तद्भक्तिलेशलेशांशलेशलेशलवांशकम्
लब्ध्वा मुक्तो भवज्जन्तुस्तां न सेवेत को जनः । भुवनेशीत्येववक्त्रेदद्दातिभुवनत्रयम्
मां पाहीत्यस्य वचसो देया भावाद्दणान्विता ।

विद्याविद्येऽति तस्या द्वे रूपे जानीहि पार्थिव !॥ १० ॥

विद्यया मुच्यते जन्तुर्बध्यतेऽविद्यया पुनः। ब्रह्माविष्णुश्चरुद्रश्च सर्वेतस्यावशानुगाः अवतारा: सर्वं एव यन्त्रिता इव दामभिः। कदाचिच्चसुखंभुङ्क्ते वैकुण्ठे क्षीरसागरे कदाचित्कुरुते युद्धं दानवैर्बलवत्तरैः। हरिः कदाचिद्यज्ञान्वै वितताम्प्रकरोति च ॥ कदाचिच्च तपस्तीव्रं तीर्थे चरति सुव्रत। कदाचिच्छयनेशेते योगनिद्रामुपाश्रितः ॥ न स्वतन्त्रः कदाचिच्च भगवान्मधुसूदनः। तथा ब्रह्मा तथारुद्रस्तथेन्द्रो वरुणो यमः कुबेरोऽग्नी रवींदू च तथाऽन्ये सुरसत्तमाः। मुनयःसनकाद्याश्चवसिष्ठाद्यास्तथाऽपरे सर्वेऽवावसगा नित्यंपाञ्चालीवनरस्य च। नसिप्रोतायथागावोविचरन्तिवशानुगाः तथैव देवताः सर्वाः कालपाशनियन्त्रिताः। हर्षाशोकादयोभावानिद्रातन्द्रालसादयः सर्वेषां सर्वदा राजन्देहिनां देहसंश्रिताः। अमरा निर्जरा प्रोक्ता देवाश्च ग्रन्थकारकैः

अभिधानतश्चार्थतो न ते नूनं तादृशाः क्वचित्।

उत्पत्तिस्थितिनाशाख्या भावा येषां निरन्तरम् ॥ २० ॥

अमरास्ते कथं वाच्या निर्जराश्चकथंपुनः। कथंतु,खाभिभूतावाजायन्तेविबुधोत्तमाः कथं देवाश्च वक्तव्याव्यसने क्रीडनंकथम्। क्षणादुत्पत्तिर्नाशश्चदृश्यतेऽस्मिन्नसंशयः जलजानांचकीटानां मशकानां तथा पुनः। उपमा नकथंचैषामायुषोऽन्तेमराःस्मृताः ततो वर्षायुषश्चापि शतवर्षायुषस्तथा। मनुष्या ह्यमरादेवास्तस्माद् ब्रह्मापरःस्मृतः रुद्रस्तथा तथा विष्णुः क्रमशश्च भवन्तिहि। नश्यन्तिक्रमशश्चैववर्धन्तिचोत्तरोत्तरम् नूनं देहवतो नाशो मृतस्योत्पत्तिरेव च। चक्रवद्भ्रमणं राजन्सर्वेषां नाऽत्र संशयः

मोहजालाऽऽवृतो जन्तुर्मुच्यते न कदाचन।

मायायां विद्यमानायां मोहजालं न नश्यति ॥ २७ ॥

उत्पित्सुकालउत्पत्तिः सर्वेषां नृपजायते। तथैवनाशःकल्पान्ते ब्रह्मादीनांयथाक्रमम् निमित्तंयस्तुयन्नाशे स घातयति तं नृप। नान्यथा तद्भवेन्नूनंविधिनानिर्मितन्तु यत् जन्ममृत्युजराव्याधिदु खं वा सुखमेववा। तत्तथैवभवेत्कामं नान्यथेह विनिर्णयः ॥ सर्वेषांसुखदौदेवौप्रत्यक्षौशशिभास्करौ। न नश्यति तयोःपीडा क्वचित्तद्वैरिसम्भवा

भास्करस्य सुतो मन्दः क्षयीचन्द्रःकलङ्कवान् । पश्यराजन्विधे सूत्रं दुर्वारं महतामपि
वेदकर्ता जगद्धर्ता बुद्धिदस्तु चतुर्मुखः । सोऽपिविक्लवतांप्राप्तो दृष्ट्वा पुत्रींसरस्वतीम्

शिवस्याऽपि मृता भार्या सती दग्ध्वा कलेवरम् ।
सोऽभवद्दुःखसन्तप्तः कामार्तश्च जनार्तिहा ॥ ३४ ॥

कामाग्निदग्धदेहस्तुकालिन्द्यांपतितःशिवः । साऽपिश्यामजलाजातातत्सिद्धाघवशान्नृप

कामार्तो रममाणस्तु नग्नः सोऽपि भृगोर्वनम् ।
गतः प्राप्तोऽथ भृगुणा शप्तः कामातुरो भृशम् ॥ ३६ ॥

पतत्वद्यैव ते लिङ्गं निर्लज्जेति भृशं किल । पपौचामृतवापीञ्च दानवैर्निर्मितां मुदे ॥
इन्द्रोऽपिचवृषोभूत्वावाहनत्वंगतःक्षितौ । आद्यस्यसर्वलोकस्यविष्णोरेवविवेकिनः
सर्वज्ञत्वं गतं कुत्र प्रभुशक्तिः कुतो गता । यद्धेममृगविज्ञानं न ज्ञातं हरिणा किल ॥
राजन्मायाबलंपश्य रामो हि काममोहितः । रामो विरहसन्तप्तो रुरोदभृशमातुरः
योऽपृच्छत्पादपान्मूढः क्व गता जनकात्मजा । भक्षिता वा हृताकेन रुदन्नुच्चतरं ततः
लक्ष्मणाऽहंमरिष्यामिकान्ताविरहदुःखितः । त्वंचापिममदुःखेनमरिष्यसिवनेऽनुज
आवयोर्मरणंज्ञात्वा मातामममरिष्यति । शत्रुघ्नोऽप्यतिदुःखार्त.कथंजीवितुमर्हति
सुमित्राजीवितं जह्यात्पुत्रव्यसनकर्शिता । पूर्णकामाऽथ कैकेयी भवेत्पुत्रसमन्विता
हासीतेक्वगताऽसित्वंमांविहायस्मरातुरा । एह्येहि मृगशावाक्षि मां जीवयकृशोदरि
किंकरोमि क्वगच्छामित्वदधीनञ्चजीवितम् । समाश्वासयदीनंमांप्रियं जनकनन्दिनि
एवं विलपता तेन रामेणाऽमिततेजसा । वनेवने च भ्रमता नेक्षिता जनकात्मजा ॥
शरण्यःसर्वलोकानां रामः कमललोचनः । शरणं वानराणां स गतोमायाविमोहितः
सहायान्वानरान्कृत्वा बबन्ध वरुणालयम् । जघान रावणंवीरं कुम्भकर्णं महोदरम्
आनीयचततः सीतां रामोदिव्यमकारयत् । सर्वज्ञोऽपिहृतांमत्वा रावणेनदुरात्मना
किं ब्रवीमि महाराज योगमायाबलं महत् । ययाविश्वमिदं सर्वं भ्रामितं भ्रमतेकिल
एवं नानाऽवतारेऽत्र विष्णुःशापवशं गतः । करोतिविविधाश्चेष्टादैवाधीनःसदैव हि
तथाहं कथयिष्यामि कृष्णस्याऽपिविचेष्टितम् । प्रथमंमानुषंलोके देवकार्यार्थसिद्धये

कालिन्दीपुलिनेरम्ये ह्यासीन्मधुवनं पुरा । लवणो मधुपुत्रस्तुतत्रासीऽऽद्दानवोबली
द्विजानां दुःखदःपापो वरदानेन गर्वितः । निहतोऽसौ महाभाग लक्ष्मणस्यानुजेन वै
शत्रुघ्नेनाथ संग्रामे तं निहत्य मदोत्कटम् । वासिता मथुरा नाम पुरी परमशोभना
स तत्र पुष्कराक्षौ द्वौ पुत्रौ शत्रुनिषूदनः । निवेश्यराज्येमतिमान्कालेप्राप्तेदिवङ्गतः
सूर्यवंशक्षये तां तु यादवाः प्रतिपेदिरे । मथुरां मुक्तिदां राजन्ययातितनयाः पुरा ॥
शूरसेनाभिधः शूरस्तत्राभून्मेदिनीपतिः । माथुराञ्छूरसेनांश्च बुभुजे विषयान्नृप ॥
तत्रोत्पन्नः कश्यपांशः शापाच्चवरुणस्यवै । वासुदेवोऽतिविख्यातो शूरसेनसुतस्तदा

वैश्यवृत्तिरतः सोऽभून्मृते पितरि माधवः ।

उग्रसेनो बभूवाऽथ कंसस्तस्याऽऽत्मजो महान् ॥ ६१ ॥

अदितिर्देवकीजाता देवकस्य सुतातदा । शापाद्वै वरुणस्याऽथ कश्यपानुगता किल
दत्ता सा वसुदेवाय देवकेन महात्मना । विवाहे रचिते तत्र वागभूद्गगने तदा ॥६३॥
कंस कंस महाभाग देवकीगर्भसम्भवः । अष्टमस्तु सुतः श्रीमांस्तव हंता भविष्यति

तच्छ्रुत्वा वचनं कंसो विस्मितोऽभून्महाबलः ।

देववाचं तु तां मत्वा सत्यां चिन्तामवाप सः ॥ ६५ ॥

किं करोमीति सञ्चिन्त्य विमर्शमकरोत्तदा । निहत्यैनांन मे मृत्युर्भवेद्दैवसत्वरम्

उपायो नाऽन्यथा चाऽस्मिन्कार्ये मृत्युभयावहे ।

इयं पितृष्वसा पूज्या कथं हन्मीत्यचिन्तयत् ॥ ६७ ॥

पुनर्विचारयामास मरणं मेऽस्त्यहोस्वसा । पापेनाऽपि प्रकर्तव्या देहरक्षाविपश्चिता
प्रायश्चित्तेन पापस्य शुद्धिर्भवति सर्वदा । प्राणरक्षाप्रकर्तव्या बुधैरप्येनसा तथा ॥
विचिन्त्यमनसाकंसः खड्गमादायसत्वरः । जग्राहतांवरारोहां केशेष्वाकृष्यपापकृत्
कोशात्खड्गमुपाकृष्य हन्तुकामोदुराशयः । पश्यतांसर्वलोकानां नवोढांतांचकर्ष ह

हन्यमानाञ्च तां दृष्ट्वा हाहाकारो महानभूत् ।

वसुदेवानुगा वीरा युद्धायोद्यतकार्मुकाः ॥ ७२ ॥

मुञ्चमुञ्चेति प्रोचुस्तं ते तदाऽद्भुतसाहसाः । कृपयामोचयामासुर्देवकीं देवमातरम् ॥

तद्युद्धमभवद्घोरं वीराणाञ्च परस्परम् । वसुदेवसहायानां कंसेन च महात्मना ॥
वर्तमाने तथा युद्धे दारुणे लोमहर्षणे । कंसं निवारयामासुर्वृद्धा ये यदुसत्तमाः ॥
पितृष्वसेयं ते वीर पूजनीया च बालिशा । न हन्तव्या त्वयावीरविवाहोत्सवसङ्गमे
स्त्रीहत्या दुःसहावीर कीर्तिघ्नी पापकृत्तमा । भूतभाषितमात्रेण न कर्तव्याविजानता
अन्तर्हितेन केनाऽपि शत्रुणातववास्य वा । उदितेति कुतोन स्याद्वागनर्थकरी विभो
यशसस्ते विघाताय वसुदेवगृहस्य च । अरिणा रचिता वाणी गुणमायाविदा नृप
बिभेषि वीरस्त्वं भूत्वा भूतभाषितभाषया । यशोमूलविघातार्थमुपायस्त्वरिणाकृतः
पितृष्वसान हन्तव्या विवाहसमये पुनः । भवितव्यं महाराज भवेच्च कथमन्यथा ॥
एवंतैर्बोध्यमानोऽसौ निवृत्तोनाऽभवद्यदा । तदा तं वसुदेवोऽपि नीतिज्ञःप्रत्यभाषत

कंस! सत्यं ब्रवीम्यद्य सत्याधारं जगत्त्रयम् ।?
दास्यामि देवकीपुत्रानुत्पन्नांस्तव सर्वशः ॥ ८३ ॥

जातं जातं सुतं तुभ्यं न दास्यामि यदिप्रभो !। कुम्भीपाकेतदाघोरे पतन्तुममपूर्वजाः
श्रुत्वाऽथ वचनंसत्यंपौरवायेपुरःस्थिताः । ऊचुस्ते त्वरिता कंसंसाधुसाधुपुन पुनः
न मिथ्याभाषते क्वापि वसुदेवोमहामनाः । केशं मुञ्च महाभाग स्त्रीहत्यापातकंतथा

व्यास उवाच

एवंप्रबोधितःकंसोयदुवृद्धैर्महात्मभिः । क्रोधंत्यक्त्वास्थितस्तत्रसत्यवाक्यानुमोदितः
ततो दुन्दुभयोनेदुर्वादित्राणिच सस्वनुः । जयशब्दस्तुसर्वेषामुत्पन्नस्तत्र संसदि ॥

प्रसाद्य कंसं प्रतिमोच्य देवकीं महायशाः शूरसुतस्तदानीम् ।
जगाम गेहं स्वजनानुवृत्तो नवोढया वीतभयस्तरस्वी ॥ ८६ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां चतुर्थस्कन्धे
कृष्णावतारकथोपक्रमवर्णनंनामविंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

एकविंशोऽध्यायः

कंसायप्रथमपुत्रार्पणसमयेवसुदेवदेवक्योःपरामर्शवर्णनम्

व्यास उवाच

अथ काले तु सम्प्राप्ते देवकी देवरूपिणी । गर्भन्दधार विधिवद्वसुदेवेन संगता ॥१॥
पूर्णेऽथदशमेमासे सुषुवे सुतमुत्तमम् । रूपावयवसम्पन्नं देवकी प्रथमं यदा ॥ २ ॥
तदाऽऽहवसुदेवस्तां सत्यवाक्यानुमोदितः । भावित्वाच्चमहाभागोदेवकींदेवमातरम्
वरोरु समयं मे त्वं जानासि स्वसुतार्पणे । मोचिता त्वं महाभागे शपथेनमया तदा
इमं पुत्रं सुकेशान्ते दास्यामिभ्रातृसूनवे । "खले कंसेविनाशार्थंदैवेर्किवाकरिष्यसि"
विचित्रकर्मणांपाकोदुर्ज्ञेयोह्यकृतात्मभि. । सर्वेषांकिलजीवानांकालपाशानुवर्तिनाम्
भोक्तव्यं स्वकृतं कर्म शुभं वा यदि वाऽशुभम् ॥ ६ ॥
प्रारब्धं सर्वथैवाऽत्र जीवस्य विधिनिर्मितम् ।

देवक्युवाच

स्वामिन्पूर्वं कृतं कर्म भोक्तव्यं सर्वथा नृभिः ॥ ७ ॥
तीर्थैस्तपोभिर्दानैर्वा किंनयातिक्षयंहितत् । लिखितोधर्मशास्त्रेषुप्रायश्चित्तविधिर्नृप
पूर्वार्जितानां पापानां विनाशायमहात्मभिः । ब्रह्महा हेमहारी च सुरापोगुरुतल्पगः
द्वादशाब्दव्रतेर्चीर्णे शुद्धियातियतस्ततः । मन्वादिभिर्यथोद्दिष्टं प्रायश्चित्तं विधानतः
तथाकृत्वानरः पापान्मुच्येत वा न वाऽनघ । विगीतवचनास्ते किं मुनयस्तत्त्वदर्शिनः
याज्ञवल्क्यादयःसर्वे धर्मशास्त्रप्रवर्तकाः । भवितव्यं भवत्येव यद्येवं निश्चयः प्रभो ॥
आयुर्वेदः स मिथ्यैव मन्त्रवादास्तथाऽखिलाः । उद्यमस्तुवृथासर्वमेवंचेद्दैवनिर्मितम्
भवितव्यंभवत्येव प्रवृत्तिस्तु निरर्थिका । अग्निष्टोमादिकंव्यर्थं नियतं स्वर्गसाधनम्
यदातदा प्रमाणं हि वृथैव परिभाषितम् । वितथे तत्प्रमाणे तु धर्मोच्छेदःकुतोन हि
उद्यमे च कृते सिद्धिः प्रत्यक्षेणैव साध्यते । तस्मादत्र प्रकर्तव्यः प्रपञ्चश्चित्तकल्पितः

यथाऽयं बालकः क्षेमं प्राप्नोति मम पुत्रकः । मिथ्याथद्विप्रकर्त्तव्यंवचनंशुभमिच्छता

न तत्र दूषणं किञ्चित्प्रवदन्ति मनीषिणः ।

वसुदेव उवाच

निशामय महाभागे! सत्यमेतद् ब्रवीमि ते ॥ १८ ॥

उद्यमः खलु कर्तव्यः फलं दैववशानुगम् । त्रिविधानीह कर्माणिसंसारेऽत्रपुराविदः
प्रवदन्तीह जीवानां पुराणेष्वागमेषु च । सञ्चितानि च जीर्णानिप्रारब्धानिसुमध्यमे
वर्तमानानि वामोरु त्रिविधानीहदेहिनाम् । शुभाशुभानिकर्माणिबीजभूतानियानिच
बहुजन्मसमुत्थानि काले तिष्ठन्ति सर्वथा । पूर्वदेहं परित्यज्य जीवः कर्मवशानुगः
स्वर्गं वा नरकं वाऽपि प्राप्नोति स्वकृतेन वै । दिव्यंदेहञ्चसंप्राप्ययातनादेहमथवाजम्

भुनक्ति विविधान्भोगान्स्वर्गे वा नरकेऽथ वा ।

भोगान्ते च यदोत्पत्तेः समयस्तस्य जायते ॥ २४ ॥

लिङ्गदेहेन सहितं जायते जीवसंज्ञितम् । तदैव सञ्चितेभ्यश्च कर्मभ्यः कर्मभिः पुनः
योजयत्येव तं कालं कर्माणिप्राकृतानि च । देहेनानेन भाव्यानिशुभानिवाशुभानिच
प्रारब्धानि च जीवेनभोक्तव्यानि सुलोचने । प्रायश्चित्तेननश्यन्तिवर्तमानानिभामिनि

सञ्चितानि तथैवाऽऽशु यथार्थं विहितेन च ।

प्रारब्धकर्मणां भोगात्संक्षयो नाऽन्यथा भवेत् ॥ २८ ॥

तेनायं तेकुमारोवैदेयःकंसायसर्वथा । नमिथ्यावचनंमेऽस्तिलोकनिन्दाऽभिदूषितम्
अनित्येऽस्मिंस्तु संसारे धर्मसारे महात्मनाम् । दैवाधीनंहिसर्वेषांमरणं जननं तथा
तस्माच्छोको नकर्तव्योदेहिनाहिनिरर्थकः । सत्यंयस्यगतंकान्तेवृथातस्यैवजीवितम्
इहलोको गतो यस्मात्परलोकः कुतस्ततः । अतो देहि सुतंसुभ्रु कंसाय प्रददाम्यहम्
सत्यसंस्तरणाद्देवि! शुभमग्रे भविष्यति । कर्तव्यं सुकृतंपुम्भिःसुखे दुःखे सति प्रिये

"सत्यसंरक्षणाद्देवि! शुभमेव भविष्यति ।"

व्यास उवाच

इत्युक्तवति कान्ते सा देवकी शोकसंयुता । ददौ पुत्रंप्रसूतं च वेपमाना मनस्विनी

वसुदेवोऽपि धर्मात्मा आदाय स्वसुतं शिशुम् ।
जगाम कंससदनं मार्गे लोकैरभिष्टुतः ॥ ३५ ॥

लोका ऊचुः

पश्यन्तु वसुदेवं भोलोका एवंमनस्विनम् । स्ववाक्यमनुरुध्यैवबालमादाययात्यसौ
मृत्यवे दातुकामोऽद्य सत्यवागनसूयकः । सफलंजीवितंचाऽस्यधर्मंपश्यन्तुचाद्भुतम्
यः पुत्रं याति कंसाय दातुं कालात्मनेऽपि हि ।

व्यास उवाच

इति संस्तूयमानस्तु प्राप्तः कंसालयं नृप !॥ ३८ ॥
ददावस्मै कुमारं तं जातमात्रममानुषम् । कंसोऽपि विस्मयंप्राप्तोदृष्ट्वाधैर्यंमहात्मनः
गृहीत्वा बालकं प्राह स्मितपूर्वमिदं वचः । धन्यस्त्वं शूरपुत्राद्य ज्ञातःपुत्रसमर्पणात
मम मृत्युर्न चायं वै गिरा प्रोक्तस्तु चाऽष्टमः ।
न हन्तव्यो मया कामं बालोऽयं यातु ते गृहम् ॥ ४१ ॥
अष्टमस्तु प्रदातव्यस्त्वया पुत्रो महामते !। इत्युक्त्वा वसुदेवाय ददावाशुखलः शिशुम्
गच्छत्वयं गृहेबालः क्षेमं व्याहृतवान्नृपः । तमादाय तदा शौरिर्जगाम स्वगृहं मुदा
कंसोऽपि सचिवानाह वृथा किं घातयेशिशुम् । अष्टमाद्देवकीपुत्रान्ममृत्युरुदाहृतः
अतः किं प्रथमं बालं हत्वा पापं करोम्यहम् ।
साधुसाध्विति तेऽप्युक्त्वा संस्थिता मन्त्रिसत्तमाः ॥ ४५ ॥
विसर्जितास्तु कंसेन जग्मुस्ते स्वगृहान्प्रति । गतेषु तेषु सम्प्राप्तो नारदोमुनिसत्तमः
अभ्युत्थानार्घ्यपाद्यादिचकारोग्रसुतस्तदा । प्रपच्छकुशलंराजातत्राऽऽगमनकारणम्
नारदस्तं तदोवाच स्मितपूर्वमिदं वचः । कंस कंस महाभाग ! गतोऽहं हेमपर्वतम्
तत्र ब्रह्मादयो देवा मन्त्रं चक्रुः समाहिताः । देवक्यां वसुदेवस्य भार्यायां सुरसत्तमः
वधार्थं तव विष्णुश्च जन्मचाऽत्रकरिष्यति । तत्कथंनहतःपुत्रस्त्वयानीतिविजानता

:कंस उवाच

अष्टमं च हनिष्येऽहं मृत्युं मे देवभाषितम् ।

नारद उवाच

न जानासि नृपश्रेष्ठ राजनीतिं शुभाशुभम् ॥ ५१ ॥
मायाबलं चदेवानांनत्वंवेत्सिचदामिकिम् । रिपुरल्पोऽपिशूरेणनोपेक्ष्यःशुभमिच्छता
सम्मेलनक्रियायांतुसर्वेतेह्यष्टमाःस्मृताः । मूर्खस्त्वमरिसन्त्यागःकृतोऽयंजानतात्वया
इत्युक्त्वाऽऽशु गतः श्रीमान्नारदो देवदर्शनः । गतेऽथनारदेकंसःसमाहूयाथबालकम्
पाषाणे पोथयामास सुखं प्राप च मन्दधीः ।

इति श्रीदेवीभागवतेमहापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यांसंहितायां चतुर्थस्कन्धे
कंसेनदेवकीप्रथमपुत्रवधवर्णनंनामैकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

द्वाविंशोऽध्यायः

कंसेनदेवक्याःषड्बालकानांवधस्तेषांपूर्वजन्मकथाच

जनमेजय उवाच

किं कृतं पातकं तेन बालकेन पितामह । यो जातमात्रोनिहतस्तथा तेन दुरात्मना ॥
नारदोऽपि मुनिश्रेष्ठो ज्ञानवान्धर्मतत्परः । कथमेवंविधं पापं कृतवान्ब्रह्मवित्तमः ॥
कर्ता कारयिता पापे तुल्यपापौ स्मृतौ बुधैः । सकथंप्रेरयामासमुनिःकंसं खलं तदा
संशयोऽयं महान्मेऽत्र ब्रूहिसर्वं सविस्तरम् । येनकर्मविपाकेन बालको निधनं गतः

व्यास उवाच

नारदः कौतुकप्रेक्षी सर्वदा कलहप्रियः । देवकार्यार्थमागत्य सर्वमेतच्चकार ह ॥
न मिथ्याभाषणे बुद्धिर्मुनेस्तस्य कदाचन । सत्यवक्ता सुराणांसकर्तव्येनिरतःशुचिः
एवं षड् बालकास्तेन जाताजातानिपातिताः । षड्गर्भाःशापयोगेनसंभूयमरणंगताः
शृणुराजन्प्रवक्ष्यामि तेषांशापस्यकारणम् । स्वायम्भुवेऽन्तरेपुत्रामरीचेषण्महाबलाः
ऊर्णायांचैव भार्यायामासन्धर्मविचक्षणाः । ब्रह्माणं जहसुर्वीक्ष्यसुतां यमितुमुद्यतम्

शशाप तांस्तदा ब्रह्मा दैत्ययोनिं विशध्वम्। कालनेमिसुता जातास्ते षड्गर्भा विशांपते
अवतारे परे ते तु हिरण्यकशिपोः सुताः। जातास्ते ज्ञानसंयुक्ताः पूर्वशापभयान्नृप
तस्मिञ्जन्मनि शान्ताश्च तपश्चक्रुः समाहिताः।
तेषां प्रीतोऽभवद् ब्रह्मा षड्गर्भाणां वरान्ददौ ॥ १२ ॥

ब्रह्मोवाच

शप्तायूयं मयापूर्वं क्रोधयुक्तेन पुत्रकाः। तुष्टोऽस्मि वो महाभागा ब्रुवन्तु वाञ्छितं वरम्

व्यास उवाच

ते तु श्रुत्वा वचस्तस्य ब्रह्मणः प्रीतमानसाः। ब्रह्माणमब्रुवन्कामं सर्वे कार्यार्थतत्पराः

गर्भा ऊचुः

पितामहाद्य तुष्टोऽसि देहि नो वाञ्छितं वरम्। अवध्या देवतैः सर्वैर्मानवैश्च महोरगैः
गन्धर्वसिद्धपतिभिर्वधो मा भूत्पितामह।

व्यास उवाच

तानुवाच ततो ब्रह्मा सर्वमेतद्भविष्यति ॥ १६ ॥

गच्छन्तु वो महाभागाः सत्यमेव न संशयः। दत्त्वा वरं ततो ब्रह्मा मुदितास्ते तदाऽभवन्
हिरण्यकशिपुः क्रुद्धस्तानुवाच कुरूद्वह। यस्माद्विहाय मां पुत्रास्तोषितो वै पितामहः
वरेण प्रार्थितोऽत्यर्थं बलवन्तो यतोऽभवन्।
युष्माभिर्हापितः स्नेहस्ततो युष्मांस्त्यजाम्यहम् ॥ १६ ॥

यूयं व्रजन्तु पाताले षड्गर्भा विश्रुता भुवि। पाताले निद्रयाऽऽविष्टास्तिष्ठन्तु बहुवत्सरान्
ततस्तु देवकीगर्भे वर्षे वर्षे पुनः पुनः। पिता वः कालनेमिस्तु तत्र कंसो भविष्यति
स एव जातमात्रान्वो वधिष्यति सुदारुणः।

व्यास उवाच

एवं शप्तास्तदा तेन गर्भे जातान्पुनः पुनः ॥ २२ ॥

जघान देवकीपुत्रान्षड्गर्भाञ्छापनोदितः। शेषांशः सप्तमस्तत्र देवकीगर्भसंस्थितः
विस्रंसितश्च गर्भोऽसौ योगेन योगमायया। नीतश्च रोहिणीगर्भे कृत्वा संकर्षणं बलात्

पतितः पंचमे मासि लोकख्यातिंगतस्तदा । कंसोऽपिज्ञातवांस्तत्रदेवकीगर्भपातनम्
मुदं प्राप स दुष्टात्मा श्रुत्वावार्तांसुखावहाम् । अष्टमेदेवकीगर्भेभगवान्सात्वतांपतिः
उवास देवकार्यार्थं भारावतरणाय च ।

राजोवाच

वसुदेवः कश्यपांशः शेषांशश्च तदाऽभवत् ॥ २७ ॥
हरेरंशस्तथा प्रोक्तो भवता मुनिसत्तम । अन्ये च येंऽशादेवानां तत्र जातास्तुतान्वद
भारावतरणार्थं वै क्षितेः प्रार्थनयाऽनघ ।

व्यास उवाच

सुराणामसुराणां च ये येंऽशा भुवि विश्रुताः ॥ २९॥
तानहंसंप्रवक्ष्यामि संक्षेपेण शृणुष्वतान् । वसुदेव.कश्यपांशो देवकी च तथाऽदितिः
बलदेवस्त्वनंतांशो वर्तमानेषु तेषु च । योऽसौ धर्मसुतः श्रीमान्नारायण इति श्रुतः
तस्यांशो वासुदेवस्तुविद्यमाने मुनौ तदा । नरस्तस्यानुजोयस्तुतस्यांशोऽर्जुनएवच
युधिष्ठिरस्तु धर्मांशोवाय्वंशोभीमइत्युत । अश्विन्यंशौततःप्रोक्तौमाद्रीपुत्रौमहाबलौ
सूर्यांशः कर्णआख्यातोधर्मांशोविदुरस्मृतः । द्रोणोवृहस्पतेरंशस्तत्सुतस्तुशिवांशजः
समुद्रः शन्तनुः प्रोक्तो गङ्गा भार्या मताबुधैः । देवकस्तुसमाख्यातोगन्धर्वपतिरागमे
वसुर्भीष्मो विराटस्तु मरुद्गण इतिस्मृतः । अरिष्टस्यसुतोहंसो धृतराष्ट्रः प्रकीर्तितः
मरुद्गणः कृपः प्रोक्तः कृतवर्मा तथापरः । दुर्योधनः कलेरंशः शकुनिं विद्धि द्वापरम्
सोमपुत्रः सुवर्चाख्यः सोमप्ररूदाहृतः । पावकांशो धृष्टद्युम्न शिखण्डी राक्षसस्तथा
सनत्कुमारस्यांशस्तु प्रद्युम्नः परिकीर्तितः । द्रुपदो वरुणस्यांशो द्रौपदी च रमांशजा
द्रौपदीतनयाः पञ्च विश्वेदेवांशजाः स्मृताः ।
कुन्तिः सिद्धिर्धृतिर्माद्री मतिर्गांधारराजजा ॥ ४० ॥
कृष्णपत्न्यस्तथा सर्वदेववराङ्गनाः स्मृताः । राजानश्च तथासर्वेअसुराःशक्रनोदिताः
हिरण्यकशिपोरंशः शिशुपालउदाहृतः । विप्रचित्तिर्जरासन्धः शल्यः प्रह्लाद इत्यपि
कालनेमिस्तथा कंसः केशी हयशिरास्तथा । अरिष्टोबलिपुत्रस्तुककुद्मी गोकुले हतः

अनुह्रादो धृतकेतुर्भगदत्तोऽथबाष्कलः । लम्बःप्रलम्बसञ्जातः खरोऽसौ धेनुकोऽभवत्
वाराहश्च किशोरश्च दैत्यौपरमदारुणौ । मल्लौतावेव सञ्जातौ ख्यातौचाणूरमुष्टिकौ॥
दितिपुत्रस्तथाऽरिष्टो गजः कुवलयाभिधः ।
बलिपुत्री बकी ख्याता बकस्तदनुजः स्मृतः ॥ ४६ ॥
यमो रुद्रस्तथा कामः क्रोधश्चैव चतुर्थकः । तेपामंशैस्तु सञ्जातो द्रोणपुत्रो महाबलः
अंशावतरणेपूर्वं दैतेया राक्षसास्तथा । जाताःसर्वे सुरांशास्ते क्षितिभारावतारणे
एतेषां कथितं राजन्नंशावतरणं नृप । सुराणां चासुराणाञ्च पुराणेषु प्रकीर्तितम् ॥
यदा ब्रह्मादयो देवाः प्रार्थनार्थं हरिंगताः । हरिणा च तदादत्तौकेशौखलुसितासितौ
श्यामवर्णस्ततःकृष्णःश्वेतःसंकर्षणस्तथा । भारावतारणार्थंतौ जातौदेवांशसम्भवौ
अंशावतरणं चैतच्छृणोति भक्तिभावतः । सर्वपापविनिर्मुक्तो मोदते स्वजनैर्वृतः ॥
इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यांसंहितायांचतुर्थस्कन्धे
देवदानवानामंशावतरणवर्णनंनामद्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

त्रयोविंशोऽध्यायः

देवक्याअष्टमबालकोत्पत्तिवर्णनम्

व्यास उवाच

हतेषु षट्सु पुत्रेषु देवक्या औग्रसेनिना । सप्तमे पतिते गर्भे वचनान्नारदस्य च ॥१॥
अष्टमस्य च गर्भस्य रक्षणार्थमतन्द्रितः । प्रयत्नमकरोद्राजा मरणं स्वं विचिन्तयन् ॥
समये देवकीगर्भे प्रवेशमकरोद्धरिः । अंशेन वसुदेवे तु समागत्य यथाक्रमम् ॥ ३ ॥
तद्वेयं योगमाया च यशोदायां यथेच्छया । प्रवेशमकरोद्देवी देवकार्यार्थसिद्धये ॥४॥
रोहिण्यास्तनयोरामो गोकुलेसमजायत । यतःकंसभयोद्विग्नासंस्थितासाचकामिनी
कारागारे ततः कंसो देवकीं देवसंस्तुताम् ।

स्थापयामास रक्षार्थं सेवकान्समकल्पयत् ॥ ६ ॥

वसुदेवस्तु कामिन्याः प्रेमतन्तुनियन्त्रितः । पुत्रोत्पत्तिञ्चसञ्चिन्त्यप्रविष्टःसहभार्यया
देवकीगर्भगोविष्णुर्देवकार्यार्थसिद्धये । संस्तुतोऽमरसंघैश्च व्यवर्धत यथाक्रमम् ॥
सञ्जाते दशमे तत्र मासेऽथ श्रावणेशुभे । प्राजापत्यर्क्षसंयुक्तेकृष्णपक्षेऽष्टमी दिने ॥
कंसस्तु दानवान्सर्वानुवाच भयविह्वलः । रक्षणीया भवद्भिश्च देवकी गर्भमन्दिरे ॥
अष्टमोदेवकीगर्भः शत्रुर्मे प्रभविष्यति । रक्षणीयः प्रयत्नेन मृत्युरूपः स बालकः ॥
हत्वैनंबालकंदैत्याःसुखंस्वप्स्यामिमन्दिरे । निवृत्तिवर्जितेदुःखे नाशितेचाऽष्टमेसुते
खड्गप्रासधराः सर्वे तिष्ठन्तु धृतकार्मुकाः । निद्रातन्द्राविहीनाश्चसर्वत्र निहतेक्षणाः

व्यास उवाच

इत्यादिश्यासुरगणान्कंसोऽतिभयविह्वलः ।
मन्दिरं स्वं जगामाऽऽशु न लेभे दानवः सुखम् ॥ १४ ॥

निशीथे देवकी तत्र वसुदेवमुवाच ह । किं करोमि महाराज प्रसवावसरो मम ॥१५
बहवो रक्षपालाश्च तिष्ठन्त्यत्रभयानकाः । नन्दपत्न्यामयासार्धंकृतोऽस्तिसमयः पुरा
प्रेषितव्यस्त्वयापुत्रो मन्दिरेममानिनि । पालयिष्याम्यहं तत्र तवातिमनसा किल
अपत्यन्ते प्रदास्यामिकंसस्यप्रत्ययायवै । किं कर्तव्यं प्रभोवाऽद्यविषमे समुपस्थिते
व्यत्यय सन्ततेः शौरे कथं कर्तुं क्षमो भवेः । दूरेतिष्ठस्वकान्ताद्यलज्जामेऽतिदुरत्यया
परावृत्यमुखंस्वामिन्नन्यथा किं करोम्यहम् । इत्युक्त्वातंमहाभागंदेवकीदेवसम्मतम्
बालकं सुषुवे तत्र निशीथे परमाद्भुतम् । तं दृष्ट्वा विस्मयं प्राप देवकी बालकं शुभम्
पतिं प्राह महाभागा हर्षोत्फुल्लकलेवरा । पश्यपुत्रमुखं कान्त दुर्लभं हि तव प्रभो !॥
अद्यैनंकालरूपोऽसौ घातयिष्यतिभ्रातृजः । वसुदेवस्तथेत्युक्त्वातमादायकरे सुतम्
अपश्यच्चाननं तस्य सुतस्याद्भुतकर्मणः । वीक्ष्य पुत्रमुखं शौरिश्चिन्ताविष्टो बभूव ह
किंकरोमिकथं न स्याद्दुःखमस्यकृतेमम । एवंचिन्तातुरेतस्मिन्वागुवाचाशरीरिणी
वसुदेवं समाभाष्य गगने विशदाक्षरा । वसुदेव गृहीत्वैनं गोकुलं नय सत्वरः ॥
रक्षपालास्तथा सर्वेमयानिद्राविमोहिताः । विवृतानिकृतान्यष्ट कपाटानिच शृङ्खलाः

मुक्त्वैव नन्दगेहेऽथ योगमाया समानय। श्रुत्वैव वसुदेवस्तु तस्मिन्कारागृहे गत॥
विवृतद्वारमालोक्य बभूव तरसा नृप। तमादाय ययावाशु द्वारपालैरलक्षित ॥२६
कालिन्दीतटमासाद्य पुर दृष्ट्वासुनिम्नितम्। तदैवकटिदघ्नीसा बभूवाऽऽशु सरिद्वरा॥
योगमायाप्रभावेण ततारानकदुन्दुभि। गत्वा तु गोकुल शौरिर्निशीथेनिर्जने पथि

नन्दद्वारे स्थित पश्यन्विभूति पशुसञ्ज्ञिताम्।

तदैव तत्र सञ्जाता यशोदा गर्भसम्भवा ॥ ३२ ॥

योगमायाशजादेवीत्रिगुणादिव्यरूपिणी। जातातावालिकादिव्यागृहीत्वाकरपङ्कजे
तत्रागत्यददौ देवी सैरन्ध्रीरूपधारिणी। वसुदेव सुत दत्त्वा सैरन्ध्रीकरपङ्कजे॥
तामादाययथौशीघ्र बालिकामुदिताशय। कारागारे ततोगत्वा देवक्या शयनेसुताम्
नि क्षिप्यसस्थित पार्श्वेचिन्ताविष्टोभयाऽऽतुर। रुरोदसुस्वरकन्यातदैवागतसञ्ज्ञका
उत्तस्थु सेवका राज्ञ श्रुत्वातद्रुदित निशि। तमूचुभूपतिगत्वात्वरितास्तेऽतिविह्वला
देवक्याश्चसुतोजात शीघ्रमेहि महामते। तदाकर्ण्य वचस्तेषा शीघ्र भोजपतिर्ययौ

प्रावृत द्वारमालोक्य वसुदेवमथाह्वयत्।

कस उवाच

सुतमानय देवक्या वसुदेव ! महामते ! ॥ ३६ ॥

मृत्युर्मे चाऽष्टमो गर्भस्तन्निहन्मि रिपु हरिम्।

व्यास उवाच

श्रुत्वा कसवच शौरिर्भयत्रस्तविलोचन ॥ ४० ॥

तामादाय सुता पाणौददौचाऽऽशुरुदन्निव। दृष्ट्वाऽथ दारिका राजाविस्मयपरमगत
देववाणी वृथा जाता नारदस्य च भाषितम्। वसुदेव कथकुर्यादनृत ... स्थित
रक्षपालाश्च मे सर्वेसावधाना न सशय। कुतोऽत्रकन्यकाकामक्रगत ससुत किल

सन्देहोऽत्र न कर्तव्य कालस्य विषमागति।

इति सञ्चिन्त्य ता बाला गृहीत्वा पादयो खल ॥ ४४ ॥

पोथयामास पाषाणे निर्घृण कुलपासन।

सा कराक्षिःसृता बाला ययावाकाशमण्डलम् ॥ ४५ ॥
दिव्यरूपा तदा भूत्वा तमुवाच मृदुस्वना । किं मयाहतयापाप जातस्ते बलवान्रिपुः
हनिष्यतिदुराराध्यःसर्वथात्वांनराधमम् । इत्युक्त्वासागताकन्यागगनंकामगाशिवा
कंसस्तुविस्मयाविष्टो गतोनिजगृहं तदा । आनाय्यदानवान्सर्वानिदं वचनमब्रवीत्
बकधेनुकवत्सादीन्क्रोधाविष्टोभयाऽऽतुरः । गच्छन्तुदानवाः सर्वेममकार्यार्थसिद्धये
जातमात्राश्चहन्तव्याबालकायत्रकुत्रचित् । पूतनैषाव्रजत्वद्य बालघ्नी नन्दगोकुलम्
जातमात्रान्विनिघ्नन्ती शिशूंस्तत्र ममाऽऽज्ञया ।
धेनुको वत्सकः केशी प्रलम्बो बक एव च ॥ ५१ ॥
सर्वे निघ्नन्तु तत्रैव मम कार्यचिकीर्षया । इत्याज्ञाप्यासुरान्कंसोययौनिजगृहं खलः
चिन्ताविष्टोऽतिदीनात्मा चिंतयित्वैव तं पुनः ॥ ५३ ॥
इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां चतुर्थस्कन्धे
कंसप्रतियोगमायांवाक्यश्रवणंनामत्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

चतुर्विंशोऽध्यायः

श्रीकृष्णचरित्रवर्णनम्

व्यास उवाच

प्रातर्नन्दगृहेजातः पुत्रजन्ममहोत्सवः । किं वदंत्यथ कंसेन श्रुता चारमुखादपि ॥१
आनातिवसुदेवस्य दारास्तत्र वसंतिहि । यशोदादासवर्गाश्च सर्वे ते नन्दगोकुले ॥२
तेन शंकासमाविष्टो गोकुलं प्रतिमारत । नारदेनाऽपि तत्सर्वं कथितं कारणम्पुरा ॥
गोकुलेये च नन्दाद्यास्तत्पत्न्यश्च सुरांशजाः । देवकीवसुदेवाद्याःसर्वे ते ह्यंशतःकिल
इति नारदवाक्येन बोधितोऽसौकुलाधमः । जातःकोपमना राजन्कंसः परमपापकृत्
पूतना निहता तत्र कृष्णेनाऽमिततेजसा । बको वत्सासुरश्चापि धेनुकश्च महाबलः

प्रलम्बो निहतस्तेन तथा गोवर्धनो धृत । श्रुत्वैतत्कर्म कसस्तु मेने मरणमात्मन
तथा विनिहत केशीज्ञात्वा कसोऽतिदुर्मना । धनुर्यागमिषेणाशुतावानेतु प्रचक्रमे॥
अक्रूर प्रेषयामास क्रूर पापमतिस्तदा । आनेतु रामकृष्णौ च वधायामितविक्रमौ
रथमारोप्य गोपालौ गोकुलान्नन्दिनीसुत ।
आगतो मथुरायां तु कसादेशे स्थित किल ॥ १० ॥
तावागत्य तदातत्र धनुर्भङ्गञ्च चक्रतु । हत्वाथ रजक काम गज चाणूरमुष्टिकम् ॥
शलञ्चतोशलञ्चैव निजघ्नान हरिस्तदा । जघान कस देवेश केशेष्वाकृष्य लीलया ॥
पितरौ मोचयित्वाऽथ गतदु खौचकारह । उग्रसेनाय राज्य तद्ददावरिनिषूदन ॥
वसुदेवस्तयोस्तत्र मौजीबन्धनपूर्वकम् । कारयामास विधिवद्व्रतबन्ध महामना ॥
उपनीतौतदा तौ तु गतौ सादीपनालयम् ।
विद्या सर्वा समभ्यस्य मथुरामागतौ पुन ॥ १५ ॥
जातौ द्वादशवार्षीयौ कृतविद्यौमहाबलौ । मथुरायास्थितौवीरौ सुतावानकदुन्दुभे
मागधस्तुजरासधोजामातृवधदु खित । कृत्वा सैन्यसमाज स मथुरामागत पुरीम्
स सप्तदशवारन्तु कृष्णेनकृतबुद्धिना । जित सग्राममासाद्य मधुपुर्या निवासिना ॥
पश्चाच्चप्रेरितस्तेन स कालयवनाभिध । सवम्लेच्छाधिप शूरो यादवाना भयकर
श्रुत्वा यवनमायान्त कृष्ण सर्वान्यदूत्तमान् ।
आनाय्य च तथा राममुवाच मधुसूदन ॥ २० ॥
भय नोऽत्र समुत्पन्न जरासधान्महाबलात् । कि कर्तव्यमहाभागयवन समुपैति वै
प्राणत्राणप्रकर्तव्य त्यक्त्वा गेह बल धनम् । सुखेनस्थीयतेयत्र सदेश खलुपैत्रिक
सदोद्वेगकर कामकिकर्तव्य कुलोचित । शैलसागरसान्निध्ये स्थातव्यसुखमिच्छता
यत्र वैरिभयनस्यात्स्थातव्यतत्रपण्डितै । शेषशय्या समाश्रित्यहरि स्वपितिसागरे
तथैवच भयाद्भीत कैलासे त्रिपुरार्दन । तस्मान्मत्रैवस्थातव्यमस्माभि शत्रुतापितै
द्वारवत्यागमिष्याम सहिता सर्व एव वै । कथितागरुडेनाऽद्य रम्या द्वारवती पुरी
रैवताचलसांनिध्ये सिन्धुकूले मनोहरा ।

व्यास उवाच

तच्छ्रुत्वा वचनं तथ्यं सर्वे यादवपुङ्गवाः ॥ २७ ॥

गमनायमतिं चक्रुः सकुटुम्बाःसवाहनाः । शकटानितथोष्ट्राश्च वाम्यश्च महिषास्तथा
धनपूर्णानिकृत्वा ते निर्ययुर्नगराद्बहिः । रामकृष्णौ पुरस्कृत्य सर्वे ते सपरिच्छदाः
अग्रेकृत्वाप्रजाःसर्वाश्चेलुःसर्वेयदूत्तमाः । कतिचिद्दिवसैः प्रापुःपुरींद्वारावतीं किल

शिल्पिभिःकारयामास जीर्णोद्धारं हि माधवः ।

संस्थाप्य यादवांस्तत्र तावेतौ बलकेशवौ ॥ ३१ ॥

तरसा मथुरामेत्य संस्थितौ निर्जनंपुरीम् । तदा तत्रैव सम्प्राप्तो बलवान्यवनाधिपः
ज्ञात्वैनमागतं कृष्णो निर्ययौ नगराद्बहिः । पदातिरग्रे तस्याभूद्यवनस्य जनार्दनः ॥
पीताम्बरधरः श्रीमान्प्राहसन्मधुसूदनः । तं दृष्ट्वा पुरतो यान्तं कृष्णं कमललोचनम्
यवनोऽपि पदाशः सन्पृष्ठतोऽनुगतःखलः । प्रसुप्तो यत्र राजर्षिर्मुचुकुन्दो महाबलः ॥
प्रययौ भगवांस्तत्र सकालयवनो हरिः । तत्रैवान्तर्दधे विष्णुर्मुचुकुन्दं समीक्ष्य च ॥
तत्रैव यवनः प्राप्तः सुप्तभूतमपश्यत । मत्वा तं वासुदेवं स पादेनाऽताडयन्नृपम् ३७
प्रबुद्धः क्रोधरक्ताक्षस्तं ददाह महाबलः । तं दग्ध्वा मुचुकुन्दोऽथ ददर्शकमलेक्षणम्
वासुदेवं सुदेवेशं प्रणम्य प्रस्थितो वनम् । जगाम द्वारकां कृष्णो बलदेवसमन्वितः
उग्रसेनं नृपं कृत्वा विजहार यथारुचि । अहरद्रुक्मिणीं कामं शिशुपालस्वयम्वरात्
राक्षसेनविवाहेन चक्रे दारविधिंहरिः । ततोजाम्बवतींसत्यांमित्रविन्दाञ्चभामिनीम्
कालिन्दींलक्ष्मणांभद्रांतथानाग्नजितींशुभाम् । पृथक्पृथक्समानीयाप्युपयेमेजनार्दनः
अष्टावेव महीपालपत्न्यः परमशोभनाः । प्रासूतरुक्मिणी पुत्रं प्रद्युम्नं चारुदर्शनम् ॥
जातकर्मादिकं तस्य चकार मधुसूदनः । हृतोऽसौ सूतिकागेहाच्छम्बरेण बलीयसा
नीतश्च स्वपुरीं बालो मायावत्यैसमर्पितः । वासुदेवो हृतं दृष्ट्वा पुत्रशोकसमन्वितः
जगाम शरणं देवीं भक्तियुक्तेन चेतसा । वृत्रासुराद्यो दैत्या लीलयैव यया हताः ॥

ततोऽसौ योगमायायाश्चकार परमांस्तुतिम् ।

वचोभिः परमोदारैरक्षरैः स्तवनैः शुभैः ॥ ४७ ॥

श्रीकृष्ण उवाच

मातर्मयाऽतितपसा परितोषिता त्व प्राग्जन्मनि प्रद्युमनादिभिरर्चिताऽसि ।
धर्मात्मजेन बदरीवनखण्डमध्ये कि विस्मृतो जननि' ते त्वयिभक्तिभाव ॥४८
सूतीगृहादपहृत किमु बालको मे केनाऽपि दुष्टमनसाऽप्यथ कौतुकाद्वा ।
मानापहारकरणाय ममाद्य नून लज्जा तवाम्ब खलु भक्तजनस्य युक्ता ॥ ४६ ॥
दुर्गो महानतितरा नगरी सुगुप्ता तत्राऽपि मेऽतिसदन किल मध्यभागे ।
अन्त पुरे च पिहित ननु सूतिगेह बालो हृत खलु तथाऽपि ममैव दोषात ॥५०
नाऽह गत परपुर न च यादवाश्च रक्षावताव नगरी किल वीरवर्यै ।
माया तथैव जननि' प्रकटप्रभावा मे बालक परिहृत कुहकेन केन ॥ ५१ ॥
नो वेदम्यह जननि' ते चरित सुगुप्त को वेद मन्दमतिरल्पविदेव देही ।
क्वाऽसौ गतो मम भटैर्नच वीक्षितो वा हर्ताऽम्बिके जवनिका तव कल्पितेयम्
चित्र न तेऽत्र पुरतो मम मातगभान्नातस्त्वयाऽर्थसमये किल माययाऽसौ ॥
य रोहिणी हलधर सुषुवे प्रसिद्ध दूरे स्थिता पतिपरा मिथुन विनाऽपि ॥ ५३॥
सृष्टि करोषि जगतामनुपालनञ्च नाश तथैव पुनरप्यनिश गुणैस्त्वम् ।
को वेद तेऽब चरित दुरितान्तकारि प्रायेण सत्र्वमखिल विहित त्वयैतत ॥५४॥
उत्पाद्य पुत्रजननप्रभव प्रमोद दत्त्वा पुनर्विरहज किल दु खभारम् ।
त्व क्रीडसे सुललिते खलु तैर्विहारैर्नो चेत्कथ मम सुतास्तिरतिवृथा स्यात ॥
माताऽस्य रोदिति भृश कुररीव बाला दु ख तनोति मम सन्निधिगा सदैव ।
कष्ट न वेत्सि ललितेऽप्रमितप्रभावे मातस्त्वमेव शरण भवपीडितानाम् ॥५६
सीमा सुखस्य सुतजन्म तदीयनाशो दु खस्य देवि' भवने विबुधा वदन्ति ।
तत्कि करोमि जननि' प्रथमे प्रनष्टे पुत्रे ममाऽद्य हृदय स्फुटतीव मात ' ॥५७
यज्ञ करोमि तव तुष्टिकर व्रत वा दैव च पूजनमथाऽखिलदु खहात्वम् ।
मात ' सुतोऽत्र यदि जीवति दर्शयाऽऽशु
त्व वै क्षमा सकलशोकविनाशनाय ॥ ५८ ॥

व्यास उवाच

एवंस्तुतातदादेवी कृष्णेनाऽक्लिष्टकर्मणा । प्रत्यक्षदर्शना भूत्वा तमुवाच जगद्गुरुम्

श्रीदेव्युवाच

शोकं मा कुरु देवेश शापोऽयंतेपुरातनः । तस्य योगेन पुत्रस्ते शम्बरेण हृतोबलात्
अतस्ते षोडशेवर्षे हत्वा तं शम्बरंबलात् । आगमिष्यति पुत्रस्ते मत्प्रसादान्नसंशयः

व्यास उवाच

इत्युक्त्वांऽतर्दधेदेवीचण्डिकाचण्डविक्रमा । भगवानपिपुत्रस्यशोकंत्यक्त्वाभवत्सुखी

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यांसंहितायां चतुर्थस्कन्धे
देव्याकृष्णशोकापनोदनंनामचतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

पञ्चविंशोऽध्यायः

पराशक्तेःसर्वज्ञत्वकथनम्

राजोवाच

सन्देहो मे मुनिश्रेष्ठ जायते वचनात्तव । वैष्णवांशे भगवति दुःखोत्पत्तिविलोक्यच
नारायणांशसम्भूतो वासुदेवः प्रतापवान् । कथं स सूतिकागारात् धृतोबालो हरेरपि
सुगुप्तनगरेरम्ये सुप्तेऽथ सूतिकागृहे । प्रविश्य तेन दैत्येन गृहीतोऽसौ कथं शिशुः ॥
न ज्ञातो वासुदेवेन चित्रमेतन्ममाद्भुतम् । जायतेमहदाश्चर्यं चित्ते सत्यवतीसुत !॥४॥
ब्रूहि तत्कारणं ब्रह्मन ज्ञातं केशवेन यत् । हरणं तत्र संस्थेन शिशोर्वा सूतिकागृहात्

व्यास उवाच

माया बलवतीराजन्नराणांबुद्धिमोहिनी । शाम्भवीविधृतालोके कोवामोहं न गच्छति
मानुषं जन्मसंप्राप्यगुणाःसर्वेऽपि मानुषाः । भवन्तिदेहजाःकामं नदेवानासुरास्तदा
क्षुत्तृण्निद्राभयं तन्द्रा व्यामोहः शोकसंशयः । हर्षश्चैवाऽभिमानश्च जरा मरणमेव च

अज्ञान ग्लानिरप्रीतिरीर्ष्याऽसूया मद श्रम । एतेदेहभवाभावा प्रभवन्ति नराधिप
यथा हेममृग रामो नबुबोध पुरोगतम् । जानक्या हरण चैव जटायुमरण तथा ॥
अभिषेकदिने रामो वनवास न वेद च । तथा न ज्ञातवान्राम स्वशोकान्मरणपितु
अज्ञवद्विचाराऽसौ पश्यमानो वनेवने । जानकी न विवेदाऽथ रावणेन हृता बलात्
सहायान्वानरान्कृत्वा हत्वा शक्रसुत बलात् ।
सागरे सेतुबन्ध च कृत्वोत्तीर्य सरित्पतिम् ॥ १३ ॥
प्रेषयामास सर्वासु दिक्षु तान्कपिकुञ्जरान् । सग्राम कृतवान्घोर दु ख प्रापरणाजिरे
बन्धन नागपाशेन प्रापरामो महाबल । गरुडान्मोक्षण पश्चादन्वभूद्रघुनन्दन ॥१५
अहनद्रावण सख्ये कुम्भकर्ण महाबलम् । मेघनाद निकुम्भच कुपितो रघुनन्दन ॥
अदूष्यत्व च जानक्या न विवेद जनार्दन ।
दिव्य च कारयामास ज्वलिताग्नौ प्रवेशनम् ॥ १७ ॥
लोकापवादात्तत्पर ततस्तत्याज तांप्रियाम् । अदूष्यादूषितामत्वासीतादशरथात्मज
न ज्ञातौ स्वसुतौ तेन रामेण च कुशीलवौ ।मुनिनाकथितौतौतुतस्यपुत्रौ महाबलौ
पातालगमन चैव जानक्याज्ञातवान्न च । राघव कोपसयुक्तो भ्रातर हन्तुमुद्यत ॥
कालस्याऽऽगमनचैव न विवेद खरान्तक । मानुष देहमाश्रित्य चक्र मानुषचेष्टितम्
तथैवमानुषान्भावान्नात्र कार्याविचारणा । पूव कसभयात्प्रातो गोकुले यदुनन्दन
जरासन्धभयात्पश्चाद् द्वारवत्या गतो हरि ।
अधर्म कृतवान्कृष्णो रुक्मिण्या हरण च यत् ॥ २३ ॥
शिशुपालहृतायाश्च जानन्धर्म सनातनम् । शुशोच बालककृष्ण शबरेण हृत बलात्
मुमोद जानन्पुत्र त हर्षशोकयुतस्तत । सत्यभामाज्ञयायत्त युयुधे स्वर्ग त किल ॥
इन्द्रेणपादपार्थ तु स्त्रीजितस्त्व प्रकाशयन् । जहारकल्पवृक्ष य पराभूय शतक्रतुम् ॥
मानिनीमानरक्षार्थं हरिश्चित्रधर प्रभु । बद्ध्वा वृक्षेहरिसत्या नारदाय ददौ पतिम्
दत्त्वाऽथ कानक कृष्ण मोचयामास भामिनी । दृष्ट्वापुत्रान्पृथगुणान्प्रद्युम्नप्रमुखानथ
कृष्ण जाम्बवती दीना ययाचे सन्तति शुभाम् ।

स ययौ पर्वतं कृष्णस्तपस्याकृतनिश्चयः ॥ २६ ॥
उपमन्युर्मुनिर्यत्र शिवभक्तः परन्तपः । उपमन्युं गुरुं कृत्वा दीक्षां पाशुपतीं हरिः
जग्राह पुत्रकामस्तु मुण्डी दण्डी बभूव ह । उग्रं तत्र तपस्तेपे मासमेकं फलाशनः
जजाप शिवमन्त्रं तु शिवध्यानपरो हरिः । द्वितीयेतु जलाहारस्तिष्ठन्नेकपदा हरिः
तृतीये वायुभक्षस्तु पादाङ्गुष्ठाग्रसंस्थितः । षष्ठेतु भगवान्रुद्रः प्रसन्नो भक्तिभावतः
दर्शनं च ददौ तत्र सोमः सोमकलाधरः । आजगामवृषारूढः सुरैरिंद्रादिभिर्वृतः ॥
ब्रह्मविष्णुयुतः साक्षाद्यक्षगन्धर्वसेवितः । संबोधयन्वासुदेवं शङ्करस्तमुवाच ह ॥
तुष्टोऽस्मि कृष्णतपसातवोग्रेणमहामते । ददामि वाञ्छितान्कामान्ब्रूहि यादवनन्दन
मयिदृष्टे कामपूरे कामशेषो न सम्भवेत् ।

व्यास उवाच

तं दृष्ट्वा शङ्करं तुष्टं भगवान्देवकीसुतः ॥ ३७ ॥
पपात पादयोस्तस्य दण्डवत्प्रेमसंयुतः । स्तुतिंचकार देवेशो मेघगम्भीरया गिरा
स्थितस्तु पुरतः शम्भोर्वासुदेवः सनातनः ।

कृष्ण उवाच

देव ! देव ! जगन्नाथ ! सर्वभूतार्तिनाशन ! ॥ ३६ ॥
विश्वयोने! सुरारिघ्न नमस्त्रैलोक्यकारक । नीलकण्ठनमस्तुभ्यं शूलिने ते नमो नमः
शैलजावल्लभायाथ यज्ञघ्नाय नमोऽस्तुते । धन्योऽहं कृतकृत्योऽहं दर्शनात्तव सुव्रत
जन्म मे सफलंजातंनत्वातेपादपङ्कजम् । बद्धोऽहंस्त्रीमयैःपाशैःसंसारेऽस्मिञ्जगद्गुरो
शरणं तेऽद्य सम्प्राप्तो रक्षणार्थं त्रिलोचन । सम्प्राप्यमानुषंजन्मखिन्नोऽहंदुःखनाशन
त्राहिमां शरणं प्राप्तं भवभीतं भवाऽधुना । गर्भवासे महद् दुःखं प्राप्तं मदनदाहक !
जन्मतः कंसभयजमनुभूतं च गोकुले । जातोऽहं नन्दगोपालो बहुवाक्याकरस्तथा
गोरजःकीर्णकेशस्तु भ्रमन्वृन्दावने घने । म्लेच्छराजभयत्रस्तो गतो द्वारवतीं पुनः ॥
त्यक्त्वा पित्र्यं शुभं देशं माथुरं दुर्लभं विभो । ययातिशापबद्धेन तस्मैदत्तंमयाद्विभो
राज्यं सुपुष्टमपि च धर्मरक्षा परेण च । उग्रसेनस्य दासत्वं कृतं वै सर्वदा मया ॥

राजाऽसौ यादवानां वै कृतो न पूर्वजैः किल ।
गार्हस्थ्यं दुःखदं शम्भो! स्त्रीवश्यं धर्मखण्डनम् ॥ ४६ ॥
पारतन्त्र्यं सदाबन्धो मोक्षवार्ताऽत्र दुर्लभा ।
रुक्मिण्यास्तनयान्दृष्ट्वा भार्या जाम्बवती मम ॥ ५० ॥
प्रेरयामास पुत्रार्थं तपसे मदनान्तक । सकामेन मया तप्तं तपः पुत्रार्थमद्य वै ॥५१॥
लज्जा भवति देवेश प्रार्थनायां जगद्गुरो । कस्त्वामाराध्यदेवेशंमुक्तिदंभक्तवत्सलम्
प्रसन्नंयाचतेमूढःफलंतुच्छं विनाशियत् । सोऽयं मायाविमूढात्मायाचेपुत्रसुखंविभो
कामिन्या प्रेरितः शम्भो ! मुक्तिदं त्वां जगत्पते !।
जानामि दुःखदं शम्भो ! संसारं दुःखसाधनम् ॥ ५३ ॥
अनित्यं नाशधर्माणं तथाऽपि विरतिर्न मे ।
शापान्नारायणांशोऽहं जातोऽस्मिन्क्षितिमण्डले ॥ ५५ ॥
भोक्तुं बहुतरं दुःखं मायापाशेन यन्त्रितः ।

व्यास उवाच

इत्युक्तवन्तं गोविन्दं प्रत्युवाच महेश्वरः ॥ ५६ ॥
बहवस्ते भविष्यन्ति पुत्राःशत्रुनिषूदन । स्त्रीणां षोडशसाहस्रं भविष्यति शतार्धकम्
तासुपुत्रा दशदश भविष्यन्ति महाबलाः । इत्युक्त्वोपररामाऽऽशु शङ्करः प्रियदर्शनः
उवाच गिरिजा देवी प्रणतं मधुसूदनम् । कृष्णकृष्णमहाबाहोसंसारेऽस्मिन्नराधिप
गृहस्थप्रवरो लोके भविष्यति भवानिह । ततोवर्षशतान्तेतु द्विजशापाज्जनार्दन !॥
गान्धार्याश्च तथाशापाद्भविताते कुलक्षयः । परस्परं निहत्याजौपुत्रास्तेशापमोहिताः
गमिष्यन्ति क्षयं सर्वे यादवाश्च तथाऽपरे ।
सानुजस्त्वं तथा देहं त्यक्त्वा यास्यसि वै दिवम् ॥ ६२ ॥
शोकस्तत्र न कर्तव्योभवितव्यम्प्रति प्रभो । अवश्यम्भाविभावानांप्रतीकारोनविद्यते
तत्रशोको न कर्तव्योनूनंममतं सदा । अष्टावक्रस्य शापेन भार्यास्ते मधुसूदन !॥
चौरेभ्यो ग्रहणं कृष्ण गमिष्यन्ति मृते त्वयि ।

इत्युक्त्वाऽन्तर्दधे शम्भु सोम ससुरमण्डल ॥ ६५ ॥
उपमन्यु प्रणम्याऽथ कृष्णोऽपि द्वारका ययौ ।
तस्माद् ब्रह्मादयो राजन्सन्ति यद्यप्यधीश्वरा ॥ ६६ ॥
तथाऽपि मायाकल्लोलयोगसक्षुभितान्तरा ।
तदधीना स्थिता सर्वे काष्ठपुत्तलिकोपमा ॥ ६७ ॥

यथायथा पूर्वभवकर्मतेषा तथातथा । प्रेरयत्यनिश माया परब्रह्मस्वरूपिणी ॥६८॥
न वैषम्य न नैर्घृण्य भगवन्त्या कदाचन । केवल जीवमोक्षाथ यतते भुवनेश्वरीम् ॥
यदि सानैव सृज्येत जगदेतच्चराचरम् । तदा मायाविना भूत जड स्यादेव नित्यश

तस्मात्कारुण्यमाश्रित्य जगज्जीवादिक च यत् ।
करोति सतत देवी प्रेरयत्यनिश च तत् ॥ ७१ ॥
तस्माद् ब्रह्मादिमोहेऽस्मिन्कर्तव्य सशयो न हि ।
मायान्न पातिन सर्वे मायाधीना सुरासुरा ॥ ७२ ॥

स्वतन्त्रासैवदेवेशीस्वेच्छाचारविहारिणी । तस्मात्सर्वात्मनाराजन्सेवनीयामहेश्वरी
नात परतर किञ्चिदधिक भुवनत्रये । एतद्धि जन्मसाफल्य पराशक्ते पदस्मृति ॥

मा भूत्तत्र कुले जन्म यत्र देवी न दैवतम् ।
अह देवी न चान्योऽस्मि ब्रह्मैवाह न शोकभाक ॥ ७५ ॥

इत्यभेदेन तानित्याचिन्तयेज्जगदम्बिकाम् । ज्ञात्वागुरुमुखादेनावेदान्तश्रवणादिभि
र्नित्यमेकाग्रमनसा भावयेदात्मरूपिणीम् । मुक्तोभवतितेनाशुनान्यथा कर्मकोटिभि

श्वेताश्वतराद्य सर्वे ऋषयो निर्मलाशया ।
आत्मरूपा हृदा ज्ञात्वा विमुक्ता भवबन्धनात् ॥ ७८ ॥

ब्रह्मविष्ण्वाद्यस्तद्वद्गौरीलक्ष्म्यादयस्तथा । तामेवसमुपासन्ते सच्चिदानन्दरूपिणीम्

इति ते कथित राजन्यद्यत्पृष्ट त्वयाऽनघ ।
प्रपञ्चतापत्रस्तेन किं भूय श्रोतुमिच्छसि ॥ ८० ॥

एतत्ते कथित राजन्मयाऽऽख्यानमनुत्तमम् । सर्वपापहर पुण्य पुराण परमाद्भुतम् ॥

य इदं शृणुयान्नित्यं पुराणं वेदसम्मितम् । सर्वपापविनिर्मुक्तो देवीलोके महीयते ॥

सूत उवाच

एतन्मयाश्रुतंव्यासात्कथ्यमानंसविस्तरम् । पुराणंपञ्चमंनूनं श्रीमद्भागवताभिधम्

इति श्री देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां चतुर्थस्कन्धे
पराशक्तेःसर्वज्ञत्वकथनंनामपञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

स्कन्धश्चायं समाप्तः ॥

अर्धाधिकैर्वसुविधुयुगविश्वम्भरा मिथै । पद्यैश्चतुर्थस्कन्धोऽयंकथितोव्यासनिर्मितैः

——:*:——

* श्रीगणेशायनम *

देवीभागवत पुराणम्

पञ्चमं स्कन्धम्

प्रथमोऽध्याय

ऋषीणाकृष्णस्यशङ्कराराधनाविषयेसन्देहेजातेसूतोत्तरम्

ऋषय ऊचु

भवता कथित सूत महदाख्यानमुत्तमम्। कृष्णस्यचरित दिव्य सर्वपातकनाशनम्
सन्देहोऽत्र महाभाग ' वासुदेवकथानके। जायतेन प्रोच्यमानेवस्तरेणि महामते
वने गत्वा तपस्ततवासुदेवेन दुष्करम्। विष्णोरशावतारेणशिवस्याऽऽराधनकृतम्
वरप्रदान देव्याच पार्वत्यायत्कृतं पुन । जगन्मातुश्चपूर्णाया श्रीदेव्या अ शभूतया
ईश्वरेणापि कृष्णेन कुतस्तौ सम्प्रपूजितौ। न्यूनतावा किमस्त्यस्यतद्वसशयो मुने

सूत उवाच

शृणुध्व कारण तत्र मया व्यासश्रुत च यत्।
प्रब्रवीमि महाभागा ' कथा कृष्णगुणान्विताम् ॥ ६ ॥

वृत्तान्त व्यासत श्रुत्वा वैराटीसुतजस्तथा। पुन प्रपच्छमेधावी सन्देह परम गत

जनमेजय उवाच

सम्यक्सत्यवतासूनो श्रुत परमकारणम् । तथाऽपिमनसो वृत्ति सशयन विमुञ्चति

कृष्णेनाऽऽराधित शम्भुस्तपस्तप्त्वाऽतिदारुणम् ।

विस्मयोऽय महाभाग' देवदेवेन विष्णुना ॥ ६ ॥

य सर्वात्माऽपि देवेश सर्वसिद्धिप्रद प्रभु । स कथ कृतवान्घोर तप प्राकृतवद्धरि

जगत्कतुक्षम कृष्णस्तथापालयितु क्षम । सहर्तुमपि कस्मात्स दारुणतप आचरत्

व्यास उवाच

सत्यमुक्त त्वयाराजन्वासुदेवो जनार्दन । क्षम सर्वेषु कार्येषु देवाना दैत्यसूदन ॥

तथाऽपि मानुष देहमाश्रित परमेश्वर । कृतवान्मानुषाभावान्वर्णाश्रमसमाश्रितान्

वृद्धाना पूजनञ्चैव गुरुपादाभिवदनम् । ब्राह्मणाना तथा सेवा देवताराधन तथा ॥

शोके शोकाभियोगश्च हर्षे हर्षसमुन्नति । दैन्य नानापवादाश्चस्त्रीषु कामोपसेवनम्

काम क्रोधस्तथा लोभ कालेकाले भवन्ति हि ।

तथा गुणमये देहे निर्गुत्व कथ भवेत् ॥ १६ ॥

सौबलीशापजाद्दोषात्तथा ब्राह्मणशापजात् । निधन यादवानातु कृष्णदेहस्यमोचनम्

हरण लुठन तद्वत्तत्पत्नीना नराधिप । अर्जुनस्याऽस्त्रमोक्षे च क्लीवत्व तस्करेषु च॥

अज्ञत्व हरणे गेहात्तत्प्रद्युम्नानिरुद्धयो । एव मानुषदेहेऽस्मिन्मानुष खलु चेष्टितम्

विष्णोरशावतारेऽस्मिन्नारायणमुनेस्तथा । अशजे वासुदेवेऽत्र कि चित्र शिवसेवने

सहिसर्वेश्वरो देवो विष्णोरपि च कारणम् । सुषुप्तस्थाननाथ सविष्णुनाचप्रपूजित

तदशभूता कृष्णाद्यास्तै कथ न स पूज्यते ।

अकारो भगवान्ब्रह्माऽप्युकार स्याद्धरि स्वयम् ॥ २२ ॥

मकारो भगवान्रुद्रोऽप्यर्धमात्रा महेश्वरी । उत्तरोत्तरभावेनाप्युत्तमत्व स्मृतं बुधै

अत सर्वेषुशास्त्रेषुदेवीसर्वोत्तमास्मृता । अर्धमात्रास्थितानित्यायाऽनुच्चार्याविशेषत

विष्णोरप्यधिको रुद्रो विष्णुस्तु ब्रह्मणोऽधिक ।

तस्मान्न सशय कार्य कृष्णेन शिवपूजने ॥ २५ ॥

इच्छया ब्रह्मणोवक्त्रा द्रुरद्रानार्थमुद्गमौ । मूलरुद्रस्याशभूतोरुद्रनामा द्वितीयक ॥
सोऽपि पूज्योऽस्ति सर्वेषा मूलरुद्रस्य का कथा ।
देवीतत्त्वस्य सान्निध्यादुत्तमत्व स्मृत शिवे ॥ २७ ॥
अवतारा हरेरेव प्रभवन्ति युगे युगे । योगमायाप्रभावेन नाऽत्र कार्या विचारणा ॥
या नेत्रपक्ष्मपरिसञ्चलनेन सम्यग्विश्व सृजत्यवति हन्ति निगूढभावा ।
सैषा करोति सतत द्रुहिणाच्युतेशाञ्ज्ञानावतार कलने परिभूयमानान् ॥
सूतीगृहाद् व्रजनमप्यनया नियुक्त सङ्गोपितश्च भवने पशुपालराज्ञ ।
सप्रापितश्च मथुरा विनियोजितश्च श्रीद्वारकाप्रणयने ननु भीतचित्त ॥ ३०॥
निमाय षोडशसहस्रशतार्धकास्ता नार्योऽप्सरसमततरा स्वकलासमुत्था ।
तासा विलासवशग तु विधाय काम दासीकृतो हि भगवाननयाऽप्यनन्त ॥
एकाऽपि बन्धनविधौ युवती समथा पुसोयथा सुदृढलोहमय तु दाम ।
कि नाम षोडशसहस्रशतार्धकाश्च त स्वीकृत शुकमिवाऽतिनिबन्धयन्ति ॥
सात्राजितीवशगतेन मुदान्वितेन प्राप्त सुरेन्द्रभवन हरिणा तदानीम् ।
हृत्वा मृधे मघवता विहतस्तरूणामीश प्रिया सदनभूषणता य आप ॥
यो भीमजा हि हृतवाञ्छिशुपालकादीञ्जित्वाविधिर्विनिखिलधर्मकृतोविधिस्तु
जग्राह ता निजबलेन च धर्मपत्नी कोऽसौविधि परकलत्रहृतौ विजात ॥
अहङ्कारवश प्राणी करोति च शुभाऽशुभम् ।
विमूढो मोहजालेन तत्कृतेनाऽतिपातिना ॥ ३५ ॥
अहङ्काराद्धि सञ्जातमिदस्थावरजङ्गमम् । मूलाद्धरिहरादीना मुग्रात्प्रकृतिसम्भवात्
अहङ्कारपरित्यक्तो यदाभवति पद्मज । तदाविमुक्तो भवति नो चेत्ससारकर्मकृत्
तन्मुक्तस्तु विमुक्तो हि बद्धस्तद्वशता गत । न नारी न धनगेह न पुत्रा न सहोदरा
बन्धन प्राणिना राजन्नहकारस्तु बन्धक । अहकृता मया चेद् कृत कार्य बलीयसा
करिष्यामि करोम्येव स्वय बध्नाति प्राणभृत् ।
कारणेन विना कार्य न सम्भवति कर्हिचित् ॥ ४० ॥

यथान दृश्यतेजातो मृत्पिंडेनविनाघट । विष्णु पालयिताविश्वस्याहंकारसमन्वित
;अन्यथा सर्वदा चिन्ता बुधोमग्न कथ भवेत् । अहङ्कारविमुक्तन्तु यदाभवतिमानव
अवतारप्रवाहेषु कथ मज्जेच्छुभाशयः । मोहमूलमहङ्कार ससारस्तत्समुद्भव ॥
अहङ्कारविहीनाना नमोहोनचसस्मृति । त्रिविध पुरुष प्रोक्त सात्त्विकोराजसस्तथा
तामसस्तु महाराज ब्रह्माविष्णुशिवादिषु । त्रिविधस्त्रिषु राजेन्द्रकाजेशादिषु सर्वदा
अहङ्कार सदा प्रोक्तो मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभि । अहङ्कारेण तेनैव बद्धा एते न सशय
मायाविमोहिता मन्दा प्रवदन्तिमनीषिण । करोतिस्वेच्छयाविष्णुरवतारानेकश

मन्दोऽपि दु खगहने गर्भवासेऽतिसङ्कटे।

न करोति मति विद्वान्कथ कुर्यात्स चक्रभृत् ॥ ४८ ॥

कौशल्यादेवकीगर्भे विष्ठामलसमाकुले । स्वेच्छया प्रवदन्त्यज्ञा गतो हि मधुसूदन
वैकुण्ठसदन त्यक्त्वा गर्भवासेसुखन्नुकिम् । चिन्ताकोटिसमुत्थानेदु खदेविषसमिते

तपस्तप्त्वा क्रतून्कृत्वा दत्त्वा दानान्यनेकश ।

न वाञ्छन्ति यतो लोका गर्भवास सुदु खदम् ॥ ५१ ॥

सकथ भगवान्विष्णु स्ववशश्चजनार्दन । गर्भवासरुचिर्भूयाद्भवेत्स्ववशता यदि ॥
जानीहि त्व महाराज योगमायावशेजगत् । ब्रह्मादिस्तम्बपर्यंत देवमानुषतिर्यगम्॥
मायातन्त्रोनिबद्धायेब्रह्मविष्णुहरादय । भ्रमन्ति बन्धमायान्तिलीलयाचोर्णनाभवत्

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्या सहिताया पञ्चमस्कन्धे
योगमायाप्रभाववर्णननाम प्रथमोऽध्याय ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः

देवीमाहात्म्यवर्णनंमहिषोत्पत्तिश्च

राजोवाच

योगेश्वर्याः प्रभावोऽयंकथितश्चातिविस्तरात् । ब्रूहितच्चरितंस्वामिञ्छ्रोतुंकौतूहलंमम
महादेवीप्रभावंवै श्रोतुं को नाभिवाञ्छति । यो जानातिजगत्सर्वंतदुत्पन्नंचराचरम्

व्यास उवाच

शृणुराजन्प्रवक्ष्यामि विस्तरेण महामते । श्रद्धधानायशांताय न ब्रूयात्स तु मन्दधीः
पुरायुद्धमभूद्घोरं देवदानवसेनयोः । पृथिव्यां पृथिवीपाल महिषाख्ये महीपतौ ॥

महिषो नाम राजेन्द्र चकार तप उत्तमम् ।
गत्वा हेमगिरौ चोग्रं देवविस्मयकारकम् ॥ ५ ॥

वर्षाणामयुतं पूर्णं चिन्तयन्हृदि देवताम् । तस्य तुष्टो महाराज ब्रह्मालोक पितामहः
तत्राऽऽगत्याब्रवीद्वाक्यंहंसारूढश्चतुर्मुखः । वरं वरय धर्मात्मन्ददामि तववाञ्छितम्

महिष उवाच

अमरत्वं देवदेव वाञ्छामि द्रुहिण प्रभो । यथा मृत्युभयं न स्यात्तथा कुरु पितामह

ब्रह्मोवाच

उत्पन्नस्यध्रुवंमृत्युर्ध्रुवं जन्ममृतस्य च । सर्वथा मरणोत्पत्ती सर्वेषां प्राणिनांकिल

नाशः कालेन सर्वेषां प्राणिनां दैत्यपुङ्गव !।
महामहीधराणाञ्च समुद्राणाञ्च सर्वथा ॥ १० ॥

एकं स्थानंपरित्यज्य मरणस्यमहीपते । प्रब्रूहि तं वरं साधो! यस्ते मनसि वर्तते ॥

महिष उवाच

न देवान्मानुषाद्दैत्यान्मरणं मे पितामह । पुरुषान्न च मे मृत्युर्योषामांका हनिष्यति
तस्मान्मे मरणं नूनं कामिन्याःकुरुपद्मज । अबला हन्त मां हतुं कथंसक्काभविष्यति

ब्रह्मोवाच

यदाकदाऽपि दैत्येन्द्र नार्यास्ते मरणंध्रुवम् । न नरेभ्योमहाभाग मृतिस्तेमहिषासुर

व्यास उवाच

एवंदत्त्वावरंतस्मैययौब्रह्मानिजालयम् । सोऽपि दैत्यवरःप्रापनिजंस्थानंमुदाऽन्वितः

राजोवाच

महिषःकस्य पुत्रोऽसौ कथञ्जातोमहाबली । कथञ्च माहिषं रूपं प्राप्तं तेनमहात्मना

व्यास उवाच

दनोःपुत्रोमहाराजविख्यातौक्षितिमण्डले । रम्भश्चैवकरम्भश्च द्वावास्तांदानवोत्तमौ
तावपुत्रौ महाराज पुत्रार्थं तेपतुस्तपः । बहून्वर्षगणान्कामं पुण्ये पञ्चनदे जले ॥१८
करम्भस्तु जले मग्नश्चकार परमन्तपः । वृक्षं रसालवटं प्राप्य स रम्भोऽग्निमसेवयत्

पञ्चाग्निसाधनासक्तः स रम्भस्तु यदाऽभवत् ।
ज्ञात्वा शचीपतिर्दुःखमुद्ययौ दानवौ प्रति ॥ २० ॥

गत्वा पञ्चनदे तत्र ग्राहरूपं चकार ह । वासवस्तु करम्भं तं तदा जग्राह पादयोः ॥
निजघान च तं दुष्टं करम्भं वृत्रसूदनः । भ्रातरं निहतं श्रुत्वा रम्भः कोपं परङ्गतः ॥
स्वशीर्षं पावके होतुमैच्छच्छित्त्वाकरेणह । केशपाशेगृहीत्वाऽऽशु वमेनक्रोधसंयुतः
दक्षिणेनकरेणोग्रं गृहीत्वा खड्गमुत्तमम् । छिनत्ति शीर्षं तत्तावद्वह्निनाप्रतिबोधितः

उक्तश्च दैत्यमूर्खोऽसि स्वशीर्षं छेत्तुमिच्छसि ।
आत्महत्याऽतिदुःसाध्या कथं त्वं कर्तुमुद्यतः ॥ २५ ॥

वरं वरय भद्रन्ते यस्ते मनसिवर्तते । मा म्रियस्व मृतेनाद्य किन्तेकार्यं भविष्यति ॥

व्यास उवाच

तच्छ्रुत्वा वचनं रम्भः पावकस्य सुभाषितम् ।
ततोऽब्रवीद्वचो रम्भस्त्यक्त्वा केशकलापकम् ॥ २७ ॥

यदितुष्टोऽसिदेवेशदेहिमे वाञ्छितंवरम् । त्रैलोक्यविजयीपुत्रः स्यान्मः परबलार्दनः॥
अजेयः सर्वथा स स्याद्देवदानवमानवैः । कामरूपी महावीर्यः सर्वलोकाभिवन्दितः

पावकस्तं तथेत्याह भविष्यति तवेप्सितम् । पुत्रस्तवमहाभाग मरणाद्विरमाधुना ॥
यस्यांचित्तंतुरम्भत्वं प्रमदायांकरिष्यसि । तस्यांपुत्रोमहाभागभविष्यतिबलाधिकः

व्यास उवाच

इत्युक्तोवह्निना रम्भो वचनं चित्तरञ्जनम् । श्रुत्वा प्रणम्य प्रययौ वह्निं दानवोत्तमः
यक्षैःपरिवृतंस्थानंरमणीयंश्रियाऽन्वितम् । दृष्ट्वा चक्रे तदाभावं महिष्यांदानवोत्तमः

मत्तायां रूपपूर्णायां विहायान्याश्च योषिताम् ।

सा समायाच्च तरसा कामयंती मुदाऽन्विता ॥ ३४ ॥

रम्भोऽपिगमनञ्चक्रे भवितव्यप्रणोदितः । सा तु गर्भवतीजाता महिषी तस्य वीर्यतः
तां गृहीत्वाऽथपातालं प्रविवेशमनोहरम् । महिषैश्च तां रक्षन्प्रियामनुमतां किल

कदाचिन्महिषश्चान्यः कामार्तस्तामुपाद्रवत् ।

स्वयमागत्य तं हन्तुं दानवः समुपाद्रवत् ॥ ३७ ॥

स्वरक्षार्थंसमागम्यमहिषंसमताडयत् । सोऽपितंनिजघानाशु शृङ्गाभ्यांकाममोहितः

ताडितस्तेनतीक्ष्णाभ्यां शृङ्गाभ्यां हृदये भृशम् ।

भूमौ पपात तरसा ममार च विमूर्छितः ॥ ३६ ॥

मृतेभर्तरि सा दीना भयार्ताविद्रुताभृशम् । सा वेगात्तं वटं प्राप्य यक्षाणांशरणंगता
पृष्ठतस्तु गतस्तत्र महिषः कामपीडितः । कामयानस्तु तां कामी बलवीर्यमदोद्धतः॥
रुदतीसाभृशंदीना दृष्ट्वा यक्षैर्भयातुरा । धावमानश्च तं वीक्ष्य यक्षास्त्रातुं समाययुः ॥
युद्धं समभवद्घोरं यक्षाणाञ्च हयारिणा । शरेण ताडितस्तूर्णं पपात धरणी तले ॥
मृतं रम्भं समानीय यक्षास्ते परमंप्रियम् । चितायांरोपयामासुस्तस्य देहस्य शुद्धये
महिषी सा पतिं दृष्ट्वा चितायांरोपितंतदा । प्रवेष्टुंसामतिं चक्रे पतिनासह पावकम्

वार्यमाणाऽपियक्षैः सा प्रविवेश हुताशनम् ।

ज्वालामालाकुलं साध्वी पतिमादाय वल्लभम् ॥ ४६ ॥

महिषस्तु चितामध्यात्समुत्तस्थौ महाबलः ।

रम्भोऽप्यन्यद्वपुः कृत्वा निःसृतः पुत्रवत्सलः ॥ ४७ ॥

रक्तबीजोऽप्यसौजातो महिषोऽपिमहाबलः ।
अभिषिक्तस्तु राज्येऽसौ हयारिरसुरोत्तमैः ॥ ४८ ॥
एवंसमहिषोजातो रक्तबीजश्च वीर्यवान् । अवध्यैस्तुसुरैर्दैत्यैर्मानवैश्च नृपोत्तम ! ॥
इत्येतत्कथितं राजञ्जन्मतस्य महात्मनः । वरप्रदानं च तथा प्रोक्तं सर्वं सविस्तरम्
इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे
महिषासुरोत्पत्तिर्नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः
महिषासुरसैन्योद्योगवर्णनम्

व्यास उवाच

एवं स महिषोनाम दानवो वरदर्पितः । प्राप्य राज्यं जगत्सर्वं वशे चक्रे महाबलः॥
पृथिवींपालयामाससागरान्तांभुजार्जिताम् । एकच्छत्रांनिरातंकांवैरिवर्गविवर्जिताम्
सेनानीचिक्षुरस्तस्यमहावीर्योमदोत्कटः । धनाध्यक्षस्तथाताम्रः सेनाऽयुतसमावृतः
असिलोमातथोदर्कोबिडालाख्यश्चबाष्कलः । त्रिनेत्रोऽथतथाकालबन्धकोबलदर्पितः
एतेसैन्ययुताः सर्वे दानवा मेदिनीं तदा । आवृत्यसंस्थिताकामसमुद्रासागरमेखलाम्
करदाश्च कृताःसर्वेभूमिपालाः पुरातनाः । निहता ये बलोदग्राः क्षात्रधर्मव्यवस्थिताः
ब्राह्मणावशगा जाता यज्ञभागसमर्पकाः । महिषस्यमहाराज निखिले क्षितिमण्डले
एकातपत्रं तद्राज्यं कृत्वा स महिषासुरः । स्वर्गं जेतुं मनश्चक्रे वरदानेन गर्वितः ॥
प्रणिधिं प्रेषयामासहयारिस्तुशचीपतिम् । स सन्देहहरं शीघ्रमाहूयोवाचदैत्यराट्

गच्छ वीर महाबाहो दूतत्वं कुरु मेऽद्य ।
ब्रूहि शक्रं दिवं गत्वा निःशंकं सुरसन्निधौ ॥ १० ॥
मुञ्च स्वर्गं सहस्राक्ष यथेष्टं गच्छ मा चिरम् ।

सेवां वा कुरु देवेश! महिषस्य महात्मनः ॥ ११ ॥

स त्वां संरक्षयेन्नूनं राजा शरणमागतम् । तस्मात्त्वं शरणंयाहि महिषस्य शचीपते
नो चेद्वज्रंगृहाणाशु युद्धाय बलसूदन । पूर्वैर्जितोऽसि वास्मास्कंजानामितवपौरुषम्
अहल्याजारविज्ञातं बलं ते सुरसंघप । युध्यस्व व्रजवाकामं यत्र ते रमते मनः ॥१४

व्यास उवाच

तच्छ्रुत्वा वचनंतस्य शक्रः क्रोधसमन्वितः । उवाचतं नृपश्रेष्ठ स्मितपूर्वं वचस्तदा॥

न जानेऽहं सुमन्दात्मन्यतस्त्वं मदर्दापतः ।

चिकित्सां संकरिष्यामि रोगस्याऽस्य प्रभोस्तव ॥ १६ ॥

अतःपरंकरिष्यामि मूलस्याऽस्यनिमूलनम् । गच्छदूतथा ब्रूहि तस्याग्रेममभाषितम्

शिष्टैर्दूता न हन्तव्यास्तस्मात्त्वां विसृजाम्यहम् ।

युद्धेच्छा चेत्समागच्छ त्वरितोमहिषीसुत !॥ १८ ॥

हयारे त्वद्बलं ज्ञातं तृणादस्त्वंजडाकृतिः । शृङ्गयोस्तेकरिष्यामिसुदृढ़ञ्शरासनम्
दर्पःशृङ्गबलात्तेऽस्तिविदितंकारणंमया । विषाणेनेपरिच्छिद्यसंहरिष्यामि तद्बलम
यद्बलेनातिपूर्णस्त्वं जातोऽसिबलदर्पितः । कुशलस्त्वं तदाघाते न युद्धे महिषाधम

व्यास उवाच

इत्युक्तोऽसौ सुरेन्द्रेण स दूतस्त्वरितोगतः । जगाममहिषंमत्तं प्रणम्यप्रत्युवाच ह

दूत उवाच

राजन्देवाधिपः कामं न त्वां विगणयत्यसौ । मन्यते स्वबलं पूर्णं देवसैन्यसमावृतः
यदुक्तं तेन मूर्खेण कथमन्यद्ब्रवीम्यहम् । प्रियं सत्यं च वक्तव्यं भृत्येन पुरतः प्रभोः
प्रियं सत्यञ्च वक्तव्यं प्रभोरग्रे शुभेच्छुना । इति नीतिर्महाराजजागतिशुभकारिणी
केवलंचेत्प्रियं ब्रूयान्न ते कार्यं भविष्यति । परुषं च न वक्तव्यंकदाचिच्छुभमिच्छता

यथा रिपुमुखाद्वाचः प्रसरन्ति विषोपमाः ।

तथाभृत्यमुखान्नाथनिःसरन्तिकथं गिरः ॥ २७ ॥

यादृशानीह वाक्यानि तेनोक्तानि महीपते । तादृशानिनमेजिह्वावक्तुमर्हतिकर्हिचित्

व्यास उवाच

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य हेतुगर्भं तृणाशनः । भृशं कोपपरीतात्मा बभूव महिषासुरः ॥
समाहूयाब्रवीद्दैत्यान्क्रोधसंरक्तलोचनः । लांगूलं पृष्ठदेशे च कृत्वा मूत्रं परित्यजन् ॥

भो भो दैत्याः सुरेन्द्रोऽसौ युद्धकामोऽस्ति सर्वथा ।
बलोद्योगं कुरुध्वं वै जेतव्योऽसौ सुराधमः ॥ ३१ ॥

मदग्रेकोभवेच्छूरः कोटिशश्चेत्तथाविधाः । न बिभेम्येकतःकामहनिष्याम्यद्य सर्वथा
शूरः शान्तेष्वमर्षी नूनं तपस्विषु बलाधिकः । बलकर्ता हि कुहको लम्पटःपरदारहृत्
अप्सरोबलसंमत्तस्तपोविघ्नकरः खलः । छिद्रप्रहरणः पापो नित्यं विश्वासघातकः
नमुचिर्निहतोयेन कृत्वा सन्धिं दुरात्मना । शपथान्विविधानादौकृत्वाभीतेनछद्मनः
विष्णुस्तुकपटाचार्यः कुहकः शपथाकरः । नानारूपधरः कामं बलकृद्दम्भपण्डितः ॥
कृत्वाकोलाकृतिर्येन हिरण्याक्षो निपातितः । हिरण्यकशिपुर्येननृसिंहेनच घातितः ॥
नाहं तद्वशगोनूनं भवेयं दनुनन्दनः । विश्वासं नैव गच्छामि देवानां कुत्रकर्हिचित
किंकरिष्यति मे विष्णुरिन्द्रोवाबलवत्तरः । रुद्रोवाऽपि नमे शक्तः प्रतिकर्तुं रणांगणे
त्रिविष्टपं ग्रहीष्यामि जित्वेन्द्रं वरुणंयमम् । धनदंपावकञ्चैव चन्द्रसूर्यौविविजत्यच
यज्ञभागभुजः सर्वे भविष्यामोऽद्य सोमपाः । जित्वा देवसमूहञ्चविहरिष्यामिदानवैः
न मे भयं सुरेभ्यश्च वरदानेन दानवाः । मरणं न नरेभ्यश्च नारी किं मे करिष्यति ॥
पातालपर्वतेभ्यश्च समाहूयवरान्वरान । दानवान्ममसैन्येशान्कुर्वन्तु त्वरिताश्चराः ॥
एकोऽहं सर्वदेवेशान्विजेतुं दानवाक्षमः । शोभार्थं वः समाहूय नयामि सुरसंगमे ॥
शृङ्गाभ्याञ्च खुराभ्याञ्च हनिष्येऽहंसुरान्किल । नमेभयंसुरेभ्यश्च वरदान प्रभावतः ॥
अवध्योऽहं सुरगणैरसुरैर्मानवैस्तथा । तस्मात्सज्जा भवन्त्वद्य देवलोकजयाय वै ॥

जित्वा सुरालयं दैत्या विहरिष्यामि नन्दने ।
मन्दारकुसुमापीडा देवयोषित्समन्विताः ॥ ४७ ॥

कामधेनुपयोत्सिक्ताः सुधापानप्रमोदिताः । देवगन्धर्वगीतादिनृत्यलास्यसमन्विताः
उर्वशी मेनकारम्भा घृताची च तिलोत्तमा । प्रमद्वरा महासेना मिश्रकेशी मदोत्कटा

विप्रचित्तिप्रभृतयो नृत्यगीतविशारदाः । रञ्जयिष्यन्ति वः सर्वान्नानासर्वानिषेवणैः॥
सर्वेसज्जाभवन्त्वद्य रोचतां गमनं दिवि । संग्रामार्थं सुरैः सार्धं कृत्वामङ्गलमुत्तमम्
रक्षणार्थञ्च सर्वेषां भार्गवं मुनिसत्तमम् । समाहूय च सम्पूज्य स्थाप्ययज्ञेगुरुं परम्

व्यास उवाच

इति सन्दिश्य दैत्येन्द्रान्महिषः पापधीस्तदा ।
जगाम त्वरितोराजन्भवनं स्वं मुदाऽन्वितः ॥ ५३ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे
भगवती माहात्म्ये दैत्यसैन्योद्योगो नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः

देवैःसहमहिषासुरवधपरामर्शवर्णनम्

व्यास उवाच

गते दूते सुरेन्द्रोऽपि समाहूय सुरानथ । यमवायुधनाध्यक्ष वरुणानिदमूचिवान् ॥
महिषो नाम दैत्येन्द्रो रम्भपुत्रो महाबलः । वरदर्पमदोन्मत्तो मायाशतविचक्षणः ॥
तस्य दूतोऽद्य सम्प्राप्तः प्रेषितस्तेनभोःसुराः । स्वर्गकामेनलुब्धेन मामुवाचेदृशंवचः
त्यजदेवालयं शक्र यथेच्छं व्रज वासव । सेवां वा कुरु दैत्यस्य महिषस्य महात्मनः
दयावान्दानवेन्द्रोऽसौ स ते वृत्तिं विधास्यति । नतेषु भृत्यभूतेषुनकुप्यति कदाचन
नोचेद्युद्धायदेवेशसेनोद्योगं कुरु स्वयम् । गते मयि स दैत्येन्द्रस्त्वरितः समुपेष्यति
इत्युक्त्वा स गतोदूतो दानवस्यदुरात्मनः । किंकर्तव्यमतःकार्यंचिन्तयध्वंसुरोत्तमाः
दुर्बलोऽपि न चोपेक्ष्यः शत्रुर्बलवता सुराः । विशेषेण सदोद्योगी बलवान्बलदर्पितः॥
उद्यमः किल कर्तव्यो यथाबुद्धि यथाबलम् । दैवाधीनो भवेन्नूनंजयोवाऽप्यपराजयः
सन्धियोगोनचात्रास्ति खले सन्धिर्निरर्थकः ।

सर्वथा साधुभिः कार्यं विचार्य च पुनः पुनः ॥ १० ॥
यानमप्यधुना नैव कर्तव्यं सहसा पुनः । प्रेक्षकाः प्रेषणीयाश्च शीघ्रगाः सुप्रवेशकाः
इङ्गितज्ञाश्चनिःसंगानिस्पृहाःसत्यवादिनः । सेनाभियोगंप्रस्थानंबलसंख्यां यथार्थतः
वीराणां च परिज्ञानं कृत्वाऽऽयान्तु त्वरान्विताः ।
ज्ञात्वा दैत्य पतेस्तस्य सैन्यस्य च बलाबलम् ॥ १३ ॥
करिष्यामि ततस्तूर्णं यानं वादुर्गसंग्रहम् । "विचार्यखलुकर्तव्यंकार्यंबुद्धिमता सदा"
सहसा विहितं कार्यं दुःखदं सर्वथा भवेत् ।
तस्माद्विमृश्य कर्तव्यं सुखदं सर्वथा बुधैः । नाऽत्रभेदविधिर्न्याय्योदानवेषुनसर्वथा
एकचित्तेषु कार्येऽस्मिन्तस्माच्चाराव्रजन्तु वै ।
ज्ञात्वा बलाबलं तेषां पश्चान्नीतिर्विचार्य च ॥ १६ ॥
विधेयाविधिवत्तज्ज्ञैस्तेषु कार्यपरेषुच । अन्यथा विहितं कार्यं विपरीतफलप्रदम् ॥
सर्वथा तद्भवेन्नूनमज्ञातमौषधं यथा ।

व्यास उवाच

इति संचिन्त्य तैः सर्वैः प्रणिधिं कार्यवेदिनम् ॥ १८ ॥
प्रेषयामास देवेन्द्रः परिज्ञानाय पार्थिव । दूतस्तुत्वरितोगत्वा समागम्य सुराधिपम्
निवेदयामास तदा सर्वसैन्यबलाबलम् ।
ज्ञात्वा तद्बलमुद्योगं तुराषाडतिविस्मितः ॥ २० ॥
देवानचोदयत्तूर्णं समाहूय पुरोहितम् । मन्त्रं मन्त्रविदां श्रेष्ठं चकार त्रिदशेश्वरः ॥
उवाचांगिरसश्रेष्ठं समासीनं वरासने ।

इन्द्र उवाच

भो भो देवगुरो विद्वान्किं कर्तव्यं वदस्व नः ॥ २२ ॥
सर्वज्ञोऽसिसमुत्पन्नेकार्ये त्वं गतिरद्य नः । दानवोमहिषो नाम महावीर्योमदान्वितः
योद्धुकामःसमायातिबहुभिर्दानवैर्वृतः । तत्र प्रतिक्रियाकार्या त्वयामंत्रविदाऽधुना
तेषां शुक्रस्तथा त्वं मे विघ्नहर्ता सुसंमतः ।

व्यास उवाच

तच्छ्रुत्वा वचनं प्राह तुरासाहं बृहस्पतिः ॥ २५ ॥
विचिन्त्य मनसा कामं कार्यसाधनतत्परः ।

गुरुरुवाच

स्वस्थो भव सुरेन्द्र त्वं धैर्यमालंब्य मारिष ॥ २६ ॥
व्यसने च समुत्पन्ने न त्याज्यंधैर्यमाशु वै । जयाजयौ सुराध्यक्ष दैवाधीनौ सदैवहि
स्थातव्यं धैर्यमालंब्य तस्माद्बुद्धिमतासदा । भवितव्यं भवत्येव जानन्नेव शतक्रतो
उद्यमः सर्वथा कार्यो यथापौरुषमात्मनः । मुनयोऽपि हि मुक्त्यर्थमुद्यमैकरताः सदा
दैवाधीनञ्चजानन्तो योगध्यानपरायणाः । तस्मात्सदैवकर्तव्यो व्यवहारोदितोद्यमः
सुखं भवतु वा मा वा दैवेकापरिदेवना । विनापुरुषकारेणकदाचित्सिद्धिमाप्नुयोत्
अन्धवत्पङ्गुवत्कामं न तथा मुदवाहयेत् । कृते पुरुषकारेऽपि यदि सिद्धिर्न जायते ॥
न तत्र दूषणं तस्य दैवाधीने शरीरिणि । कार्यसिद्धिर्न सैन्येऽस्ति न मन्त्रेनचमंत्रणे
न रथेनाऽऽयुधे नूनं दैवाधीना सुराधिप । बलवान्क्लेशमाप्नोतिनिर्दलसुखमश्नुते
बुद्धिमान्क्षुधितः शेते निर्बुद्धिर्भोगवान्भवेत् ।
कातरो जयमाप्नोति शूरो याति पराजयम् ॥ ३५ ॥
दैवाधीने तु संसारे कामं का परिदेवना । उद्यमे योजयेन्नूनं भवितव्यं सुराधिप ॥
दुःखदे सुखदेवाऽपि तत्र तौ न विचिन्तयेत् ।
दुःखे दुःखाधिकान्पश्येत्सुखे पश्येत्सुखाधिकान् ॥ ३७ ॥
आत्मानंहर्षशोकाभ्यां शत्रुभ्यामिव नार्पयेत् । धैर्यमेवावगन्तव्यं हर्षशोकोद्भवेबुधैः ॥
अधैर्याद्यादृशं दुःखं ननु धैर्येऽस्तितादृशम् । दुर्लभं सहनत्वं वै समये सुखदुःखयोः
हर्षशोकोद्भवो यत्र न भवेद् बुद्धिनिश्चयात् ।
किं दुःखं कस्य वा दुःखं निर्गुणोऽहं सदाऽव्ययः ॥ ४० ॥
चतुर्विंशतिरिक्तोऽस्मि किं मे दुःखं सुखं च किम् ।
प्राणस्य क्षुत्पिपासे द्वे मनसः शोकमूर्च्छने ॥ ४१ ॥

जरामृत्यू शरीरस्य षडूर्मिरहितः शिवः । शोकमोहौशरीरस्य गुणौ किंमेऽत्र चिन्तने
शरीरंनाहमथवातत्सम्बन्धोन चाप्यहम् । सप्तैकषोडशादिभ्योविभिन्नोऽहंसदासुखी
प्रकृतिर्विकृतिर्नाऽहं किंमेदुःखं सदापुनः । इति मत्वा सुरेश त्वं मनसा भव निर्ममः
उपायः प्रथमोऽयं ते दुःखनाशे शतक्रतो । ममतापरमं दुःखं निर्ममत्वं परं सुखम् ॥
सन्तोषादपरं नास्ति सुखस्थानं शचीपते । अथवा यदि न ज्ञानं ममतानाशने किल

ततोविवेकःकर्तव्यो भवितव्ये सुराधिप ।

प्रारब्ध कर्मणां नाशो नाभोगाल्लक्ष्यते किल ॥ ४७ ॥

यद्भावि तद्भवत्येव का चिंतासुखदुःखयोः । सुरैः सर्वैःसहायैर्वा बुद्ध्यावातवसन्नम
सुखं क्षयाय पुण्यस्य दुःखं पापस्य मारिष । तस्मात्सुखक्षयेहर्षःकर्तव्यः सर्वथाबुधैः
अथवामन्त्रयित्वाऽद्य कुरु यत्नं यथाविधि । कृते यत्नेमहाराज भवितव्यंभविष्यति

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे
भयातुरइन्द्रादिदेवाःसुरगुरुसहपरामर्शवर्णनंनामचतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पञ्चमोऽध्यायः

विष्णोराराधनातथादैत्यसैन्यपराजयोवर्णनम्

व्यास उवाच

इति श्रुत्वा सहस्राक्षः पुनराह बृहस्पतिम् । युद्धोद्योगं करिष्यामि हयारिर्नाशनायवै
नोद्यमेन विना राज्यं न सुखं नचवै यशः । निरुद्यमं न शंसन्ति कातराःनचसोद्यमाः
यतोनांभूषणंज्ञानं सन्तोषोहि द्विजन्मनाम् । उद्यम शत्रुहननं भूषणं भूतिमिच्छताम्
उद्यमेन हतस्त्वाष्ट्रो नमुचिर्बल एव च । तथैनं निहनिष्यामि महिषं मुनिसत्तम ॥४
बलं देवगुरुस्त्वं मे वज्रमायुधमुत्तमम् । सहायस्तु हरिर्नूनं तथोमापतिरव्ययः ॥५॥
रक्षोघ्नान्पठ मे साधो कार्यमद्य समुद्यमम् । स्वसैन्याभिनिवेशश्च महिषंप्रतिमानद

व्यास उवाच

इत्युक्तो देवराजेन वाचस्पतिरुवाच ह। सुरेन्द्रं युद्धसंरक्तं स्मितपूर्वं वचस्तदा ॥७॥

बृहस्पतिरुवाच

प्रेरयामि न चाहं त्वां न च निवारयाम्यहम्। संदिग्धेऽत्रजयेकामं युध्यतश्च पराजये
न तेऽत्र दूषणं किञ्चिद्भवितव्येशचीपते। सुखंवायदि वा दुःखंविहितं च भविष्यति
न मया तत्परिज्ञातं भाविदुःखं सुखं तथा। यद्भार्याहरणे प्राप्तं पुरावासव वेत्सि हि
शशिना मे हृताभार्यामित्रेणामित्रकर्शन। स्वाश्रमस्थेन सम्प्राप्तंदुःखंसर्वसुरत्रापहम्

बुद्धिमान्सर्वलोकेषु विदितोऽहं सुराऽधिप।
क मे गता तदा बुद्धिर्यदा भार्या हृता बलात् ॥ १२ ॥

तस्मादुपायः कर्तव्यो बुद्धिमद्भिःसदानरैः। कार्यसिद्धिःसदानूनं दैवाधीनासुराधिप

व्यास उवाच

तच्छ्रुत्वा वचनं सत्यं गुरोःसार्थंशचीपतिः। ब्राह्मणं शरणंगत्वा नत्वावचनमब्रवीत्
पितामह सुराध्यक्ष दैत्योमहिषसंज्ञकः। गृहीतुकामः स्वर्गं मे बलोद्योगंकरोत्यलम्
अन्येत्दानवाःसर्वेतत्सैन्यंसमुपस्थिताः। योद्धुकामामहावीर्याःसर्वे युद्धविशारदाः

तेनाहंभीतभीतोऽस्मि त्वत्सकाशमिहागत।
सर्वज्ञोऽसि महाप्राज्ञ साहाय्यं कर्तुमर्हसि ॥ १९ ॥

ब्रह्मोवाच

गच्छामः सर्व एवाद्यकैलासंत्वरितावयम्। शंकरं पुरतःकृत्वाविष्णुञ्चबलिनाम्वरम्
ततो युद्धं प्रकर्तव्यं सर्वैः सुरगणैःसह। मिलित्वामन्त्रमाधाय देशंकालंविचिन्त्यच
बलाबलमविज्ञाय विवेकमपहाय च। साहसं तु प्रकुर्वाणो नरः पतनमृच्छति ॥२०

व्यास उवाच

तन्निशम्य सहस्राक्षः कैलासं निर्जगामह। ब्रह्माणं पुरतः कृत्वा लोकपाल समन्वितः
तुष्टाव शंकरं गत्वा वेदमन्त्रैर्महेश्वरम्। प्रसन्नं पुरतः कृत्वा ययौ विष्णुपुरम्प्रति ॥
स्तुत्वा तं देवदेवेशं कार्यंप्रोवाच चात्मनः। महिषात्तद्भयं चोग्रं वरदान मदोद्धतान्

तदाकर्ण्य भयं तस्य विष्णुर्देवानुवाच ह । करिष्यामो वयंयुद्धं हनिष्यामस्तुदुर्जयम्

व्यास उवाच

इति तेनिश्चयंकृत्वाब्रह्मविष्णुहरीश्वराः । स्वानिस्वानि समारुह्यवाहनानिययुःसुराः
ब्रह्मा हंस समारूढो विष्णुर्गरुडवाहनः । शङ्करो वृषभारूढो वृत्रहा गजसंस्थितः ॥
मयूरवाहनः स्कन्दो यमोमहिषवाहनः । कृत्वा सैन्य समायोगं यावत्ते निर्ययुःसुराः
तावद्दैत्यबलं प्राप्तं द्रुतं महिषपालितम् । तत्राभूत्तुमुलं युद्धं देवदानव सैन्ययोः ॥
बाणैः खड्गैस्तथाप्रासैर्मुसलैश्च परश्वधैः । गदाभिः पट्टिशैः शूलैश्चक्रैश्च शक्तितोमरैः
मुद्गरैर्भिन्दिपालैश्च हलैश्चैवातिदारुणैः । अन्यैश्च विविधैरस्त्रैर्निजघ्नुस्ते परस्परम् ॥
सेनानीचिक्षुरस्तस्य गजारूढो महाबलः । मघवन्तं पञ्चभिस्तैः सायकैःसमताडयत

तुराषाडपि तांश्छित्त्वा बाणैर्बाणांस्त्वरान्वितः ।
हृदये चार्धचन्द्रेण ताडयामास तं कृती ॥ ३२ ॥

बाणाहतस्तु सेनानी प्राप मूर्च्छाङ्गजोपरि । करिणं वज्रघातेन स जघान करे ततः
तद्वज्राभिहतोनागोभग्नःसैन्यंजगाम ह । दृष्ट्वा तं दैत्यराट्क्रुद्धोबिडलाख्यमथाब्रवीत्

गच्छ वीर महाबाहो जहीन्द्रं मदगर्वितम् ।
वरुणादीन्परान्देवान्हत्वाऽऽगच्छ ममान्तिकम् ॥ ३५ ॥

व्यास उवाच

तच्छ्रुत्वावचनंतस्यबिडालाऽऽख्योमहाबलः । आरुह्यवारणंमत्तंजगामत्रिदशाधिपम्
वासवस्तंसमायान्तं दृष्ट्वा क्रोधसमन्वितः । जघानविशिखैस्तीक्ष्णैराशीविषसमप्रभैः

स तु च्छित्त्वा शरांस्तूर्णं स्वशरैश्चापनिःसृतैः ।
पञ्चाशद्भिर्जघानाऽऽशु वासवञ्च शिलीमुखैः ॥ ३८ ॥
तथेन्द्रोऽपि च तान्बाणांश्छित्त्वाकोपसमन्वितः ।
जघानविशिखैस्तीक्ष्णैराशीविषसमप्रभैः ॥ ३९ ॥

स तु च्छित्त्वा शरांस्तूर्णं स्वशरैश्चापनिःसृतैः । गदयाताडयामासगजंतस्यकरोपरि
स्वकरे निहतो नागश्चकारार्तस्वरं मुहुः । परिवृत्य जघानाशु दैत्यसैन्यं भयातुरम्

दानवस्तु गजं वीक्ष्य परावृत्य गतं रणात् । समाविश्यरथेरम्येजगामाऽऽशुसुराग्रणे
तुराषाडपि तं वीक्ष्य रथस्थं पुनरागतम् । अहनद्विशिखैस्तीक्ष्णैराशीविषसमप्रभैः
सोऽपि क्रुद्धश्चकारोग्रां बाणवृष्टिं महाबलः । बभूव तुमुलंयुद्धं तयोस्तत्र जयैषिणोः
इन्द्रस्तु बलिनं दृष्ट्वा कोपेनाकुलितेन्द्रियः । जयन्तमग्रतः कृत्वा युयुधे तेन संयुतः ॥
जयन्तस्तु शितैर्बाणैस्तं जघान स्तनान्तरे । पञ्चभिः प्रबलाकृष्टैरसुरं मदगर्वितम् ॥
स बाणाभिहतस्तावन्निपपात रथोपरि । अतिवाह्य रथं सूतो निर्जगाम रणाजिरात्

तस्मिन्विनिर्गते दैत्ये बिडालाख्येऽथमूर्च्छिते ।

जयशब्दोमहानाशीद्दुन्दुभीनाञ्च निःस्वनः ॥ ४८ ॥

सुराःप्रमुदिताःसर्वे तुष्टुवुस्तं शचीपतिम् । जगुर्गन्धर्वपतयो ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥
चुकोप महिषः श्रुत्वा जयशब्दं सुरैः कृतम् । प्रेषयामास तत्रैव ताम्रं परमदापहम् ॥
ताम्रस्तु बहुभिः सार्धं समागम्यरणाजिरे । शरवृष्टिं चकाराऽऽशुतडित्वानिवसागरे
वरुणः पाशमुद्यम्य जगाम त्वरितस्तदा । यमश्च महिषारूढो दण्डमादाय निर्ययौ ॥
तत्र युद्धमभूद्घोरं देवदानवयोर्मिथः । बाणैः खड्गैश्च मुसलैशक्तिभिश्च परश्वधैः
दण्डेन निहतस्ताम्रो यमहस्तोद्यतेनच । न चचाल महाबाहुः संग्रामांगणस्तदा ॥
चापमाकृष्यवेगेनमुक्त्वातीव्राञ्छिलीमुखान् । इन्द्रादोनहनत्तूर्णंताम्रस्तस्मिन्रणाजिरे

तेऽपि देवाः शरैर्दिव्यैर्निशितैश्च शिलाशितैः ।

निजघ्नुर्दानवान्क्रुद्धास्तिष्ठ तिष्ठेति चुक्रुशुः ॥ ५६ ॥

निहतस्तैः सुरै दैत्यो मूर्च्छामापरणांगणे । हाहाकारोमहानासीद्दैत्यसैन्येभयाऽऽतुरे

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे
दैत्यसैन्यपराजयो नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

षष्ठोऽध्यायः

महिषासुरइन्द्रादिदेवैःसहयुद्धवर्णनम्

व्यास उवाच

ताम्रेऽथ मूर्छिते दैत्ये महिषः क्रोधसंयुतः। समुद्यम्य गदां गुर्वीं देवानुपजगाम ह॥
तिष्ठन्त्वद्य सुराः सर्वे हन्म्यहं गदया किल। सर्वे बलिभुजः कामं बलहीनास्सदैव हि
इत्युक्त्वाऽसौ गजारूढं सम्प्राप्य मदगर्वितः। जघानगदया तूर्णं बाहुमूले महाभुजः

सोऽपि वज्रेण घोरेण चिच्छेदाशु गदाञ्चताम्।
प्रहर्तुकामस्त्वरितो जगाममहिषं प्रति॥ ४॥

हयारिरपिकोपेन खड्गमादाय सुप्रभम्। ययाविन्द्रं महावीर्यंप्रहरिष्यन्निवान्तिकम्
बभूव च तयोर्युद्धं सर्वलोकभयावहम्। आयुधैर्विविधैस्तत्र मुनिविस्मयकारकम्॥

चकाराऽऽशु तदा दैत्योमायांमोहकरीं किल।
शाम्बरीं सर्वलोकघ्नीं मुनीनामपि मोहिनीम्॥ ७॥

कोटिशोमहिषास्तत्रतद्रूपास्तत्पराक्रमाः। ददृशुःसायुधाःसर्वेनिघ्नन्तोदेववाहिनीम्

मघवा विस्मितस्तत्र दृष्ट्वा तां दैत्यनिर्मिताम्।
बभूवातिभयोद्विग्नो मायां मोहकरीं किल॥ ९॥

वरुणोऽपि सुसंत्रस्तस्तथैव धननायकः। यमो हुताशनः सूर्यः शीत रश्मिर्भयातुरः॥
पलायनपराः सर्वे बभूवुर्मोहिताः सुराः। ब्रह्मविष्णुमहेशानां स्मरणं चक्रुरुद्यताः॥
तत्राजग्मुश्चकाजेशाः स्मृतमात्राःसुरोत्तमाः। हंसताक्ष्यंवृषारूढाखातुकामावरायुधाः
शौरिस्तांमोहनीं दृष्ट्वा सुदर्शनमथोज्ज्वलम्। मुमोच तत्तेजसैवमायासाविलयं गता

वीक्ष्य तान्महिषस्तत्र सृष्टिस्थित्यन्तकारिणः।
योद्धुकामः समादाय परिघं समुपाद्रवत्॥ १४॥

महिषाख्यो महावीरः सेनानीश्चिक्षुरस्तथा। उग्रास्यश्चोग्रवीर्यश्च दुद्रुवुर्युद्धकामुकाः

असिलोमात्रिनेत्रश्च बाष्कलोऽन्धकएवच । एते चान्येचबहवो युद्धकामाविनिर्ययुः
सन्नद्धाधृतचापास्ते रथारूढा मदोद्धताः । परिवव्रुः सुरान्सर्वान्वृकाइव सुवत्सकान्
बाणवृष्टिं ततश्चक्रुर्दानवा मदगर्विताः । सुराश्चापि तथा चक्रुः परस्परजिघांसवः ॥

अन्धकोरिपुमासाद्य पञ्चबाणाञ्छिलाशितान् ।

मुमोचविष संदिग्धान्कर्णाऽऽकृष्टामहाबलान ॥ १६ ॥

वासुदेवोऽप्यसम्प्राप्तान्विशिखानाशुगैस्तदा । चिच्छेदतान्पुनःपञ्चमुमोचरिपुनाशक-
तयो परस्परंयुद्धं बभूव हरिदैत्ययोः । बाणासि चक्रमुसलैर्गदाशक्तिपरश्वधैः ॥२१॥
महेशान्धकयोर्युद्धं तुमुलं लोमहर्षणम् । पञ्चाशद्दिनपर्यन्तं बभूव च परस्परम् ॥२२
इन्द्रबाष्कलयोस्तद्वन्महिषासुर रुद्रयोः । यमत्रिनेत्रयोस्तद्वन्महाहनुधनेशयोः॥ २३॥
असिलोमवरुणयोर्युद्धं परम दारुणम् । गरुडं गदया दैत्यो जघान हरिवाहनम् २४
स गदापातखिन्नांगो निःश्वसन्नवतिष्ठते । शौरिस्तंदक्षिणेनाशुहस्तेनपरि सान्त्वयन्

स्थिरं चकार देवेशो वैनतेयं महाबलम् ।

समाकृष्य धनुः शार्ङ्गं मुमोच विशिखान्बहून् ॥ २६ ॥

अन्धकोपरिकोपेनहन्तुकामोजनार्दनः । दानवोऽपिचतान्बाणांश्चिच्छेदस्वशरैःशितैः

पञ्चाशद्भिर्हरिं कोपाज्जघान च शिलाशितैः ।

वासुदेवोऽपि तांस्तूर्णं वञ्चयित्वा सरोत्तमान् ॥ २८ ॥

चक्रं मुमोच वेगेन सहस्रारं सुदर्शनम् । त्यक्तं सुदर्शनं दूरात्स्वचक्रेण न्यवारयत् ॥
ननाद च महाराज देवान्संमोहयन्निव । दृष्ट्वा तु विफलं जातं चक्रं देवस्यशार्ङ्गिणः॥

जग्मुःशोकं सुराः सर्वे जहृषुर्दानवास्तथा ।

वासुदेवोऽपि तरसा दृष्ट्वा देवाञ्छुचाऽऽवृतान् ॥ ३१ ॥

गदां कौमोदकीं धृत्वा दानवंसमुपाद्रवत् । तं जघानातिवेगेनमूर्ध्निमायाविनं हरिः
स गदाभिहतो भूमौ निपपातातिमूर्छितः । तं तथा पतितं वीक्ष्य हयारिरतिकोपनः
आजगामरमानाथंत्रासयन्नतिगर्जितैः । वासुदेवोऽपितंदृष्ट्वासमायान्तंक्रुधाऽन्वितम्
चापज्यानिनदंचोग्रं चकारनन्दयन्सुरान् । शरवृष्टिंचकाराऽऽशु भगवान्महिषोपरि॥

सोऽपि चिच्छेद बाणौघैस्ताञ्छरान्गगनेरितान् ।
तयोर्युद्धमभूद्राजन्परस्पर भयावहम् ॥ ३६ ॥
गदया ताडयामासकेशवो मस्तकोपरि । स गदाभिहतोमूर्ध्नि पपातोर्व्यांसुमूर्छितः
हाहाकारो महानासीत्सैन्येतस्यसु दारुणः ।
स विहायव्यथांदैत्यो मुहूर्तादुत्थितः पुनः ॥ ३८ ॥
गृहीत्वापरिघं शीर्षे जघान मधुसूदनम् । परिघेणाहतस्तेन मूर्छामाप जनार्दनः ॥३९
मूर्छितं तमुवाहाशु जगाम गरुडो रणात् । परावृत्ते जगन्नाथे देवा इन्द्रपुरोगमाः ॥
भयं प्रापुः सदुःखार्ताश्चुक्रुशुश्च रणाजिरे । क्रंदमानान्सुरान्वीक्ष्य शङ्करः शूलभृत्तदा
महिषं तरसाऽभ्येत्य प्राहरद्रोषसंयुतः । सोऽपिशक्तिंमुमोचाथ शङ्करस्योरसिस्फुटम्
जगर्ज स च दुष्टात्मा वञ्चयित्वात्रिशूलकम् ।
शङ्करोऽपि तदा पीडां न प्रापोरसि ताडितः ॥ ४३ ॥
तं जघान त्रिशूलेन कोपादरुणलोचनः । संलग्नं शंकरं दृष्ट्वा महिषेण दुरात्मना ॥
आजगाम हरिस्तावत्यक्त्वामूर्छांप्रहारजाम् । महिषस्तुतदावीक्ष्यसंप्राप्तौ हरिशङ्करौ
युद्धकामौ महावीर्यौ चक्रशूलधरौ वरौ । कोपयुक्तो बभूवासौ दृष्ट्वा तौ समुपागतौ
जगामसम्मुखस्तावत्संग्रामार्थंमहाभुजः । माहिषंवपुरास्थाय धुन्वन्पुच्छंसमुत्कटम्
चकार भैरवं नादं त्रासयन्नमरानपि । धुन्वञ्छृङ्गे महाकायो दारुणो जलदो यथा ॥
शृङ्गाभ्यां पार्वताञ्छृङ्गांश्चिक्षेप भृशमुत्कटान् ।
दृष्ट्वा तौ तु महावीर्यौ दानवं देवसत्तमौ ॥ ४९ ॥
चक्रतुर्बाणवृष्टिं च दानवोपरिदारुणाम् । कुर्वाणौ बाणवृष्टिं तौ दृष्ट्वा हरिहरौहरिः॥
चिक्षेप गिरिं शृङ्गन्तु पुच्छेनावृत्य दारुणम् ।
आपतन्तं गिरिं वीक्ष्य भगवान्सात्वतांपतिः ॥ ५१ ॥
विशिखैः शतधाचक्रेचक्रेणाशुजघानतम् । हरिश्चक्राहतः संख्ये मूर्छामापस दैत्यराट्
उत्तस्थौ च क्षणान्नूनं मानुषं वपुरास्थितः । गदापाणिर्महाघोरो दानवःपर्वतोपमः
मेघनादं ननादोच्चैर्भीषयन्नमरानपि । तच्छ्रुत्वा भगवान्विष्णुःपांचजन्यंसमुज्ज्वलम्

पूरयामास तरसा शब्दं कर्तुं खरस्वरम् । तेन शब्देन शङ्खस्य भयत्रस्ताश्च दानवाः ॥
बभूवुर्मुदिता देवा ऋषयश्च तपोधनाः ॥ ५६ ।

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यांसंहितायां पञ्चमस्कन्धे
महिषासुरइन्द्रादिदेवैःसहयुद्धवर्णनंनाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सप्तमोऽध्यायः

पराजितदेवताशङ्करशरणगमनवर्णनम्

व्यास उवाच

असुरान्महिषो दृष्ट्वा विषण्णमनसस्तदा । त्यक्त्वा तन्माहिषं रूपं बभूव मृगराडसौ
कृत्वा नादं महाघोरं विस्तार्य च महासटाम् । पपातसुरसेनायां त्रासयन्नखदंशनैः
गरुडश्चनखाऽऽघातैः कृत्वारुधिरविप्लुतम् । जघान च भुजेविष्णुंनखाघातेनकेसरी
वासुदेवोऽपि तं दृष्ट्वा चक्रमुद्यम्य वेगवान् ।
हन्तुकामो हरिःकाममवापाऽऽशु क्रुधाऽन्वितः ॥ ४ ॥
यावद्धयरिपुंवेगाच्चक्रेणाभिजघानतम् । तावत्सोऽतिबलःशृङ्गीशृङ्गाभ्यांन्यहनद्धरिम्
वासुदेवो विषाणाभ्यां ताडितोरसि विह्वलः । पलायनपरोवेगाज्जगाम भुवनंनिजम्
गतं दृष्ट्वा हरिं कामंशङ्करोऽपिभयान्वितः । अवध्यं तं परं मत्वा ययौ कैलासपर्वतम्
ब्रह्मापि च निजं धाम त्वरितःप्रययौभयात् । मघवावज्रमालंब्य तथाबाजौमहाबलः
वरुणः शक्तिमालम्ब्य धैर्यमालम्ब्य संस्थितः ।
यमोऽपि दण्डमादाय यत्तः समर तत्परः ॥ ६ ॥
ततो यक्षाधिपः कामं बभूव रणतत्परः । पावकः शक्तिमादाय तत्राऽभूद्युद्धमानसः
नक्षत्राधिपतिः सूर्य समवेतौस्थितावुभौ । वीक्ष्य तं दानवश्रेष्ठं युद्धाय कृतनिश्चयौ
एतस्मिन्नन्तरेक्रुद्धं दैत्यसैन्यं समभ्यगात् । विसृजन्बाणजालानिक्रूराहिसदृशानिच

कृत्वाहि माहिषं रूपं भूपतिः संस्थितस्तदा ।
देवदानव योधानां निनादस्तुमुलोऽभवत् ॥ १३ ॥
ज्याघातश्च तलाघातो मेघनादसमोऽभवत् । संग्रामे सुमहाघोरे देवदानवसेनयोः ॥
शृङ्गाभ्यां पार्वताञ्छृङ्गांश्चिक्षेप च महाबलः । जघान सुरसंघांश्च दानवो मदगर्वितः
खुराघातैस्तथा देवान्पुच्छस्य भ्रमणेन च । स जघान रुषाऽविष्टो महिषः परमाद्भुतः
ततोदेवाः स गन्धर्वा भयमाजग्मु रुद्यताः । मघवाः महिषं दृष्ट्वा पलायनपरोऽभवत्
सङ्गरं सम्परित्यज्य गते शक्रे शचीपतौ ।
यमो धनाधिपः पाशी जग्मुः सर्वे भयाऽऽतुराः ॥ १८ ॥
महिषोऽतिजयं मत्वा जगाम स्वगृहं ततः । ऐरावतं गजं प्राप्य त्यक्तमिन्द्रेणगच्छतः
तथोच्चैःश्रवसं भानोः कामधेनुं पयस्विनीम् ।
स्वसैन्यसमृतस्तूर्णं स्वर्गं गन्तुं मनो दधे ॥ २० ॥
तरसा देवसदनं गत्वा स महिषासुरः । जग्राह सुरराज्यं वै त्यक्तं देवैर्भयाऽऽतुरैः ॥
इन्द्राऽऽसने तथा रम्ये दानवः समुपाविशत् ।
दानवान्स्थापयामास देवानां स्थानकेषुसः ॥ २२ ॥
एवंवर्षशतंपूर्णं कृत्वा युद्धं सुदारुणम् । अवापेन्द्रपदं कामं दानवो मद गर्वितः ॥
निर्जरा निर्गता नाकात्तेन सर्वेऽतिपीडिताः । एवं बहूनि वर्षाणि बभ्रमुर्गिरिगह्वरे ॥
श्रान्ताः सर्वे तदा राजन्ब्रह्माणं शरणं ययुः । प्रजापतिं जगन्नाथं रजोरूपं चतुर्मुखम्
पद्मासनं वेदगर्भं सेवितं मुनिभिः स्वजैः । मरीचिप्रमुखैः शांतैर्वेदवेदाङ्गपारगैः ॥
किन्नरैः सिद्धगन्धर्वैश्चारणोरगपन्नगैः । तुष्टुवुर्भयभीतास्ते देवदेवं जगद्गुरुम् ॥

देवा ऊचुः

धातः किमे तदखिलाऽऽर्तिहरांबुजन्मजन्माऽभिवीक्ष्य न दयां कुरुषेसुरान्यत् ॥
सम्पीडितानृणजितानसुराधिपेन स्थानच्युतान्गिरिगुहाकृत सन्निवासम् ॥ २८
पुत्रान्पिता किमपराधशतैः समेतान्संत्यज्य लोभरहितः कुरुतेऽतिदुःस्थान ॥
यस्त्वं सुरांस्तव पदाम्बुजभक्तियुक्तान्दैत्यार्दितांश्च कृपणान्यदुपेक्षसेऽद्य ।

अमरभुवनराज्यं तेन भुक्तं नितान्तं मखहविरपि योग्यं ब्राह्मणैराददाति ।
सुरतरुवरपुष्पं सेवतेऽसौ दुरात्मा जलनिधिनिधिभूतां गामसौ सेवते ताम् ॥
किं वा गृणीमः सुरकार्यमद्भुतं जानासि देवेश सुरारिचेष्टितम् ।
ज्ञानेन सर्वं त्वमशेषकार्यवित्तस्मात्प्रभो ते प्रणताः स्म पादयोः ॥ ३१ ॥
यत्राऽपि कुत्राऽपि गतान्सुरानसौ नानाचरित्रैः खलु पापमानसः ।
पीडां करोत्येव स दुष्टचेष्टितस्त्राताऽसि देवेश विधेहि शं विभो ॥ ३२ ॥
नोचेद्वयं दावमहाग्निपीडिताः कं शांतिकर्तारमनन्ततेजसम् ।
यामः प्रजेशं शरणं सुरेष्टं धातारमाद्यं परिमुच्य कं शिवम् ॥ ३३ ॥

व्यास उवाच

इति स्तुत्वासुराःसर्वेप्रणेमुस्तं प्रजापतिम् । बद्धाञ्जलिपुटाःसर्वे विषण्णवदनाभृशम्
तांस्तथापीडितान्दृष्ट्वा तदा लोकपितामहः । उवाचश्लक्ष्णयावाचा सुखंसञ्जनयन्निव

ब्रह्मोवाच

किं करोमि सुराः कामंदानवोवरदर्पितः । स्त्रीवध्योऽसौनपुंवध्योविधेयंतत्र किं पुनः
व्रजामोऽद्य सुराः सर्वे कैलासं पर्वतोत्तमम् ।
शङ्करं पुरतः कृत्वा सर्वकार्यविशारदम् ॥ ३७ ॥
ततो व्रजाम वैकुण्ठं यत्र देवो जनार्दनः । मिलित्वा देवकार्यञ्च विमृशामो विशेषतः
इत्युक्त्वा हंसमारुह्य ब्रह्मा कार्यसमुच्चये । देवांश्च पृष्ठतः कृत्वा कैलासाभिमुखोययौ
तावच्छिवोऽपि तरसा ज्ञात्वा ध्यानेन पद्मजम् ।
आगच्छन्तं सुरैः सार्धं निर्गतः स्वगृहाद्बहिः ॥ ४० ॥
दृष्ट्वा परस्परंतौ तु कृताभिवादनौभृशम् । प्रणतौ च सुरैः सर्वैः सन्तुष्टौसम्बभूवतुः
आसनानि पृथग्दत्त्वा देवेभ्योगिरिजापतिः । उपविष्टेषु तेष्वेव निषसादासनेस्वके
कृत्वा तु कुशलप्रश्नं ब्रह्माणंवृषभध्वजः । पप्रच्छ कारणं देवान्कैलासाऽऽगमनेविभुः

शिव उवाच

किमत्राऽऽगमनं ब्रह्मन्कृतं देवैः सवासवैः । भवता च महाभाग ब्रूहितत्कारणं किल

ब्रह्मोवाच

महिषेण सुरेशानपीडिताःस्वर्निवासिनः । भ्रमन्ति गिरिदुर्गेषु भयत्रस्ताःसवासवाः
यज्ञभुग्महिषो जातस्तथाऽन्ये सुरशत्रवः । पीडितालोकपालाश्च त्वामद्यशरणंगताः
मया ते भवनं शम्भो प्रापिताःकार्यगौरवात् । यद्युक्तंतद्विधत्स्वाद्य सुरकार्यंसुरेश्वर
त्वयि भारोऽस्ति सर्वेषां देवानां भूतभावन !।

व्यास उवाच

इति तद्वचनं श्रुत्वा शङ्करः प्रहसन्निव ॥ ४८ ॥
वचनं श्लक्ष्णया वाचा प्रोवाच पद्मजं प्रति ।

शिव उवाच

भवतैव कृतं कार्यं वरदानात्पुरा विभो ॥ ४९ ॥
अनर्थदश्च देवानां किं कर्तव्यमतः परम् । ईदृशो बलवाञ्छूरः सर्वदेवभयप्रदः ॥ ५०
का समर्था वरा नारी तं हन्तुं मददर्पितम् । न मे भार्याननेभार्यासंग्रामं गन्तुमर्हति
गत्वैव ते महाभागे युयुधाते कथं पुनः ।
इन्द्राणीचमहाभाग न युद्धकुशलाऽस्ति हि ॥ ५२ ॥
काऽन्याहन्तुंसमर्थाऽस्ति तं पापंमददर्पितम् । ममेदं मतमद्यैव गत्वा देवं जनार्दनम्
स्तुत्वातंदेवकार्याय प्रेरयामःसुसत्वरम् । सोऽतिबुद्धिमतांश्रेष्ठोविष्णुःसर्वार्थसाधने
मिलित्वावासुदेवं वै कर्तव्यं कार्यचिन्तनम् ।
प्रपञ्चेन च बुद्ध्या स सम्विधास्यति साधनम् ॥ ५५ ॥

व्यास उवाच

इति रुद्रवचः श्रुत्वा ब्रह्माद्याः सुरसत्तमाः ।
उत्थितास्ते तथेत्युक्त्वा शिवेन सह सत्वराः ॥ ५६ ॥
स्वकार्यैर्वाहनैःसर्वे ययुर्विष्णुपुरम्प्रति । मुदिताः शकुनान्दृष्ट्वाकार्यसिद्धिकराञ्छुभान्
ववुर्वाताः शुभाः शांताः सुगन्धाः शुभशंसिनः ।
पक्षिणश्च शिवा वाचस्तत्रोचुः पथि सर्वशः ॥ ५८ ॥

निर्मलश्चाऽभवद्व्योम दिशश्च विमलास्तथा । गमने तत्र देवानांसर्वंशुभमिवाभवत्

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यांसंहितायां पञ्चमस्कन्धे
पराजितदेवताशङ्करशरणगमनवर्णनंनामसप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अष्टमोऽध्यायः

विष्णुपरामर्शेनदेवानांशक्त्युपासनंतथाशक्तिप्रादुर्भाववर्णनम्

व्यास उवाच

तरसा तेऽथ सम्प्राप्यवैकुण्ठं विष्णुवल्लभम् । ददृशुःसर्वशोभाढ्यंदिव्यगृहविराजितम्
सरोवापीसरिद्भिश्च संयुतं सुखदं शुभम् । हंससारसचक्राह्वैः कूजद्भिश्च विराजितम्
चम्पकाऽशोककह्लारमन्दारवकुलावृत्तैः । मल्लिकातिलकाम्रातयुतैः कुरबकादिभिः॥३
कोकिलारावसन्नादैः शिखण्डैर्नृत्यरञ्जितैः । भ्रमरारावरम्यैश्चदिव्यैःउपवनैर्युतम् ॥४
सुनन्दनन्दनाद्यैश्च पार्षदैर्भक्तितत्परैः । संस्तुवद्भिर्युतं भक्तैरनन्यभववृत्तिभिः ॥५॥
प्रासादै रत्नखचितैः काञ्चनैश्चित्रमंडितैः । अभ्रंलिहैर्विराजद्भिः संयुतं शुभसद्मकैः ॥
गायद्भिर्देवगन्धर्वैर्नृत्यद्भिरप्सरोगणैः । रञ्जितं किन्नरैः शश्वद्रक्तकण्टैर्मनोहरैः ॥ ७ ॥
मुनिभिश्च तथा शान्तैर्वेदपाठकृताऽऽदरैः । स्तुवद्भिःश्रुतिसूक्तैश्च मण्डितं सदनं हरेः

ते च विष्णुगृहंप्राप्य द्वारपालौ शुभाऽऽकृती ।
वीक्ष्योचुर्जय विजयौ हेमयष्टिधरौस्थितौ ॥ ९ ॥
गत्वैकोऽप्युभयोर्मध्ये निवेदयतु संगतान् ।
द्वारस्थान्ब्रह्मरुद्रादीन्विष्णुदर्शनलालसान् ॥ १० ॥

व्यास उवाच

विजयस्तद्वचः श्रुत्वा गत्वाऽथ विष्णुसन्निधौ ।
सर्वान्समागतान्देवान्प्रणम्योवाचसत्वरः ॥ ११ ॥

विजय उवाच

देवदेव महाराज रमाकान्त सुरारिहन् । समागताः सुरा :सर्वेद्वारितिष्ठन्तिवैविभो॥
ब्रह्मा रुद्रस्तथेन्द्रश्च वरुणः पावकोयमः । स्तुवन्ति वेदवाक्यैस्त्वाममरादर्शनार्थिनः

व्यास उवाच

तच्छ्रुत्वा वचनं विष्णुर्विजयस्य रमापतिः । निर्जगामगृहात्तूर्णंसुरान्समधिकोत्सवः
गत्वा वीक्ष्य हरिर्देवान्द्वारस्थाऽच्छ्रमकर्शितान् ।
प्रीतिप्रवणया दृष्ट्या प्रीणयामास दुःखितान् ॥ १५ ॥
प्रणेमुस्ते सुराः सर्वे देवदेवं जनार्दनम् । तुष्टुवुश्च सुरारिघ्नं वाग्भिर्वेदविनिश्चितम्

देवा ऊचुः

देवदेव जगन्नाथ सृष्टिस्थित्यन्तकारक । दयासिन्धोमहाराजत्राहि नः शरणागतान

विष्णुरुवाच

विशन्तु निर्जराः सर्वेकुशलं कथयन्तुवः । आसनेषु किमर्थं वै मिलिताःसमुपागताः
चिन्तातुराः कथं जाताविषण्णादीनमानसाः । ब्रह्मरुद्रेणसहिताःकार्यं प्रब्रूतसत्वरम्

देवा ऊचुः

महिषेण महाराज पीडिताः पापकर्मणा । असाध्येनाऽतिदुष्टेन वरदृप्तेन पापिना ॥
यज्ञभागानसौ भुंक्ते ब्राह्मणैःप्रतिपादितान । अमरा गिरिदुर्गेषु भ्रमन्तिच भयातुराः
वरदानेन धातुः स दुर्जयो मधुसूदन । तस्मात्त्वांशरणंप्राप्ता ज्ञात्वा तत्कार्यगौरवम्
समर्थोऽसि समुद्धर्तुं दैत्यमायाविशारद । कुरु कृष्णवधोपायं तस्य दानवमर्दन ॥
धात्रा तस्मै वरो दत्तो ह्यवध्योऽसि नरैः किल ।
का स्त्री त्वेवंविधा बाला या हन्यात्तं शठं रणे ॥ २४ ॥
उमामावाशर्चीविद्या का समर्थाऽस्य घातने । महिषस्यातिदुष्टस्य वरदानबलादपि
विचिन्त्यबुद्ध्या यत्सर्वंमरणस्याऽस्यकारणम् । कुरुकार्यञ्चदेवानांभक्तवत्सलभूधर

व्यास उवाच

श्रुत्वा तद्वचनंविष्णुस्तानुवाच हसन्निव । युद्धंकृतंपुराऽस्माभिस्तथाऽपिनमृतोह्यसौ

अद्य सर्वसुराणां वै तेजोभी रूप सम्पदा । उत्पन्ना चेद्वरारोहासाहन्यात्संरणेबलात्
ह्यारिं वरदृप्तं च माया शतविशारदम् । हन्तुं योग्या भवेन्नारी शस्त्रयंत्रैर्निर्मिनाहिनः
प्रार्थयन्तु च तेजोंऽशान्निश्चयोऽस्माकं तथा पुनः ।
उत्पन्नैस्तैश्च तेजोंऽशैस्तेजोराशिर्भवेद्यथा ॥ ३० ॥
आयुधानि वयं दद्मः सर्वरुद्र पुरोगमाः । तस्यैसर्वाणिदिव्यानित्रिशूलादीनियानिच
सर्वाऽऽयुधधरा नारी सर्वतेजःसमन्विता । हनिष्यति दुरात्मानं तं पापंमदगर्वितम्

व्यास उवाच

इत्युक्तवति देवेशे! ब्रह्मणो वदनात्ततः । स्वयमेवोद्ध बभौ तेजोराशिश्चानीव दुःसहः
रक्तवर्णं शुभाकारं पद्मराग मणिप्रभम् ।
किञ्चिच्छीतं तथा चोष्णं मरीचिजालमण्डितम् ॥ ३४ ॥
निः सृतं हरिणा दृष्टं हरेण च महात्मना । विस्मितौतौ महाराज बभूवतुरुरुक्रमौ
शङ्करस्य शरीरात्तु निःसृतं महदद्भुतम् । रौप्यवर्णमभूत्तीव्रं दुर्दर्शं दारुणं महत् ॥
भयङ्करं च दैत्यानां देवानां विस्मयप्रदम् । घोररूपं गिरिप्रख्यं तमोगुणमिवापरम्
ततो विष्णुशरीरात्तु तेजोराशिमिवापरम् । नीलं सत्त्वगुणोपेतं प्रादुरास महाद्युति
ततश्चेन्द्रशरीरात्तु चित्ररूपं दुरासदम् । आविरासीत्सुसंवृत्तं तेजः सर्वगुणात्मकम्
कुबेरयमवह्नीनां शरीरेभ्यः समन्ततः । निश्चक्राम महत्तेजो वरुणस्य तथैव च ॥४०॥
अन्येषां चैव देवानां शरीरेभ्योऽति भास्वरम् ।
निर्गतं तन्महातेजोराशिरासीन्महोज्ज्वलः ॥ ४१ ॥
तं दृष्ट्वाः विस्मृताः सर्वे देवा विष्णुपुरोगमाः ।
तेजोराशिं महादिव्यं हिमाचलमिवापरम् ॥ ४२ ॥
पश्यतां तत्र देवानां तेजः पुञ्ज समुद्भवा । बभूवाऽतिवरा नारी सुन्दरी विस्मयप्रदा
त्रिगुणा सा महालक्ष्मीः सर्वदेवशरीरजा । अष्टादशभुजा रम्यात्रिवर्णाविभ्रमोहिनी
श्वेतानना कृष्णनेत्रा संरक्ताधरपल्लवा । ताम्रपाणितला कान्ता दिव्यभूषणभूषिता
अष्टादशभुजा देवी सहस्रभुजमण्डिता । सम्भूताऽसुरनाशाय तेजोराशिसमुद्भवा ॥

जनमेजय उवाच

कृष्ण देव महाभाग सर्वज्ञ मुनिसत्तम । विस्तरंब्रूहि तस्यास्त्वं शरीरस्य समुद्भवम्
एकीभूतं च सर्वेषांतेजःकिंवापृथक्स्थितम् । अङ्गानिचैवतस्यास्तुसर्वतेजोमयानिवा
भिन्नभागविभागेन जातान्यङ्गानि यानि तु । मुखनासाऽक्षिभेदेन सर्वत्रैकभवानिच
ब्रूहि तद्विस्तरं व्यास शरीराङ्गसमुद्भवम् । बभूवयस्यदेवस्य तेजसोऽङ्गं यदद्भुतम्

आयुधाऽऽभरणादीनि दत्तानियैर्यथा यथा ।
तत्सर्वं श्रोतुकामोऽस्मि त्वन्मुखाम्बुजनिर्गतम् ॥ ५१ ॥
नहि तृप्याम्यहं ब्रह्मन्सुधामयरसं पिबन् ।
चरितं च महालक्ष्म्यात्वन्मुखाम्भोजनिःसृतम् ॥ ५२ ॥

सूत उवाच

इति तस्य वचः श्रुत्वा राज्ञः सत्यवतीसुतः । उवाचमधुरंवाक्यंप्रीणयन्निवभूपतिम्

व्यास उवाच

शृणु राजन्महाभाग ! विस्तरेण ब्रवीमि ते । यथामति कुरुश्रेष्ठ तस्या देहसमुद्भवम्
न ब्रह्मा न हरिः साक्षान्न रुद्रो न च वासवः । याथातथ्येन तद्रूपं वक्तुमीशः कदाचन
कथं जानाम्यहं देव्या यद्रूपं यादृशं यतः । वाचारम्भणमात्रं तदुत्पन्नेतिब्रवीमि यत्
सा नित्यासर्वदैवास्तेदेवकार्यार्थं सिद्धये । नानारूपा त्वेकरूपाजायतेकार्यगौरवात्
यथा नटोरङ्गगतो नानारूपो भवत्यसौ । एकरूपस्वभावोऽपि लोकरञ्जन हेतवे ॥
तथैषा देवकार्यार्थमरूपाऽपि स्वलीलया । करोति बहुरूपाणि निर्गुणासगुणानि च
कार्यकर्माऽनुसारेण नामानि प्रभवन्ति हि । धात्वर्थगुणयुक्तानिगौणानिसुबहून्यपि
तद्वै बुद्ध्यनुसारेण प्रब्रवीमि नराधिप । यथा तेजः समुद्भूतं रूपंतस्या मनोहरम् ॥
शङ्करस्य च यत्तेजस्तेन तन्मुखपङ्कजम् । श्वेतवर्णं शुभाकारमजायत महत्तरम् ॥

केशास्तस्यास्तथा स्निग्धा याम्येन तेजसाऽभवन् ।
वक्राग्राश्चाऽतिदीर्घाश्च मेघवर्णा मनोहराः ॥ ६३ ॥

नयनत्रितयं तस्या जज्ञे पावकतेजसा । कृष्णं रक्तं तथा श्वेतं वर्णत्रयविभूषितम्

वक्रे स्निग्धेकृष्णवर्णे सन्ध्ययोस्तेजसाभ्रुवौ । जातेदेव्याःसुतेजस्केकामस्यधनुषीवते
वायोश्च तेजसा शस्तौ श्रवणौ सम्बभूवतुः ।
नाऽतिदीर्घौ नाऽतिह्रस्वौ दोलाविव मनोभुवः ॥ ६६ ॥
तिलपुष्पसमाकारा नासिका सुमनोहरा । सञ्जाता स्निग्धवर्णा वै धनदस्यचतेजसा
दन्ताः शिखरिणः श्लक्ष्णाः कुन्दाग्रसदृशाः समाः ।
सञ्जाताः सुप्रभा राजन्प्राजापत्येन तेजसा ॥ ६८ ॥
अधरश्चातिरक्तोऽस्याःसञ्जातोऽरुणतेजसा । उत्तरोष्ठस्तथा रम्यःकार्तिकेयस्यतेजसा
अष्टादशभुजाकारावाहवो विष्णुतेजसा । वसूनांतेजसाऽङ्गुल्योरक्तवर्णास्तथाऽभवन्
सौम्येन तेजसाजातं स्तनयोर्युग्ममुत्तमम् ।
ऐन्द्रेणास्यास्तथामध्यं जातंत्रिवलिसंयुतम् ॥ ७१ ॥
जङ्घोरू वरुणस्याऽथ तेजसासम्बभूवतुः । नितम्बःसतु सञ्जातोविपुलस्तेजसाभुवः
एवं नारी शुभाकारासुरूपासुस्वराभृशम् । समुत्पन्नातथाराजं स्तेजोराशि समुद्भवा
तां दृष्ट्वा सुन्दुसर्वाङ्गीं सुदतीं चारुलोचनाम् । मुदंप्रापुः सुराःसर्वेमहिषेणप्रपीडिताः
विष्णुस्त्वाहसुरान्सर्वान्भूषणान्यायुधानि च ।
प्रयच्छन्तु शुभान्यस्यै देवाः सर्वाणि साम्प्रतम् ॥ ७५ ॥
स्वायुधेभ्यःसमुत्पाद्यतेजोयुक्तानिसत्वराः । समर्पयन्तुसर्वेऽद्यदेव्यैनानाऽऽयुधानिवै
इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यांसंहितायांपञ्चमस्कन्धे
स्वरूपोद्भववर्णननामाऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

नवमोऽध्यायः

महिषद्वारागुणसौन्दर्यसम्पन्नांदेवीमानेतुं मन्त्रीप्रेषणवर्णनम्

व्यास उवाच

देवाविष्णुवचःश्रुत्वासर्वेप्रमुदितास्तदा। ददुश्चभूषणान्याऽऽशुवस्त्राणिस्वायुधानिच
क्षीरोदश्चाम्बरेदिव्येरक्ते सूक्ष्मे तथाऽजरे। निर्मलंचतथाहारंप्रीतस्तस्यै सुमण्डितम्
ददौ चूडामणिंदिव्यं सूर्यकोटिसमप्रभम्। कुण्डले च तथा शुभ्रे कटकानि भुजेषु वै

केयूरान्कंकणान्दिव्यान्नानारत्नविराजितान्।
ददौ तस्यै विश्वकर्मा प्रसन्नेन्द्रियमानसः ॥ ४ ॥

नूपुरौ सुस्वरौ कान्तौ निर्मलौरत्नभूषितौ। ददौसूर्यप्रतीकाशौ त्वष्टानस्यैसुपादयोः
तथा ग्रैवेयकं रम्यं ददौ तस्यै महार्णवः। अङ्गुलीयकरत्नानि तेजोवन्ति च सर्वशः॥

अम्लानपङ्कजांमालां गन्धाढ्यां भ्रमराऽनुगाम्।
तथैव वैजयन्तीञ्च वरुणः सम्प्रयच्छत ॥ ७ ॥

हिमवानथ सन्तुष्टो रत्नानि विविधानि च। ददौ च वाहनंसिंहं कनकाभं मनोहरम्
भूषणैर्भूषिता दिव्यः सा रराज वरा शुभा। सिंहारूढा वरारोहा सर्वलक्षणसंयुता॥
विष्णुश्चक्रात्समुत्पाद्यददावस्यैरथांगकम्। सहस्रारं सुदीप्तं च देवारिशिरसांहरम्
स्वत्रिशूलात्समुत्पाद्य शंकरःशूलमुत्तमम्। ददौदेव्यै सुरारीणां कृन्तनं भयनाशनम्
वरुणश्च प्रसन्नात्मा ददौशङ्खं समुज्ज्वलम्। घोषवन्तंस्वशङ्खात्तुसमुत्पाद्य सुमङ्गलम्

हुताशनस्तथा शक्तिं शतघ्नीं सुमनोजवाम्।
प्रायच्छत प्रसन्नात्मा तस्यैदैत्यविनाशिनीम् ॥ १३ ॥

इषुधिं बाणपूर्णञ्च चापं चाद्भुतदर्शनम्। मारुतो दत्तवांस्तस्यै दुराकर्षं खरस्वरम्॥
स्ववज्रादिन्द्रमुत्पाद्यददाविन्द्रोऽतिदारुणम्। घण्टामैरावतात्तूर्णमुशब्दांचातिसुन्दराम्
ददौ दण्डं यमः कामं कालदण्डसमुद्भवम्। येनान्तं सर्वभूतानामकरोत्कालआगते

ब्रह्माकमण्डलुं दिव्यं गङ्गावारि प्रपूरितम् । ददावस्यै मुदायुक्तो वरुणःपाशमेव च
कालः खड्गं तथा चर्म प्रायच्छत्तुनराधिप । परशुं विश्वकर्मा च तीक्ष्णमस्यैददावथ
धनदस्तु सुरापूर्णं पानपात्रं सुवर्णजम् । पंकजं वरुणश्चादाद्देव्यै दिव्यं मनोहरम् ॥

गदां कौमोदकीं त्वष्टा घण्टाशतनिनादिनीम् ।
अदात्तस्यै प्रसन्नात्मा सुरशत्रुविनाशिनीम् ॥ २० ॥

अस्त्राण्यनेकरूपाणितथाऽभेद्यंवदंशनम् । ददौत्वष्टा जगन्मात्रे निजरश्मीन्दिवाकरः
सायुधांभूषणैर्युक्तां दृष्ट्वातेविस्मयंगताः । तुष्टवुस्तांसुरा देवीं त्रैलोक्यमोहनींशिवाम्

देवाऊचुः

नमः शिवायै कल्याण्यै शांत्यैपुष्ट्यै नमोनमः । भगवत्यै नमोदेव्यैरुद्राण्यैसततंनमः

कालरात्र्यै तथाऽम्बाया इन्द्राण्यै ते नमोनमः ।
सिद्ध्यै बुद्ध्यै तथा वृद्ध्यै वैष्णव्यै ते नमो नमः ॥ २४ ॥
पृथिव्यां या स्थिता पृथ्व्या न ज्ञाता पृथिवीश्च या ।
अन्तः स्थिता यमयति वन्दे तामीश्वरीं पराम् ॥ २५ ॥

मायायांयास्थिताज्ञातामाययानचतामजाम् । अन्तस्थितापेरयतिप्रेरयित्रींनुमःशिवाम्
कल्याणंकुरुभोमातस्त्राहिनःशत्रुतापितान् । जहिपापंहयारिंत्वंतेजसास्वेन मोहितम्
खलं मायाविनं घोरं ह्यवध्यं वरदर्पितम् । दुःखदं सर्वदेवानां नानारूपधरं शठम् ॥
त्वमेका सर्वदेवानां शरणं भक्तवत्सले । पीडितान्दानवेनाद्य त्राहिदेविनमोऽस्तुते

व्यास उवाच

एवं स्तुता तदा देवी सुरैःसर्वसुखप्रदा । तानुवाच महादेवी स्मितपूर्वं शुभं वचः ॥

देव्युवाच

भयं त्यजन्तु गीर्वाणा महिषान्मंदचेतसः । हनिष्यामि रणेऽद्यैव वरदृप्तंविमोहितम्

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा सा सुरान्देवी जहासातीवसुस्वरम् । चित्रमेतच्च संसारेभ्रममोहयुतं जगत्
ब्रह्मविष्णुमहेशाद्याःसेन्द्राश्चान्येसुरास्तथा । कम्पयुक्ताभयत्रस्तावर्तन्तेमहिषात्किल

अहो दैवबलं घोरं दुर्जयं सुरसत्तमाः । कालःकर्ताऽस्तिदुःखानां सुखानांप्रभुरीश्वरः
सृष्टिपालनसंहारे समर्था अपि ते यदा । मुह्यन्ति क्लेशसन्तप्ता महिषेण प्रपीडिताः
इतिकृत्वा स्मितं देवीसाट्टहासंचकारह । उच्चैः शब्दं महाघोरं दानवानां भयप्रदम्
चकम्पे वसुधा तत्रश्रुत्वा तच्छब्दमद्भुतम् । चेलुश्चपर्वताःसर्वे चुक्षोभाब्धिश्चवीर्यवान
मेरुश्चचाल शब्देन दिशः सर्वाःप्रपूरिताः । भयंजग्मुस्तदाश्रुत्वा दानवास्तंस्वनंमहत्
जयपाहीति देवास्तामूचुः परमहर्षिताः । महिषोऽपि स्वनं श्रुत्वा चुकोपमदगर्वितः
किमेतदिति तान्दैत्यान्पप्रच्छस्वनशङ्कितः । गच्छन्तुत्वरितादूता ज्ञातुंशब्दसमुद्भवम्
कृतः केनायमत्युग्रः शब्दःकर्णव्यथाकरः । देवोवादानवोवाऽपियोभवेत्स्वन कारकः
गृहीत्वा तं दुरात्मानं मत्समीपंनयन्त्विह । हनिष्यामिदुराचारं गर्जन्तं स्मयदुर्मदम्
क्षीणायुष्यं मन्दमतिं नयामि यमसादनम् । पराजिताःसुराःकामं गर्जन्ति भयातुराः

नासुरा मम वश्यास्ते कस्येदं मूढचेष्टितम् ।
त्वरिता मामुपायान्तु ज्ञात्वा शब्दस्य कारणम् ॥ ४४ ॥
अहं गत्वा हनिष्यामि तं पापं वितथश्रमम् ।

व्यास उवाच

इत्युक्तास्तेन ते दूता देवीं सर्वाङ्गसुन्दरीम् ॥ ४५ ॥

अष्टादशभुजां दिव्यां सर्वाभरणभूषिताम् । सर्वलक्षणसम्पन्नां वरायुधधरां शुभाम्
दधतीं चषकं हस्ते पिबन्तीश्च मुहुर्मधु । संवीक्ष्यभयभीतास्तेजग्मुस्त्रस्तासुशंकिताः

सकाशे महिषस्याऽऽशु तमूचुः स्वनकारणम् ।

दूता ऊचुः

देवी दैत्येश्वर प्रौढा दृश्यते काचिदङ्गना ॥ ४८ ॥

सर्वाङ्गभूषणानारी सर्वरत्नोपशोभिता । न मानुषी नासुरी सा दिव्यरूपा मनोहरा
सिंहारूढाऽऽयुधधरा चाष्टादशकरा वरा । सा नादं कुरुते नारी लक्ष्यते मदगर्विता
सुरापानरताकान्ता जानीमोनसभर्तृका । अन्तरिक्षस्थितादेवास्तांस्तुवन्तिमुदान्विताः
जयेतिपाहिनश्चेति जहिशत्रमिति प्रभो । न जानेका वरारोहा कस्य वा सा परिग्रहः

किमर्थमागता चात्र किं चिकीर्षति सुन्दरी ।
द्रष्टुं नैव समर्थाः स्मस्तत्तेजः परिधर्षिताः ॥ ५३ ॥
श्रृङ्गारवीरहासाढ्या रौद्राद्भुतरसान्विता । दृष्ट्वैवंविधां नारीमसंभाष्य समागताः॥
वयं त्वदाज्ञया राजन्किं कर्तव्यमतः परम् ।

महिष उवाच

गच्छ वीर मयाऽऽदिष्टो मन्त्रिश्रेष्ठ बलान्वितः ॥ ५५ ॥
सामादिभिरुपायैस्त्वं समानय शुभाननाम् ।
नायाति यदि सा नारी त्रिभिः सामादिभिस्त्विह ॥ ५६ ॥
अहत्वा तां वरारोहां त्वमानय ममान्तिकम् । करोमि पट्टमहिषीं तां मरालभ्रुवंमुद
प्रीतियुक्ता समायाति यदि सा मृगलोचना । रसभङ्गोयथानस्यात्तथाकुरुममेप्सितम्
श्रवणान्मोहितोऽस्म्यद्य तस्या रूपस्य सम्पदा ।

व्यास उवाच

महिषस्य वचः श्रुत्वा पेशलं मन्त्रिसत्तमः ॥ ५९ ॥
जगाम तरसा कामं गजाश्वरथसंयुतः । गत्वा दूरतरं स्थित्वातामुवाच मनस्विनीम्
विनयावनतः श्लक्ष्णं मन्त्री मधुरया गिरा ।

प्रधान उवाच

काऽसि त्वं मधुरालापे किमत्रागमनं कृतम् ॥ ६१ ॥
पृच्छति त्वां महाभागे मन्मुखेन मम प्रभुः । स जेता सर्वदेवानामवध्यस्तु नरैःकिल
ब्रह्मणो वरदानेन गर्वितश्चारुलोचने । दैत्येश्वरोऽसौ बलवान्कामरूपधरः सदा ॥
श्रुत्वा त्वां समुपायातां चारुवेषां मनोहराम् ।
द्रष्टुमिच्छति राजा मे महिषो नाम पार्थिवः ॥ ६४ ॥
मानुषं रूपमादाय त्वत्समीपं समेष्यति । यथा रुच्येत चार्वङ्गि तथा मन्यामहेवयम्
तर्हेहि मृगशावाक्षि समीपं तस्य धीमतः । नोचेदिहानयाम्येनं राजानं भक्तितत्परम्
तथा करोमिदेवेशि यथा ते मनसेप्सितम् । वशगोऽसौ तवात्यर्थं रूपसंश्रवणात्तव

करभोरु वदाऽऽशु त्वं संविधेयं मया तथा ॥ ६८ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे
महिषमन्त्रिणादेवीवार्त्तावर्णनंनाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दशमोऽध्यायः

मन्त्रीद्वारादेव्यासहविवाहप्रस्तावर्णनम्

व्यास उवाच

इति तस्य वचः श्रुत्वा प्रहस्य प्रमदोत्तमा । तमुवाच महाराज मेघगम्भीरया गिरा

देव्युवाच

मन्त्रिवर्यसुराणांवैजननींविद्धिमांकिल । महालक्ष्मीमितिख्यातांसर्वदैत्यनिषूदिनीम्
प्रार्थिताऽहं सुरैः सर्वैर्महिषस्य वधाय च । पीडितैर्दानवेन्द्रेण यज्ञभागबहिष्कृतैः
तस्मादिहागताऽस्म्यद्य तद्वधार्थं कृतोद्यमा । एकाकिनी न सैन्येनसंयुतामन्त्रिसत्तम
यत्त्वयाऽहं सामपूर्वं कृत्वास्वागतमादरात् । उक्तामधुरयावाचातेनतुष्टाऽस्मितेऽनघ
नोचेद्धन्मि दृशा त्वां वैकालाग्निसमयाकिल । कस्यप्रीतिकरंनस्यान्माधुर्यवचनंखलु
गच्छ तं महिषं पाप वद मद्वचनादिदम् । गच्छपातालमधुनार्जीविनेच्छायदस्तिते
नोचेत्कृतागसंदुष्ट हनिष्यामि रणाङ्गणे । मद्बाणक्षुण्णदेहस्त्वंगंतासि यमसादनम्

दयालुत्वं ममेदं त्वं विदित्वा गच्छ सत्वरम् ।
हते त्वयि सुरा मूढ स्वर्गं प्राप्स्यन्ति सत्वरम् ॥ ९ ॥
तस्माद्गच्छस्वत्यक्त्वैकोमेदिनीं च ससागराम् ।
पातालं तरसा मन्द यावद् बाणा न मेऽपतन् ॥ १० ॥

युद्धेच्छा चेन्मनसि ते तर्ह्येहि त्वरितोऽसुर । वीरैर्महाबलैः सर्वैर्नेयामि यमसादनम्
युगेयुगे महामूढ हतास्त्वत्सदृशाःकिल । असंख्यातास्तथान्वांवैहनिष्यामिरणाङ्गणे

साफल्यं कुरुशस्त्राणांधारणेतु श्रमोऽन्यथा । तद्युद्ध्यस्वमयासार्धंसमरेस्मरपीडितः
मा गर्वंकुरुदुष्टात्मन्यन्मेऽस्तिब्रह्मणोवरः । स्त्रीवध्यत्वेत्वयामूढपीडिताःसुरसत्तमाः
कर्तव्यं वचनं धातुस्तेनाहत्वामुपागता । स्त्रीरूपमतुलंकृत्वा सत्यं हन्तुं कृतागसम्

यथेच्छं गच्छ वा मूढ पातालं पन्नगावृतम् ।
हित्वा भूसुरसद्माऽद्य जीवितेच्छा यदस्ति ते ॥ १६ ॥

व्यास उवाच

इत्युक्तः स ततो देव्याममन्त्रिश्रेष्ठोबलान्वितः । प्रत्युवाचनिशम्यासौवचनंहेतुगर्भितम्
देवि! स्त्रीसदृशं वाक्यं ब्रूषे त्वं मदगर्विता । कासौ कत्वंकथंयुद्धमसंभाव्यमिदंकिल
एकाकिनी पुनर्बालाप्रारब्धयौवनामृदुः । महिषोऽसौमहाकायोदुर्विभाव्यंहिसङ्गतम
सैन्यं बहुविधं तस्यहस्त्यश्वरथसङ्कुलम् । पदातिगणसंविद्धंनानाऽऽयुधविराजितम्
कः श्रमः करिराजस्य मालतीपुष्पमर्दने । मारणे तव वामोरु महिषस्य तथा रणे
यदि त्वां परुषं वाक्यंब्रवोमिस्वल्पमप्यहम् । शृङ्गारेतद्विरुद्धंहिरसभङ्गाद्बिभेम्यहम्

राजाऽस्माकं सुररिपुर्वर्तते त्वयि भक्तिमान् ।
साममेव मया वाच्यं दानयुक्तं तथा वचः ॥ २३ ॥

नोचेद्धन्म्यहमद्यैव बाणेन त्वां मृषावदाम् । मिथ्याभिमानचतुरां रूपयौवनगर्विताम्

स्वामी मे मोहितः श्रुत्वा रूपं ते भुवनातिगम् ।
तत्प्रियार्थं प्रियं कामं वक्तव्यं त्वयि यन्मया ॥ २५ ॥

राज्यं तव धनं सर्वं दासस्तेमहिषःकिल । कुरुभावंविशालाक्षित्यक्त्वारोषमृतिप्रदम्
पतामि पादयोस्तेऽहं भक्तिभावेनभामिनि । पट्टराज्ञीमहाराज्ञो भवशीघ्रं शुचिस्मिते
त्रैलोक्यविभवं सर्वं प्राप्स्यसित्वमनाविलम् । सुखंसंसारजंसर्वं महिषस्यपरिग्रहात्

देव्युवाच

शृणुसाचिववक्ष्यामि वाक्यानांसारमुत्तमम् । शास्त्रदृष्टेनमार्गेणचातुर्यमनुचिन्त्यच
महिषस्य प्रधानस्त्वंमयाज्ञातंधियाकिल । पशुबुद्धिस्वभावोऽसिवचनात्तवसाम्प्रतम्

मन्त्रिणस्त्वादृशा यस्य स कथं बुद्धिमान्भवेत् ।

उभयोः सदृशो योगः कृतोऽयं विधिना किल ॥ ३१ ॥
यदुक्तं स्त्रीस्वभावाऽसि तद्विचारय मूढ किम् ।
पुमान्नाऽहंतत्स्वभावाऽभवंस्त्रीवेषधारिणी ॥ ३२ ॥

याचितं मरणंपूर्वंस्त्रियात्वत्प्रभुणायथा । तस्मान्मन्येऽतिमूर्खाऽसौनर्यारसचित्तमः कामिन्या मरणंक्लीबरतिदं शूरदुःखदम् । प्रार्थितं प्रभुणा तेन महिषेणात्मबुद्धिना तस्मात्स्त्रीरूपमाधाय कार्यंकर्त्तु मुपागता । कथंबिभेमित्वद्वाक्यैर्धर्मशास्त्र विरोधकैः विपरीतं यदादैवं तृणंवज्रसमं भवेत् । विधिश्चेत्सुमुखः कामं कुलिशं तूलवत्सदा ॥ किं सैन्यैरायुधैःकिंवा प्रपञ्चैर्दुर्गसेवनैः । मरणंसाम्प्रतंयस्यतस्यसैन्यैस्तु किं फलम् यदाऽयं देहसम्बन्धो जीवस्यकालयोगतः । तदेवलिखितंसर्वं सुखं दुःखं तथा मृतिः यस्य येन प्रकारेण मरणं दैवनिर्मितम् । तस्य तेनैव जायेत नान्यथेति विनिश्चयः ॥ ब्रह्मादीनां यथा काले नाशोत्पत्तीविनिर्मिते । तथैवभवतःकामं किमन्येषां विचार्यते ये मृत्युधर्मिणस्तेषां वरदानेन दर्पिताः । मरिष्यामो न मन्यन्ते ते मूढा मन्दचेतसः

तस्माद्गच्छ नृपं ब्रूहि वचनं मम सत्वरम् ।
यदाज्ञापयते भूपस्तत्कर्तव्यं त्वया किल ॥ ४२ ॥

मघवास्वर्गमाप्नोति देवाःसन्तु हविर्भुजः । यूयं प्रयात पातालं यदिजीवितुमिच्छथ अन्यथा चेन्मतिर्मन्द महिषस्य दुरात्मनः । तद्युध्यस्व मया सार्धं मरणाय कृतादरः मन्यसे सङ्गरे भग्ना देवा विष्णुपुरोगमाः । दैवं हि कारणं तत्र वरदानं प्रजापतेः ॥

व्यास उवाच

इति देव्या वचःश्रुत्वाचिन्तयामासदानवः । किं कर्तव्यं मयायुद्धं गन्तव्यंवानृपंप्रति विवाहार्थमिहाज्ञप्तो राज्ञाकामातुरेण वै । तत्कथं विरसंकृत्वा गच्छेयं नृपसन्निधौ इयं बुद्धिःसमीचीनायद्व्रजामिकलिविना । यथाऽऽगतंतथा शीघ्रंराज्ञेसंवेदयाम्यहम् स प्रमाणं पुनः कार्ये राजा मतिमताम्वरः । करिष्यतिविचार्यैव सचिवैर्निपुणैः सह सहसा न मया युद्धं कर्तव्यमनया सह । जये पराजये वाऽपि भूपतेरप्रियं भवेत् ॥

यदि मां सुन्दरी हन्यादहं वा हन्मि तां पुनः ।

येन केनाप्युपायेन स कुप्येत्पार्थिवः किल ॥ ५१ ॥
तस्मात्तत्रैव गत्वाऽहं बोधयिष्यामि तं नृपम् ।
यथाऽद्याभिहितं देव्या यथारुचि करोतु सः ॥ ५२ ॥

व्यास उवाच

इति सञ्चिन्त्य मेधावी जगाम नृपसन्निधौ । प्रणम्यतमुवाचेदं कृताञ्जलिरमात्यजः॥

मन्त्र्युवाच

राजन्देवीवरारोहा सिंहस्योपरि संस्थिता । अष्टादशभुजारम्या वराऽऽयुधधरापरा
सामयोक्तामहाराजमहिषंभजभामिनि । महिषी भवराज्ञस्त्वं त्रैलोक्याधिपतेः प्रिया
पट्टराज्ञी त्वमेवास्य भवितानात्र संशयः । सतेवाऽऽज्ञाकरोजातोधराशवर्ती भविष्यति
त्रैलोक्यविभवं भुक्त्वा चिरकालं वरानने । महिषं पतिमासाद्ययोषितां सुभगा भव
इति मद्वचनं श्रुत्वा सा स्मयावेशमोहिता । मामुवाचविशालाक्षीस्मितपूर्वमिदंवचः
महिषीगर्भसम्भूतं पशुनामधवं किल । बलिदास्याम्यहं देव्यै सुराणां हितकाम्यया
का मूढा कामिनीलोके महिषं वै पतिं भजेत् । मादृशीमन्दबुद्धेकि पशुभावं भजेदिह
महिषी महिषं नाथं सश्रृङ्गा श्रृङ्गसंयुतम् । कुरुते क्रन्दमाना वै नाहं तत्सदृशी शठा
करिष्येऽहं मृधे युद्धं हनिष्ये त्वां सुराप्रियम् ।
गच्छ वा दुष्ट पातालं जीवितेच्छा यदस्ति ते ॥ ६२ ॥
परुषं तु तया वाक्यमित्युक्तं नृपमत्तया । तच्छ्रुत्वाऽहं समायातःप्रतिचिन्त्यपुनःपुनः
रसभङ्गंविचिन्त्यैवनयुद्धे तु मया कृतम् । आज्ञांविनातवात्यन्तं कथंकुर्यांमृधोद्यमम्
साऽतीवचबलोन्मत्तावर्ततेभूपभामिनि । भवितव्यं न जानामिकिंवाभाविभविष्यति
कार्येऽस्मिंस्त्वं प्रमाणं नो मन्त्रोऽतीव दुरासदः ।
युद्धं पलायनं श्रेयो न जानेऽहं विनिश्चयम् ॥ ६६ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे
मन्त्रीद्वारामहिषासुरेणदेव्यासहविवाहप्रस्तावोनामदशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

एकादशोऽध्यायः

विरूपाक्षादिभृत्यान्देव्यासहयुद्धादेशवर्णनम्

व्यास उवाच

इति तस्य वचः श्रुत्वा महिषो मदविह्वलः । मन्त्रिवृद्धान्समाहूय राजावचनमब्रवीत

राजोवाच

मन्त्रिणः किं च कर्तव्यंविश्रब्धंब्रूतमाचिरम् । आगतादेवविहितामायेयंशांबरीव किम्
कार्येऽस्मिन्निपुणा यूयमुपायेषुविचक्षणाः । सामादिषुच कर्तव्यःकोऽत्रमहांब्रुवन्तुच

मन्त्रिण ऊचुः

सत्यं सदैव वक्तव्यं प्रियञ्च नृपसत्तम । कार्यं हितकरं नूनं विचार्य विबुधैः किल ॥
सत्यञ्च हितकृद्राजन्प्रियं चाहितकृद्भवेत् । यथौषधं नृणांलोके ह्यप्रियंरोगनाशनम् ॥
सत्यस्य श्रोता मन्ताचदुर्लभःपृथिवीपते । वक्ताऽपि दुर्लभःकामं बहवश्चाटुभाषकाः
कथं ब्रूमोऽत्र नृपते विचारे गहने त्विह । शुभंवाऽप्यशुभंवाऽपिको वेत्तिभुवनत्रये ॥

राजोवाच

स्वस्वमत्यनुसारेणब्रुवन्त्वद्यपृथक्पृथक् । येषांहियादृशोभावस्तच्छ्रुत्वाचिन्तयाम्यहम्
बहूनांमतमाज्ञाय विचार्य च पुनः पुनः । यच्छ्रेयस्तद्धि कर्तव्यं कार्यं कार्यविचक्षणैः

व्यास उवाच

तस्यैवं वचनं श्रुत्वा विरूपाक्षोमहाबलः । उवाच तरसा वाक्यं रञ्जयन्पृथिवीपतिम्

विरूपाक्ष उवाच

राजन्नारीवराकीयं सा ब्रूते मदगर्विता । विभीषिकामात्रमिद ज्ञातव्यं वचनं त्वया
को बिभेतिस्त्रियोवाक्यैर्दुरुक्तैरणदुर्मदैः । अनृतं साहसं चेति जानन्नारीविचेष्टितम्
जित्वात्रिभुवनं राजन्नद्य कान्ताभयं न वै । दीनत्वेऽप्ययशोनूनं वीरस्य भुवनेभवेत्
तस्माद्याम्यहमेकाकी युद्धाय चण्डिकाम्प्रति ।

हनिष्ये तां महाराज निर्भयो भव साम्प्रतम् ॥ १४ ॥
सेनावृतोऽहं गत्वा तां शस्त्रास्त्रैर्विविधैः किल ।
निषूदयामि दुर्मर्षां चण्डिकां चण्डविक्रमाम् ॥ १५ ॥
बद्ध्वासर्पमयैःपाशैरानयिष्येतवांतिकम् । वशगा तुसदा ते स्यात्पश्यराजन्बलंमम

व्यास उवाच

विरूपाक्षवचः श्रुत्वा दुर्धरोवाक्यमब्रवीत् । सत्यमुक्तंवचोराजन्विरूपाक्षेण धीमता ममापिवचनं श्लक्ष्णं श्रोतव्यंधीमतात्वया । कामातुरैषासुदतीलक्ष्यतेऽप्यनुमानतः भवत्येवंविधा कामं नायिका रूपगर्विता । भीषयित्वावरारोहात्वांवशेकर्तुमिच्छति हावोऽयंमाननीनांवैतंवेत्तिरसवित्तमः । वक्रोक्तिरेषाकामिन्याः प्रियं प्रति परायणम्

वेत्ति कोऽपि नरः कामं कामशास्त्रविचक्षणः ।
यदुक्तं नाम बाणैस्त्वां वधिष्ये रणमूर्धनि ॥ २१ ॥
हेतुगर्भामिदं वाक्यंज्ञातव्यं हेतुवित्तमैः । बाणास्तुमानिनीनांवैकटाक्षाएव विश्रुताः पुष्पाञ्जलिमयाश्चान्येव्यङ्ग्यानिवचनानि च । काशक्तिरन्यबाणानांप्रेरणेत्वयिपार्थिव तादृशीनां न साशक्तिर्ब्रह्मविष्णुहरादिषु । यथोक्तंनेत्रबाणैस्त्वांहनिष्येमन्दपार्थिवम् विपरीतं परिज्ञातं तेनाऽरसविदा किल । पातयिष्यामिशय्यायांरणमय्यां पतिं तव विपरीतरतिक्रीडाभाषणं ज्ञेयमेव तत् । करिष्ये विगतप्राणं यदुक्तं वचनं तया ॥ वीर्यम्प्राणा इतिप्रोक्तं तद्विहीनं नचान्यथा । व्यङ्ग्याधिक्येनवाक्येनवरयत्युसमान्नृप तद्वै विचारतो ज्ञेयं रसग्रन्थविचक्षणैः । इतिज्ञात्वा महाराज कर्तव्यं रससंयुतम्

सामदानद्वयं तस्या नान्योपायोऽस्ति भूपते ।
रुष्टा वा गर्विता वाऽपि वशगा मानिनी भवेत् ॥ २६ ॥
तादृशैर्मधुरैर्वाक्यैरानयिष्ये तवान्तिकम् । किं बहूक्तेन मे राजन्कर्तव्या वशवर्तिनी

गत्वा मयाऽधुनैवेयं किङ्करीव सदैव ते ।

व्यास उवाच

इत्थं निशम्य तद्वाक्यं ताम्रस्तत्त्वविचक्षणः ॥ ३१ ॥

उवाच वचनं राजन्निशामय मयोदितम् । हेतुमद्धर्मसहितं रसयुक्तं नयान्वितम् ॥
नैषाकामातुरा बाला नानुरक्ता विचक्षणा । व्यङ्ग्यानिनैववाक्यानितथोक्तानितुमानद
चित्रमत्र महाबाहो यदेकावरवर्णिनी । निरालम्बा समायाति चित्ररूपा मनोहरा
अष्टादशभुजा नारी न श्रुता न च वीक्षिता । केनाऽपि त्रिषुलोकेषु पराक्रमवतीशुभा
आयुधान्यपि तावन्ति धृतानि बलवन्ति च । विपरीतमिदंमन्ये सर्वं कालकृतं नृप
स्वप्नानि दुर्निमित्तानि मया दृष्टानि वै निशि । तेनजानाम्यहंनूनंवैशसंसमुपागतम्
कृष्णाम्बरधरा नारीरुदतीचगृहाङ्गणे । दृष्टास्वप्नेऽप्युषःकाले चिन्तितव्यस्तदत्ययः
विरूताः पक्षिणो रात्रौ रोरुवन्ति गृहे गृहे । उत्पाता विविधाराजन्प्रभवन्तिगृहेगृहे
तेनजानाम्यहं नूनं कारणं किञ्चिदेव हि । यत्त्वां प्रार्थयते बाला युद्धाय कृतनिश्चया

नैषाऽस्ति मानुषी नो वा गान्धर्वी न तथाऽऽसुरी ।
देवैः कृतेयं ज्ञातव्या माया मोहकरी विभो ! ॥ ४१ ॥

कातरत्वं न कर्तव्यं ममैतन्मतमित्यलम् । कर्तव्यं सर्वथा युद्धं यद्भाव्यं तद्भविष्यति
कोवेददैवकर्तव्यं शुभंवाऽप्यशुभं तथा । अवलम्ब्यधियाधैर्यं स्थातव्यं वै विचक्षणैः
जीवितं मरणं पुंसां दैवाधीनं नराधिप । कोऽपिनैवान्यथा कर्तुं समर्थो भुवनत्रये

महिष उवाच

गच्छताम्र महाभाग युद्धाय कृतनिश्चयः । तामानय वरारोहांजित्वाधर्मेणमानिनीम्
न भवेद्वशगा नारी संग्रामे यदि सा तव । हन्तव्या नान्यथाकामंमाननीया प्रयत्नतः
वीरस्त्वमसि सर्वज्ञकामशास्त्रविशारदः । येनकेनाप्युपायेन जेतव्या वरवर्णिनी ॥
त्वरन्वीर महाबाहो सैन्येन महतावृतः । तत्र गत्वा त्वयाज्ञेया विचार्य च पुनः पुनः
किमर्थमागता चेयं ज्ञातव्यंतद्धिकारणम् । कामद्वा वैरभावाद्वा मायाकस्येयमित्युत
आदौतन्निश्चयं कृत्वा ज्ञातव्यं तच्चिकीर्षितम् । पश्चाद्युद्धंप्रकर्तव्यंयथायोग्यंयथाबलम्
कातरत्वं न कर्तव्यं निर्दयत्वं तथा न च । यादृशं हिमनस्तस्याःकर्तव्यंतादृशंत्वया

व्यास उवाच

इति तद्भाषितं श्रुत्वा ताम्रःकालवशं गतः । निर्गतः सैन्यसंयुक्तः प्रणम्यमहिषं नृपम्

गच्छन्मार्गे दुरात्माऽसौ शकुनान्वीक्ष्य दारुणान् ।
विस्मयं च भयं प्राप यममार्गप्रदर्शकान् ॥ ५३ ॥
स गत्वा तां समालोक्य देवीं सिंहोपरिस्थिताम् ।
स्तूयमानां सुरैः सर्वैः सर्वायुधविभूषिताम् ॥ ५४ ॥

तामुवाचविनीतः सन्वाक्यं मधुरयागिरा । सामभावंसमाश्रित्यविनयावनतःस्थितः
देविदैत्येश्वरः शुम्भी त्वद्रूपगुणमोहितः । स्पृहां करोतिमहिषस्त्वत्पाणिग्रहणाय च
भावं कुरु विशालाक्षि तस्मिन्नमरदुर्जये । पतिं तं प्राप्यमृद्वङ्गिनन्दने विहराद्भुते ॥
सर्वाङ्गसुन्दरं देहं प्राप्य सर्वसुखास्पदम् । सुखं सर्वात्मनाग्राह्यंदुःखंहेयमितिस्थितिः
करभोरु किमर्थं ते गृहीतान्यायुधान्यलम् । पुष्पकन्दुकयोगास्तेकराःकमलकोमलाः
भ्रूचापेविद्यमानेऽपिधनुषाकिंप्रयोजनम् । कटाक्षविशिखाःसन्तिकिंबाणैनिष्प्रयोजनैः
संसारे दुःखदं युद्धं न कर्तव्यं विजानता । लोभासक्ताःप्रकुर्वन्तिसंग्रामं च परस्परम्
पुष्पैरपि न योद्धव्यं किं पुनर्निशितैः शरैः । भेदनं निजगात्राणां कस्यतज्जायते मुदे
तस्मात्त्वमपि तन्वङ्गि प्रसादं कर्तुमर्हसि । भर्तारं भज मे नाथं देवदानवपूजितम् ॥

स नेऽत्र वाञ्छितं सर्वं करिष्यति मनोरथम् ।
त्वं पट्टमहिषी राज्ञः सर्वथा नाऽत्र संशयः ॥ ६४ ॥

वचनं कुरु मे देवि प्राप्स्यसेसुखमुत्तमम् । संग्रामे जयसन्देहः कष्टं प्राप्य न संशयः
जानासि राजनीतित्वं यथावद्वरवर्णिनी । भुङ्क्ष्व राज्यसुखंपूर्णंवर्षाणामयुतायुतम्

पुत्रस्ते भविता कान्तः सोऽपि राजा भविष्यति ।
यौवनेक्रीडयित्वाऽन्तेवार्धक्येसुखमाप्स्यसि ॥ ६७ ॥

इति श्रीदेवीभागवतेमहापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यांसंहितायां पञ्चमस्कन्धे
ताम्रकृतदेवीप्रतिविस्रंसनवचनवर्णनंनामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

द्वादशोऽध्यायः

देवीमानेतुं समर्थोऽहमितिदुर्मुखवचनवर्णनम्

व्यास उवाच

तन्निशम्यवचस्तस्य ताम्रम्य जगदम्बिका । मेघगम्भीरया वाचा हसन्ती तमुवाच ह

देव्युवाच

गच्छ ताम्र! पतिं ब्रूहि मुमूर्षुं मन्दचेतसम् । महिषंचातिकामार्तं मूढं ज्ञानविवर्जितम्
यथा ते महिषी माता प्रौढायवसभक्षिणी । नाऽहं तथाश्रृङ्गवर्ता लम्बपुच्छामहोदरी
न कामयेऽहं देवेशं नैव विष्णुं न शङ्करम् । धनदं वरुणं नैव ब्रह्माणं न च पावकम्
एतान्देवगणान्हित्वा पशुं केन गुणेन वै । वृणोम्यहं वृथा लोके गर्हणा मे भवेदिति
नाहं पतिंवरानारी वर्ततेमे पतिः प्रभुः । सर्वकर्ता सर्वसाक्षीह्यकर्तानिःस्पृहः स्थिरः

निर्गुणो निर्ममोऽनन्तो निरालम्बो निराश्रयः ।
सर्वज्ञः सर्वगः साक्षी पूर्णः पूर्णाशयः शिवः ॥ ७ ॥

सर्वावासक्षमः शान्तः सर्वदृक्सर्वभावनः । तं त्यक्त्वा महिषंमन्दं कथंसेवितुमुत्सहे
प्रबुध्य युध्यतां कामं करोमि यमवाहनम् । अथवामनुजानांवै करिष्ये जलवाहकम्

जीवितेच्छाऽस्ति चेत्पाप! गच्छपातालमाऽऽशु वै ।
समस्तैर्दानवैर्युक्तस्त्वन्यथा हन्मि सङ्गरे ॥ १० ॥

कामं सदृशयोर्योगः संसारे सुखदो भवेत् । अन्यथादुःखदोभूयादज्ञानाद्यदिकल्पितः
मूर्खस्त्वमसि यद्ब्रूषे पतिंमेभजभामिनि । काहंकमहिषःश्रृङ्गीसम्बन्धःकीदृशो द्वयोः
गच्छयुध्यस्ववाकामं हनिष्येऽहंसबान्धवम् । यज्ञभागंदेवलोकंनोचेत्त्यक्त्वासुखीभव

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा सा तदा देवी जगर्जभृशमद्भुतम् । कल्पान्तसदृशंनादं चक्रे दैत्यभयावहम्
चकम्पे वसुधाचेलुस्तेन शब्देन भूधराः । गर्भाश्च दैत्यपत्नीनां सस्रंसुर्गर्जितस्वनात्

ताम्रः श्रुत्वा च तं शब्दं भयत्रस्तमनास्तदा । पलायनं ततः कृत्वा जगाम महिषान्तिकम्
नगरे तस्य ये दैत्यास्तेऽपि चिन्तामवाप्नुवन् । बधिरीकृतकर्णाश्च पलायनपरा नृप
तदाक्रोधेन सिंहोऽपि ननाद भृशमुत्कटः । तेन नादेन दैतेया भयं जग्मुरपि स्फुटम्
ताम्रं समागतं दृष्ट्वा हयारिरपि मोहितः । चिन्तयामास सचिवैः किं कर्तव्यमतःपरम्
दुर्गग्रहो वा कर्तव्यो युद्धं निर्गत्य वा पुनः । पलायनेकृते श्रेयो भवेद्वादानवोत्तमाः
बुद्धिमन्तो दुराधर्षाः सर्वे शास्त्रविशारदाः । मन्त्रः खलुप्रकर्तव्यः सुगुप्तःकार्यसिद्धये
मन्त्रमूलं स्मृतं राज्यं यदिस्यात्सुरक्षितः । मन्त्रिभिश्चसदाचारैर्विधेयःसर्वथाबुधैः

मन्त्रभेदे विनाशः स्याद्राज्यस्य भूपतेस्तथा ।
तस्माद्भेदभयाद्गुप्तः कर्तव्यो भूतिमिच्छता ॥ २३ ॥

तदत्रमन्त्रिभिर्वाच्यं वचनं हेतुमद्धितम् । कालदेशानुसारेण विचिन्त्यनीतिनिर्णयम्

या योषाऽत्र समायाता प्रबला दैवनिर्मिता ।
एकाकिनी निरालम्बा कारणंतद्विचिन्त्यताम् ॥ २५ ॥

युद्धं प्रार्थयते बाला किमाश्चर्यमतःपरम् । श्रेयोऽत्र विपरीतं वा को वेत्ति भुवनत्रये
न बहूनां जयोऽप्यस्ति नैकस्य च पराजयः । दैवाधीनौसदाज्ञेयौ युद्धेजयपराजयौ
उपायवादिनः प्राहुर्दैवं किं केन वीक्षितम् । अदृष्टमितिविख्यातं प्रवदन्ति मनीषिणः
तत्सत्त्वेऽपि प्रमाणं किं कातराशावलम्बनम् । नसमर्थजनानांहिदैवं कुत्रापिलक्ष्यते
उद्यमो दैवमेतौहि शूरकातरयोर्मतम् । विचिन्त्याद्य धियासर्वं कर्तव्यंकार्यमादरात्

व्यास उवाच

इतिराज्ञोवचःश्रुत्वा हेतुगर्भंमहायशाः । विडालाख्योमहाराजमित्युवाच कृताञ्जलिः
राजन्नेषा विशालाक्षी ज्ञातव्यायत्नतः पुनः । किमर्थमिह सम्प्राप्ताकुतः कस्यपरिग्रहः
मरणं ते परिज्ञाय स्त्रियाः सर्वात्मनासुरैः । प्रेषिता पद्मपत्राक्षी समुत्पाद्यस्वतेजसः

तेऽपिच्छिन्नाः स्थिताःखेऽत्र सर्वे युद्धदिदृक्षवः ।
समयेऽस्याः सहायास्तेभविष्यन्तियुयुत्सवः ॥ ३४ ॥

पुरतःकामिनींकृत्वातेवैविष्णुपुरोगमाः । वधिष्यन्तिचतःसर्वान्सात्वांयुद्धेहनिष्यति

यतच्चिकीर्षितं तेषां मया ज्ञातं नराधिप । भवितव्यस्य न ज्ञानं वर्तते मम सर्वथा
योद्धव्यं न त्वयाऽद्येति नाहंवक्तुं क्षमः प्रभो । प्रमाणंत्वंमहाराजकार्येऽत्रदेवनिर्मिते
त्वदर्थेऽस्माभिरनिशं मर्तव्यं कार्यगौरवात् ।
विहर्तव्यं त्वयासार्धमेषधर्मोऽनुजीविनाम् ॥ ३८ ॥
विचारोऽत्रमहानस्ति यदेकाकामिनीं नृप । युद्धंप्रार्थयतेऽस्माभिःससैन्यैर्बलदर्पितैः

दुर्मुख उवाच

राजन्युद्धे जयोनोऽद्य भविता वेद्म्यहं किल । पलायनंनकर्तव्यंयशोहानिकरंनृणाम्
इन्द्रादीनां संयुगेऽपिनकृतंयज्जुगुप्सितम् ।
एकाकिनीं स्त्रियं प्राप्य को हि कुर्यात्पलायनम् ॥ ४१ ॥
तस्माद्युद्धं प्रकर्तव्यं मरणंवा रणे जयः । यद्भावि तद्भवत्येव काऽत्रचिन्ता विपश्यतः
मरणेऽत्र यशः प्राप्तिर्जीवने च तथा सुखम् । उभयं मनसा कृत्वा कर्तव्यं युद्धमद्य वै
पलायने यशोहानिर्मरणं चायुषःक्षये । तस्माच्छोको न कर्तव्यो जीविते मरणेवृथा

व्यास उवाच

दुर्मुखस्यवचः श्रुत्वा बाष्कलो वाक्यमब्रवीत् ।
प्रणतः प्राञ्जलिर्भूत्वा राजानं वाक्यकोविदः ॥ ४५ ॥

बाष्कल उवाच

राजंश्चिन्ता न कर्तव्या कार्येऽस्मिन्कातराऽप्रिये ।
अहमेको हनिष्यामि चण्डीं चञ्चललोचनाम् ॥ ४६ ॥
उत्साहस्तु प्रकर्तव्यः स्थायीभावो रसस्य च । भयानकोभवेद्वैरी वीरस्य नृपसत्तम
तस्मात्यक्त्वा भयं भूप ! करिष्ये युद्धमद्भुतम् ।
नयिष्यामिनरेन्द्राहं चण्डिकांयमसादनम् ॥ ४८ ॥
न बिभेमि यमादिन्द्रात्कुबेराद्वरुणादपि । वायोर्वह्नेस्तथाविष्णोःशङ्कराच्छशिनोरवेः
एकाकिनी तथा नारीकिं पुनर्मदगर्विता । अहंतांनिहनिष्यामिविशिखैश्शिलाशितैः
पश्य बाहुबलं मेऽद्यविहरस्व यथासुखम् । भवताऽत्रनगन्तव्यंसंग्रामेऽप्यनया समम्

व्यास उवाच

एवं ब्रुवति राजेन्द्र बाष्कले मदगर्विते । प्रणम्य नृपतिं तत्र दुर्धरो वाक्यमब्रवीत्

दुर्धर उवाच

महिषाऽहं विजेष्यामि देवीं देवविनिर्मिताम् । अष्टादशभुजां रम्यां कारणाच्च समागताम्
राजन्भीषयितुं त्वां वै मायैषा निर्मिता सुरैः । विभीषिकेयं विज्ञाय त्यज मोहं मनोगतम्
राजनीतिरियं राजन्मन्त्रिकृत्यं तथा शृणु । सात्त्विका राजसाः केचित्तामसाश्च तथापरे
मन्त्रिणस्त्रिविधा लोके भवन्ति दानवाधिप !।
सात्त्विका प्रभुकार्याणि साधयन्ति स्वशक्तिभिः ॥ ५६ ॥
आत्मकृत्यं प्रकुर्वन्ति स्वामिकार्याविरोधतः । एकचित्ता धर्मपरा मन्त्रशास्त्रविशारदाः
राजसा भिन्नचित्ताश्च स्वकार्यनिरताः सदा ।
कदाचित्स्वामिकार्यं ते प्रकुर्वन्ति यदृच्छया ॥ ५८ ॥
तामसा लोभनिरताः स्वकार्यनिरताः सदा । प्रभुकार्यं विनाश्यैव स्वकार्यं साधयन्ति ते
समये ते विभिद्यन्ते परैस्तु परिवञ्चिताः । स्वच्छिद्रं शत्रुपक्षीया निर्दिशन्ति गृहस्थिताः
कार्यभेदकरा नित्यं कोशगुप्ताऽसिवत्सदा । संग्रामेऽथ समुत्पन्ने भीषयन्ति प्रभुं सदा
विश्वासस्तु न कर्तव्यस्तेषां राजन्कदाचन ।
विश्वासे कार्यहानिः स्यान्मन्त्रहानिः सदैव हि ॥ ६२ ॥
खलाः किं किं न कुर्वन्ति विश्वस्ता लोभतत्पराः ।
तामसाः पापनिरता बुद्धिहीना शठास्तथा ॥ ६३ ॥
तस्मात्कार्यं करिष्यामि गत्वाऽहं रणमस्तके । चिन्ता त्वया न कर्तव्या सर्वथा नृपसत्तम
गृहीत्वा तां दुराचारामागमिष्यामि सत्वरः । पश्य मेऽद्य बलं धैर्यं प्रभुकार्यं स्वशक्तितः

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे
देवीपराजयकरणाय दुर्धरप्रबोधवचनं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

त्रयोदशोऽध्यायः

देव्यामहिषसेनाधिपवाष्कलदुर्मुखयोर्युद्धेनिपातनम्

व्यास उवाच

इत्युक्त्वातौमहाबाहूदैत्यौबाष्कलदुर्मुखौ । जग्मुतुर्मददिग्धांगौ सर्वशस्त्रास्त्रकोविदौ
तौ गत्वा समरे देवी मूचतुर्वचनं तदा । दानवौचमदोन्मत्तौ मेघगम्भीरया गिरा ॥
देवि देवा जिता येन महिषेण महात्मना । वरय त्वं वरारोहे सर्वदैत्याधिपं नृपम्॥
स कृत्वा मानुषंरूपं सर्वलक्षणसंयुतम् । भूषितं भूषणैर्दिव्यैस्त्वामेष्यति रहः किल
त्रैलोक्यविभवं कामं त्वमेष्यसिशुचिस्मिते । महिषे परमं भावं कुरुकान्तेमनोगतम्

कृत्वा पतिं महावीरं संसारसुखमद्भुतम् ।
त्वं प्राप्स्यसि पिकालापे योषितां खलु वाञ्छितम् ॥ ६ ॥

श्रीदेव्युवाच

जाल्म ! त्वं किं विजानासि नारीयं काममोहिता ।
मन्दबुद्धिबलाऽत्यर्थं भजेयं महिषं शठम् ॥ ७ ॥

कुलशीलगुणैस्तुल्यं तं भजन्ति कुलस्त्रियः । अधिकं रूपचातुर्यबुद्धिशीलक्षमादिभिः
का नु कामातुरा नारी भजेच्च पशुरूपिणम् । पशूनामधमं नूनं महिषं देवरूपिणी ॥
गच्छतं महिषं तूर्णं भूपं बाष्कलदुर्मदौ । वदतं मद्वचो दैत्यं गजतुल्यं विषाणिनम्

पातालं गच्छ वाऽभ्येत्य संग्रामं कुरु वा मया ।
रणे जाते सहस्राक्षो निर्भयः स्यादिति ध्रुवम् ॥ ११ ॥

हत्वाऽहंत्वांगमिष्यामिनान्यथागमनंमम । इत्थंज्ञात्वा सुदुर्बुद्धे यथेच्छसितथा कुरु
मामनिर्जित्यभूभागे न स्थानन्तेकदाचन । भविष्यतिचतुष्पादं दिविवागिरिकन्दरे

व्यास उवाच

इत्युक्तौ तौ तया दैत्यौकोपाकुलितलोचनौ । धनुर्बाणधरौवीरौयुद्धकामौ बभूवतुः

कृत्वा सुविपुलंनादं देवी सा निर्भयास्थिता । उभौचचक्रतुस्तीव्रांबाणवृष्टिं कुरूद्वह
भगवत्यपि बाणौघान्मुमोच दानवौप्रति । कृत्वाऽतिमधुरं नादं देवकार्यार्थसिद्धये
तयोस्तु बाष्कलस्तूर्णंसम्मुखोऽभूद्रणांगणे । दुर्मुखःप्रेक्षकस्तत्रदेवीमभिमुखः स्थितः
तयोर्युद्धमभूद्घोरं देवीबाष्कलयोस्तदा । बाणासिपरिघाघातैर्भयदं मन्दचेतसाम् ॥
ततःक्रुद्धाजगन्माता दृष्ट्वा तं युद्धदुर्मदम् । जघानपञ्चभिर्बाणैःकर्णाकृष्टैःशिलाशितैः

दानवोऽपि शरान्देव्याश्चिच्छेद निशितैः शरैः ।
सप्तभिस्ताडयामास देवीं सिंहोपरिस्थिताम् ॥ २० ॥
साऽपि तं दशभिस्तीक्ष्णैः सुपीतैः सायकैः खलम् ।
जघान तच्छरांश्छित्त्वा जहास च मुहुर्मुहुः ॥ २१ ॥

अर्धचन्द्रेण बाणेन चिच्छेद च शराशनम् । बाष्कलोऽपि गदांगृह्यदेवींहन्तुमुपाययौ
आगच्छन्तं गदापाणिं दानवं मदगर्वितम् । चण्डिकास्वगदापातैःपातयामासभूतले

बाष्कलः पतितो भूमौ मुहूर्तादुत्थितः पुनः ।
चिक्षेप च गदां सोऽपि चण्डिकां चण्डविक्रमः ॥ २४ ॥

तमागच्छन्तमालोक्य देवी शूलेन वक्षसि । जघान बाष्कलंक्रुद्धापपात च ममार सः
पतिते बाष्कले सैन्यं भग्नं तस्य दुरात्मनः । जयेतिचमुदादेवाश्चुक्रुशुर्गगनेस्थिताः
तस्मिंश्चनिहते दैत्ये दुर्मुखोऽति बलान्वितः । आजगामरणेदेवीं क्रोधसंरक्तलोचनः
तिष्ठ तिष्ठाऽबले सोऽपि भाषमाणःपुनःपुनः । धनुर्बाणधरः श्रीमान्रथस्थःकवचावृतः
तमागच्छन्तमालोक्य देवीशङ्खमवादयन् । कोपयन्ती दानवंतंज्याघोषं च चकार ह

सोऽपिबाणान्मुमोचाऽऽशु तीक्ष्णानाशीविषोपमान् ।
स्वबाणैस्तान्महामाया चिच्छेद च ननाद च ॥ ३० ॥

तयोः परस्परं युद्धं बभूव तुमुलं नृप । बाणशक्तिगदाघातमुसलैस्तोमरैस्तथा ॥
रणभूमौ तदा जातारुधिरौघवहा नदी । पतितानि तदा तीरे शिरांसि प्रबभुस्तदा ॥
यथासन्तरणार्थाय यमकिंकरनायकैः । तुम्बीफलानि नीतानि नवशिक्षापरैर्मुदा ॥
रणभूमिस्तदा घोरा बभूवातीव दुर्गमा । शरीरैः पतितैर्भूमौ खाद्यमानैर्वृकादिभिः

गोमायुसारमेयाश्च काकाः कंका अधोमुखाः ।
गृध्राः श्येनाश्च खादन्ति शरीराणि दुरात्मनाम् ॥ ३५ ॥

ववौ वायुश्चदुर्गन्धो मृतानांदेहसङ्कुलः । अभूत्किलकिलाशब्दःखगानांपलभक्षिणाम्
तदा चुकोप दुष्टात्मा दुर्मुखःकालमोहितः । देवीमुवाचगर्वेणकृत्वावोर्ध्वं करंशुभम्
गच्छचण्डिहनिष्यामि त्वामद्यैव सुबालिशे । दैत्यंवाभजवामोरु महिषं मदगर्वितम्

देव्युवाच

आसन्नमरणःकामं प्रलपस्यद्यमोहितः । अद्यैव त्वां हनिष्यामि यथाऽयंबाष्कलोहतः
गच्छवा तिष्ठवा मन्द मरणं यदिरोचते । हत्वात्वांवैवधिष्यामिबालिशंमहिषीसुतम्
तच्छ्रुत्वा वचनं तस्या दुर्मुखो मर्तुमुद्यतः । मुमोचबाणवृष्टिंतुचण्डिकांप्रतिदारुणाम्

साऽपि तां तरसा च्छित्त्वा बाणवृष्टिं शितैः शरैः ।
जघान दानवं क्रुद्धा वृत्रं वज्रधरो यथा ॥ ४२ ॥

तयोः परस्परं युद्धं सञ्जातं चातिकर्कशम् । भयदं कातराणांच शूराणां बलवर्धनम्
देवी चिच्छेद तरसा धनुस्तस्य करस्थितम् । तथैव पञ्चभिर्बाणैर्बभञ्ज रथमुत्तमम्
रथे भग्ने महाबाहुः पदातिर्दुर्मुखस्तदा । । गदां गृहीत्वा दुर्धर्षोजगामचण्डिकांप्रति
चकार स गदाघातंसिंहमौलौमहाबलात् । नचचालहरिःस्थानात्ताडितोऽपिमहाबलः

अम्बिका तं समालोक्य गदापाणिं पुरःस्थितम् ।
खड्गेन शितधारेण शिरश्चिच्छेद मौलिमत् ॥ ४७ ॥

छिन्ने च मस्तके भूमौ पपातदुर्मुखो मृतः । जयशब्दं तदाचक्रुर्मुदिता निर्जरा भृशम्
तुष्टुवुस्तां तदा देवीं दुर्मुखे निहतेऽमराः । पुष्पवृष्टिं तथाचक्रुर्जयशब्दं नभःस्थिताः
ऋषयः सिद्धगन्धर्वाः सविद्याधरकिन्नराः । जहृषुस्तं हतंदृष्ट्वा दानवं रणमस्तके ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे
महिषसेनाधिपबाष्कलदुर्मुखनिपातनवर्णनंनामत्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

चतुर्दशोऽध्यायः

देव्याश्चिक्षुरदानवेनयुद्धकरणंतत्सहायार्थंताम्रद्वाराप्रहारस्तयोर्वधः

व्यास उवाच

दुर्मुखं निहतंश्रुत्वामहिषःक्रोधमूर्च्छितः । उवाचदानवान्सर्वान्किंजातमितिवासकृत
निहतौ दानवौ शूरौ रणेदुर्मुखबाष्कलौ । तन्व्या तत्परमाश्चर्यं पश्यन्तु दैवचेष्टितम्
कालोहिबलवान्कर्ता सततं सुखदुःखयोः । नराणां परतन्त्राणां पुण्यपापानुयोगतः
निहतौ दानवश्रेष्ठौ किं कर्तव्यमतः परम् । ब्रुवन्तुमिलिताः सर्वे यदुक्तं कार्यसङ्कटे ॥

व्यास उवाच

एवंब्रुवति राजेन्द्र महिषेऽतिबलान्विते । चिक्षुराख्यस्तु सेनानीस्तमुवाच महारथः
राजन्नहं हनिष्यामि का चिन्ता स्त्रीविहिंसने । इत्युक्त्वास्वबलैर्युक्तःप्रययौरथसंयुतः
द्वितीयं पार्ष्णिरक्षं तु कृत्वा ताम्रं महाबलम् । महतासैन्यघोषेण पूरयन्गगनं दिशः
तमागच्छन्तमालोक्य देवी भगवती शिवा । चकारशङ्खज्याघोषंघण्टानादंमहाद्भुतम्
तत्रसुस्तेन शब्देन ते च सर्वे सुरारयः । किमेतदिति भाषन्तो दुद्रुवुर्भयकम्पिताः
चिक्षुराख्यस्तु तान्दृष्ट्वा पलायनपरायणान् । उवाचार्तांच संक्रुद्धःकिंभयंवःसमागतम्

अद्यैवाऽहं हनिष्यामि बाणैर्बालां मदोन्नताम् ।
तिष्ठन्त्वत्र भयं त्यक्त्वा दैत्याः समरमूर्धनि ॥ ११ ॥

इत्युक्त्वा दानवश्रेष्ठ श्चापपाणिर्बलान्वितः । आगत्य सङ्गरे देवीमित्युवाच गतव्यथः

किं गर्जसि विशालाक्षि ! भीषयन्तीतराञ्जरान् ।
नाहंबिभेमि तन्वङ्गि ! श्रुत्वा तेऽद्य विचेष्टितम् ॥ १३ ॥

स्त्रीवधे दूषणं ज्ञात्वा तथैवाकीर्तिसम्भवम् । उपेक्षां कुरुते चित्तं मदीयं वामलोचने
स्त्रीणां युद्धं कटाक्षैश्च तथा हावैश्चसुन्दरि । नशास्त्रैर्विहितंकापित्वादृशीनांकदाचन
पुष्पैरपि न योद्धव्यं किं पुनर्निशितैः शरैः । भवादृशीनां देहेषु दुनोति मालतीदलम्

धिग्जन्म मानुषेलोके क्षात्रधर्मानुजीविनाम् ।
लालितोऽयं प्रियो देहः कृन्तनीयः शितैः शरैः ॥ १७ ॥
तैलाभ्यङ्गैः पुष्पवातैस्तथा मिष्टान्नभोजनैः । पोषितोऽयं प्रियोदेहोघातनीयःपरैषुभिः
देहं छित्त्वाऽसिधाराभिर्धनभृज्जायते नरः । धिग्धनंदुःखदंपूर्वं पश्चात्किं सुखदंभवेत्
त्वमप्यत्रैव वामोरु युद्धकामांक्षसे यतः । सुखंसम्भोगजंत्यक्त्वाकं गुणंवेत्सि सङ्गरे
खड्गपातं गदाघातं भेदनं च शिलीमुखैः । मरणान्ते तु संस्कारोगोमायुमुखकर्षणम्
तस्यैव कविभिर्धूर्तैः कृतंचातीवशंसनम् । रणेमृतानां स्वःप्राप्तिरर्थवादोऽस्तिकेवलः
तस्माद् गच्छ वरारोहे यत्र ते रमते मनः ।
भज वा भूपतिं नाथं हयारिं सुरमर्दनम् ॥ २३ ॥

व्यास उवाच

एवं ब्रुवाणं तं दैत्यं प्रोवाच जगदम्बिका । किं मृषा भाषसेमूढबुद्धिमानिवपण्डितः
नीतिशास्त्रंनजानासिविद्यांचान्वीक्षिकींतथा । नसेवितास्त्वयावृद्धानधर्ममतिरस्तिते
मूर्खसेवापरो यस्मात्तस्मात्त्वं मूर्खएव हि । राजधर्मंन जानासिकिंब्रवीषि ममाग्रतः
संग्रामे महिषं हत्वा कृत्वा रुधिरकर्दमम् ।
यशःस्तम्भं स्थिरं कृत्वा गमिष्यामि यथासुखम् ॥ २७ ॥
देवानां दुःखदातारं दानवं मदगर्वितम् । हनिष्येऽहं दुराचारं युद्धं कुरु स्थिरो भव
जीवितेच्छाऽस्ति चेन्मूढ महिषस्य तथा तव । तदागच्छन्तुपातालंदानवाःसर्वएवते
मुमूर्षा यदिवश्चित्ते युद्धं कुर्वन्तु सत्वराः । सर्वानेववधिष्यामिनिश्चयोऽयं ममाधुना

व्यास उवाच

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य दानवा बलदर्पिताः । मुमोच बाणवृष्टिं तां घनवृष्टिमिवापरम्
चिच्छेद तस्यसाबाणान्स्वबाणैर्निशितैस्तदा । जघान तंतथाघोरैराशीविषसमैःशरैः
युद्धं परस्परं तत्र बभूव विस्मयप्रदम् । गदया घातयामास तं रथाङ्गगदम्बिका
मूर्च्छां प्राप स दुष्टात्मा गदयाऽभिहतोभृशम् । मुहूर्तद्वयमात्रं तु रथोपस्थइवाचलः
तं तथामूर्छितं दृष्ट्वा ताम्रः परबलार्दनः । आजगाम रणेयोद्धुंचण्डिकांप्रतिचापलात्

आगच्छन्तं तु तं वीक्ष्य हसन्ती प्राह चण्डिका ।
एह्येहि दानवश्रेष्ठ ! यमलोकं नयाम्यहम् ॥ ३६ ॥

किं भवद्भिःसमायातैरबलैश्च गतायुषः । महिषः किं गृहे मूढः करोति जीवनोद्यमम्
किं भवद्भिर्हतैर्मन्दैर्ममापि विफलः श्रमः । अहते महिषे पापे सुरशत्रौ दुरात्मनि

तस्माद्यूयं गृहं गत्वा महिषं प्रेषयन्त्विह ।
पश्येन्मां सोऽपि मन्दात्मा यादृशीं तादृशीं स्थिताम् ॥ ३६ ॥

ताम्रस्तद्वचनं श्रुत्वा बाणवृष्टिं चकार ह । चण्डिकांप्रतिकोपेनकर्णाऽऽकृष्टशरासनः
भगवत्यपिताम्राक्षीसमाकृष्यशरासनम् । बाणान्मुमोचतरसाहन्तुकामा सुराहितम्

चिक्षुराख्योऽपि बलवान्मूर्च्छांत्यक्त्वोत्थितः पुनः ।
गृहीत्वा सशरं चापं तस्थौ तत्सम्मुखः क्षणात् ॥ ४२ ॥

चिक्षुराख्यश्च ताम्रश्च द्वावप्यतिबलोत्कटौ । युयुधातेमहावीरौ सह देव्या रणांगणे
कुपिता च महामाया ववर्षशरसंततिम् । चकार दानवान्सर्वान्बाणक्षततनुच्छदान्
असुराः क्रोधसंमूढा बभूवुःशरताडिताः । चिक्षिपुःशरजालानिदेवींप्रतिरुषाऽन्विताः
बभुस्ते राक्षसास्तत्र किंशुका इवपुष्पिणः । शिलीमुखक्षताः सर्ववसन्ते च वने रणे
बभूव तुमुलं युद्धं ताम्रेणसह संयुगे । विस्मयं परमं जग्मुर्देवाये प्रेक्षकाः स्थिताः ॥
ताम्रोमुसलमादाय लोहजंदारुणं दृढम् । जघान मस्तके सिंहं जहास च ननर्द च ॥

नर्दमानं तदा तं तु दृष्ट्वा देवी रुषाऽन्विता ।
खड्गेन शितधारेण शिरश्छेद सत्वरा ॥ ४६ ॥

छिन्नेशिरसि ताम्रस्तु विशीर्षो मुसली बली । बभ्राम क्षणमात्रं तु पपात रणमस्तके
पतितं ताम्रमालोक्य चिक्षुराख्यो महाबलः । खड्गमादाय तरसादुद्रावचण्डिकांप्रति
भगवत्यपि तं दृष्ट्वा खड्गपाणिमुपागतम् । दानवं पञ्चभिर्बाणैर्जघान तरसा रणे ॥
एकेन पतितं खड्गं द्वितीयेन तु तत्करः । कण्ठाच्च मस्तकं तस्य कृन्तितं चापरैः शरैः
एवं तौ निहतौ क्रूरौ राक्षसौ रणदुर्मदौ । भग्नंसैन्यंतयोस्तूर्णंविद्रुतन्त्रस्तमानसम्
देवाश्च मुदिताः सर्वे दृष्ट्वा तौ निहतौ रणे। पुष्पवृष्टिमुदाचक्रुर्जयशब्दं नभःस्थिताः

ऋषयो देवगन्धर्वा वेतालाः सिद्धचारणाः । ऊचुस्तेजयदेवीतिचाऽम्बिकेतिपुनःपुनः
इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यांसंहितायां पञ्चमस्कन्धे
ताम्रचिक्षुरवधवर्णनंनामचतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

पञ्चदशोऽध्यायः

बिडालाख्यासिलोमरक्षसोर्देव्यायुद्धवर्णनम्

व्यास उवाच

तौ तया निहतौश्रुत्वामहिषोविस्मयान्वितः । प्रेषयामासदैतेयांस्तद्वधार्थंमहाबलान्
असिलोमबिडालाख्यप्रमुखान्युद्धदुर्मदान् ।
सैन्येन महता युक्तान्सायुधान्सपरिच्छदान् ॥ २ ॥
ते तत्रदद्दृशुर्देवींसिंहस्योपरिसंस्थिताम् । अष्टादशभुजांदिव्यांखड्गखेटकधारिणीम्
असिलोमाऽग्रतो गत्वा तामुवाचहसन्निव । विनयावनतःशान्तोदेवींदैत्यवधोद्यताम्

असिलोमोवाच

देवि ब्रूहि वचः सत्यंकिमर्थमिहसुन्दरि । आगताऽसिकिमर्थंवाहंसिदैत्यान्निरागसः
कारणं कथयाद्यत्वं त्वयासन्धिकरोम्यहम् । काञ्चनंमणिरत्नानिभाजनानिवराणिच
यानीच्छसि वरारोहे ! गृहीत्वा गच्छ मा चिरम् ।
किमर्थंयुद्धकामाऽसि दुःखसन्तापवर्धनम् ॥ ७ ॥
कथयन्ति महात्मानो युद्धं सर्वसुखापहम् । कोमलेऽतीव ते देहेपुष्पघातासहेभृशम्
किमर्थं शस्त्रसम्पातान्सहसीतिविसिस्मिये । चातुर्यस्यफलंशान्तिःसततंसुखसेवनम्
तत्किमर्थं दुःखहेतुं संग्रामं कर्तुमिच्छसि । संसारेऽत्रसुखंग्राह्यंदुःखंहेयमिति स्थितिः
तत्सुखंद्विविधंप्रोक्तंनित्यानित्यप्रभेदतः । आत्मज्ञानंसुखंनित्यमनित्यंभोगजं स्मृतम्
नाशात्मकं तु तस्याज्यंवेदशास्त्रार्थचिन्तकैः । सौगतानांमतंचेत्त्वंस्वीकरोषिवरानने

तथाऽपि यौवनं प्राप्य भुङ्क्ष्व भोगाननुत्तमान् ।
परलोकस्य सन्देहो यदि तेऽस्ति कृशोदरि ! ॥ १३ ॥
स्वर्गभोगपरा नित्यं भव भामिनि भूतले । अनित्यं यौवनं देहेज्ञात्वेति सुकृतं चरेत्
परोपतापनं कार्यं वर्जनीयं सदा बुधैः । अविरोधेन कर्तव्यं धर्मार्थकामसेवनम् ॥
तस्मात्वमपि कल्याणिमर्तिधर्मसदाकुरु । अपराधंविनादैत्यान्कस्मान्मारयसेऽम्बिके
दयाधर्मोऽस्य देहोऽस्ति सत्ये प्राणाः प्रकीर्तिताः ।
तस्माद्दया तथा सत्यं रक्षणीयं सदा बुधैः ॥ १७ ॥
कारणं वद सुश्रोणि ! दानवानां वधे तव ।

देव्युवाच

त्वया पृष्टं महाबाहो किमर्थमिह चागता ॥ १८ ॥
तदहं सम्प्रवक्ष्यामि हनने च प्रयोजनम् । विचरामि सदा दैत्य ! सर्वलोकेषु सर्वदा
न्यायान्यायौ च भूतानां पश्यन्ती साक्षिरूपिणी ।
न मे कदापि भोगेच्छा न लोभो न च वैरिता ॥ २० ॥
धर्मार्थं विचराम्यत्र संसारे साधुरक्षणम् । व्रतमेतत्तु नियतंपालयामि निजं सदा
साधूनां रक्षणं कार्यं हन्तव्या येऽप्यसाधवः । वेदसंरक्षणंकार्यमवतारैरनेकशः ॥
युगेयुगे तानेवाऽहमवतारान्बिभर्मि च । महिषस्तु दुराचारो देवान्वै हन्तुमुद्यतः ॥
ज्ञात्वाऽहं तद्वधार्थं भोःप्राप्ताऽस्मिराक्षसाधुना । तंहनिष्येदुराचारंसुरशत्रुंमहाबलम्
गच्छ वा तिष्ठ कामं त्वं सत्यमेतदुदाहृतम् । ब्रूहिघातंदुरात्मानंराजानंमहिषीसुतम्
किमन्यान्प्रेषयस्यत्र स्वयं युद्धं कुरुष्व ह ।
सन्धिचेत्कर्तुमिच्छाऽस्ति राज्ञस्तव मया सह ॥ २६ ॥
सर्वेगच्छन्तुपातालंवैरंत्यक्त्वायथासुखम् । देवद्रव्यंतुयत्किञ्चिद्धृतंजित्वारणेसुरान्
तद्दत्वा यान्तु पातालं प्रह्लादो यत्र तिष्ठति ।

व्यास उवाच

तच्छ्रुत्वावचनंदेव्याअसिलोमा पुरःस्थितः । बिडालाख्यंमहावीरंपप्रच्छप्रीतिपूर्वकम्

असिलोमोवाच

श्रुतं तेऽद्य बिडालाख्यभवान्याकथितंच यत् । एवंगतेकिंकर्तव्योविग्रहःसन्धिरेववा॥

बिडालाख्य उवाच

न सन्धिकामोऽस्ति नृपोऽभिमानी युद्धे च मृत्युं नियतं हि जानन् ।
दृष्ट्वा हतान्प्रेरयतेतथाऽस्मान्दैवं हि कोऽतिक्रमितुं समर्थः ।
"दुःसाध्य एवास्त्विह सेवकानां धर्मः सदा मानविवर्जितानाम् ।
आज्ञापराणांवशवर्तिकानां पाञ्चालिकानामिवसूत्रभेदात् ।"
गत्वा कथं तस्य पुरस्त्वया च मयाऽपि वक्तव्यमिदं कठोरम् ॥ ३१ ॥
गच्छन्तु पातालमितश्च सर्वे दत्त्वाऽथ रत्नानि धनं सुराणाम् ।
"प्रियं हि वक्तव्यमसत्यमेव न च प्रियं स्याद्धितकृत्तु भाषितम् ।
सत्यं प्रियं नो भवतीह कामं मौनं ततो बुद्धिमतां प्रतिष्ठितम् ।"
न फल्गुवाक्यैः प्रतिबोधनीयो राजा तु वीरैरिति नीतिशास्त्रम् ॥ ३२ ॥
न नूनं तत्र गन्तव्यं हितं वा वक्तुमादरात् ।
प्रष्टुं वाऽपि गते राजा कोपयुक्तो भविष्यति ॥ ३३ ॥

इतिसञ्चिन्त्य कर्तव्यं युद्धं प्राणस्य संशये । स्वामिकार्यं परं मत्वामरणंतृणवत्तथा॥

व्यास उवाच

इतिसञ्चिन्त्य तौ वीरौ संस्थितौ युद्धतत्परौ । धनुर्बाणधरौ तत्र सन्नद्धौरथसङ्गतौ
प्रथमं तुबिडालाख्यःसप्तबाणान्मुमोच ह । असिलोमास्थितोदूरेप्रेक्षकःपरमास्त्रवित्

विच्छेद तांस्तथा प्राप्तानम्बिकास्वशरैः शरान् ।
बिडालाख्यं त्रिभिर्बाणैर्जघान च शिलाशितैः ॥ ३७ ॥

प्राप्यबाणव्यथां दैत्यः पपात समराङ्गणे । मूर्छितोऽथममाराऽऽशुदानवोदैवयोगतः
बिडालाख्यंहतंदृष्ट्वारणेशक्तिशिरोत्करः । असिलोमाधनुष्पाणिःसंस्थितोयुद्धतत्परः
ऊर्ध्वं सव्यं करंकृत्वा तामुवाच मितं वचः । देविजानामिमरणंदानवानांदुरात्मनाम्
तथाऽपि युद्धं कर्तव्यं पराधीनेन वै मया । महिषोमन्दबुद्धिश्च नजानाति प्रियाप्रिये

तदग्रे नैव वक्तव्यं हितंचैवाप्रियंमया । मर्तव्यं वीरधर्मेण शुभं वाऽप्यशुभं भवेत् ॥
दैवमेव परं मन्ये धिक्पौरुषमनर्थकम् । पतन्ति दानवास्तूर्णं तव बाणहता भुवि ॥
इत्युक्त्वा शरवृष्टिं स चकार दानवोत्तमः । देवी चिच्छेदतान्बाणैरप्राप्तांस्तुनिजान्तिके
अन्यैर्विव्याध तं तूर्णमसिलोमानमाशुगैः । वीक्षिताऽमरसंघैश्च कोपपूर्णानना तदा
शुशुभे दानवः कामं बाणैर्विद्धतनुः किल । स्रवद्रुधिरधारः स प्रफुल्लः किंशुको यथा

असिलोमा गदां गुर्वी लौहीमुद्यम्य वेगतः ।
दुद्राव चण्डिकांकोपात्सिहं मूर्ध्नि जघान ह ॥ ४७ ॥

सिंहोऽपि नखराघातैस्तं ददार भुजान्तरे । अगणय्य गदाघातं कृतं तेन बलीयसा ॥
उत्पत्य तरसा दैत्यो गदापाणिः सुदारुणः । सिंहमूर्ध्निसमारुह्यजघानगदयाम्बिका
कृतं तेन प्रहारं तु वञ्चयित्वा विशाम्पते । खड्गेन शितधारेणशिरश्चिच्छेद कण्ठतः
छिन्ने शिरसि दैत्येन्द्रःपपाततरसाक्षितौ । हाहाकारोमहानासीत्सैन्येतस्यदुरात्मनः
जयदेवीति देवास्तां तुष्टुवुर्जगदम्बिकाम् । देव दुन्दुभयोनेदुर्जगुश्चनृप ! किन्नराः ॥

निहतौ दानवौ वीक्ष्य पतितौ च रणाङ्गणे ।
निहताः सैनिकाः सर्वे तत्र केसरिणा बलात् ॥ ५३ ॥

भक्षिताश्चतथाकेचिन्निःशेषं तद्रणं कृतम् । भग्नाः केचिद्गता मन्दामहिषंप्रतिदुःखिताः
चुक्रुशूरुरुदुश्चैव त्राहित्राहीतिभाषणैः । असिलोमबिडालाख्यौ निहतौ नृपसत्तम
अन्ये येसैनिका राजन्सिंहेन भक्षिताश्च ते । एवम्ब्रुवन्तो राजानंतदाचक्रुश्च वैशसम्
तच्छ्रुत्वा वचनं तेषां महिषो दुर्मनास्तदा । बभूव चिन्ताकुलितोविमनादुःखसंयुतः

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे
असिलोमबिडालवधवर्णनंनामपञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

षोडशोऽध्यायः

महिषद्वारादेवीप्रबोधनम्

व्यास उवाच

तेषां तद्वचनं श्रुत्वा क्रोधयुक्तो नराधिपः । दारुकंप्राह तरसा रथमानय मेऽद्भुतम् ॥
सहस्रखरसंयुक्तं पताकाध्वजभूषितम् । आयुधैः संयुतं शुभ्रं सुचक्रं चारुकूबरम् ॥
सूतोऽपि रथमानीय तमुवाच त्वरान्वितः । राजन्रथोऽयमानीतोद्वारितिष्ठति भूषितः
सर्वायुधसमायुक्तो वरास्तरणसंयुतः । आनीतं तं रथं ज्ञात्वा दानवेन्द्रो महाबलः
मानुषं देहमास्थाय सङ्ग्रामे गन्तुमुद्यतः । विचार्य मनसाचेति देवीमांप्रेक्ष्यदुर्मुखम्
शृङ्गिणं महिषंनूनं विमना सा भविष्यति । नारीणांच प्रियंरूपं तथा चातुर्यमित्यपि

तस्माद्रूपं च चातुर्यं कृत्वा यास्यामि तां प्रति ।

यथा मां वीक्ष्य सा बाला प्रेमयुक्ता भविष्यति ॥ ७ ॥

ममाऽपिच तदैव स्यात्सुखंनान्यस्वरूपतः । इतिसञ्चिन्त्य मनसादानवेन्द्रो महाबलः
त्यक्त्वा तन्माहिषं रूपं बभूव पुरुषः शुभः । सर्वायुधधरःश्रीमांश्चारुभूषणभूषितः ॥
दिव्याम्बरधरः कान्तः पुष्पबाणइवाऽपरः । रथोपविष्टःकेयूरस्रग्वी बाणधनुर्धरः ॥
सेनापरिवृतो देवीं जगाम मदगर्वितः । मनोज्ञंरूपमास्थाय मानिनीनां मनोहरम् ॥
तमागतं समालोक्य दैत्यानामधिपं तदा । बहुभिः संवृतंवीरैर्देवी शङ्खमवादयत् ॥
स शङ्खनिनदं श्रुत्वा जनविस्मयकारकम् । समीपमेत्य देव्यास्तु तामुवाच हसन्निव

देवि ! संसारचक्रेऽस्मिन्वर्तमानो जनः किल ।

नरो वाऽथ तथा नारी सुखं वाञ्छति सर्वथा ॥ १४ ॥

सुखं संयोगजं नृणां नासंयोगे भवेदिह । संयोगो बहुधा भिन्नस्तान्ब्रवीमिशृणुष्वह
भेदान्सुप्रीतिहेतूत्थान्स्वभावोत्थाननेकशः । तत्रप्रीतिभवानादौ कथयामियथामति

मातापित्रोस्तु पुत्रेण संयोगस्तूत्तमः स्मृतः ।

भ्रातुर्भ्रात्रा तथा योगः कारणान्मध्यमो मतः ॥ १७ ॥

उत्तमस्य सुखस्यैव दातृत्वादुत्तमःस्मृत । तस्मादल्पसुखस्यैव प्रदातृत्वाच्च मध्यमः

नायिकानां तु संयोगः स्मृतःस्वाभाविको बुधैः ।

विविधावृतवित्तानां प्रसङ्गपरिवर्तिनाम् ॥ १६ ॥

अत्यल्पसुखदातृत्वात्कनिष्ठोऽयंस्मृतोबुधैः । अत्युत्तमस्तुसंयोगःसंसारेसुखदःसदा

नारीपुरुषयोःकान्तेसमानवयसोः सदा । संयोगोयःसमाख्यातःसएवात्युत्तमःस्मृतः

अत्युत्तमसुखस्यैव दातृत्वात्स तथाविधः । चातुर्यरूपवेषाद्यैः कुलशीलगुणैस्तथा

परस्परसमुत्कर्षः कथ्यते हि परस्परम् । तंचेत्करोषिसंयोगंवीरेण व मया सह

अत्युत्तमसुखस्यैवप्राप्तिःस्यान्नेनसंशयः । नानाविधानिरूपाणिकरोमिस्वेच्छयाप्रिये

इन्द्रादयःसुराःसर्वेसंग्रामेविजितामया । रत्नानियानिदिव्यानि भवनेऽस्मिन्ममाधुना

भुङ्क्ष्व त्वं तानि सर्वाणि यथेष्टं देहि वा यथा ।

पट्टराज्ञी भवाद्य त्वं दासोऽस्मि तव सुन्दरि !॥ २६ ॥

वैरं त्यजेऽहंदेवैस्तु तव वाक्यान्न संशयः । यथात्वंसुखमाप्नोषितथाऽहंकरवाणिवै

आज्ञापयविशालाक्षि तथाऽहं प्रकरोम्यथ । चित्तंमेतवरूपेणमोहितं चारुभाषिणि ॥

आतुरोऽस्मि वरारोहेप्राप्तस्तेशरणंकिल । प्रसन्नंपाहिरम्भोरुःकामबाणैः प्रपीडितम्

धर्माणामुत्तमोधर्म शरणागतरक्षणम् । त्वदधीनोऽस्म्यसितापाङ्गिसेवकोऽहं कृशोदरि

मरणान्ते वचः सत्यं नान्यथा प्रकरोम्यहम् ।

पादोनतोऽस्मि तन्वङ्गि ! त्यक्त्वा नानायुधानि ते ॥ ३१ ॥

दयां कुरु विशालाक्षि ! तप्तोऽस्मि काममार्गणैः ।

जन्मप्रभृति चार्वङ्गि ! दैन्यं नाऽऽचरितं मया ॥ ३२ ॥

ब्रह्मादीनीश्वरान्प्राप्य त्वयि तद्विदधाम्यहम् । चरितंममजानन्ति रणेब्रह्मादयः सुराः

सोऽप्यऽहं तव दासोऽस्मि मन्मुखं पश्य भामिनि !

व्यास उवाच

इति ब्रुवाणं तं दैत्यं देवी भगवती हि सा ॥ ३४ ॥

प्रहस्य सस्मितं वाक्यमुवाच वरवर्णिनी ।

देव्युवाच

नाहं पुरुषमिच्छामि परमं पुरुषं विना ॥ ३५ ॥

तस्य चेच्छाऽस्म्यहं दैत्य ! सृजामि सकलं जगत् ।

स मां पश्यति विश्वात्मा तस्याऽहं प्रकृतिः शिवा ॥ ३६ ॥

तत्सान्निध्यवशादेव चैतन्यं मयि शाश्वतम् । जडाऽहंतस्यसंयोगात्प्रभवामिसचेतना अयस्कान्तस्य सान्निध्यादयसश्चेतनायथा । न ग्राम्यसुखवाञ्छामेकदाचिदपिजायते मूर्खस्त्वमसिमन्दात्मन्यत्स्त्रीसङ्गंचिकीर्षसि । नरस्यबन्धनार्थायशृङ्खलास्त्रीप्रकीर्तिता

लोहबद्धोऽपि मुच्येत स्त्रीबद्धो नैव मुच्यते ।

किमिच्छसि च मन्दात्मन्मूत्रागारस्य सेवनम् ॥ ४० ॥

शमंकुरुसुखाय त्वं शमात्सुखमवाप्स्यसि । नारीसङ्गेमहद्दुःखंजानन्किंत्वंविमुह्यसि त्यजवैरंसुरैःसार्धं यथेष्टंविचरावनौ । पातालं गच्छवाकामं जीवितेच्छायदस्ति ते अथवा कुरु सङ्ग्रामं बलवत्यस्मिसाम्प्रतम् । प्रेषिताऽहं सुरैःसर्वैस्तव नाशाय दानव सत्यं ब्रवीमि येनाद्यत्वयावचनसौहृदम् । दर्शितंतेनतुष्टाऽस्मिजीवन्गच्छयथासुखम् सतां सप्तपदीमैत्रतेनमुञ्चामिजीवितम् । मरणेच्छाऽस्तिचेद्युद्धं कुरु वीर यथासुखम्

हनिष्यामिमहाबाहो! त्वामहंनाऽत्रसंशयः ।

व्यास उवाच

इति तस्या वचः श्रुत्वा दानवः काममोहितः ॥ ४६ ॥

उवाचश्लक्ष्णयावाचा मधुरं वचनं ततः । बिभेम्यहं वरारोहे त्वां प्रहर्तुं वरानने ॥ कोमलांचारुसर्वाङ्गींनारीं नरविमोहिनीम् । जित्वाहरिहरादींश्चलोकपालांश्चसर्वशः किं त्वया सह युद्धंमेयुक्तं कमललोचने । रोचते यदि चार्वङ्गि विवाहं कुरु मां भज नोचेद्गच्छयथेष्टं ते देशंयस्मात्समागता । नाहंत्वांप्रहरिष्यामियतो मैत्रीकृतात्वया हितमुक्तंशुभंवाक्यंतस्माद्गच्छयथासुखम् । काशोभामेभवेदन्तेहत्वात्वांचारुलोचनाम् स्त्रीहत्याबालहत्याच ब्रह्महत्या दुरत्यया । गृहीत्वा त्वां गृहं नूनंगच्छाम्यद्य वरानने

तथाऽपिमेफलंनस्याद्बलाद्भोगसुखं कुतः । प्रब्रवीमि सुकेशि त्वां विनयावनतोयतः
पुरुषस्य सुखंनस्याद्वतेकान्तामुखाम्बुजात् । तत्तथैव हि नारीणां तस्मात्पुरुषंविना
संयोगे सुखसम्भूतिर्वियोगे दुःखसम्भवः ।
कान्ताऽसि रूपसम्पन्ना सर्वाऽऽभरणभूषिता ॥ ५५ ॥
चातुर्यंत्वयि किं नास्ति यतो मां नभजस्यहो । तवोपदिष्टंकेनेदंभोगानांपरिवर्जनम्
वञ्चिताऽसि प्रियालापेर्वैरिणाकेनचित्त्विह । मुञ्चाग्रहमिमंकान्तेकुरुकार्यंसुशोभनम्
सुखं तव ममाऽपि स्याद्विवाहे विहिते किल ।
विष्णुर्लक्ष्म्या सहाऽऽभाति सावित्र्या च सहाऽऽत्मभूः ॥ ५८ ॥
रुद्रोभातिचपार्वत्याशच्याशतमखस्तथा । कानारीपतिहीनावसुखंप्राप्नोतिशाश्वतम्
येनत्वमसितापाङ्गिनकरोषिपतिंशुभम् । कामःकायगतःकान्तेयस्त्वांबाणैःसुकोमलैः
मादनैः पञ्चभिः कामं न ताडयति मन्दधीः ।
मन्येऽहमिव कामोऽपि दयावांस्त्वयि सुन्दरि ! ॥ ६१ ॥
अबलेतिचमन्वानो न प्रेरयति मार्गणान् । मनोभवस्यवैरं वा किमप्यस्ति मया सह
तेनवत्वय्यरालाक्षिनमुञ्चतिशिलीमुखान् । अथवा मेऽहितैर्देवैर्वारितोऽसौ झषध्वजः
सुखविध्वंसिभिस्तेन त्वयिनप्रहरत्यपि । त्यक्त्वामांमृगशावाक्षिपश्चात्तापंकरिष्यसि
मन्दोदरीव तन्वङ्गि परित्यज्य शुभंनृपम् । अनुकूलं पतिंपश्चात्साचकारशठं पतिम्
कामार्त्ता च यदा जाता मोहेन व्याकुलान्तरा ॥ ६५ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे
महिषद्वारादेवीप्रबोधनंनाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

सप्तदशोऽध्यायः

सिंहलदेशाधिपस्यचन्द्रसेनराजस्यपुत्र्यामन्दोदर्यावृत्तवर्णनम्

व्यास उवाच

इतिश्रुत्वावचस्तस्यदेवीपप्रच्छदानवम् । कासामन्दोदरीनारीकोऽसौत्यक्तोनृपस्तया
शठः को वानृपःपश्चात्तन्मेब्रूहिकथानकम् । विस्तारेण यथा प्राप्तं दुःखंवनितया पुनः

महिष उवाच

सिंहलोनाम देशोऽस्तिविख्यातःपृथिवीतले । घनपादपसंयुक्तो धनधान्यसमृद्धिमान्
चन्द्रसेनाऽभिधस्तत्र राजाधर्मपरायणः । न्यायदण्डधरःशान्तः प्रजापालनतत्परः ॥
सत्यवादी मृदुःशूरस्तितिक्षुर्नीतिसागरः । शास्त्रवित्सर्वधर्मज्ञोधनुर्वेदेऽतिनिष्ठितः ॥
तस्य भार्यावरारोहा सुन्दरीसुभगाशुभा । सदाचाराऽतिसुमुखी पतिभक्तिपरायणा
नाम्नागुणवतीकान्ता सर्वलक्षणसंयुता । सुषुवे प्रथमे गर्भे पुत्रीसाचाऽतिसुन्दरीम्

पिता चातीव सन्तुष्टः पुत्रीं प्राप्य मनोरमाम् ।
मन्दोदरीति नामास्याः पिता चक्रे मुदाऽन्वितः ॥ ८ ॥

इन्दोः कलेवचात्यर्थं ववृधेसा दिनेदिने । दशवर्षा यदा जाता कन्या चातिमनोहरा
वरार्थं नृपतिश्चिन्तामवाप च दिने दिने । मद्रदेशाधिपः शूरः सुधन्वा नाम पार्थिवः

तस्य पुत्रोऽतिमेधावी कम्बुग्रीवोऽतिविश्रुतः ।
ब्राह्मणैः कथितो राज्ञे स युक्तोऽस्या वरः शुभः ॥ ११ ॥

सर्वलक्षणसम्पन्नः सर्वविद्यार्थपारगः । राज्ञा पृष्टा तदा राज्ञी नाम्ना गुणवतीप्रिया॥

कम्बुग्रीवाय कन्यां स्वां दास्यामि वरवर्णिनीम् ।
सा तु पत्युर्वचः श्रुत्वा पुत्रीं पप्रच्छ सादरम् ॥ १३ ॥

विवाहं ते पिता कर्तुं कम्बुग्रीवेणवाञ्छति । तच्छ्रुत्वामातरम्प्राहवाक्यंमन्दोदरीतदा
नाहंपतिंकरिष्यामिनेच्छामेऽस्तिपरिग्रहे । कौमारंव्रतमास्थायकालंनेष्यामिसर्वथा

स्वातन्त्र्येणचरिष्यामि तपस्तीव्रंसदैव हि। पारतन्त्र्यं परं दुःखं मातः संसारसागरे
स्वातन्त्र्यान्मोक्षमित्याहुः पण्डिताः शास्त्रकोविदाः।
तस्मान्मुक्ता भविष्यामि पत्या मे न प्रयोजनम् ॥ १७ ॥
विवाहेवर्तमाने तु पावकस्य च सन्निधौ। वक्तव्यंवचनंसम्यक्त्वदधीनाऽस्मिसर्वदा
श्वश्रूदेवरवर्गाणां दासीत्वं श्वशुरालये। पतिचित्तानुवर्तित्वंदुःखाद्दुःखतरं स्मृतम्
कदाचित्पतिरन्यां वा कामिनीञ्च भजेद्यदि। तदा मत्सरं दुःखं सपत्नीसम्भवं भवेत्
तदेर्ष्याजायते पत्यौ क्लेशश्चापि भवेदथ। संसारे क्व सुखं मातर्नारीणांच विशेषतः
स्वभावात्परतन्त्राणां संसारे स्वप्नधर्मिणि। श्रुतं मया पुरा मातरुत्तानचरणात्मजः
उत्तमः सर्वधर्मज्ञो ध्रुवादवरजो नृपः। पत्नीं धर्मपरां साध्वीं पतिभक्तिपरायणाम्
अपराधं विना कान्तां त्यक्तवान्विपिने प्रियाम्।
एवम्विधानि दुःखानि विद्यमाने तु भर्तरि ॥ २४ ॥
कालयोगान्मृते तस्मिन्नारी स्याद् दुःखभाजनम्।
वैधव्यं परमं दुःखं शोकसन्तापकारकम् ॥ २५ ॥
परोषितपतित्वेऽपि दुःखं स्यादधिकंगृहे। मदनाग्निविदग्धायाः किंसुखंपतिसङ्गजम्
तस्मात्पतिर्नकर्तव्य सर्वथेतिमतिर्मम। एवं प्रोक्ता तदा माता पतिं प्राह नृपात्मजा
न च वाञ्छति भर्तारं कौमारव्रतधारिणी। व्रतजाप्यपरानित्यं संसाराद्विमुखीसदा
न काङ्क्षति पतिकर्तुंबहुदोषविचक्षणा। भार्याया भाषितंश्रुत्वातथैवसंस्थितो नृपः
विवाहो न कृतः पुत्र्या ज्ञात्वा भावविवर्जिताम्।
वर्तमाना गृहेष्वेव पित्रा मात्रा च रक्षिता ॥ ३० ॥
यौवनस्याङ्कुरा जाता नारीणां कामदीपकाः।
तथाऽपि सा वयस्याभिः प्रेरिताऽपि पुनः पुनः ॥ ३१ ॥
चकमे न पतिं कर्तुं ज्ञानार्थपदभाषिणी। एकदोद्यानदेशे सा विहर्तुं बहुपादपे॥ ३२॥
जगाम सुमुखी प्रेम्णा सैरन्ध्रीगणसेविता। रेमे कृशोदरी तत्रापश्यत्कुसुमितालताः
पुष्पाणिचिन्वतीरम्या वयस्याभिःसमावृता। कोशलाधिपतिस्तत्रमार्गेदैववशात्तदा

आजगाम महावीरो वीरसेनोऽतिविश्रुतः। एकाकी रथमारूढः कतिचित्सेवकैर्वृतः
सैन्यञ्च पृष्ठतस्तस्य समायाति शनैः शनैः। दृष्टस्तस्यावयस्या तु दूरतःपार्थिवस्तदा
मन्दोदर्यै तथा प्रोक्तं समयाति नरः पथि। रथारूढो महाबाहू रूपवान्मदनोऽपरः

मन्येऽहं नृपतिः कश्चित्प्राप्तो भाग्यवशादिह।

एवं ब्रुवत्यां तत्राऽसौ कोशलेन्द्रः समागतः॥ ३८॥

दृष्ट्वातामसितापाङ्गीं विस्मयं प्राप भूपतिः। उत्तीर्य स रथात्तूर्णंपप्रच्छपरिचारिकाम्
केयंबालाविशालाक्षीकस्यपुत्रीवदाशु मे। एवं पृष्टा तु सैरन्ध्रीतमुवाच शुचिस्मिता
प्रथमंब्रूहिमेवीरपृच्छामित्वांसुलोचन। कोऽसित्वंकिमिहायातःकिंकार्यंवदसाम्प्रतम्
इति पृष्टस्तुसैरन्ध्रयातामुवाचमहीपतिः। कोसलोनाम देशोऽस्तिपृथिव्यांपरमाद्भुतः
तस्यपालयिताचाहं वीरसेनाभिधः प्रिये। वाहिनी पृष्ठतः कामं समायाति चतुर्विधा

मार्गभ्रमादिह प्राप्तं विद्धि मां कोसलाधिपम्।

सैरन्ध्र्युवाच

चन्द्रसेनसुता राजनाम्ना मन्दोदरी किल॥ ४४॥

उद्याने रन्तुकामेयंप्राप्ताकमललोचना। श्रुत्वातद्भाषितंराजा प्रत्युवाचप्रसाधिकाम्

सैरन्ध्रि! चतुराऽसि त्वं राजपुत्रीं प्रबोधय।

ककुत्स्थवंशजश्चाऽहं राजाऽस्मि चारुलोचने!॥ ४६॥

गान्धर्वेणविवाहेनपतिंमांकुरुकामिनि। नमेभार्याऽस्तिसुश्रोणि वयसोऽद्भुतयौवनाम्
वाञ्छामिरूपसम्पन्नां सुकुलां कामिनीं किल। अथवातेपिता मह्यं विधिनादातुमर्हति

अनुकूलपतिश्चाऽहं भविष्यामि न संशयः।

महिष उवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तस्य सैरन्ध्री प्राह तां तदा॥ ४९॥

प्रहस्य मधुरं वाक्यं कामशास्त्रविशारदा। मन्दोदरि नृपः प्राप्तः सूर्यवंशसमुद्भवः॥
रूपवान्बलवान्कान्तोवयसात्वत्समःपुनः। प्रीतिमान्नृपतिर्जातस्त्वयिसुन्दरिसर्वथा
पिताऽपितेविशालाक्षिपरितप्यतिसर्वथा। विवाहकालंतेज्ञात्वात्वाञ्चवैराग्यसंयुताम्

इत्याहाऽस्मान्सनृपतिर्विनिःश्वस्यपुनःपुनः । पुत्रींप्रबोधयन्त्वेतांसैरन्ध्र्यःसेवनेरताः
वक्तुं शक्ता वयं न त्वां हठधर्मरतां पुनः । भर्तुः शुश्रूषणं स्त्रीणांपरोधर्मोऽब्रवीन्मनुः
भर्तारंसेवमानावैनारीस्वर्गमवाप्नुयात् । तस्मात्कुरुविशालाक्षिविवाहंविधिपूर्वकम्

मन्दोदर्युवाच

नाऽहं पतिं करिष्यामि चरिष्येतपमद्भुतम् । निवारयनृपंबालेकिंमां पश्यति निस्त्रपः

सैरन्ध्र्य ऊचुः

दुर्जयो देविकामोऽसौकालोऽसौदुरतिक्रमः । तस्मान्मेवचनंपथ्यंकर्तुमर्हसिसुन्दरि!
अन्यथा व्यसनंनूनमापतेदितिनिश्चयः । इतितस्यावचःश्रुत्वाकन्योवाचाथतांसखीम्
यद्भवेत्तद्भवतु दैवयोगादसंशयम् । न विवाहं करिष्येऽहं सर्वथा परिचारिके ॥५६

महिष उवाच

इति तस्यास्तुनिर्बन्धंज्ञात्वाप्राहनृपंपुनः । गच्छराजन्यथाकामंनेयमिच्छतिसत्पतिम्

नृपस्तु तद्वचः श्रुत्वा निर्गतः सह सेनया ।
कोशलान्विमना भूत्वा कामिनीं प्रति निःस्पृहः ॥ ६१ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे
देवीमहिषसंवादेराजपुत्रीमन्दोदरीवृत्तवर्णनंनामसप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

अष्टादशोऽध्यायः

महिषासुरवधवर्णनम्

महिष उवाच

तस्यास्तुभगिनीकन्यानाम्नाचेन्दुमतीशुभा । विवाहयोग्यासञ्जातासुरूपाऽवरजायदा
तस्या विवाहः संवृत्तः सञ्जातश्चस्वयम्वरः । राजानोबहुदेशीयाः सङ्गतास्तत्रमण्डपे
तयावृतो नृपः कश्चिद् बलवान्रूपसंयुतः । कुलशीलसमायुक्तः सर्वलक्षणसंयुतः ॥

तदा कामातुराजाता चिटं वीक्ष्य नृपं तु सा । वकमेदैवयोगात्तु शठं चातुर्यभूषितम्
पितरंप्राहतन्वङ्गी विवाहं कुरु मे पितः । इच्छा मेऽद्य समुद्भूता दृष्ट्वामद्राधिपंत्विह
चन्द्रसेनोऽपि तच्छ्रुत्वापुत्र्या यद्भाषितं रहः । प्रहसन्नेवमनसातत्कार्ये तत्परोऽभवत्
समाहूय नृपं गेहे विवाहविधिना ददौ । कन्यां मन्दोदरीं तस्मै पारिबर्हं तथा बहु

वारुदेष्णोऽपितां प्राप्य सुन्दरीं मुदितोऽभवत् ।
जगाम स्वगृहं तुष्टो राजाऽपि सहितः स्त्रिया ॥ ८ ॥

रेमेनृपतिशार्दूलः कामिन्या बहुवासरान् । कदाचिद्दासपत्न्यासरममाणो रहः किल
सैरन्ध्रया कथितं तस्यैतयादृष्टःपतिस्तथा । उपालम्भंददौतस्मैस्मितपूर्वरुषाऽन्विता
कदाचिदपि सामान्यां रहोरूपवतीं नृपः । क्रीडयंल्लालयन्दृष्टः खेदं प्राप तदैव सा ॥
न ज्ञातोऽयं शठःपूर्वं यदा दृष्टः स्वयम्वरे । किंकृतंतुमयामोहाद्वञ्चिताऽहं नृपेण ह ॥
किंकरोम्यद्य सन्तापं निर्लज्जे निर्घृणे शठे । काप्रीतिरीदृशेपत्यौ धिगद्यममजीवितम्
अद्यप्रभृतिसंसारे सुखंत्यक्तं मयाखलु । पतिसम्भोगजं सर्वं सन्तोषोऽद्य मया कृतः
अकर्तव्यं कृतं कार्यं तज्ज्ञातं दुःखदं मम । देहत्यागः क्रियते चेद्धत्याऽतीव दुरत्यया
पितृगेहं व्रजाम्याशु तत्राऽपि न सुखंभवेत् । हास्ययोग्यासखीनांतुभवेयंनात्रसंशयः
तस्मादत्रैव सम्वासोवैराग्ययुतयामया । कर्तव्यःकालयोगेन त्यक्त्वा काममनुत्तं पुनः

महिष उवाच

इतिसञ्चिन्त्य सा नारीदुःखशोकपरायणा । स्थितापतिगृहंत्यक्त्वासुखंसंसारजंततः
तस्मात्त्वमपि कल्याणिमामनादृत्यभूपतिम् । अन्यंकापुरुषंमन्दंकामार्तासंश्रयिष्यसि
वचनं कुरु मे तथ्यं नारीणां परमं हितम् । अकृत्वा परमंशोकंलप्स्यसे नात्र संशयः

देव्युवाच

मन्दात्मन्गच्छ पातालं युद्धं वा कुरु साम्प्रतम् ।
हत्वा त्वामसुरान्सर्वान्गमिष्यामि यथासुखम् ॥ २१ ॥

यदा यदा हि साधूनां दुःखं भवतिदानव । तदा तेषां च रक्षार्थं देहं संधारयाम्यहम्
अरूपायाश्च मेरूपमजन्मायाश्च जन्म च । सुराणांरक्षणार्थायविद्धिदैत्यविनिश्चितम्

सत्यं ब्रवीमि जानीहि प्रार्थिताऽहं सुरैः किल ।
त्वद्वधार्थं हयारे त्वां हत्वा स्थास्यामि निश्चला ॥ २४ ॥
तस्माद्युध्यस्व वा गच्छ पातालमसुरालयम् ।
सर्वथा त्वां हनिष्यामि सत्यमेतद् ब्रवीम्यहम् ॥ २५ ॥

व्यास उवाच

इत्युक्तः स तया देव्या धनुरादाय दानवः । युद्धकामः स्थितस्तत्रसंग्रामाङ्गणभूमिषु
मुमोच तरसा बाणान्कर्णाऽऽकृष्टाञ्छिलाशितान् ।
देवी चिच्छेद तान्बाणैः क्रोधान्मुक्तैरयोमुखैः ॥ २७ ॥
तयोः परस्परं युद्धं सम्बभूव भयप्रदम् । देवानां दानवां च परस्परजयैषिणाम् ॥२८
मध्येदुर्धर आगत्य मुमोचचशिलीमुखान् । देवींप्रतिविषासक्तान्कोपयन्नतिदारुणान्
ततो भगवती क्रुद्धा तं जघान शितैःशरैः । दुर्धरस्तुपपातोर्व्यां गतासुर्गिरिशृङ्गवत्
तं तथा निहतं दृष्ट्वा त्रिनेत्रः परमास्त्रवित् । आगत्य सप्तभिर्बाणैर्जघान परमेश्वरीम्
अनागतांस्तुचिच्छेद देवीतान्विशिखैः शरान् । त्रिशूलेनत्रिनेत्रन्तुजघानजगदम्बिका
अन्धकस्त्वाजगामाऽऽशु हतं दृष्ट्वा त्रिलोचनम् ।
गदया लोहमय्याऽऽशु सिंहं विव्याध मस्तके ॥ ३३ ॥
सिंहस्तु नखघातेन तं हत्वा बलवत्तरम् । चखादतरसामांसमन्धकस्य रुषाऽन्वितः
तान्रणे निहतान्वीक्ष्य दानवो विस्मयं गतः ।
चिक्षेप तरसा बाणानतितीक्ष्णाञ्छिलाशितान् ॥ ३५ ॥
द्विधाचक्रेशरान्देवीतानप्राप्ताञ्छिलीमुखैः । गदयाताडयामासदैत्यंवक्षसिचाम्बिका
स गदाभिहतो मूर्छामवापाऽमरबाधकः । विषह्यपीडांपापात्मा पुनरागत्य सत्वरः
जघान गदया सिंहं मूर्ध्नि क्रोधसमन्वितः ।
सिंहोऽपि नखघातेन तं ददार महासुरम् ॥ ३८ ॥
विहाय पौरुषं रूपं सोऽपि सिंहो बभूव ह । नखैर्विदारयामास देवीसिंहंमहोत्कटम्
तं च केसरिणं वीक्ष्य देवी क्रुद्धाह्ययोमुखैः । शरैरवाकिरत्तीक्ष्णैः शरैराशीविषैरिव

त्यक्त्वा स हरिरूपं तु गजोभूत्वामदस्रवः । शैलशृङ्गंकरे कृत्वाचिक्षेपचण्डिकाम्प्रति
आगच्छन्तं गिरेः शृङ्गं देवी बाणैः शिलाशितैः ।
चकार तिलशः खण्डाञ्जहास जगदम्बिका ॥ ४२ ॥
उत्पत्यच तदा सिंहस्तस्यमूर्ध्नि व्यवस्थितः । नखैर्विदारयामासमहिषं गजरूपिणम्
विहाय गजरूपञ्च बभूवाऽष्टापदी तथा । हन्तुकामो हरिंकोपाद्दारुणो बलवत्तरः ॥
तं वीक्ष्य शरभं देवी खड्गेन सरुषान्विता । उत्तमाङ्गेजघानाशुसोऽपितां प्राहरत्तदा
तयोः परस्परं युद्धं बभूवाऽतिभयप्रदम् । माहिषं रूपमास्थाय शृङ्गाभ्यां प्राहरत्तदा
पुच्छप्रभ्रमणेनाशु शृङ्गाघातैर्महासुरः । ताडयामास तन्वगीं घोररूपो भयानकः ॥४७
पुच्छेन पर्वताञ्छृङ्गे गृहीत्वा भ्रामयन्बलात् ।
प्रेषयामास पापात्मा प्रहसन्परया मुदा ॥ ४८ ॥
तामुवाचबलोन्मत्तस्तिष्ठ देवि रणाङ्गणे । अद्याऽहं त्वांहनिष्यामिरूपयौवनभूषिताम्
मूर्खाऽसि मदमत्ताऽद्यत्वन्मयासहसङ्गरम् । करोषि मोहिताऽतीव मृषाबलवती खरा
हत्वा त्वां निहनिष्यामि देवान्कपटपण्डितान् ।
ये नारीं पुरतः कृत्वा जेतुमिच्छन्ति मां शठाः ॥ ५१ ॥
देव्युवाच
मागर्वंकुरुमन्दात्मंस्तिष्ठतिष्ठरणांगणे । करिष्यामिनिरातङ्कान्हत्वात्वां सुरसत्तमान्
पीत्वाऽद्यमाध्वीमिष्टां शातयामिरणेऽधम । देवानांदुःखदंपापं मुनीनां भयकारकम्
व्यास उवाच
इत्युक्त्वाचषकंहैमं गृहीत्वासुरयायुतम् । पपौ पुनः पुनःक्रोधाद्धन्तुकामा महासुरम्
पीत्वा द्राक्षासवं मिष्टं शूलमादाय सत्वरा । दुद्राव दानवं देवी हर्षयन्देवतागणान्
देवास्तां तुष्टुवुः प्रेम्णा चक्रुः कुसुमवर्षणम् ।
जय जीवेति ते प्रोचुर्दुन्दुभीनाञ्च निःस्वनैः ॥ ५६ ॥
ऋषयःसिद्धगन्धर्वाःपिशाचोरगचारणाः । किन्नराःप्रेक्ष्यसंग्राममुदिताःगगनेस्थिताः
सोऽपि नानाविधान्देहान्कृत्वा कृत्वा पुनः पुनः ।

मायामयाञ्चकाराऽऽजौ देवीं कपटपण्डितः ॥ ५८ ॥
चण्डिकाऽपि ततस्तं त्रिशूलेन बलाद्धृदि । ताडयामास तीक्ष्णेन क्रोधादरुणलोचना ॥
ताडितोऽसौ पपातोर्व्यां मूर्च्छामाप मुहूर्तकम् ।
पुनरुत्थाय चामुण्डां पद्भ्यां वेगादताडयत् ॥ ६० ॥
विनिहत्य पदाघातैर्जहास च मुहुर्मुहुः । ररावदारुणं शब्दं देवानां भयकारकम् ॥
ततो देवी सहस्रारं सुनाभं चक्रमुत्तमम् । करेकृत्वाजगादोच्चैः संस्थितंमहिषासुरम्
पश्यचक्रंमदान्धाऽद्य तवकण्ठनिकृन्तनम् । क्षणमात्रंस्थिरोभूत्वा यमलोकंव्रजाधुना
इत्युक्त्वा दारुणं चक्रं मुमोच जगदम्बिका ।
शिरश्छिन्नं रथाङ्गेन दानवस्य तदा रणे ॥ ६४ ॥
सुस्रावरुधिरंचोष्णं कण्ठनालाद्गिरेर्यथा । गैरिकायरुणं प्रौढं प्रवाहमिव नैर्झरम् ॥
कबन्धस्तस्य दैत्यस्य भ्रमन्वै पतितःक्षितौ । जयशब्दश्च देवानां बभूव सुखवर्धनः ॥
सिंहस्त्वतिबलस्तत्र पलायनपरानथ । दानवान्भक्षयामास क्षुधार्त इव सङ्गरे ॥६७
मृते च महिषे क्रूरे दानवाभयपीडिताः । मृतशेषाश्च ये केचित्पातालन्ते ययुर्नृप ॥
आनन्दं परमं जग्मुर्देवास्तस्मिन्निपातिते । मुनयोमानवाश्चैव येचान्येसाधवः क्षितौ
चण्डिकाऽपि रणं त्यक्त्वा शुभे देशेऽथ संस्थिता ।
देवास्तत्राऽऽययुः शीघ्रं स्तोतुकामाः सुखप्रदाम् ॥ ७० ॥
इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्त्र्यांसंहितायां पञ्चमस्कन्धे
महिषासुरवधो नामाऽष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

एकोनविंशोऽध्यायः

महिषासुरवधमनुदेवैःकृताभगवतीस्तुतिः

व्यास उवाच

अथ प्रमुदिताः सर्वे देवा इन्द्रपुरोगमाः । महिषं निहतं दृष्ट्वा तुष्टुवुर्जगदम्बिकाम् ॥

देवा ऊचुः

ब्रह्मा सृजत्यवति विष्णुरिदं महेशः शक्त्या तदैव हरते ननु चान्तकाले ।
ईशा न तेऽपि च भवन्ति तया विहीनास्तस्मात्त्वमेव जगतःस्थितिनाशकर्त्री ॥
कीर्तिर्मतिः स्मृतिगती करुणा दया त्वं श्रद्धा धृतिश्च वसुधा कमला जया च ।
पुष्टिःकलाऽथ विजया गिरिजा जया त्वं तुष्टिः प्रमा त्वमसि बुद्धिरुमा रमा च
विद्या क्षमा जगति कान्तिरपीह मेधा सर्वं त्वमेव विदिता भुवनत्रयेऽस्मिन् ।
आभिर्विना तव तु शक्तिभिराशु कर्तुं को वा क्षमः सकललोकनिवासभूमे ॥४॥
त्वं धारणा ननु न चेदसि कूर्मनागौ धर्तुं क्षमौ कथमिलामपि तौ भवेताम् ।
पृथ्वी न चेत्त्वमसि वा गगने कथं स्थास्यत्यैतदम्ब निखिलं बहुभारयुक्तम् ॥
ये वा स्तुवन्ति मनुजा अमरान्विमूढा मायागुणैस्तव चतुर्मुखविष्णुरुद्रान् ।
शुभ्रांशुवह्नियमवायुगणेशमुख्यान्किं त्वामृते जननि! ते प्रभवन्ति कार्ये ॥ ६ ॥
त्वये जुह्वति प्रविततेऽल्पधियोऽम्ब यज्ञेवह्नौ सुरान्समधिकृत्य हविःसमृद्धम् ।
स्वाहा न चेत्त्वमसि ते कथमापुरद्धा त्वामेव किं न हि यजन्ति ततोहिमूढाः ॥
भोगप्रदाऽसि भवतीह चराचराणां स्वांशैर्ददासि खलुजीवनमेव नित्यम् ।
स्वीयान्सुराञ्जननि! पोषयसीह यद्वत्तद्वत्परानपि च पालयसीति हेतोः ॥ ८ ॥
मातः स्वयं विरचितान्विपिने विनोदाद्वन्ध्यान्पलाशरहितांश्च कटूंश्च वृक्षान् ।
नोच्छेदयन्ति पुरुषा निपुणाः कथञ्चित्तस्मात्त्वमप्यनितरां परिपासि दैत्यान् ॥
यत्त्वं तु हंसि रणमूर्ध्नि शरैरातोन्देवाङ्गनासुरतकेलिमतीन्विदित्वा ।

देहान्तरेऽपि करुणारसमाददाना तत्ते चरित्रमिदमीप्सितपूरणाय ॥ १० ॥
चित्रं त्वमीयदसुमी रहिता न संति त्वच्चिन्तितेन दनुजाः प्रथितप्रभावाः ।
येषां कृते जननि देहनिबन्धनन्ते क्रीडारसस्तव न चान्यतरोऽत्र हेतुः ॥ ११ ॥
प्राप्ते कलावहह !!दुष्टतरे च काले न त्वां भजन्ति मनुजा ननु वञ्चितास्ते ।
धूर्तैः पुराणचतुरैर्हरिशंकराणां सेवापराश्च विहितास्तव निर्मितानाम् ॥ १२ ॥
ज्ञात्वा सुरांस्तव वशानसुरार्दितांश्च ये वै भजन्ति भुवि भावयुता विभग्नान् ।
धृत्वा करे सुविमलं खलु दीपकं ते कूपे पतन्ति मनुजा विजलेऽतिघोरे ॥ १३॥
विद्या त्वमेव सुखदाऽसुखदाप्यविद्या मातस्त्वमेव जननार्तिहरा नराणाम् ।
मोक्षार्थिभिस्तु कलिता किल मन्दधीभिर्नाराधिता जननिभोगपरैस्तथाऽज्ञैः ॥
ब्रह्माहरश्च हरिरप्यनिशं शरण्यं पादाम्बुजं तव भजन्ति सुरास्तथाऽन्ये ।
तद्वै न येऽल्पमतयो मनसा भजन्ति भ्रान्ताः पतन्ति सततं भवसागरे ते॥ १५॥
चण्डि ! त्वदङ्घ्रिजलजोत्थरजः प्रसादैर्ब्रह्मा करोति सकलं भुवनं भवादौ ।
शौरिश्च पाति खलु संहरते हरस्तु त्वां सेवते न मनुजस्त्विह दुर्भगोऽसौ ॥१६
वाग्देवता त्वमसि देवि ! सुरासुराणां वक्तुं न तेऽमरवराः प्रभवन्ति शक्ताः ॥
त्वं चेन्मुखे वससि नैव यदैव तेषां यस्माद्भवन्ति मनुजा न हि तद्विहीनाः ॥१७
शप्तो हरिस्तु भृगुणा कुपितेन कामं मीनो बभूव कमठः खलु सूकरस्तु ।
पश्चान्नृसिंह इति यश्छलकृद्धरायां तान्सेवतां जननि! मृत्युभयं न किं स्यात् ॥
शम्भोः पपात भुवि लिङ्गमिदं प्रसिद्धं शापेन तेन च भृगोर्विपिने गतस्य ।
तं ये नरा भुवि भजन्ति कपालिनन्तु तेषां सुखं कथमिहाऽपि परत्र मातः॥१९॥
योऽभूद्गजाननगणाधिपतिर्महेशात्तं ये भजन्ति मनुजा वितथप्रपन्नाः ।
जानन्ति ते न सकलार्थफलप्रदात्रीं त्वां देवि विश्वजननीं सुखसेवनीयाम् ॥२०
चित्रं त्वयाऽरिजनताऽपि दयार्द्रभावाद्धत्वा रणे शितशरैर्गमिता द्युलोकम् ।
नो चेत्स्वकर्मनिचिते निरये नितान्तं दुःखाऽतिदुःखगतिमापदमापतेत्सा ॥ २१
ब्रह्मा हरश्च हरिरप्युत गर्वभावाज्जानन्ति तेऽपि विबुधा न तव प्रभावम् ।

केऽन्ये भवन्ति मनुजा विदितुं समर्थाः सम्मोहितास्तव गुणैरमितप्रभावैः ॥२२॥
क्लिश्यन्ति तेऽपि मुनयस्तव दुर्विभाव्यं पादाम्बुजं न हि भजन्तिविमूढचित्ताः ।
सूर्याग्निसेवनपराः परमार्थतत्त्वं ज्ञातं न तैः श्रुतिशतैरपि वेदसारम् ॥ २३ ॥
मन्ये गुणास्तव भुवि प्रथितप्रभावाः कुर्वन्ति ये हि विमुखान्ननु भक्तिभावात् ।
लोकान्स्वबुद्धिरचितैर्विविधाऽऽगमैश्च विष्ण्वीशभास्करगणेशपरान्विधाय ॥
कुर्वन्ति ये तव पदाद्विमुखान्नराग्र्यान्स्वोक्तागमैर्हरिहरार्चनभक्तियोगैः ॥
तेषां न कुप्यसि दयांकुरुषेऽम्बिके त्वं तान्मोहमन्त्रनिपुणान्प्रथयस्यलञ्च ॥२५॥
तुर्ये युगेभवति चाऽतिबलं गुणस्य तुर्यस्यतेनमथितान्यसदागमानि ।
त्वां गोपयन्ति निपुणाः कवयः कलौ वै त्वत्कल्पितान्सुरगणानपिसंस्तुवन्ति
ध्यायन्ति मुक्तिफलदां भुवियोगसिद्धां विद्यां परां च मुनयोऽतिविशुद्धसत्त्वाः
ते नाप्नुवन्ति जननी जठरं तु दुःखं धन्यास्तएवमनुजास्त्वयि ये विलीनाः ॥
चिच्छक्तिरस्ति परमात्मनि तेन सोऽपि व्यक्तो जगत्सुविदितोभवकृत्यकर्ता ।
कोऽन्यस्त्वया विरहितः प्रभवत्यमुष्मिन्कर्तुं विहर्तुमपिसञ्चलितुं स्वशक्त्या ॥
तत्त्वानि चिद्विरहितानिजगद्विधातुं किंवा क्षमाणि जगदम्ब ! यतो जडानि ।
किंचेन्द्रियाणिगुणकर्मयुतानि सन्ति देवि त्वया विरहितानि फलं प्रदातुम् ॥
देवा मखेष्वपि हुतं मुनिभिःस्वभागं गृह्णन्त्यम्ब ! विधिवत्प्रतिपादितं किम् ।
स्वाहा न चेत्त्वमसि तत्रनिमित्तभूता तस्मात्त्वमेवननुपालयसीवविश्वम् ॥३०॥
सर्वंत्वयेदमखिलं विहितंभवादौ त्वंपासि वै हरिहरप्रमुखान्दिगीशान् ।
कालेऽसि विश्वमपि ते चरितं भवाद्यं जानन्ति नैव मनुजाः क्व नु मन्दभाग्याः
हत्वाऽसुरं महिषरूप धरं महोग्रं मातस्त्वया सुरगणः किल रक्षितोऽयम् ।
कां ते स्तुतिं जननि ! मन्दधियो विदामो वेदा गतिं तव यथार्थतया न जग्मुः
कार्यं कृतं जगति नो यदसौ दुरात्मा वैरीहतोभुवनकण्टकदुर्विभाव्यः ।
कीर्तिः कृता ननु जगत्सु कृपा विधेयाऽप्यस्मांश्च पाहि जननि ! प्रथितप्रभावे !

व्यासउवाच

एवं स्तुता सुरैर्देवी तानुवाच मृदुस्वरा । अन्यत्कार्यं च दुःसाध्यं ब्रुवन्तुसुरसत्तमाः
यदा यदा हि देवानां कार्यं स्याद्दतिदुर्घटम् ।
स्मर्तव्याऽहं तदा शीघ्रं नाशयिष्यामि चाऽऽपदम् ॥ ३५ ॥

देवा ऊचुः

सर्वं कृतं त्वया देवि! कार्यं नः खलु साम्प्रतम् । यदयं निहतःशत्रुरस्माकंमहिषासुरः
स्मरिष्यामोयथा तेऽम्ब! सदैवपदपङ्कजम् । तथाकुरुजगन्मातर्भक्तित्वय्यप्यचञ्चलाम्
अपराधसहस्राणि मातैव सहते सदा । इतिज्ञात्वा जगद्योनिं न भजन्ते कुतो जनाः
द्वौ सुपर्णौ तु देहेऽस्मिंस्तयोः सख्यं निरन्तरम् ।
नान्यः सखा तृतीयोऽस्ति योऽपराधं सहेत हि ॥ ३९ ॥
तस्माज्जीवः सखायं त्वां हित्वा किं नु करिष्यति ।
पापात्मा मन्दभाग्योऽसौ सुरमानुषयोनिषु ॥ ४० ॥
प्राप्य देहं सुदुष्प्रापं न स्मरेत्त्वां नराधमः । मनसा कर्मणा वाचाब्रूमः सत्यं पुनः पुनः
सुखेवाऽप्यथवा दुःखे त्वं नः शरणमद्भुतम् । पाहि नः सततं देवि सर्वैस्तववरायुधैः
अन्यथा शरणं नास्ति त्वत्पदाम्बुजरेणुतः ।

व्यास उवाच

एवं स्तुता सुरैर्देवी तत्रैवाऽन्तरधीयत ॥ ४३ ॥
विस्मयं परमं जग्मुर्देवास्तां वीक्ष्य निर्गताम् ॥ ४४ ॥
इति श्रीदेवीभागवतेमहापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यांसंहितायां पञ्चमस्कन्धे
देवीसान्त्वनंनामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

विंशोऽध्यायः

महिषवधमनुसर्वत्रैवसुखशान्तिप्रसारवर्णनम्

जनमेजय उवाच

अथाऽद्भुतं वीक्ष्य मुने ! प्रभावं देव्या जगच्छान्तिकरं वरं च ।
न तृप्तिरस्ति द्विजवर्य ! शृण्वतः कथामृतं ते मुखपद्मजातम् ॥ १ ॥
अन्तर्हितायां च तदा भवान्यां चक्रुश्च किं देवपुरोगमास्ते ।
देव्याश्चरित्रं परमं पवित्रं दुरापमेवाल्पपुण्यैर्नराणाम् ॥ २ ॥
कस्तृप्तिमाप्नोति कथाऽमृतेन विभोऽल्पभाग्यात्पटुकर्णरन्ध्रः ।
पीतेन येनाऽमरतां प्रयाति धिक्तान्नरान्ये न पिबन्ति सादरम् ॥ ३ ॥
लीलाचरित्रं जगदम्बिकाया रक्षान्वितं देव महामुनीनाम् ।
संसाराब्धेस्तरणं नराणां कथं कृतज्ञा हि परित्यजेयुः ॥ ४ ॥
मुक्ताश्च ये चैव मुमुक्षवश्च संसारिणो रोगयुताश्च केचित् ।
तेषां सदा श्रोत्रपुटैश्च पेयं सर्वार्थदं वेदविदो वदन्ति ॥ ५ ॥
तथा विशेषेण मुने ! नृपाणां धर्मार्थकामेषु सदा रतानाम् ।
मुक्ताश्च यस्मात्खलु तत्पिबन्ति कथं न पेयं रहितैश्च तेभ्यः ॥ ६ ॥
यैः पूजिता पूर्वभवे भवानी सत्कुन्दपुष्पैरथ चम्पकैश्च ।
बैल्वैर्दलैस्ते भुवि भोगयुक्ता नृपाभवन्तीत्यनुमेयमेवम् ॥ ७ ॥
ये भक्तिहीनाः समवाप्य देहं तं मानुषं भारतभूमिभागे ।
यैर्नार्चिता ते धनधान्यहीना रोगान्विताः सन्ततिवर्जिताश्च ॥ ८ ॥
भ्रमन्ति नित्यं किल दासभूता आज्ञाकराः केवलभारवाहाः ।
दिवानिशं स्वार्थपराः कदाऽपि नैवाप्नुवन्त्यौदरपूर्तिमात्रम् ॥ ९ ॥
अन्धाश्च मूका बधिराश्च खञ्जाः कुष्ठान्विता ये भुवि दुःखभाजः ।

तत्रानुमानं कविभिर्विधेयं नाराधिता तैः सततं भवानी ॥ १० ॥
ये राजभोगान्वितऋद्धिपूर्णाः संसेव्यमाना बहुभिर्मनुष्यैः ।
दृश्यन्ति ये वा विभवैः समेतास्तैः पूजिताऽम्बेत्यनुमेयमेव ॥ ११ ॥

तस्मात्सत्यवतीसूनो! देव्याश्चरितमुत्तमम् । कथयस्वकृपांकृत्वादयावानसिमाम्प्रतम्
हत्वा तं महिषं पापं स्तुता सम्पूजिता सुरैः । क्वगतासामहालक्ष्मीःसर्वतेजःसमुद्भवा

कथितं ते महाभाग गताऽन्तर्धानमाशु सा ।
स्वर्गे वा मृत्युलोके वा संस्थिता भुवनेश्वरी ॥ १४ ॥

लयं गता वा तत्रैव वैकुण्ठे वा समाश्रिता । अथवाहैमशैलेसातत्त्वतोमेवदाऽधुना

व्यास उवाच

पूर्वं मया ते कथितं मणिद्वीपं मनोहरम् । क्रीडास्थानं सदा देव्यावल्लभंपरमंस्मृतम्
यत्र ब्रह्मा हरिः स्थाणुः स्त्रीभावं तेप्रपेदिरे । पुरुषत्वंपुनःप्राप्यस्वानिकार्याणिचक्रिरे
यः सुधासिन्धुमध्येऽस्तिद्वीपः परमशोभनः । नानारूपैःसदातत्रविहारंकुरुतेऽम्बिका
स्तुता सम्पूजिता देवैःसातत्रैवगताशिवा । यत्रसङ्क्रीडतेनित्यंमायाशक्तिःसनातनी
देवास्तां निर्गतां वीक्ष्य देवीं सर्वेश्वरीं तथा । रविवंशोद्भवंचक्रुर्भूमिपालं महाबलम्
अयोध्याधिपतिं वीरं शत्रुघ्नंनामपार्थिवम् । सर्वलक्षणसम्पन्नंमहिषस्याऽऽसने शुभे

दत्त्वा राज्यं तदा तस्मै देवा इन्द्रपुरोगमाः ।
स्वकीयैर्वाहनैः सर्वे जग्मुःस्वान्यालयानि ते ॥ २२ ॥

गतेषु तेषु देवेषु पृथिव्यां पृथिवीपते । धर्मराज्यं बभूवाऽथ प्रजाश्च सुखितास्तथा
पर्जन्यः कालवर्षी च धरा धान्यगुणावृता । पादपाः फलपुष्पाढ्याबभूवुःसुखदाःसदा

गावश्चक्षीरसम्पन्ना घटोध्न्यः कामदा नृणाम् ।
नद्यः सुमार्गगाः स्वच्छाः शीतोदाः खगसंयुताः ॥ २५ ॥

ब्राह्मणा वेदतत्त्वाश्च यज्ञकर्मरतास्तथा । क्षत्रियाधर्मसंयुक्ता दानाध्ययनतत्पराः ॥
शस्त्रविद्यारता नित्यं प्रजारक्षणतत्पराः । न्यायदण्डधराः सर्वे राजानः शमसंयुताः
अविरोधस्तु भूतानां सर्वेषां सम्बभूव ह । आकरा धनदा नृणां प्रजाः गोयूथसंयुता

ब्राह्मणा क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्च नृपसत्तम । देवीभक्तिपराः सर्वे सम्बभूवुर्धरातले ॥
सर्वत्रयज्ञयूपाश्च मण्डपाश्च मनोहराः । मखैः पूर्णा धराश्चासन्ब्राह्मणैःक्षत्रियैः कृतैः
पतिव्रतधरा नार्यः सुशीलाः सत्यसंयुताः । पितृभक्तिपराःपुत्रा आसन्धर्मपरायणाः

न पाखण्डं न वाऽधर्मः कुत्राऽपि पृथिवीतले ।
वेदवादाःशास्त्रवादा नान्येवादास्तथाऽभवन् ॥ ३२ ॥

कलहो नैवकेषाञ्चिन्न दैन्यं नाऽशुभा मतिः । सर्वत्र सुखिनो लोका कालेचमरणंतथा
सुहृदां न वियोगश्च नापदश्च कदाचन । नाऽनावृष्टिर्न दुर्भिक्षं न मारी दुःखदा नृणाम्
न रोगो च मात्सर्यं न विरोधः परस्परम् । सर्वत्रसुखसम्पन्नानरनार्यः सुखान्विताः
क्रीडन्ति मानवाः सर्वे स्वर्गेदेवगणा इव । न चोरानैवपाखण्डावञ्चकादम्भकास्तथा
पिशुनालम्पटाः स्तब्धा न बभूवुस्तदानृप !। न वेदद्वेषिणःपापा मानवाः पृथिवीपते
सर्वधर्मरतानित्यं द्विजसेवापरायणाः । त्रिधात्वात्सृष्टिधर्मस्यत्रिविधाब्राह्मणास्ततः
सात्त्विका राजसाश्चैव तामसाश्चतथाऽपरे । सर्वेवेदविदोदक्षाःसात्त्विकाःसत्त्ववृत्तयः
प्रतिग्रहविहीनाश्च दयादमपरायणाः । यज्ञास्ते सात्त्विकैरन्नैः कुर्वाणा धर्मतत्पराः
पुरोडाशविधानैश्च पशुभिर्न कदाचन । दानमध्ययनञ्चैव यजनन्तु तृतीयकम् ॥ ४१ ॥

त्रिकर्मरसिकास्ते वै सात्त्विका ब्राह्मणा नृप ! ।
राजसा वेदविद्वांसः क्षत्रियाणां पुरोहिताः ॥ ४२ ॥

षट्कर्मनिरताः सर्वे विधिवन्मांसभक्षकाः । यजनं याजनं दानं तथैवच प्रतिग्रहः ॥
अध्ययनन्तु वेदानां तथैवाऽध्यापनं तु षट् । तामसाः क्रोधसंयुक्ता रागद्वेषपराःपुनः
राज्ञां कर्मकरा नित्यं किञ्चिदध्ययने रताः । महिषे निहते सर्वे सुखिनो वेदतत्पराः
बभूवुर्व्रतनिष्णाता दानधर्मपरास्तदा । क्षत्रियाः पालने युक्ता वैश्या वणिजवृत्तयः
कृषिवाणिज्यगोरक्षाकुसीदवृत्तयः परे । एवं प्रमुदितो लोको महिषे विनिपातिते ॥
अनुद्वेगःप्रजानाम्वै सम्बभूव धनाऽऽगमः । बहुक्षीराः शुभा गावो नद्यश्चैवबहूदकाः॥

वृक्षा बहुफलाश्चाऽऽसन्मानवा रोगवर्जिताः ।
नाऽऽधयो नेतयः क्वाऽपि प्रजानां दुःखदायकाः ॥ ४३ ॥

न निधनमुपयान्ति प्राणिनस्तेऽप्यकाले सकलविभवयुक्ता रोगहीनाः सदैव ।
निगमविहितधर्मे तत्पराश्चण्डिकायाश्चरणसरसिजानां सेवने दत्तचित्ताः ॥ ५०
इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यांसंहितायांपञ्चमस्कन्धे
महिषवधमनुपृथिवीसुखवर्णनंनामविंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

एकविंशोऽध्यायः

शुम्भनिशुम्भद्वारादेवपराजयवर्णनम्

व्यास उवाच

शृणुराजन्प्रवक्ष्यामि देव्याश्चरितमुत्तमम् । सुखदं सर्वजन्तूनां सर्वपापप्रणाशनम् ॥
यथा शुम्भो निशुम्भश्च भ्रातरौ बलवत्तरौ । बभूवतुर्महावीरावबध्यौ पुरुषैः किल ॥
बहुसेनावृतौ शूरौ देवानां दुःखदौ सदा । दुराचारौ मदोत्सिक्तौ बहुदानवसंयुतौ ॥
हतावम्बिकया तौ तु संग्रामेऽतीव दारुणे । देवानाञ्च हितार्थाय सर्वैः परिचरैः सह
चण्डमुण्डौ महाबाहू रक्तबीजोऽतिदारुणः । धूम्रलोचननामा च निहतास्ते रणाङ्गणे
तान्निहत्य सुराणां सा जहार भयमुत्तमम् । स्तुता सम्पूजिता देवैर्गिरौहेमाचलेशुभे

राजोवाच

कावेतावसुरावादौ कथं तौ बलिनाम्वरौ । केनसंस्थापितौचेहस्त्रीवध्यत्वंकुतोगतौ
तपसा वरदानेन कस्य जातौ महाबलौ । कथं च निहतौ सर्वं कथयस्वसविस्तरम्

व्यास उवाच

शृणु राजन्कथां दिव्यां सर्वपापप्रणाशिनीम् ।
देव्याश्चरितसंयुक्तां सर्वार्थफलदां शुभाम् ॥ ६ ॥

पुरा शुम्भनिशुम्भौ द्वावसुरौ भूमिमण्डले । पातालतश्च सम्प्राप्तौ भ्रातरौ शुभदर्शनौ
तौ प्राप्तयौवनौ चैव चेरतुस्तप उत्तमम् । अन्नोदकं परित्यज्य पुष्करे लोकपावने

वर्षाणामयुतं यावद्योगविद्यापरायणौ । एकत्रैवाऽऽसनं कृत्वा तेपाते परमन्तपः ॥
तयोस्तुष्टोऽभवद् ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः । तत्राऽऽगतश्च भगवानारुह्यवरदापतिम्

तावुभौ च जगत्स्रष्टा दृष्ट्वा ध्यानपरौ स्थितौ ।
उत्तिष्ठतं महाभागौ तुष्टोऽहं तपसा किल ॥ १४ ॥

वाञ्छितम्वाम्वरंकामंददामिब्रुवतामिह । कामदोऽहंसमायातौदृष्ट्वावान्तपसोबलम्

व्यास उवाच

इतिश्रुत्वावचस्तस्यप्रबुद्धौतौसमाहितौ । प्रदक्षिणक्रियां कृत्वा प्रणामञ्चक्रतुस्तदा
दण्डवत्प्रणिपातञ्च कृत्वा तौ दुर्बलाकृती । ऊचतुर्मधुरां वाचं दीनौ गद्गदया गिरा
देवदेव दयासिन्धो भक्तानामभयप्रद !। अमरत्वं च नौ ब्रह्मन्देहि तुष्टोऽसि चेद्विभो
मरणादपरं किञ्चिद्भयंनास्ति धरातले । तस्माद्भयाच्च सन्त्रस्तौ युष्माकं शरणङ्गतौ
त्राहि त्वं देवदेवेश जगत्कर्तः क्षमानिधे । परिस्फोटयविश्वात्मन्सद्योमरणजम्भयम्

ब्रह्मोवाच

किमिदम्प्रार्थनीयं वो विपरीतं तु सर्वथा । अदेयं सर्वथा सर्वैः सर्वेभ्यो भुवनत्रये॥
जातस्य हि ध्रुवोमृत्युर्ध्रुवञ्जन्म मृतस्यच । मर्यादा विहितालोके पूर्वविश्वकृताकिल
मर्तव्यं सर्वथा सर्वैः प्राणिभिर्नात्रसंशयः । अन्यत्प्रार्थयतंकामं ददामितद्धवाञ्छितम्

व्यास उवाच

तदाकर्ण्यवचस्तस्य सुविमृश्यतुदानवौ । ऊचतुःप्रणिपत्याऽथ ब्रह्माणं पुरतःस्थितम्
पुरुषैरमराद्यैश्च मानवैर्मृगपक्षिभिः । अवध्यत्वंकृपासिन्धो देहि नौ वाञ्छितम्वरम्

नारी बलवती काऽस्ति या नो नाशं करिष्यति ।
न विभीवः स्त्रियःकामं त्रैलोक्ये सचराचरे ॥ २६ ॥

अवध्यौभ्रातरौस्यातांनरेभ्यःपङ्कजोद्भव !। भयं न स्त्रीजनेभ्यश्च स्वभावादबलाहिसा

व्यास उवाच

इति श्रुत्वातयोर्वाक्यंप्रददौवाञ्छितम्वरम् । ब्रह्मा प्रसन्नमनसा जगामाथस्वमालयम्
गतेऽथ भवने तस्मिन्दानवौ स्वगृहं गतौ । भृगुम्पुरोहितं कृत्वा चक्रतुःपूजनन्तदा

शुभे दिने सुनक्षत्रे आतंकमयं शुभम् । कृत्वा सिंहासनं दिव्यं राज्यार्थमददौमुनिः
शुम्भाय ज्येष्ठभूतायददौ राज्यासनं शुभम् । सेवनार्थन्तदैवाशु सम्प्राप्ता दानवोत्तमाः
चण्डमुण्डौ महावीरौ भ्रातरौबलदर्पितौ । सम्प्राप्तौसैन्यसंयुक्तौरथवाजिगजान्वितौ
धूम्रलोचननामा च तद्रूपश्चण्डविक्रमः । शुम्भञ्च भूपतिं श्रुत्वा तदागाद्बलसंयुतः
रक्तबीजस्तथा शूरो वरदानबलाधिकः । अक्षौहिणीभ्यां संयुक्तस्तत्रैवागत्यसङ्गतः
तस्यैकं कारणं राजन्संग्रामे युध्यतः सदा । देहाद्रुधिरसम्पातस्तस्य शस्त्राहतस्यच
जायते च यदा भूमावुत्पद्यन्ते ह्यनेकशः । तादृशाः पुरुषाः क्रूरा बहवः शस्त्रपाणयः
सम्भवन्ति तदाकारास्तद्रूपास्तत्पराक्रमाः । युद्धम्पुनस्ते कुर्वन्ति पुरुषारक्तसम्भवाः

अतः सोऽपि महावीर्यः संग्रामेऽतीव दुर्जयः ।
अवध्यः सर्वभूतानां रक्तबीजो महासुरः ॥ ३८ ॥

अन्ये च बहवः शूराश्चतुरङ्गसमन्विताः । शुम्भं च नृपतिं मत्वा बभूवुस्तस्य सेवकाः
असंख्याता तदा जाता सेना शुम्भनिशुम्भयोः । पृथिव्याःसकलंराज्यंगृहीतंबलवत्तया
सेनायोगं तदा कृत्वा निशुम्भः परवीरहा । जगाम तरसा स्वर्गं शचीपतिजयाय च
चकाराऽसौ महायुद्धं लोकपालैः समन्ततः । वृत्रहा वज्रपातेन ताडयामास वक्षसि
स वज्राभिहतो भूमौ पपात दानवानुजः । भग्नं बलं तदा तस्य निशुम्भस्यमहात्मनः
भ्रातरं मूर्छितं श्रुत्वा शुम्भः परबलार्दनः । तत्रागत्यसुरान्सर्वांस्ताडयामास सायकैः
कृतं युद्धं महत्तेन शुम्भेनाक्लिष्टकर्मणा । निर्जितास्तु सुराः सर्वे सेन्द्राः पालाश्चसर्वशः
ऐन्द्रं पदं तदा तेन गृहीतं बलवत्तया । कल्पपादपसंयुक्तं कामधेनुसमन्वितम् ॥
त्रैलोक्यं यज्ञभागाश्च हृतास्तेन महात्मना । नन्दनं च वनंप्राप्य मुदितोऽभून्महासुरः
सुधायाश्चैव पानेन सुखमाप महासुरः । कुबेरं स च निर्जित्य तस्य राज्यं चकार ह
अधिकारं तथा भानोः शशिनश्च चकार ह । यमं चैव विनिर्जित्य जग्राह तत्पदंतथा
वरुणस्य तथा राज्यं चकार वह्निकर्म च । वायोःकार्यंनिशुम्भश्च चकारस्वबलान्वितः
ततो देवा विनिर्धूता हृतराज्या हृतश्रियः । सन्त्यज्य नन्दनं सर्वेनिर्ययुर्गिरिगह्वरे ॥
हृताधिकारास्ते सर्वे बभ्रमुर्विजने वने । निरालम्बा निराधारानिस्तेजस्कानिरायुधाः

विचेरुरमराः सर्वे पर्वतानां गुहासु च । उद्यानेषु च शून्येषु नदीनां गह्वरेषु च ॥
न प्रापुस्ते सुखं क्वाऽपिस्थानभ्रष्टाविचेतसः । लोकपालामहाराजदैवाधीनंसुखं किल
बलवन्तो महाभागा बहुज्ञा धनसंयुताः । काले दुःखं तथा दैन्यमाप्नुवन्तिनराधिप ॥
चित्रमेतन्महाराज कालस्यैव विचेष्टितम् । यः करोति नरं तावद्राजानं भिक्षकं ततः
दातारं याचकं चैव बलवन्तं तथाऽबलम् । पण्डितं विकलंकामंशूरं चाऽतीवकातरम्
मखानाञ्च शतं कृत्वा प्राप्येन्द्रासनमुत्तमम् । पुनर्दुःखं परं प्राप्तं कालस्य गतिरीदृशी
कालः करोति धर्मिष्ठं पुरुषं ज्ञानसंयुतम् । तमेवाऽतीव पापिष्ठं ज्ञानलेशविवर्जितम् ॥
न विस्मयोऽत्र कर्तव्यः सर्वथा कालचेष्टिते । ब्रह्मविष्णुहरादीनामपीदृक्कष्ट चेष्टितम्
विष्णुर्जननमाप्नोति सूकरादिषु योनिषु । हरः कपाली सञ्जातः कालेनैव बलीयसा

इति श्रीदेवीभागवतेमहापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यांसंहितायां पञ्चमस्कन्धे
शुम्भनिशुम्भद्वारास्वर्गविजयवर्णनंनामैकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

द्वाविंशोऽध्यायः

देवीप्रबोधनायदेवकृतास्तुतिःभगवत्यासान्त्वनम्

व्यास उवाच

पराजिताः सुराः सर्वे राज्यं शुम्भः शशास ह । एकवर्षसहस्रं तु जगाम नृपसत्तम॥
भ्रष्टराज्यास्ततोदेवाश्चिन्तामापुःसुदुस्तराम् । गुरुं दुःखातुरास्तेतु पप्रच्छुरिदमादृताः
किंकर्तव्यंगुरो! ब्रूहि सर्वज्ञस्त्वंमहामुनिः । उपायोऽस्तिमहाभागदुःखस्यविनिवृत्तये
उपचारपरानूनं वेदमन्त्राः सहस्रशः । वाञ्छितार्थकरा नूनं सूत्रैः सँल्लक्षिताः किल ॥
इष्टयोः विविधाःप्रोक्ताःसर्वकामफलप्रदाः । ताः कुरुष्वमुनेनूनंत्वंजानासिचतत्क्रियाः
विधिः शत्रुविनाशाय यथोद्दिष्टः सदागमे । तंकुरुष्वाऽद्यविधिवद्यथा नो दुःखसंक्षयः
भवेदाङ्गिरसाऽद्यं वतथात्वं कर्तुमर्हसि । दानवानां विनाशाय अभिचारं यथामति ॥

बृहस्पतिरुवाच

सर्वे मन्त्राश्च वेदोक्ता दैवाधीनफलाश्च ते ।
न स्वतन्त्राः सुराधीश! तथैकान्तफलप्रदाः ॥ ८ ॥

मन्त्राणां देवता यूयं ते तुदुःखैकभाजनम् । जाताःस्मकालयोगेनकिंकरोमिप्रसाधनम्
इन्द्राग्निवरुणादीनां यजनं यज्ञकर्मसु । ते यूयं विपदं प्राप्ताः करिष्यन्ति किमिष्टयः
अवश्यं भाविभावानां प्रतीकारो न विद्यते । उपायस्त्वथकर्तव्यइतिशिष्टानुशासनम्
दैवंहि बलवत्कैश्चित्प्रवदन्ति मनीषिणः । उपायवादिनो दैवं प्रवदन्ति निरर्थकम् ॥
दैवं चैवाऽप्युपायश्चद्वावेवाऽभिमतौनृणाम् । केवलं दैवमाश्रित्यन स्थातव्यं कदाचन

उपायः सर्वथा कार्यो विचार्य स्वधिया पुनः ।
तस्माद्ब्रवीमि वःसर्वान्सम्विचार्य पुनः पुनः ॥ १४ ॥

पुराभगवती तुष्टा जघान महिषासुरम् । युष्माभिस्तुस्तुतादेवी वरदानं ददावथ ॥
आपदं नाशयिष्यामि संस्मृता वा सदैव हि । यदा यदावो देवेशाआपदोदेवसम्भवाः
प्रभवन्ति तदाकामं स्मर्तव्याऽहंसुरैःसदा । स्मृताऽहंनाशयिष्यामियुष्माकंपरमापदः
तस्माद्धिमाचलं गत्वा पर्वते सुमनोहरे । आराधनंचण्डिकायाःकुरुध्वं प्रेमपूर्वकम् ॥
मायाबीजविधानज्ञास्तत्पुरश्चरणेरताः । जानाम्यहं योगबलात्प्रसन्ना सा भविष्यति

दुःखस्याऽन्तोऽद्य युष्माकं दृश्यते नाऽत्र संशयः ।
तस्मिञ्छैले सदा देवी तिष्ठतीति मया श्रुतम् ॥ २० ॥
स्तुता सम्पूजिता सद्यो वाञ्छितार्थान्प्रदास्यति ।
निश्चयं परमं कृत्वा गच्छध्वं वै हिमालयम् ॥ २१ ॥
सुराः !सर्वाणि कार्याणि सा वः कामं विधास्यति ।

व्यास उवाच

इति तस्य वचः श्रुत्वा देवास्ते प्रययुर्गिरिम् ॥ २२ ॥

हिमालयं महाराज! देवीध्यानपरायणाः । मायाबीजं हृदा नित्यं जपन्तः सर्व एव हि
नमश्चक्रुर्महामायां भक्तानामभयप्रदाम् । तुष्टुवुः स्तोत्रमन्त्रैश्चभक्त्या परमया युताः ॥

नमो देवि विश्वेश्वरि प्राणनाथे सदानन्दरूपे सुरानन्ददे ते ।
नमो दानवान्तप्रदे मानवानामनेकार्थदे भक्तिगम्यस्वरूपे ॥ २५ ॥
न ते नामसंख्यां न ते रूपमीदृक्तथा कोऽपि वेदादिदेवस्वरूपे !।
त्वमेवाऽसि सर्वेषु शक्तिस्वरूपा प्रजासृष्टिसंहारकाले सदैव ॥ २६ ॥
स्मृतिस्त्वं धृतिस्त्वं त्वमेवाऽसि बुद्धिर्जरा पुष्टितुष्टी धृतिः कान्तिशान्ती ।
सुविद्या सुलक्ष्मीर्गतिः कीर्तिमेधे त्वमेवाऽसि विश्वस्य बीजम्पुराणम् ॥ २७ ॥
यदा यैः स्वरूपैः करोषीह कार्यं सुराणाञ्च तेभ्यो नमामोऽद्य शान्त्यै ।
क्षमा योगनिद्रा दया त्वं विवक्षा स्थिता सर्वभूतेषु शस्तैः स्वरूपैः ॥ २८ ॥
कृतं कार्यमादौ त्वया यत्सुराणां हतोऽसौ महारिर्मदान्धो हयारिः ।
दया ते सदा सर्वदेवेषु देवि ! प्रसिद्धा पुराणेषु वेदेषु गीता ॥ २९ ॥
किमत्राऽस्ति चित्रं यदम्बा सुते स्वं मुदा पालयेत्पोषयेत्सम्यगेव ।
यतस्त्वं जनित्री सुराणां सहाया कुरुष्वैकचित्तेन कार्यं समग्रम् ॥ ३० ॥
न वा ते गुणानामियत्तां स्वरूपं वयं देवि जानीमहे विश्ववन्द्ये !।
कृपापात्रमित्येव मत्वा तथाऽस्मान्भयेभ्यः सदा पाहि पातुं समर्थे ! ॥ ३१ ॥
विना बाणपातैर्विना मुष्टिघातैर्विना शूलखड्गैर्विना शक्तिदण्डैः ।
रिपून्हन्तुमेवाऽसि शक्ता विनोदात्तथाऽपीह लोकोपकाराय लीला ॥ ३२ ॥
इदं शाश्वतञ्चैव जानन्ति मूढा न कार्यं विना कारणं सम्भवेद्धा ।
वयं तर्कयामोऽनुमानं प्रमाणं त्वमेवाऽसि कर्ताऽस्य विश्वस्य चेति ॥ ३३ ॥
अजः सृष्टिकर्ता मुकुन्दोऽविताऽयं हरो नाशकृद्वै पुराणे प्रसिद्धः ।
न किं त्वत्प्रसूतास्त्रयस्ते युगादौ त्वमेवाऽसि सर्वस्य तेनैव माता ॥ ३४ ॥
त्रिभिस्त्वं पुराऽऽराधिता देवि ! दत्ता त्वया शक्तिरूपा च तेभ्यः समग्रा ।
त्वया संयुतास्ते प्रकुर्वन्ति कामं जगत्पालनोत्पत्तिसंहारमेव ॥ ३५ ॥
ते किं न मन्दमतयो यतयो विमूढास्त्वां ये न विश्वजननीं समुपाश्रयन्ति ।
विद्याम्परां सकलकामफलप्रदां तां मुक्तिप्रदां विबुधवृन्दसुवन्दिताङ्घ्रिम् ॥

ये वैष्णवाः पाशुपताश्च सौरा दम्भास्त एव प्रतिभान्ति नूनम् ।
ध्यायन्ति न त्वां कमलां च लज्जां कान्तिं स्थितिं कीर्तिमथाऽपि पुष्टिम् ॥३७
हरिहरादिभिरप्यथ सेविता त्वमिह देववरैरसुरैस्तथा ।
भुवि भजन्ति न येऽल्पधियो नरा जननि ! ते विधिना खलवञ्चिताः ॥ ३८ ॥
जलधिजापदपङ्कजरञ्जनं जतुरसेन करोति हरिः स्वयम् ।
त्रिनयनोऽपि धराधरजाङ्घ्रिपङ्कजपरागनिषेवणतत्परः ॥ ३९ ॥
किमपरस्य नरस्य कथानकैस्तव पदाब्जयुगं न भजन्ति के ।
विगतरागगृहाश्च दयां क्षमां कृतधियो मुनयोऽपि भजन्ति ते ॥ ४० ॥
देवि त्वदङ्घ्रिभजने न जना रता ये संसारकूपपतिताः पतिताः किलाऽमी ।
ते कुष्ठगुल्मशिरआधियुता भवन्ति दारिद्र्यदैन्यसहिता रहिताः सुखौघैः ॥ ४१॥
ये काष्ठभारवहने यवसावहारे कार्ये भवन्ति निपुणा धनदारहीनाः ।
जानीमहेऽल्पमतिभिर्भवदङ्घ्रिसेवा पूर्वे भवे जननि ! नैव कृता कदापि ॥ ४२ ॥

व्यास उवाच

एवं स्तुता सुरैः सर्वैरम्बिका करुणान्विता । प्रादुर्बभूव तरसा रूपयौवनसंयुता ॥
दिव्याम्बरधरा देवी दिव्यभूषणभूषिता । दिव्यमाल्यसमायुक्ता दिव्यचन्दनचर्चिता
जगन्मोहनलावण्या सर्वलक्षणलक्षिता । अद्वितीयस्वरूपा सा देवानां दर्शनं गता ॥
जाह्नव्यां स्नातुकामा सा निर्गता गिरिगह्वरात् ।
दिव्यरूपधरादेवीविश्वमोहनमोहिनी ॥ ४६ ॥
देवान्स्तुतिपरानाह मेघगम्भीरया गिरा । प्रेमपूर्वं स्थितं कृत्वा कोकिलामञ्जुवादिनी

देव्युवाच

भो भोः सुरवराः ! काऽत्र भवद्भिः स्तूयते भृशम् ।
किमर्थं ब्रूत वः कार्यं चिन्ताविष्टाः कुतः पुनः ॥ ४८ ॥

व्यास उवाच

तच्छ्रुत्वा भाषितं तस्या मोहिता रूपसम्पदा । प्रेमपूर्वंहृदुत्साहास्तामूचुःसुरसत्तमाः

देवा ऊचुः

देवि ! स्तुमस्त्वां विश्वेशि ! प्रणताः स्म कृपार्णवे ! ।
पाहि नः सर्वदुःखेभ्यः संविग्नान्दैत्यतापितान् ॥ ५० ॥
पुरात्वया महादेवि ! निहत्यासुरकण्टकम् । महिषंनोवरोदत्तःस्मर्तव्याऽहंसदाऽऽपदि
स्मरणाद्दैत्यजांपीडांनाशयिष्याम्यसंशयम् ।
ते त्वं संस्मृता देवि ! नूनमस्माभिरित्यपि ॥५२ ॥
अद्य शुम्भनिशुम्भौ द्वावसुरौ घोरदर्शनौ । उत्पन्नौ विघ्नकर्तारावहन्यौपुरुषैः किल
रक्तबीजश्च बलवांश्चण्डमुण्डौ तथाऽसुरौ । एतेऽन्येश्च देवानांहृतंराज्यं महाबलैः ॥
गतिरन्यानचाऽस्माकंत्वमेवाऽसि महाबले । कुरु कार्यं सुरगणानांदुःखितानांसुमध्यमे
देवास्त्वदंघ्रिभजने निरताः सदैव ते दानवैरतिबलैर्विपदं सुनीताः ।
तान्देवि! दुःखरहितान्कुरु भक्तियुक्तान्मातस्त्वमेव शरणं भव दुःखितानाम् ॥
सकलभुवनरक्षा देवि! कार्या त्वयाऽद्य
स्वकृतमिति विदित्वा विश्वमेतद्युगादौ ।
जननि ! जगति पीडां दानवा दर्पयुक्ताः
स्वबलमदसमेतास्ते प्रकुर्वन्ति मातः !॥ ५७ ॥
इति श्रीदेवीभागवतेमहापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यांसंहितायांपञ्चमस्कन्धे
देवकृतादेव्याराधनावर्णनंनामद्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

त्रयोविंशोऽध्यायः

देवीचरित्रेपार्वत्याःकौशिक्याविर्भावस्तत्रपार्वत्याकृष्णवर्णग्रहणेनकालिकेति सञ्ज्ञा-मधुरंगायन्त्याश्चण्डमुण्डद्वारादेव्यादर्शनंतत्सर्वंशुम्भनिशुम्भ-दूतद्वारातत्पुरस्ताद्वर्णनम्

व्यास उवाच

एवं स्तुता तदा देवी दैवतैः शत्रुतापितैः । स्वशरीरात्परं रूपं प्रादुर्भूतं चकार ह ॥

पार्वत्यास्तु शरीराद्वै निःसृता चाऽम्बिका यदा ।
कौशिकीति समस्तेषु ततो लोकेषु पठ्यते ॥ २ ॥
निःसृतायां तु तस्यां सा पार्वती तनुव्यत्ययात् ।
कृष्णरूपाऽथ सञ्जाता कालिका सा प्रकीर्तिता ॥ ३ ॥

मषीवर्णा महाघोरा दैत्यानां भयवर्धिनी । कालरात्रीति सा प्रोक्ता सर्वकामफलप्रदा
अम्बिकायाः परं रूपं विरराज मनोहरम् । सर्वभूषणसंयुक्तं लावण्यगुणसंयुतम् ॥
ततोऽम्बिका तदादेवानित्युवाच ह सस्मिता । तिष्ठन्तुनिर्भयायूयंहरिष्यामिरिपूनिह
कार्यं वः सर्वथा कार्यंविहरिष्याम्यहंरणे । निशुम्भादीन्वधिष्यामियुष्माकंसुखहेतवे
इत्युक्त्वा सा तदादेवीसिंहारूढा मदोत्कटा । कालिकापार्श्वतःकृत्वाजगामनगरेरिपोः
सागत्वोपवने तस्थावम्बिका कालिकान्विता । जगावथ कलंतत्रजगन्मोहनमोहनम्
श्रुत्वा तन्मधुरं गानं मोहमीयुः खगा मृगाः । मुदञ्च परमाम्प्रापुरमरा गगने स्थिताः
तस्मिन्नवसरे तत्र दानवौ शुम्भसेवकौ । चण्डमुण्डाभिधौघोरौ रममाणौयदृच्छया

आगतौ ददृशाते तु तां तदा दिव्यरूपिणीम् ।
अम्बिकां गानसंयुक्तां कालिकां पुरतःस्थिताम् ॥ १२ ॥
दृष्ट्वा तां दिव्यरूपाञ्च दानवौ विस्मयान्वितौ ।
जग्मतुस्तरसा पार्श्वं शुम्भस्य नृपसत्तम ॥ १३ ॥

तौ गत्वा तौ समासीनं दैत्यानामधिपं गृहे । ऊचतुर्मधुरांवाणींप्रणम्यशिरसानृपम्
राजन्हिमालयात्कामं कामिनीकाममोहिनी । सम्प्राप्तासिंहमारूढा सर्वलक्षणसंयुता
नेदृशी देवलोकेऽस्ति न गन्धर्वपुरेतथा । न दृष्टा न श्रुता काऽपिपृथिव्यांप्रमदोत्तमा
गानञ्च तादृशं राजन्करोति जनरञ्जनम् । मृगास्तिष्ठन्ति तत्पार्श्वेमधुरस्वरमोहिताः
ज्ञायतां कस्यपुत्रीयंकिमर्थमिहचागता । गृह्यतां राजशार्दूलतवयोग्याऽस्ति कामिनी

ज्ञात्वाऽऽनय गृहे भार्यां कुरु कल्याणलोचनाम् ।
निश्चितं नास्ति संसारे नारी त्वेवम्विधा किल ॥ १६ ॥

देवानां सर्वरत्नानि गृहीतानि त्वया नृप । कस्मान्नेमां वरारोहां प्रगृह्णासि नृपोत्तम
इन्द्रस्यैरावतःश्रीमान्पारिजाततरुस्तथा । गृहीतोऽश्वः सप्तमुखस्त्वयानृपबलात्किल
विमानंवैधर्मन्दिव्यंमरालध्वजसंयुतम् । त्वयाऽऽत्तं रत्नभूतं तद्बलेन नृपत्वाद्भुतम्
कुबेरस्य निधिः पद्मस्त्वया राजन्समाहृतः । छत्रं जलपतेःशुभ्रं गृहीतं तत्त्वयाबलात्
पाशश्चापिनिशुम्भेन भ्रात्रातवनृपोत्तम । गृहीतोऽस्ति हठात्कामं वरुणस्यार्जितस्यच
अम्लानपङ्कजां तुभ्यं मालां जलनिधिर्ददौ । भयात्तवमहाराज रत्नानि विविधानिच
मृत्योःशक्तिर्यमस्यापिदण्डःपरमदारुणः । त्वयाजितवाहृतेः कामं ।किमन्यद्वर्ण्यतेनृप
कामधेनुर्गृहीताऽद्य वर्तते सागरोद्भवा । मेनकाद्यावशे राजंस्तव तिष्ठन्ति चाप्सराः
एवंसर्वाणिरत्नानि त्वयाऽऽत्तानिबलादपि । कस्त्वां न गृह्यते कान्तारत्नमेषा वराङ्गना
सर्वाणि ते गृहस्थानि रत्नानि विशदान्यथ । अनया सम्भविष्यन्ति रत्नभूतानिभूपते
त्रिषु लोकेषु दैत्येन्द्र नेदृशी वर्तते प्रिया । तस्मात्तामानयाशुत्वं कुरुभार्यांमनोहराम्

व्यास उवाच

इति श्रुत्वा तयोर्वाक्यं मधुरं मधुराक्षरम् । प्रसन्नवदनः प्राह सुग्रीवं सन्निधौस्थितम्
गच्छ सुग्रीव दूत! त्वंकुरु कार्यंविचक्षण । वक्तव्यञ्च तथातत्रयथाऽभ्येतिकृशोदरी
उपायौ द्वौ प्रयोक्तव्यौकान्तासुसुविचक्षणैः । सामदाने इतिप्राहुःशृङ्गाररसकोविदाः
भेदे प्रयुज्यमानेऽपि रसाभासस्तु जायते । निग्रहे रसभङ्गःस्यात्तस्मात्तौदूषितौबुधैः
सामदानमुखैर्वाक्यैःश्लक्ष्णैर्नर्मयुतैस्तथा । कानयाति वशे दूत कामिनीकामपीडिता

व्यास उवाच

सुग्रीवस्तु वचः श्रुत्वाशुम्भोक्तंसुप्रियस्पटु । जगामतरसातत्रयत्राऽऽस्तेजगदम्बिका
सोऽपश्यत्सुमुखीं कान्तां सिंहस्योपरि संस्थिताम् ।
प्रणम्य मधुरं वाक्यमुवाच जगदम्बिकाम् ॥ ३७ ॥

दूत उवाच

वरोरु त्रिदशारातिः शुम्भःसर्वाङ्ग सुन्दरः । त्रैलोक्याधिपतिःशूरःसर्वजिद्राजतेनृपः
तेनाऽहं प्रेषितः कामं त्वत्सकाशं महात्मना । त्वद्रूपश्रवणासक्तचित्तेनाऽतिविदूयता
वचनन्तस्य तन्वङ्गि शृणु प्रेमपुरःसरम् । प्रणिपत्य यथा प्राह दैत्यानामधिपस्त्वयि
देवा मया जिताः सर्वे त्रैलोक्याधिपतिस्त्वहम् ।
यज्ञभागानहं कान्ते ! गृह्णामीह स्थितः सदा ॥ ४१ ॥
हृतसारा कृता नूनं द्यौर्मया रत्नवर्जिता । यानिरत्नानि देवानां तानिचाऽऽहृतवानहम्
भोक्ताऽहं सर्वरत्नानांत्रिषुलोकेषुभामिनि !। वशानुगाः सुराः सर्वेममदैत्याश्चमानवाः
त्वद्गुणैः कर्णमागत्य प्रविश्य हृदयान्तरम् ।
त्वदधीनः कृतः कामं किङ्करोऽस्मि करोमि किम् ॥ ४४ ॥
त्वमाज्ञापय रम्भोरु तत्करोमि वशानुगः । दासोऽहंतव चार्वङ्गि रक्ष मांकामबाणतः
भज मां त्वं मरालाक्षि ! तवाधीनं स्मराकुलम् ।
त्रैलोक्यस्वामिनी भूत्वा भुङ्क्ष्व भोगाननुत्तमान् ॥ ४६ ॥
तव चाज्ञाकरः कान्ते भवामि मरणावधि । अवध्योऽस्मि वरारोहे सदेवासुरमानुषैः
सदा सौभाग्यसंयुक्ता भविष्यसिवरानने । यत्र ते रमते चित्तं तत्र क्रीडस्व सुन्दरि
इति तस्य वचश्चित्ते विमृश्य मदमन्थरे । वक्तव्यं यद्भवेत्प्रेम्णा तद्ब्रूहि मधुरम्वचः
शुम्भाय चञ्चलापाङ्गि ! तद्ब्रवीम्यहमाशुवै ।

व्यास उवाच

तद्दूतवचनं श्रुत्वा स्मितं कृत्वा सुपेशलम् ॥ ५० ॥
तं प्राह मधुराम्वाचं देवी देवार्थसाधिका ।

श्रीदेव्युवाच

जानाम्यहं निशुम्भञ्च शुम्भञ्चाऽतिबलं नृपम् ॥ ५१ ॥

जेतारं सर्वदेवानां हन्तारञ्चैव विद्विषाम् । राशिं सर्वगुणानाञ्च भोक्तारंसर्वसम्पदाम्
दातारञ्चाऽतिशूरञ्च सुन्दरं मन्मथाकृतिम् । द्वात्रिंशल्लक्षणैर्युक्तमवध्यं सुरमानुषैः
ज्ञात्वासमागताऽस्म्यत्र द्रष्टुकामामहासुरम् । रत्नंकनकमायातिस्वशोभाधिक्यवृद्धये
तत्राऽहंस्वपतिं द्रष्टुं दूरादेवाऽऽगताऽस्मिवै । दृष्टा मयासुराःसर्वेमानवाभुविमानदाः
गन्धर्वा राक्षसाश्चान्ये ये चाऽतिप्रियदर्शनाः । सर्वेशुम्भभयाद्भीता वेपमानाविचेतसः
श्रुत्वाशुम्भगुणानत्रप्राप्ताऽस्म्यद्यदिदृक्षया । गच्छ दूत महाभाग ब्रूहि शुम्भंमहाबलम्
निर्जने श्लक्ष्णयावाचावचनं वचनान्मम । त्वांज्ञात्वाबलिनांश्रेष्ठंसुन्दराणाञ्चसुन्दरम्
दातारं गुणिनं शूरं सर्वविद्याविशारदम् । जेतारं सर्वदेवानां दक्षं चोग्रं कुलोत्तरम्
भोक्तारंसर्वरत्नानांस्वाधीनंस्वबलोन्नतम् । पतिकामाऽस्म्यहंमत्यंतवयोग्यानराधिप
स्वेच्छया नगरे तेऽत्र समायातामहामते । ममान्तिकारणं किंचाद्रवाहेराक्षसोत्तम!

बालभावाद्व्रतं किञ्चित्कृतं राजन्मया पुरा ।

क्रीडन्त्या च वयस्याभिः सहैकान्ते यदृच्छया ॥ ६२ ॥

स्वदेहबलदर्पेण सखीनां पुरतो रहः । मत्समानबलः शूरो रणे मां जेष्यति स्फुटम्
तं वरिष्याम्यहंकामंज्ञात्वातस्यबलाबलम् । जहसुर्वचनंश्रुत्वासख्योविस्मितमानसाः
किमेतया कृतं क्रूरं व्रतमद्भुतमाशु वै । तस्मात्त्वमपि राजेन्द्र ज्ञात्वामे हीदृशं बलम्

जित्वा मां समरेणाऽत्र (स्वबलेनाऽत्र) विवाहं कुरु सुन्दर ! ॥ ६६ ॥

इति श्रीदेवीभागवतेमहापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यांसंहितायांपञ्चमस्कन्धे
देव्यासुग्रीवदूतायस्वव्रतकथनंनाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

चतुर्विंशोऽध्यायः

देवीपार्श्वेगमनायशुम्भनिशुम्भयोर्मिथोमन्त्रद्वारादूतप्रेषणम्

व्यास उवाच

देव्यास्तद्वचनं श्रुत्वा स दूतः प्राह विस्मितः ।

किं ब्रूते रुचिरापाङ्गि ! स्त्रीस्वभावाद्धि साहसात् ॥ १ ॥

इन्द्राद्यानिर्जिता येन देवादैत्यास्तथाऽपरे । तं कथं समरेदेविजेतुमिच्छसिभामिनि!
त्रैलोक्येतादृशोनास्तियःशुम्भंसमरेजयेत् । कात्वंकमलपत्राक्षितस्याग्रेयुधिसाम्प्रतम्
अविचार्यनवक्तव्यं वचनं क्वापिसुन्दरि । बलं स्वपरयोर्ज्ञात्वा वक्तव्य समयोचितम्
त्रैलोक्याधिपतिःशुम्भस्तवरूपेणमोहितः । त्वाञ्चप्रार्थयतेराजा कुरुतस्येप्सितम्प्रिये
त्यक्त्वामूर्खस्वभावंत्वंसम्मान्यवचनंमम । भज शुम्भं निशुम्भं वा हितमेतद्ब्रवीमिते
शृङ्गार· सर्वथा सर्वैः प्राणिभि· परया मुदा । सेवनीयो बुद्धिमद्भिर्नवानामुत्तमो यतः

नागमिष्यसि चेद्बाले ! सङ्क्रुद्धःपृथिवीपतिः ।

अन्यानाज्ञाकरान्प्रेष्य बलान्नेष्यति साम्प्रतम् ॥ ८ ॥

केशेष्वाकृष्यतेनून दानवाबलदर्पिताः । त्वां नयिष्यन्ति वामोरु! तरसाशुम्भसन्निधौ
स्वलज्जारक्षतन्वङ्गिसाहसंसर्वथा त्यज । मानिनागच्छतत्पार्श्वेमानपात्र यतोऽसिवै
क्व युद्धं निशितैर्बाणैः क्व सुखं रतिसङ्गजम् । सारासारं परिच्छिद्य कुरुमेवचनं पटु

भज शुम्भं निशुम्भं वा लब्धाऽसि परमं शुभम् ।

देव्युवाच

सत्यं दूत ! महाभाग ! प्रवक्तुं निपुणो ह्यसि ॥ १२ ॥

निशुम्भशुम्भौजानामिबलवन्तावितिध्रुवम् । प्रतिज्ञामेकृताबाल्यादन्यथासाकथंभवेत्
तस्माद्ब्रूहिनिशुम्भञ्चशुम्भंवाबलवत्तरम् । विनायुद्धंनमेभर्ताभविताकोऽपिसौष्ठवात
जित्वामातरसाकामंकरंगृह्णातुसाम्प्रतम् । युद्धेच्छयासमायाता विद्धिमामबला नृप

युद्धं देहि समर्थोऽसि वीरधर्मं समाचर । बिभेषि मम शूलाच्चेत्पातालं गच्छमाचिरम्
त्रिदिवञ्च धरां त्यक्त्वा जीवितेच्छा यदस्ति ते ।
इति दूत वदाऽऽशु त्वं गत्वा स्वपतिमादरात् ॥ १७ ॥
स विचार्य यथायुक्तं करिष्यति महाबलः । संसारे दूतधर्मोऽयं यत्सत्यभाषणङ्किल
शत्रौ पत्यौ च धर्मज्ञ ! तथा त्वं कुरु मा चिरम् ।

व्यास उवाच

अथ तद्वचनं श्रुत्वा नीतिमद्बलसंयुतम् ॥ १९ ॥
हेतुयुक्तं प्रगल्भञ्च विस्मितः प्रययौ तदा । गत्वा दैत्यपतिं दूतो विचार्य च पुनःपुनः
प्रणम्य पादयोः प्रह्वः प्रत्युवाच नृपं च तम् । राजनीतिकरं वाक्यं मृदुपूर्वप्रियम्वचः

दूत उवाच

सत्यं प्रियञ्च वक्तव्यं तेन चिन्तापरोह्यहम् । सत्यं प्रियञ्च राजेन्द्र वचनं दुर्लभङ्किल
अप्रियं वदता कामं राजा कुप्यति सर्वथा ।
साक्षात्कुतः समायाता कस्यवा किम्बलाऽबला ॥ २३ ॥
नज्ञानगोचरं किञ्चित्किन्न ीमिविचेष्टितम् । युद्धकामा समयाद्धृष्टागर्विता कटुभाषिणी
तयायत्कथितंसम्यक्तच्छृणुष्व महामते । मया बाल्यात्प्रतिज्ञेयं कृतापूर्वं विनोदतः
सखीनां पुरतः कामं विवाहम्प्रति सर्वथा । यो मां युद्धे जयेदद्धा दर्पञ्चाविधुनोतिवै
तम्वरिष्याम्यहं कामं पतिं समबलंकिल । न मे प्रतिज्ञामिथ्या स्या कर्तव्यानृपसत्तम
तस्माद्युद्ध्यस्व धर्मज्ञ ! जित्वा मां स्ववशं कुरु ।
तयैति व्याहृतं वाक्यं श्रुत्वाऽहं समुपागतः ॥ २८ ॥
यथेच्छसि महाराजतथाकुरुतवप्रियम् । सा युद्धार्थं कृतमतिः सायुधा सिंहगामिनी
निश्चला वर्तते भूप ! तद्योग्यं तद्विधीयताम् ।

व्यास उवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तस्य सुग्रीवस्य नराधिपः ॥ ३० ॥
पप्रच्छ भ्रातरं शूरं समीपस्थं महाबलम् ।

शुम्भ उवाच

भ्रातः ! किमत्र कर्तव्यं ब्रूहि सत्यं महामते ! ॥ ३१ ॥

नार्येका योद्धुकामाऽस्ति समाह्वयति साम्प्रतम् ।

अहं गच्छामि संग्रामे त्वं वा गच्छ बलान्वितः ॥ ३२ ॥

यद्रोचते निशुम्भाऽद्य तत्कर्तव्यं मया किल ।

निशुम्भ उवाच

न मया न त्वया वीर गन्तव्यं रणमूर्धनि ॥ ३३ ॥

प्रेषयस्वमहाराज त्वरितं धूम्रलोचनम् । स गत्वातांरणेजित्वा गृहीत्वाचारुलोचनाम्

आगमिष्यति शुम्भाय विवाहः सन्विधीयताम् ।

व्यास उवाच

तन्निशम्य वचस्तस्य शुम्भो भ्रातुः कनीयसः ॥ ३५ ॥

कोपात्सम्प्रेषयामास पार्श्वस्थं धूम्रलोचनम् ।

शुम्भ उवाच

धूम्रलोचन ! गच्छाऽऽशु सैन्येन महताऽऽवृतः ॥ ३६ ॥

गृहीत्वाऽऽनयता मुग्धां स्ववीर्यमदमोहिताम् ।

देवो वा दानवो वाऽपि मनुष्यो वा महाबलः ॥ ३७ ॥

तत्पार्ष्णिग्राहतांप्राप्तोहन्तव्यस्तरसात्वया । तत्पार्श्ववर्तिनींकालींहत्वा संगृह्यतांपुनः

शीघ्रमत्रसमागच्छकृत्वाकार्यमनुत्तमम् । रक्षणीयात्वयासाध्वीमुञ्चन्तीमृदु मार्गणान्

यत्नेन महतावीर मृदुदेहा कृशोदरी । तत्सहायाश्च हन्तव्या ये रणे शस्त्रपाणयः ॥

सर्वथा सा न हन्तव्या रक्षणीया प्रयत्नतः ।

व्यास उवाच

इत्यादिष्टस्तदा राज्ञा तरसा धूम्रलोचनः ॥ ४१ ॥

प्रणम्य शुम्भं सैन्येन वृतःशीघ्रंययौरणे । असाधूनां सहस्राणां षष्ट्यातैर्वृतस्तथा

स ददर्श ततो देवीं रम्योपवनसंस्थिताम् । दृष्ट्वा तां मृगशावाक्षीं विनयेन समन्वितः

उवाचवचनंश्लक्ष्णं हेतुमद्रसभूषितम् । शृणु देवि! महाभागे शुम्भस्त्वद्विरहाऽऽतुरः
दूतं प्रेषितवान्पार्श्वेतव नीतिविशारदः । रसभङ्गभयोद्विग्नः सामपूर्वं त्वयि स्वयम्
तेनागत्य वचः प्रोक्तंविपरीतम्वरानने । वचसा तेन मे भर्ता चिन्ताऽऽविष्टमना नृपः
बभूव रसमार्गज्ञे शुम्भः कामविमोहितः । दूतेन तेन न ज्ञातं हेतुमर्भम्वचस्तव ॥४७॥
यो मां जयति संग्रामेयदुक्तंकठिनम्वचः । न ज्ञातस्तेनसंग्रामो द्विविधः खलुमानिनि
रतिजोऽथोत्साहजश्चपात्रभेदेविवक्षितः । र्गतजस्त्वयिवामोरुशत्रोरुत्साहजः स्मृतः
सुखदःप्रथमः कान्ते दुःखदश्चारिजःस्मृतः । जानाम्यहम्वरारोहे भवत्या मानसङ्कुल
रतिसंग्रामसम्भावस्ते हृदये परिवर्तते । इति तज्ज्ञं विदित्वा मा त्वत्सकाशं नराधिपः
प्रेषयामास शुम्भोऽद्य बलेन महताऽऽवृतम् । चतुराऽसि महाभागे शृणु मेवचनं मृदु
भज शुम्भं त्रिलोकेशं देवदर्पनिबर्हणम् । पट्टराज्ञीप्रिया भूत्वाभुङ्क्ष्व भोगाननुत्तमान्

जेष्यति त्वा महाबाहुः शुम्भः कामबलार्थवित् ।
विचित्रान्कुरु हावांस्त्वं सोऽपि भावान्करिष्यति ॥ ५४ ॥

भविष्यति कालिकेयं तत्र वै नर्मसाक्षिणी । एवं सङ्गरयोगेन पतिस्ते परमार्थवित्

जित्वा त्वा सुखशय्याया परिश्रान्ता करिष्यति ।
रक्तदेहा नखाघातैर्दन्तैश्च खण्डिताधराम् ॥ ५६ ॥

स्वेदक्लिन्नांश्रमग्रस्त्वास्त्वाश्वास्यतिभूपतिः । भवितासानसंग्रामोरतिसंग्रामजस्तव
दर्शनाद्वशगवाऽऽस्ते शुम्भः सर्वात्मना प्रिये । वचनं कुरु मेपथ्यंहितकृच्चाऽपिपेशलम्
भजशुम्भंगणाध्यक्षं माननीयाऽसिमानिनी । मन्दभाग्याश्च ते नूनं शस्त्रयुद्धप्रियाश्चये
नतदर्हाऽसि कान्ते त्वं सदा सुरतवल्लभे । अशोकं कुरु राजानम्पादाघातविकासितम्

बकुलं सीधुसेकेन तथा कुरबकं कुरु ॥ ६१ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे अष्टादशसाहस्र्या संहितायां पञ्चमस्कन्धे
देवीमाहात्म्ये देवीपार्श्वधूम्रलोचनदूतप्रेषणंनामचतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

पञ्चविंशोऽध्यायः

देव्यायुद्धार्थंचण्डमुण्डदैत्यप्रेषणम्

व्यास उवाच

इत्युक्त्वाविररामाऽसौवचनं धूम्रलोचनः । प्रत्युवाचतदाकाली प्रहस्य ललितम्वचः
विदूषकोऽसि जाल्म! त्वं शल्भ इव भाषसे । वृथा मनोरथांश्चित्तेकरोषिमधुरं वदन्
बलवान्बलसंयुक्तः प्रेषितोऽसि दुरात्मना । कुरु युद्धं वृथा वादं मुञ्च मूढमतेऽधुना

हत्वा शुम्भं निशुम्भं च त्वदन्यान्वा बलाधिकान् ।
देवीक्रुद्धा शराऽऽघातैर्व्रजिष्यति निजालयम् ॥ ४ ॥

काऽसौमन्दमतिःशुम्भःक्वाविश्वविमोहिनी । अयुक्तःखलुसंसारेविवाहविधिरेतयोः
सिंही किन्वतिकामार्तांजम्बुकंकुरुतेपतिम । करिणीगर्दभम्वाऽपिगवयंसुरभिःकिमु
गच्छ शुम्भं निशुम्भञ्च वद सत्यं वचोमम । कुरु युद्धं न चेद्याहि पातालंतरसाऽधुना

व्यास उवाच

कालिकाया वचः श्रुत्वा स दैत्योधूम्रलोचनः । तामुवाचमहाभागाक्रोधसंरक्तलोचनः
दुर्दर्शत्वा निहन्याजौ सिंहंच मदगर्वितम । गृहीत्वैनां गमिष्यामिराजानंप्रत्यहंकिल
रसभङ्गभयात्कालिबिभेमित्विहसाम्प्रतम् । नो चेत्त्वांनिशितैर्बाणैर्हन्म्यद्यकलहप्रिये

कालिकोवाच

किं विकत्थसि मन्दात्मन्नाऽयं धर्मो धनुष्मताम् ।
स्वशक्त्या मुञ्च विशिखान्गन्ताऽसि यमसंसदि ॥ ११ ॥

व्यास उवाच

तच्छ्रुत्वावचनं दैत्यःसंगृह्यकार्मुकं दृढम् । कालिकातांशरासारैर्ववर्षाऽतिशिलाशितैः
देवास्तु प्रेक्षकास्तत्र विमानवरसंस्थिताः । तास्तुवन्तोजयेत्यूचुर्देवी शक्रपुरोगमाः
तयोः परस्परं युद्धं प्रवृत्तञ्चाऽतिदारुणम् । बाणखड्गगदाशक्तिमुसलादिभिरुत्कटम्

कालिकाबाणपातैस्तु हत्वा पूर्वं खरानथ । बभञ्ज तद्रथं व्यूढं जहास च मुहुर्मुहुः ॥
स चाऽन्यं रथमारूढः कोपेन प्रज्वलन्निव । बाणवृष्टिं चकारोग्रां कालिकोपरि भारत

साऽपि चिच्छेद तरसा तस्य बाणानसङ्गतान् ।
मुमोचाऽन्यानुग्रवेगान्दानवोपरि कालिका ॥ १७ ॥

तैर्बाणैर्निहतास्तस्य पार्ष्णिग्राहाः सहस्रशः । बभञ्ज च रथम्वेगात्सूतंहत्वा खरानपि
चिच्छेद तद्धनुःसद्योबाणैरुरगसन्निभैः । मुदं चक्रे सुराणां सा शङ्खनादन्तथाऽकरोत्
विरथं परिघं गृह्य सर्वलोकमयं दृढम् । आजगाम रथोपस्थं कुपितो धूम्रलोचनः ॥
वाचानिर्भर्त्सयन्कालींकरालःकालसन्निभः । अद्य त्वांहनिष्यामि कुरूपेपिङ्गलोचने

इत्युक्त्वा सहसाऽऽगत्य परिघं क्षिपते यदा ।
हुङ्कारेणैव तं भस्म चकार तरसाऽम्बिका ॥ २२ ॥

दृष्ट्वा भस्मीकृतंदैत्यं सैनिकाभयविह्वलाः । चक्रुः पलायनं सद्यो हा तातेत्यब्रुवन्पथि
देवास्तन्निहतं दृष्ट्वा दानवं धूम्रलोचनम् । मुमुचुः पुष्पवृष्टिं ते मुदिता गगने स्थिताः
रणभूमिस्तदा राजन्दारुणा समपद्यत । निहतैर्दानवैरश्वैः खरैश्च वारणैस्तथा ॥
गृध्राः काका वटाःश्येनावरफाजम्बुकास्तथा । ननृतुश्चुक्रुशुः प्रेतान्पतितान्रणभूमिषु
अम्बिकातद्रणस्थानं त्यक्त्वाक्रूरंस्थलान्तरे । गत्वा चकार चाप्युग्रंशङ्खनादम्भयप्रदम्
तंश्रुत्वादरशब्दन्तुशुम्भसद्मनिसंस्थितः । दृष्ट्वाऽथदानवान्भग्नानागतान्रुधिरोक्षितान्
छिन्नपादकराक्षांश्च मञ्चकारोपितानपि । भग्नपृष्ठकटिग्रीवान्क्रन्दमानाननेकशः ॥२६॥

वीक्ष्य शुम्भो निशुम्भश्च क्व गतो धूम्रलोचनः ।
कथम्भग्नाः समायाता नाऽऽनीता किं वरानना ॥ ३० ॥

सैन्यं कुत्र गतं मन्दाःकथयन्तुयथोचितम् । कस्यायं शङ्खनादोऽद्य भूयते भयवर्धनः

गणा ऊचुः

बलञ्च पातितं सर्वं निहतो धूम्रलोचनः । कृतं कालिकया कर्म रणभूमावमानुषम् ॥
शङ्खनादोऽम्बिकायास्तुगगनं व्याप्य राजते । हर्षदः सुरसङ्घानां दानवानाञ्चशोककृत्
यदा निपातिताः सर्वे तेन केसरिणाविभो !। रथा भग्ना हयाश्चैवबाणपातैर्विनाशिताः

गगनस्थाः सुराश्चक्रुः पुष्पवृष्टिंमुदाऽन्विताः । दृष्ट्वा भग्नम्बलंसर्वम्पातितं धूम्रलोचनम्
निश्चयस्तु कृतोऽस्माभिर्जयोनैवभवेदिति । विचारंकुरुराजेन्द्रमन्त्रिभिर्मन्त्रवित्तमैः
चिन्मयोऽयं महाराज यदेका जगदम्बिका । भवद्भिः सहयुद्धायसंस्थितासैन्यवर्जिता
निर्भयंकाकिनी बाला सिंहारूढामदोत्कटा । चित्रमेतन्महाराज! भाग्यतेऽद्भुतमञ्जसा
मन्विधवां विग्रहोवाऽद्य स्थानंनिर्याणमेवच । मन्त्रयित्वा महाराज कुरुकार्यंयथारुचि

तत्सन्निधौ बलं नाऽस्ति तथाऽपि शत्रुतापन !।
पार्ष्णिग्राहाः सुराः सर्वे भविष्यन्ति किलाऽऽपदि ॥ ४० ॥

समये तत्समीपस्थौ धातौ च हरिशङ्करौ । लोकपालाः समीपेऽद्यवर्तन्तेगगनेस्थिताः
रक्षोगणाश्च गन्धर्वाः किन्नरामानुषास्तथा । तत्सहायाश्च मन्तव्याः समये सुरतापन

अस्माकम्मतिमानेन ज्ञायते सर्वथेदृशम् ।
अम्बिकायाः महायाऽऽशात्तत्कार्याशा न काचन ॥ ४२ ॥

एकानाशयितुं शक्ता जगत्सर्वञ्चराचरम् । का कथा दानवानान्तु सर्वेषामितिनिश्चयः
इति ज्ञात्वा महाभागयथारुचितथा कुरु । हितं सत्यंमितंवाक्यं वक्तव्यमनुयायिभि

व्यास उवाच

तच्छ्रुत्वा वचनन्तेषां शुम्भःपरबलार्दनः । कनीयांसं समानीय पप्रच्छ रहसिस्थितः
भ्रातःकालिकयाऽद्यैव निहतो धूम्रलोचनः । बलञ्चशातितं सर्वंगणाभग्नाःसमागताः
अम्बिका शङ्खनादम्वै करोति मदगर्विता । ज्ञानिनाञ्चैव दुर्ज्ञेया गतिःकालस्यसर्वथा
तृणं वज्रायते नूनं वज्रञ्चैव तृणायते । बलवान्बलहीनः स्याद्दैवस्य गतिरीदृशी ॥
पृच्छामित्वांमहाभागकिंकर्तव्यामतःपरम् । अभोग्याचाम्बिकानूनंकारणादत्रचागता
युक्तम्पलायनम्वीर युद्धं वा वद सत्वरम् । लघुर्ज्येष्ठं विजानामि त्वामहंकार्यसङ्कटे

निशुम्भ उवाच

न वा पलायनं युक्तं न दुर्गग्रहणन्तथा । युद्धमेव परं श्रेयः सर्वथैवानयाऽनघ !॥५४॥
ससैन्योऽहंगमिष्यामिरणेतुप्रवराश्रितः । हत्वा तामागमिष्यामितरसात्वबलामिमाम
अथवा बलवद्दैवादन्यथा चेद्भविष्यति । मृते मयि त्वयाकार्यं विमृश्यच पुनः पुनः

इति तस्य वचः श्रुत्वा शुम्भः प्रोवाच चाऽनुजम् ।
तिष्ठ त्वं चण्डमुण्डौ द्वौ गच्छतां बलसंयुतौ ॥ ५५ ॥

शशकग्रहणायाऽत्र नयुक्तं गजमोचनम् । चण्डमुण्डौ महावीरौ ताां हन्तुं सर्वथा क्षमौ
इत्युक्त्वा भ्रातरं शुम्भं सम्भाष्यत्र महाबली । उवाच वचनं राजा चण्डमुण्डौ पुरः स्थितौ
गच्छतं चण्डमुण्डौ द्वौ स्वसैन्यपरिवारितौ । हन्तुं तामबलां शीघ्रं निर्लज्जां मदगर्विताम्
गृहीत्वाऽथ निहत्याऽऽजौ कालिकां पिङ्गलोचनाम् ।
आगम्यतां महाभागौ कृत्वा कार्यं महत्तरम् ॥ ५९ ॥
सा नाऽऽयाति गृहीताऽपि गर्विता चाम्बिका यदि ।
तदा बाणैर्महातीक्ष्णैर्हन्तव्याऽऽहवमण्डिता ॥ ६० ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे अष्टादशसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे
देव्यासह युद्धाय चण्डमुण्डप्रेषणं नाम पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

षड्विंशोऽध्यायः

चण्डमुण्डनिपातनवर्णनं देव्याश्चण्डिकेतिवर्णनम्

व्यास उवाच

इत्याज्ञप्तौ तदा वीरौ चण्डमुण्डौ महाबलौ । जग्मतुस्त्वरसा ऽऽजौ सैन्येन महताऽन्वितौ
दृष्ट्वा तत्र स्थितां देवीं देवानां हितकारिणीम् । ऊचतुस्तौ महावीर्यौ तदा सामान्वितं वचः
बाले त्वं किं न जानासि शुम्भं सुरबलार्दनम् । निशुम्भश्च महावीर्यं तुराषाड्विजयोद्धतम्
त्वमेकासि वरारोहे! कालिकासिहसंयुता । जेतुमिच्छसि दुर्बुद्धे शुम्भं सर्वबलान्वितम्
मतिदः कोऽपि ते नास्ति नारी वाऽपि नरोऽपि वा ।
देवास्त्वां प्रेरयन्त्येव विनाशाय तवैव ते ॥ ५ ॥

विमृश्य कुरु तन्वङ्गि ! कार्यं स्वपरयोर्बलम् । अष्टादशभुजत्वात्त्वं गर्वञ्च कुरुषे मृषा

किंभुजैर्बहुभिर्व्यर्थैरायुधैः किं श्रमप्रदैः । शुम्भस्याऽग्रे सुराणाम्वै जेतुःसमरशालिनः
ऐरावतकरच्छेत्तुर्दन्तिदारणकारिणः । जयिनः सुरसङ्घानां कार्यं कुरु मनोगतम् ॥
वृथा गर्वायसे कान्ते! कुरुमेवचनम्प्रियम । हितन्तवविशालाक्षि सुखदं दुःखनाशनम्
दुःखदानिचकार्याणित्याज्यानिदूरतोबुधैः । सुखदानिचसेव्यानि शास्त्रतत्त्वविशारदैः
चतुराऽस्मि पिकालापे पश्य शुम्भबलं महत् । प्रत्यक्षं सुरसङ्घानां मर्दनेन महोदयम्
प्रत्यक्षञ्चपरित्यज्य वृथैवानुमितिः किल । सन्देहसहिते कार्ये नविपश्चित्प्रवर्त्तते ॥
शत्रुः सुराणाम्परमः शुम्भः समरदुर्जयः । तस्मात्त्वां प्रेरयन्त्यत्र देवा दैत्येशपीडिताः
तस्मात्तद्वचनैः स्निग्धैर्वञ्चिताऽसि शुचिस्मिते !।
दुःखाय तव देवाना :शिक्षा स्वार्थस्य साधिका ॥ १४ ॥
कार्यमित्रं परिक्षिप्य धर्ममित्रं समाश्रयेत । देवाःस्वार्थपराः कामंत्वामहंसत्यमब्रुवम्
भज शुम्भं सुरेशानं जेतारम्भुवनेश्वरम् । चतुरं सुन्दरं शूरं कामशास्त्रविशारदम् ॥१६
ऐश्वर्यं सर्वलोकाना प्राप्स्यसे शुम्भशासनात् ।
निश्चयं परमं कृत्वा भर्त्तारम्भज शोभनम् ॥ १७ ॥

व्यास उवाच

इति तस्य वचःश्रुत्वा चाऽन्धस्य जगदम्बिका । मेघगम्भीरनिनदं जगर्ज पुनरब्रवीम्
गच्छजाल्ममृषाकित्वंभाषसेवञ्चकंवचः । त्यक्त्वा हरिहरादींश्च शुम्भंकस्माद्व्रजेपतिम्
नमेकश्चित्पतिःकार्यो न कार्यं पतिनासह । स्वामिनी सर्वभूतानामहमेव निशामय ॥
शुम्भा मे बहवो दृष्टा निशुम्भाश्चसहस्रशः । घातिताश्च मयापूर्वं शतशो दैत्यदानवाः
ममाऽग्रे देववृन्दानि विनष्टानि युगेयुगे । नाशं यास्यन्ति दैत्याना यूथानि पुनरद्य वै
काल एवागतोऽस्त्यत्रदैत्यसंहारकारकः । वृथा त्वं कुरुषे यत्नं रक्षणायात्मसन्ततेः
कुरु युद्धं वीरधर्मरक्षार्थं त्वं महामते । मरणंभाविवुस्त्याज्यं यशो रक्ष्यं महात्मभिः
किन्ते कार्यं निशुम्भेन शुम्भेनचदुरात्मना । वीरधर्मंपरमप्राप्य गच्छ स्वर्गसुरालयम्
शुम्भो निशुम्भश्चैवाऽन्ये ये चाऽत्र तव बान्धवाः ।
सर्वे तवाऽनुगाः पश्चादागमिष्यन्ति साम्प्रतम् ॥ २६ ॥

कमशःसर्वदैत्यानांकरिष्याम्यहसंक्षयम् । विषादं त्यजमन्दात्मन्कुरुयुद्धं विशाम्पते
त्वामहं निहनिष्यामि भ्रातरन्तवसाम्प्रतम् । तव शुम्भं निशुम्भञ्च रक्तबीजंमदोत्कटम्
अन्यांश्च दानवान्सर्वान्हत्वाऽहं समराङ्गणे ।
गमिष्यामि यथास्थानं तिष्ठ वा गच्छ वा द्रुतम् ॥ २६ ॥
गृहाणाऽस्त्रं वृथापुष्ट! कुरु युद्धंमयाऽधुना । किञ्चल्पसिमृषावाक्यंसर्वथाकातरप्रियम्

व्यास उवाच

तयेत्थं प्रेरितौदैत्यौचण्डमुण्डौक्रुधाऽन्वितौ । ज्याशब्दंतरसाघोरं चक्रतुर्बलदर्पितौ
साऽपि शङ्खस्वनञ्चक्रेपूरयन्तीदिशोदश । सिंहोऽपिकुपितस्तावन्नादंसमकरोद्बली
तेन नादेन शक्राद्या जहृषुरमरास्तदा । मुनयो यक्षगन्धर्वाः सिद्धाः साध्याश्चकिन्नराः
युद्धं परस्परन्तत्रजातंकातरभीतिदम् ।
चण्डिका चण्डयोस्तीव्रं बाणखड्गगदादिभिः ॥ ३४ ॥
चण्डमुक्ताञ्छरान्देवीचिच्छेदनिशितैःशरैः । मुमोच पुनरुग्रा सा चण्डिकापन्नगानिव
गगनंछादितन्तत्र सङ्ग्रामे विशिखैस्तदा । शलभैरिव मेघान्ते कर्षकाणां भयप्रदैः
मुण्डोऽपि सैनिकैः सार्धंसम्पपाततरसारणे । मुमोच बाणवृष्टिं वै क्रुद्धः परमदारुणः
बाणजालंमहद्दृष्ट्वा क्रुद्धातत्राऽम्बिकाभृशम् । कोपेन वदनन्तस्या बभूव घनसन्निभम्
कदलीपुष्पनेत्रञ्च भ्रुकुटीकुटिलन्तदा । निष्क्रान्ताचतदाकाली ललाटफलकाद्द्रुतम्
व्याघ्रचर्माम्बरा क्रूरा गजचर्मोत्तरीयका । मुण्डमालाधरा घोरा शुष्कवापीसमोदरा
खड्गपाशधराऽतीवभीषणाभयदायिनी । खट्वाङ्गधारिणीरौद्रा कालरात्रिरिवाऽपरा
विस्तीर्णवदना जिह्वाञ्चालयन्ती मुहुर्मुहुः । विस्तारजघना वेगाज्जघानासुरसैनिकान्
करे कृत्वा महावीरांस्तरसा सा रुषान्विता ।
मुखे चिक्षेप दैतेयान्पिपेष दशनैः शनैः ॥ ४३ ॥
गजान्घण्टान्वितान् हस्ते गृहीत्वा निदधौ मुखे ।
सारोहान्भक्षयित्वाऽऽजौ साट्टहासञ्चकार ह ॥ ४४ ॥
तथैव तुरगानुष्ट्रांस्तथा सारथिभिः सह । निक्षिप्यवक्त्रेदशनैश्चर्वयन्त्यतिभैरवम्

हन्यमानम्बलम्प्रेक्ष्य चण्डमुण्डौ महासुरौ । छादयामासतुर्देवीं बाणाऽऽसारैरनन्तरैः
चण्डश्चण्डकरच्छायञ्चक्रं चक्रधरायुधम् । चिक्षेप तरसा देवीं ननाद च मुहुर्मुहुः ॥
नदन्तं वीक्ष्य तं काली रथाङ्गञ्च रविप्रभम् । बाणेनैकेन चिच्छेद सुप्रभन्तत्सुदर्शनम्

तञ्जघान शरैस्तीक्ष्णैश्चण्डंचण्डी शिलाशितैः ।
मूर्छितोऽसौ पपातोर्व्यां देवीबाणार्दितो भृशम् ॥ ४६ ॥

पतितम्भ्रातरम्वीक्ष्य मुण्डो दुःखार्दितस्तदा । चकारशरवृष्टिञ्च कालिकोपरिकोपतः
चण्डिकामुण्डनिर्मुक्तांशरवृष्टिसुदारुणाम् । इषिकास्त्रैर्बलान्मुक्तैश्चक्रे तिलशःक्षणात्
अर्धचन्द्रेणबाणेन ताडयामास तम्पुनः । पतितोऽसौमहावीर्यो मेदिन्यांमदवर्जितः
हाहाकारो महानासीद्दानवानाम्बले तदा । जहर्षुरमराः सर्वे गगनस्था गतव्यथाः ॥

विहाय मूर्च्छांश्चण्डस्तु संगृह्य महतीङ्गदाम् ।
तरसा ताडयामास कालिकान्दक्षिणे भुजे ॥ ५४ ॥

वञ्चयित्वा गदाघातं तम्बबन्ध महासुरम् । तरसा बाणपाशेन मन्त्रमुक्तेन कालिका
उत्थितस्तुतदामुण्डो बद्धं दृष्ट्वाऽनुजम्बलात् । आजगामसुसन्नद्धःशक्तिङ्कृत्वाकरेदृढाम्
आगच्छन्तंतदाकालीदानवम्वीक्ष्यसत्वरम् । बबन्ध तरसातन्तु द्वितीयम्भ्रातरम्भृशम्

गृहीत्वा तौ महावीर्यौ चण्डमुण्डौ शशाविव ।
कुर्वती विपुलं हास्यमाजगामाऽम्बिकाम्प्रति ॥ ५८ ॥

आगत्य तामथोवाच गृहाणेमौ पशू प्रिये । रणयज्ञार्थमानीतौ दानवौ रणदुर्जयौ ॥
तावानीतौतदावीक्ष्यचण्डिकातौवृकाविव । अम्बिकाकालिकाम्प्राहमाधुरीसंयुतंवचः
वधं मा कुरु मा मुञ्चचतुराऽसि रणप्रिये । देवानांकार्यसंसिद्धिःकर्तव्या तरसात्वया

व्यास उवाच

इतितस्यावचःश्रुत्वाकालिकाप्राहता पुनः । युद्धयज्ञेऽतिविख्यातेखड्गयूपे प्रतिष्ठिते
आलम्भञ्चकरिष्यामियथाहिंसानजायते । इत्युक्त्वासा तदादेवीखड्गेनशिरसीतयोः
चकर्त तरसा काली पपौचरुधिरम्मुदा । एवम्दैत्यौहतौदृष्ट्वामुदितोवाचचाम्बिका
कृतंकार्यंसुराणान्तेददाम्यद्यवरं शुभम् । चण्डमुण्डौहतौयस्मात्तस्मात्तेनाम कालिके

चामुण्डेति सुविख्यातम्भविष्यति धरातले ॥ ६६ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे चण्डमुण्डवधेनदेव्याश्चामुण्डेतिनामवर्णनंषड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

सप्तविंशोऽध्यायः

शुम्भनिशुम्भद्वारादेव्याःसमीपेरक्तबीजप्रेषणम्

व्यास उवाच

हतौ तौ दानवौ दृष्ट्वाहतशेषाश्चसैनिकाः । पलायनन्ततःकृत्वा जग्मुःसर्वेनृपम्प्रति
भिन्नाङ्गाश्चशिखैःकेचित्कैचिच्छिन्नकरास्तथा । रुधिरस्रावदेहाश्चरुदन्तोऽभिययुःपरे
गत्वा दैत्यपति सर्वे चक्रुर्बुम्बारवम्मुहुः । रक्ष रक्ष महाराज भक्षयत्यद्य कालिका ॥
तया हतौ महावीरौचण्डमुण्डौसुरार्दनौ । भक्षिताःसैनिकाःसर्वे वयम्भग्नाभयातुराः
भीतिदश्च रण.स्थानं कृतं कालिकयाप्रभो ! । पातितैर्गजवीराश्वैर्दासेरकपदातिभिः
शोणितौघ वहा कुल्या कृता मांसातिकर्दमा । केशशैवालनीभग्नरथचक्रविराजिता
भिन्नबाहादिमत्स्याढ्या शीर्षतुम्बीफलान्विता ।
भयदा कातराणाम्वै शूराणां मोदवर्धिनी ॥ ७ ॥
कुलंरक्ष महाराजपातालं गच्छ सत्वरम् । क्रुद्धा देवी क्षयं सद्यःकरिष्यति न संशयः
सिंहोऽपि भक्षयत्याजौ दानवान्मनुजेश्वर !। तथैव कालिकादेवी हन्ति बाणैरनेकधा
तस्मात्त्वमपि राजेन्द्र मरणाय मृषा मतिम् । करोषिसहितोभ्रात्राशुम्भेनकुपिताशयः
किङ्करिष्यतिनार्येषाक्रूराकुलविनाशिनी । यस्याहेतोर्महाराजहन्तुमिच्छसिबान्धवान्
दैवाधीनौ महाराज लोके जयपराजयौ । अल्पार्थाय महद्दुःखंबुद्धिमान्न प्रकल्पयेत्
चित्रम्पश्यविधेःकर्म यदधीनञ्जगत्प्रभो! । निहताराक्षसाः सर्वे स्त्रियापश्यैकयाऽनया
जेता त्वं लोकपालानां सैन्ययुक्तो हि साम्प्रतम् ।

एका प्रार्थयते बाला युद्धायेति ससम्भ्रमः ॥ १४ ॥
पुरा त्वया तपस्तप्तं पुष्करे देवतायने । वरदानाय सम्प्राप्तो ब्रह्मा लोकपितामहः ॥
धात्रोक्तस्त्वं महाराजवरम्वरय सुव्रत !। तदा त्वया ऽमरत्वञ्चप्रार्थितःब्रह्मणः किल॥
देवदैत्यमनुष्येभ्यो न भवेन्मरणं मम । सर्पकिन्नरयक्षेभ्यः पुलिङ्गवाच्यकादपि ॥
तस्मात्त्वां हन्तुकामैषाप्राप्ता योषिद्वराप्रमो !। युद्धंमाकुरुराजेन्द्र विचार्यैवधियाऽधुना
देवीह्येषा महामाया प्रकृतिः परमा मता । कल्पान्तकाले राजेन्द्र सर्वसंहारकारिणी
उत्पादयित्रीलोकानांदेवानामीश्वरीशुभा । त्रिगुणातामसी देवी सर्वशक्तिसमन्विता
अजय्याचाऽक्षया नित्या सर्वज्ञाचसदोदिता । वेदमाताचगायत्रीसन्ध्यासर्वसुरालया
निर्गुणा सगुणासिद्धासर्वसिद्धिप्रदाऽव्यया । आनन्दाऽऽनन्ददागौरीदेवानामभयप्रदा
एवं ज्ञात्वा महाराज! वैरभावं त्यजाऽनया । शरणंव्रज राजेन्द्रदेवीत्वां पालयिष्यति
आज्ञाकरो भवतस्याः सञ्जीवयनिजंकुलम् । हतशेषाश्च ये दैत्यास्तेभवन्तुचिरायुषः

व्यास उवाच

इति तेषां वचः श्रुत्वा शुम्भः सुरबलार्दनः । उवाच वचनन्तथ्यं वीरवर्यगुणान्वितम्

शुम्भ उवाच

मानंकुर्वन्तुभोमन्दाःयूयम्भयकारणाजिरात् । शीघ्रं गच्छतपातालं जीविताशाबलीयसी
दवाधीनञ्जगत्सर्वं का चिन्ताऽत्र जये मम । देवास्तथैव ब्रह्माद्या दैवाधीनास्वयं यथा
ब्रह्माविष्णुश्चरुद्रोऽयंयमोऽग्निर्वरुणस्तथा । सूर्यश्चन्द्रस्तथा शक्रः सर्वे दैववशाःकिल
का चिन्ता तर्हि मे मन्दा यद्भावि तद्भविष्यति ।
उद्यमस्तादृशो भूयाद्यादृशी भवितव्यता ॥ २१ ॥
सर्वथैवविचार्यैवनशोचन्तिबुधाःक्वचित् । स्वधर्मं न त्यजन्तीह ज्ञानिनोमरणाद्भयात
सुखंदुःखं तथैवाऽऽयुर्जीवितं मरणंनृणाम् । कालेभवतिसम्प्राप्तेसर्वथादैवनिर्मितम्
ब्रह्मा पतति काले स्वे विष्णुश्च पार्वतीपतिः ।
नाशङ्गच्छन्त्यायुषोऽन्ते सर्वे देवाः सवासवाः ॥ ३२ ॥
तथाऽहमपि कालस्य वशगः सर्वथाऽधुना ।

नाशं जयम्वा गन्ताऽस्मि स्वधर्मपरिपालनात् ॥ ३३ ॥

आहूतोऽप्यनयाकामं युद्धायाऽबलया किल । कथम्पलायनपरो जीवेयं शरदां शतम्
करिष्याम्यद्यसङ्ग्रामंयद्भावितद्भवत्विह । जयोवामरणम्वाऽपिस्वीकरोमि यथातथा

दैवं मिथ्येति विद्वांसो वदन्त्युद्यमवादिनः ।

युक्तियुक्तं वचस्तेषां ये जानन्त्यभिभाषितम् ॥ ३६ ॥

उद्यमेन विना कामं न सिध्यन्ति मनोरथाः । कातराएव जल्पन्तियद्भाव्यन्तद्भविष्यति
अदृष्टंबलवान्मूढाःप्रवदन्तिन पण्डिताः । प्रमाणन्तस्य सत्त्वे किमदृश्यंदृश्यतेकथम्
अदृष्टंक्वापि दृष्टं स्यादेषा मूर्खविभीषिका । अवलम्बं विनैवैषा दुःखेचित्तस्यधारणा

चक्री समीपे सम्विष्टा संस्थिता पिष्टकारिणी ।

उद्यमेन विना पिष्टं न भवत्येवसर्वथा ॥ ४० ॥

उद्यमे च कृते कार्यसिद्धिं यात्येव सर्वथा । कदाचित्तस्य न्यूनत्वे कार्यनैव भवेदपि
देशङ्कालञ्च विज्ञाय स्वबलं शत्रुजं बलम् । कृतं कार्यं भवत्येव बृहस्पतिवचो यथा ॥

व्यास उवाच

इति निश्चित्य दैत्येन्द्रो रक्तबीजम्महासुरम् । प्रेषयामास सङ्ग्रामेसैन्येनमहतावृतम्

शुम्भ उवाच

रक्तबीज महाबाहो ! गच्छ त्वं समराङ्गणे । कुरु युद्धं महाभाग! यथानैबलमाहिनम्

रक्तबीज उवाच

महाराज! न तेकार्याचिन्तास्वल्पतराऽपिवा । अहमेना हनिष्यामिकरिष्यामिवशेतव
पश्य मे युद्धचातुर्यं करोम्येवबालासुरप्रिया । दासीतेऽहंकरिष्यामिजित्वेमासमरेबलात्

व्यास उवाच

इत्याभाष्य कुरुश्रेष्ठ ! रक्तबीजो महासुरः । जगाम रथमारुह्य स्वसैन्यपरिवारितः ॥
हस्त्यश्वरथपादातवृन्दैश्च परिवेष्टितः । निर्जगाम रथारूढो देवी शैलोपरिस्थिताम्

समागत्य समालोक्य देवी शङ्खमवादयत् ।

भयदं सर्वदैत्याना देवाना मोदवर्धनम् ॥ ४६ ॥

श्रुत्वा शङ्खस्वनं चोग्रं रक्तबीजोऽतिवेगवान् । गत्वासमीपेचामुण्डांबभाषे वचनं मृदु

रक्तबीज उवाच

बाले किं मां भीषयसित्वात्वंकातरं किल । शङ्खनादेनतन्वङ्गिवेत्सिकिंधूम्रलोचनम्

रक्तबीजोऽस्मि नाम्नाऽहं त्वत्सकाशमिहागतः ।

युद्धेच्छा चेत्पिकालापे ! सज्जा भव भयं न मे ॥ ५२ ॥

पश्याऽद्य मे बलं कान्तेदृष्टायेकातरास्त्वया । नाहंपङ्क्तिगतस्तेषां कुरुयुद्धंयथेच्छसि

वृद्धाश्चसेविताः पूर्वं नीतिशास्त्रं श्रुतं त्वया । पठितंचार्थविज्ञानंविद्वद्गोष्ठीकृताऽथवा

साहित्यतन्त्रविज्ञानं चेदस्तितव सुन्दरि । शृणु मे वचनंपथ्यंतथ्यंप्रमितिवृंहितम्

रसानां च नवानां वै द्वावेव मुख्यताङ्गतौ । शृङ्गारकः शान्तिरसोविद्वज्जनसभासु च

तयोः शृङ्गारएवाऽऽद्यौ नृपभावे प्रतिष्ठतः ।

विष्णुर्लक्ष्म्यासहाऽऽस्ते वै सावित्र्या चतुराननः ॥ ५७ ॥

शच्येन्द्रः शैलसुतयाशङ्करः सहशेरते । वल्ल्या वृक्षो मृगोमृग्या कपोत्याचकपोतकः

एवं सर्वे प्राणभृतः संयोगरसिका भृशम् । अप्राप्तभोगविभवा ये चान्ये कातरा नराः

भवन्तियतयस्तेवै मूढा दैवेन वञ्चिताः । असंसाररसज्ञास्ते वञ्चिता वञ्चनापरैः ॥

मधुरालापनिपुणे रताः शान्तिरसे हि ते । क ज्ञानं क च वैराग्यं वर्तमाने मनोभवे

लोभे क्रोधे च दुर्धर्षेमोहे मतिविनाशके । तस्मात्त्वमपि कल्याणिकुरुकान्तंमनोहरम्

शुम्भं सुराणां जेतारं निशुम्भं वा महाबलम् ।

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा रक्तबीजोऽसौ विरराम पुरः स्थितः ॥ ६३ ॥

श्रुत्वा जहास चामुण्डा कालिका चाम्बिका तथा ।

इति श्रीदेवीभागवतेमहापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यांसंहितायांपञ्चमस्कन्धे

रक्तबीजदूताद्देवीसमीपेशुम्भनिशुम्भसम्वादवर्णनंनामसप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

अष्टाविंशोऽध्यायः

देव्याविवाहप्रस्तावास्वीकारेयुद्धार्थंप्रस्तुतस्यरक्तबीजस्ययुद्धंतद्वधश्च

व्यास उवाच

कृत्वा हास्यं ततोदेवी तमुवाच विशाम्पते । मेघगम्भीरयावाचा युक्तियुक्तमिदं वचः
पूर्वमेव मयाप्रोक्तं मन्दात्मन्किंविकत्थसे । दूतस्याऽग्रे यथायोग्यं वचनं हितसंयुतम्
सदृशो मम रूपेण बलेन विभवेन च । त्रिलोक्यांयदिकोऽपिस्यात्तंपतिप्रवृणोम्यहम्

ब्रूहि शुम्भं निशुम्भं च प्रतिज्ञा मे पुरा कृता ।
तस्माद्युद्ध्यस्व जित्वा मां विवाहं विधिवत्कुरु ॥ ४ ॥

त्वं वै तदाज्ञया प्राप्तस्तस्य कार्यार्थसिद्धये । सङ्ग्रामंकुरु पातालं गच्छवापतिनासह

व्यास उवाच

तच्छ्रुत्वा वचनं देव्याः स दैत्योऽमर्षपूरितः ।
मुमोच तरसा बाणान्सिहस्योपरि दारुणान् ॥ ६ ॥
अम्बिका ताञ्छरान्वीक्ष्य गगने पन्नगोपमान् ।
चिच्छेद सायकैस्तीक्ष्णैर्लघुहस्ततया क्षणात् ॥ ७ ॥

अन्यैर्जघान विशिखै रक्तबीजं महासुरम् । अम्बिकाचापनिर्मुक्तैःकर्णाकृष्टैःशिलाशितैः
देवीबाणहतः पापो मूर्च्छामाप रथोपरि । पतिते रक्तबीजे तु हाहाकारो महानभूत

सैनिकाश्चुक्रुशुः सर्वे हताः स्मइतिचाऽब्रुवन् ।
ततो बुम्बारवं श्रुत्वा शुम्भः परमदारुणम् ॥ १० ॥
उद्योगं सर्वसैन्यानां दैत्यानामादिदेश ह ।

शुम्भ उवाच

निर्यान्तुदानवाः सर्वे काम्बोजाः स्वबलैर्वृताः ॥ ११ ॥
अन्येऽप्यतिबलाः शूराः कालकेया विशेषतः ।

व्यास उवाच

इत्याज्ञप्तं बलं सर्वं शुम्भेन च चतुर्विधम् ॥ १२ ॥

निर्जगाम महाविष्टं देवीसमरमण्डले । तमागतं समालोक्य चण्डिका दानवं बलम् घण्टानादं चकाराऽऽशुभीषणंभयदंमुहुः । ज्यास्वनं शङ्खनादं च चकार जगदम्बिका तेन नादेन मा जाता कालीविस्तारितानना । श्रुत्वातन्निनदंघोरंसिंहोदेव्याश्चवाहनम् जगर्ज सोऽपि बलवाञ्जनयन्भयमद्भुतम् । तन्निनादमुपश्रुत्य दानवाः क्रोधमूर्छिताः ॥ सर्वेचिक्षिपुरस्त्राणि देवींप्रतिमहाबलाः । तस्मिन्नेवाऽऽयते युद्धे दारुणे लोमहर्षणे ॥ ब्रह्मादीनां च देवानां शक्तयश्चण्डिकां ययुः । यस्य देवस्य यद्रूपं यथाभूषणवाहनम् तादृग्रूपास्तदा देव्यः प्रययुः समराङ्गणे । ब्रह्माणी वरटारूढा साक्षसूत्रकमण्डलुः ॥ आगता ब्रह्मणः शक्तिर्ब्रह्माणीति प्रतिश्रुता । वैष्णवी गरुडारूढा शङ्खचक्रगदाधरा ॥ पद्महस्ता समायाता पीताम्बरविभूषिता । शाङ्करीतु वृषाऽऽरूढा त्रिशूलवरधारिणी अर्धचन्द्रधरादेवी तथाऽहिवलया शिवा । कौमारी शिखिसंरूढा शक्तिहस्तावरानन युद्धकामा समायाता कार्त्तिकेयस्वरूपिणी । इन्द्राणी सुष्ठुवदना सुश्वेतगजवाहना वज्रहस्ताऽतिरोषाढ्या संग्रामाभिमुखीययौ । वाराही सूकराकारा प्रौढप्रेतासनास्थिता

नारसिंही नृसिंहस्य बिभ्रती सदृशं वपुः ।

याम्या च महिषाऽऽरूढा दण्डहस्ता भयप्रदा ॥ २५ ॥

समायाताऽथ संग्रामे यमरूपा शुचिस्मिता । तथैववारुणीशक्तिः कौबेरीचमदोत्कटा

एवंविधास्तथाऽऽकारा ययुः स्वस्वबलैर्वृताः ।

आगतास्ताः समालोक्य देवीमुदमवाप च ॥ २७ ॥

स्वस्था मुमुदिरे देवादैत्याश्च भयमाययुः । ताभिः परिवृतस्तत्र शङ्करोलोकशङ्करः समागम्य च संग्रामे चण्डिकामित्युवाच ह । हन्यन्तामसुराःशीघ्रंदेवानांकार्यसिद्धये निशुम्भं चैव शुम्भंचयेचान्येःदानवाः स्थिताः । हत्वादैत्यबलंसर्वंकृत्वाचनिर्भयंजगत्

स्थानानि स्वानि च धिष्ण्यानि समागच्छन्तु शक्तयः ।

देवा यज्ञभुजः सन्तु ब्राह्मणा यजनेरताः ॥ ३१ ॥

प्राणिनः सन्तु सन्तुष्टाः सर्वेस्थावरजङ्गमाः । शमं यान्तु तथोत्पाता ईतयश्चतथापुनः
घनाः काले प्रवर्षन्तु कृषिर्बहुफला तथा ।

व्यास उवाच

एवं ब्रुवति देवेशे शङ्करे लोकशङ्करे ॥ ३३ ॥

चण्डिकायाः शरीरात्तु निर्गताशक्तिरद्भुता । भीषणाऽतिप्रचण्डाचशिवाशतनिनादिनी
घोररूपाऽथ पञ्चास्यमित्युवाच स्मितानना । देवदेवव्रजाऽऽशुत्वं दैत्यानामधिपं प्रति
दूतत्वं कुरुकामारे ब्रूहि शुम्भं स्मराकुलम् । निशुम्भं च मदोन्मिक्तंवचनान्मम शङ्कर
मुक्त्वा त्रिविष्टपं यात यूयं पातालमाशु वै ।

देवाः स्वर्गे सुखं यान्तु तुराषाट्स्वासनं शुभम् ॥ ३९ ॥

प्राप्नोतुत्रिदिवंस्थानंयज्ञभागाश्चदेवताः । जीवितेच्छा च युष्माकर्मऽस्त्यास्तमहत्तरा
तर्हि गच्छत पातालं तरसा यत्र दानवाः । अथवा बलमास्थाय युद्धेच्छामरणाय चेत्
तदाऽऽगच्छन्तु तृप्यन्तु मच्छिवाः पिशितेन वः ।

व्यास उवाच

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्याः शूलपाणिस्त्वरान्वितः ॥ ४० ॥
गत्वाऽऽह दैत्यराजानं शुम्भं सदसि संस्थितम् ।

शिव उवाच

राजन्दूतोऽहमम्बायास्त्रिपुरान्तकरो हरः ॥ ४१ ॥
त्वत्सकाशमिहायातो हितं कर्तुं तवाऽखिलम् ।
त्यक्त्वा स्वर्गं तथा भूमिं यूयं गच्छत सत्वरम् ॥ ४२ ॥

पातालं यत्र प्रह्लादो बलिश्च बलिनाम्वरः । अथवा मरणेच्छा चेत्तर्हागच्छेतसत्वरम्
संग्रामेवो हनिष्यामि सर्वानेवाहमाशु वै । इत्युवाच महाराज्ञी युष्मत्कल्याणहेतवे ॥

व्यास उवाच

इति दैत्यवरान्देवी वाक्यंपीयूषसन्निभम् । हितकृच्छ्रावयित्वासप्रत्यायातश्चशूलभृत्
यथाऽसौ प्रेरितःशम्भुर्दूतत्वेदानवान्प्रति । शिवदूतीतिविख्याताजातात्रिभुवनेऽखिले

तेऽपि श्रुत्वा वचोदेव्याःशङ्करोक्तंतुदुष्करम् । युद्धायनिर्ययुःशीघ्रंदंशिताःशस्त्रपाणयः

तरसा रणमाऽऽगत्य चण्डिकां प्रति दानवाः ।

निर्जघ्नुश्च शरैस्तीक्ष्णैः कर्णाकृष्टैः शिलाशितैः ॥ ४८ ॥

कालिका शूलपातैस्तान् गदाघातैर्विदारितान् ।

कुर्वन्ती व्यचरत्तत्र भक्षयन्ती च दानवान् ॥ ४९ ॥

कमण्डलुजलाक्षेपगतप्राणान्महाबलान् । ब्रह्माणी चाऽकरोत्तत्र दानवान्समराङ्गणे ॥

माहेश्वरी वृषाऽऽरूढा त्रिशूलेनाऽतिरंहसा । जघानदानवान्संख्ये पातयामास भूतले

वैष्णवी चक्रपातेन गदापातेनदानवान् । गतप्राणांश्चकाराऽऽशु चोत्तमाङ्गविवर्जितान्

ऐन्द्री वज्रप्रहारेण पातयामास भूतले । ऐरावतकराघातपीडितान्दैत्यपुङ्गवान् ॥ ५३॥

वाराही तुण्डघातैश्च दंष्ट्राग्रपातनेन च । जघान क्रोधसंयुक्ता शतशोदैत्यदानवान् ॥

नारसिंही नखैस्तीव्रैर्दारितान्दैत्यपुङ्गवान् । भक्षयन्ती चचाराऽऽजौ कुर्वन्नादमुहुर्मुहुः

शिवदूती साट्टहासैः पातयामास भूतले ।

तांश्चखादाऽथ चामुण्डा कालिका च त्वरान्विता ॥ ५६ ॥

शिखिसंस्था चकौमारी कर्णाकृष्टैः शिलाशितैः । निजघानरणेशत्रून्देवानांचहितायवै

वारुणीपाशसम्बद्धान्दैत्यान्समरमस्तके । पातयामास तत्पृष्ठे मूर्च्छितान्गतचेतनान्

एवं मातृगणेनाऽजावतिवीर्यपराक्रमम् । मर्दितं दानवं सैन्यं पलायनपरं ह्यभूत् ॥५९॥

हुम्बारवस्तु सुमहानभूत्तत्र बलार्णवे । पुष्पवृष्टिं तदादेवाश्चक्रुर्देव्या गणोपरि ॥६०॥

तच्छ्रुत्वानिनदं घोरं जयशब्दंचदानवाः । रक्तबीजश्चुकोपाशुदृष्ट्वादैत्यान्पलायितान्

गर्जमानांस्तथादेवान्वीक्ष्यदैत्यो महाबलः । रक्तबीजस्तुतेजस्वीरणमभ्याययौ तदा

सायुधो रथसम्विष्टः कुर्वञ्ज्याशब्दमद्भुतम् । आजगाम तदादेवींक्रोधरक्तेक्षणोद्यतः

इतिश्रीदेवीभागवतेमहापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यांसंहितायांपञ्चमस्कन्धे

रक्तबीजेनदेव्यायुद्धवर्णननामाऽष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

एकोनत्रिंशोऽध्यायः

रक्तबीजनदेव्यायुद्धवर्णनम्

व्यास उवाच

वरदानमिदं तस्य दानवस्य शिवार्पितम् । अन्यद्भुततरं राजञ्छृणु तत्प्रब्रवीम्यहम् ॥१
तस्यदेहाद्रक्तबिन्दुर्यदा पतति भूतले । समुत्पतन्ति दैतेयास्तद्रूपास्तत्पराक्रमाः॥२
असंख्याता महावीर्यादानवारक्तसम्भवाः । प्रभवन्त्विचतिरुद्रेणदत्तोऽस्यत्यद्भुतोवरः
स तेन वरदानेन दर्पितः क्रोधसंयुतः । अभ्यगात्तरसा संख्ये हन्तुंदेवीं स कालिकाम्

स दृष्ट्वा वैष्णवीं शक्ति गरुडोपरि संस्थिताम्
शक्त्या जघान दैत्येन्द्रस्तां वै कमललोचनाम् ॥ ५ ॥

गदया वारयामास शक्तिः सा शक्तिसंयुता । अताडयच्च चक्रेण रक्तबीजं महासुरम्
रथाङ्गहतदेहात्तु बहु सुस्राव शोणितम् । वज्राहतगिरेः शृङ्गान्निर्झरा इव गैरिकाः ॥७॥
यत्र यत्र यदाभूमौ पतन्तिरक्तबिन्दवः । समुत्पन्नास्तदाकाराः पुरुषाश्च सहस्रशः ॥

ऐन्द्री तमसुरं घोरं वज्रेणाऽभिजघान च ।
रक्तबीजं क्रुधाऽऽविष्टा निःससार च शोणितम् ॥ ६ ॥

ततस्तत्क्षतजाज्जाता रक्तबीजाह्यनेकशः । तद्वीर्याश्च तदाकाराः सायुधायुद्धदुर्मदाः ॥
ब्रह्माणी ब्रह्मदण्डेन कुपिताह्यहनद्भृशम् । माहेश्वरी त्रिशूलेन दारयामास दानवम् ॥
नारसिंही नखाघातैस्तं विव्याध महासुरम् । अहनत्तुण्डघातेन क्रुद्धा तं राक्षसाधमम्
कौमारी च तथाशक्त्यावक्षस्येनमताडयत् । सोऽपिक्रुद्धःशरासारैर्बिभेदनिशितैश्चताः

गदाशक्तिप्रहारैस्तु मातृः सर्वाः पृथक्पृथक् ।
शक्रयन्तं शराघातैर्विविधुस्तत्प्रकोपिताः ॥ १४ ॥
तस्य शस्त्राणि चिच्छेद चण्डिका स्वशरैः शितैः ।
जघानाऽन्यैश्च विशिखैस्तं देवी कुपिता भृशम् ॥ १५ ॥

तस्य देहाच्च सुस्राव रुधिरं बहुधा तु यत् । तस्मात्तत्सदृशाःशूराःप्रादुरासन्सहस्रशः
रक्तबीजैर्जगद्व्याप्तं रुधिरौघसमुद्भवैः । सन्नाद्धैः सायुधैः कामं कुर्वद्भिर्युद्धमद्भुतम् ॥
प्रहरन्तश्च तान्दृष्ट्वा रक्तबीजाननेकशः । भयभीतास्सुरास्सर्वेसुर्विषण्णाःशोककर्शिताः
कथमद्य क्षयं दैत्या गमिष्यन्ति सहस्रशः । महाकाया महावीर्या दानवारक्तसम्भवाः

एकैव चण्डिकाऽत्रास्ति तथा काली च मानदः ।
एताभिर्दानवाः सर्वे जेतव्याः कष्टमेव तत् ॥ २० ॥

निशुम्भोवाऽथशुम्भोवा सहसा बलसम्वृतः । आमिष्यतिसंग्रामेततोऽनर्थोमहान्भवेत्

व्यास उवाच

एवं देवा भयोद्विग्नाश्चिन्तामापुर्महत्तराम् । यदा तदाम्बिकाप्राहकालींकमललोचनाम्
चामुण्डे कुरु विस्तीर्णं वदनं त्वरिता भृशम् । मच्छस्त्रपातसम्भूतंरुधिरंपिबसत्वरा
भक्षयन्ती चर रणे दानवानद्य कामतः । हनिष्यामि शरैस्तीक्ष्णैर्गदासिमुसलैस्तथा
तथाकुरुविशालाक्षिपानन्तद्रुधिरस्य च । बिन्दुमात्रंयथा भूम्यां न पतेदपिसाम्प्रतम्

भक्ष्यमाणास्तदा दैत्या न चोत्पत्स्यन्ति चाऽपरे ।
एवमेषां क्षयो नूनं भविष्यति न चान्यथा ॥ २६ ॥

घातयिष्याम्यहं दैत्यं त्वं भक्षय च सत्वरा । पिबन्तीक्षतजंसर्वंयतमानाऽरिसंक्षये ॥
इत्थं दैत्यक्षयंकृत्वा दत्त्वाराज्यंसुरालयम् । इन्द्रायसुस्थिरंसर्वंगमिष्यामोयथासुखम्

व्यास उवाच

इत्युक्ताऽम्बिकयादेवीचामुण्डाचण्डविक्रमा । पपौ च क्षतजं सर्वं रक्तबीजशरीरजम्
अम्बिका तं जघानाऽऽशु खड्गेनमुसलेन च । चखाददेहशकलांश्चामुण्डातान्कृशोदरी
सोऽपिक्रुद्धोगदाघातैश्चामुण्डांसमघातयत् । तथाऽपि सा पपावाशुक्षतजंतमभक्षयत्
येऽन्येरुधिरजाःक्रूरारक्तबीजामहाबलाः । तेऽपि निष्पातिताःसर्वेभक्षितागतशोणिताः

कृत्रिमा भक्षिताःसर्वे यस्तु स्वाभाविकोऽसुरः ।
सोऽपि प्रपातितो हत्वा खड्गेनाऽतिविखण्डितः ॥ ३३ ॥

रक्तबीजे हते रौद्रे ये चाऽन्ये दानवा रणे । पलायनन्ततःकृत्वा गतास्तेभयकम्पिताः

हाहेतिविब्रुवन्तस्ते शुम्भम्प्रोचुःसुविह्वलाः । रुधिरारक्तदेहाश्च विगतास्त्रा विचेतसः
राजन्नम्बिकयारक्तबीजोऽसौ विनिपातितः ।
चामुण्डा तस्य देहात्तु पपौ सर्वञ्च शोणितम् ॥ ३६ ॥
ये चाऽन्येदानवाः शूरावाहनेनाऽतिरंहसा । सिंहेन निहताःसर्वे कालयाच भक्षिताःपरे
वयं त्वां कथितुं राजन्नागतायुद्धचेष्टितम् । चरितञ्चतथादेव्या सङ्ग्रामे परमाद्भुतम्
अजेयेयं महाराज! सर्वथा दैत्यदानवैः । गन्धर्वासुरयक्षैश्च पन्नगोरगराक्षसैः ॥ ३६ ॥
अन्यास्तत्रागता देव्य इन्द्राणीप्रमुखाभृशम् । युध्यमाना महाराज! वाहनैरायुधैर्युताः
ताभिः सर्वं हतंसैन्यंदानवानांवरायुधैः । रक्तबीजोऽपि राजेन्द्र! तरसा विनिपातितः
एकाऽपि दुःसहा देवी किं पुनस्ताभिरन्विता ।
सिंहोऽपि हन्ति सङ्ग्रामे राक्षसानमितप्रभः ॥ ४२ ॥
अतोविचार्य सचिवैर्यद्युक्तं तद्विधीयताम् । न वैरमनयायुक्तं मन्धिरेव सुखप्रदः ॥
आश्चर्य मे तदखिलं यन्नारी हन्ति राक्षसान् ।
रक्तबीजोऽपि निहतः पीतन्तस्याऽपि शोणितम् ॥ ४४ ॥
अन्ये निपातितादैत्याःसंग्रामेऽम्बिकयानृप । चामुण्डयाचमांसं वै भक्षितं सकलंरणे
वरम्पातालगमनं तस्याः सेवाऽथवा वरा । न तु युद्धं महाराज! कार्यमम्बिकया सह
न नारी प्राकृताह्येषा देवकार्यार्थसाधिनी । मायेयं प्रबला देवी क्षपयन्तीयमुत्थिता

व्यास उवाच

इति तेषां वचस्तथ्यं श्रुत्वाकालविमोहितः । मुमूर्षुःप्रत्युवाचेदंशुम्भःप्रस्फुरिताधरः

शुम्भ उवाच

यूयं गच्छत पातालं शरणं वा भयातुराः । हनिष्याम्यहमद्यैव ताश्चताश्च समुद्यतः ॥
जित्वा सर्वान्सुरानाजौ कृत्वा राज्यं सुपुष्कलम् ।
कथन्नारीभयोद्विग्नः पातालम्प्रविशाम्यहम् ॥ ५० ॥
निहत्य पार्षदान्सर्वान्रक्तबीजमुखान्रणे । प्राणत्राणाय गच्छामि हित्वाकिं विपुलंयशः
मरणं त्वनिवार्यम्वै प्राणिनां कालकल्पितम् ।

तद्भयं जन्मनोपात्तं त्यजेत्को दुर्लभं यशः ॥ ५२ ॥
निशुम्भाऽहं गमिष्यामि रथारूढो रणाजिरे।
हत्वा तामागमिष्यामि नाऽऽगमिष्यामि चाऽन्यथा ॥ ५३ ॥
त्वन्तु सैनायुतोवीर! पार्ष्णिग्राहोभवस्व मे। तरसातांशरैस्तीक्ष्णैर्नारीनय यमालये

निशुम्भ उवाच

अहमद्य हनिष्यामि गत्वा दुष्टाञ्चकालिकाम्।
आगमिष्याम्यहं शीघ्रं गृहीत्वा तामथाऽम्बिकाम् ॥ ५५ ॥
मा चिन्तांकुरुराजेन्द्रवराकायास्तुकारणे। कैषाबाला क मे बाहुवीर्यभिन्नवशङ्करम्
त्यक्त्वाऽऽर्ति विपुलाम्भ्रातर्भुङ्क्ष्व भोगाननुत्तमान्।
आनयिष्याम्यहं कामं मानिनीं मानसंयुताम् ॥ ५७ ॥
मयि तिष्ठति ते राजन्न युक्तं गमनं रणे। गत्वाऽहमानयिष्यामि तवार्थेवैजयश्रियम्

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा भ्रातरंज्येष्ठंकनीयान्बलगर्वितः। रथमास्थाय विपुलं सन्नद्धः स्वबलावृतः
जगामतरसातूर्णं सङ्गरे कृतमङ्गलः। संस्तुतो बन्दिसूतैश्च सायुधः सपरिष्करः ॥६०
इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे अष्टादशसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे
देव्यासहयुद्धकरणायनिशुम्भप्रयाणंनामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

त्रिंशोऽध्यायः

निशुम्भस्यदेव्यायुद्धायसमागमनम्

व्यास उवाच

निशुम्भो निश्चयं कृत्वा मरणाय जयाय वा। सोद्यमः सबलः शूरो रणेदेवीमुपाययौ
तमाजगामशुम्भोऽपि स्वबलेन समावृतः। प्रेक्षकोऽभूद्रणेराजा संग्रामरसपण्डितः

गगने संस्थिता देवास्तदाऽभ्रपटलावृताः । दिदृक्षवस्तु संग्रामे सेन्द्रायक्षगणास्तथा
निशुम्भोऽथ रणे गत्वा धनुरादायशार्ङ्गकम् । चकारशरवृष्टिं स भीषयञ्जगदम्बिकाम्
मुञ्चन्तंशरजालानिनिशुम्भंचण्डिकारणे । वीक्ष्याऽऽगायधनुःश्रेष्ठंजहाससुस्वरम्मुहुः
उवाच कालिकांदेवीपश्यमूर्खत्वमेतयोः । मरणायागतौ कालि मत्समीपमिहाऽधुना

दृष्ट्वा दैत्यवधं घोरं रक्तबीजात्ययन्तथा ।
जयाशां कुरुतस्त्वेतौ मोहितौ मम मायया ॥ ७ ॥

आशा बलवती ह्येषा न जहाति नरं क्वचित् । भग्नं हृतबलं नष्टं गतपक्षं विचेतनम्
आशापाशनिबद्धौ द्वौ युद्धायसमुपागतौ । निहन्तव्यौमयाकालिरणेशुम्भनिशुम्भकौ
आसन्नमरणावेतौ सम्प्राप्तौ दैवमोहितौ । पश्यतां सर्वदेवानां हनिष्याम्यहमद्य तौ

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा कालिकां चण्डी कर्णाकृष्टशरोत्करैः ।
छादयामास तरसा निशुम्भं पुरतः स्थितम् ॥ ११ ॥
दानवोऽपि शरांस्तस्याश्चिच्छेद निशितैः शरैः ।
तयोः परस्परं युद्धं बभूवाऽतिभयानकम् ॥ १२ ॥

केशरीकेशजालानि धुन्वानः सैन्यसागरम् । गाहयामास बलवान्सरसीं वारणो यथा
नखैर्दन्तप्रहारैस्तुदानवान्पुरतः स्थितान् । चखादचाविशीर्णाङ्गान्गजान्विमदोत्कटान्
एवम्विमथ्यमानेतु सैन्ये केसरिणातदा । अभ्ययावान्निशुम्भोऽथ विकृष्यवरकार्मुकः
अन्येऽपि क्रुद्धा दैत्येन्द्रा देवींहन्तुमुपाययुः । सन्दष्टदन्तरसना रक्तनेत्रा ह्यनेकशः ॥

तत्राऽऽजगाम तरसा शुम्भः सैन्यसमावृतः ।
निहन्तुं कालिकां कोपाद्ग्रहीतुंजगदम्बिकाम् ॥ १७ ॥

तत्रागत्यददर्शाजावम्बिकाञ्चपुरःस्थिताम् । रौद्ररसयुतां कान्तांशृङ्गाररससंयुताम्
तां वीक्ष्यविपुलापाङ्गींत्रैलोक्यवरसुन्दरीम् । सुरक्तनयनांरम्यां क्रोधरक्तेक्षणान्तथा
विवाहेच्छां परित्यज्य जयाशान्दूरतस्तथा । मरणेनिश्चयंकृत्वातस्थावाहितकार्मुकः
तन्तथा दानवं देवी स्मितपूर्वमिदम्वचः । बभाषे शृण्वतान्तेषां दैत्यानां रणमस्तके

गच्छध्वमपामरा यूयम्पातालं वा जलार्णवम् ।
जीविताशां स्थिरां कृत्वा त्यक्त्वाऽगैवाऽऽयुधानि च ॥ २२ ॥

अथवा मच्छराघातहतप्राणा रणाजिरे । प्राप्य स्वर्गसुखं सर्वे क्रीडन्तु विगतज्वराः
कातरत्वञ्च शूरत्वं न भवत्येव सर्वथा । दद्राम्यभयदानम्वै यान्तु सर्वे यथासुखम् ॥

व्यास उवाच

इत्याकर्ण्यवचस्तस्यानिशुम्भोमदगर्वितः । निशितंखड्गमादायचर्मचैवाऽष्टचन्द्रकम्
धावमानस्तु तरसाऽसिना सिंहं मदोत्कटम् ।
जघानाऽतिबलान्मूर्ध्नि भ्रामयञ्जगदम्बिकाम् ॥ २६ ॥

ततो देवी स्वगदया वञ्चयित्वाऽसिपातनम् । ताडयामास तं बाहोर्मूलेपरशुनातदा
खड्गेन निहतःसोऽपिबाहुमूलेमहामदः । संस्तम्भ्यवेदनाम्भूयो जघानचण्डिकान्तदा
साऽपि घण्टास्वनं घोरं चकार भयदं नृणाम् ।
. पपौ पुनः पुनः पानं निशुम्भं हन्तुमिच्छती ॥ २९ ॥

एवं परस्परं युद्धं बभूवाऽतिभयप्रदम् । देवानां दानवानां च परस्परजयैषिणाम् ॥
पलादाःपक्षिणःक्रूरास्सारमेयाश्चजम्बुकाः । ननृतुश्चऽतिसन्तुष्टागृध्राःकङ्काश्च वायसाः
रणभूर्भाति भूयिष्ठपतिताऽसुरवर्ष्मकैः । रुधिरस्रावसंयुक्तैर्गजाश्वदेहसङ्कुला ॥ ३२ ॥
पतितान्दानवान्दृष्ट्वा निशुम्भोऽतिरुषान्वितः ।
प्रययौ चण्डिकां तूर्णं गदामादाय दारुणाम् ॥ ३३ ॥

सिंहं जघान गदया मस्तके मदगर्वितः । प्रहृत्य च स्मितं कृत्वा पुनर्देवीमताडयत् ।
साऽपि तं कुपिताऽतीव निशुम्भं पुरतःस्थितम् ।
प्रहरन्तं समीक्ष्याऽथ देवी वचनमब्रवीत् ॥ ३५ ॥

देव्युवाच

तिष्ठ मन्दमते! तावद्यावत्खड्गमिदं तव । ग्रीवायां प्रेरयाम्यस्मात्गन्तासि यमसादनम्

व्यास उवाच

इत्युक्त्वातरसादेवीकृपाणेनसमाहिता । चिच्छेदमस्तकंतस्यनिशुम्भस्याऽथचण्डिका

सञ्छिन्नमस्तकोदेव्या कबन्धोऽभवद्दारुणः ।
बभ्राम च गदापाणिस्त्रासयन्देवतागणान् ॥ ३८ ॥

देवी तस्यशितैर्बाणैश्चिच्छेद चरणौ करौ । पपातोर्व्यांततः पापी गतासुःपर्वतोपमः
तस्मिन्निपतिते दैत्ये निशुम्भे भीमविक्रमे । हाहाकारोमहानासीत्तत्सैन्ये भयकम्पिते

त्यक्त्वाऽऽयुधानि सर्वाणि सैनिकाः क्षतजाऽऽप्लुताः ।
जग्मुर्दुःखारवं सर्वे कुर्वाणा राजमन्दिरम् ॥ ४१ ॥

तानागतान्सुसम्प्रेक्ष्य शुम्भःशत्रुनिषूदनः । पप्रच्छक्वनिशुम्भोऽसौकथंभग्नाःपलायिताः
तच्छ्रुत्वावचनंराज्ञस्तेप्रोचुःप्रणताभृशम् । राजंस्ते निहतो भ्राता शेते समरमूर्धनि
तया निपातिताःशूरायेचतेऽप्यनुजानुगाः । वयंत्वां कथितुं सर्वं वृत्तान्तं समुपागताः

निशुम्भो निहतस्तत्र तया चण्डिकयाऽधुना ।
नहि युद्धस्य कालोऽद्य तव राजन्रणाङ्गणे ॥ ४५ ॥

देवकार्यं समुद्दिश्य काऽपीयं परमाङ्गना । हन्तुंदैत्यकुलं नूनं प्राप्तेति परिचिन्तय
नैषा प्राकृतयोषैव देवीशक्तिरनुत्तमा । अचिन्त्यचरिता काऽपि दुर्ज्ञेया दैवतैरपि ॥
नानारूपधराऽतीव मायामूलविशारदा । विचित्रभूषणा देवी सर्वायुधधरा शुभा ॥
गहनागूढचरिता कालरात्रिरिवाऽपरा । अपारपारगा पूर्णा सर्वलक्षणसंयुता ॥ ४९॥

अन्तरिक्षस्थिता देवास्तांस्तुवन्त्यकुतो भयाः ।
देवकार्यं च कुर्वाणां श्रीदेवीं परमाद्भुताम् ॥ ५० ॥

पलायनं परोधर्मः सर्वथा देहरक्षणम् । रक्षिते किल देहेऽस्मिन्कालेऽस्मत्सुखताङ्गते
संग्रामे विजयो राजन्भविता ते न संशयः । कालः करोति बलिनंसमयेनिर्बलंक्वचित्
तं पुनः सबलं कृत्वा जयायोपदधाति हि । दातारं याचकं कालः करोतिसमयेक्वचित्
भिक्षुकं धनदातारं करोतिसमयान्तरे । विष्णुः कालवशो नूनं ब्रह्मा वा पार्वतीपतिः
इन्द्राद्या निर्जराःसर्वे कालएवप्रभुःस्वयम् । तस्मात्कालं प्रतीक्षस्वविपरीतंतवाऽधुना
सम्मुखो देवतानां च दैत्यानां नाशहेतुकः । एकैव च गतिर्नास्तिकालस्यकिलभूपते

नानारूपधराऽप्यस्ति ज्ञातव्यं तस्य चेष्टितम् ।

कदाचित्संभवोनृणां कदाचित्प्रलयस्तथा ॥ ५७ ॥
उत्पत्तिहेतुः कालोऽन्यःक्षयहेतुस्तथाऽपरः । प्रत्यक्षंते महाराज! देव्याःसर्वेसवासवाः
करदास्ते कृताः पूर्वं कालेन सम्मुखेन च । तेनैवविमुखेनाऽद्यबलिनोऽबलयाऽसुराः ॥
निहता नितरां कालःकरोति च शुभाशुभम् । नैवाऽत्रकारणं कालीनैवदेवाःसनातनाः
यथा ते रोचते राजंस्तथा कुरु विमृश्य च । कालोऽयंनाऽत्रहेतुस्तेदानवानांतथापुनः
त्वदग्रतो गतः शक्रो भग्नः संख्ये निरायुधः । तथाविष्णुस्तथारुद्रो वरुणोधनदोयमः
तथा त्वमपिराजेन्द्र! वीक्ष्यकालवशंजगत् । पातालंगच्छतरसाजीवन्भद्रमवाप्स्यसि
मृते त्वयि महाराज! शत्रवस्ते मुदान्विताः । मङ्गलानिप्रगायन्तेविचरिष्यन्तिसर्वतः

इतिश्रीदेवीभागवतेमहापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यांसंहितायांपञ्चमस्कन्धे
युद्धात्प्रत्यागतानांरक्षसांशुम्भायवार्त्तावर्णनंनामत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

एकत्रिंशोऽध्यायः

शुम्भद्वारादेवीम्प्रहर्त्तुं युद्धसमागमवर्णनम्

व्यास उवाच

इति तेषां वचः श्रुत्वाशुम्भोदैत्यपतिस्तथा । उवाचसैनिकान्नाशुकोपाकुलितलोचनः

शुम्भ उवाच

जाल्माः ! किं ब्रूत दुर्वाच्यं कृत्वा जीवितुमुत्सहे ।
निहत्य सचिवान्भ्रातॄन्निर्लज्जो विचरामि किम् ॥ २ ॥
कालःकर्ता शुभानां वाऽशुभानांबलवत्तरः । का चिन्ताममदुर्वारेतस्मिन्नीशेऽप्यरूपके
यद्भवति तद्भवतु यत्करोति करोतु तत् । नमेचिन्ताऽस्तिकुत्राऽपिमरणाज्जीवनात्तथा
स कालोऽप्यन्यथाकर्तुंभावितोनेशतेकश्चित् । न वर्षति चपर्जन्यःश्रावणेमासिसर्वथा
कदाचिन्मार्गशीर्षे वा पौषे माघेऽथ फाल्गुने ।

यदि ते मङ्गरेच्छाऽस्ति कुरूपा भव भामिनि !।
लम्बोष्ठी कुनखी क्रूरा ध्वाङ्क्षवर्णा विलोचना ॥ ४३ ॥
लम्बपादा कुदन्ती च मार्जारनयनाकृतिः । ईदृशं रूपमास्थाय तिष्ठ युद्धे स्थिरा भव
कर्कशं वचनं ब्रूहि ततो युद्धं करोम्यहम् । ईदृशीं सुदतींदृष्ट्वानम्रेपाणिः प्रसीदति॥
हन्तुं त्वां मृगशावाक्षि ! कामकान्तोपमे मृधे ।

व्यास उवाच

इति ब्रुवाणं कामार्तं वीक्ष्य तं जगदम्बिका ॥ ४६ ॥
स्मितपूर्वमिदं वाक्यमुवाच भरतोत्तम !।

देव्युवाच

किं विषीदसि मन्दात्मन्कामबाणविमोहितः ॥ ४७ ॥
प्रेक्षिकाऽहं स्थिता मूढकुरु कालिकया मृधम् । चामुण्डयावाकुर्वेतेतवयोर्वैरणाङ्गणे
प्रहरस्व यथाकामं नाहं त्वां योद्धुमुत्सहे । इत्युक्त्वाकालिकांप्राहदेवीमधुरया गिरा
जह्येनं कालिके ! क्रूरे ! कुरूपंप्रियमाहवे ।

व्यास उवाच

इत्युक्ता कालिका कालप्रेरिता कालरूपिणी ॥ ५० ॥
गदां प्रगृह्य तरसा तस्थावाजौ कृतोद्यमा । तयोः परस्परं युद्धं बभूवाऽतिभयानकम्
पश्यतांसर्वदेवानां मुनीनां च महात्मनाम् । गदामुद्यम्य शुम्भोऽथजघानकालिकांरणे
कालिका दैत्यराजानंगदयान्यहनद्भृशम् । बभञ्जाऽस्यरथंचण्डी गदयाकनकोज्ज्वलम्
खरान्हत्वा जघानाऽऽशु दारुकं दारुणस्वना ।
स पदातिर्गदां गुर्वीं समादाय क्रुधाऽन्वितः ॥ ५४ ॥
कालिकामुभयोर्मध्ये प्रहसन्नहनत्तदा । वञ्चयित्वा गदापातं खड्गमादाय सत्वरा ॥
चिच्छेदाऽस्य भुजं सव्यं सायुधं चन्दनार्चितम् ।
स च्छिन्नबाहुर्विरथो गदापाणिः परिप्लुतः ॥ ५६ ॥
रुधिरेण समागम्य कालिकामहनत्तदा ।

कालो च करवालेन भुजं तस्याऽथ दक्षिणम् ॥ ५७ ॥
चिच्छेद प्रहसन्ती सा सगदं किल साङ्गदम् । कर्तुं पादप्रहारं स कुपितः प्रययौ जवात्
काली चिच्छेद चरणौ खड्गेनाऽस्य त्वरान्विता ।
स छिन्नकरपादोऽपि तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रुवन् ॥ ५९ ॥
धावमानो ययावाशु कालिकां भीषयन्निव । तमागच्छंतमालोक्य कालिका कमलोपमम्
चकर्त मस्तकं कण्ठाद्रुधिरौघवहं भृशम् । छिन्नेऽसौ मस्तके भूमौ पपात गिरिसन्निभः
प्राणा विनिर्ययुस्तस्य देहादुत्क्रम्य सत्वरम् ।
गतासुं पतितं दैत्यं दृष्ट्वा देवाः सवासवाः ॥ ६२ ॥
तुष्टुवुस्ता तदा देवीं चामुण्डां कालिकां तथा ।
ववुर्वाताः शिवास्तत्र दिशश्च विमला भृशम् ॥ ६३ ॥
बभूवुश्चाऽग्नयो होमे प्रदक्षिणशिखाः शुभाः । हतशेषाश्च ये दैत्याः प्रणम्य जगदम्बिकाम्
त्यक्त्वाऽऽयुधानि ते सर्वे पातालं प्रययुर्नृप । एतत्ते सर्वमाख्यातं देव्याश्चरितमुत्तमम्
शुम्भादीनां वधश्चैव सुराणां रक्षणं तथा । एतदाख्यानकं सर्वं पठन्ति भुवि मानवाः
शृण्वन्ति च सदा भक्त्या ते कृतार्था भवन्ति हि ।
अपुत्रो लभते पुत्रान्निर्धनश्च धनं बहु ॥ ६७ ॥
रोगी च मुच्यते रोगात्सर्वान्कामानवाप्नुयात् । शत्रुतो न भयं तस्य यइदं चरितं शुभम्
शृणोति पठते नित्यं मुक्तिभाग्जायते नरः ॥ ६८ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे अष्टादशसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे
शुम्भवधो नामैकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

द्वात्रिंशोऽध्यायः

सुरथराजस्यराज्याधिकारहननन्तस्यऋष्याश्रमेगमनवर्णनम्

जनमेजय उवाच

महिमावर्णितःसम्यक्चण्डिकायास्त्वयामुने !। केनचाऽऽराधितापूर्वंश्चरित्रत्रययोगतः
प्रसन्ना कस्य वरदा केनप्राप्तम्फलम्महत् । आराध्य कामदां देवी कथयस्व कृपानिधे
उपासनाविधिं ब्रह्मंस्तथा पूजाविधिं वद ।
विस्तरेण महाभाग ! होमस्य च विधिं पुनः ॥ ३ ॥

सूत उवाच

इति भूपवचः श्रुत्वा प्रीतः सत्यवतीसुतः । प्रत्युवाच नृपं कृष्णो महामायाप्रपूजनम्

व्यास उवाच

स्वारोचिषेऽन्तरे पूर्वं सुरथो नाम पार्थिवः । बभूव परमोदारः प्रजापालनतत्परः ॥
सत्यवादी कर्मपरो ब्राह्मणानाञ्च पूजकः । गुरुभक्तिरतो नित्यं स्वदारगमने रतः ॥
दानशीलोऽविरोधी च धनुर्वेदैकपारगः । एवम्पालयतो राज्यं म्लेच्छाःपर्वतवासिनः
बलाच्छत्रुत्वमापन्नाः सैन्यं कृत्वा चतुर्विधम् ।
हस्त्यश्वरथपादातिर्माहिताः ते मदोत्कटाः ॥ ८ ॥
कोलाविध्वंसिनः प्राप्ता पृथ्वीग्रहणतत्पराः । सुरथःसैन्यमादाय सम्मुखः समपद्यत
युद्धं समभवद्घोरं तस्य तैरतिदारुणैः । म्लेच्छानान्तुबलं स्वल्पंराज्ञस्तद्बलमद्भुतम्
तथाऽपि तैर्जितो युद्धे दैवाद्राजाऽपराजितः । भग्नश्चस्वपुरंप्राप्तः सुरक्षं दुर्गमण्डितम्
चिन्तयामासमेधावीराजानीतिविचक्षणः । प्रधानान्विमनादृष्ट्वाशत्रुपक्षसमाश्रितान्
स्थानं गृहीत्वा विपुलं परिखादुर्गमण्डितम् ।
कालप्रतीक्षा कर्तव्या किम्वा युद्धं वरं मतम् ॥ १३ ॥
मन्त्रिणःशत्रुवशगा मन्त्रयोग्यानते किल । किं करोमीतिमनसाभूपतिःसमचिन्तयत्

कदाचित्ते गृहीत्वा मां पापाचाराः पराश्रिताः ।
शत्रुभ्योऽथ प्रदास्यन्ति तदा किं वा भविष्यति ॥ १५ ॥
पापबुद्धिषु विश्वासो न कर्तव्यःकदाचन । किं न ते वै प्रकुर्वन्ति ये लोभवशगानराः
भ्रातरंपितरंमित्रं सुहृदं बान्धवं तथा । गुरुम्पूज्यं द्विजं द्वेष्टि लोभाविष्टः सदा नरः॥
तस्मान्मया न कर्तव्यो विश्वासःसर्वथाऽधुना ।
मन्त्रिवर्गेऽतिपापिष्ठे शत्रुपक्षसमाश्रिते ॥ १८ ॥
इति सञ्चिन्त्य मनसा राजा परमदुर्मनाः । एकाकी हयमारुह्यनिर्जगाम पुरात्ततः ॥
असहायोऽथ निर्गत्य गहनं वनमाश्रितः ।
चिन्तयामास मेधावी क्व गन्तव्यम्मयापुनः ॥ २० ॥
योजनत्रयमात्रे तु मुनेराश्रममुत्तमम् । ज्ञात्वा जगाम भूपालस्तापसस्य सुमेधसः ॥
बहुवृक्षसमायुक्तं नदीपुलिनसंश्रितम् । निर्वैरश्वापदाकीर्णं कोकिलारावमण्डितम् ॥
शिष्याध्ययनशब्दाढ्यं मृगयूथशतावृतम् । नीवारान्नसुपक्वाढ्यं सुपुष्पफलपादपम्
होमधूमसुगन्धेन प्रीतिदं प्राणिनां सदा । वेदध्वनिसमाक्रान्तं स्वर्गादपि मनोहरम्
दृष्ट्वा तमाश्रमं राजा बभूवाऽसौ मुदाऽन्वितः ।
भयं त्यक्त्वा मतिं चक्रे विश्रामाय द्विजाश्रमे ॥ २५ ॥
आसज्य पार्श्वेऽश्वन्तु जगाम विनयान्वितः ।
दृष्ट्वा तं मुनिमासीनं सालच्छायासु संश्रितम् ॥ २६ ॥
मृगाजिनासनंशीतंतपसाऽतिकृशमृजुम् । अध्यापयन्तंशिष्यांश्चवेदशास्त्रार्थदर्शिनम्
रहितं क्रोधलोभाद्यैर्द्वन्द्वातीतं विमत्सरम् । आत्मज्ञानरतं सत्यवादिनं शमसंयुतम्
तं वीक्ष्य भूपतिर्भूमौ पपात दण्डवत्तदा । तदग्रेऽश्रुजलापूर्णनयनः प्रेमसंयुतः ॥
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ भद्रन्ते तमुवाच तदामुनिः । शिष्योदत्तवृसींतस्मैगुरुणानोदितस्तदा
उत्थाय नृपतिस्तस्यां समासीनस्तदाज्ञया ।
अर्घ्यपाद्यार्हणं चक्रे सुमेधा विधिपूर्वकम् ॥ ३१ ॥
पप्रच्छाऽत्र कुतः प्राप्तः कस्त्वंचिन्तापरः कथम् ।

कथयस्व यथाकामं सम्भृतं कारणं त्विह ॥ ३२ ॥

किमागमनकृत्यन्ते ब्रूहि कार्यम्मनोगतम् । करिष्ये वाञ्छितं काममसाध्यमपियत्तव

राजोवाच

सुरथोनाम राजाऽहं शत्रुभिश्चपराजितः । त्यक्त्वा राज्यं गृहंभार्यामहं ते शरणङ्गतः

यदाज्ञापयसे ब्रह्मंस्तदहं भक्तितत्परः । करिष्यामि न मे त्राता त्वदन्यः पृथिवीतले

शत्रुभ्यो मे भयङ्घोरं प्राप्तोऽस्म्यद्य तवाऽन्तिकम् ।

त्रायस्व मुनिशार्दूल ! शरणाऽऽगतवत्सल !॥ ३६ ॥

ऋषिरुवाच

निर्भयं वस राजेन्द्र! नाऽत्रतेशात्रवःकिल । आगमिष्यन्तिबलिनोनिश्चयन्तपसोबलात्

नाऽत्र हिंसा प्रकर्तव्या वनवृत्त्या नृपोत्तम !। कर्तव्यं जीवनं शस्तैर्नीवारफलमूलकैः

व्यास उवाच

इतितस्यवचःश्रुत्वानिर्भयःस नृपस्तदा । उवासाऽऽश्रमएवाऽसौफलमूलाशनःशुचिः

कदाचित्सनृपस्तत्र वृक्षच्छायांसमाश्रितः । चिन्तयामासचिन्तार्तोगृहएवगताशयः

राज्यंमेशत्रुभिः प्राप्तं म्लेच्छैःपापरतैःसदा । सम्पीडिताःस्युर्लोकास्तैर्दुराचारैर्गतत्रपैः

गजाश्च तुरगाः सर्वे दुर्बला भक्ष्यवर्जिताः ।

जाताः स्युर्नाऽत्र सन्देहः शत्रुणा परिपीडिताः ॥ ४२ ॥

सेवका मम सर्वे ते शत्रूणां वशवर्तिनः । दुःखिताएवजाताःस्युः पालितायेमया पुरा

धनं मे सुदुराचारैरसद्व्ययपरैः परैः । द्यूतासवभुजिष्यादिस्थानेस्यात्प्रापितङ्किल

कोशक्षयं करिष्यन्ति व्यसनैः पापबुद्धयः ।

न पात्रदाननिपुणाः म्लेच्छास्ते मन्त्रिणोऽपि मे ॥ ४५ ॥

इति चिन्तापरोराजावृक्षमूलस्थितोयदा । तदाऽऽजगामवैश्यस्तुकश्चिदार्तिपरस्तथा

नृपेण पुरतो दृष्टः पार्श्वे तत्रोपवेशितः । पप्रच्छतं नृपःकोऽसि कुतएवाऽऽगतोवनम्

कोऽसि कस्माच्च दीनोऽसि हरिणः शोकपीडितः ।

ब्रूहि सत्यं महाभाग ! मैत्री साप्तपदी मता ॥ ४८ ॥

व्यास उवाच

तच्छ्रुत्वावचनंराज्ञस्तमुवाचविशोत्तमः । उपविश्यस्थिरोभूत्वामत्वासाधुसमागमम्

वैश्य उवाच

मित्राऽहं वैश्यजातीयः समाधिर्नाम विश्रुतः । धनवान्धर्मनिपुणः सत्यवागनसूयकः

पुत्रदारैर्निरस्तोऽहं धनलुब्धैरसाधुभिः ।

"कृपणेति मिषं कृत्वा त्यक्त्वा भार्यासुतस्त्यजाम् ॥"

स्वजनेन च सन्त्यक्तः प्राप्तोऽस्मि वनमाशुवै ॥ ५१ ॥

कोऽस्मि त्वं भाग्यवान्भासि कथयस्व प्रियाऽधुना ।

राजोवाच

सुरथो नाम राजाऽहं दस्युभिः पीडितोऽभवम् ॥ ५२ ॥

प्राप्तोऽस्मि गतराज्योऽत्र मन्त्रिभिः परिवञ्चितः ।

दिष्ट्या त्वमत्र मित्रं मे मिलितोऽसि विशोत्तम !॥ ५३ ॥

सुखेन विहरिष्यावो वनेऽत्रशुभपादपे । शोकं त्यज महाबुद्धे! स्वस्थोभव विशोत्तम!

"अत्रैव च यथाकामं सुखं तिष्ठ मया सह ।"

वैश्य उवाच

कुटुम्बं मे निरालम्बं मयाहीनं सुदुःखितम् ।

भविष्यति च चिन्तार्तं व्याधिशोकोपतापितम् ॥ ५५ ॥

भार्यादेहे सुखं नो वा पुत्रदेहे न वा सुखम् । इति चिन्तातुरंचेतोन मे शाम्यतिभूमिप

कदा द्रक्ष्ये सुतं भार्यागृहं स्वजनमेव च ।

स्वस्थं न मन्मनोराजन्गृहचिन्ताकुलम्भृशम् ॥ ५७ ॥

राजोवाच

यैर्निरस्तोऽसि पुत्राद्यैरसद्वृत्तैः सुबालिशैः ।

तान्दृष्ट्वा किं सुखं तेऽद्य भविष्यति महामते ! ॥ ५८ ॥

हितकारी परः शत्रुर्दुःखदाः सुहृदश्रुवः । तस्मात्स्थिरं मनः कृत्वा विहरस्वमयासह

वैश्य उवाच

मनो मे न स्थिरं राजन्भवत्यद्य सुदुःखितम् ।
चिन्तयाऽत्र कुटुम्बस्य दुस्त्यजस्य दुरात्मभिः ॥ ६० ॥

राजोवाच

ममाऽपि राज्यजं दुःखं दुनोति किल मानसम् ।
पृच्छावोऽद्य मुनिं शान्तं शोकनाशनमौषधम् ॥ ६१ ॥

व्यास उवाच

इतिकृत्वामतितौतुराजावैश्यश्चजग्मतुः । मुनितौविनयोपेतौ प्रष्टुंशोकस्य कारणम्
गत्वा तं प्रणिपत्याऽऽह राजा ऋषिमनुत्तमम् ।
आसीनं सम्यगासीनः शान्तं शान्तिमुपागतः ॥ ६३ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे अष्टादशसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे सुरथराजसमाधिवैश्ययोर्मुनिसमीपेगमननामद्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

ऋषिसुमेधसम्प्रति राज्ञासुरथेन स्वदुःखवर्णनंऋषिणामहामायाप्रभाववर्णनं तत्प्रसङ्गेयुगादौब्रह्मविष्ण्वोर्विसम्वादोज्योतिर्लिङ्गप्रादुर्भावोदेवाधिदेवेनमिथ्यासाक्षित्वेकेतकीपुष्पम्प्रतिमाऽके।शम्भुपालम्भआदिशक्तेर्महिमवर्णनम्

राजोवाच

मुने वैश्योऽयमधुना वने मे मित्रताङ्गतः । पुत्रदारैर्निरस्तोऽयं प्राप्तोऽत्र ममसङ्गमम
[“कुटुम्ब विरहेणाऽस्मौ दुःखितोऽतीवदुर्मनाः ।

न शान्तिमुपयात्येव तथाऽपि मम साम्प्रतम ॥ २ ॥
गतराज्यस्यदुःखेनशोकार्तोऽस्मिमहामते"] । निष्कारणश्च मे चिन्ताहृदयान्ननिवर्तते
हया मे दुर्बलाः स्युः किं गजाः शत्रुवशङ्गताः ॥ २ ॥
भृत्यवर्गस्तथा दुःखी जातःस्यात्तु मया विना ।
कोशक्षयं करिष्यन्ति रिपवोऽतिबलात्क्षणात् ॥ ३ ॥
इत्येवं चिन्तयानस्य न मे निद्रातनौसुखम् । जानामीदंजगन्मिथ्यास्वप्नवत्सर्वमेव हि
जानतोऽपिनवोभ्रान्तंनस्थिरं भवतिप्रभो । कोऽहंकेऽश्वागजाःकेऽमीनतेमेचसहोदराः
न पुत्रा नच मित्राणि येषां दुःखं दुनोति माम् ।
भ्रमोयऽमितिजानामि तथाऽपि मम मानसः ॥ ६ ॥
मोहोनैवाऽपसरति किं तत्कारणमद्भुतम् । स्वामिंस्त्वमसि सर्वज्ञःसर्वसंशयनाशकृत्
कारणं ब्रूहि मोहस्य ममाऽस्य च दयानिधे !।

व्यास उवाच

इति पृष्टस्तदा राजा सुमेधा मुनिसत्तमः ॥ ८ ॥
तमुवाच परं ज्ञानं शोकमोहविनाशनम् ।

ऋषिरुवाच

शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि कारणं बन्धमोक्षयोः ॥ ९ ॥
महामायेति विख्याता सर्वेषां प्राणिनामिह ।
ब्रह्मा विष्णुस्तथेशानस्तुराषाड् वरुणोऽनिलः ॥ १० ॥
सर्वे देवा मनुष्याश्च गन्धर्वोरगराक्षसाः । वृक्षाश्चविविधा वल्ल्यः पशवोमृगपक्षिणः
मायाधीनाश्च ते सर्वे भाजनं बन्धमोक्षयोः । तयासृष्टमिदं सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम
तद्वशे वर्ततेनूनंमोहजालेनयन्त्रितम् । त्वं कियान्मानुषेष्वेकः क्षत्रियोरजसाऽऽविलः
ज्ञानिनामपि चेतांसि मोहयत्यनिशं हि सा । ब्रह्मेशवासुदेवाद्याज्ञानेसत्यपि शेषतः
तेऽपि रागवशाल्लोके भ्रमन्ति परिमोहिताः ।
पुरा सत्ययुगेराजन्विष्णुर्नारायणःस्वयम् ॥ १५ ॥

श्वेतद्वीपं समासाद्य चकार विपुलं तपः । वर्षाणामयुतं यावद्ब्रह्मविद्याप्रसक्तये ॥१८
अनश्वरसुखावाप्तौ चिन्तयन्वस्तुतः परम् । एकस्मिन्निर्जने देशे ब्रह्माऽपि परमाद्भुते ॥
स्थितस्तपसि राजेन्द्र मोहस्य विनिवृत्तये । कदाचिद्वासुदेवोऽसौ स्थलान्तरमतिर्हरिः

तस्माद्देशात्समुत्थाय जगामाऽन्यद्दिदृक्षया ।

चतुर्मुखोऽपि राजेन्द्र ! तथैव निःसृतः स्थलात् ॥ १६ ॥

मिलितौ मार्गमध्ये तु चतुर्मुखचतुर्भुजौ । अन्योन्यं पृष्टवन्तौ तौ कस्त्वं कस्त्वमिति स्म ह
ब्रह्मा प्रोवाच तं देवं कर्ताऽहं जगतः किल । विष्णुस्तमाह भो मूर्ख जगत्कर्ताऽहमच्युतः

त्वं कियान्बलहीनोऽस्मि रजोगुणसमाश्रितः ।

सत्त्वाश्रितं हि मां विद्धि वासुदेवं सनातनम् ॥ २२ ॥

मया त्वं रक्षितोऽद्यैव कृत्वा युद्धं सुदारुणम् । शरणं मे समायातो दानवाभ्यां प्रपीडितः
मया तौ निहतौ कामं दानवौ मधुकैटभौ । कथं गर्वायसे मन्द! मोहोऽयं त्यज साम्प्रतम्

न मत्तोऽप्यधिकः कश्चित्संसारेऽस्मिन्प्रसारिते ।

ऋषिरुवाच

एवं प्रवदमानौ तौ ब्रह्मविष्णू परस्परम् ॥ २५ ॥

स्फुरदोष्ठौ वेपमानौ लोहिताक्षौ बभूवतुः । प्रादुर्बभूव सहसा तयोर्विवदमानयोः ॥
मध्ये लिङ्गं सुधाश्वेतं विपुलं दीर्घमद्भुतम् । आकाशे तरसा तत्र वागुवाचाऽशरीरिणी

तौ सम्बोध्य महाभागौ विवदन्तौ परस्परम् ।

ब्रह्मन्विष्णो विवादं मा कुरुतां वा परस्परम् ॥ २८ ॥

लिङ्गस्याऽस्य परं पारमधस्तादुपरि ध्रुवम् । यो यातियुवयोर्मध्ये स श्रेष्ठो वां सदैव हि
एकः प्रयातु पातालमाकाशमपरोऽधुना । प्रमाणं मे वचः कार्यं त्यक्त्वा वादं निरर्थकम्

मध्यस्थः सर्वदा कार्यो विवादेऽस्मिन्द्वयोरिह ।

ऋषिरुवाच

तच्छ्रुत्वा वचनं दिव्यं सज्जीभूतौ कृतोद्यमौ ॥ ३१ ॥

जग्मतुर्मातुमग्रस्थं लिङ्गमद्भुतदर्शनम् । पातालमगमद्विष्णुर्ब्रह्माऽप्याकाशमेव च ॥

परिमातुं महालिङ्गं स्वमहत्त्वविवृद्धये । विष्णुर्गत्वा कियद्देशं श्रान्तः सर्वात्मना यतः
न प्रापाऽन्तं स लिङ्गस्य परिवृत्य ययौ स्थलम् ।
ब्रह्माऽगच्छत्ततश्चोर्ध्वं पतितं केतकीदलम् ॥ ३४ ॥
शिवस्यमस्तकात्प्राप्यपरावृत्तोमुदाऽऽवृतः । आगत्यतरसाब्रह्मा विष्णवे केतकीदलम्
दर्शयित्वा च वितथमुवाच मदमोहितः । लिङ्गस्य मस्तकादेतद् गृहीतं केतकीदलम्
अभिज्ञानाय चाऽऽनीतं तव चित्तप्रशान्तये ।
श्रुत्वा तद्ब्रह्मणो वाक्यं दृष्ट्वा च केतकीदलम् ॥ ३७ ॥
हरिस्तं प्रत्युवाचेदं साक्षीकःकथयाऽधुना । यथार्थवादी मेधावीसदाचारःशुचिःसमः
साक्षी भवति सर्वत्र विवादे समुपस्थिते ।

ब्रह्मोवाच

दूरदेशात्समायाति साक्षी कः समयेऽधुना ॥ ३६ ॥
यत्सत्यं तद्वचःसेयं केतकी कथयिष्यति । इत्युक्त्वाप्रेरितातत्रब्रह्मणाकेतकीस्फुटम्
वचनं प्राह तरसा शार्ङ्गिणंप्रत्यबोधयत् । शिवमूर्ध्निस्थिताब्रह्मागृहीत्वामांसमागतः
सन्देहोऽत्र न कर्तव्यस्त्वया विष्णो ! कदाचन ।
मम वाक्यप्रमाणं हि ब्रह्मा पारं गतोऽस्य ह ॥ ४२ ॥
गृहीत्वा मां समायातः शिवभक्तैः समर्पिताम् । केतक्यावचनंश्रुत्वाहरिराहस्मयच्छिव
महादेवः प्रमाणं मे यद्यसौ वचनं वदेत् ।

श्रुतिरुवाच

तदाकर्ण्य हरेर्वाक्यं महादेवः सनातनः ॥ ४४ ॥
कुपितः केतकींप्राहमिथ्यावादिनि! मा वद । गच्छतोमध्यतःप्राप्तापतितामस्तकान्मम
मिथ्याभिभाषिणी त्यक्ता मया त्वं सर्वदैवहि । ब्रह्मा लज्जापरोभूत्वाननाममधुसूदनम्
शिवेन केतकी त्यक्ता तद्दिनात्कुसुमेषु वै ।
एवं मायाबलं विद्धि ज्ञानिनामपि मोहदम् ॥ ४७ ॥
अन्येषां प्राणिनां राजन्कथावार्ताविभ्रमंप्रति । देवानां कार्यसिद्ध्यर्थं सर्वदैव रमापतिः

दैत्यान्वञ्चयते चाऽऽशु त्यक्त्वा पापभयं हरिः । अवतारकरोदेवोनानायोनिषु माधवः
त्यक्त्वाऽऽनन्दसुखंदैत्यैर्युद्धं चैवाऽकरोद्विभुः । नूनं मायबलंचैतन्माधवेऽपिजगद्गुरौ
सर्वज्ञेदेवकार्यांशे का वार्ताऽन्यस्य भूपते ।
ज्ञानिनामपि चेतांसि परमा प्रकृतिः किल ॥ ५१ ॥
बलादाकृष्य मोहाय प्रयच्छति महीपते !। यया व्याप्तमिदं सर्वं भगवत्या चराचरम्
मोहदा ज्ञानदा सैव बन्धमोक्षप्रदा सदा ।

राजोवाच

भगवन्ब्रूहि मे तस्याः स्वरूपं बलमुत्तमम् ॥ ५३ ॥
उत्पत्तिकारणं वाऽपि स्थानं परमकं च यत् ।

ऋषिरुवाच

नचोत्पत्तिरनादित्वान्नृप तस्याः कदाचन । नित्यैवसापरा देवीकारणानांचकारणम्
वर्तते सर्वभूतेषु शक्तिःसर्वात्मना नृप ॥ ५५ ॥
शववच्छक्तिहीनस्तु प्राणी भवति सर्वथा । चिच्छक्तिः सर्वभूतेषुरूपंतस्यास्तदेवहि
आविर्भावतिरोभावौ देवाना कार्यसिद्धये । यदा स्तुवन्तितांदेवामनुजाश्चविशाम्पते
प्रादुर्भवतिभूतानांदुःखनाशाय चाऽम्बिका । नानारूपधरा देवी नानाशक्तिसमन्विता
आविर्भवति कार्यार्थं स्वेच्छया परमेश्वरी । दैवाधीनानसा देवी यथा सर्वे सुरा नृप
न कालवशगा नित्यं पुरुषार्थप्रवर्तिनी । अकर्ता पुरुषो द्रष्टा दृश्यं सर्वमिदं जगत्
दृश्यस्य जननी सैव देवी सदसदात्मिका ।
पुरुषं रञ्जयत्येका कृत्वा ब्रह्माण्डनाटकम् ॥ ६१ ॥
रञ्जिते पुरुषे सर्वं संहरत्यतिरंहसा । तया निमित्तभूतास्ते ब्रह्माविष्णुमहेश्वराः ॥
कल्पिताः स्वस्वकार्येषु प्रेरिता लीलया त्वमी ।
स्वांशं तेषु समारोप्य कृतास्ते बलवत्तराः ॥ ६३ ॥
दत्ताश्च शक्तयस्तेभ्योगौर्लक्ष्मीर्गिरिजातथा । तेतांध्यायन्तिदेवेशाःपूजयन्तिपरांमुदा
ज्ञात्वा सर्वेश्वरीं शक्तिं सृष्टिस्थितिविनाशिनीम् ।

एतत्ते सर्वमाख्यातं देवीमाहात्म्यमुत्तमम् ॥ ६५ ॥
मम बुद्ध्यनुसारेण नाऽन्तं जानामि भूपते ! ।
इतिश्रीदेवीभागवतेमहापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यांसंहितायांपञ्चमस्कन्धे
देवीमाहात्म्यवर्णनंनामत्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

--: ० :--

चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

सुमेधसम्प्रतिसुरथराजस्यभगवत्याःसमाराधनविधिसम्बन्धेप्रश्नोदेवीमहत्त्व
विषयेऋषिराजयोःसम्वादवर्णनम्

राजोवाच

भगवन्ब्रूहिमेसम्यक्तस्याआराधनेविधिम् । पूजाविधिंचमन्त्रांश्चतथाहोमविधिं वद

ऋषिरुवाच

शृणु राजन्प्रवक्ष्यामितस्याःपूजाविधिंशुभम् । कामदं मोक्षदं नृणांज्ञानदंदुःखनाशनम्
आदौ स्नानविधिं कृत्वा शुचिःशुक्लाम्बरोनरः । आचम्यप्रयतः कृत्वाशुभमायतनंनिजम्
ततोऽवलिप्तभूम्यान्तु संस्थाप्याऽऽसनमुत्तमम् ।
तत्रोपविश्य विधिवत्त्रिराचम्य मुदाऽन्वितः ॥ ४ ॥
पूजाद्रव्यं सुसंस्थाप्य यथाशक्त्यनुसारतः । प्राणायामं ततः कृत्वाभूतशुद्धिंविधायच
कुर्यात्प्राणप्रतिष्ठां तु ससंभारं प्रोक्ष्य मन्त्रतः ।
कालज्ञानन्ततः कृत्वा न्यासं कुर्याद्यथाविधि ॥ ६ ॥
शुभेताम्रमये पात्रे चन्दनेन स्थितेन च । षट्कोणंविलिखेद्यन्त्रं चाऽष्टकोणंततोबहिः
नवाक्षरस्य मन्त्रस्य बीजानिविलिखेत्ततः । कृत्वायन्त्रप्रतिष्ठाञ्च वेदोक्तांसम्विधायच
अर्चांवा धातवींकुर्यात्पूजामन्त्रैःशिवोदितैः । पूजनं पृथिवीपाल! भगवत्याः प्रयत्नतः

कृत्वा वा विधिवत्पूजामागमोक्तांसमाहितः । जपेन्नवाक्षरं मन्त्रं सततं ध्यानपूर्वकम्
होमं दशांशतः कुर्यात्तद्दशांशेन च तर्पणम् । भोजनं ब्राह्मणानाञ्च तद्दशांशेन कारयेत्
चरित्रत्रयपाठञ्च नित्यं कुर्याद्विसर्जयेत् । नवरात्रव्रतञ्चैव विधेयं विधिपूर्वकम् ॥१२

आश्विने च तथा चैत्रे शुक्ले पक्षे नराधिप ! ।

नवरात्रोपवासो वै कर्तव्यः शुभमिच्छता ॥ १३ ॥

होमः सुविपुलः कार्यो जप्यमन्त्रैःसुपायसैः । शर्करामृतमिश्रैश्च मधुयुक्तैःसुसंस्कृतैः
छागमांसेन वा कार्यो बिल्वपत्रैस्तथाशुभैः । हयारिकुसुमैरक्तैस्तिलैर्वा शर्करायुतैः
अष्टम्याञ्च चतुर्दश्यां नवम्याञ्च विशेषतः । कर्तव्य पूजनं देव्या ब्राह्मणानाञ्च भोजनम्
निर्धनो धनमाप्नोति रोगी रोगात्प्रमुच्यते । अपुत्रोलभते पुत्राञ्छुभांश्चवशवर्तिनः

राज्यभ्रष्टो नृपो राज्यं प्राप्नोति सार्वभौमिकम् ।

शत्रुभिः पीडितो हन्ति रिपुं मायाप्रसादतः ॥ १८ ॥

विद्यार्थी पूजनं यस्तु करोतिनियतेन्द्रियः । अनवद्यांशुभांविद्यांविन्दतेनाऽत्रसंशयः

ब्राह्मणो क्षत्रियो वैश्यः शूद्रो वा भक्तिसंयुतः ।

पूजयेज्जगतां धात्रींसर्वसुखभाग्भवेत् ॥ २० ॥

नवरात्रव्रतं कुर्यान्नरनारीगणश्च यः । वाञ्छितं फलमाप्नोति सर्वदा भक्तितत्परः ॥
आश्विने शुक्लपक्षे तु नवरात्रव्रतं शुभम् । करोति भावसंयुक्तः सर्वान्कामानवाप्नुयात्

विधिवन्मण्डलं कृत्वा पूजास्थानं प्रकल्पयेत् ।

कलशं स्थापयेत्तत्र वेदमन्त्रविधानतः ॥ २३ ॥

यन्त्रंसुरुचिरंकृत्वास्थापयेत्कलशोपरि । वापयित्वायवांश्चारूनपार्श्वतः परिवर्तितान्
कृत्वोपरि वितानं च पुष्पमालासमावृतम् । धूपदीपसुसंयुक्तं कर्तव्यं चण्डिकागृहम्

त्रिकालं तत्र कर्तव्या पूजा शक्त्यनुसारतः ।

वित्तशाठ्यंनकर्तव्यंचण्डिकायाश्चपूजने ॥ २६ ॥

धूपदीपैः सुनैवेद्यैः फलपुष्पैरनेकशः । गीतवाद्यैः स्तोत्रपाठैर्वेदपारायणैस्तथा ॥२७
उत्सवस्तत्र कर्तव्यो नानावादित्रसंयुतैः । कन्यकानां पूजनं च विधेयं विधिपूर्वकम्

चन्दनैर्धूपदीपैर्वस्त्रैर्भक्ष्यैश्च विविधैस्तथा। सुगन्धतैलमाल्यैश्च मनसा रुचिकारकैः

एवं सम्पूजनं कृत्वा होमं मन्त्र विधानतः।

अष्टम्यां वा नवम्यां वा कारयेद्विधिपूर्वकम् ॥ ३० ॥

ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चात्पारणं दशमीदिने। कर्तव्यं शक्तितो दानं देयं भक्तिपरैर्नृपैः

एवं यः कुरुते भक्त्या नवरात्रव्रतं नरः।

नारी वा सधवा भक्त्या विधवा वा पतिव्रता ॥ ३२ ॥

इह लोके सुखंभोगान्प्राप्नोतिमनसेप्सितान्। देहान्ते परमं स्थानं प्राप्नोति व्रततत्परः

जन्मान्तरेऽम्बिकाभक्तिर्भवत्यव्यभिचारिणी।

जन्मोत्तमकुले प्राप्य सदाचारो भवेद्धि सः ॥ ३४ ॥

नवरात्रव्रतं प्रोक्तं व्रतानामुत्तमं व्रतम्। आराधनं शिवायास्तु सर्वसौख्यकरं परम्

अनेन विधिना राजन्समाराधय चण्डिकाम्।

जित्वा रिपूनस्खलितं राज्यं प्राप्स्यस्यनुत्तमम् ॥ ३६ ॥

सुखञ्च परमं भूप! देहेऽस्मिन्स्वगृहेपुनः। पुत्रदारान्समासाद्य लप्स्यसे नाऽत्र संशयः

वैश्योत्तम! त्वमेवाऽद्य समाराधय कामदाम्।

देवीं विश्वेश्वरीं मायां सृष्टिसंहारकारिणीम् ॥ ३८ ॥

स्वजनानां च मान्यस्त्वं भविष्यसि गृहे गतः।

सुखं सांसारिकं प्राप्य यथाभिलषितं पुनः ॥ ३९ ॥

देवीलोके शुभे वासो भविता ते न संशयः। नाऽऽराधिताभगवतीयैस्तेनरकभागिनः

इह लोकेऽतिदुःखार्ता नानारोगैः प्रपीडिताः।

भवन्ति मानवा राजञ्छत्रुभिश्च पराजिताः ॥ ४१ ॥

निष्कलत्रा ह्यपुत्राश्च तृष्णार्ताः स्तब्धबुद्धयः। बिल्वीदलैःकरवीरैःशतपत्रैश्चचम्पकैः

अर्चिता जगतां धात्री यैस्तेऽतीव विलासिनः।

भवन्ति कृतपुण्यास्ते शक्तिभक्तिपरायणाः ॥ ४३ ॥

धनविभवसुखाढ्या मानवा मानवन्तः सकलगुणगणानां भाजनं भारतीशाः

निगमपठितमन्त्रैः पूजिता यैर्भवानी नृपतितिलकमुख्यास्ते भवन्तीह लोके
इतिश्रीदेवीभागवतेमहापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यांसंहितायांपञ्चमस्कन्धे
भगवत्याःपूजाराधनविधिवर्णनंनामचतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

राजवैश्ययोर्देवीप्रसादेनकृततपसोस्तत्प्रत्यक्षदर्शनंतयोरिष्टप्राप्तिवर्णनम्

व्यास उवाच

इति तस्य वचःश्रुत्वादुःखितौवैश्यपार्थिवौ । प्रणिपत्यमुनिंप्रीत्याप्रश्रयानवतौभृशम्
हर्षेणोत्फुल्लनयनावचतुर्वाक्यकोविदौ । कृताञ्जलिपुटौ शान्तौ भक्तिप्रवणचेतसौ
भगवन्पावितावद्य शान्तौ दीनौ शुचान्वितौ । तव सत्कसरस्वत्या गङ्गयेव भगीरथः
साधवः सम्भवन्तीह परोपकृतितत्पराः । अकृत्रिमगुणारामाः सुखदाः सर्वदेहिनाम्
पूर्वपुण्यप्रसङ्गेन प्राप्तोऽयमाश्रमःशुभः । तवाऽऽवाभ्या महाभाग ! महादुःखविनाशकः
भवन्ति मानवा भूमौ बहवःस्वार्थतत्पराः । परार्थसाधनेदक्षाःकेचित्क्वाऽपि भवादृशाः
दुःखितोऽहं मुनिश्रेष्ठ ! वैश्योऽयं चार्ऽतिदुःखितः ।
उभौ संसारसन्तप्तौ तवाऽऽश्रमपदे मुदा ॥ ७ ॥
दर्शनादेव हे विद्वन् ! गत दुःखमिहाऽऽवयोः । देहजं मानसंवाक्यश्रवणादेवसाम्प्रतम्
धन्यावावां कृतकृत्यौजातौसार्किसुधारसात् । पावितौभवताब्रह्मन्कृपया करुणार्णव
गृहाणाऽस्मत्करौ साधो ! नय पारं भवार्णवे ।
मग्नौ भ्रान्तावति ज्ञात्वा मन्त्रदानेन साम्प्रतम् ॥ १० ॥
तपः कृत्वाऽतिविपुलं समाराध्य सुखप्रदम् ।
सम्प्राप्य दर्शनं भूयो यास्यावो निजमन्दिरम् ॥ ११ ॥
वदनात्तव संप्राप्य देवीमन्त्रं नवाक्षरम् । स्मरणं च करिष्यावो निराहारौ धृतव्रतौ

व्यास उवाच

इति सम्बोधितस्ताभ्यां सुमेधामुनिसत्तमः । ददौमन्त्रंशुभंताभ्यांध्यानबीजपुरःसरम्
तौ च प्राप्य मुनेर्मन्त्रं सम्मन्त्र्यगुरुदैवतौ । जग्मतुर्वैश्यराजानौ नदीतीरमनुत्तमम्
एकान्ते विजने स्थानेकृत्वाऽऽसनपरिग्रहम् । उपविष्टौ स्थिरप्रज्ञौ तावतीवकृशोदरौ
मन्त्रजाप्यरतौ शान्तौ चरित्रत्रयपाठकौ । नित्यतुर्मासमेकं तु तत्र ध्यानपरायणौ ॥
तयोर्मासव्रते नैव जाताप्रीतिरनुत्तमा ।
पादाम्बुजेभवान्यास्तुस्थिरबुद्धिस्तथाऽप्यलम् ॥ १७ ॥
कदाचित्पादयोर्गत्वा मुनेस्तस्य महात्मनः । कृतप्रणामावागत्य तस्थतुश्चकुशासने
नान्यकार्यपरौ क्वाऽपि बभूवतुः कदाचन । देवीध्यानपरौ नित्यं जप मन्त्ररतौ सदा
एवं जाते तदा पूर्णे तत्र सम्वत्सरे नृप । बभूवतुः फलाहारं त्यक्त्वा पर्णाशनौनृप ॥
वर्षमेकं तपस्तत्र चक्रतुर्वैश्यपार्थिवौ । शुष्कपर्णाशनौ दान्तौ जपध्यानपरायणौ ॥
पूर्णे वर्षद्वये जाते कदाचिद्दर्शनं च तौ । प्रापतुः स्वप्नमध्ये तु भगवत्या मनोहरम्
रक्ताम्बरधरां देवीं चारुभूषणभूषिताम् ।
कदाचिन्नृपतिः स्वप्नेऽप्यपश्यज्जगदम्बिकाम् ॥ २३ ॥
वीक्ष्य स्वप्नेचतौदेवींप्रीतियुक्तौबभूवतुः । जलाहारैस्तृतीयेतुस्थितौसम्वत्सरेतुतौ
एवं वर्षत्रयं कृत्वा ततस्तौ वैश्यपार्थिवौ । चक्रतुस्तौतदाचिन्तांचित्तेदर्शनलालसौ
प्रत्यक्षदर्शनं देव्या न प्राप्तं शान्तिदं नृणाम् । देहत्यागंकरिष्यावोदुःखितौभृशमातुरौ
इति सञ्चिन्त्यमनसाराजाकुण्डंचकार ह । त्रिकोणंसुस्थिरंसौम्यंहस्तमात्रप्रमाणतः
संस्थाप्य पावकं राजा तथा वैश्योऽतिभक्तिमान् ।
जुहावाऽग्नौ निजं मांसं छित्त्वा छित्त्वा पुनः पुनः ॥ २८ ॥
तथावैश्योऽपिदीप्तेऽग्नौस्वमांसंप्राक्षिपत्तदा । रुधिरेणबलिंचास्यैददतुस्तौकृतोद्यमौ
तदा भगवती दत्त्वा प्रत्यक्षंदर्शनं तयोः । प्राहप्रीतिभरोद्भ्रान्तौदृष्ट्वातौदुःखितौभृशम्

श्रीदेव्युवाच

वरंवरयभोराजन्यत्तेमनसि वाञ्छितम् । तुष्टाऽहंतपसातेऽद्यभक्त्योऽस्मित्वंमतोमम

वैश्यंप्राहतदादेवीप्रसन्नाऽहंमहामते !। किन्तेऽभीष्टं ददाम्यद्यप्रार्थयाऽऽशु मनोगतम्

व्यास उवाच

तच्छ्रुत्वावचनंराजा तमुवाच मुदाऽन्वितः । देहिमेऽद्यनिजंराज्यं हतशत्रुबलं बलात्

तमुवाच तदा देवी गच्छ राजन्निजं गृहम् ।

शत्रवःक्षीणसत्त्वास्ते गमिष्यन्ति पराजिताः ॥ ३४ ॥

मन्त्रिणस्तेसमागम्य ते:पतिष्यन्तिपादयोः । कुरुराज्यंमहाभागनगरे स्वंयथासुखम्

कृत्वाराज्यंसुविपुलंवर्षाणामयुतंनृप !। देहान्तेजन्मसंप्राप्यमत्याच्चभवितामनुः ॥३६

व्यास उवाच

वैश्यस्तामप्युवाचेदं कृताञ्जलिपुटः शुचिः । न मे गृहेण कार्यं वै न पुत्रेण धनेन वा

सर्वं बन्धकरं मातः! स्वप्नवन्नश्वरं स्फुटम् । ज्ञानंमे देहि विशदं मोक्षदं बन्धनाशनम

असारेऽस्मिंश्च संसारे मूढा मज्जन्ति पामराः ।

पण्डिताः सन्तरन्तीह तस्मान्नेच्छन्ति संसृतिम् ॥ ३६ ॥

व्यास उवाच

तदाकर्ण्यमहामाया वैश्यंप्राह पुरःस्थितम् । वैश्यवर्य तवज्ञानं भविष्यति न संशयः

इति दत्त्वा वरं ताभ्या तत्रैवाऽन्तरधीयत । अदर्शनं गतायां तु राजा तं मुनिसत्तमम्

प्रणम्य हयमारुह्य गमनाय मनो दधे । तदैव तस्य सचिवास्तत्राऽऽगत्य नृपंप्रजाः

प्रणेमुर्विनयोपेतास्तमूचुः प्राञ्जलि स्थिताः । राजंस्ते शत्रवः सर्वे पापाश्च निहतारणे

राज्यं निष्कण्टकं भूपकुरुष्वपुरमास्थितः । तच्छ्रुत्वावचनं राजानत्वातं मुनिसत्तमम्

आपृच्छ्य निर्ययौ तत्र मन्त्रिभिः परिवारितः ।

सम्प्राप्य च निजं राज्य दारान्स्वजनबान्धवान् ॥ ४० ॥

बुभुजे पृथिवी सर्वां ततः सागरमेखलाम् । वैश्योऽपिज्ञानमासाद्यमुक्तसङ्गःसमन्ततः

कालातिवाहनं तत्र मुक्तबन्धश्चकार ह । तीर्थेषु विचरन्गायन्भगवत्या गुणानथ ॥

एतत्ते कथितं देव्याश्चरितं परमाद्भुतम् । आराधनफलप्राप्तिर्यथावद्भूपवैश्ययोः॥४८॥

दैत्यानां हननं प्रोक्तं प्रादुर्भावस्तथा शुभः । एवंप्रभावा सा देवी भक्तानामभयप्रदा

यः शृणोति नरो नित्यमेतदाख्यानमुत्तमम् । स प्राप्नोति नरःसत्यं संसारसुखमद्भुतम्
ज्ञानदं मोक्षदं चैव कीर्तिदं सुखदं तथा । पावनं श्रवणान्नूनमेतदाख्यानमुत्तमम्
अखिलार्थप्रदं नृणां सर्वधर्मसमावृतम् । धर्मार्थकाममोक्षाणां कारणं परमं मतम्

सूत उवाच

जनमेजयेनराज्ञाऽसौपृष्टःसत्यवतीसुतः । उवाचसंहितांदिव्यांव्यासःसर्वार्थतत्त्ववित्

चरितं चण्डिकायास्तु शुम्भदैत्यवधाश्रितम् ।
कथयामास भगवान्कृष्णः कारुणिको मुनिः ॥ ५४ ॥
इति वः कथितः सारः पुराणानां मुनीश्वराः !।

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे सुरथराजसमाधिवैश्ययोर्देवीभक्त्येष्टप्राप्तिवर्णनंनामपञ्चत्रिंशोऽध्यायः

———:०:———

॥ श्रीगणेशायनमः ॥

देवीभागवतपुराणम्

षष्ठं स्कन्धम्

प्रथमोऽध्यायः

वृत्रासुरकथायांसूतम्प्रतितद्वधार्थंसत्त्वगुणेनविष्णुनाकथंछद्मनाकार्यंकृतमिति
ऋषिप्रश्नेतदुत्तरवार्त्तावर्णनम्

ऋषय ऊचुः

सूत सूत महाभाग! मिष्टन्ते वचनामृतम् । न तृप्ताः स्मोवयं पीत्वाद्वैपायनकृतंशुभम्
पुनस्त्वां प्रष्टुमिच्छामः कथां पौराणिकीं शुभाम् ।
वेदेऽपि कथितां रम्यां प्रसिद्धां पापनाशिनीम् ॥ २ ॥
वृत्रासुर इतिख्यातोवीर्यवांस्त्वष्टुरात्मजः । स कथंनिहतः संख्ये वासवेनमहात्मना
त्वष्टा वै सुरपक्षीयस्तत्पुत्रो बलवत्तरः । शक्रेण घातितः कस्माद्ब्रह्मयोनिर्महाबलः
देवाःसत्त्वगुणोत्पन्नामानुषाराजसाःस्मृताः । तिर्यञ्चस्तमसाप्रोक्तापुराणागमवादिभिः
विरोधोऽत्र महान्भाति नूनं शतमखेन ह । छलेन बलवान्वृत्रः शक्रेण विनिपातितः
विष्णुः प्रेरयिता तत्र स तु सत्त्वधरःपरः । प्रविष्टः पविमध्ये स छद्मना भगवान्प्रभुः

सन्धिं विधाय स ह्येवं मन्त्रितोऽसौ महाबलः ।
हरिभ्यां सत्यमुत्सृत्य जलफेनेन शातितः ॥ ८ ॥

कृतमिन्द्रेणहरिणाकिमेतत्सूत! साहसम् । महान्तोऽपिच मोहेन वञ्चिताःपापबुद्धयः
अन्यायवर्तिनोऽत्यर्थं भवन्ति सुरसत्तमाः । सदाचारेण युक्तेन देवाः शिष्टत्वमागताः
एवं विशिष्टधर्मेण शिष्टत्वं कीदृशंपुनः । हत्वा वृत्रन्तु विश्वस्तं शक्रेणच्छद्मनापुनः
प्राप्तं पापफलं नो वा ब्रह्महत्यासमुद्भवम् । किं च त्वया पुरा प्रोक्तं वृत्रासुरवधःकृतः

श्रीदेव्या इति तच्चाऽपि चित्तं मोहयतीह नः ।

सूत उवाच

शृण्वन्तु मुनयो वृत्तं वृत्रासुरवधाश्रयम् ॥ १३ ॥

यथेन्द्रेण च सम्प्राप्तं दुःखं हत्यासमुद्भवम् । एवमेव पुरा पृष्टो व्यासःसत्यवतीसुतः

पारीक्षितेन राज्ञाऽपि स यदाह च तद् ब्रुवे ।

जनमेजय उवाच

कथं वृत्रासुरः पूर्वं हतो भवता मुने !॥ १५ ॥

सहायंविष्णुमासाद्यच्छद्मनासात्त्विकेन ह । कथञ्चदेव्या निहतो दैत्योऽसौकेनहेतुना
कथमेकवधोद्वाभ्यां कृतः स्यान्मुनिपुङ्गव !। तदेतच्छ्रोतुमिच्छामिपरंकौतूहलं हि मे
महतांचरितं शृण्वन्को विरज्येत मानवः । कथयाऽम्बावैभवं त्वंवृत्रासुरवधाश्रितम्

व्यास उवाच

धन्योऽसि राजंस्तव बुद्धिरीदृशी जाता पुराणश्रवणेऽतिसादरा ।
पीत्वाऽमृतं देववरास्तु सर्वथा पाने वितृष्णाःप्रभवन्ति वै पुनः ॥ १६ ॥
दिने दिने तेऽधिकभक्तिभावः कथासु राजन्महनीयकीर्तेः ।
श्रोता यदैकमनाः शृणोति वक्ता तदा प्रीतमना ब्रवीति ॥ २० ॥
युद्धं पुरा वासववृत्रयोर्यद्वेदे प्रसिद्धञ्च तथा पुराणे ।
दुःखं सुरेन्द्रेण तथैव लब्धं हत्वा रिपुं त्वाष्ट्रमपायमेव ॥ २१ ॥
चित्रं किमत्र नृपते! हरिवज्रभृद्भ्यां यच्छद्मना विनिहतस्त्रिशिरोऽथ वृत्रः ।

मायाबलेन मुनयोऽपि विमोहितास्ते चक्रुश्च निन्द्यमनिशं किल पापभीताः ॥
विष्णुः सदैव कपटेन जघान दैत्यान्सत्त्वात्ममूर्तिरपि मोहमवाप्य कामम् ।
कोऽन्योऽस्ति तां भगवतीं मनसाऽपि जेतुं शक्तः समस्तजनमोहकरीं भवानीम्
मत्स्यादियोनिषु सहस्रयुगेषु सद्यः साक्षाद्भवत्यपि यया विनियोजितोऽत्र ।
नारायणो नरसखो भगवाननन्तः कार्यं करोति विहिताविहितं कदाचित् ॥२४
देहं धनं गृहमिदं स्वजना मदीयं पुत्राः कलत्रमिति मोहमुपेत्य सर्वः ।
पुण्यं करोत्यथ च पापचयं करोति मायागुणैरतिबलैर्विकलीकृतो यत् ॥ २५ ॥
न जातु मोहं क्षपितुं नरः क्षमः कश्चिद्भवेद्भूप ! परावरार्थवित् ।
विमोहितस्तैस्त्रिभिरेव मूलतो वशीकृतात्मा जगतीतले भृशम् ॥ २६ ॥
अथ तौमायया विष्णुवासवौमोहितौभृशम् । जघ्नतुश्छद्मना वृत्रं स्वार्थसाधनतत्परौ
तदहं सम्प्रवक्ष्यामि वृत्तान्तमवनीपते !। कारणं पूर्ववैरस्य वृत्रवासवयोर्मिथः ॥
त्वष्टाप्रजापतिस्त्वासीद्देवश्रेष्ठो महातपाः ।।देवानां कार्यकर्ता च निपुणो ब्राह्मणप्रियः

सपुत्रं वै त्रिशिरसमिन्द्रद्वेषात्किलाऽसृजत् ।
विश्वरूपेति विख्यातं नाम्ना रूपेण मोहनम् ॥ ३० ॥

त्रिभिःसवदनैःश्रेष्ठैर्य्यरोचयतमनोहरैः । त्रिभिर्भिन्नानिकार्याणिमुखैःसमकरोन्मुनिः
वेदानेकेन सोऽधीते सुरामेकेन सोऽपिबत् । तृतीयेन दिशःसर्वा युगपच्च निरीक्षते
त्रिशिरा भोगमुत्सृज्यतपश्चक्रेसुदुष्करम् । तपस्वी स मृदुर्दान्तो धर्ममेवसमाश्रितः
पञ्चाग्निसाधनं काले पादपाग्रे निवेशनम् । जलमध्ये निवासञ्च हेमन्ते शिशिरे तथा
निराहारो जितात्माऽसौत्यक्तसर्वपरिग्रहः । तपश्चचारमेधावी दुष्करं मन्दबुद्धिभिः
तं च दृष्ट्वा तपस्यन्तं खेदमाप शचीपतिः । विषादमगमत्तत्र शक्रोऽयं मास्मभूदिति
दृष्ट्वा तस्य तपोवीर्यंसत्यञ्चाऽमिततेजसः । चिन्ताञ्च महतीं प्राप ह्यनिशं पाकशासनः
विवर्धमानस्त्रिशिरा मामयं शातयिष्यति । नोपेक्ष्यः सर्वथाशत्रुर्वर्धमानबलो बुधैः ॥

तस्मादुपायः कर्तव्यस्तपोनाशाय साम्प्रतम् ।
कामस्तु तपसां शत्रुः कामान्नश्यति वै तपः ॥ ३६ ॥

तथैवाऽद्य प्रकर्तव्यं भोगासक्तो भवेद्यथा। इति सञ्चिन्त्य मनसा बुद्धिमान्बलमर्दनः

आज्ञापयत्सोऽप्सरसस्तत्पुत्रप्रलोभने ।

उर्वशीं मेनकां रम्भां घृताचीं च तिलोत्तमाम् ॥ ४१ ॥

समाहूयाऽब्रवीच्छक्रस्तास्तदारूपगर्विताः । प्रियंकुरुध्वं मे सर्वाःकार्येऽद्यसमुपस्थिते

यतोमेऽद्य महाञ्छत्रुस्तपस्तपति दुर्जयः । कार्यं कुरुतगच्छध्वं प्रलोभयत माचिरम्

शृङ्गारवेषैर्विविधैर्हावैर्देहसमुद्भवैः । प्रलोभयत भद्रं वः शमयध्वं ज्वरं मम ॥ ४४ ॥

अस्वस्थोऽहं महाभागास्तस्य ज्ञात्वा तपोबलम् ।

बलवानासनं मेऽद्य ग्रहीष्यत्यविलम्बितः ॥ ४५ ॥

भयं मे समुपायातं क्षिप्रं नाशयताऽबलाः । उपकुर्वन्तु सहिताः कार्येऽद्यसमुपस्थिते

तच्छ्रुत्वा वचनं नार्य ऊचुस्तं प्रणताः पुरः । मा भयं कुरु देवेश! यतिष्यामःप्रलोभने

यथा न स्याद्भयं तस्मात्तथा कार्यं महाद्युते !। नृत्यगीतविहारैश्च मुनेस्तस्यप्रलोभने

कटाक्षैरङ्गभेदैश्च मोहयित्वामुनिं विभो । लोलुपं वशमस्माकंकरिष्यामोनियन्त्रितम्

व्यास उवाच

इत्याभाष्य हरिं नार्यो ययुस्त्रिशिरसोऽन्तिकम् ।

कुर्वन्त्यो विविधान्भावान्कामशास्त्रोचितानपि ॥ ५० ॥

गायन्त्यस्तालभेदैस्ता नृत्यन्त्यः पुरतो मुनेः । तं प्रलोभयितुंचक्रुर्नानाभावान्वराङ्गनाः

नाऽपश्यत्सतपोराशिरङ्गनानां विडम्बनम् । इन्द्रियाणिवशेकृत्वामूकान्धबधिरःस्थिरः

दिनानि कतिचित्तस्थुर्नार्यस्तस्याऽऽश्रमे वरे ।

कुर्वन्त्यो गाननृत्यादिप्रपञ्चानति मोहदान् ॥ ५२ ॥

न चचाल यदा कामं ध्यानात्त्रिशिरामुनिः । परावृत्य तदा देव्यःपुनःशक्रमुपस्थिताः

कृताञ्जलिपुटाः सर्वादेवराजमथाऽब्रुवन् । श्रान्ता दीना भयत्रस्ता विवर्णवदनाभृशम्

देवदेवमहाराज ! यत्नश्च परमः कृतः । न स शक्यो दुराधर्षो धैर्याच्चालयितुं विभो !

उपायोऽन्यः प्रकर्तव्यः सर्वथा पाकशासन !।

नाऽस्माकं बलमेतस्मिंस्तापसे विजितेन्द्रिये ॥ ५७ ॥

दिष्ट्या वयं न शप्ताः स्म यदनेन महात्मना। मुनिना वह्नितुल्येन तपसाद्योतितेनहि
विसृज्याऽप्सरसः शक्रश्चिन्तयामास मन्दधीः।
तस्यैव च वधोपायं पापबुद्धिरसाम्प्रतम् ॥ ५६ ॥
विसृज्यलोकलज्जां स तथा पापभयं भृशम्। चकार पापबुद्धिं तु तद्वधाय महीपते!
इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे अष्टादशसाहस्र्यां संहितायां षष्ठस्कन्धे
त्रिशिरसस्तपोभङ्गायदेवराजेन्द्रद्वारानानोपायचिन्तनवर्णनंनामप्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः

इन्द्रकृतत्रिशिरवधानन्तरंत्वष्टादेवराजवधार्थंवृत्रोत्पत्तिरितिवर्णनम्

व्यास उवाच

अथ स लोभमुपेत्य सुराधिपः समभिगम्य गजाननसंस्थितः।
त्रिशिरसं प्रति दुष्टमतिस्तदा मुनिमपश्यदमेयपराक्रमम् ॥ १ ॥
तमभिवीक्ष्य दृढासनसंस्थितं जितगिरं सुसमाधिवशं गतम्।
रविविभावसुसन्निभमोजसा सुरपतिः परमापदमभ्यगात् ॥ २ ॥
कथमसौ विनिहन्तुमहो मया! मुनिरपापमतिः किल सम्मतः।
रिपुरयं सुसमिद्धतपोबलः कथमुपेक्ष्य इहाऽऽसनकामुकः ॥ ३ ॥
इति विचिन्त्य पविं परमायुधं प्रति मुमोच मुनिं तपसि स्थितम्।
शशिदिवाकरसन्निभमाशुगं त्रिशिरसं सुरसङ्घपतिः स्वयम् ॥ ४ ॥
तदभिघातहतः स धरातले किल पपात ममार च तापसः।
शिखरिणः शिखरं कुलिशार्दितं निपतितं भुवि चाऽद्भुतदर्शनम् ॥ ५ ॥
तं निहत्य मुदमाप सुरेशश्चुक्रुशुश्च मुनयस्तु संस्थिताः।
हाहतेति भृशमार्तनिस्वनाः किं कृतं शतमखेन पापिना ॥ ६ ॥

विनापराधं तपसां निधिर्हतः शचीपतिः पापमतिर्दुरात्मा ।
फलं किलाऽयं तरसा कृतस्य प्राप्नोतु पापी हननोद्भवस्य ॥ ७ ॥
तं निहत्य तरसा सुरराजो निर्जगाम निजमन्दिरमाशु ।
स हतोऽपि विरराज महात्मा जीवमान इव तेजसां निधिः ॥ ८ ॥
तं दृष्ट्वा पतितं भूमौ जीवन्तमिववृत्रहा । चिन्तामापाऽतिक्षिप्ताङ्गः किमुजीवेदयं पुनः
विमृश्यमनसाऽतीवतत्क्षणंपुरतःस्थितम् । मघवा वीक्ष्य तं प्राहस्वकार्यसदृशं वचः
तक्षंश्छिन्धिशिरांस्यस्यकुरुष्ववचनं मम । माजीवतुमहातेजाभातिजीवन्निव स्वयम्
इत्याकर्ण्य वचस्तस्य तक्षोवाच विगर्हयन् ।

तक्षोवाच

महास्कन्धो भृशं भाति परशुर्न तरिष्यति ॥ १२ ॥
ततो नाऽहंकरिष्यामिकार्यमेतद्विगर्हितम् । त्वया वै निन्दितंकर्मकृतं सद्भिर्विगर्हितम्
अहं बिभेमि पापाद्वै मृतस्यैव च मारणे । मृतोऽयं मुनिरस्त्येव शिरसः कृन्तनेनकिम्
भयं किं तेऽत्र सञ्जातं पाकशासन ! कथ्यताम् ।

इन्द्र उवाच

सजीव इव देहोऽयमाभाति विशदाकृतिः ॥ १५ ॥
तस्माद् बिभेमि मा जीवेन्मुनिः शत्रुरयं मम ।

तक्षोवाच

नाऽत्र किं त्रपसे विद्वन्क्रूरेणाऽनेन कर्मणा ॥ १६ ॥
ऋषिपुत्रमिमं हत्वा ब्रह्महत्याभयं न किम् ?।

इन्द्र उवाच

प्रायश्चित्तं करिष्यामि पश्चात्पापक्षयाय वै ॥ १७ ॥
शत्रुस्तु सर्वथा वध्यश्छलेनाऽपि महामते !।

तक्षोवाच

त्वं लोभाऽभिहतः पापं करोषि मघवन्निह ॥ १८ ॥

तं विनाऽहं कथं पापं करोमि वद मे विभो !।

इन्द्र उवाच

मखेषु खलु भागं ते करिष्यामि सदैव हि ॥ १९ ॥

शिरः पशोस्तु ते भागं यज्ञे दास्यन्ति मानवाः ।

शुक्लेनाऽनेन छिन्धि त्वं शिरांस्यस्य कुरु प्रियम् ॥ २० ॥

व्यास उवाच

एतच्छ्रुत्वा महेन्द्रस्य वचस्तक्षामुदाऽन्वितः । कुठारेण शिरांस्यस्यचकर्तसुदृढेनहि

छिन्नानि त्रीणि शीर्षाणि पतितानि यदा भुवि ।

तेभ्यस्तु पक्षिणः क्षिप्रं विनिष्पेतुः सहस्रशः ॥ २२ ॥

कलविङ्कास्तित्तिरयस्तथैवच कपिञ्जलाः । पृथक्पृथग्विनिष्पेतुर्मुखतस्तरसा तदा

येनवेदानधीते स्म सोमञ्चपिबते तथा । तस्माद्वक्त्रात्किलोपेतुः सद्यःएवकपिञ्जलाः

येन सर्वादिशः कामं पिबन्निव निरीक्षते ।

तस्मात्तु तित्तिरास्तत्र निःसृतास्तिग्मतेजसः ॥ २५ ॥

यत्सुरापं तु तद्वक्त्रं तस्मात्तुचटकाःकिल । विनिष्पेतुस्त्रिशिरसएवन्ते विहगा नृप

एवं विनिःसृतान्दृष्ट्वा तेभ्यः शक्रस्तदाऽण्डजान् । मुमोदमनसाराजञ्जगामत्रिदिवंपुनः

गते शक्रे तु तक्षाऽपि स्वगृहं तरसा ययौ । यज्ञभागं परं लब्ध्वा मुदमाप महीपते

इन्द्रोऽथ स्वगृहं गत्वा हत्वा शत्रुं महाबलम् ।

मेने कृतार्थमात्मानं ब्रह्महत्यामचिन्तयन् ॥ २६ ॥

तं श्रुत्वा निहतं त्वष्टा पुत्रम्परमधार्मिकम् । चुकोपाऽतीव मनसा वचनं चेदमब्रवीत्

अनागसं मुनिं यस्मात्पुत्रं निहतवान्मम । तस्मादुत्पादयिष्यामि तद्वधार्थं सुतं पुनः

सुराः पश्यन्तु मे वीर्यं तपसश्च बलन्तथा । जानातुसर्वपापात्मा स्वकृतस्यफलंमहत्

इत्युक्त्वाऽग्निं जुहावाऽथ मन्त्रैराथर्वणोदितैः ।

पुत्रस्योत्पादनार्थाय त्वष्टा क्रोधसमाकुलः ॥ ३३ ॥

कृते होमेऽष्टरात्रं तु सन्दीप्ताच्च विभावसोः । प्रादुर्बभूव तरसा पुरुषः पावकोपमः ॥

तं दृष्ट्वाऽग्रे सुतं त्वष्टा तेजोबलसमन्वितम् ।
वेगात्प्रकटितं वह्नेर्दीप्यमानमिवाऽनलम् ॥ ३९ ॥
उवाच वचनं त्वष्टा सुतं वीक्ष्यपुरःस्थितम् । इन्द्रशत्रो विवर्धस्व प्रतापात्तपसोमम
इत्युक्ते वचने त्वष्ट्राक्रोधप्रज्वलितेनच । सोऽवर्धतदिवं स्तब्ध्वा वैश्वानरसमद्युतिः
जातः स पर्वताकारः कालमृत्युसमः स्वराट् ।
किं करोमीति तं प्राह पितरं परमातुरम् ॥ ३८ ॥
कुरु मे नामकं नाथ कार्यं कथयसुव्रत । चिन्तातुरोऽसिकस्मात्त्वंब्रूहिमेशोककारणम्
नाशयाम्यद्यते शोकमितिमे व्रतमाहितम् । तेन जातेन किं भूयःपिताभवतिदुःखितः
पिबामिसागरं सद्यश्चूर्णयामिधराधरान् । उद्यन्तं वारयाम्यद्य तरणिं तिग्मतेजसम्
हन्मीन्द्रं ससुरं सद्यो यमं वा देवतान्तरम् ।
क्षिपामि सागरे सर्वान्समुत्पाट्य च मेदिनीम् ॥ ४२ ॥
इत्याकर्ण्यवचस्तस्य त्वष्टापुत्रस्य पेशलम् । प्रत्युवाचाऽतिमुदितस्तंसुतंपर्वतोपमम्
वृजिनात्त्रातुमधुना यस्माच्छक्तोऽसि पुत्रक ।
तस्माद् वृत्र इति ख्यातं तव नाम भविष्यति ॥ ४४ ॥
भ्राता तव महाभाग त्रिशिरानामतापसः । त्रीणितस्यचशीर्षाणिह्यभवन्वीर्यवन्तिच
वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञः सर्वविद्याविशारदः । संस्थितस्तपसि प्रायात्त्रिलोकीविस्मयप्रदे ॥
शक्रेण तु हतः सोऽद्य वज्रघातेन साम्प्रतम् ।
विनाऽपराधं सहसा छिन्नानिमस्तकानि च ॥ ४७ ॥
तस्मात्त्वं पुरुषव्याघ्र जहिशक्रंकृतागसम् । ब्रह्महत्यायुतं पापं निस्त्रपं दुर्मतिं शठम्
इत्युक्त्वा च तदा त्वष्टा पुत्रशोकसमाकुलः ।
आयुधानि च दिव्यानि चकार विविधानि च ॥ ४९ ॥
ददावस्मै सहस्राक्षवधाय प्रबलानि च । खड्गशूलगदाशक्तितोमरप्रमुखानि वै ॥५०॥
शार्ङ्गंधनुस्तथा बाणं परिघं पट्टिशं तथा । चक्रं दिव्यं सहस्रारं सुदर्शनसमप्रभम् ॥
तूणीरौ चाक्षयौदिव्यौ कवचं चाऽतिसुन्दरम् । रथं मेघप्रतीकाशं दृढं भारसहंजवम्

युद्धोपकरणं सर्वं कृत्वा पुत्राय पार्थिव !।
दत्त्वाऽसौ प्रेरयामास त्वष्टा क्रोधसमन्वितः ॥ ५३ ॥
इति श्रीदेवीभागवतेमहापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यांसंहितायां षष्ठस्कन्धे
त्वष्ट्राऽत्रिशिरोवधमनुवृत्रोत्पत्तिवर्णनंनामद्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः

शक्रवधार्थंवृत्रस्यगमनंइन्द्रबृहस्पतिसम्वादवर्णनपूर्वकंदेवानांपराजयो वृत्रासुरविजयवर्णनंत्वष्ट्रावृत्रायसमाराधनोपदेशवर्णनम्

व्यास उवाच

कृतस्वस्त्ययनो वृत्रो ब्राह्मणैर्वेदपारगैः। निर्जगाम रथारूढो हन्तुं शक्रं महाबलः ॥
तदैव राक्षसाः क्रूराः पुरा देवपराजिताः। समाजग्मुश्च सेवार्थं वृत्रं ज्ञात्वा महाबलम्
इन्द्रदूतास्तु तंदृष्ट्वा युद्धाय तु समागतम्। वेगादागत्यवृत्तान्तंशशंसुस्तस्यचेष्टितम्

दूता ऊचुः

स्वामिञ्छीघ्रमिहाऽऽयाति वृत्रो नाम रिपुस्तव।
बलवान्स्यन्दने रूढस्त्वष्ट्रा चोत्पादितः किल ॥ ४ ॥
अभिचारेण नाशार्थं तव क्रोधान्वितेन वै। पुत्रघाताभितप्तेन दुःसहो राक्षसैर्युतः ॥
यत्नंकुरु महाभाग! शीघ्रमायातिसाम्प्रतम्। मेरुमन्दरसङ्काशो घोरशब्दोऽतिदारुणः
एतस्मिन्नन्तरे तत्र भीता देवगणा भृशम्। आमत्योचुःसुरपतिंशृण्वन्तं दूतभाषितम्

गणा ऊचुः

मघवन्दुर्निमित्तानि भवन्ति त्रिदशालये। बहूनि भयशंसीनि पक्षिणांविरुतानि च
काका गृध्रास्तथा श्येनाः कङ्काद्या दारुणाः खगाः।
रुदन्ति विकृतैः शब्दैःफूत्कारैर्भवनोपरि ॥ ६ ॥

चीचीकूचीतिनिनदान्कुर्वन्तिविहगाभृशम् । वाहनानाञ्चनेत्रेभ्योजलधाराः पतन्त्यधः
श्रूयतेऽतिमहाञ्छब्दो रुदतीनां निशासु च । राक्षसीनांमहाभाग! भवनोपरि दारुणः
प्रपतन्तिध्वजास्तूर्णं विनावातेन मानद । प्रभवन्तिमहोत्पाता दिविभूम्यन्तरिक्षजाः
कृष्णाम्बरधरानार्यो भ्रमन्तिचगृहेगृहे । यान्तु यान्तु गृहात्तूर्णं कुर्वन्त्यो विकृताननाः

रात्रौ स्वप्नेषु कान्तानां सुप्तानां निजमन्दिरे ।
केशाँल्लुनन्ति राक्षस्यो भीषयन्त्यो भृशातुराः ॥ १४ ॥

एवं विधानि देवेश भूकम्पोल्कादयस्तथा । गोमायवोरुदन्तिस्मनिशायां भवनाङ्गणे
सरटानाञ्च जालानि प्रभवन्ति गृहेगृहे । अङ्गप्रस्फुरणादीनि दुर्निमित्तानि सर्वशः ॥

व्यास उवाच

इति तेषां वचः श्रुत्वा चिन्तामाप सुरेश्वरः । बृहस्पतिं समाहूयपप्रच्छ चमनोगतम्

इन्द्र उवाच

ब्रह्मन्किमुतघोराणिनिमित्तानिभवन्तिवै । वाताश्चदारुणा वान्तिप्रपतंत्यलकाःखतः

सर्वज्ञोऽसि महाभाग समर्थो विघ्ननाशने ।
बुद्धिमाञ्छास्त्रतत्त्वज्ञो देवतानां गुरुस्तथा ॥ १६ ॥

कुरुशान्तिविधानज्ञ! शत्रुक्षयविधायिनीम् । यथामेन भवेद्दुःखंतथाकार्यंविधीयताम्

बृहस्पतिरुवाच

किं करोमि सहस्राक्ष ! त्वयाऽद्य दुष्कृतं कृतम् ।
अनागसं मुनिं हत्वा किं फलं समुपार्जितम् ॥ २१ ॥

अत्युग्रपुण्यपापानां फलं भवति सत्वरम् । विचार्य खलुकर्तव्यंकार्यंतद्भूतिमिच्छता
परोपतापनं कर्म न कर्तव्यं कदाचन । न सुखं विन्दते प्राणी परपीडापरायणः ॥२३
मोहाल्लोभाद्ब्रह्महत्याकृता शक्र त्वयाऽधुना । तस्यपापस्यसहसा फलमेतदुपागतम्
अवध्यः सर्वदेवानांजातोऽसौवृत्रसञ्ज्ञकः । हन्तुं त्वां समायाति दानवैर्बहुभिर्वृतः

आयुधानि च सर्वाणि वज्रतुल्यानि वासव !।
त्वष्ट्रा दत्तानि दिव्यानि गृहीत्वा समुपस्थितः ॥ २६ ॥

समागच्छति दुर्धर्षो रथारूढः प्रतापवान् । देवेन्द्र! प्रलयं कुर्वन्नाऽस्यमृत्युर्भविष्यति

कोलाहलस्तदा जातस्तथाब्रुवति वाक्पतौ ।

गन्धर्वाः किन्नरा यक्षा मुनयश्च तपोधनाः ॥ २८ ॥

सद्मानि विहायैवाऽमराःसर्वे पलायिताः । तद् दृष्ट्वा महदाश्चर्यं शक्रश्चिन्तापरायणः

आज्ञापयामास तदा सैन्योद्योगाय सेवकान् । आनयध्वं वसून्रुद्रानश्विनौ च दिवाकरान्

पूषणञ्च भगं वायुं कुबेरं वरुणं यमम् । विमानेषु समारुह्य सायुधाः सुरसत्तमाः ॥

समागच्छन्तु तरसा शत्रुरायाति साम्प्रतम् ।

इत्याज्ञाप्य सुरपतिः समारुह्य गजोत्तमम् ॥ ३२

बृहस्पतिंपुरोधायनिर्गतोनिजमन्दिरात् । तथैवत्रिदशाःसर्वे स्वं स्वंवाहनमास्थिताः

युद्धाय कृतसंकल्पा निर्ययुः शस्त्रपाणयः । वृत्रोऽथ दानवैर्युक्तः संप्राप्तो मानसोत्तरम्

पर्वतं देवतावासं रम्यं पादपशोभितम् ।

इन्द्रोऽप्यागत्य सङ्ग्रामं चकार मानसोत्तरे ॥ ३५ ॥

पर्वते देवतायुक्तो वाचस्पतिपुरः सरः । तत्राऽभूद्दारुणंयुद्धं वृत्रवासवयोस्तदा ॥३६

गदासिपरिघैः पाशैर्बाणैः शक्तिपरश्वधैः । मानुषेण प्रमाणेन संग्रामः शरदां शतम्

बभूव भयदो नृणामृषीणां भावितात्मनाम् ।

वरुणः प्रथमं भग्नस्ततो वायुगणः किल ॥ ३८ ॥

यमो विभावसुःशक्रः सर्वे तेनिर्गता रणात् । पलायनपरान्दृष्ट्वा देवानिन्द्रपुरोगमान्

वृत्रोऽपिपितरं प्रागात्तदाश्रमस्थंमुदाऽन्वितम् । प्रणम्यप्राहत्वष्टारंपितुःकार्यं मयाकृतम्

देवा विनिर्जिताः सर्वे सेन्द्राः सामरसंस्थिताः ।

विद्रुतास्ते गताः स्थानं यथा सिंहान्मृगा गजाः ॥ ४१ ॥

इन्द्रः पदातिरगमन्मयाऽऽनीतो गजोत्तमः । ऐरावतोऽयं भगवन्गृहाणद्विरदोत्तमम्

न हतास्ते मया तस्मादयुक्तं भीतमारणम् ।

आज्ञापय पुनस्तात किं करोमि तवेप्सितम् ॥ ४३ ॥

निर्जरा निर्गताः सर्वेभयभीताः श्रमातुराः । इंद्रोऽप्यैरावतं त्यक्त्वा भयभीतःपलायितः

व्यास उवाच

इतिपुत्रवचःश्रुत्वात्वष्टाप्राहमुदाऽन्वितः । पुत्रवानद्यजातोऽस्मिसफलं ममजीवितम्

त्वयाऽहंपावितःपुत्रगतो मे मानसोज्वरः ।

निश्चलं मे मनो जातं दृष्ट्वा वीर्यं तवाऽद्भुतम् ॥ ४६ ॥

शृणुवक्ष्याम्यहं पुत्रहितं तेऽद्य निशामय । तपः कुरुमहाभाग सावधानः स्थिरासनः

विश्वासो नैव कर्तव्यः कदाचित्पाकशासनः ।

शत्रुस्ते छलकर्ताऽस्ति नानाभेदविशारदः ॥ ४८ ॥

तपसा प्राप्यते लक्ष्मीस्तपसा राज्यमुत्तमम् ।

तपसा बलवृद्धिः स्यात्सङ्ग्रामे विजयस्तथा ॥ ४९ ॥

आराध्यद्रुहिणं देवं लब्ध्वा वरमनुत्तमम् । जहि शक्रं दुराचारंब्रह्महत्यासमायुतम् ॥

सावधानः स्थिरो भूत्वा दातारं भज शङ्करम् । वाञ्छितंस वरंदद्यात्संतुष्टश्चतुराननः

तोषयित्वा विश्वयोनिं ब्रह्माणममितौजसम् ।

अविनाशित्वमासाद्य जहि शक्रं कृतागसम् ॥ ५२ ॥

वैरं मनसि मे पुत्र वर्तते सुतघातजम् । नशान्तिमनुगच्छामि न स्वपामि सुखेन ह

तापसो मे हतः पुत्रोनिरागाःपाप्मनायतः । न विन्दामिसुखंवृत्रत्वं मामुद्धरदुःखितम्

व्यास उवाच

तदाकर्ण्य पितुर्वाक्यं वृत्रः क्रोधयुतस्तदा । आज्ञामादाय च पितुर्जगाम तपसे मुदा

गन्धमादनमासाद्य पुण्यां देवधुनीं शुभाम् ।

स्नात्वा कुशासनं कृत्वा संस्थितश्च स्थिरासनः ॥ ५६ ॥

त्यक्त्वाऽन्नं वारिपानं च योगाभ्यासपरायणः ।

ध्यायन्विश्वसृजं चित्ते सोपविष्टः स्थिरासने ॥ ५७ ॥

मघवा तं तपस्यन्तंज्ञात्वाचिन्तातुरोऽभवत् । गंधर्वान्प्रेषयामासविघ्नार्थं पाकशासनः

यक्षांश्चपन्नगान्सर्पान्किन्नरानमितौजसः । विद्याधरानप्सरसो देवदूताननेकशः ॥५६॥

उपायास्तैः कृताः सम्यक्तपोविघ्नाय मायिभिः ।

न चचाल ततो ध्यानात्त्वाष्ट्रः परमतापसः ॥ ६० ॥

इतिश्रीदेवीभागवतेमहापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायांषष्ठस्कन्धे
ब्रह्मणःसमाराधनायत्वष्ट्रावृत्रोपदेशवर्णनंनामतृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः

वृत्रम्प्रतिब्रह्मणोवरदानम् वृत्रेणवरगर्वेणपराभूतानांदेवानांब्रह्मशिवसहितानां विष्णुसमीपेगमनम्

व्यास उवाच

निर्गतास्ते परावृत्तास्तपोविघ्नकराःसुराः । निराशाःकार्यसंसिध्यै तं दृष्ट्वादृढचेतसम्
जाते वर्षशते पूर्णे ब्रह्मालोकपितामहः । तत्राऽऽजगाम तरसा हंसारूढश्चतुर्मुख : ॥२

आगत्य तमुवाचेदं त्वाष्ट्र पुत्र ! सुखीभव ।
त्यक्त्वा ध्यानं वरंब्रूहि ददामि तव वाञ्छितम् ॥ ३ ॥

तपसा तेऽद्यतुष्टोऽस्मि त्वां दृष्ट्वाचाऽतिकर्शितम् । वरंवरयभद्रं तेमनोऽभिलषितंतव

व्यास उवाच

वृत्रस्तदाऽतिविशदां पुरतो निशम्य वाचं सुधासमरसां जगदेककर्तुः ।
संत्यज्य योगकलनां सहसोदतिष्ठत्सञ्जातहर्षनयनाश्रुकलाकलापः ॥ ५ ॥
पादौ प्रणम्य शिरसा प्रणयाद्विधातुर्बद्धाञ्जलिः पुरत एव समाससाद ।
प्रोवाच तं सुवरदं तपसा प्रपन्नं प्रेम्णाऽतिगद्गदगिरा विनयेन नम्रः ॥ ६ ॥
प्राप्तं मया सकलदेवपदं प्रभोऽद्य यद्दर्शनं तव सुदुर्लभमाशु जातम् ।
वाञ्छाऽस्ति नाथ! मनसिप्रवणे दुरापा तां प्रब्रवीमि कमलासन! वेत्सि भावम्
मृत्युश्च मा भवतु मे किल लोहकाष्ठशुष्कार्द्रवंशनिचयैरपरैश्च शस्त्रैः ।
वृद्धिं प्रयातु मम वीर्यमतीव युद्धे यस्माद्भवामि सबलैरमरैरजेयः ॥ ८ ॥

व्यास उवाच

इत्थं सम्प्रार्थितो ब्रह्मा तमाह प्रहसन्निव । उत्तिष्ठ गच्छ भद्रन्ते वाञ्छितं सफलं सदा
न शुष्केण न चाऽऽर्द्रेण न पाषाणेन दारुणा । भविष्यति च ते मृत्युरिति सत्यं ब्रवीम्यहम्

इति दत्त्वा वरं ब्रह्मा जगाम भुवनं परम् ।

वृत्रस्तु तं वरं लब्ध्वा मुदितः स्वगृहं ययौ ॥ ११ ॥

शशंस पितुरग्रे तद्वरदानं महामतिः । त्वष्टा तु मुदितः प्राप्तं पुत्रं प्राप्तवरं तदा ॥१२॥

स्वस्ति तेऽस्तु महाभाग ! जहि शक्रं रिपुं मम ।

हत्वाऽऽगच्छ त्रिशिरसो हन्तारं पापसंयुतम् ॥ १३ ॥

भव त्वं त्रिदशाधीशः सम्प्राप्य विजयं रणे । ममाऽऽधिं छिन्धि विपुलं पुत्रनाशसमुद्भवम्

जीवतो वाक्यकरणात्क्षयाहे भूरिभोजनात् ।

गयायां पिण्डदानाच्च त्रिभिः पुत्रस्य पुत्रता ॥ १५ ॥

तस्मात्पुत्र ! ममाऽत्यर्थं दुःखं नाशितुमर्हसि ।

त्रिशिरा मम चित्तात्तु नाऽपसर्पति कर्हिचित् ॥ १६ ॥

सुशीलः सत्यवादी च तापसो वेदवित्तमः । अपराधं विना तेन निहतः पापबुद्धिना ॥

व्यास उवाच

इति तस्य वचः श्रुत्वा पुत्रः परमदुर्जयः । रथमारुह्य तरसा निर्जगाम पितुर्गृहात् ॥
रणदुन्दुभिनिर्घोषं शङ्खनादं महाबलम् । कारयित्वा प्रयाणं स चकार मदगर्वितः ॥
निर्ययौ नयसंयुक्तः सेवकानिति सम्वदन् । हत्वा शक्रं ग्रहीष्यामि सुरराज्यमकण्टकम्
इत्युक्त्वा निर्जगामाऽऽशु स्वसैन्यपरिवारितः । महता सैन्यनादेन भीषयन्नमरावतीम्
तमागच्छन्तमाज्ञाय तुराषाडपि सत्वरः । सेनोद्योगं भयत्रस्तः कारयामास भारत !

सर्वानाहूय तरसा लोकपालानरिन्दमः ।

युद्धार्थं प्रेरयन्सर्वान्सर्वान्व्यरोचत महाद्युतिः ॥ २३ ॥

गृध्रव्यूहं ततः कृत्वा संस्थितः पाकशासनः । तत्राऽऽजगाम वेगात्तु वृत्रः परबलार्दनः
देवदानवयोस्तावत्संग्रामस्तुमुलोऽभवत् । वृत्रवासवयोः संख्ये मनसा विजयैषिणोः

एवं परस्परं युद्धे सन्दीप्ते भयदे भृशम्। आकूतं देवताः प्रापुर्दैत्याश्च परमां मुदम्
तोमरैर्भिन्दिपालैश्च खड्गैः परशुपट्टिशैः। जघ्नुः परस्परं देवदैत्याः स्वस्वबलायुधैः
एवं युद्धे वर्तमाने दारुणे लोमहर्षणे। शक्रं जग्राह सहसा वृत्रः क्रोधसमन्वितः ॥२८

अपावृत्य मुखे क्षिप्त्वा स्थितो वृत्रः शतक्रतुम्।
मुदितोऽभून्महाराजपूर्ववैरमनुस्मरन् ॥ २६ ॥

शक्रे ग्रस्तेऽथ वृत्रेण सम्भ्रान्तानिर्जरास्तदा। चुक्रुशुःपरमार्तास्ते हाशक्रेतिमुहुर्मुहुः
अपावृतं मुखे शक्रं ज्ञात्वा सर्वे दिवौकसः। बृहस्पतिं प्रणम्योचुर्दीना व्यथितचेतसः
किं कर्तव्यं द्विजश्रेष्ठत्वमस्माकंगुरुः परः। शक्रो ग्रस्तस्तु वृत्रेणरक्षितो देवतान्तरैः
विना शक्रेणकिं कुर्मः सर्वे हीनपराक्रमाः। अभिचारं कुरु विभो! सत्वरः शक्रमुक्तये

बृहस्पतिरुवाच

किं कर्तव्यं सुराः क्षिप्तो मुखमध्येऽस्ति वासवः।
वृत्रेणोत्सादितो जीवन्नस्ति कोष्ठान्तरे रिपोः ॥ ३४ ॥

व्यास उवाच

देवाश्चिन्तातुराः सर्वेतुरासाहं तथा कृतम्। दृष्ट्वा विमृश्य तरसा चक्रुर्यत्नं विमुक्तये

असृजन्त महासत्त्वां जृम्भिकां रिपुनाशिनीम्।
ततो विजृम्भमाणः स व्यावृतास्यो बभूव ह ॥ ३६ ॥
विजृम्भमाणस्य ततो वृत्रस्याऽऽस्यादवाप तत्।
स्वान्यङ्गान्यपि संक्षिप्य निष्क्रान्तो बलसूदनः ॥ ३७ ॥ *

ततःप्रभृति लोकेषुजृम्भिका प्राणिसंस्थिता। जहृषुश्चसुराःसर्वेशक्रंदृष्ट्वाविनिर्गतम्
ततः प्रववृते युद्धं तयोर्लोकभयप्रदम्। वर्षाणामयुतं यावद्दारुणं लोमहर्षणम् ॥ ३६॥
एकतश्च सुराः सर्वे युद्धाय समुपस्थिताः। एकतो बलवांस्त्वाष्ट्रः संग्रामे समवर्तत
यदा व्यवर्धत रणे वृत्रो वरमदावृतः। पराजितस्तदा शक्रस्तेजसा तस्य धर्षितः
विव्यथे मघवा युद्धे ततः प्राप्य पराजयम्। विषादमगमन्देवा दृष्ट्वा शक्रंपराजितम्
जग्मुस्त्यक्त्वा रणं सर्वेदेवा इन्द्रपुरोगमाः। गृहीतं देवसदनं वृत्रेणाऽऽगत्य रंहसा ॥

देवोद्यानानि सर्वाणि भुङ्क्तेऽसौ दानवो बलात् ।
ऐरावतोऽपि दैत्येन गृहीतोऽसौ गजोत्तमः ॥ ४४ ॥
विमानानि च सर्वाणि गृहीतानिविशाम्पते । उच्चैःश्रवा हयवरोजातस्तस्यवशेतदा
कामधेनुः पारिजातो गणश्चाऽप्सरसांतथा । गृहीतं रत्नमात्रं तु तेन त्वष्टृसुतेन ह
स्थानभ्रष्टाःसुराःसर्वेगिरिदुर्गेषुसंस्थिताः । दुःखमापुःपरिम्लाना यज्ञभागात्सुरालयात्
वृत्रः सुरपदं प्राप्य बभूव मदगर्वितः । त्वष्टाऽतीव सुखं प्राप्य मुमोद सुतसंयुतः ॥४८
अमन्त्रयन्हितं देवा मुनिभिः सह भारत !।
किं कर्तव्यमिति प्राप्ते विचिन्त्य भयमोहिताः ॥ ४६ ॥
जग्मुः कैलासमचलं सुराः शक्रसमन्विताः । महादेवं प्रणम्योचुःप्रह्वाःप्राञ्जलयोभृशम्
देवदेव महादेव कृपासिंधो महेश्वर । रक्षाऽस्मान्भयभीतांस्तु वृत्रेणाऽतिपराजितान्
गृहीतं देवसदनं तेन देव ! बलीयसा । किं कर्तव्यमतः शम्भोब्रूहिसत्यं शिवाऽद्य नः
किंकुर्मःक्वगच्छामःस्थानभ्रष्टामहेश्वर !। दुःखस्यनाऽधिगच्छामोविनाशोपायमीश्वर
साहाय्यं कुरु भूतेश ! व्यथिताः स्म कृपानिधे ! ।
वृत्रं जहि मदोत्सिक्तं वरदानबलाद्विभो !॥ ५४ ॥

शिव उवाच

ब्रह्माणं पुरतः कृत्वा वयं सर्वे हरेःक्षयम् । गत्वासमेत्यतंविष्णुंचिन्तयामोवधोद्यमम्
सशक्तश्च च्छलज्ञश्च बलवान्बुद्धिमत्तरः । शरण्यश्च दयाब्धिश्च वासुदेवो जनार्दनः
विनातं देवदेवेशं नाऽर्थसिद्धिर्भविष्यति । तस्मात्तत्र च गन्तव्यं सर्वकार्यार्थसिद्धये

व्यास उवाच

इति संचिन्त्य ते सर्वब्रह्माशक्रःसशंकरः । जग्मुर्विष्णोःक्षयंदेवाःशरण्यंभक्तवत्सलम्
गत्वा विष्णुपदं देवास्तुष्टुवुः परमेश्वरम् । हरिं पुरुषसूक्तेन वेदोक्तेन जगद्गुरुम् ॥
प्रत्यक्षोऽभूज्जगन्नाथस्तेषां स कमलापतिः ।
सम्मान्य च सुरान्सर्वानित्युवाच पुरः स्थितः ॥ ६० ॥
किमागताः स्मः लोकेशा हरब्रह्मसमन्विताः । कारणं कथयध्वं वःसर्वेषांसुरसत्तमाः

व्यास उवाच

इति श्रुत्वा हरेर्वाक्यं नोचुर्देवा रमापतिम्।
चिन्ताविष्टाः स्थिताः प्रायः सर्वेप्राञ्जलयस्तथा ॥ ६२ ॥

इति श्रीदेवीभागवतेमहापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यांसंहितायांपञ्चमस्कन्धे ब्रह्मनेतृत्वेसेन्द्रैःसुरैर्विष्णोःशरणगमनवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पञ्चमोऽध्यायः

विष्णुसमीपेदेवैःवृत्रकृतास्वास्थ्यपीडितैःब्रह्मशङ्करेन्द्रपुरःसरंवृत्रवधायगमनं तदुपदेशेनजगन्मातुराराधनवर्णनम्

व्यास उवाच

तथा चिन्तातुरान्वीक्ष्य सर्वान्सर्वार्थतत्त्ववित्।
प्राह प्रेमभरोद्भ्रान्तान्माधवो मेदिनीपते ! ॥ १ ॥

विष्णुरुवाच

किं मौनमाश्रिता यूयं ब्रुवन्तुकारणं सुराः। सदसद्वाऽपियच्छ्रुत्वायतिष्येतन्निवारणे

देवा उचुः

किमज्ञातं तव विभो त्रिषु लोकेषु वर्तते। सर्वं वेद भवान्कार्यं किं पृच्छसिपुनःपुनः
त्वया पूर्वं बलिर्बद्धः शक्रो देवाधिपः कृतः। वामनं वपुरास्थाय क्रान्तं त्रिभुवनं पदैः
अमृतं त्वाहृतं विष्णो दैत्याश्च विनिपातिताः। त्वंप्रभुःसर्वदेवानांसर्वापद्विनिवारणे

विष्णुरुवाच

न भेतव्यं सुरवरा वेद्म्युपायं सुसम्मतम्। तद्वधाय प्रवक्ष्यामियेनसौख्यंभविष्यति
अवश्यं करणीयं मे भवतां हितमात्मना। बुद्ध्या बलेन चार्थेन येन केन च्छलेन वा
उपायाः खलु चत्वारः कथितास्तत्त्वदर्शिभिः। सामादयःसुहृत्स्वेवदुहृदेषुविशेषतः

ब्रह्मणाऽस्य वरो दत्तस्तपसाऽऽराधितेन च । दुर्जयत्वं च संप्राप्तं वरदानप्रभावतः ॥
अजेयः सर्वभूतानां त्वष्ट्रा समुपपादितः । ततो बलेन वृद्धिं स प्राप्तः परपुरञ्जयः ॥

दुःसाध्योऽसौ सुराः शत्रुर्विना सामप्रतारणम् ।
प्रलोभ्यवशमानेयोहन्तव्यस्तु ततः परम् ॥ ११ ॥

गच्छध्वं सर्वगन्धर्वा यत्राऽसौ बलवत्तरः । साम तस्य प्रयुञ्जध्वं तत एनं विजेष्यथ
सङ्गम्यशपथान्कृत्वा विश्वास्य समयेन हि । मित्रत्वं च समाधायहन्तव्यःप्रबलोरिपुः

अदृश्य सम्प्रवेक्ष्यामि वज्रमस्य वरायुधम् ।
साहाय्यं च करिष्यामि शक्रस्याऽहं सुरोत्तमाः !॥ १४ ॥

समयं च प्रतीक्षध्वंसर्वथैवाऽऽयुषःक्षये । मरणं विबुधास्तस्य नान्यथासम्भविष्यति
गच्छध्वमृषिभिःसार्धं गन्धर्वाः कपटावृताः । इन्द्रे ण सहमित्रत्वंकुरुध्वंवाक्यदानतः

यथा स याति विश्वासं तथा कार्यं प्रतारणम् ।
गुप्तोऽहं सम्प्रवेक्ष्यामि पविं सञ्छादितं दृढम् ॥ १७ ॥

विश्वस्तंमघवा शत्रुं हनिष्यति नचाऽन्यथा । विश्वासस्यकृतेपापंकृत्वाशक्रस्तुपृष्ठतः
मत्सहायोऽथ वज्रे ण शातयिष्यति पापिनम् । नदोषोऽत्रशठेशत्रौशाठ्यमेवप्रकुर्वतः
नाऽन्यथा बलवान्वध्यःशूरधर्मेण जायते । वामनं रूपमाधाय मयाऽयं वञ्चितो बलिः

कृत्वा च मोहिनी वेषं दैत्याः सर्वेऽपि वञ्चिताः ।
भवन्तः सहिताः सर्वे देवीं भगवतीं शिवाम् ॥ २१ ॥
गच्छध्वं शरणं भावैः स्तोत्रमन्त्रैःसुरोत्तमाः !।
साहाय्यं सा योगमाया भवतां सन्विधास्यति ॥ २२ ॥
वन्दामहे सदा देवीं सात्त्विकीं प्रकृतिं पराम् ।
सिद्धिदां कामदां कामां दुरापामकृतात्मभिः ॥ २३ ॥

इन्द्रोऽपितांसमाराध्यहनिष्यतिरिपुंरणे । मोहिनीसामहामायामोहयिष्यातिदानवम्
मोहितोमाययावृत्रःसुखसाध्योभविष्यति ।प्रसन्नायांपराम्बायांसर्वंसाध्यंभविष्यति

नो चेन्मनोरथावाप्तिर्न कस्याऽपि भविष्यति ।

अन्तर्यामिस्वरूपा सा सर्वकारणकारणा ॥ २६ ॥
तस्मात्तां विश्वजननीं प्रकृतिं परमादृताः । भजध्वं सात्त्विकैर्भावैःशत्रुनाशायसत्तमाः
पुरा मयाऽपि संग्रामं कृत्वा परमदारुणम् । पञ्चवर्षसहस्राणि निहतौ मधुकैटभौ ॥
स्तुता मया तदाऽऽत्यर्थं प्रसन्ना प्रकृतिः परा ।
मोहितौ तौ तदा दैत्यौ छलेन च मया हतौ ॥ २६ ॥
विप्रलब्धौ महाबाहू दानवौ मदगर्वितौ । तथा कुरुध्वं प्रकृतेर्भजनं भावसंयुताः ॥३०
सर्वथा कार्यसिद्धिं सा करिष्यति सुरोत्तमा । एवं तेदत्तमतयोविष्णुनाप्रभविष्णुना
जग्मुस्ते मेरुशिखरं मन्दारद्रुममण्डितम् । एकान्तेसंस्थितादेवाःकृत्वाध्यानंजपंतपः
तुष्टुवुर्जगतां धात्रींसृष्टिसंहारकारिणीम् । भक्तकामदुघामम्बांसंसारक्लेशनाशिनीम्

देवा ऊचुः

देवि ! प्रसीद परिपाहि सुरान्प्रतप्तान्वृत्रासुरेण समरे परिपीडितांश्च ।
दीनार्तिनाशनपरे ! परमार्थतत्त्वे ! प्राप्तांस्त्वदङ्घ्रिकमलं शरणं सदैव ॥ ३४ ॥
त्वं सर्वविश्वजननी परिपालयाऽस्मान्पुत्रानिवाऽतिपतितान्रिपुसङ्कटेऽस्मिन् ।
मातर्न तेऽस्त्यविदितं भुवनत्रयेऽपि कस्मादुपेक्षसि सुरानसुरप्रतप्तान् ॥ ३५ ॥
त्रैलोक्यमेतदखिलं विहितं त्वयैव ब्रह्मा हरिः पशुपतिस्तव वासनोत्थाः ।
कुर्वन्ति कार्यमखिलं स्ववशा न ते ते भ्रूभङ्गचालनवशाद्विहरन्ति कामम् ॥३६॥
माता सुतान्परिभवात्परिपाति दीनान्रीतिस्त्वयैव रचिता प्रकटापराधान् ।
कस्मान्न पालयसि देवि ! विनाऽपराधानस्मांस्त्वदङ्घ्रिशरणान्करुणारसाब्धे!
नूनं मदङ्घ्रिभजनाप्तपदाः किलैते भक्तिं विहाय विभवे सुखभोगलुब्धाः ।
नैमे कटाक्षविषया इति चेन्न चैषा रीतिः सुते जननकर्तरि चाऽपि दृष्टा ॥ ३८ ॥
दोषो न नोऽत्र जननि ! प्रतिभाति चित्ते यत्ते विहाय भजनं विभवे निमग्नाः ।
मोहस्त्वया विरचितः प्रभवत्यसौ नस्तस्मात्स्वभावकरुणे! दयसे कथं न ॥३६
पूर्वं त्वया जननि दैत्यपतिर्बलिष्ठो व्यापादितो महिषरूपधरः किलाऽऽसौ ।
अस्मत्कृते सकललोकभयावहोऽसौ वृत्रं कथं न भयदं विधुनोषि मातः !॥४०॥

शुम्भस्तथाऽतिबलवाननुजो निशुम्भस्तौ भ्रातरौ तदनुगा निहता हतौ च ।
वृत्रं यथा जहि खलं प्रबलं दयार्द्रे ! मत्तं विमोह्य तथा न भवेद्यथाऽसौ ॥ ४१
त्वं पालयाऽद्य विबुधानसुरेण मातः सन्तापितानतितरां भयविह्वलांश्च ।
नाऽन्योऽस्ति कोऽपिभुवनेषुसुरातिहन्ता यःक्लेशजालमखिलं निदहेत्स्वशक्त्या
वृत्रे दया तव यदि प्रथिता तथापि जह्येनमाशु जनदुःखकरं खलं च ।
पापात्समुद्धर भवानि! शरैः पुनाना नो चेत्प्रयास्यति तमो ननु दुष्टबुद्धिः ॥ ४३
ते प्रापिता सुरवनं विबुधारयो ये हत्वा रणेऽपि विशिखैः किल पावितास्ते ।
त्राता न किं निरयपातभयाद्दयार्द्रे ! यच्छत्रवोऽपि नः हि किं विनिहंसि वृत्रम्
जानीमहे रिपुरसौ तव सेवको न प्रायेण पीडयति नः किल पापबुद्धिः ।
यस्तावकस्त्विह भवेदमरानसौ किं त्वत्पादपङ्कजरतान्ननु पीडयेद्वा ॥ ४५ ॥
कुर्मः कथं जननि ! पूजनमद्य तेऽम्ब पुष्पादिकं तव विनिर्मितमेव यस्मात् ।
मन्त्रा वयं च सकलं परशक्तिरूपं तस्माद्भवानि ! चरणे प्रणताः स्म नूनम् ॥४६
धन्यास्त एव मनुजा हि भजन्ति भक्त्या पादाम्बुजं तव भवाब्धिजलेषु पोतम् ।
यं योगिनोऽपि मनसा सततं स्मरन्ति मोक्षार्थिनो विगतरागविकारमोहाः ॥
ये याज्ञिकाः सकलवेदविदोऽपि नूनं त्वां संस्मरन्ति सततं किल होमकाले ।
स्वाहां तु तृप्तिजननीममरेश्वराणां भूयः स्वधां पितृगणस्य च तृप्तिहेतुम् ॥४८
मेधाऽसि कान्तिरसि शान्तिरपि प्रसिद्धा बुद्धिस्त्वमेव विशदार्थकरी नराणाम्
सर्वं त्वमेव विभवं भुवनत्रयेऽस्मिन्कृत्वा ददासि भजतां कृपया सदैव ।

व्यास उवाच

एवं स्तुता सुरैर्देवी प्रत्यक्षा साऽभवत्तदा । चारुरूपधरा तन्वी सर्वाभरणभूषिता ॥
पाशाङ्कुशवरा भीतिलसद्बाहुचतुष्टया । रणत्किङ्किणिकाजालरसनाबद्धसत्कटिः ॥
कलकण्ठीरवा कान्ता क्वणत्कङ्कणनूपुरा । चन्द्रखण्डसमाबद्धरत्नमौलिविराजिता ॥
मन्दस्मिताऽरविन्दास्यानेत्रत्रयविभूषिता । पारिजातप्रसूनाच्छनालवर्णसमप्रभा॥५३
रक्ताम्बरपरीधाना रक्तचन्दनचर्चिता । प्रसादसुमुखी देवी करुणारससागरा ॥ ५४ ॥

सर्वशृङ्गारवेषाढ्या सर्वद्वैतारणिः परा। सर्वज्ञा सर्वकर्त्री च सर्वाधिष्ठानरूपिणी॥
सर्ववेदान्तसंसिद्धा सच्चिदानन्दरूपिणी। प्रणेमुस्तांसमालोक्यसुरादेवींपुरःस्थिताम्
तानाह प्रणतानम्बा किं वः कार्यं ब्रुवन्तु माम्।

देवा ऊचुः

मोहयैनं रिपुं वृत्रं देवानामतिदुःखदम्॥ ५७॥
यथा विश्वासतेदेवांस्तथाकुरुविमोहितम्। आयुधे च बलंदेहि हतःस्याद्येनवारिपुः

व्यास उवाच

तथेत्युक्त्वा भगवती तत्रैवाऽन्तरधीयत।
स्वानि स्वानि निकेतानि जग्मुर्देवा मुदाऽन्विताः॥ ५९॥
इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां षष्ठस्कन्धे
देवीसमाराधनायदेवैःकृतास्तुतिवर्णनंनामपञ्चमोऽध्यायः॥ ५॥

षष्ठोऽध्यायः

ऋषिभिर्युद्धनिवृत्त्यर्थंवृत्रम्प्रति विश्वासवाक्यम् पितृुपदेशनपुनर्युद्धमिन्द्र द्वारापराशक्तिप्रवेशयुतफेनेनवृत्रामृत्युः

व्यास उवाच

एवं प्राप्तवरादेवाऋषयश्च तपोधनाः। "जग्मुःसर्वेचसंमन्त्र्यवृत्रस्याऽऽश्रममुत्तमम्।"
ददृशुस्तत्र तं वृत्रं ज्वलन्तमिव तेजसा॥ १॥
धक्ष्यन्तमिव लोकांस्त्रीन्ग्रसन्तमिव चाऽऽमरान्।
ऋषयोऽथ ततोऽभेत्य वृत्रमूचुः प्रियम्वचः॥ २॥
देवकार्यार्थसिद्ध्यर्थं सामयुक्तं रसात्मकम्।

ऋषय ऊचुः

वृत्र ! वृत्र ! महाभाग ! सर्वलोकभयङ्कर ! ॥ ३ ॥

व्याप्तं त्वयैतत्सकलं ब्रह्माण्डमखिलं किल । शक्रेण तववैरंयत्तत्सुसौख्यविघातकम्
युवयोर्दुःखदंकामं चिन्तावृद्धिकरम्परम् । नत्वं स्वपिषि संतुष्टोनचापिमघवा तथा
सुखंस्वपितिचिन्तार्तौद्वयोर्यद्वैरिजंभयम् । युवयोर्युध्यतोःकालोऽप्यतीतस्तुमहानिह
पीड्यन्तेचप्रजाःसर्वाःसदेवासुरमानवाः । संसारेऽत्र सुखंग्राह्यंदुःखं हेयमितिस्थितिः
न सुखं कृतवैरस्य भवतीति विनिर्णयः । संग्रामरसिकाःशूराःप्रशंसन्ति न पण्डिताः

युद्धं शृङ्गारचतुरा इन्द्रियार्थविघातकम् ।

पुष्पैरपि न योद्धव्यं किं पुनर्निशितैः शरैः ॥ ६ ॥

युद्धेविजयसन्देहो निश्चयं बाणताडनम् । दैवाधीनमिदं विश्वं तथा जयपराजयौ ॥
दैवाधीनाविति ज्ञात्वानयोद्धव्यंकदाचन । कालेऽथभोजनं स्नानं शय्यायांशयनन्तथा
परिचर्यापरा भार्या संसारे सुखसाधनम् । किं सुखं युध्यतः संख्ये बाणवृष्टिभयङ्करे
खड्गपातातिरौद्रेचनथाऽराति सुखप्रदे । संग्रामे मरणात्स्वर्गसुखप्राप्तिरितिस्फुटम्
प्रलोभनपरं वाक्यं नोदनार्थं निरर्थकम् । छित्त्वादेहं व्यथां प्राप्य शृगालकरटादिभिः

पश्चात्स्वर्गसुखावाप्तिं को वा वाञ्छति मन्दधीः ।

सख्यं भवतु ते वृत्र ! शक्रेण सह नित्यदा ॥ १५ ॥

अवाप्स्यसि सुखं त्वं च शक्रश्चापिनिरन्तरम् । वयञ्चतापसाःसर्वेगन्धर्वाश्चनिजाश्रमे
सुखवासं गमिष्यामःशान्तेवैरेऽधुनैववाम् । संग्रामे युवयोर्घोरे वर्तमाने दिवानिशम्

पीड्यन्ते मुनयः सर्वे गन्धर्वा किन्नरा नराः ।

सर्वेषां शान्तिकामानां सख्यमिच्छामहे वयम् ॥ १८ ॥

मुनयस्त्वं च शक्रश्च प्राप्नुवन्तुसुखंकिल । मध्यस्थाश्च वयं वृत्रयुवयोःसख्यकारणे

शपथं कारयित्वाऽत्र योजयामोमिथः प्रियम् ।

शक्रस्तु शपथान्कृत्वा यथोक्तांश्चतवाऽग्रतः ॥ २० ॥

चित्तन्ते प्रीतिसंयुक्तं करिष्यति च साम्प्रतम् ।

सत्याधारा धरा नूनं सत्येन च दिवाकरः ॥ २१ ॥

तपत्ययं यथाकालं वायुः सत्येन वात्यथ । उदन्वानपि मर्यादांसत्येनैव न मुञ्चति॥

तस्मात्सत्येन सख्यम्वा भवत्वद्य यथासुखम् ।

एकत्र शयनं क्रीडा जलकेलिः सुखासनम् ॥ २३ ॥

युवाभ्यां सर्वथा कार्यं कर्तव्यं सख्यमेत्य च ।

व्यास उवाच

महर्षिवचनं श्रुत्वा तानुवाच महामतिः ॥ २४ ॥

अवश्यंभगवन्तोमेमाननीयास्तपस्विनः । भवन्तोमुनयःक्काऽपिनमिथ्यावादिनोभृशम्

सदाचाराः सुशांताश्च न विदुश्छलकारणम् । कृतवैरे शठे स्तब्धे कामुकेत्वगतत्विषि

निर्लज्जेनैव कर्त्तव्यंसख्यंमतिमतासदा । निर्लज्जोऽयं दुराचारो ब्रह्महा लम्पटःशठः

न विश्वासस्तु कर्तव्यः सर्वथैवेदृशेजने । भवन्तोनिपुणाः सर्वे न द्रोहमतयः सदा ॥

अनभिज्ञास्तु शान्तत्वाच्चित्तानामतिवादिनाम् ।

मुनय ऊचुः

जन्तुः कृतस्य भोक्ता वै शुभस्य त्वशुभस्य च ॥ २६ ॥

द्रोहं कृत्वा कुतः शान्तिमाप्नुयाद्दुष्टचेतनः । विश्वासघातकर्तारोनरकंयान्तिनिश्चयम्

दुःखञ्च समवाप्नोति नूनंविश्वासघातकः । निष्कृतिर्ब्रह्महन्तृणांसुरापानाञ्चनिष्कृतिः

विश्वासघातिनां नैव मित्रद्रोहकृतामपि । समयं ब्रूहि सर्वज्ञ यथा ते चेतसि ध्रुवम्

तेनैव समयेनाऽद्य सन्धिः स्यादुभयोःकिल ।

वृत्र उवाच

न शुष्केण न चाऽऽर्द्रेण नाऽश्मना नच दारुणा ॥ ३३ ॥

न वज्रेण महाभाग न दिवानिशिनैव च । वध्यो भवेयं विप्रेन्द्राः शक्रस्य सह दैवतैः

एवं मे रोचते सन्धिः शक्रेण सह नाऽन्यथा ।

व्यास उवाच

ऋषयस्तं तदा प्राहुर्बाढमित्येव चादृताः ॥ ३५ ॥

समर्थंश्रावयामासुस्तत्राऽऽनीयसुरेश्वरम् । इन्द्रोऽपि शपथांस्तत्र चकार विगतज्वरः
साक्षिणं पावकं कृत्वामुनीनांसन्निधौकिल । वृत्रस्तु वचनैस्तस्यविश्वासमगमत्तदा
बभूव मित्रवच्छक्रे सहचर्यापरायणः । कदाचिन्नन्दने चोभौ कदाचिद्गन्धमादने ॥३८
कदाचिदुदधेस्तीरे मोदमानौ विचेरतुः । एवं कृते च सन्धाने वृत्रः प्रमुदितोऽभवत्

शक्रोऽपि वधकामस्तु तदुपायानचिन्तयत् ।

रन्ध्रान्वेषी समुद्विग्नस्तदाऽऽसीन्मघवा भृशम् ॥ ४० ॥

एवं चिन्तयतस्तस्य कालः समभिवर्तत । विश्वासं परमं प्राप वृत्रः शक्रेऽतिदारुणे
एवं कतिचिदब्दानि गतानिसमयेकृते । वृत्रस्यमरणोपायान्मनसीन्द्रोऽप्यचिन्तयत्
त्वष्टैकदा सुतं प्राह विश्वस्तं पाकशासने । पुत्र वृत्र! महाभाग श्रृणु मे वचनं हितम् !
न विश्वासस्तु कर्तव्यः कृतवैरे कथञ्चन । मघवा कृतवैरस्ते सदाऽसूयापरः परैः ॥
लोभान्मत्तो ह्युपरतः परदुःखोत्सवान्वितः । परदारलम्पटः स पापबुद्धिप्रतारकः ॥
रन्ध्रान्वेषी द्रोहपरो मायावी मदगर्वितः । यः प्रविश्योदरे मातुर्गर्भच्छेदञ्चकार ह ॥
सप्तकृत्वःसप्तकृत्वःकन्दमानमनातुरः । तस्मात्पुत्र न कर्तव्योविश्वासस्तुकथञ्चन

कृतपापस्य का लज्जा पुनः पुत्र ! प्रकुर्वतः ।

व्यास उवाच

एवं प्रबोधितः पित्रा वचनैर्हेतुसंयुतैः ॥ ४८ ॥

न बुबोध तदा वृत्र आसन्नमरणः किल । स कदाचित्समुद्रान्ते तमपश्यन्महासुरम्
सन्ध्याकाल उपावृत्ते मुहूर्तेऽतीवदारुणे । ततःसञ्चिन्त्य मघवा वरदानं महात्मनाम्
सन्ध्येयं वर्तते रौद्रा न रात्रिर्दिवसो न च । हन्तव्योऽयं मया चाद्य बलेनैवनसंशयः
एकाकी विजने चात्रसम्प्राप्तःसमयोचितः । एवं विचार्यमनसा सस्मार हरिमव्ययम्

तत्राऽऽजगाम भगवानदृश्यः पुरुषोत्तमः ।

वज्रमध्ये प्रविश्याऽसौ संस्थितो भगवान्हरिः ॥ ५३ ॥

इन्द्रो बुद्धिं चकाराऽऽशु तदावृत्रवधंप्रति । इति सञ्चिन्त्यमनसा कथं हन्यांरिपुं रणे
अजेयं सर्वथा सर्वदेवैश्च दानवैस्तथा । यदि वृत्तं न हन्म्यद्य वञ्चयित्वा महाबलम्

न श्रेयो ममनूनंस्यात्सर्वथारिपुरक्षणात् । अपां फेनं तदाऽपश्यत्समुद्रे पर्वतोपमम्
नाऽयं शुष्को न चार्द्रोऽयं न च शस्त्रमिदं तथा ।
अपां फेनं तदा शक्रो जग्राह किल लीलया ॥ ५७ ॥
परांशक्तिञ्चसस्मारभक्त्यापरमयायुतः । स्मृतमात्रा तदा देवीस्वं शं फेनेन्यधापयत्
वज्रं तदावृतं तत्र चकार हरिसंयुतम् । फेनावृतं पविन्तत्र शक्रश्चिक्षेप तं प्रति ॥
सहसा निपपाताऽऽशु वज्रहस्त इवाऽचलः । वासवस्तु प्रहृष्टात्मा बभूव निहते तदा
ऋषयश्च महेन्द्रं तमस्तुवन्विविधैःस्तवैः । हतशत्रुः प्रहृष्टात्मा वासवः सह दैवतैः
देवीं सम्पूजयामास यत्प्रसादाद्धतो रिपुः ।
प्रसादयामास तदा स्तोत्रैर्नानाविधैरपि ॥ ६२ ॥
देवोद्याने पराशक्तेः प्रासादमकरोद्धरिः । पद्मरागमयीं मूर्ति स्थापयामास वासवः
त्रिकालं महतीं पूजां चक्रुः सर्वेऽपिनिर्जराः । तदाप्रभृति देवानां श्रीदेवीकुलदैवतम्
विष्णुं त्रिभुवनश्रेष्ठं पूजयामास वासवः । ततो हते महावीर्ये वृत्रे देवभयङ्करे ॥६५
प्रववौ च शिवो वायुर्जहृषुर्देवतास्तथा ।
हते तस्मिन्सगन्धर्वा यक्षराक्षसकिन्नराः ॥ ६६ ॥
इत्थं वृत्रः पराशक्ति प्रवेशयुतफेनतः । तयाकृतविमोहाच्च शक्रेण सहसा हतः ॥६७॥
ततो वृत्रनिहन्त्रीति देवी लोकेषु गीयते । शक्रेण निहतत्वाच्च शक्रेण हत उच्यते ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्त्र्यां संहितायां षष्ठस्कन्धे
छद्मनेन्द्रेणफेनद्वारापराशक्तिस्मरणपूर्वकंवृत्रहननवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सप्तमोऽध्यायः

वृत्रवधानन्तरमृषिभिःपश्चात्तापकरणंत्वष्ट्राशक्रम्प्रतिशापदानंवासवस्य गुप्तवासोनहुषस्येन्द्रपदेऽभिषेकवर्णनम्

व्यास उवाच

अथ तं पतितंदृष्ट्वाविष्णुर्विष्णुपुरीं ययौ । मनसा शङ्कमानस्तु तस्य हत्याकृतंभयम्
इन्द्रोऽपि भयसन्त्रस्तो ययाविन्द्रपुरींततः । मुनयो भयसम्विग्ना ह्यभवन्निहते रिपौ

किमस्माभिः कृतम्पापं यदसौ वञ्चितःकिल ।

मुनिशब्दो वृथा जातः सुरेशस्य च सङ्गमात् ॥ ३ ॥

अस्माकम्वचनाद्वृत्रोविश्वासमगमत्किल । विश्वासघातिनःसञ्जातावयंविश्वासघातकाः
धिगियं ममता पापमूलमेवमनर्थकृत् । यदस्माभिश्छलं कृत्वा शपथैर्वञ्चितोऽसुरः
मन्त्रकृद्बुद्धिदाता च प्रेरकः पापकारिणाम् । पापभाक्सभवेन्नूनं पक्षकर्ता तथैव च

विष्णुनाऽपि कृतम्पापं यत्साहाय्यमवाप्तवान् ।

वज्रम्प्रविश्य येनाऽसौ पातितः स्वमूर्तिना ॥ ७ ॥

नूनं स्वार्थपरः प्राणी न पापात्त्रासमश्नुते । हरिणा हरिलङ्केन सर्वथा दुष्कृतं कृतम्
द्वावेवस्तः पदार्थानां द्वावेव निधनङ्गतौ । प्रथमश्चतुरीयश्च यौ त्रिलोक्यान्तुदुर्लभौ
अर्थकामौप्रशस्तौद्वौसर्वेषांसम्मतौप्रियौ । धर्माधर्मेति वाग्वादोदम्भोऽयंमहतामपि
मुनयोऽपि मनस्तापमेवं कृत्वापुनःपुनः । जग्मुः स्वानाश्रमानेवविमनस्का हतोद्यमाः
त्वष्टा तु निहतं श्रुत्वा पुत्रमिन्द्रेण भारत ! रुरोद दुःखसन्तप्तो निर्वेदमगमत्पुनः ॥

यत्राऽसौ पतितस्तत्र गत्वा वीक्ष्य तथागतम् ।

संस्कारं कारयामास विधिवत्पारलौकिकम् ॥ १३ ॥

स्नात्वाऽस्य सलिलं दत्त्वा कृत्वा चैवौर्ध्वदैहिकम् ।

शशापेन्द्रं स शोकार्तः पापिष्ठं मित्रघातकम् ॥ १४ ॥
यथा मे निहतःपुत्रःप्रलोभ्यशपथैर्भृ शम् । तथेन्द्रोऽपि महद्दुःखंप्राप्नोतुविधिनिर्मितम्
इति शप्त्वा सुरेशानं त्वष्टा तापसमन्वितः । मेरोःशिखरमास्थायतपस्तेपेसुदुष्करम्

जनमेजय उवाच

हत्वा त्वाष्ट्रं सुरेशोऽथ कामवस्थामवाप्तवान् । सुखं वा दुःखमेवाग्रेतन्मेब्रूहिपितामह

व्यास उवाच

किं पृच्छसि महाभाग! संदेहः कीदृशस्तव । अवश्यमेव भोक्तव्यंकृतं कर्म शुभाशुभम्
बलिष्ठैर्दुर्बलैर्वाऽपि स्वल्पं वा बहु वा कृतम् । सर्वथैव हिभोक्तव्यं सदेवासुरमानुषैः
शक्रायेत्थं मतिर्दत्ता हरिणा वृत्रघातिने । प्रविष्टोऽथ पवि विष्णुः सहायःप्रत्यपद्यत
न चापदि सहायोऽभूद्वासुदेवः कथञ्चन । समये स्वजनः सर्वः संसारेऽस्मिन्नराधिप
दैवे विमुखतां प्राप्ते न कोऽप्यस्ति सहायवान् ।
पिता माता तथा भार्या भ्राता वाऽथ सहोदरः ॥ २२ ॥
सेवको वाऽपि मन्त्रं वा पुत्रश्चैव तथौरसः । प्रतिकूले गतेदैवेनकोऽप्येतिसहायताम्
भोक्ता पापस्य पुण्यस्य कर्ता भवति सर्वथा ।
वृत्रं हत्वा गताः सर्वे निस्तेजस्कः शचीपतिः ॥ २४ ॥
शेपुस्तं त्रिदशाः सर्वे ब्रह्महेत्यब्रवञ्छनैः । को नाम शपथान्कृत्वासत्यंदत्त्वावचःपुनः
जिघांसति सविश्वस्तं मुनिमित्रत्वमागतम् । देवगोष्ठ्यांसुरोद्यानेगंधर्वाणांसमागमे
सर्वत्रैव कथा तस्यविस्तारमगमत्किल । किं कृतं दुष्कृतं कर्म शक्रेणाऽद्यजिघांसता
वृत्रं छलेन विश्वस्तं मुनिभिश्च प्रतारितम् । वेदप्रमाणमुत्सृज्यस्वीकृतंसौगतं मतम्
यदयं निहतः शत्रुर्वञ्चयित्वाऽतिसाहसात् । कोनामवचनंदत्त्वा विपरीतमथाऽऽचरेत्
विना शक्रं हरिं वाऽपि यथाऽयं विनिपातितः ।
एवम्विधाः कथाश्चाऽन्याः समाजेष्वभवन्भृशम् ॥ ३० ॥
शुश्रावेन्द्रोऽपि विविधाः स्वकीर्तेर्हानिकारकाः ।
यस्य कीर्तिर्हता लोके धिक्तस्यैव कुजीवितम् ॥ ३१ ॥

यं दृष्ट्वा पथि गच्छन्तं शत्रुःस्मेरमुखो भवेत् । इन्द्रश्छन्नोऽपि राजर्षिःपतितःकीर्तिसंक्षयात्
स्वर्गादकृतपापोऽसौ पापकृत्किं न पात्यते ।
स्वल्पेऽपराधेऽपि नृपो ययातिः पतितः किलः ॥ ३३ ॥
नृपः कर्कटतां प्राप्तो युगानष्टादशैव तु । भृगुपत्नीशिरश्छेदाद्भगवान् हरिरच्युतः ॥३४
ब्रह्मशापात्पशोर्योनौ सञ्जातो मकरादिषु । विष्णुश्च वामनो भूत्वायाचनार्थं बलेर्गृहे
गतः किमपरं दुःखं प्राप्नोति दुष्कृती नरः । रामोऽपि वनवासेषु सीताविरहजं बहु
दुःखञ्चप्राप्तवान्घोरं भृगुशापेनभारत! । तथेन्द्रोऽपि ब्रह्महत्याकृतं प्राप्य महद्भयम् ॥
नम्वाम्भ्यंप्रापगेहेऽसौसर्वसिद्धिसमन्विते । पौलोमीतंसभार्हानंदृष्ट्वाप्रोवाच वासवम्
निःश्वसंतं भयत्रस्तं नष्टसंज्ञं विचेतनम् । किंप्रभोऽद्यभयार्तोऽसिमृतस्तेदारुणोरिपुः
का चिन्ता वर्तते कान्ततवशत्रुनिषूदन । कस्माच्छोचसिलोकेशनिःश्वसन्प्राकृतोयथा
नाऽन्योऽस्ति बलवाञ्छत्रुर्येन चिन्तापरो भवान् ।

इन्द्र उवाच

नाऽरातिर्बलवान्मेऽस्ति न शांतिर्न सुखं तथा ॥ ४१ ॥
ब्रह्महत्याभयाद्राज्ञि बिभेमि सततं गृहे । नन्दनं न सुखाकारं नाऽमृतं न गृहं वनम्
गन्धर्वाणां तथा गेयं नृत्यमप्सरसां पुनः । न त्वं सुखकरानारीनाना च सुरयोषितः
न तथा कामधेनुश्च देववृक्षः सुखप्रदः । किं करोमि क गच्छामि क शर्म मम जायते
इति चिन्तापरः कान्ते! न लभे सुखमात्मनि ।

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा वचनं शक्रः प्रियां परमकातराम् ॥ ४५ ॥
निर्जगाम गृहान्मन्दो मानसं सरउत्तमम् । पद्मनाले प्रविष्टोऽसौ भयार्तःशोककर्शितः
नमाज्ञायत देवेन्द्रस्त्वभिभूतश्च कल्मषैः । प्रतिच्छन्नो वसत्यप्सु चेष्टमान इवोरगः ॥
असहायस्तुराषाडेंचिन्तार्तो विकलेन्द्रियः । ततः प्रनष्टेदेवेंद्रे ब्रह्महत्याभयार्दिते ॥४८
सुराश्चिंतातुराश्चासन्नुत्पाताश्चाऽभवन्नथ । ऋषयः सिद्धगंधर्वा भयार्ताश्चाभवन्भृशम्
अराजकं जगत्सर्वमभिभूतमुपद्रवैः । अवर्षणं तदा जातं पृथिवी क्षीणवैभवा ॥ ५०॥

विच्छिन्नस्रोतसो नद्यः सरांस्यनुदकानि वै । एवं त्वराजके जाते देवता मुनयस्तथा
विचार्य नहुषं चक्रुः शक्रं सर्वे दिवौकसः ।
सम्प्राप्य नहुषो राजा धर्मिष्ठोऽपि रजोबलात् ॥ ५२ ॥
बभूव विषयासक्तः पञ्चबाणशराहतः । अप्सरोभिर्वृतः क्रीडन्देवोद्यानेषु भारत !॥
शक्रपत्नी गुणाञ्छ्रुत्वा चकमे तां स पार्थिवः ।
ऋषीनाह किमिन्द्राणी नोपगच्छति मां किल ॥ ५४ ॥
भवद्भिश्चामरैः सर्वैः कृतोऽहं वासवस्त्विह । प्रेषयध्वं सुराः कामं सेवार्थंममवैशचीम्
प्रियं चेन्मम कर्तव्यं सर्वथा मुनयोऽमराः । अहमिन्द्रोऽद्य देवानां लोकाना चतथेश्वरः
आगच्छतु शची मह्यं क्षिप्रमद्य निवेशनम् । इति तस्य वचः श्रुत्वादेवा देवर्षयस्तथा
गत्वा चिंतातुराःप्रोचुःपौलोमींप्रणतास्ततः । इन्द्रपत्निदुराचारोनहुषस्त्वामिहेच्छति
कुपितोऽस्मानुवाचेदं प्रेषयध्वं शचीमिह । किंकुर्मस्तदधीनाःस्मयेनेंद्रोऽयंकृतः किल
तच्छ्रुत्वा दुर्मना देवीबृहस्पतिमुवाच ह । रक्ष मां नहुषाद्ब्रह्मंस्तवाऽस्मि शरणं गता

बृहस्पतिरुवाच

न भेतव्यं त्वया देवि ! नहुषात्पापमोहितात् ।
न त्वां दास्याम्यहं वत्से ! त्यक्त्वा धर्मं सनातनम् ॥ ६१ ॥
शरणागतमार्तं च यो ददाति नराधिपः । स एव नरकं याति यावदाभूतसंप्लवम् ॥
स्वस्था भव पृथुश्रोणि! न त्यक्ष्ये त्वां कदाचन ।

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां षष्ठस्कन्धे
वृत्रेहतइन्द्रेणमानससरसिपद्मनालेप्रवेशेसर्वत्राराजकत्वनहुषस्यदेवेन्द्रत्वाभिषेक
वर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अष्टमोऽध्यायः

नहुषेणप्रार्थितांशचीम्प्रतिबृहस्पतेरुपदेशोदेवीप्रसादतस्तस्याइन्द्रदर्शनम्

व्यास उवाच

नहुषस्त्वथ तां श्रुत्वा गुरोस्तुशरणंगताम् । चुक्रोधस्मरबाणार्तस्तमाङ्गिरसमाशु वै
देवानाहाङ्गिरासूनुर्हन्तव्योऽयंमया किल । इतींद्राणीं गृहे मूढो रक्षतीति मयाश्रुतम्
इति तं कुपितं दृष्ट्वा देवा सर्षिपुरोगमाः । अब्रुवन्नहुषं घोरं सामपूर्वं वचस्तदा ॥३॥
क्रोधं संहर राजेन्द्र ! त्यज पापमतिंप्रभो । निन्दन्ति धर्मशास्त्रेषु परदाराभिमर्शनम्
शक्रपत्नीसदा साध्वी जीवमानेपतौ पुनः । कथमन्यंपतिं कुर्यात्सुभगाऽतिपतिव्रता
त्रिलोकीशस्त्वमधुना शास्ता धर्मस्य वै विभो ।
त्वादृशोऽधर्ममातिष्ठेत्तदा नश्येत्प्रजा ध्रुवम् ॥६॥
सर्वथा प्रभुणा कार्यं शिष्टाचारस्य रक्षणम् । वारमुख्याश्चशतशोवर्तन्तेऽत्रशचीसमाः
रतिस्तु कारणं प्रोक्तंशृङ्गारस्यमहात्मभिः । रसहानिर्बलात्कारे कृते सति तु जायते
उभयोः सदृशं प्रेम यदि पार्थिवसत्तम !। तदा वै सुखसंपत्तिरुभयोरुपजायते ॥९॥
तस्माद्भावमिमं मुञ्च परदाराभिमर्शने । सद्भावं कुरु देवेन्द्रपदं प्राप्तोऽस्यनुत्तमम् ॥
ऋद्धिक्षयस्तुपापेनपुण्येनाऽतिविवर्धनम् । तस्मात्पापंपरित्यज्यसन्मतिं कुरुपार्थिव

नहुष उवाच

गौतमस्ययदाभुक्तादाराः शक्रेण देवताः !। वाचस्पतेस्तुसोमेनक्वयूयं संस्थितास्तदा
परोपदेशे कुशलाः प्रभवन्ति नराः किल । कर्ता चैवोपदेष्टा च दुर्लभः पुरुषो भवेत्
मामागच्छतुसादेवी हितं स्यादद्भुतं हि वः । एतस्याः परमं देवाःसुखमेवंभविष्यति
अन्यथानहितुष्येऽहंसत्यमेतद्ब्रवीमिवः । विनयाद्वा बलाद्वाऽपि तामाशुप्रापयंत्विह
इति तस्य वचः श्रुत्वा देवाश्च मुनस्तथा । तमूचुश्चातिसंत्रस्ता नहुषं मदनातुरम्
इन्द्राणीमानयिष्यामःसामपूर्वंतवान्तिकम् । इत्युक्त्वातेतदा जग्मुर्बृहस्पतिनिकेतनम्

व्यास उवाच

ते गत्वाऽङ्गिरसःपुत्रंप्रोचुःप्राञ्जलयःसुराः । जानीमःशरणंप्राप्तामिन्द्राणीं तववेश्मनि
सा देया नहुषायाऽद्य वासवोऽसौकृतोयतः । वृणोत्वियं वरारोहा पतित्वेवरवर्णिनी
बृहस्पतिः सुरानाहतच्छ्रुत्वादारुणं वचः । नाहंत्यक्ष्येतु पौलोमींसतींचशरणागताम्

देवा उचुः

उपायोऽन्यःप्रकर्तव्योयेनसोऽद्यप्रसीदति । अन्यथाकोपसंयुक्तोदुराराध्योभविष्यति

गुरुरुवाच

तत्र गत्वा शची भूपं प्रलोभ्य वचसा भृशम् । करोतु समयंबालापतिंज्ञात्वामृतंभजे
इन्द्रे जीवति मे कांते कथमन्यंकरोम्यहम् । अन्वेषणार्थंगंतव्यंमयातस्य महात्मनः
इति सा समयंकृत्वा वञ्चयित्वा च भूपतिम् । भर्तुरानयनेयत्नं करोतु ममवाक्यतः
इति सञ्चिन्त्य ते सर्वेबृहस्पतिपुरोगमाः । नहुषं सहिता जग्मुरिन्द्रपत्न्यथादिवौकसः

तानागतान्समीक्ष्याऽऽह तदा कृत्रिम वासवः ।
जहर्ष च मुदा युक्तस्तांवीक्ष्यमुदितोऽब्रवीत् ॥ २६ ॥

अद्याऽस्मिवासवःकान्तेभजमांचारुलोचने। पतित्वेसर्वलोकस्यपूज्योऽहंविहितःसुरैः
इत्युक्ता सा नृपं प्राह वेपमानात्रपायुता । वरमिच्छाम्यहं राजंस्त्वत्तःप्राप्तं सुरेश्वर

किञ्चित्कालं प्रतीक्षस्व यावत्कुर्वे विनिर्णयम् ।
इन्द्रोऽस्तीति न वाऽस्तीति सन्देहो मे हृदि स्थितः ॥ २६ ॥
ततस्त्वां समुपस्थास्ये कृत्वा निश्चयमात्मनि ।
तावत्क्षमस्व राजेन्द्र ! सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥ ३० ॥

नहिविज्ञायतेशक्रोनष्टः किंवाक्व वा गतः । एवमुक्तः स चेन्द्राण्यानहुषःप्रीतिमानभूत्
व्यसर्जयत्सतांदेवींतथेत्युक्त्वामुदाऽन्वितः । साविसृष्टानृपेणाशुगत्वाप्राहसुरान्सती
इन्द्रस्याऽऽगमने यत्नं कुरुताऽद्य कृतोद्यमाः । श्रुत्वा तद्वचनं देवाइंद्राण्यारसवच्छुचि
मन्त्रयायामासुरेकाग्राः शक्रार्थंनृपसत्तम !। ते गत्वा वैष्णवं धाम तुष्टुवुःपरमेश्वरम् ॥
आदिदेवं जगन्नाथं शरणागतवत्सलम् । ऊचुश्चैनं समुद्विग्ना वाक्यं वाक्यविशारदाः

देवदेवः सुरपतिर्ब्रह्महत्याप्रपीडितः। अदृश्यः सर्वभूतानां क्वाऽपि तिष्ठति वासवः
त्वद्धिया निहते विप्रेब्रह्महत्या कुतःप्रभो। त्वंगतिस्तस्य भगवन्नस्माकं तथैव हि
त्राहिनः परमापन्नान्मोक्षंतस्य विनिर्दिश। देवानां वचनं श्रुत्वा कातरं विष्णुरब्रवीत्
यजतामश्वमेधेन शक्रपापनिवृत्तये। पुण्येन हयमेधेन पावितः पाकशासनः ॥ ३६ ॥
पुनरेष्यति देवानामिन्द्रत्वमकुतोभयः। हयमेधेन सन्तुष्टा देवी श्रीजगदम्बिका

ब्रह्महत्यादिपापानि नाशयिष्यत्यसंशयम्।

यस्याः स्मरणमात्रेण पापजालं विनश्यति ॥ ४१ ॥

किं पुनर्वाजिमेधेन तत्प्रीत्यर्थंकृतेन च। इन्द्राणी कुरुताभित्यं भगवत्याःप्रपूजनम्

आराधनं शिवायास्तु सुखकारि भविष्यति

नहुषोऽपि जगन्मातुर्मायया मोहितः किल ॥ ४३

विनाशं स्वकृतेनाऽऽशुगमिष्यत्येनसा सुराः। पावितश्चाऽश्वमेधेनतुरापाडपिवैभवम्
प्राप्स्यत्यचिरकालेन स्वमासनमनुत्तमम्। तेतुश्रुत्वाशुभां वाणींविष्णोरमिततेजसः

जग्मुस्तं देशमनिशं यत्राऽऽस्ते पाकशासनः।

तमाश्वास्यसुराः शक्रं बृहस्पतिपुरोगमाः ॥ ४६ ॥

कारयामासुरखिलं हयमेधं महाक्रतुम्। विभज्य ब्रह्महत्यांतु वृक्षेषु च नदीषु च
पर्वतेषु पृथिव्यांचस्त्रीषुचैवाऽक्षिपन्निभुः। तांविसृज्यचभूतेषु विपापःपाकशासनः

विज्वरः समभूद्भूयः कालाकाङ्क्षी स्थितो जले।

अदृश्यः सर्वभूतानां पद्मनाले व्यतिष्ठत ॥ ४६ ॥

देवास्तु निर्गताः स्थानेकृत्वाकार्यंतदद्भुतम्। पौलोमीतुगुरुंप्राहदुःखिताविरहाकुला
कृतयज्ञोऽपि मे भर्ताकिमदृश्यः पुरन्दरः। कथं द्रक्ष्येप्रियंस्वामिंस्तमुपायंवदस्व मे

बृहस्पतिरुवाच

त्वमाराधयपौलोमिदेवींभगवतीं शिवाम्। दर्शयिष्यति तेनाथं देवीविगतकल्मषम्

आराधिता जगद्धात्री नहुषं वारयिष्यति।

मोहयित्वा नृपं स्थानात्पातयिष्यति चाऽम्बिका ॥ ५३ ॥

इत्युक्ता सा तदा तेन पुलोमतनया नृप । जग्राह मन्त्रं विधिवद्गुरोर्देव्याः ससाधनम्
विद्यां प्राप्य गुरोर्देवी देवींश्रीभुवनेश्वरीम् । सम्यगाराधयामास बलिपुष्पार्चनैःशुभैः
त्यक्तान्यभोगसम्भारातापसी वेषधारिणी । चकार पूजनं देव्याः प्रियदर्शनलालसा ॥
कालेन कियता तुष्टा प्रत्यक्षं दर्शनं ददौ । सौम्यरूपधरा देवी वरदा हंसवाहिनी ॥
कोटिसूर्यप्रतीकाशा चन्द्रकोटिसुशीतला । विद्युत्कोटिसमानाभा चतुर्वेदसमन्विता
पाशांकुशाभयवरान्दधतीनिजबाहुभिः । आपादलम्बिनींस्वच्छांमुक्तामालांचबिभ्रती
प्रसन्नस्मेरवदना लोचनत्रयभूषिता । आब्रह्मकीटजननी करुणामृतसागरा ॥ ६० ॥
अनन्तकोटिब्रह्माण्डनायिका परमेश्वरी । सौम्यानन्तरसैर्युक्तस्तनद्वयविराजिता ॥
सर्वेश्वरी चसर्वज्ञा कूटस्थाऽक्षररूपिणी । तामुवाच प्रसन्ना सा शक्रपत्नीं कृतोद्यमाम्
मेघगम्भीरशब्देन मुदमाददती भृशम् ।

देव्युवाच

वरम्वरय सुश्रोणि ! वाञ्छितं शक्रवल्लभे ! ॥ ६३ ॥
ददाम्यद्य प्रसन्नाऽस्मिपूजिता सुभृशं त्वया । वरदाऽहं समायाता दर्शनं सहजं न मे
अनेककोटिजन्मोत्थपुण्यपुञ्जैर्हि लभ्यते । इत्युक्ता सा तदा देवी तामाहप्रणतापुरः
शक्रपत्नी भगवतीं प्रसन्नां परमेश्वरीम् । वाञ्छामि दर्शनं मातः पत्युःपरमदुर्लभम्
नहुषाद्भयनाशश्च स्वपदप्रापणं तथा ।

देव्युवाच

गच्छ त्वमनया दूत्या सार्द्धं श्रीमानसं सरः ॥ ६७ ॥
यत्र मे मूर्तिरचला विश्वकामाभिधामता । तत्र पश्यसि शक्रं त्वं दुःखितंभयविह्वलम्
मोहयिष्यामिराजानंकालेनकियतापुनः । स्वस्थाभवविशालाक्षिकरोमितवनेप्सितम्
भ्रंशयिष्यामि भूपालं मोहितं त्रिदशासनात् ।

व्यास उवाच

देवीदूती तां गृहीत्वा शक्रपत्नीं त्वरान्विता ॥ ७० ॥
प्रापयामाससान्निध्यंस्वपत्युःपरमेश्वरीम् । सा दृष्ट्वा तं पतिबालासुरेशंगुप्तसंस्थितम्

मुदिताऽभूद्वरं वीक्ष्य बहुकालाऽभिवाञ्छितम् ॥ ७१ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां षष्ठस्कन्धे इन्द्राण्याशक्रदर्शनं नामाऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

नवमोऽध्यायः

शचीन्द्रसम्वादवर्णनपूर्वमिन्द्राण्याऋषियानेनमत्समीपेआगच्छेतिनहुषम्प्रति कथननं नहुषस्यस्थानच्युतिवर्णनञ्च

व्यास उवाच

तां वीक्ष्य विपुलापाङ्गीं रहः शोकसमन्विताम् ।
आखण्डलः प्रियां भार्यां विस्मितश्चाऽब्रवीत्तदा ॥ १ ॥
कथमत्रागता कान्तेकथंज्ञातस्त्वयाह्यहम् । दुर्ज्ञेयःसर्वभूतानांसंस्थितोऽस्मि शुभानने

शच्युवाच

देवदेव्याःप्रसादेनज्ञातोऽस्यद्यभवानिह । पुनःस्तस्याःप्रसादेनप्राप्तास्मि त्वांदिवस्पते
नहुषोनाम राजर्षिः स्थापितो भवदासने । त्रिदशैर्मुनिभिश्चैवस मां बाधति नित्यशः
पतिं मां कुरु चार्वङ्गि ! तुरासाहं सुराधिपम् ।
एवं वदति मां पाप्मा किं करोमि बलार्दन !॥ ५ ॥

इन्द्र उवाच

कालाकाङ्क्षी वरारोहे ! संस्थितोऽस्मि यदृच्छया ।
तथा त्वमपि कल्याणि ! सुस्थिरं स्वमनः कुरु ॥ ६ ॥

व्यास उवाच

इत्युक्तातेनसादेवीपतिनाऽतिप्रशंसिना । निःश्वसन्त्याह तं शक्रं वेपमानाऽतिदुःखिता

कथं तिष्ठे महाभाग पापात्मामांवशानुगाम् । करिष्यसिमदोन्मत्तोवरदानेन गर्वितः
देवाश्चमुनयःसर्वे मामूचुस्तद्भयाकुलाः । तं भजस्व वरारोहे! देवराजं स्मरातुरम् ॥६
बृहस्पतिस्तु शत्रुघ्न ! वाडवो बलवर्जितः । कथं मां रक्षितुं शक्तो भवेद्देवानुगः सदा

तस्माच्चिन्ताऽस्ति महती नार्यहं वशवर्तिनी ।
अनाथा किं करिष्यामि विपरीते विधौ विभो !॥ ११ ॥
नार्यस्म्यहं न कुलटा त्वच्चित्ताऽतिपतिव्रता ।
नाऽस्ति मे शरणं तत्र यो मां रक्षति दुःखिताम् ॥ १२ ॥

इन्द्र उवाच

उपायं प्रब्रवीम्यद्य तं कुरुष्व वरानने । शीलं ते दुःखितेकाले परित्रातं भविष्यति
परेण रक्षिता नारी न भवेच्चपतिव्रता । उपायैःकोटिभिःकाममिन्नचित्ताऽतिचञ्चला

शीलमेव हि नारीणां सदा रक्षति पापतः ।
तस्मात्त्वं शीलमास्थाय स्थिरा भव शुचिस्मिते !॥ १५ ॥

यदा त्वां नहुषो राजा बलादाकर्षयेत्खलः । तदा त्वं समयं कृत्वातुतंवञ्चयभूपतिम्
एकान्ते तत्समीपे त्वं गत्वा वद मदालसे । ऋषियानेन दिव्येन मामुपेहि जगत्पते
एवं तववशे प्रीता भविष्यामीतिमे व्रतम् । इति तं वद सुश्रोणि नदातुवरिमोहितः

कामान्धः स मुनीन्याने योजयिष्यति पार्थिव !।
अवश्यं तापसो भूपं शापदग्धं करिष्यति ॥ १६ ॥

साहाय्यं जगदम्बा ते करिष्यति न संशयः । जगदम्बापदस्मर्तुःसङ्कटं न कदाचन

यदि जायेत तथाऽपि ज्ञेयं तत्स्वस्तये किल ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन मणिद्वीपाधिवासिनीम् ॥ २१ ॥
भज त्वं भुवनेशानीं गुरुवाक्यानुसारतः ।

व्यास उवाच

इत्याख्याता शची तेन जगाम नहुषम्प्रति ॥ २२ ॥
तथेत्युक्त्वाऽतिविभ्रस्ता भाविकार्ये कृतोद्यमा ।

नहुषस्तां समालोक्य मुदितो वाक्यमब्रवीत् ॥ २३ ॥
स्वागतं सत्यवचने त्वदधीनोऽस्मि कामिनि !।
दासोऽहं तव सत्येन पालितम्वचनं त्वया ॥ २४ ॥
यदागता समीपे मे तुष्टोऽस्मि मितभाषिणि !।
न च व्रीडा त्वया कार्या भक्तं मां भज सुस्मिते ! ॥ २५ ॥
कार्यं वद विशालाक्षि ! करिष्यामि तव प्रियम् ।

शच्युवाच

सर्वं कृतं त्वया कार्यं मम कृत्रिमवासव !॥ २६ ॥
मनोरथोऽस्तिमेदेवशृणुचित्तेऽधुनाविभो । वाञ्छितंकुरुकल्याणत्वद्वशाऽहमतःपरम्
सर्वाभिमानसोत्साहंत्वंतंकर्तुमिहार्हसि । कार्यंत्वंब्रूहिचन्द्रास्येकरोमितववाञ्छितम्
अलभ्यमपि दास्यामि तुभ्यं सुभ्रु! वदस्व माम् ।

शच्युवाच

कथं ब्रवीमि राजेन्द्र ! प्रत्ययो नास्ति मे तव ॥ २९ ॥
शपथं कुरु राजेन्द्र यत्करोमि प्रियं तव । राजानः सत्यवचसो दुर्लभा एव भूतले
पश्चाद्ब्रवीम्यहं राजञ्ज्ञात्वा सत्यैवयंत्रितम् । कृते चेद्वाञ्छिते भूप! सदातेवशवर्तिनी
भविष्यामि तुराषाड् वै सत्यमेतद्वचो मम ।

नहुष उवाच

अवश्यमेव कर्तव्यं वचनं तव सुन्दरि !॥ ३२ ॥
शपामि सुकृतेनाऽहं यज्ञदानकृतेन वै ।

शच्युवाच

इन्द्रस्य हरयो वाहा गजश्चैव रथस्तथा ॥ ३३ ॥
गरुडो वासुदेवस्य यमस्य महिषस्तथा । वृषभः शङ्करस्याऽपि ब्रह्मणो वरटापतिः
मयूरः कार्तिकेयस्य गजास्यस्य तु मूषकः । इच्छाम्यहमपूर्वं वै वाहनं ते सुराधिप !
यन्नविष्णोर्न रुद्रस्य नाऽसुराणांनरक्षसाम् । वहन्तुत्वांमहाराज! मुनयःसंशितव्रताः

सर्वेशिबिकयाराजन्नेतद्धि मम वाञ्छितम् । सर्वदेवाधिकं त्वांवैजानामिवसुधाधिपः
तेन ते तेजसो वृद्धिं वाञ्छाम्यहमतन्द्रिता ।

व्यास उवाच

तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा प्रहस्य ज्ञानदुर्बलः ॥ ३८ ॥
मोहितस्तु महादेव्या कृतं मोहेन तत्क्षणम् । उवाच वचनं भूपःसंस्तुवन्वासवप्रियाम्

नहुष उवाच

सत्यमुक्तं त्वया तन्वि ! वाहनं रुचिरं मम । करिष्यामिसुकेशान्तेवचनं तव सर्वथा
नह्यल्पवीर्यो भवति योवाहान्कुरुतेमुनीन् । अहमारुह्ययानेन त्वामेष्यामिशुचिस्मिते
समर्षयो मां वक्ष्यन्ति सर्वेदेवर्षयस्तथा । समर्थंत्रिषुलोकेषुज्ञात्वामांतपसाऽधिकम्

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा तां सुसन्तुष्टो विससर्ज हरिप्रियाम् ।
मुनीनाहूय सर्वास्तानित्युवाच स्मरान्वितः ॥ ४३ ॥

नहुष उवाच

अहमिन्द्रोऽद्य भो विप्राःसर्वशक्तिसमन्वितः । कार्यमत्रप्रकुर्वन्तुभवन्तो विगतस्मयाः
इन्द्रासनं मया प्राप्तं नेन्द्राणी मामुपैति च । आकारिता च मां ब्रूते प्रेमपूर्वमिदं वचः
मुनियानेन देवेन्द्र मामुपैहि सुराधिप । देवदेव महाराज मत्प्रियं कुरु मानद !॥४६ ॥
एतत्कार्यं मुनिश्रेष्ठा ममाऽत्यन्तं दुरासदम् । भवद्भिस्तु प्रकर्तव्यं सर्वथैवदयालुभिः
मनो दहतिमे कामः शक्रपत्न्यां प्रवर्तितम् । भवन्तः शरणं मेऽद्य कुरुध्वंकार्यमद्भुतम्
अगस्तिप्रमुखास्तस्य श्रुत्वा वाक्यमसत्करम् । अङ्गीचक्रुश्चभावित्वात्कृपयापरमर्षयः
अङ्गीकृतेऽथ तद्वाक्ये मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः । मुदं प्राप नृपःकामंपौलोमीकृतमानसः
आरुह्य शिबिकां रम्यां संस्थितस्त्वरयाऽन्वितः ।
वाहान्कृत्वा मुनीन्दिव्यान्सर्पसर्पेति चाऽब्रवीत् ॥ ५१ ॥
कामार्तः सोऽस्पृशन्मूढः पादेनमुनिमस्तकम् । अगस्तितापसश्रेष्ठंलोपामुद्रापतिंतदा
वातापिभक्षकर्तारं समुद्रस्याऽपि शोषकम् । कशया ताडयामास पञ्चबाणशराहतः ॥

इन्द्राणीहृतचित्तोऽसौ सर्पेति प्रब्रुवन्मुनिम् ।
तं शशाप मुनिः क्रुद्धः कशाघातमनुस्मरन् ॥ ५४ ॥
सर्पो भव दुराचार वने घोरवपुर्महान् । बहुवर्षसहस्राणि यत्र क्लेशो महान्भवेत् ॥
विचरिष्यसि वीर्येण पुनःस्वर्गमवाप्स्यसि । दृष्ट्वा युधिष्ठिरंनामतवमोक्षोभविष्यति
प्रश्नानाममुत्तरं श्रुत्वा धर्मपुत्रमुखात्ततः ।

व्यास उवाच

एवं शप्तः स राजर्षिः स्तुत्वा तं मुनिसत्तमम् ॥ ५७ ॥
स्वर्गात्पपात सहसा सर्परूपधरोऽभवत् । बृहस्पतिस्ततो गत्वा तरसामानसं प्रति
इन्द्राय सर्ववृत्तान्तंकथयामासविस्तरम् । तच्छ्रुत्वामघवाराज्ञःस्वर्गात्प्रच्यवनादिकम्
मुदितोऽभून्महाराजः स्थितस्तत्रैव वासवः । देवाश्च मुनयो दृष्ट्वा नहुषं पतितं भुवि
जग्मुः सर्वेऽपि तत्रैव यत्रेन्द्रः सरसि स्थितः ।
नमाश्वास्य सुराः सर्वे मुनिभिः सहितास्तथा ॥ ६१ ॥
स्वर्गे समानयामासुर्मानपूर्वं शचीपतिम् । समागतं ततः शक्रं सर्वे ते मुनयः सुराः
स्थापयित्वाऽऽसने पश्चादभिषेकं दधुः शिवम् ।
इन्द्रोऽपि स्वाऽऽसनं प्राप्य शच्या सह सुराऽऽलये ॥ ६३ ॥
चिक्रीड नन्दने रम्ये कानने प्रेमयुक्तया ।

व्यास उवाच

एवमिन्द्रेण सम्प्राप्तं दुःखं परमदारुणम् ॥ ६४ ॥
हत्वाऽसुरं कामरूपं विश्वरूपं मुदा मुनिम् । पुनर्देव्याः प्रसादेन स्वस्थानंप्राप्तवान्नृप
एतत्ते सर्वमाख्यातं वृत्रासुरवधाश्रयम् । यत्पृष्टोऽहं त्वया राजन्कथानकमनुत्तमम् ॥
यादृशं कुरुते कर्म तादृशं फलमाप्नुयात् । अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्

इति श्रीदेवीभागवतेमहापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यांसंहितायांषष्ठस्कंधे
नहुषस्वर्गच्युतिवर्णनं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दशमोऽध्यायः

राज्ञोजनमेजस्येन्द्रस्थानभ्रंशप्रश्नेसञ्जातेव्यासेनत्रिविधस्यकर्मणोगतिवर्णनम्

जनमेजय उवाच

कथितंचरितं ब्रह्मञ्छक्रस्याऽद्भुतकर्मणः । स्थानभ्रंशस्तथा दुःखप्राप्तिरुक्ता विशेषतः
यत्रदेवाधिदेव्याश्चमहिमाऽतीववर्णितः । संदेहोऽत्रममाप्यस्तियच्छक्रोऽपिमहातपाः
देवाधिपत्यमासाद्य दुःखहं दुःखमन्वभूत् । मखानां तु शतंकृत्वाप्राप्तुंस्थानमनुत्तमम्
देवेशत्वं च सम्प्राप्यभ्रष्टः स्थानादसौ कथम् । एतत्सर्वं समाचक्ष्वकारणंकरुणानिधे

सर्वज्ञोऽस्मि मुनिश्रेष्ठ ! पुराणानां प्रवर्तकः ।
नाऽवाच्यं महतां किंचिच्छिष्ये च श्रद्धयाऽन्विते ॥ ५ ॥
तस्मात्कुरु महाभाग ! मत्सन्देहाऽपनोदनम् ।

सूत उवाच

इति पृष्टः स राज्ञा वै तदा सत्यवतीसुतः ॥ ६ ॥
तमाहाऽतिप्रसन्नात्मा यथानुक्रममुत्तरम् ।

व्यास उवाच

निबोध नृपतिश्रेष्ठ ! कारणं परमाद्भुतम् ॥ ७ ॥

कर्मणस्तु त्रिधा प्रोक्तागतिस्तत्त्वविदां वरैः । सञ्चितंवर्तमानं चप्रारब्धमितिभेदतः
अनेकजन्मसञ्जातं प्राक्तनं सञ्चितं स्मृतम् । सात्त्विकं राजसं कर्म तामसंत्रिविधंपुनः
शुभं वाऽप्यशुभं भूप सञ्चितं बहुकालिकम् । अवश्यमेव भोक्तव्यं सुकृतं दुष्कृतं तथा

जन्मजन्मनि देवानां सञ्चितानां च कर्मणाम् ।
निःशेषस्तु क्षयोनाऽभूत्कल्पकोटिशतैरपि ॥ ११ ॥

क्रियमाणं च यत्कर्म वर्तमानं तदुच्यते । देहं प्राप्य शुभं वाऽपि ह्यशुभं वासमाचरेत्
सञ्चितानां पुनर्मध्यात्समाहृत्य कियान्किल । देहारम्भे च समये कालःप्रेरयतीवतत्

रब्धं कर्मविज्ञेयं भोगात्तस्यक्षयःस्मृतः । प्राणिभिःखलुभोक्तव्यंप्रारब्धंनात्रसंशयः
पुरा कृतानि राजेन्द्र ह्यशुभानि शुभानि च । अवश्यमेवकर्माणिभोक्तव्यानीतिनिश्चयः
देवैर्मनुष्यैरसुरैर्यक्षगन्धर्वकिन्नरैः । कर्मैवहि महाराज! देहारम्भस्य कारणम् ॥ १८ ॥
कर्मक्षये जन्मनाशः प्राणिनांनात्रसंशयः । ब्रह्माविष्णुस्तथारुद्रइन्द्राद्याश्च सुरास्तथा
दानवा यक्षगन्धर्वाः सर्वे कर्मवशाः किल । अन्यथा देहसम्बन्धः कथं भवति भूपते

कारणं यस्तु भोगस्य देहिनः सुखदुःखयोः ।
तस्मादनेकजन्मोत्थसञ्चितानां च कर्मणाम् ॥ १९ ॥
मध्ये वेगः समायाति कस्यचित्कालपाकतः ।
तत्प्रारब्धवशात्पुण्यं करोति च यथा तथा ॥ २० ॥

पापं करोति मनुजस्तथा देवादयोऽपि च । तथा नारायणो राजन्नरश्च धर्मजावुभौ
जातौ कृष्णार्जुनौ काममंशौनारायणस्य तौ । पुराणपीठिकेयंवैमुनिभिःपरिकीर्तिता
देवांशः स तु विज्ञेयो यो भवेद्विभवाधिकः । नानृषिः कुरुतेकाव्यंनारुद्रोरुद्रमर्चते
नाऽदेवांशोददात्यन्नं नाविष्णुः पृथिवीपतिः । इन्द्राद्वग्नेर्यमाद्विष्णोर्धनदादितिभूपते
प्रभुत्वं च प्रभावं च कोपं चैव पराक्रमम् । आदाय क्रियते नूनं शरीरमिति निश्चयः

यः कश्चिद्‌ बलवाँल्लोके भाग्यवानथ भोगवान् ।
विद्यावान्दानवान्वाऽपि स देवांशः प्रपठ्यते ॥ २९ ॥

तथैवैते समाख्याताःपाण्डवाः पृथिवीपते !। देवांशोवासुदेवोऽपिनारायणसमद्युतिः
शरीरं प्राणिनां नूनं भाजनं सुखदु खयोः । शरीरी प्राप्नुयात्कामं सुखंदुःखमनन्तरम्
देही नास्ति वशः कोऽपिदैवाधीनःसदैव हि । जननं मरणंदुःखंसुखंप्राप्नोतिचावशः
पाण्डवास्ते वने जाताः प्राप्तास्तु स्वगृहंपुनः । स्वबाहुबलतः पश्चाद्राजसूयंक्रतूत्तमम्
वनवासं पुनः प्राप्ता बहुदुःखकरं परम् । अर्जुनेन तपस्तप्तंदुष्करं ह्यजितेन्द्रियैः ॥३१
सन्तुष्टस्तु सुरैर्दत्तं वरदानं पुनः शुभम् । नरदेहकृतं पुण्यं क्व गतं वनवासजम् ॥ ३२
नरदेहे तपस्तप्तं [illegible] बदरिकाश्रमे । नार्जुनस्य शरीरे तत्फलदं सम्बभूव ह ॥ ३३ ॥
प्राणिनां देहसम्बन्धे गहना कर्मणो गतिः । दुर्ज्ञेया सर्वथादेवैर्मानवानां तु का कथा

वासुदेवोऽपि सञ्जातः कारागारेऽतिसङ्कटे । नीतोऽसौवसुदेवेनर्नन्दगोपस्यगोकुलम्
एकादशैव वर्षाणि संस्थितस्तत्र भारत !। पुनः स मथुरां गत्वा जघानोग्रसुतंबलात्
मोचयामास पितरौ बन्धनाद् भृशदुःखितौ ।
उग्रसेनं च राजानं चकार मथुरापुरे ॥ ३९ ॥
जगाम द्वारवत्यां स म्लेच्छराजभयात्पुनः । सर्वं भाविवशात्कृष्णःकृतवान्पौरुषंमहत्
कृत्वा कार्याण्यनेकानि द्वारवत्यां जनार्दनः । देहंत्यक्त्वाप्रभासेतुसकुटुम्बोदिवंगतः
पुत्राः पौत्राश्च सुहृदो भ्रातरो जामयस्तथा ।
प्रभासे यादवाः सर्वे विप्रशापात्क्षयं गताः ॥ ४० ॥
एवं ते कथिता राजन्कर्मणो गहना गतिः । वासुदेवोऽपि व्याधस्यबाणेननिधनंगतः

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां षष्ठस्कन्धे
कर्मणांगहनागतिवर्णनं नामदशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

एकादशोऽध्यायः

जनमेजयसन्देहनिराकरणार्थंव्यासेनसत्य-त्रेता-द्वापर-कलियुगानां व्यवस्थावर्णनम्

जनमेजय उवाच

भारावतरणार्थाय कथितं जन्म कृष्णयोः । संशयोऽयं द्विजश्रेष्ठ हृदये मम तिष्ठति
पृथिवी गोस्वरूपेण ब्रह्माणं शरणं गता । द्वापरान्तेऽतिदीनाऽऽर्तागुरुभारप्रपीडिता
वेधसा प्रार्थितो विष्णुः कमलापतिरीश्वरः । भूभारोत्तरणार्थायसाधूनां रक्षणाय च
भगवन्भारते खण्डे देवैः सह जनार्दन !। अवतारं गृहाणाऽऽशु वसुदेवगृहे विभो ॥
एवं सम्प्रार्थितो धात्राभगवान्देवकीसुतः । बभूव सह रामेणभूभारोत्तरणाय वै ॥ ५
क्रियानुसारितो भारो हत्वादुष्टाननेकशः । ज्ञात्वा सर्वान्दुराचारान्पापबुद्धिनृपानिह

हतो भीष्मो हतो द्रोणो विराटो द्रुपदस्तथा ।
बाह्लीकः सोमदत्तश्च कर्णो वैकर्तनस्तथा ॥ ९ ॥
यैर्लुण्ठितं धनं सर्वं हृताश्चहरियोषितः । कथं न नाशिताद्दुष्टा यैस्थिताःपृथिवीतले
आमीराश्चशकाम्लेच्छानिषादाःकोटिशस्तथा । भारावतरणंकितत्कृतंकृष्णेनधीमता
सन्देहोऽयं महाभाग ! न निवर्तति चित्ततः ।
कलावस्मिन्प्रजाः सर्वाः पश्यतः पापनिश्चयाः ॥ १० ॥

व्यास उवाच

राजन्यस्मिन्युगेयादृक्प्रजाभवति कालतः । नाऽन्यथातद्भवेन्नूनंयुगधर्मोऽत्रकारणम्
ये धर्मरसिकाजीवास्तेवैसत्ययुगेऽभवन् । धर्मार्थरसिका ये तु ते वै त्रेतायुगेऽभवन्
धर्मार्थकामरसिका द्वापरे चाऽभवन्युगे । अर्थकामपराः सर्वे कलावस्मिन्भवन्ति हि
युगधर्मस्तुराजेन्द्र ! नयाति व्यत्ययंपुनः । कालःकर्त्ताऽस्तिधर्मस्यह्यधर्मस्यचवैपुनः

राजोवाच

ये तु सत्ययुगे जीवा भवन्तिधर्मतत्पराः । कुत्र तेऽद्यमहाभागतिष्ठन्तिपुण्यभागिनः
त्रेतायुगे द्वापरे वा ये दानव्रतकारकाः । वर्तन्ते मुनयःश्रेष्ठ! कुत्र ब्रूहि पितामह ॥१६
कलावद्य दुराचारा येऽत्र सन्ति गतत्रपाः । आद्येयुगेक्वयास्यन्तिपापिष्ठादेवनिन्दकाः
एतत्सर्वं समाचक्ष्व विस्तरेण महामते !। सर्वथाश्रोतुकामोऽस्मियदेतद्धर्मनिर्णयम्

व्यास उवाच

ये वै कृतयुगे राजन्सम्भवन्तीह मानवाः । कृत्वाते पुण्यकर्माणि देवलोकान्व्रजन्तिवै
ब्राह्मणाःक्षत्रियावैश्याःशूद्राश्चनृपसत्तम !। स्वधर्मनिरतायान्तिलोकान्कर्मजितान्किल
सत्यं दया तथा दानं स्वदारगमनं तथा ।
अद्रोहः सर्वभूतेषु समता सर्वजन्तुषु ॥ २१ ॥
एतत्साधारणं धर्मं कृत्वा सत्ययुगे पुनः । स्वर्गं यान्तीतरे वर्णा धर्मतो रजकादयः
तथा त्रेतायुगे राजन्द्वापरेऽथ युगे तथा । कलावस्मिन्युगेपापा नरकं यान्तिमानवाः
तावत्तिष्ठन्ति ते तत्र यावत्स्याद्युगपर्ययः । पुनश्च मानुषे लोके भवंति भुवि मानवाः

यदासत्ययुगस्यादिः कलेरन्तश्च पार्थिव !। तदास्वकर्मात्पुण्यकृतोआयान्तेकिलमानवाः
यदा कलियुगस्यादिर्द्वापरस्यक्षयस्तथा । नरकात्पापिनःसर्वे भवन्ति भुवि मानवाः
एवंकालसमाचारोनान्यथाऽभूत्कदाचन । तस्मात्कलिरसत्कर्तातस्मिंस्तुतादृशीप्रजा
कदाचिद्दैवयोगात्तुप्राणिनांव्यत्ययोभवेत् । कलौमध्ये साधवःकेचिद्द्वापरेसम्भवन्तिते
अथ त्रेतायुगे केचित् केचित्सत्ययुगेतथा । दुष्टाःसत्ययुगे ये तु ते भवन्तिकलावपि
कृतकर्मप्रभावेण प्राप्नुवन्त्यसुखानि च । पुनश्च तादृशंकर्म कुर्वन्ति युगभावतः ॥३०

जनमेजय उवाच

युगधर्मान्महाभाग ब्रूहिसर्वानशेषतः । यस्मिन्वैयादृशो धर्मो ज्ञातुमिच्छामि तं तथा

व्यास उवाच

निबोधनृपशार्दूल दृष्टान्तं ते ब्रवीम्यहम् । साधूनामपिचेतांसियुगभावाद्भ्रमन्तिहि
पितुर्यथा ते राजेन्द्र बुद्धिर्विप्रावहेलने । कृता वै कलिना राजन्धर्मज्ञस्य महात्मनः ॥
अन्यथा क्षत्रियो राजाययातिकुलसंभवः । तापसस्य गले सर्पं मृतं कस्मादयोजयत्
सर्वं युगबलं राजन्वेदितव्यं विजानता । प्रयत्नेन हि कर्तव्यं धर्मकर्मविशेषतः ॥३५॥
नूनं सत्ययुगे राजन्ब्राह्मणा वेदपारगाः । पराशक्त्यर्चनरता देवीदर्शनलालसाः ॥३६॥
गायत्रीप्रणवासक्ता गायत्रीध्यानकारिणः । गायत्रीजपसंसक्ता मायाबीजैकजापिनः

ग्रामे ग्रामे पराम्बायाः प्रासादकरणोत्सुकाः ।
स्वकर्मनिरताः सर्वे सत्यशौचदयान्विताः ॥ ३८ ॥

त्रय्युक्तकर्मनिरतास्तत्त्वज्ञानविशारदाः । अभवन्क्षत्रियास्तत्र प्रजाभरणतत्पराः ॥
वैश्यास्तु कृषिवाणिज्यगोसेवानिरतास्तथा । शूद्राः सेवापरास्तत्र पुण्येसत्ययुगेनृप
पराम्बापूजनासक्ताः सर्वे वर्णाः परे युगे । तथात्रेतायुगेकिंचिन्न्यूनाधर्मस्यसंस्थितिः

द्वापरे च विशेषेण न्यूना सत्ययुगस्थितिः ।
पूर्वं ये राक्षसा राजंस्ते कलौ ब्राह्मणाः स्मृताः ॥ ४२ ॥

पाखण्डनिरताःप्रायोभवन्ति जनवञ्चकाः । असत्यवादिनः सर्वे वेदधर्मविवर्जिताः॥
दाम्भिकालोकचतुरा मानिनो वेदवर्जिताः । शूद्रसेवापराः केचिन्नानाधर्मप्रवर्तकाः ॥

वेदनिन्दाकराःक्रूरा धर्मभ्रष्टातिवादुकाः। यथायथा कलिर्वृद्धिं याति राजंस्तथातथा
धर्मस्य सत्यमूलस्य क्षयः सर्वात्मना भवेत्।
तथैव क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्च धर्मवर्जिताः ॥ ४६ ॥
असत्यवादिनः पापास्तथा वर्णेतराः कलौ। शूद्रधर्मरता विप्राः प्रतिग्रहपरायणाः
भविष्यन्ति कलौ राजन्युगे वृद्धिं गताः किल।
कामचाराः स्त्रियः कामलोभमोहसमन्विताः ॥ ४८ ॥
पापा मिथ्याभिवादिन्यःसदाक्लेशरतानृप। स्वभर्तृवञ्चकानित्यंधर्मभाषणपण्डिताः
भवन्त्येवंविधानार्यः पापिष्ठाश्च कलौ युगे। आहारशुद्ध्यानृपतेचित्तशुद्धिस्तुजायते
शुद्धे चित्ते प्रकाशः स्याद्धर्मस्य नृपसत्तम। वृत्तसंकरदोषेण जायते धर्मसंकरः ॥५१
धर्मस्य सङ्करे जाते नूनं स्याद्वर्णसङ्करः। एवं कलियुगे भूप सर्वधर्मविवर्जिते ॥५२
स्ववर्णधर्मवार्तैषा न कुत्राप्युपलभ्यते। महान्तोऽपि च धर्मज्ञाअधर्मं कुर्वते नृप ॥
कलिस्वभाव एवैष परिहार्यो न केनचित्।
[तस्मादत्र मनुष्याणां स्वभावाःपापकारिणाम्]॥ ५४ ॥
निष्कृतिर्न हि राजेन्द्र! सामान्योपायतो भवेत्।

जनमेजय उवाच

भगवन्सर्वधर्मज्ञ! सर्वशास्त्रविशारद !॥ ५५ ॥
कलावधर्मबहुले नराणां का गतिर्भवेत्। यद्यस्ति तदुपायश्चेद्दयया तं वदस्व मे ॥

व्यास उवाच

एकएव महाराज! तत्रोपायोस्ति नाऽपरः। सर्वदोषनिरासार्थं ध्यायेद्देवीपदाम्बुजम्
न सन्त्यघानि तावन्ति यावती शक्तिरस्ति हि।
नाम्नि देव्याः पापदाहे तस्माद्भीतिः कुतो नृपः !॥ ५८॥
अवशेनाऽपि यन्नाम लीलयोच्चारितं यदि। किं किं ददाति तज्ज्ञातुं समर्थानहरादयः
प्रायश्चित्तं तु पापानांश्रीदेवीनामसंस्मृतिः। तस्मात्कलिभयाद्राजन्पुण्यक्षेत्रेवसन्नरः
निरंतरं पराम्बायानामसंस्मरणं चरेत्। छित्वा भित्वा चभूतानिहत्वासर्वमिदंजगत्

देवीं नमति भक्त्या यो नसपापैर्विलिप्यते । रहस्यंसर्वशास्त्राणांमयाराजन्नुदीरितम्
विमृश्यैतदशेषेण भज देवीपदाम्बुजम् । अजपां नाम गायत्रीं जपन्तिनिखिलाजनाः
महिमानं न जानन्ति मायायावैभवं महत् । गायत्रींब्राह्मणाः सर्वे जपन्ति हृदयान्तरे
महिमानं न जानन्तिमायाया वैभवं महत् । एतत्सर्वं समाख्यातं यत्पृष्टं त्वया नृप
युगधर्मव्यवस्थायां किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ।

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां षष्ठस्कन्धे
मयुगधर्मव्यवस्थादेवीजपवर्णनंनामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

द्वादशोऽध्यायः

तीर्थवर्णनप्रसङ्गेहरिश्चन्द्रनृपकथानकम् अपुत्रस्यास्यवरुणप्रसादात्पुत्रप्राप्ति स्तन्निमित्तमेवजलोदरव्याधिश्च

राजोवाच

तीर्थानिभुवि पुण्यानि ब्रूहि मेमुनिसत्तम !। गम्यानिमानवैर्देवः क्षेत्राणिसरितस्तथा
फलं च यादृशं यत्र तीर्थेषुस्नानदानतः । विधिंतु तीर्थयात्रायांनियमांश्च विशेषतः

व्यास उवाच

शृणुराजन्प्रवक्ष्यामि तीर्थानि विविधानि च । येषुतीर्थेषुदेवीनांप्रशस्तान्यायनानि च
नदीनां जाह्नवीश्रेष्ठा यमुनाच सरस्वती । नर्मदा गण्डकीसिन्धुर्गोमती तमसा तथा
कावेरी चन्द्रभागा च पुण्यावेत्रवती शुभा । चर्मण्वती चसरयूस्तापीसाभ्रमतीतथा
एताश्च कथिता राजन्नन्याश्च शतशः पुनः ।
तासां समुद्रगाः पुण्याः स्वल्पपुण्याः ह्यनब्धिगाः ॥ ६ ॥
समुद्रगानां ताःपुण्याःसर्वदोषवहास्तु याः । मासद्वयंश्रावणादौताश्चसर्वारजस्वलाः

भवन्ति वृष्टियोगेन ग्राम्यवारिवहास्तथा । पुष्करञ्च कुरुक्षेत्रं धर्मारण्यं सुपावनम् ॥
प्रभासं च प्रयागं च नैमिषारण्यमेव च । विश्रुतं चाऽर्बुदारण्यं शैलाश्च पावनास्तथा
श्रीशैलश्च सुमेरुश्च पर्वतो गन्धमादनः । सरांसि चैव पुण्यानि मानसं सर्वविश्रुतम्

तथा बिन्दुसरः श्रेष्ठमच्छोदं नाम पावनम् ।

आश्रमास्तु तथा पुण्या मुनीनां भावितात्मनाम् ॥ ११ ॥

विश्रुतस्तु सदा पुण्यः ख्यातोबदरिकाश्रमः । नरनारायणौ यत्र तेपाते तौ मुनीतपः
वामनाऽऽश्रम आख्यातः शतयूपाश्रमस्तथा । येन यत्रतपस्तप्तंतस्यनाम्नाऽतिविश्रुतः
एवं पुण्यानि स्थानानिह्यसंख्यातानि भूतले । मुनिभिःपरिगीतानिपावनानिमहीपते
एषुस्थानेषु सर्वत्र देवीस्थानानि भूपते । दर्शनात्पापहारीणि वसन्ति नियमेन च
कथयिष्यामि तान्यग्रेप्रसङ्गेनच कानिचित् । तीर्थानिनृपदानानिव्रतानिचमखास्तथा

तपांसि पुण्यकर्माणि सापेक्षाणि महीपते !।

द्रव्यशुद्धिं क्रियाशुद्धिं मनःशुद्धिमपेक्ष्य च ॥ १७ ॥

पावनानि हि तीर्थानि तपांसि च व्रतानि च ।

कदाचिद् द्रव्यशुद्धिः स्यात्क्रियाशुद्धिः कदाचन ॥ १८ ॥

दुर्लभामनमःशुद्धिः सर्वेषां सर्वदा नृप । मनस्तु चञ्चलं राजन्ननेकविषयाश्रितम् ॥
कथं शुद्धं भवेद्राजन्नानाभावसमाश्रितम् । कामक्रोधौतथालोभोह्यहङ्कारो मदस्तथा
सर्वविघ्नकराह्येते तपस्तीर्थव्रतेषु च । अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ॥
स्वधर्मपालनं राजन्सर्वतीर्थफलप्रदम् । नित्यकर्मपरित्यागान्मार्गे संसर्गदोषतः ॥२२
व्यर्थं तीर्थाधिगमनं पापमेवावशिष्यते । क्षालयन्तिहि तीर्थानि सर्वथादेहजं मलम्
मानसं क्षालितन्तानि न समर्थानिवै नृप । शक्तानि यदिचेत्तानि गंगातीरनिवासिनः

मुनयो द्रोहसंयुक्ताः कथं स्युर्भावितेश्वराः ।

वसिष्ठ सदृशाः ब्रह्मा विश्वामित्रादयः किल ॥ २५ ॥

रागद्वेषरताः सर्वे कामक्रोधाकुलाःसदा । चित्तशुद्धिमयंतीर्थं गंगादिभ्योऽतिपावनम्
यदि स्याद्दैवयोगेनक्षालयत्यान्तरं मलम् । विशेषेणतु सत्संगो ज्ञाननिष्ठस्य भूपते

न वेदा न च शास्त्राणि न व्रतानि तपांसि न । न मखा न च दानानि चित्तशुद्धेस्तु कारणम्
वसिष्ठो ब्रह्मणः पुत्रो वेदविद्याविशारदः । रागद्वेषान्वितः कामं गंगातीरसमाश्रितः
आडीबकं महायुद्धं विश्वामित्रवसिष्ठयोः । जातं निरर्थकं द्वेषाद्देवानां विस्मयप्रदम्
विश्वामित्रो बकस्तत्र जातः परमतापसः । शप्तः स तु वसिष्ठेन हरिश्चन्द्रस्य कारणात्

कौशिकेन वसिष्ठोऽपि शप्त्वाऽऽडीदेहभाक्कृतः ।
शापादाडीबकौ जातौ तौ मुनी विशदप्रभौ ॥ ३२ ॥

निवासं प्रापतुस्तीरे सरसो मानसस्य च । चक्रतुर्दारुणं युद्धं नखचञ्चुप्रताडनैः ॥
वर्षाणामयुतं यावत्तावुभौ रोषसंयुतौ । युयुधाते मदोन्मत्तौ सिंहाविव परस्परम्

राजोवाच

कथं तौ मुनिशार्दूलौ तापसौ धर्मतत्परौ । परस्परं वैरपरौ सञ्जातौ केन हेतुना ॥
शापं परस्परं केन कारणेन महामती । दत्तवन्तौ मिथः क्लेशकारकौ दुःखदौ नृणाम्

व्यास उवाच

हरिश्चन्द्रो नृपश्रेष्ठस्त्रिशङ्कुतनयः पुरा । बभूव रविवंशीयो रामचन्द्रस्य पूर्वजः ॥३७॥
अनपत्यः स राजर्षिर्वरुणाय महाक्रतुम् । प्रतिजज्ञे पुत्रकामो नरमेधं दुरासदम्
वरुणस्तस्य सन्तुष्टो यज्ञस्य नियमे कृते । दधार गर्भं राज्ञस्तु भार्या परमसुन्दरी ॥
राजा बभूव सन्तुष्टो दृष्ट्वा भार्यां सदोहदाम् । चकार विधिवत्कर्म गर्भसंस्कारकारकम्
सुषुवे तनयं नारी सर्वलक्षणसंयुतम् । मुदमाप नृपस्तत्र पुत्रे जाते विशाम्पते

कृतावज्जातकर्मादिसंस्कारविधिमुत्तमम् ।
ददौ हिरण्यं गा दोग्ध्रीर्ब्राह्मणेभ्यो विशेषतः ॥ ४२ ॥

जन्मोत्सवेऽतिसम्वृत्ते गेहे वै यादसांपतिः । आजगाम महाराज! विप्रवेषधरस्तथा

पूजितः पार्थिवेनाऽथ दत्त्वा विधिवदासनम् ।
कार्ये पृष्टेऽब्रवीद्वाक्यं वरुणोऽस्मीति भूपतिम् ॥ ४४ ॥

कुरु यज्ञं सुतं कृत्वा पशुं परमपावनम् । सत्यवाग्भव राजेन्द्र संकल्पस्तु त्वया कृतः

तच्छ्रुत्वा वचनं राजा विह्वलोऽतिव्यथाकुलः ।

संस्तभ्याऽऽधि नृपः प्राह वरुणं सत्कृताञ्जलिः ॥ ४६ ॥
स्वामिन्करोमि तं यज्ञं सर्वथाविधिपूर्वकम् । मयातेयत्प्रतिज्ञातंभवामिसत्यवागहम्
पूर्णे मासे विशुद्ध्येत धर्मपत्नी सुरोत्तम । विशुद्धायां तु भार्यायांकर्तव्यःसपशुर्मखः

व्यास उवाच

इत्युक्ते वचने राज्ञा वरुणः स्वगृहंगतः । राजा बभूव सन्तुष्टः किञ्चिच्चिन्तातुरस्तथा
पूर्णेमासि पुनः पाशीपरीक्षार्थं नृपालये । आजगामद्विजोभूत्वा सुवेषः सुष्ठुभाषकः
कृतार्हणं सुखासीनं भूपतिस्तं सुरोत्तमम् ।
उवाच विनयोपेतो हेतुगर्भं वचस्तदा ॥ ५१ ॥
असंस्कृतं सुतं स्वामिन्यूपे बध्नामि तं कथम् ।
संस्कृत्य क्षत्रियं कृत्वा यजेऽहं यज्ञमुत्तमम् ॥ ५२ ॥
क्षमसे यदि देव! त्वं ज्ञात्वा दीनं स्वसेवकम् ।
असंस्कृतस्य बालस्य नाऽधिकारोऽस्ति कुत्रचित् ॥ ५३ ॥

वरुण उवाच

प्रतारयसि राजेन्द्र! कृत्वा समयमग्रतः । दुस्त्यजस्तव जानामिसुतस्नेहोह्यपुत्रिणः
गृहं व्रजामिभूपाल! वचनात्तवकोमलात् । कियत्कालंप्रतीक्ष्याहमागमिष्यामितेगृहम्
भवितव्यं त्वया तात ! तदा सत्यवचोऽन्वितम् ।
अन्यथा त्वयि मुञ्चामि कोपं शापसमन्वितम् ॥ ५६ ॥

राजोवाच

समावर्तनकर्मान्ते सर्वथा यादसाम्पते । कृत्वा नृपपशुं यज्ञे यजिष्ये विधिपूर्वकम्

व्यास उवाच

तच्छ्रुत्वा वचनं राज्ञो वरुणः प्रीतिमानसः ।
तथेत्युक्त्वा ययौ तूर्णं नृपस्तु सुस्थितोऽभवत् ॥ ५८ ॥
रोहिताख्यइतिख्यातःसुतस्तस्य विवृद्धिमान् । सञ्जातश्चतुरःसर्वविद्यानाञ्चविशारदः
यज्ञस्यकारणं तेन ज्ञातं सर्वंसविस्तरम् । भयभीतस्ततःसोऽपि मत्वा मरणमात्मनः

कृत्वा पलायनं वीरो गतोऽसौगिरिगह्वरे। अगम्ये नृपतिस्थाने स्थितस्तत्रभयातुरः
प्राप्ते कालेऽथ वरुणो यज्ञार्थी नृपतेर्गृहम्। गत्वा तमाह भूपालं कुरु यज्ञं विशाम्पते
प्रम्लानवदनो राजा तमाहव्यथितेन्द्रियः। किं करोमिगतः क्वाऽपि सुतोमेसुरसत्तम
श्रुत्वा तद्वचनं राज्ञःकुपितोयादसाम्पतिः। शशाप तं नृपं कोपादसत्यवादिनम्भृशम्
जलोदराभिधो व्याधिर्देहेभवतु ते नृपः। यतः प्रतारितश्चाऽहं कृत्वा कपटपण्डित!

इति शप्त्वा ययौ धाम स्वकं पाशधरस्तदा।

राजा चिन्तातुरस्तस्थौ भवने व्याधिपीडितः॥ ६६॥

यदाऽतिव्याधितोराजारोगेणशापजेनह। तदाशुश्रावपुत्रोऽपिपितरम्व्याधिपीडितम्
पान्थिकःप्राह पुत्रं हि पिता ते भृशदुःखिताः। जलोदरविकारेण शापजेन नृपात्मज

विनष्टं जीवितं तेऽद्य वृथा जातस्य दुर्मते!

यस्त्यक्त्वा पितरं दुःस्थं प्राप्तोऽसि गिरिगह्वरम्॥ ६६॥

किमनेन शरीरेणप्राप्तन्तेजन्मनः फलम्। देहदंदुःखितं कृत्वा स्थितोऽस्यत्रसुताधम!

प्राणास्त्याज्याःपितुःकार्ये सत्पुत्रेणेति निश्चयः।

त्वदर्थे दुःखितो राजा क्रन्दति व्याधिपीडितः॥ ७१॥

व्यास उवाच

तदाकर्ण्य वचस्तथ्यंपान्थिकाद्धर्मसंयुतम्। यदा चक्रे मनोगन्तुंद्रष्टुंतातंव्यथातुरम्
तदा विप्रवपुर्भूत्वा वासवस्तमुपागतम्। रहः प्राह हितंवाक्यंदयावानिव भारत!॥
मूर्खोऽसि राजपुत्र त्वं गमनाय मतिर्वृथा। करोषिपितरंत्वद्य नजानासि व्यथायुतम्

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां षष्ठस्कन्धे
हरिश्चन्द्रस्यजलोदरव्याधिपीड़ावर्णनंनामद्वादशोऽध्यायः॥ १२॥

त्रयोदशोऽध्यायः

दुःखितंपितरंश्रुत्वारोहितस्यतद्दुःखनिवारणायगमनंवसिष्ठाज्ञयायज्ञं शुनः शेपानयनमाडीबकयोयुद्धवर्णनञ्च

इन्द्र उवाच

साहसं कृतवान्राजा पूर्वं यत्कथितोमखः। वरुणाय प्रतिज्ञातः पुत्रं कृत्वापशुंप्रियम्
गतेत्वयिपितापुत्रं बद्ध्वायूपेऽघृणः पुनः। पशुं कृत्वा महाबुद्धे वधिष्यति वृथातुरः
इत्थं निषिद्धस्तत्पुत्रः शक्रेणाऽमिततेजसा।
स्थितस्तत्रैव मायेशीमायया मोहितो भृशम् ॥ ३ ॥

यदा पुनः पुनः श्रुत्वा पितरं रोगपीडितम्। गमनाय मतिं चक्रे तदेन्द्रः प्रत्यषेधयत्
हरिश्चन्द्रोऽतिदुःखार्तः प्रपच्छ गुरुमन्तिके। स्थितंवसिष्ठमेकान्तेसर्वज्ञंहिततत्परम्

राजोवाच

भगवन्किंकरोम्यद्य कातरोऽस्मिव्यथाकुलः। त्राहिमांदुःखमनसं महाव्याधिभयातुरम्

वसिष्ठ उवाच

शृणुराजन्नुपायोऽस्ति रोगनाशं प्रतिस्तुतः। त्रयोदशभिधाः पुत्राःकथिताधर्मसंग्रहे
तस्मात्क्रीतंसुतंकृत्वायजस्वमखमुत्तमम्। द्रव्यंदत्त्वायथोद्दिष्टमानयस्वद्विजोत्तमम्
एवं कृतेमखेभूपरोगनाशोभविष्यति। वरुणोऽपि प्रसन्नात्मा भविष्यति यथासुखम्

व्यास उवाच

इति तस्यवचः श्रुत्वा राजा प्रोवाचमन्त्रिणम्। अन्वेषयमहाबुद्धेविप्रगेष्वतियत्नतः
कदाचित्कोऽपि लोभार्थी ददाति स्वसुतं पिता।
समानय धनं दत्त्वा यावत्प्रार्थयतेऽप्यसौ ॥ ११ ॥

सर्वथैव समानेयो यज्ञार्थे द्विजबालकः। न कार्या कृपणा बुद्धिस्त्वयामत्कार्यहेतवे
प्रार्थनीयस्त्वया पुत्रः कस्यचिद् द्विजवादिनः।

द्रव्येण देहि यज्ञार्थं कर्तव्योऽसौ पशुः किल ॥ १३ ॥

इति सञ्चोदितस्तेन सचिवः कार्यहेतवे । अन्वेषयामास पुरे ग्रामे ग्रामे गृहे गृहे ॥
एवमन्वेषतस्तस्य विषये कश्चिदातुरः । निर्धनस्त्रिसुतश्चासीदजीगर्तेति नामतः ॥
तस्य पुत्रं शुनःशेपं मध्यमं मन्त्रिसत्तमः । आनयामास दत्त्वाऽर्थं प्रार्थितं यद्धनं तदा
समानीय शुनःशेपं सचिवः कार्यतत्परः । राज्ञे निवेदयामास पशुयोग्यं द्विजात्मजम्

राजाऽतिमुदितस्तेन विप्रानानीय सर्वतः ।

कारयामास सम्भारान्यज्ञार्थं वेदवित्तमान् ॥ १८ ॥

प्रारब्धे तु मखे तत्र विश्वामित्रो महामुनिः । बद्धं दृष्ट्वा शुनःशेपं निषिषेध नृपं तदा
राजन्मा साहसंकार्षीर्मुञ्चेनंद्विजबालकम् । प्रार्थयाम्यहमायुष्मन्सुखंतेऽद्य भविष्यति
क्रन्दत्ययं शुनःशेपः करुणा मां दुनोत्यपि । दयावान्भव राजेन्द्र कुरु मे वचनं नृप॥
परदेहस्य रक्षार्थं स्वदेहं ये दयापराः । ददति क्षत्रियाः पूर्वं स्वर्गकामाः शुचिव्रताः
तं स्वदेहस्य रक्षार्थं हंसि द्विजसुतम्बलात् । पापम्मा कुरु राजेन्द्रदयावान्भवबालके
सर्वेषां सदृशी प्रीतिर्देहे वेत्सि स्वयं नृप !। मुञ्चैनं बालकंतस्मात्प्रमाणंयदिमेवचः

व्यास उवाच

अनादृत्य च तद्वाक्यं राजा दुःखातुरो भृशम् ।

न मुमोच मुनिस्तस्मै चुकोपाऽतीव तापसः ॥ २५ ॥

उपदेशं ददौ तस्मै शुनःशेपाय कौशिकः । मन्त्रं पाशधरस्याऽथ दयावान्वेदवित्तमः
शुनःशेपोऽपि तं मन्त्रमसकृद्भयकर्शितः । प्लुतस्वरेण चुक्रोश संस्मरन्वरुणं भृशम्

स्तुवन्तं मुनिपुत्रं तं ज्ञात्वा वै यादसाम्पतिः ।

तत्राऽऽगत्य शुनःशेपं मुमोच करुणार्णवः ॥ २८ ॥

रोगहीनं नृपं कृत्वा वरुणःस्वगृहंययौ । विश्वामित्रस्तु तं पुत्रंकृतवान्मोचितंमृतेः
न कृतं वचनं राज्ञा कौशिकस्यमहात्मनः । रोषं दधार मनसा राजोपरि सगाधिजः
एकस्मिन्समये राजा हयारूढो वनङ्गतः । सूकरं हन्तुकामस्तु मध्याह्नेकौशिकीतटे
वृद्धब्राह्मणवेषेणविश्वामित्रेण वञ्चितः । सर्वस्वं प्रार्थितं तस्य गृहीतं राज्यमद्भुतम्

पीडितोऽसौ हरिश्चन्द्रो यजमानो यतो भृशम् ।
वशिष्ठः कौशिकं प्राह वने प्राप्तं यदृच्छया ॥ ३३ ॥

क्षत्रियाधर्म दुर्बुद्धे वृथाब्राह्मणवेषभृत् । बकधर्म वृथा किं त्वं गर्वं वहसि दाम्भिक
कस्मात्त्वयानृपश्रेष्ठोयजमानोममाऽप्यसौ । अपराधंविनाजाल्म! गमितोदुःखमद्भुतम्

बकध्यानपरो यस्मात्तस्मात्त्वं वै बको भव ।
इति शप्तो वसिष्ठेन कौशिकः प्राह तम्पुनः ॥ ३६ ॥
त्वमप्याडिर्भवाऽऽयुष्मन्बकोऽहं यावदेव हि ।

व्यास उवाच

एवं परस्परं दत्त्वा शापं तौ क्रोधपीडितौ ॥ ३७ ॥
अण्डजौ तरसा जातौ सरस्याडीबकौ मुनी ।
एकस्मिन्पादपे नीडं कृत्वाऽसौ बकरूपभाक् ॥ ३८ ॥
विश्वामित्रः स्थितस्तत्र दिव्ये सरसि मानसे ।
अन्यस्मिन्पादपे कृत्वा वसिष्ठो नीडमुत्तमम् ॥ ३९ ॥

आडीरूपधरस्तथावन्योन्यं द्वेषतत्परौ । दिने दिने तौ सङ्ग्रामं चक्रतुःक्रोधसंयुतौ
दुःखदं सर्वलोकानां क्रन्दमानावुभौ भृशम् । चञ्चुपक्षप्रहारैस्तु नखाघातैः परस्परम्
जघ्नतू रुधिरक्लिन्नौ पुष्पिताविव किंशुकौ । एवं बहूनि वर्षाणि पक्षिरूपधरौ मुनी

स्थितौ तत्र महाराज ! शापपाशेन यन्त्रितौ ।

राजोवाच

कथं मुक्तौ मुनिश्रेष्ठौ शापाद्वसिष्ठकौशिकौ ॥ ४३ ॥
तन्ममाऽऽचक्ष्व विप्रर्षे! परं कौतूहलं हि मे ।

व्यास उवाच

युध्यमानावुभौ दृष्ट्वा ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ ४४ ॥

तत्राऽऽजगामाऽनिमिषैर्वृतःसर्वैर्दयापरैः । तावाश्वास्यजगत्कर्तायुद्धतोविनिवार्य च

शापं सम्मोचयामास तयोःक्षिप्तं परस्परम् ।

ततो जग्मुः सुराः सर्वे स्वानि धिष्ण्यानि पद्मभूः ॥ ४६ ॥
सत्यलोकं जगामाऽऽशु हंसाऽऽरूढः प्रतापवान् ।
विश्वामित्रोऽप्यगात्तूर्णं वसिष्ठः स्वाऽऽश्रमं गतः ॥ ४७ ॥
मिथः स्नेहं ततः कृत्वा प्रजापत्युपदेशतः । मैत्रावरुणिनाऽप्येवं कृतं युद्धमकारणम्
कौशिकेन समंभूप! दुःखदं च परस्परम् । को नाम मानवोलोकेदेवोवादानवोऽपिवा
अहङ्कारजयंकृत्वा सर्वदा सुखभाग्भवेत् । तस्माद्राजंश्चित्तशुद्धिर्महतामपि दुर्लभा ॥
यत्नेन साधनीया सा तद्विहीनं निरर्थकम् ।
तीर्थदानं तपः सत्यं यत्किञ्चिद्धर्मसाधनम् ॥ ५१ ॥
["श्रद्धाऽत्र त्रिविधा प्रोक्ता सात्त्विकी राजसी तथा ।
तामसी सर्वदेहेषु देहिनां धर्मकर्मसु ॥ ५२ ॥
सात्त्विकी दुर्लभा लोके यथोक्तफलदा सदा । तदर्धफलदाप्रोक्ताराजसीविधिसंयुता
तामसीत्वफला राजन्नतुकीर्तिकरी पुनः । कामक्रोधाभिभूतानांजनानां नृपसत्तम !"]
वासनारहितं कृत्वा तच्चित्तं श्रवणादिना । तीर्थादिषु वसेन्नित्यं देवीपूजनतत्परः
देवीनामानि वचसा गृह्णंस्तस्या गुणान्स्तुवन् ।
ध्यायँस्तस्याः पदाम्भोजं कलिदोषभयार्दितः ॥ ५६ ॥
एवं तु कुर्वतस्तस्य न कदाचित्कलेर्भयम् । अनायासेन संसारान्मुच्यतेपातकीजनः
इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यांसंहितायां षष्ठस्कन्धे
आडीबकयुद्धवर्णनसहितंदेवीमाहात्म्यवर्णनंनामत्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

चतुर्दशोऽध्यायः

राज्ञामैत्रावरुणिरितिवशिष्ठनामविषयेप्रश्नेकृतेव्यासेननिमिवशिष्ठयोः परस्परशापदानवार्त्ताकथनम्

जनमेजय उवाच

मैत्रावरुणिरित्युक्तं नाम तस्य मुनेः कथम् । वसिष्ठस्यमहाभागब्रह्मणस्तनुजस्य ह
किमसौ कर्मतोनाम प्राप्तवान्गुणतस्तथा । ब्रूहि मे वदतांश्रेष्ठ! कारणंतस्यनामजम्

व्यास उवाच

निबोध नृपतिश्रेष्ठ वसिष्ठोब्रह्मणः सुतः । निमिशापात्तनुं त्यक्त्वापुनर्जातोमहाद्युतिः
मित्रावरुणयोर्यस्मात्तस्मात्तन्नाम विश्रुतम् । मैत्रावरुणिरित्यस्मिँल्लोकेसर्वत्रपार्थिव

राजोवाच

कस्माच्छप्तः स धर्मात्मा राज्ञा ब्रह्मात्मजो मुनिः ।
चित्रमेतन्मुनिं लग्नो राज्ञः शापोऽतिदारुणः ॥ ५ ॥

अनागसं मुनिं राजा किमसौ शप्तवान्मुने । कारणं वद धर्मज्ञ! तस्य शापस्य मूलतः

व्यास उवाच

कारणं तु मया प्रोक्तं तव पूर्वं विनिश्चितम् ।
संसारोऽयं त्रिभिर्व्याप्तो राजन्मायागुणैः किल ॥ ७ ॥

धर्मं करोतु भूपालश्चरन्तु तापसास्तपः । सर्वेषां तु गुणैर्विद्धं नोज्वलं तद्भवेदिह ॥
कामक्रोधाभिभूताश्च राजानो मुनयस्तथा । लोभाहङ्कारसंयुक्ताश्चरन्ति दुश्चरं तपः
यजन्ति क्षत्रिया राजन्रजोगुणसमावृताः । ब्राह्मणास्तुतथाराजन्कोऽपिसत्त्वसंयुतः

ऋषिणाऽसौ निमिः शप्तस्तेन शप्तो मुनिः पुनः ।
दुःखाद्दुःखतरं प्राप्तावुभाऽपि विधेर्बलात् ॥ ११ ॥

द्रव्यशुद्धिः क्रियाशुद्धिर्मनसः शुद्धिरुज्वला। दुर्लभाप्राणिनांभूपसंसारे त्रिगुणात्मके

परांशक्तिप्रभावोऽयं नोल्लङ्घ्यः केनचित्कचित्।

यस्यानुग्रहमिच्छेत्सा मोचयत्येव तं क्षणात्॥ १३॥

महान्तोऽपि न मुच्यन्ते हरिब्रह्महरादयः। पामरा अपि मुच्यन्ते यथा सत्यव्रतादयः

तस्यास्तु हृदयं कोऽपि न वेत्ति भुवनत्रये। तथापिभक्तवश्येयंभवत्येवसुनिश्चितम्

तस्मात्तद्भक्तिरास्थेयादोषनिर्मूलनाय च। रागदम्भादियुक्ताचेत्साभक्तिर्नाशिनीभवेत्

इक्ष्वाकुकुलसम्भूतो निमिर्नाम नराधिपः। रूपवान्गुणसम्पन्नो धर्मज्ञो लोकरञ्जकः

सत्यवादी दानपरो याजको ज्ञानवाञ्छुचिः।

द्वादशस्तनयो धीमान्प्रजापालनतत्परः॥ १८॥

पुरं निवेशयामास गौतमाश्रमसन्निधौ। जयन्तु पुरसञ्ज्ञन्तु ब्राह्मणानांहिताय सः॥

बुद्धिस्तस्य समुत्पन्ना यजेयमिति राजसी। यज्ञेन बहुकालेन दक्षिणासंयुतेन च॥

इक्ष्वाकुं पितरं दृष्ट्वा यज्ञकार्यायपार्थिव!। कारयामास सम्भारं यथोद्दिष्टंमहात्मभिः

भृगुमङ्गिरसञ्चैव वामदेवञ्च गौतमम्। वसिष्ठञ्च पुलस्त्यञ्च ऋचीकं पुलहं क्रतुम्॥

मुनीनामन्त्रयामास सर्वज्ञान्वेदपारगान्। यज्ञविद्याप्रवीणांश्च तापसान्वेदवित्तमान्

राजा सम्भृतसम्भारः सम्पूज्य गुरुमात्मनः।

वसिष्ठं प्राह धर्मज्ञो विनयेन समन्वितः॥ २४॥

यजेयंमुनिशार्दूल! याजयस्वकृपानिधे!। गुरुस्त्वंसर्ववेत्ताऽसिकार्यंमे कुरु साम्प्रतम्

यज्ञोपकरणं सर्वं समानीतं सुसंस्कृतम्। पञ्चवर्षसहस्रन्तु दीक्षां कर्तुं मतिश्च मे॥

यस्मिन्यज्ञेसमाराध्यादेवीश्रीजगदम्बिका। तत्प्रीत्यर्थमहं यज्ञं करोमि विधिपूर्वकम्

तच्छ्रुत्वाऽसौ निमेर्वाक्यं वसिष्ठः प्राह भूपतिम्।

इन्द्रेणाऽहं वृतः पूर्वं यज्ञार्थं नृपसत्तम!॥ २८॥

पराशक्तिमखं कर्तुमुद्युक्तः पाकशासनः। स दीक्षां गमितो देवः पञ्चवर्षशतात्मिकाम्

तस्मात्त्वमन्तरं तावत्प्रतिपालय पार्थिव। इन्द्रयज्ञेसमाप्तेऽत्र कृत्वा कार्यं दिवस्पतेः

आगमिष्याम्यहं राजंस्तावत्त्वं प्रतिपालय।

राजोवाच

मया निमन्त्रिताश्चाऽन्ये मुनयो यज्ञकारणात् ॥ ३१ ॥
सम्भाराःसम्भृताःसर्वेपालयामिकथंगुरो !। इक्ष्वाकूणां कुले ब्रह्मन्गुरुस्त्वंवेदवित्तमः
कथं त्यक्त्वाऽद्य मे कार्यमुद्यतोगन्तुमाशु वै । न ते युक्तं द्विजश्रेष्ठ यदुत्सृज्यमखंमम
गन्ताऽसिधनलोभेनलोभाकुलितऽचेतनः । निवारितोऽपिराज्ञा स जगामेन्द्रमखंगुरुः
राजाऽपि विमना भूत्वागौतमंप्रत्यपूजयत् । इयाज हिमवत्पार्श्वे सागरस्यसमीपतः
दक्षिणा बहुला दत्ता विप्रेभ्यो मखकर्मणि । निमिना पञ्चसाहस्री दीक्षातत्रकृतानृप
ऋत्विजः पूजिताः कामं धनैर्गोभिर्मुदायुताः । शक्र यज्ञे समाप्ते तु पञ्चवर्षशतात्मके
आजगाम वसिष्ठस्तु राज्ञः मखदिदृक्षया । आगत्य संस्थितस्तत्र दर्शनार्थं नृपस्यवै
तदा राजा प्रसुप्तस्तु निद्रयाऽपहृतोभृशम् । नाऽसौ प्रबोधितोभृत्यैर्नागतस्तुमुनिर्नृप
वसिष्ठस्य ततो मन्युःप्रादुर्भूतोऽवमानतः । अदर्शनान्निमेस्तत्र चुकोप मुनिसत्तमः

शापञ्च दत्तवांस्तस्मै राज्ञे मन्युवशङ्गतः ।
यस्मात्त्वं मां गुरुं त्यक्त्वा कृत्वाऽन्यं गुरुमात्मनः ॥ ४१ ॥
दीक्षितोऽसि बलान्मन्द ! मामवज्ञाय पार्थिव ! ।
वारितोऽपि मया तस्माद्विदेहस्त्वं भविष्यसि ॥ ४२ ॥
पतत्विदं शरीरन्ते विदेहो भव भूपते ! ।

व्यास उवाच

इति तद्व्याहृतं श्रुत्वा राज्ञस्तु परिचारकाः ॥ ४३ ॥
सद्यः प्रबोधयामासुर्मुनिमाहुः प्रकोपितम् । कुपितं तं समागत्य राजा विगतकल्मषः
उवाच वचनंश्लक्ष्णंहेतुगर्भंश्रयुक्तिमत् । मम दोषो न धर्मज्ञ! गतस्त्वंतृष्णयाऽऽकुलः

हित्वा मां यजमानम्वै प्रार्थितोऽसि मया भृशम् ।
न लज्जसे द्विजश्रेष्ठ ! कृत्वा कर्म जुगुप्सितम् ॥ ४६ ॥

सन्तोषे ब्राह्मणश्रेष्ठ! जानन्धर्मस्यनिश्चयम् । पुत्रोऽसिब्रह्मणःसाक्षाद्वेदवेदाङ्गवित्तमः
न वेत्सि विप्रधर्मस्य गतिं सूक्ष्मां दुरत्ययाम् ।

आत्मदोषं मयि ज्ञात्वा मृषा मां शप्तुमिच्छसि ॥ ४८ ॥
त्याज्यस्तु सुजनैः क्रोधश्चण्डालादधिको यतः । वृथाक्रोधपरीतेनमयिशापःप्रपातितः
तथाऽपि च पतत्वद्य देहोऽयं क्रोधसंयुतः । एवंशप्तोमुनी राज्ञा राजा च मुनिनातथा
परस्परम्प्राप्य शापं दुःखितौतौ बभूवतुः । वसिष्ठस्त्वतिचिन्तार्त्तोब्रह्माणंशरणंगतः
निवेदयामास तथा शापं भूपकृतम्महत् ।

वसिष्ठ उवाच

राज्ञा शप्तोऽस्मि देहोऽयं पतत्वद्य तवेति वै ॥ ५२ ॥
किं करोमि पितः! प्राप्तं कष्टं कायप्रपातजम् । अन्यदेहसमुत्पत्तौजनकस्त्वदसाम्प्रतम्
तथा मे देहसंयोगः पूर्ववत्समपद्यताम् । यादृशं ज्ञानमेतस्मिन्देहे तत्राऽस्तुतत्पितः
समर्थोऽसि महाराज प्रसादं कर्तुमर्हसि । वसिष्ठस्य वचः श्रुत्वाब्रह्माप्रोवाचतंसुतम्
मित्रावरुणयोस्तेजस्त्वं प्रविश्यस्थिरोभव । तस्मादयोनिजःकालेभवितात्वंनसंशयः
पुनर्देहं समासाद्य धर्मयुक्तो भविष्यसि । भूतात्मा वेदवित्कामं सर्वज्ञः सर्वपूजितः॥
एवमुक्तस्तदा पित्रा प्रययौ वरुणालयम् । कृत्वाप्रदक्षिणम्प्रीत्याप्रणम्यचपितामहम्
विवेश स तयोर्देहे मित्रावरुणयोःकिल । जीवांशेनवसिष्ठोऽथ त्यक्त्वादेहमनुत्तमम्
कदाचिदुर्वशी राजन्नागता वरुणालयम् । यदृच्छया वरारोहा सखीगणसमावृता ॥
दृष्ट्वा तामप्सरांदिव्यांरूपयौवनसंयुताम् । जातौ कामातुरौ देवौ तदा तावृचतुर्नृप
विवशौचारुसर्वाङ्गीं देवकन्यांमनोरमाम् । आवान्त्वमनवद्याङ्गि वरयस्व समाकुलौ
विहरस्व यथाकामं स्थानेऽस्मिन्वरवर्णिनि !।
तथोक्ता सा ततो देवी ताभ्यां तत्र स्थिता वशा ॥ ६३ ॥
कृत्वा भावं स्थिरन्देवीमित्रावरुणयोर्गृहे । सागृहीत्वातयोर्भावंसंस्थिताचारुदर्शना
तयोस्तु पतितम्वीर्यं कुम्भेदैवादनावृते । तस्माज्जातौ मुनीराजन्द्वावेवाऽतिमनोहरौ
अगस्तिः प्रथमस्तत्र वसिष्ठश्चाऽपरस्तथा । मित्रावरुणयोर्वीर्यात्तापसावृषिसत्तमौ
प्रथमस्तु वनम्प्राप्तो बाल एव तहातपाः । इक्ष्वाकुस्तुवसिष्ठन्तंबालं वव्रे पुरोहितम्
वंशस्याऽस्यसुखार्थन्तेपालयामासपार्थिव । विशेषेण मुनिं ज्ञात्वाप्रीत्यायुक्तोबभूवह

एतत्ते सर्वमाख्यातं वसिष्ठस्य च कारणम् । शापाद्देहान्तरप्राप्तिर्मित्रावरुणयोः कुले ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां षष्ठस्कन्धे वसिष्ठस्यमैत्रावरुणिरितिनामवर्णनंनाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

पञ्चदशोऽध्यायः

निमिराज्ञोदेहान्तरगमनपूर्वकंदेवीवरदानं तस्य नेत्रेषुवासः पुनर्जनमेजय-सन्देहनिवारणाय ज्ञानोपदेशः

जनमेजय उवाच

देहप्राप्तिर्वसिष्ठस्य कथिता भवता किल । निमिः कथं पुनर्देहम्प्राप्तवानिति मे वद

व्यास उवाच

वसिष्ठेन च सम्प्राप्तः पुनर्देहोनराधिप । निमिना न तथा प्राप्तो देहः शापादनन्तरम्
यदा शप्तो वसिष्ठेन तदा ते ब्राह्मणाःक्रतौ । ऋत्विजो येवृताराज्ञातेसर्वेसमचिन्तयन्

किं कर्तव्यमहोऽस्माभिः शापदग्धो महीपतिः ।
अस्मिन्यज्ञे त्वसम्पूर्णे दीक्षायुक्तश्च धार्मिकः ॥ ४ ॥

किं कर्तव्यं कार्यमेतद्विपरीतमभूत्किल । अवश्यंभाविभावत्वादशक्ताः स्म निवारणे
मन्त्रैर्बहुविधैर्देहं तदा तस्य महात्मनः । रक्षितं धारयामासुः किंचिच्छ्वसनसंयुतम् ॥
गन्धैर्माल्यैश्च विविधैः पूज्यमानंमुहुर्मुहुः । मन्त्रशक्त्याप्रतिष्ठस्यनिर्विकारं सुपूजितम्
समाप्ते च क्रतौतत्रदेवाःसर्वेसमागताः । ऋत्विग्भिस्तुस्तुताःसर्वेसुप्रीताश्चाभवन्नृप
विज्ञप्ता मुनिभिः स्तोत्रैर्निर्विण्णात्मानमब्रुवन् । प्रसन्नाःस्म महीपाल! वरंवरयसुव्रत
यज्ञेनाऽनेन राजर्षे वरं जन्म विधीयते । देवदेहं नृदेहम्वायत्ते मनसिवाञ्छितम्
द्रुमः कामं पुरोधास्ते मृत्युलोके यथासुखम् । एवमुक्तो निमेरात्मा संतुष्टस्तानुवाचह
न देहे मम वाञ्छाऽस्ति सर्वदैव विनश्वरे । वासोमेसर्वसत्त्वानांदृष्टावस्तुसुरोत्तमाः

नेत्रेषु सर्वभूतानां वायुभूतश्चराम्यहम् । एवमुक्ताः सुरास्तत्र निमेरात्मानमब्रुवन् ॥
प्रार्थय त्वं महाराज! देवीं सर्वेश्वरीं शिवाम् । मखेनानेनसंतुष्टाऽसाऽतेभीष्टंविधास्यति

स देवैरेषमुक्तस्तु प्रर्थयामास देवताम् ।
स्तोत्रैर्नानाविधैर्दिव्यैर्भक्त्या गद्गदयागिरा ॥ १९ ॥

प्रसन्ना सा तदा देवी प्रत्यक्षं दर्शनं ददौ । कोटिसूर्यप्रतीकाशं रूपं लावण्यदीपितम्
दृष्ट्वा प्रमुदिताः सर्वं कृतकृत्याश्च चेतसि । प्रसन्नायां देवतायां राजा वव्रे वरं नृप !
ज्ञानं तद्विमलं देहि येन मोक्षो भवेदपि । नेत्रेषु सर्वभूतानां निवासो मे भवेदिति ॥
ततः प्रसन्नादेवेशी प्रोवाच्च जगदम्बिका । ज्ञानं ते विमलं भूयात्प्रारब्धस्याऽवशेषतः
नेत्रेषु सर्वभूतानां निवासोऽपिभविष्यति । निमिषंयान्तिचक्षंषित्वत्कृतेनंवदेहिनाम्

तव वासात्मनिमिषा मानवाः पशवस्तथा ।
पतङ्गाश्च भविष्यन्ति पुनश्चाऽनिमिषाः सुराः ॥ २१ ॥

इतिदत्त्वावरं तस्मै तदाश्रीवरदेवता । आमन्त्र्यचमुनीन्सर्वा स्तत्रैवांतर्हिताऽभवत्
अन्तर्हितायांदेव्यां तु मुनयस्तत्र संस्थिताः । विचिंत्यविधिवत्सर्वंनिमेर्देहंसमाहरन्
अरणिं तत्र संस्थाप्य ममन्थुर्मन्त्रवत्तदा । मन्त्रहोमैर्महात्मानः पुत्रहेतोर्निमेरथ ॥२४॥
अरण्यां मथ्यमानायां पुत्रः प्रादुरभूत्तदा । सर्वलक्षणसम्पन्नः साक्षान्निमिरिवाऽपरः

अरण्या मथनाज्जातस्तस्मान्मिथिरिति स्मृतिः ।
येनाऽयं जनकाज्जातस्तेनाऽसौ जनकोऽभवत् ॥ २६ ॥
विदेहस्तु निमिर्जातो यस्मात्तस्मात्तदन्वये ।
समुद्भूतास्तु राजानो विदेहा इति कीर्तिताः ॥ २७ ॥

एवं निमिसुतो राजा प्रथितो जनकोऽभवत् । नगरी निर्मिता तेन गङ्गातीरे मनोहरा
मिथिलेति सुविख्याता गोपुराट्टालसंयुता । धनधान्यसमायुक्ता हट्टशालाविराजिता

वंशेऽस्मिन्येऽपि राजानस्ते सर्वे जनकास्तथा ।
विख्याता ज्ञानिनः सर्वे विदेहाः परिकीर्तिताः ॥ ३० ॥

एतत्ते कथितं राजन्निमेराख्यानमुत्तमम् । शापाद्यस्य विदेहत्वं विस्तरादुदितं मया

राजोवाच

भगवन्भवता प्रोक्तं निमिशापस्य कारणम् । श्रुत्वा सन्देहमापन्नंमनोमेऽतीवचञ्चलम्
वसिष्ठो ब्राह्मणः श्रेष्ठो राज्ञश्चैव पुरोहितः । पुत्रः पङ्कजयोनेस्तु राज्ञा शप्तःकथंमुनिः
गुरुं च ब्राह्मणं ज्ञात्वानिमिना न कृता क्षमा । यज्ञकर्म शुभं कृत्वा कथं क्रोधमुपागतः
ज्ञात्वा धर्मस्यविज्ञानंकथमिक्ष्वाकुसम्भवः । क्रोधस्यवशमापन्नःशप्तवान्ब्राह्मणंगुरुम्

व्यास उवाच

क्षमाऽपि दुर्लभा राजन्प्राणिभिरजितात्मभिः ।
क्षमावान्दुर्लभो लोके सुसमर्थो विशेषतः ॥ ३६ ॥

सर्वसङ्गपरित्यागी मुनिर्भवतु तापसः । निद्राक्षुधोर्विजेता च योगाभ्यासे सुनिष्ठितः
कामः क्रोधस्तथा लोभो ह्यहङ्कारश्चतुर्थकः । दुर्जेया देहमध्यस्था रिपवस्तेनसर्वथा
न भूतपूर्वः संसारे न चैववर्ततेऽधुना । भविता न पुमान्कश्चिद्यो जयेत रिपूनिमान्
न स्वर्गे न च भूलोके ब्रह्मलोके हरेःपदे । कैलासे नेदृशः कश्चिद्यो जयेत रिपूनिमान्
मुनयो ब्रह्मपुत्राश्च तथाऽन्येतापसोत्तमाः । तेऽपिगुणत्रयाविद्धाः किं पुनर्मानवाभुवि

कपिलः साङ्ख्यवेत्ता च योगाभ्यासरतः शुचिः ।
तेनाऽपि दैवयोगाद्धि प्रदग्धाः सगरात्मजाः ॥ ४२ ॥

तस्माद्राजश्चहङ्कारात्सञ्जातं भुवनत्रयम् । कार्यकारणभावात्तु तद्वियुक्तं कथम्भवेत्
ब्रह्मा गुणत्रयाविष्टोविष्णुश्चैवाऽथशङ्करः । प्रभवन्ति शरीरेषु तेषाम्भावाःपृथक्पृथक्
मानवानाञ्चकावार्तासत्त्वैकान्तव्यवस्थितौ । गुणानांसङ्करोराजन्सर्वत्र समवस्थितः

कदाचित्सत्त्ववृद्धिः स्यात्कदाचिद्रजसः किल ।
कदाचित्तमसो वृद्धिः समभावः कदाचन ॥ ४६ ॥

निर्गुणः परमात्माऽसौ निर्लेपः परमोऽव्ययः । अलक्ष्यःसर्वतत्त्वानामप्रमेयःसनातनः
तथैव परमाशक्तिर्निर्गुणा ब्रह्मसंस्थिता । दुर्ज्ञेयाचाल्पमतिभिः सर्वभूतव्यवस्थितिः
परात्मनस्तथा शक्तेस्तयोरैक्यं सदैवहि । अभिन्नं तद्वपुर्ज्ञात्वा मुच्यते सर्वदोषतः ॥

तज्ज्ञानादेव मोक्षः स्यादिति वेदान्तडिण्डिमः ।

यो वेद स विमुक्तोऽस्मिन्संसारे त्रिगुणात्मके ॥ ५० ॥

ज्ञानं तु द्विविधं प्रोक्तं शाब्दिकं प्रथमंस्मृतम् । वेदशास्त्रार्थविज्ञानात्सद्भवेद्बुद्धियोगतः

विकल्पास्तत्र बहवो भवन्ति मतिकल्पिताः ।

"कुतर्ककल्पिताः केचित्सुतर्ककल्पिताःपरे । वितर्कैर्विभ्रमोत्पत्तिर्विभ्रमाद्बुद्धिभ्रंशता बुद्धिभ्रंशाज्ज्ञाननाशः प्राणिनांपरिकीर्तितः ।" अनुभवाख्यंद्वितीयंतुज्ञानंतद्दुर्लभंनृप नत्तदा प्राप्यतेतस्यवेत्तुः सङ्गोयदा भवेत् । शब्दज्ञानान्न कार्यस्य सिद्धिर्भवतिभारत तस्मान्नानुभवज्ञानं संभवत्यतिमानुषम् । अन्तर्गतं तमश्छेत्तुंशाब्दबोधो हि न क्षमः यथा न नश्यति तमः कृतयार्दीपवार्तया । तत्कर्म यन्न बन्धाय साविद्या या विमुक्तये आयासायाऽपरंकर्मविद्याऽन्याशिल्पनैपुणम् । शीलंपरहितत्वंचकोपाभावःक्षमाधृतिः

सन्तोषश्चेति विद्यायाः परिपाकोज्ज्वलं फलम् ।

विद्यया तपसा वाऽपि योगाभ्यासेन भूपते !॥ ५७ ॥

विना कामादिशत्रूणां नैव नाशः कदाचन । "मनस्तु चञ्चलं राजन्स्वभावादतिदुर्ग्रहम् तद्वशःसर्वथाप्राणीत्रिविधोभुवनत्रयम् "। कामक्रोधादयोभावाश्चित्तजाःपरिकीर्तिताः ते तदा न भवन्त्येव यदावै निर्जितं मनः । तस्मात्तु निमिना राजन्नक्षमाविहितामुनौ यथा ययातिना पूर्वं कृता शुक्रे कृतागसि । भृगुपुत्रेण शप्तोऽपि ययातिर्नृपसत्तमः

न शशाप मुनिं क्रोधाज्जरां राजा गृहीतवान् ।

कश्चित्सौम्यो भवेत्कश्चित्क्रूरो भवति पार्थिव !

स्वभावभेदान्नृपते कस्यदोषोऽत्र कल्प्यते । हैहयाभार्गवान्पूर्वं धनलोभात्पुरोहितान् ब्राह्मणान्मूलतःसर्वांश्चिच्छिदुःक्रोधमूर्च्छिताः । पातकंपृष्ठतःकृत्वाब्रह्महत्यासमुद्भवम्

इतिश्रीदेवीभागवतेमहापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यांसंहितायांषष्ठस्कन्धे देवीमहिम्निनानाभावानांवर्णनंनामपञ्चदशोऽध्यायः

षोडशोऽध्यायः

हैहयक्षत्रियाणामाख्यानवर्णनं भृगूणांतैःसहविरोधवर्णनञ्च

जनमेजय उवाच

कुले कस्य समुत्पन्नाः क्षत्रिया हैहयाश्च ये । ब्रह्महत्यामनादृत्य निजघ्नुर्भार्गवांश्चये
वैरस्य कारणं तेषां किं मे ब्रूहि पितामह । निमित्तेन विनाक्रोधंकथंकुर्वन्तिसत्तमाः
वैरं पुरोहितैः सार्धं कस्मात्तेषामजायत । नाल्पहेतोर्हि तद्वैरं क्षत्रियाणां भविष्यति
अन्यथा ब्राह्मणान्पूज्यान्कथं जघ्नुरनागसः । बाहुजाबलवन्तोऽपिपापभीताःकथंन ते
स्वल्पेऽपराधे को हन्याद्वाडवान्क्षत्रियर्षभः । सन्देहो मे मुनिश्रेष्ठकारणं वक्तुमर्हसि

सूत उवाच

इति पृष्टस्तदा तेन राज्ञा सत्यवतीसुतः । उवाच परमप्रीतः कथां संस्मृत्य चेतसा

व्यास उवाच

शृणु पारिक्षिते ! वार्तां क्षत्रियाणां पुरातनीम् ।
आश्चर्यकारिणीं सम्यग्विदितां च पुरा मया ॥७॥

कार्तवीर्येति नाम्नाऽभूद्धैहयः पृथिवीपतिः । सहस्रबाहुर्बलवानर्जुनो धर्मतत्परः
दत्तात्रेयस्यशिष्योऽभूदवतारोहरेरिव । सिद्धःसर्वार्थदःशाक्तोभृगूणां याज्यएव सः
यज्वापरमधर्मिष्ठःसदादानपरायणः । ददौ वित्तं भृगुभ्योऽसौकृत्वा यज्ञाननेकशः
धनिनस्तेद्विजाजाता भृगवोनृपदानतः । हयरत्नसमृद्ध्याऽऽढ्यासञ्जाताःप्रथिताभुवि
स्वर्याते नृपशार्दूले कार्तवीर्यार्जुनेपुनः । हैहया निर्धना जाताः कालेन महता नृप
धनकार्यं समुत्पन्नं हैहयानांकदाचन । याचिष्णवोऽभिजग्मुस्तान्भृगूंस्तेहैहया नृप

विनयं क्षत्रियाः कृत्वाऽप्ययाचत धनम्बहु ।
न ददुस्तेऽतिलोभार्ता नाऽस्ति नाऽस्तीति वादिनः ॥ १४ ॥
भूमौ च निदधुः केचिद् भृगवो धनमुत्तमम् ।

ददुः केचिद्द्विजातिभ्यो ज्ञात्वा क्षत्रियतोभयम् ॥ १५ ॥
कृत्वा स्थानान्तरे द्रव्यं ब्राह्मणा भयविह्वलाः ।
त्यक्त्वाऽऽश्रमान्ययुः सर्वे भृगवस्तृष्णयाऽन्विताः ॥ १६ ॥
याज्यांश्च दुःखितान्दृष्ट्वानददुर्लोभमोहिताः । पलायित्वागताःसर्वेगिरिदुर्गानुपाश्रिताः
ततस्ते हैहयास्तातदुःखिताःकार्यगौरवात् । भृगूणामाश्रमाञ्जग्मुर्द्रव्यार्थंक्षत्रियर्षभाः
भृगूंस्तुनिर्गतान्वीक्ष्य शून्यांस्तत्त्वागृहानथ । चखनुर्भूतलंतत्र द्रव्यार्थंहैययाभृशम्
खनताऽधिगतं वित्तं केनचिद् भृगुवेश्मनि । ददृशुः क्षत्रियाः सर्वेतद्वित्तंश्रमकर्शिताः
यत्र तत्र समुत्पन्नं भूरि द्रव्यं महीतलात् । तदा तेपार्श्वभागस्थब्राह्मणानांगृहाण्यपि
निर्भिद्य हैहया द्रव्यं ददृशुर्धनलिप्सया । ब्राह्मणाश्चुक्रुशुः सर्वे भीताश्च शरणं गताः
अतिचिन्वत्सु विप्राणां भवनानिःसृतं बहु ।
निजघ्नुस्ताञ्छरैः कोपाद्ब्राह्मणाञ्छरणागतान् ॥ २३ ॥
ययुस्ते गिरिदुर्गांश्च यत्र वै भृगवःस्थिताः । आगर्भादनुकृन्तंतश्चेरुश्चैवमहीमिमाम्
ग्रामान्ग्रामान्भृगून्सर्वाञ्जिघ्नुर्निशितैः शरैः । आबालवृद्धानपरानवमन्य च पातकम्
एवमुत्पाट्यमानेषु भार्गवेषु यतस्ततः । हन्युर्गर्भांश्च नारीणांगृहीत्वा हैहया भृशम्
रुरुदुस्ताः स्त्रियः कामंकुररर्यइव दुःखिताः । गर्भाश्चकृन्तितायासांक्षत्रियैःपापनिश्चयैः
अन्येऽप्याहुश्च तान्दृष्ट्वामुनयस्तीर्थवासिनः । मुञ्चन्तुक्षत्रिय ःक्रोधंब्राह्मणेषुभयावहम्
अयुक्तमेतदारब्धं भवद्भिः कर्म गर्हितम् । यद्गर्भान्भृगुपत्नीनां निहन्युः क्षत्रियर्षभाः ॥
अत्युग्रपुण्यपापानामिहैवफलमाप्नुयात् ।तस्माज्जुगुप्सितंकर्मत्यक्तव्यंभूतिमिच्छता
तानाहुर्हैहयाः क्रुद्धा मुनीनथ दयापरान् । भवन्तः साधवः सर्वे नार्थज्ञाः पापकर्मणाम्
एभिर्हृतं धनं सर्वं पूर्वजानां महात्मनाम् । वञ्चयित्वा छलाभिज्ञैर्मार्गे पाटच्चरैरिव ॥
एते प्रतारका दंभास्ताप्रसा बकवृत्तयः । उत्पन्ने च महाकार्ये प्रार्थिता विनयेन ते ॥
न ददुः प्रार्थितं विप्राः यादवृद्धयाऽपि याचिताः ।
नाऽस्तीति वादिनः स्तब्धाः दुःखितान्वीक्ष्य याज्यकान् ॥ ३४ ॥
धनं प्राप्तं कार्तवीर्याद्रक्षितं केन हेतुना । न कृताः क्रतवः किं तैर्दानं चार्थिषु भूरिशः

न संचितव्यं विप्रैस्तुधनंक्वाऽपि कदाचन । यद्द्रव्यं विभिवद्यैर्भोक्तव्यंचयथासुखम्
द्रव्ये चौरभयं प्रोक्तं तथा राजभयं द्विजाः । वह्निभयं महाघोरं तथाधूर्तभयं महत् ॥

येन केनाऽप्युपायेन धनं त्यजति रक्षकम् ।
अथवाऽसौ मृतो याति द्रव्यं त्यक्त्वा ह्यसद्गतिम् ॥ ३८ ॥
पादवृद्ध्या तथाऽस्माभिः प्रार्थितं विनयान्वितैः ।
तथाऽपि लोभसन्दिग्धैर्न दत्तं नः पुरोहितैः ॥ ३९ ॥

दानं भोगस्तथानाशोधनस्यगतिरीदृशी । दानभोगौ कृतीनाञ्च नाशःपापात्मनांकिल

न दाता न च यो भोक्ता कृपणो गुप्तितत्परः ।
राज्ञाऽसौ सर्वथा दण्ड्यो वञ्चको दुःखभाङ् नरः ॥ ४१ ॥

तस्माद्वयं गुरूनेतान्वञ्चकान्ब्राह्मणाधमान् । हन्तुंसमुद्यताःसर्वे न क्रोधव्यंमहात्मभिः

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा हेतुमद्वाक्यं तानाश्वास्य मुनीनथ । विचेरुश्चविचिन्वानाभृगुदाराननेकशः
भयार्ता भृगुपत्न्यस्तु हिमवन्तं धराधरम् । प्रपेदिरे रुदन्त्यश्चवेपमानाः कृशा भृशम्
एवं ते हैहयैर्विप्राः पीडिता धनकामुकैः । निहताश्च यथाकामं संरब्धैः पापकर्मभिः
लोभ एव मनुष्याणां देहसंस्थो महारिपुः । सर्व दुःखाकरःप्रोक्तोदुःखदःप्राणनाशकः

सर्वपापस्य मूलं हि सर्वदा तृष्णयाऽन्वितः ।
विरोधकृत्त्रिवर्णानां सर्वार्तेः कारणं तथा ॥ ४७ ॥

लोभात्त्यजन्ति धर्मं वै कुलधर्मं तथैव हि । मातरं भ्रातरं हन्ति पितरं बान्धवं तथा
गुरुं मित्रं तथाभार्यां पुत्रं च भगिनीं तथा । लोभाविष्टोनकिंकुर्यादकृत्यंपापमोहितः

क्रोधात्कामादहङ्कारात्लोभ एव महारिपुः ।
प्राणांस्त्यजति लोभेन किं पुनः स्याद्धनावृतम् ॥ ५० ॥

पूर्वजास्तेमहाराज ! धर्मज्ञाःसत्पथेस्थिताः । पाण्डवाःकौरवाश्चैवलोभेननिधनङ्गताः
यत्र भीष्मश्च द्रोणश्च कृपः कर्णश्च बाह्लिकः । भीमसेनो धर्मपुत्रस्तथैवाऽर्जुनकेशवौ
तथापि युद्धमत्युग्रं कृतं तैश्चपरस्परम् । कुटुम्बकदनं भूरि कृतं लोभातुरैरिह ॥५३॥

हतो द्रोणो हतो भीष्मस्तथैव पाण्डवात्मजाः।
भ्रातरः पितरः पुत्राः सर्वे वै निहता रणे ॥ ५४ ॥
तस्माल्लोभाभिभूतस्तु किं न कुर्यान्नरः किल। हैहयैर्निहताः सर्वे भृगवःपापबुद्धिभिः
इतिश्रीदेवीभागवतेमहापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायांषष्ठस्कन्धे
हैहयैर्भृगूणां धनाहरणेनवधवर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

सप्तदशोऽध्यायः

भृगुपत्नीनांदेवीसमाराधनेनेष्टसिद्धिवर्णनम्

जनमेजय उवाच

कथं ताश्च स्त्रियः सर्वा भृगूणां दुःखसागरात्।
मुक्तो वंशः पुनस्तेषां ब्राह्मणानां स्थिरोऽभवत् ॥ १ ॥
हैहयैः किं कृतं कार्यं हत्वा तान्ब्राह्मणानपि। क्षत्रियैर्लोभसंयुक्तैःपापाचारैर्वदस्वतत्
न तृप्तिरस्ति मे ब्रह्मन्पिबतस्ते तथाऽमृतम्। पावनं सुखदं नृणांपरलोकेफलप्रदम् ॥

व्यास उवाच

शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि कथां पापप्रणाशिनीम्।
यथा स्त्रियस्तु ता मुक्ता दुःखात्तस्माद्दुरत्ययात् ॥ ४ ॥
भृगुपत्न्यो यदा राजन्हिमवन्तंगिरिंगताः। भयत्रस्तानिमग्नाशाहैहयैःपीडिताभृशम्
गौरीं तत्र तु संस्थाप्य मृन्मयीं सरितस्तटे। उपोषणपराश्चक्रुर्निश्चयं मरणं प्रति
स्वप्ने गत्वा तदा देवी प्राह ता प्रमदोत्तमाः।
युष्मासु मध्ये कस्याश्चिद्भविता चोरुजः पुमान् ॥ ७ ॥
मदंशशक्तिसम्भिन्नः स वः कार्यं विधास्यति।
इत्यादिश्य पराम्बा सा पश्चादन्तर्हिताऽभवत् ॥ ८ ॥

जागृतास्तु ततः सर्वामुद्गमापुर्भयाकुलाः । काचित्तासांभयोद्विग्नाकामिनीचतुराभृशम्
दधार चोरुणैकेन गर्भं सा कुलवृद्धये । पलायनपरा दृष्टा क्षत्रियैर्ब्राह्मणी यदा ॥१७॥
विह्वला तेजसायुक्ता तदा ते दुद्रुवुर्भृशम् । गृह्यतां बध्यतांनारीसगर्भायातिसत्वरा
इतिब्रुवन्तःसम्प्राप्ताः कामिनीखड्गपाणयः । साभयार्तातुतान्दृष्ट्वा रुरोदसमुपागतान्
गर्भस्य रक्षणार्थंसा चुक्रोशाऽतिभयातुरा । रुदतींमातरं श्रुत्वादीनांत्राणविवर्जिताम्

निराधारां क्रन्दमानां क्षत्रियैर्भृशतापिताम् ।
गृहीतामिव सिंहेन सगर्भां हरिणीं तथा ॥ १४ ॥

साश्रुनेत्रां वेपमानां सङ्क्रुध्यबालकस्तदा । भित्त्वोरुंनिर्जगामाऽऽशुगर्भःसूर्यइवापरः

मुष्णन्दृष्टीःक्षत्रियाणां तेजसा बालकः शुभः ।
दर्शनाद्बालकस्याऽऽशुसर्वे जाता विलोचनाः ॥ १६ ॥
बभ्रमुर्गिरिदुर्गेषु जन्मान्धा इव क्षत्रियाः ।
चिन्तितं मनसा सर्वैः किमेतदिति साम्प्रतम् ॥ १७ ॥

सर्वेचक्षुर्विहीना यउजाताःस्मबालदर्शनात् । ब्राह्मण्यास्तुप्रभावोऽयंसतीव्रतबलंमहत्

क्षणाद्वाऽमोघसङ्कल्पाः किं करिष्यन्ति दुःखिताः ।
इति सञ्चिन्त्य मनसा नेत्रहीना निराश्रयाः ॥ १६ ॥

ब्राह्मणीं शरणं जग्मुर्हैहया गतचेतसः । प्रणेमुस्तां भयत्रस्तां कृताञ्जलिपुटाश्च ते
ऊचुश्चैनां भयोद्विग्नांदृष्ट्यर्थं क्षत्रियर्षभाः । प्रसीद सुभगे मातः सेवकास्ते वयंकिल
कृतापराधा रम्भोरु! क्षत्रियाःपापबुद्धयः । दर्शनात्तव तन्वङ्गि! जाताः सर्वेविलोचनाः

मुखं ते नैव पश्यामो जन्मान्धा इव भामिनि ! ।
अद्भुतं ते तपो वीर्यं किं कुर्मः पापकारिणः ॥ २३ ॥

शरणं ते प्रपन्नाः स्मो देहिचक्षूंषि मानदे !। अन्धत्वंमरणादुग्रं कृपां कर्तुं त्वमर्हसि
पुनर्दृष्टिप्रदानेन सेवकान्क्षत्रियान्कुरु । उपरम्य च गच्छेम सहिताः पापकर्मणः ॥
अतःपरं न कर्तव्यमीदृशं कर्म कर्हिचित् । भार्गवाणांतु सर्वेषां सेवकाःस्मोवयंकिल

अज्ञानाद्यत्कृतं पापं क्षन्तव्यं तत्त्वयाऽधुना ।

वैरं नाऽतः परं काऽपि भृगुभिः क्षत्त्रियैः सह ॥ २७ ॥
कर्तव्यंशपथैःसम्यग्वर्तितव्यंतुहैहयैः । सुपुत्राभव सुश्रोणि! प्रणताःस्मो वयञ्च ते
प्रसादं कुरु कल्याणि ! न द्विष्यामः (?) कदाचन ।

व्यास उवाच

इति तेषां वचः श्रुत्वा ब्राह्मणी विस्मयान्विता ॥ २९ ॥
तानाह प्रणतान्दुःस्थानाश्वास्य गतलोचनान् ।
गृहीता न मयाद्दृष्टिर्युष्माकं क्षत्त्रियाः किल ॥ ३० ॥
नाऽहंरुषाऽन्विनामन्यंकारणंश्रृणुताऽद्य यत् । अयंच भार्गवोनूनमूरुजःकुपितोऽद्यवः
चक्षूंषि तेन युष्माकं स्तम्भितानि रुषावता ।
स्ववन्धुहननाञ्ज्ञात्वा गर्भस्थानपि क्षत्त्रियैः ॥ ३२ ॥
अनागस्मो धर्मपरास्तापस्मान्धनकाम्यया । गर्भानपि यदा यूयं भृगूनघ्नंस्तु पुत्रकाः
तदाऽयमूरुणा गर्भो मयावर्षशतं धृतः । षडङ्गश्चाखिलो वेदो गृहीतोऽनेन चाऽद्भुता
गर्भस्थेनाऽपि बालेनभृगुवंशविवृद्धये । सोऽपि पितृवधान्नूनं क्रोधेद्धोहन्तुमिच्छति
भगवत्याःप्रसादेन जातोऽयंममबालकः । तेजसा यस्य दिव्येन चक्षूंषि मुषितानि च
तस्मादौर्वं सुतं मेऽद्य याचध्वं विनयान्विताः ।
प्रणिपातेन तुष्टोऽसौ दृष्टिं वः प्रतिमोक्ष्यति ॥ ३७ ॥

व्यास उवाच

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्या हैहयास्तुष्टुवुश्च तम् । प्रणेमुर्विनयोपेता ऊरुजं मुनिसत्तमम्
स सन्तुष्टोबभूवाऽथतानुवाचविचक्षुषः । गच्छध्वं स्वगृहान्भूपाममाख्यानकृतं वचः
अवश्यम्भाविभावास्तेभवन्तिदैवनिर्मिताः । नाऽत्र शोकस्तुकर्तव्यःपुरुषेणविजानता
पूर्ववद्दृष्टयः सर्वे प्राप्नुवन्तु यथासुखम् । व्रजन्तु विगतक्रोधा भवनानि यथासुखम्
इति तेन समादिष्टा हैहयाः प्राप्तलोचनाः ।
औंर्वमामन्त्र्य जग्मुस्ते सदनानि यथारुचि ॥ ४२ ॥
ब्राह्मणी तं सुतं दिव्यं गृहीत्वा स्वाश्रमं गता ।

पालयामास भूपालं तेजस्विनमतन्द्रिता ॥ ४२ ॥

एवं ते कथितंराजन्भृगूणांतु विनाशनम् । लोभाचिष्ठैःक्षत्रियैश्चयत्कृतं पातकंकिल

जनमेजय उवाच

श्रुतं मयामहत्कर्मक्षत्रियाणांञ्च दारुणम् । कारणं लोभएवाऽत्रदुःखदश्चोभयोस्तुसः
किञ्चित्प्रष्टुमिहेच्छामिसंशयंवासवीसुत !। हैहयास्तेकथंनाम्नाख्याताभुविनृपात्मजाः
यदोस्तु यादवाः कामं भरताद्भारतास्तथा । हैहयः कोऽपि राजाऽभूत्तेषांवंशेप्रतिष्ठितः
तदहं श्रोतुमिच्छामि कारणंकरुणानिधे! । हैहयास्ते कथं जाताः क्षत्रियाःकेनकर्मणा

व्यास उवाच

हैहयानां समुत्पत्तिं शृणु भूपसविस्तराम् । पुरातनांसुपुण्यांचकथांपापप्रणाशिनीम्
कस्मिंश्चित्समये भूप सूर्यपुत्रः सुशोभनः । रेवन्तेति च विख्यातो रूपवानमितप्रभः
उच्चैःश्रवसमारुह्यहयरत्नं मनोहरम् । जगामविष्णुसदनं वैकुण्ठं भास्करात्मजः ॥
भगवद्दर्शनाकाङ्क्षी हयारूढो यदा गतः । हयस्थस्तु तदादृष्टोलक्ष्म्याऽसौरविनन्दनः
रमा वीक्ष्यहयंदिव्यंभ्रातरंसगरोद्भवम् । रूपेणविस्मितातस्यतस्थौस्तम्भितलोचना
भगवानपि तं दृष्ट्वा हयारूढं मनोहरम् । आगच्छन्तं रमां विष्णुः पप्रच्छ प्रणयात्प्रभुः
कोऽयमायाति चार्वङ्गि ! हयारूढ इवापरः । स्मरतेजस्तनुःकान्ते मोहयन्भुवनत्रयम्
प्रेक्षमाणा तदा लक्ष्मीस्तच्चित्ता दैवयोगतः । नोवाच वचनंकिंचित्पृष्टाऽपिचपुनःपुनः

व्यास उवाच

अश्वासक्तमतिं वीक्ष्य कामिनीमतिमोहिताम् ।

पश्यन्तीं परमप्रेम्णा चञ्चलाक्षीं च चञ्चलाम् ॥ ५७ ॥

तामाह भगवान्क्रुद्धः किं पश्यसि सुलोचने !। मोहिताच हरिंदृष्ट्वापृष्टानैवाऽभिभाषसे
सर्वत्र रमसे यस्माद्रमा तस्माद्भविष्यसि । चञ्चलत्वाच्चलेत्येवं सर्वथैव न संशयः ॥
प्राकृता च यथा नारी नूनं भवति चञ्चला । तथात्वमपि कल्याणिस्थिरानैवकदाचन
त्वं हयं मत्समीपस्था समीक्ष्ययदि मोहिता । वडवाभववामोरुमर्त्यलोकेऽतिदारुणे
इति शप्ता रमा देवी हरिणा दैवयोगतः । रुरोद वेपमाना सा भयभीताऽतिदुःखिता

तमुवाच रमानाथं शङ्किता चारुहासिनी । प्रणम्य शिरसा देवं स्वपतिं विनयान्विता
देवदेव! जगन्नाथ! करुणाकर! केशव! । स्वल्पेऽपराधेगोविन्दकस्माच्छापंददासि मे
न कदाचिन्मया दृष्टः क्रोधस्ते हीदृशः प्रभो । क्व गतस्ते मयि स्नेहःसहजोनतुनश्वरः
वज्रपातस्तु शत्रौ वै कर्तव्यो न सुहृज्जने । सदाऽहं वरयोग्या ते शापयोग्याकथं कृता
प्राणांस्त्यक्ष्यामिगोविन्दपश्यतोऽद्यतवाग्रतः । कथंजीवेत्वयाहीनाविरहानलतापिता
प्रसादं कुरु देवेश! शापादस्मात्सुदारुणात् । कदा मुक्तासमीपंतेप्राप्नोमिसुखदंविभो

हरिरुवाच

यदा ते भवितापुत्रपृथिव्यांमत्समःप्रिये । तदामांप्राप्यतन्वङ्गिसुखितात्वंभविष्यसि

इति श्रीदेवीभागवतेमहापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यांसंहितायां षष्ठस्कन्धे
हैहयानामुत्पत्तिप्रसङ्गेरमाविष्णुसम्वादवर्णनंनाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

अष्टादशोऽध्यायः

शापादनन्तरंलक्ष्म्यावडवारूपेणशिवाराधनकरणं प्रसन्नेनशिवेनतस्यैवरदानञ्च

जनमेजय उवाच

इति शप्ता भगवता सिन्धुजा कोपयोगतः । कथं सावडवाजातारेवन्तेन च किं कृतम्
कस्मिन्देशेऽब्धिजा देवी वडवारूपधारिणी ।
संस्थितैकाकिनी बाला परोषित्पतिका यथा ॥ २ ॥
कालंकियन्तमायुष्मन्वियुक्ता पतिना रमा । संस्थिता विजनेऽरण्येकिंकृतंचतयापुनः
समागमं कदा प्राप्ता वासुदेवस्य सिन्धुजा । पुत्रः कथं तया प्राप्तो नारायणवियुक्तया
एतद्वृत्तान्तमार्येशकथयस्वसविस्तरम् । श्रोतुकामोऽस्मिविप्रेन्द्रकथाख्यानमनुत्तमम्

सूत उवाच

इति पृष्टस्तदा व्यासः परीक्षित्सुतनयेन वै । कथयामासभोविप्राःकथामेतांसुविस्तराम्

व्यास उवाच

शृणु राजन्प्रवक्ष्यामिकथांपौराणिकींशुभाम् । पावनींसुखदांकर्णेविशदाक्षरसंयुताम्
रेवन्तस्तु रमां दृष्ट्वा शप्तां देवेन कामिनीम् । भयार्तः प्रययौदूरात्प्रणम्यजगतांपतिम्
पितुः सकाशंत्वरितोवीक्ष्यकोपंजगत्पतेः । निवेदयामासकथांभास्करायसशापजाम्
दुःखिता सा रमा देवी प्रणम्यजगदीश्वरम् । आजगाम मानुषं लोकम्प्राप्ताकमललोचना
सूर्यपत्न्या तपस्तप्तं यत्र पूर्वं सुदारुणम् । तत्रैव सा ययावाशु वडवारूपधारिणी ॥
कालिन्दीतमसासङ्गे सुपर्णाक्षस्य चोत्तरे । सर्वकामप्रदे स्थाने सुरम्यवनमण्डिते ॥
तत्र स्थितामहादेवं शङ्करं वाञ्छितप्रदम् । दध्यौ चैकेनमनसा शूलिनं चन्द्रशेखरम्
पञ्चाननं दशभुजं गौरिदेहार्धधारिणम् । कर्पूरगौरदेहाभं नीलकण्ठं त्रिलोचनम् ॥१४॥
व्याघ्राजिनधरं देवं गजचर्मोत्तरीयकम् । कपालमालाकलितं नागयज्ञोपवीतिनम् ॥
सागरस्य सुता कृत्वा हयीरूपं मनोहरम् । तस्मिंस्तीर्थे रमादेवी चकार दुश्चरं तपः
ध्यायमाना परं देवं वैराग्यं समुपाश्रिता । दिव्यं वर्षसहस्रं तु गतं तत्र महीपते !१७
ततस्तुष्टो महादेवो वृषारूढस्त्रिलोचनः । प्रत्यक्षोऽभून्महेशानः पार्वतीसहितः प्रभुः
तत्रैत्य सगणःशम्भुस्तामाहहरिवल्लभाम् । तपस्यन्तींमहाभागामश्विनीरूपधारिणीम्

किं तपस्यसि कल्याणि ! जगन्मातर्वदस्व मे ।
सर्वार्थदः पतिस्तेऽस्ति सर्वलोकविधायकः ॥ २० ॥
हरिं त्यक्त्वाऽद्य मां कस्मात्स्तौषि देवि! जगत्पतिम् ।
वासुदेवं जगन्नाथं भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ॥ २१ ॥
वेदोक्तम्वचनं कार्यं नारीणां देवता पतिः ।
नाऽन्यस्मिन्सर्वथाभावः कर्तव्यः कर्हिचित्क्वचित् ॥ २२ ॥

पतिशुश्रूषणं स्त्रीणां धर्म एव सनातनः । यादृशस्तादृशः सेव्यः सर्वथा शुभकाम्यया
नारायणस्तु सर्वेषां सेव्योयोग्यःसदैवहि । तंत्यक्त्वादेवदेवेशंकिमांध्यायसिसिन्धुजे

लक्ष्मीरुवाच

आशुतोष! महेशान! शप्ताऽहं पतिना शिव !। मां समुद्धर देवेश! शापादस्माद्दयानिधे

तदोक्तं हरिणा शम्भो शापानुग्रहकारणम् । विज्ञसेन मया कामं दयायुक्तेन विष्णुना
यदा ते भविता पुत्रस्तदा शापस्य मोक्षणम् । भविष्यति च वैकुण्ठवासस्तेकमलालये
इत्युक्ताऽहं तपस्तप्तुमागताऽस्मि तपोवने । आराधितो मयादेवत्वंसर्वार्थप्रदायकम्
पतिसङ्गं विना पुत्रं देवदेव! लभे कथम् । स तु तिष्ठति वैकुण्ठेत्यक्त्वावामामनागसम्
वरं मे देहि देवेश! यदि तुष्टोऽसि शंकर !। तव तस्यद्विधा भावोनास्तिनूनंकदाचन

मयैतद्गिरिजाकान्त ज्ञातं पत्युः पुरो हर !।

यस्त्वं सोऽसौ पुनर्योऽसौ स त्वं नास्त्यत्र संशयः ॥ ३१ ॥

एकत्वञ्च मयाज्ञात्वामयातेस्मरणंकृतम् । अन्यथाममदोषस्त्वामाश्रयन्त्याभवेच्छिव

शिव उवाच

कथं ज्ञातस्त्वया देवि ममतस्य च सुन्दरि । ऐक्यभावो हरेर्नूनं सत्यंमे वद सिन्धुजे
एकत्वं च न जानन्ति देवाश्च मुनयस्तथा । ज्ञानिनो वेदतत्त्वज्ञाः कुतर्कोपहताःकिल
मद्भक्ता वासुदेवस्य निन्दकाबहवस्तथा । विष्णुभक्तास्तु बहवो मम निन्दापरायणाः
भवन्ति कालभेदेन कलौ देवि विशेषतः । कथं ज्ञातस्त्वया भद्रे दुर्ज्ञेयोह्यकृतात्मभिः

सर्वथा त्वैक्यभावस्तु हरेर्मम च दुर्लभः ।

व्यास उवाच

इति सा शम्भुना पृष्टा तुष्टेन हरिवल्लभा ॥ ३७ ॥

वृत्तान्तं तस्य विज्ञातं प्रवक्तुमुपचक्रमे । शिवम्प्रति रमा तत्र प्रसन्न वदना भृशम्

लक्ष्मीरुवाच

एकदा देवदेवेश! विष्णुर्ध्यानपरो रहः । दृष्टो मया तपः कुर्वन्पद्मासनगतो यदा ॥३६
तदाऽहं विस्मिता देवं तमपृच्छंपतिं किल । प्रबुद्धं सुप्रसन्नं च ज्ञात्वा विनयपूर्वकम्

देवदेव ! जगन्नाथ! यदाऽहं निर्गताऽवर्णवात् ।

मथ्यामानात्सुरैर्दैत्यैःसर्वैर्ब्रह्मादिभिः प्रभो !॥ ४१ ॥

वीक्षिताश्च मयासर्वेपतिकामनयातदा । वृतस्त्वंसर्वदेवेभ्यःश्रेष्ठोऽसीतिविनिश्चयात
त्वं कं ध्यायसिसर्वेशसंशयोऽयंमहान्मम । प्रियोऽसिकैटभारे मे कथयस्वमनोगतम्

विष्णुरुवाच

श्रृणुकान्ते प्रवक्ष्यामि यं ध्यायामि सुरोत्तमम् । आशुतोषंमहेशानंगिरिजावल्लभंहृदि
कदाचिद्देवदेवोमां ध्यायत्यमितविक्रमः । ध्यायाम्यहञ्चदेवेशं शङ्करं त्रिपुरान्तकम् ॥
शिवस्याऽहं प्रियः प्राणःशङ्करस्तुतथा मम । उभयोरन्तरंनास्तिमिथःसंसक्तचेतसोः
नरकंयान्तितेनूनंये द्विषन्ति महेश्वरम् । भक्ता मम विशालाक्षि सत्यमेतद्ब्रवीम्यहम्
इत्युक्तं देवदेवेन विष्णुना प्रभविष्णुना । एकान्ते किल पृष्टेन मया शैलसुताप्रिय !॥
तस्मात्त्वाम्वल्लभंविष्णोर्ज्ञात्वाध्यातवतीह्यहम् । तथा कुरु महेशानयथामेप्रियसङ्गमः

व्यास उवाच

इति श्रियो वचः श्रुत्वा प्रत्युवाच महेश्वरः ।
तामाश्वास्य प्रियैर्वाक्यैर्यथार्थम्वाक्यकोविदः ॥ ५० ॥
स्वस्था भव पृथुश्रोणि! तुष्टोऽहंतपसा तव । समागमस्तेपतिनाभविष्यतिनसंशयः
अत्रैव हयरूपेण भगवाञ्जगदीश्वरः । आगमिष्यति ते कामं पूर्णं कर्तुं मयेरितः ॥५२॥
तथाऽहं प्रेरयिष्यामि तं देवं मधुसूदनम् । यथाऽसौ हयरूपेण त्वामेष्यति मदातुरः
पुत्रस्ते भविता सुभ्रु! नारायणसमःक्षितौ । भविष्यति सभूपाल सर्वलोकनमस्कृतः
सुतम्प्राप्यमहाभागेत्वंतेनपतिनासह । गन्ताऽसिदिवि वैकुण्ठं प्रियातस्यभविष्यसि
एकवीरेति नाम्नाऽसौ ख्यातिं यास्यति ते सुतः ।
तस्मात्तु हैहयो वंशो भुवि विस्तारमेष्यति ॥ ५६ ॥
परन्तुविस्मृताऽसित्वंहृदिस्थाम्परमेश्वरीम् । मदान्धामत्तचित्ताचतेनतेफलमीदृशम्
अतस्तद्दोषशान्त्यर्थंहृदिस्थाम्परदेवताम् । शरणं याहि सर्वात्मभावेनजलधेः सुते !
अन्यथा तव चित्तन्तु कथं गच्छेद्धयोत्तमे ।

व्यास उवाच

इति दत्त्वा वरं देव्यै भगवाञ्छैलजापतिः ॥ ५९ ॥
अन्तर्धानङ्गतःसाक्षादुमयासहितःशिवः । साऽपितत्रैवचार्वङ्गी संस्थिता कमलासना
ध्यायन्ती चरणाम्भोजं देव्याः परमशोभनम् । देवासुरशिरोरत्ननिघृष्टनखमण्डलम् ॥

प्रेमगद्गदया वाचा तुष्टाव च मुहुर्मुहुः । प्रतीक्षमाणा भर्तारं हयरूपधरं हरिम् ॥६२॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे अष्टादशसाहस्र्यां संहितायां षष्ठस्कन्धे
शिवप्रसादेनलक्ष्मीद्वाराभगवत्याःसमाराधनवर्णनं नामाऽष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

- - - -

एकोनविंशोऽध्यायः

शिवेनहरिम्प्रतिस्वकीयगणचित्ररूपेणसन्देशप्रेषणम् भगवताऽश्वरूपंविधाय वडवासमीपेगमनं तयोःसङ्गमेनपुत्रोत्पत्तिः

व्यास उवाच

तस्यै दत्त्वावरंशम्भुःकैलासंत्वरितोययौ । रम्यंदेवगणैर्जुष्टमप्सरोभिश्चमण्डितम्
तत्र गत्वाचित्ररूपं गणङ्कार्यविशारदम् । प्रेषयामास वैकुण्ठे लक्ष्मीकार्यार्थसिद्धये ॥

शिव उवाच

चित्ररूप हरिंगत्वाब्रूहित्वंवचनान्मम । यथाऽसौ दुःखिताम्पत्नींविशोकाञ्चकरिष्यति
इत्युक्तश्चित्ररूपोऽथ निर्जगामत्वरान्वितः । वैकुण्ठंपरमं स्थानं वैष्णवैश्च गणैर्वृतम्
नानाद्रुमगणाकीर्णम्वापीशतविराजितम् । संजुष्टं हंसकारण्डमयूरशुककोकिलैः ॥
उच्चप्रासादसंयुक्तं पताकाभिरलङ्कृतम् । नृत्यगीतकलापूर्णं मन्दारद्रुमसंयुतम् ॥६॥
बकुलाशोकतिलकचम्पकालिविमण्डितम् । कूजितैर्विहगानान्तु कर्णाह्लादकरैर्युतम्
सम्वीक्ष्यभवनंविष्णोर्द्वास्थौप्राहप्रणम्यच । जयविजयनामानौवेत्रपाणीस्थिताबुभौ

चित्ररूप उवाच

भो निवेदयतं शीघ्रं हरये परमात्मने । दूतम्प्राप्तं हरस्याऽत्र प्रेरितं शूलपाणिना ॥६॥
तच्छ्रुत्वा वचनन्तस्य जयःपरमबुद्धिमान् । गत्वाहरिम्प्रणम्याऽऽह कृताञ्जलिपुटःपुरः
देवदेव! रमाकान्त! करुणाकर! केशव !। द्वारि तिष्ठति दूतोऽत्र शङ्करस्य समागतः॥
आज्ञापय प्रवेष्टव्यो न वेति गरुडध्वज । चित्ररूपधरोऽप्यस्ति न जाने कार्यगौरवम्

इत्याकर्ण्य हरिः प्राह जयम्प्रज्ञातकारणः । प्रवेशयाऽत्र रुद्रस्य भृत्यंसमयसंस्थितम्
इत्याकर्ण्य जयस्तूर्णंगत्वा तं परमाद्भुतम् । एहीत्याकारयामास जयः शङ्करसेवकम्
प्रवेशितोजयेनाऽथ चित्ररूपस्तथाकृतिः । प्रणम्यदण्डवद्विष्णुं कृताञ्जलिपुटःस्थितः
दृष्ट्वा तंविस्मयम्प्राप भगवान्गरुडध्वजः !। चित्ररूपधरं शम्भोःसेवकम्विनयान्वितम्

पप्रच्छ तं स्मितं कृत्वा चित्ररूपं रमापतिः ।
कुशलं देवदेवस्य सकुटुम्बस्य चाऽनघ !॥ १७ ॥
कस्मात्त्वं प्रेषितोऽस्यत्र ब्रूहि कार्यं हरस्य किम् ।
अथवा देवतानाञ्च किञ्चित्कार्यं समुत्थितम् ॥ १८ ॥

दूत उवाच

किमज्ञानंतवाऽस्तीह संसारे गरुडध्वज !। वर्तमानं त्रिकालज्ञ यदहं प्रब्रवीमि वै
प्रेषितोऽस्मि भवेनाऽत्रविज्ञप्तुंत्वां जनार्दन । हरस्यवचनाद्वाक्यंप्रब्रवीमित्वयि प्रभो
तेनोक्तमेतद्देवेश :भार्या ते कमयालया । तपस्तपति कालिन्दीतमसासङ्गमे विभो !
हयीरूपधरा देवी सर्वार्थसिद्धिदायिनी । ध्यातुं योग्याऽमरगणैर्मानवैर्यक्षकिन्नरैः ॥

विना तया नरः कोऽपि सुखभागीभवेद्भुवि ।
तां त्यक्त्वा पुण्डरीकाक्ष! प्राप्नोषि किं सुखं हरे !॥ २३ ॥

दुर्बलोऽपिस्त्रियम्पातिनिर्धनोऽपिजगत्पते । विनाऽपराधञ्चविभोकिंत्यक्ताजगदीश्वरी
दुःखंप्राप्नोतिसंसारेयस्यभार्याजगद्गुरो !। धिक्तस्यजीवितंलोकेनिन्दितंत्वरिमण्डले

सकामा रिपवस्तेऽद्य दृष्ट्वा तां दुःस्थितां भृशम् ।
त्वां वियुक्तञ्च रमया हसिष्यन्ति दिवानिशम् ॥ २६ ॥

रमां रमय देवेश त्वदुत्सङ्गगतांकुरु । सर्वलक्षणसम्पन्नां सुशीलाञ्च सुरूपिणीम् ॥
सुखितो भवताम्प्राप्य वल्लभाञ्चारुहासिनीम् । कान्ताविरहजंदुःखंस्मराम्यहमनातुरः
मम भार्या मृता विष्णो दक्षयज्ञेसतीयदा । तदाऽहं दुःसहं दुःखं भुक्तवानम्बुजेक्षण
संसारेऽस्मिन्नरःकोऽपिमाभून्मत्सदृशोऽपरः । मनसाऽकरवंशोकंतस्याविरहपीडितः
कालेनमहताप्राप्ता मया गिरिसुतापुनः । तपस्तप्त्वाऽतिदुःसाध्यंयादग्धातुरुषाऽध्वरे

हरेकिंसुखमापन्नंत्वयासन्त्यज्यकामिनीम् । एकाकी तिष्ठताकालंसहस्रवत्सरात्मकम्
गत्वाऽऽश्वास्यमहाभागांसमानयनिजालयम् । माभूत्कोपीहसंसारेवियुक्तोरमयातथा
कृत्वा तुरगरूपं त्वं भजतात्कमलालयाम् ।
उत्पाद्य पुत्रमायुष्मंस्तामानय शुचिस्मिताम् ॥ ३५ ॥

व्यास उवाच

हरिराकर्ण्य तद्वाक्यं चित्ररूपस्य भारत !। तथेत्युक्त्वा तु दूतं तं प्रेषयामासशङ्करम्
गते दूतेऽथभगवान्वैकुण्ठात्कामसंयुतः । जगाम धृत्वा तत्राऽऽशु वाजिरूपंमनोहरम्
यत्रसावडवारूपंकृत्वातपतिसिन्धुजा । विष्णुस्तं देशमासाद्यतामपश्यद्धयींस्थिताम्
साऽपि तं वीक्ष्य गोविन्दं हयरूपधरम्पतिम् ।
ज्ञात्वा वीक्ष्य स्थिता साध्वी विस्मिता साश्रुलोचना ॥ ३८ ॥
तयोस्तु सङ्गमस्तत्र प्रवृत्तो मन्मथार्तयोः ।
कालिन्दीतमसासङ्गे पावने लोकविश्रुते ॥ ३९ ॥
सगर्भा सा तदा जाता वाडवा हरिवल्लभा । सुषुवे सुन्दरं बालं तत्रैव सुगुणोत्तरम्
तमाह भगवान्वाक्यं प्रहस्य समयाश्रितम् । त्यजाऽद्य वाडवन्देहं पूर्वदेहा भवाधुना
गमिष्यावःस्ववैकुण्ठमाद्यांकृत्वानिजंवपुः । तिष्ठत्वत्रकुमारोऽयंत्वयाजातःसुलोचने

लक्ष्मीरुवाच

स्वदेहसम्भवंपुत्रंकथंहित्वा व्रजाम्यहम् । स्नेहः सुदुस्त्यजःकामंस्वात्मजस्यसुरर्षभ
कागतिःस्यादमेयात्मन्बालस्यास्यनदीतटे । अनाथस्यासमर्थस्य विजनेऽल्पतनोरिह
अनाश्रयं सुतं त्यक्त्वा कथं गन्तुं मनो मम ।
समर्थं सदयं स्वामिन्भवेदम्बुजलोचन !॥ ४५ ॥
दिव्यदेहौ ततो जातौलक्ष्मीनारायणावुभौ । विमानवरसम्विष्टौस्तूयमानौसुरैर्दिवि
गन्तुकामस्पतिम्प्राहकमलाकमलापतिम् । गृहाणेमंसुतंनाथनाऽहं शक्ताऽस्मिहापितुम
प्राणप्रियोऽस्ति मे पुत्र! कान्त या त्वत्सदृशः प्रभो !।
गृहीत्वैनं गमिष्यावो वैकुण्ठं मधुसूदन !॥ ४८ ॥

हरिरुवाच

मा विषादम्प्रियैकर्तुं त्वमर्हसि वरानने । तिष्ठत्वयं सुखेनाऽत्र रक्षा मे विहितात्रिह
कार्यं किमपि वामोरु! वर्ततेमहदद्भुतम् । निबोध कथयाम्यद्य सुतस्याऽत्र विमोचने
तुर्वसुर्नाम विख्यातो ययातितनुजोभुवि । हरिवर्मेति पित्राऽस्यकृतंनामसुविश्रुतम्
स राजा पुत्रकामोऽद्य तपस्तपति पावने । तीर्थे वर्षशतं जातन्तस्य वै कुर्वतस्तपः
तस्याऽर्थे निर्मितः पुत्रो मयाऽयं कमलालये । तत्रगत्वान्नृपंसुप्तुरेरयिष्यामिसाम्प्रतम्
तस्मैदास्याम्यहम्पुत्रंपुत्रकामायकामिनि । गृहीत्वास्वगृहंराजाप्रापयिष्यतिबालकम्

व्यास उवाच

इत्याश्वास्य प्रियाम्पद्मां कृत्वा रक्षाञ्च बालके । विमानवरमारुह्य प्रययौ प्रियया सह

इति श्रीदेवीभागवतेमहापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यांसंहितायांषष्ठस्कन्धे
पुत्रजन्मनुम्वस्वरूपेणवैकुण्ठगमनवर्णनंनाम एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

विंशोऽध्यायः

चम्पकनामानंविद्याधरम्प्रतिहयीजातपुत्रस्यप्राप्तिस्तमानीयनृपतुर्वसुम्प्रति समर्पणन्तस्यैकवीरेतिनामकरणम्

जनमेजय उवाच

संशयोऽयं महानत्र जातमात्रः शिशुस्तथा । मुक्तःकेन गृहीतोऽसावेकाकीविजने वने
का गतिस्तस्य बालस्य जाता सत्यवतीसुत !।
व्याघ्रसिंहादिभिर्हिंस्रैर्गृहीतो नाऽतिबालकः ॥ २ ॥

व्यास उवाच

लक्ष्मीनारायणौतस्मात्स्थानाच्चलितौयदा। तदैवतत्रचम्पाख्यःप्राप्तोविद्याधरःकिल
विमानवरमारूढः कामिन्या सहितोनृप !। मदनालसया कामं क्रीडमानोयदृच्छया ॥

विलोक्य तं शिशुम्भूमावेकाकिनमनुत्तमम् । देवपुत्रप्रतीकाशं रममाणं यथासुखम्
विमानादवरुह्योत्तीर्य चम्पकस्तं शिशुं जवात् ।
जग्राह च मुदं प्राप निधिम्प्राप्य यथाऽधनः ॥ ६ ॥
गृहीत्वा चम्पकःप्रादाद्देव्यै तं मदनोपमम् । मदनालसायै तं बालंजातमात्रंमनोहरम्
सागृहीत्वाशिशुंप्रेम्णात्तरोमाञ्चासविस्मया । मुखंचुचुम्बबालस्यकृत्वानुहृदयेभृशम्
आलिङ्गितश्चुम्बितश्च तयाऽसौ प्रीतिपूर्वकम् ।
उत्सङ्गे च कृतस्तन्व्या पुत्रभावेन भारत ! ॥ ९ ॥
कृत्वाऽङ्के तौ समारूढौविमानं दम्पती मुदा । पतिम्पप्रच्छचार्वङ्गीप्रहस्यमदनालसा
कस्याऽयंबालकः कान्त! त्यक्तःकेनवकानने । पुत्रोऽयं ममदेवेनदत्तस्त्र्यम्बकपाणिना
चम्पक उवाच
प्रिये गत्वाऽद्यपृच्छेयं शक्रं सर्वज्ञमाशु वै । देवोवादानवोवाऽपिगन्धर्वोवाशिशुःकिल
तेनाऽऽज्ञप्तः करिष्यामि पुत्रं प्राप्तं वनादमुम् । अपृष्ट्वानैवकर्तव्यंकार्यंकिञ्चिन्मयाध्रुवम्
इत्युक्त्वा तां गृहीत्वा तं विमानेनाऽथचम्पकः । ययौशक्रपुरंतूर्णंहर्षेणोत्फुल्ललोचनः
प्रणम्य पादयोः प्रीत्या चम्पकस्तु शचीपतिम् ।
निवेद्य बालकं प्राह कृताञ्जलिपुटः स्थितः ॥ १५ ॥
देवदेव मया लब्धस्तीर्थे परमपावने । कालिन्दीतमसासङ्गे बालकोऽयं स्मरप्रभः
कस्याऽयं बालकः कान्तःकथंत्यक्तः शचीपते । आज्ञाचेत्तवदेवेशकुर्वेऽहंबालकं सुतम्
अतीव सुन्दरो बालः प्रियायावल्लभः सुतः । कृत्रिमस्तुसुतःप्रोक्तोधर्मशास्त्रेषुसर्वथा
इन्द्र उवाच
पुत्रोऽयंवासुदेवस्य वाजिरूपधरस्य ह । हैहयोऽयं महाभाग! लक्ष्म्यांजातःपरं तपः
उत्पादितो भगवता कार्यार्थं किल बालकः । दातुं नृपतये नूनं ययातितनयाय च ॥
हरिणाप्रेरितः सोऽद्य राजापरमधार्मिकः । आगमिष्यति पुत्रार्थं तीर्थेतस्मिन्मनोरमे
तावत्त्वं गच्छ तत्रैव गृहीत्वा बालकं शुभम् । यावन्नयातिनृपतिर्ग्रहीतुं हरिणेरितः
गत्वा तत्र विमुञ्चैनं विलम्बं मा कृथा वर । अदृष्ट्वा बालकंराजादुःखितश्च भविष्यति

तस्माच्चम्पक! मुञ्चैनं राजा प्राप्नोतु पुत्रकम् ।
एकवीरेति नाम्नाऽयं ख्यातः स्यात्पृथिवीतले ॥ २४ ॥

व्यास उवाच

इति तस्य वचः श्रुत्वाचम्पकस्त्वरयान्वितः । जगामपुत्रमादायस्थलेतस्मिन्महीपते
मुमोच बालकं तत्र यत्र पूर्वस्थितोह्यभूत् । आरुह्यस्वविमानंतुययौस्वाश्रममण्डलम्
तदैव कमलाकान्तो लक्ष्म्या सह जगद्गुरुः । विमानवरमारूढो जगाम नृपतिं प्रति

दृष्टस्तदा तेन नृपेण विष्णुः समुत्तरंस्तत्र विमानमुख्यात् ।
जहर्ष राजा हरिदर्शनेन पपात भूमौ खलु दण्डवच्च ॥ २८ ॥
उत्तिष्ठ वत्सेति हरिः पतन्तमाश्वासयद्भूमिगतं स्वभक्तम् ।
सोऽप्युत्सुको वासुदेवं पुरःस्थं तुष्टाव भक्त्या मुखरीकृतोऽथ ॥ २६ ॥
देवाधिदेवाखिललोकनाथ ! कृपानिधे ! लोकगुरो ! रमेश !।
मन्दस्य मे ते किल दर्शनं यत्सुदुर्लभं योगिजनैरलभ्यम् ॥ ३० ॥
ये निःस्पृहास्ते विषयैरपेतास्तेषां त्वदीयं खलु दर्शनं स्यात् ।
आशापरोऽहं भगवन्ननन्त! योग्यो न ते दर्शने देवदेव !॥ ३१ ॥
इति स्तुतस्तेन नृपेण विष्णुस्तमाह वाक्येन सुधामयेन ।
वृणीष्व राजन्मनसेप्सितं ते ददामि तुष्टस्तपसा तवेति ॥ ३२ ॥
ततो नृपस्तं प्रणिपत्य पादयोः प्रावोच विष्णुं पुरतः स्थितञ्च ।
तपस्तु तप्तं हि मया सुतार्थे पुत्रं ददस्वाऽऽत्मसमं मुरारे !॥ ३३ ॥
श्रुत्वा नृपप्रार्थितमादिदेवस्तामाह राजानममोघवाक्यम् ।
ययातिसूनो! व्रज तत्र तीर्थे कलिन्दकन्यातमसाप्रसङ्गे ॥ ३४ ॥
मयाऽद्य पुत्रस्तु यथेप्सितस्ते तत्रैव मुक्तोऽस्त्यमितप्रभावः ।
लक्ष्म्याः प्रसूतो मम वीर्यजश्च कृतस्तवार्थेऽथ गृहाण राजन् !॥ ३५ ॥
श्रुत्वा हरेर्वाक्यमतीव हृष्टं सन्तुष्टचित्तः प्रबभूव राजा ।
हरिस्तु दत्त्वेति वरं जगाम वैकुण्ठलोकं रमया युतश्च ॥ ३६ ॥

गते हरौ सोऽथ ययातिसूनुर्ययावनुद्घातरथेन राजा ।
प्रेमान्वितस्तत्र सुतोऽस्ति यत्र वचो निशम्यैति जनार्दनस्य ॥ ३७ ॥
स तत्र गत्वाऽतिमनोहरं तं ददर्श बालं भुवि खेलमानम् ।
मुखे निवेश्यैककरेण कृत्वा श्लक्ष्णम्पदाङ्गुष्ठमनन्यसत्त्वः ॥ ३८ ॥
तं वीक्ष्य पुत्रं मदनस्वरूपं नारायणांशं कमलाप्रसूतम् ।
हरिप्रभावं हरिवर्मनामा हर्षप्रफुल्लाननपङ्कजोऽभूत् ॥ ३९ ॥
गृह्णन्सुवेगात्करपङ्कजाभ्यां बभूव प्रेमार्णवमग्नदेहः ।
मूर्धन्युपाघ्राय मुदाऽन्वितोऽसौ ननन्द राजा सुतमालिलिङ्ग ॥ ४० ॥
मुखं समीक्ष्याऽतिमनोहरं तमुवाच नेत्राऽम्बुनिरुद्धकण्ठः ।
दत्तोऽसि देवेन जनार्दनेन मात्रा हि पुत्रावमदुःखभीतेः ॥ ४१ ॥
तप्तं मया पुत्र ! तपस्तवाऽर्थे सुदुष्करं वर्षशतश्च पूर्णम् ।
तेनैव तुष्टेन रमाप्रियेण दत्तोऽसि संसारसुखोदयाय ॥ ४२ ॥
माता रमा त्वां तनुजं मदर्थे त्यक्त्वा गता सा हरिणा समेता ।
धन्या तु सा या प्रहसन्तमङ्के कृत्वा सुतं त्वाम्मुदितानना स्यात् ॥ ४३ ॥
त्वमेव संसारसमुद्रनौकारूपः कृतः पुत्र! लक्ष्मीधरेण ।
इत्येवमुक्त्वा नृपतिः सुतं तं मुदा समादाय ययौ गृहाय ॥ ४४ ॥
पुरीसमीपे नृपमाऽऽगतं तमाकर्ण्य सर्वे सचिवास्तु राज्ञः ।
ययुः समीपं नृपतेश्च लोकाः सोपायनास्ते सपुरोहिताश्च ॥ ४५ ॥
बन्दीजना गायनकाश्च सूताः समाययुः सम्मुखमाशु राज्ञः ।
नृपः पुरं प्राप्य पुरः समागतं जनं समाभाष्य वाक्यैश्च दृष्ट्या ॥ ४६॥
सम्पूजितः पौरजनेन राजा विवेश पुत्रेण युतो नगर्याम् ।
मार्गेषु लाजैः कुसुमैः समन्ताद्विकीर्यमाणो नृपतिर्जगाम ॥ ४७ ॥
गृहं समृद्धं सचिवैः समेतः सुतं समादाय मुदा कराभ्याम् ।
राज्ञ्यै ददौ चाऽथ सुतं मनोज्ञं सद्यःप्रसूतं च मनोभवाभम् ॥ ४८ ॥

राज्ञी गृहीत्वाऽभिनवं तनूजं पप्रच्छ राजानमनिन्दिता सा ।
राजन्कुतश्चैष सुतः सुजन्मा प्राप्तस्त्वया मन्मथतुल्यरूपः ॥ ४९ ॥
केनैष दत्तः कथयाऽऽशु कान्त ! चेतो मदीयं प्रहृतं सुतेन ।
नृपस्तदोवाच मुदाऽन्वितोऽसौ प्रिये! रमेशेन हृतोऽति मह्यम् ॥ ५० ॥
लोलाक्षि ! दत्तः कमलासमुत्थो जनार्दनांशोऽयमहीनसत्त्वः ।
सा तं गृहीत्वा मुदमाप राज्ञी राजा चकारोत्सवमद्भुतं च ॥ ५१ ॥
ददौ च दानं किल याचकेभ्यो गीतानि वाद्यानि बहूनि नेदुः ।
कृत्वोत्सवं भूपतिरात्मजस्य नामैकवीरेति चकार विश्रुतम् ॥ ५२ ॥
सुखञ्च सम्प्राप्य मुदाऽन्वितोऽसौ ननन्द देवाधिपतुल्यवीर्यः ।
पुत्रं हरे रूपगुणानुरूपं सम्प्राप्य वंशस्य ऋणाच्च मुक्तः ॥ ५३ ॥
इति सकलसुराणामीश्वरेणाऽर्पितं तं सकलगुणगणाढ्यं पुत्रमासाद्य राजा ।
विविधसुखविनोदैर्भार्यया सेव्यमाने व्यहरत निजगेहे शक्रतुल्यप्रतापः ॥ ५४ ॥

इतिश्रीदेवीभागवतेमहापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यांसंहितायांषष्ठस्कन्धे-
एकवीराख्यानवर्णनं नाम विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

एकविंशोऽध्यायः

एकवीराभिषेचनोर्ध्ववृत्तान्तेतस्माएकावलीकन्याप्राप्तिवर्णनम्

व्यास उवाच

जातकर्मादिसंस्कारांश्चकार नृपतिस्तदा ।
दिनेदिने जगामाऽऽशु वृद्धिं बालः सुलालितः ॥ १ ॥
नृपः संसारजं प्राप्य सुखं पुत्रसमुद्भवम् । ऋणत्रयविमोक्षञ्च मेने तेन महात्मना ॥
षष्ठेऽन्नप्राशनंतस्य कृत्वा मासि यथाविधि । तृतीयेऽथ तथा वर्षे चूडाकरणमुत्तमम्

चकार ब्राह्मणान्द्रव्यैः सम्पूज्य विविधैर्धनैः । गोभिश्चविविधैर्दानैर्याचकानितरानपि
वर्षे चैकादशे तस्य मौञ्जीबन्धनकर्म वै । कारयित्वा धनुर्वेदमध्यापयत पार्थिवः ॥५
अधीतवेदम्पुत्रं तं राजधर्मविशारदम् । दृष्ट्वा तस्याऽभिषेकाय मतिश्चक्रे जनाधिपः
पुष्यार्कयोगसंयुक्तेदिवसे नृपसत्तमः । कारयामास सम्भारानभिषेकार्थमादरात् ॥७॥
द्विजानाहूयवेदज्ञान्सर्वशास्त्रविचक्षणान् । अभिषेकश्चकारासौ विधिवत्स्वात्मजस्यह
जलमानीय तीर्थेभ्यः सागरेभ्यश्च पार्थिवः । स्वयं चकार विधिवदभिषेकं शुभे दिने
धनंदत्त्वाऽथविप्रेभ्योराज्यं पुत्रे निवेश्य सः । जगामवनमेवाऽऽशुस्वर्गकामःसभूपतिः
एकवीरं नृपं कृत्वा सम्मान्य सचिवानथ । भार्यया सह भूपालः प्रविवेश वनं वशी

मैनाकशिखरे राजा कृत्वा तार्तीयमाश्रमम्
नित्यं पत्रफलाहारश्चिन्तयामास पार्वतीम् ॥ १२ ॥

एवं स नृपतिः कृत्वादिष्टान्ते सह भार्यया । मृतोऽसौवासवंलोकंगतःपुण्येनकर्मणा
इन्द्रलोकं पिता प्राप्त इति श्रुत्वाऽथ हैहयः । चकार वेदनिर्दिष्टं कर्म सैवौर्ध्वदेहिकम्
कृत्वोत्तराःक्रियाःसर्वाः पितुःपार्थिवनन्दनः । राज्यंचकारमेधावीपित्रादत्तंसुसंमतम्
एकवीरोऽथ धर्मज्ञःप्राप्य राज्यमनुत्तमम् । बुभुजेविविधान्भोगान्सचिवैश्चसुमानितः
एकस्मिन्दिवसे राजा मन्त्रिपुत्रैः समन्वितः । जगाम जाह्नवीतीरेहयारूढःप्रतापवान्

सम्पश्यन्पादपान्रम्यान्कोकिलालापसंयुतान् ।
पुष्पितान्फलसंयुक्तान्षट्पदालिविराजितान् ॥ १८ ॥

मुनीनामाश्रमान्दिव्यान्वेदध्वनिनिनादितान् । होमधूमावृताकाशान्मृगशावसमावृतान्

केदारान्छालिसम्पक्वान्गोपिकाभिः सुरक्षितान् ।
प्रफुल्लपङ्कजारामान् निकुञ्जांश्चमनोरमान् ॥ २० ॥
प्रेक्षमाणः प्रियालांस्तु चम्पकान्पनसद्रुमान् ।
बकुलांस्तिलकान्नीपान्मन्दारांश्च प्रफुल्लितान् ॥ २१ ॥
शालांस्तालांस्तमालांश्च जम्बूचूतकदम्बकान् ।
स गच्छञ्जाह्नवी तोये प्रफुल्लं शतपत्रकम् ॥ २२ ॥

पङ्कजंचातिगन्धाढ्यममपश्यदवनीपतिः । दक्षिणेजलजस्याऽथपार्श्वेकमललोचनाम्

कनकाभां सुकेशीं च कम्बुग्रीवां कृशोदरीम् ।
विम्बोष्ठीं सुन्दरींकिञ्चित्समुद्यत्सुपयोधराम् ॥ २४ ॥
सुनासां चारुसर्वाङ्गीमपश्यत्कन्यकां नृपः ।
रुदतीं तां सखीं त्यक्त्वा विह्वलां दुःखपीडिताम् ॥ २५ ॥

साश्रुनेत्रां क्रन्दमानां विजनेकुररीमिव । सम्वीक्ष्यराजाप्रपच्छकन्यकांशोककारणम्
सुनसे ब्रूहि काऽसि त्वंकस्य पुत्रीशुभानने । गन्धर्वीदेवकन्याऽथकथंरोदिषिसुन्दरि
कथमेकाकिनी बाले त्यक्ताकेनपिकस्वरे । पतिस्तेक्कगतःकान्तेपितावाब्रूहिसाम्प्रतम्
किं ते दुःखमरालभ्रु कथयाऽद्यममाऽन्तिके । करोमि दुःखनाशं ते सर्वथैव कृशोदरि
न राज्ये मम तन्वङ्गि! पीडां कोऽपिकरोत्यलम् । नभयंचौरजंकान्तेनराक्षसभयंतथा
मयि शासति भूपाले नोत्पातादारुणाभुवि । भयंनव्याघ्रसिंहेभ्योनभयंकस्यचिद्भवेत्
वद वामोरु कस्मात्त्वं विलापं जाह्नवीतटे । करोषि त्राणहीनाऽभ्रकिं तेदुःखंवदस्वमे
हन्म्यहं दुःखमत्युग्रं प्राणिनां पृथिवीतले । दैवं च मानुषं कान्ते व्रतमेतन्ममाऽद्भुतम्
विशाललोचने ब्रूहि करोमि तव चिन्तितम् । इत्युक्ते वचने राज्ञाश्रुत्वोवाचमृदुस्वना

शृणु राजेन्द्र ! वक्ष्यामि मम शोकस्य कारणम् ।
विपत्तिरहितः प्राणी कथं रुदति भूपते !॥ ३५ ॥

प्रब्रवीमि महाबाहो यदर्थं रुदती त्वहम् । तव राज्यादन्येदेशे राजा परमधार्मिकः ॥
रैभ्यो नाम महाराजःसन्तानरहितोभृशम् । तस्यभार्यासुविख्यातारुक्मरेखेतिनामतः
सुरूपा चतुरा साध्वी सर्वलक्षणसंयुता । अपुत्रा दुःखिता कान्तमित्युवाच पुनःपुनः
किं जीवितेन मे नाथ धिग्वृथा जीवितंमम । वन्ध्यायाःसुखहीनायाह्यपुत्रायाधरातले
इत्येवं भार्यया भूपः प्रेरितो मखमुत्तमम् । चकार ब्राह्मणांस्तज्ज्ञानाहूय विधिवत्तदा
पुत्रकामो धनं भूरि ददावथ यथोदितम् । हूयमाने घृतेऽत्यर्थं पावकादतिसुप्रभात् ॥
आविर्बभूव चार्वङ्गीकन्यका शुभलक्षणा । बिम्बोष्ठी सुदती सुभ्रूः पूर्णचन्द्रनिभानना
कनकाभा सुकेशान्ता रक्तपाणितला मृदुः । सुरक्तनयना तन्वी रक्तपादतला भृशम् ॥

हुताशनात्समुद्भूता होत्रा सा स्वीकृता तदा ।
होता प्रोवाच राजानं गृहीत्वा तां सुमध्यमाम् ॥ ४४ ॥
राजन्पुत्रीं गृहाणेमां सर्वलक्षणसंयुताम् । एकावलीव सम्भूता हूयमानाद्धुताशनात्
नाम्ना चैकावली लोके ख्याता पुत्रीभविष्यति । सुखितोभवभूपालपुत्र्यापुत्रसमानया
सन्तोषं कुरुराजेन्द्र! दत्तादेवेनविष्णुना । होतुर्वाक्यंनृपःश्रुत्वाहृष्टातांकन्यकांशुभाम्
जग्राह परमप्रीतो होत्रा दत्तांसुसन्मताम् । गृहीत्वानृपतिस्तांतुददौपत्न्यैवराननाम्
आभाष्य रुक्मरेखायै गृहाण सुभगे ! सुतम् ।
सा तां कमलपत्राक्षीं प्राप्य कन्यां मनोरमाम् ॥ ४६ ॥
जहर्ष मुदिता राज्ञी पुत्रं प्राप्य यथासुखम् । चकार मङ्गलं कर्म जातकर्मादिकं शुभम्
पुत्रजन्मसमुत्थं यत्तत्सर्वं विधिवत्ततः । समाप्यचमखंराजाद्विजेभ्योदक्षिणांशुभाम्
दत्वा विसृज्य विप्रेन्द्रान्मुदंप्रापमहीपतिः । दिनेदिनेऽसितापाङ्गीपुत्रवृद्ध्याभृशंयमौ
मुदं च परमां प्राप नृपभार्या सुतान्विता । उत्सवस्तद्दिने तस्य प्रवृत्तः सुतजन्मजः
पुत्री पुत्रसमाऽत्यर्थं बभूव वल्लभा किल । राज्ञो मन्त्रिसुताचाऽहं सुबुद्धे मन्मथाकृते
यशोवती च मे नाम समानं वय आवयोः । वयस्याऽहं कृता राज्ञा क्रीडनायतयासह
सदा सहचरी जाता प्रेमयुक्ता दिवानिशम् । एकावली गन्धवन्तियत्रपद्मानिपश्यति
तत्र सा रमते बाला नाऽन्यत्र सुखमाप्नुयात् । सुदूरे जाह्नवीतीरेभवन्तिकमलान्यपि
रममाणा तत्र याता मत्समेता सखीयुता । मया निवेदितं राजन्पुत्री तेकमलाकरान्
प्रेक्षमाणाऽतिदूरे सा प्रयातिनिर्जनेवने । निषेधिताऽथपित्राऽसौगृहेकृत्वाजलाशयान्
कमलान्वापयित्वाऽथपुष्पितान्भ्रमरावृतान् । तथाऽपिनिर्ययौबालाकमलासक्तचेतना
तदा राज्ञा रक्षपालाः प्रेरिता शस्त्रपाणयः । एवं रक्षायुता तन्वी मत्समेता सखीयुता
क्रीडार्थं जाह्नवीतोये नित्यमायाति याति च ॥ ६२ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां षष्ठस्कन्धे
राजपुत्र्याएकावल्यावर्णनंनाम एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

द्वाविंशोऽध्यायः

कालकेतुद्वारैकावलीयदास्वस्थानंप्रापितातदनन्तरंयशोवत्याएकवीरम्प्रति-स्वकीयस्वप्नवर्णनम्

यशोवत्युवाच

प्रातरुत्थाय तन्वङ्गी चलिता च सखीयुता । चामरैर्वीज्यमानासारक्षिताबहुरक्षिभिः
सायुधैश्चातिसन्नद्धैः सहितावरवर्णिनी । क्रीडार्थमत्रराजेन्द्र! सम्प्राप्तानलिनीं शुभाम्
अहमप्यनया सार्धं गङ्गातीरे समागता । अप्सरोभिः समेता च कमलैःक्रीडमानया ॥
एकावली तथा चाहं जाते क्रीडापरे यदा । सहसैव तदाऽयातो दानवो बलसंयुतः ॥
कालकेतुरिति ख्यातो राक्षसैर्बहुभिर्युतः । परिघाऽसिगदाचापबाणतोमरपाणिभिः
दृष्ट्वा चैकावली तेन रूपयौवनशालिनी । द्वितीया कामपत्नीव क्रीडमाना सुपङ्कजैः ॥

मयोक्तैकावली राजन्कोऽयं दैत्यः समागतः ।
गच्छावो रक्षपालानां मध्ये पङ्कजलोचने !॥ ७ ॥

विमृश्यैवंसखीचाऽहंत्वरयैवगते भयात् । मध्ये वै सैनिकानान्तुसायुधानांनृपात्मज
कालकेतुस्तु तां दृष्ट्वा मोहिनीं मदनातुरः । गदांगुर्वीं गृहीत्वा तु धावमानःसमागतः
रक्षकान्दूरतःकृत्वाजग्राहाऽम्बुजलोचनाम् । त्रस्तांवेपथुसंयुक्तांक्रन्दमानांकृशोदरीम्

त्यजैनां मां गृहाणेति मया चोक्तोऽपि दानवः ।
न मां जग्राह कामार्तस्तां गृहीत्वा विनिःसृतः ॥ ११ ॥
तिष्ठ तिष्ठेति भाषन्तो रक्षकास्तं महाबलम् ।
प्रतिषिध्य तु सङ्ग्रामं चक्रुर्विस्मयकारकम् ॥ १२ ॥

तस्याऽपिराक्षसाःक्रूराःसर्वतःशस्त्रपाणयः । युयुधूरक्षकैःसार्धंस्वामिकार्यकृतोद्यमाः
सङ्ग्रामस्तु तदा जातःकालकेतोस्तथारणे । निहत्यरक्षकान्सर्वान्गृहीत्वैनांमहाबलः
युक्तो राक्षससैन्येन निर्जगाम पुरम्प्रति । वीक्ष्यतां रुदतींबालां गृहीतां दानवेन तु

पृष्ठतोऽहं गतातत्रयत्रनीतामसखीमम । विक्रोशन्ती यथा सा मां पश्येदितिपदानुगा
सापि मामागतां वीक्ष्य किंचित्स्वस्थाऽभवत्तदा ।
गताऽहं तत्समीपे तु तामाभाष्य पुनः पुनः ॥ १७ ॥
सा माम्प्राप्याऽतिदुःखार्ता स्तम्भस्वेदसमाकुला ।
कण्ठे गृहीत्वा मां भूप ! रुरोद भृशदुःखिता ॥ १८ ॥
स मामाहकालकेतुःप्रीतिपूर्वमिदम्वचः । समाश्वासयभीतां त्वंसखीचञ्चललोचनाम्
प्राप्तस्समाऽद्यनगरं देवलोकसमंप्रिये । दासोऽस्मितवरत्याहिकस्मात्क्रन्दसिकातरा
कथयैनां सखी तेऽद्य स्वस्था भव सुलोचने !।
इत्युक्त्वा मां सखीपार्श्वे समारोप्य रथोत्तमे ॥ २१ ॥
जगाम तरसा दुष्टः पुरे स्वस्य मनोहरे । सैन्येन महता युक्तः प्रफुल्लवदनाम्बुजः ॥
एकावलींतथामाञ्च संस्थाप्य धवले गृहे । राक्षसान्गृहरक्षार्थं कल्पयामासकोटिशः
द्वितीयेदिवसेसोऽथमामुवाचरहोनृपः । प्रबोधय सखीं बालां शोचन्तीविरहातुराम्
पत्नी मे भव सुश्रोणि! सुखम्भुङ्क्ष्व यथेप्सितम् ।
राज्यं त्वदीयं चन्द्रास्ये ! सेवकोऽहं सदा तव ॥ २५ ॥
पुनरुक्तं मयावाक्यंश्रुत्वा तद्भाषितं खरम् । नाऽहं क्षमाऽप्रियं वक्तुं त्वमेनाकथयप्रभो
इत्युक्ते वचने दुष्टो मदनक्षतमानसः । उवाच विनयादेना सखी क्षामोदरी प्रियाम्
कृशोदरि! त्वयामन्त्रोनिक्षिप्तोऽस्ति ममोपरि । तेन मे हृदयंकान्तेहृतन्तेवशताङ्गतम्
तेनाऽहं तव दासोऽद्य कृतोऽस्मीति विनिश्चयः ।
भज मां कामबाणेन पीडितम्विवशं भृशम् ॥ २६ ॥
यौवनं याति रम्भोरु! चञ्चलं दुर्लभन्तथा । सफलंकुरु कल्याणि पतिम्मांपरिरभ्यच

एकावल्युवाच

पित्राऽहं कल्पिता पूर्वं दातुं राजसुताय वै । हैहयन्तु महाभाग! स मयामनसावृतः
कथमन्यं भजे कान्तं त्यक्त्वा धर्मं सनातनम् ।
कन्याधर्मं विहायाऽद्य वेत्सि शास्त्रविनिश्चयम् ॥ ३२ ॥

यस्मैदद्यात्पिताकामंकन्यातंपतिमाप्नुयात् । परतन्त्रासदाकन्यान स्वातन्त्र्यंकदाचन

इत्युक्तोऽपि तया पापी विरराम न मोहितः ।

न मुमोच विशालाक्षीं मां च पार्श्वस्थितां तथा ॥ ३४ ॥

पातालविवरे तस्य पुरम्परमसङ्कटे । राक्षसै रक्षितं दुर्गम्मण्डितं परिखावृतम् ॥३५

तत्र तिष्ठति दुःखार्ता सखी मे प्राणवल्लभा । तेनाऽहंचिरहेणाऽत्ररारटीमिसुदुःखिता

एकवीर उवाच

कथं त्वमत्र सम्प्राप्ता पुरात्तस्य दुरात्मनः । विस्मयो मे महानत्र तत्त्वं ब्रूहि वरानने

त्वया च कथितम्वाक्यं संदिग्धं भाति भामिनि !।

हैहयार्थे कल्पिता सा पित्रेति मम साम्प्रतम् ॥ ३८ ॥

हैहयोनामराजाऽहंनान्योऽस्तिपृथिवीपतिः । मदर्थेकथितासा किंसखीतवसुलोचना

एतन्मे संशयं सुभ्रु च्छेत्तुमर्हसि भामिनि !। अहंतामानयिष्यामितंहत्वाराक्षसाधमम्

स्थानं दर्शयमेतस्ययदि जानासिसुव्रते । राज्ञेनिवेदितंकिं वा तत्पित्रेवाऽतिदुःखिता

यस्यैषा वल्लभा पुत्री न किं जानाति तां हृताम् ।

नोद्यमः किं कृतस्तेन ततो मोचनहेतवे ॥ ४२ ॥

बन्दीकृतांसुतांज्ञात्वाकथंतिष्ठतिसुस्थिरः । असमर्थोनृपःकिंवाकारणम्ब्रूहिसत्वरम्

त्वयामेऽपहृतश्चेतोगुणानुक्त्वाह्यमानुषान् । सख्याःपङ्कजपत्राक्षि! कृतःकामवशोभृशम्

कदा पश्यामि तां कान्तां मोचयित्वाऽतिसङ्कटात् ।

इति मे हृदयं चाऽद्य करोत्यतिमनोरथम् ॥ ४५ ॥

ब्रूहि मे गमनोपायं पुरे तस्याऽतिदुर्गमे । कथं त्वमागता तस्मात्सङ्कटादत्र तद्वद ॥

यशोवत्युवाच

बालभावान्मया मन्त्रो भगवत्या विशाम्पते !।

प्राप्तोऽस्ति ब्राह्मणात्सिद्धात्सबीजध्यानपूर्वकः ॥ ४७ ॥

तत्राऽवस्थितया राजन्मया चित्ते विचारितम् ।

आराधयामि सततं चण्डिकां चण्डविक्रमाम् ॥ ४८ ॥

सा देवी सेविताकामंबन्धमोक्षं करिष्यति । भक्तानुकम्पिनीशक्तिःसमर्थासर्वसाधने
या विश्वंसृजते शक्त्यापालयत्येवसा पुनः । कल्पान्ते संहरत्येव निराकारानिराश्रया

इति सञ्चिन्त्य मनसा देवीं विश्वेश्वरीं शिवाम् ।
ध्यात्वा रक्ताम्बरां सौम्यां सुरक्तनयनां हृदि ॥ ५१ ॥
संस्मृत्य मनसा रूपं मन्त्रज्ञाप्यपराऽभवम् ।
उपासिता मया देवी मासमेकं समाधिना ॥ ५२ ॥

स्वप्नेममसमायाताभक्तिभावेनतोषिता । मामाहाऽमृतयावाचाकिंसुप्तासीतिचण्डिका
उत्तिष्ठ याहि तरसा गङ्गातीरं मनोहरम् । आगमिष्यति तत्राऽसौ हैहयो नृपपुङ्गवः
एकवीरो महाबाहुः सर्वशत्रुविमर्दनः । दत्तात्रेयेण मन्मन्त्रो महाविद्याभिधः परः ॥

दत्तोऽस्मै सोऽपि सततं मामुपास्तेऽतिभक्तितः ।
मय्यासक्तमतिर्नित्यं मम पूजापरायणः ॥ ५६ ॥

मामेव सर्वभूतेषु ध्यायन्नास्ते च मत्परः । सते दुःखविनाशं वंकरिष्यति महामतिः
मासुतोविहरंस्तत्रतवत्राता भविष्यति । हत्वातं राक्षसंघोरंमोचयिष्यति मानिनीम्
एकावलीमेकवीरः सर्वशास्त्रविशारदः । पश्चात्सैव पतिः कार्यस्त्वयाराजसुतः शुभः
इत्युक्त्वाऽन्तर्दधे देवीप्रबुद्धाऽहंतदैव हि । कथितं स्वप्नवृत्तान्तंदेव्याश्चाऽऽराधनं तथा

प्रसन्नवदना जाता श्रुत्वा सा कमलेक्षणा ।
विशेषेण च सन्तुष्टा मामुवाच शुचिस्मिता ॥ ६१ ॥

गच्छतत्रत्वरायुक्ता कुरुकार्यंममप्रिये । सत्यवाक्याभगवतीसाऽऽवांमोक्षंविधास्यति
इत्याज्ञप्ता तया चाऽहंसख्या वैप्रेमयुक्तया । मत्वोपशरणं युक्तं तस्मात्स्थानात्सदानृप
चालिताऽहं ततः शीघ्रं महादेवीप्रसादतः । मार्गज्ञानंशीघ्रगतिर्मया प्राप्ता नृपात्मज!

इत्येतत्कथितं सर्वं कारणं मम दुःखजम् ।
कस्त्वं कस्य सुतश्चेति वद वीर! यथा तथा ॥ ६५ ॥

इतिश्रीदेवीभागवतेमहापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यांसंहितायांषष्ठस्कन्धे
हैहयैकवीराययशोवत्यैकावलीमोचनायदेवीस्वप्नवर्णनंनामद्वाविंशोऽध्यायः ॥

त्रयोविंशोऽध्यायः

यशोवत्यासहैकवीरस्यपातालगमनंकालकेतुनासहयुद्धंकालकेतोर्मृत्यु-रेकावल्यासहतस्यविवाहवर्णनम्

व्यास उवाच

तस्यास्तु वचनं श्रुत्वा रमापुत्रः प्रतापवान्। प्रफुल्लवदनाम्भोजस्तामुवाच विशाम्पते

राजोवाच

रम्भोरु! यस्त्वयापृष्टोवृत्तान्तोविशदाक्षरः। हैहयोऽहंमेकवीरनाम्नासिन्धुसुतासुतः
मनोमे यत्त्वया नूनं परतन्त्रं कृतंकिल। किं करोमिक्क गच्छामिविरहेणाऽतिपीडितः
प्रथमं रूपमाख्यातं सर्वलोकातिगं त्वया। तेन मे विह्वलं जातं कामबाणहतं मनः॥

ततस्तस्या गुणाः प्रोक्तास्तैस्तु चित्तं हृतं पुनः।
यत्त्वयोक्तं पुनर्वाक्यं तेन मे विस्मयोऽभवत्॥ ५॥

एकावल्या वचःप्रोक्तं दानवाऽग्रे मयावृतः। हैहयस्तं विनानान्यंवृणोमीतिविनिश्चयः
तेन वाक्येनतन्वङ्गिभृत्योऽहमभवनाकृतः। त्वयातस्याःसुकेशान्तेब्रूहिकिंकरवाणिवाम्

स्थानं तस्य न जानामि राक्षसस्य दुरात्मनः।
गतिर्मे नास्ति गमने पुरे तस्मिन्सुलोचने!॥ ८॥
वद मां त्वं विशालाक्षि! तत्र प्रापयितुं क्षमा।
प्रापयाऽऽशु सखी ते सा यत्र तिष्ठति सुन्दरी॥ ९॥
हत्वा तं राक्षसं क्रूरं मोचयिष्यामि साम्प्रतम्।
विवशां शोकसंतप्तां राजपुत्रीं तव प्रियाम्॥ १०॥
विमुक्तदुःखां कृत्वाऽऽशु प्रापयिष्यामि ते पुरम्।
पित्रे चाऽस्याः प्रदास्यामि कन्यामेकावलीमहम्॥ ११॥

पश्चाद्विवाहं कर्ताऽसौ राजपुत्र्याःपरंतप । एवं तेमनसः कामो ममचापि प्रियम्वदे!
भविष्यति ससम्पूर्णः साम्प्रतेन तवाऽधुना । दर्शयाऽशुपुरंतस्य पश्यमे त्वं पराक्रमम्
यथा हन्मि दुराचारं परदारापहारकम् । तथा कुरु प्रियं कर्तुं शक्ताऽसि वरवर्णिनि
मार्गं दर्शय तस्याऽद्य पुरस्य दुर्गमस्य च ।

व्यास उवाच

तन्निशम्य प्रियं वाक्यं मुदिता च यशोवती ॥ १५ ॥

तमुवाच रमापुत्रं गमनोपायमादरात् । मन्त्रं गृहाण राजेन्द्र! भगवत्यास्तु सिद्धिदम्
दर्शयिष्यामि तस्याऽद्यपुरंराक्षसपालितम् । सज्जोभवमहाभाग! गमनाय मया सह
सैन्येन महता युक्तस्तत्र युद्धं भविष्यति । कालकेतुर्महावीरो राक्षसैर्बलिभिर्वृतः
तस्मान्मन्त्रं गृहीत्वा तं व्रज तत्र मया सह ।
दर्शयिष्यामि ते मार्गं पुरस्याऽस्य दुरात्मनः ॥ १६ ॥

हत्वातं पापकर्माणंमोचयाऽऽशु सखींमम । श्रुत्वा तद्वचनंवीरोमन्त्रं जग्राहसत्वरः
दत्तात्रेयाद्दैवयोगात्प्राप्ताज्ज्ञानिवराच्छुभात् ।
योगेश्वरीमहामन्त्रं त्रिलोकीतिलकाभिधम् ॥ २१ ॥

नेन सर्वज्ञता जाता सर्वान्तश्चारिता यथा । तया सह जगामाऽशु पुरंतस्यसुदुर्गमम्
रक्षितं राक्षसैर्घोरैः पातालमिव पन्नगैः । यशोवत्या च सैन्येन महता संयुतो नृपः
समायान्तं समालोक्य दूतास्तस्य भयातुराः ।
क्रोशन्तोऽभिययुः पार्श्वं कालकेतोस्तरस्विनः ॥ २४ ॥

तमूचुः सहसामत्वा राक्षसं काममोहितम् । एकावलीसमीपस्थंकुर्वन्तंविनयान्बहून्

दूता ऊचुः

राजन्यशोवती नारीकामिन्याः सहचारिणी । आयाति सहसैन्येन राजपुत्रेण संयुता
जयन्तो वा महाराज ! कार्त्तिकेयोऽथ वा नु किम् ।
आगच्छति बलोन्मत्तो वाहिनीसहितः किल ॥ २७ ॥

संयतोभवराजेन्द्रसङ्ग्रामःसमुपस्थितः । देवपुत्रेणयुध्यस्वत्यज वा कमलेक्षणाम्

इतो दूरेऽस्ति सैन्यं तद्योजनत्रयमात्रतः । सज्जो भव महीपाल दुन्दुभिघोषयाऽऽशुवै

व्यास उवाच

तेषां तद्वचनंश्रुत्वा राक्षसःक्रोधमूर्च्छितः । राक्षसान्प्रेरयामास सायुधान्सबलान्बहून्
गच्छध्वंराक्षसाःसर्वेसम्मुखाःशस्त्रपाणयः । तानाज्ञाप्यकालकेतुःपप्रच्छप्रणयान्वितः

एकावलीं समीपस्थां विवशां भृशदुःखिताम् ।
कोऽयमायाति तन्वङ्गि ! पिता ते वा परः पुमान् ॥ ३२ ॥

त्वदर्थं सैन्यसंयुक्तो ब्रूहिसत्यं कृशोदरि !। पिताते यदिसम्प्राप्तो नेतुंत्वांविरहातुरः
ज्ञात्वाते पितरंमस्यवसङ्ग्रामं नकरोम्यहम् । आनयित्वागृहेपूजांरत्नैर्वस्त्रैर्हयैःशुभैः

करोमि तस्य चाऽऽतिथ्यं गृहे प्राप्तस्य सर्वथा ।
अन्यश्चेद्यदि सम्प्राप्तस्तं हन्मि निशितैः शरैः ॥ ३५ ॥

आनीतःकिलकालेनमरणायमहात्मना । तस्माद्वदविशालाक्षि!कोऽयमायातिमन्दधीः

अज्ञात्वा मां दुराधर्षं कालरूपं महाबलम् ।

एकावल्युवाच

न जानेऽहं महाभाग ! कोऽयमायाति सत्वरः ॥ ३७ ॥
न मेऽस्ति विदितः कोऽपि स्थितायास्तव बन्धने ।
नाऽयं पिता मे न भ्राता कोऽप्यन्योऽस्ति महाबलः ॥ ३८ ॥
किमर्थमिह चाऽऽयाति नाऽहं वेद विनिश्चयम् ।

दैत्य उवाच

एवं वदन्त्यमी दूता वयस्या ते यशोवती ॥ ३९ ॥

समानीयच तं वीरमागतेति कृतोद्यमा । क गतासामखी कान्ते विदग्धाकार्यनिश्चये

नाऽन्यः कोऽपि ममारातिर्यो मे प्रतिबलो भवेत् ।

व्यास उवाच

एतस्मिन्नन्तरे दूतास्तत्राऽन्ये वै समागताः ॥ ४१ ॥
ते होचुस्त्वरिता भीताः कालकेतुं गृहे स्थितम् ।

किं स्वस्थोऽसि महाराज ! समीपे सैन्यमागतम् ॥ ४२ ॥
निर्गच्छ नगरात्तूर्णं सैन्येन महतावृतः । इतितेषां वचःश्रुत्वा कालकेतुर्महाबलः ॥४३
रथमारुह्य त्वरितोनिर्ययौ स्वपुराद्बहिः । एकवीरोऽपि सहसा हयारूढःप्रतापवान्
आगतस्तत्र कामिन्या विरहेण समाकुलः । युद्धं तयोरभूत्तत्र वृत्रवासवयोरिव ॥
शस्त्रास्त्रैर्बहुधामुक्तैरादीपितदिगन्तरम् । वर्तमाने तदा युद्धे कातराणां भयावहे ॥४६
गदयाताडयामासदैत्यं सिन्धुसुतासुतः । सगतासुः पपातोर्व्यां वज्राहत इवाऽचलः
पलायित्वा गताः सर्वे राक्षसा भयपीडिताः ।
यशोवती ततो गत्वा वेगादेकावलीं तदा ॥ ४८ ॥
उवाच मधुरांवाणींविस्मितांमुदिताभृशम् । एह्यालिनृपपुत्रेणदानवोऽसौनिपातितः
एकवीरेणधीरेणयुद्धंकृत्वासुदारुणम् । स्कन्धावारेऽप्यसौ राजा तिष्ठत्यद्यश्रमातुरः
दर्शनं काङ्क्षमाणस्ते श्रुतरूपगुणस्तव । पश्यत्वं कुटिलापाङ्गि मनोभवसमं नृपम्
कथितान्वं मयापूर्वन्तस्याऽग्रे जाह्नवीतटे । पूर्णानुरागःसञ्जातस्तेनाऽसौविरहातुरः
वाञ्छति त्वांचारुरूपांद्रष्टुं नृपतिनन्दनः । सा तस्या वचनं श्रुत्वा गमनायमनोदधे
लज्जमाना भृशं भीत्या कौमारप्राप्तया तया ।
कथन्तस्य मुखं द्रक्ष्ये कुमारी ह्यवशा भृशम् ॥ ५४ ॥
स मां गृह्णाति कामार्त इति चिन्ताकुला सती ।
यशोवत्या युता तत्र नरयानस्थिता ययौ ॥ ५५ ॥
स्कन्धावारेऽतिमलिना मलिनाम्बरधारिणी ।
तामागतां विशालाक्षीं दृष्ट्वा राजसुतोऽब्रवीत् ॥ ५६ ॥
दर्शनन्देहितन्वङ्गि ! तृषिते नयने मम । कामातुरश्च तम्वीक्ष्य तां च लज्जाभरावृताम्
नीतिशास्त्रशिष्टमार्गज्ञातमुवाचयशोवती । राजपुत्रपिताऽप्यस्यास्त्वामेनांदातुमिच्छति
एषाऽपि त्वद्वशानूनंभवितालङ्गमस्तव । कालम्प्रतीक्ष्यराजेन्द्रनयैनाम्पितुरन्तिकम्
स विवाहविधिं कृत्वा दास्यतीति विनिश्चयः ।
स तस्या वचनं तथ्यं मत्वा सैन्यसमन्वितः ॥ ६० ॥

समेतः कामिनीभ्यान्तु ययौ तत्पितुराश्रमम् ।
राजपुत्रीन्तथाऽऽयातां श्रुत्वा प्रेमसमन्वितः ॥ ६१ ॥
प्रययौसम्मुखस्तूर्णं सचिवैः परिवेष्टितः । बहुभिर्दिवसैर्दृष्टा पुत्री सा मलिनाम्बरा
यशोवत्या तु वृत्तान्तः कथितो विस्तरात्पुनः ।
एकवीरं मिलित्वाऽसौ गृहमानीय चाऽऽदरात् ॥ ६३ ॥
पुण्येऽह्नि कारयामासविवाहंविधिपूर्वकम् । पारिबर्हंततो दत्त्वासम्पूज्यविधिवत्तदा
पुत्रीं विसर्जयामास यशोवत्या समन्विताम् ।
एवं विवाहे सम्वृत्ते रमापुत्रो मुदान्वितः ॥ ६५ ॥
गृहम्प्राप्यबहून्भोगान्बुभुजेप्रियया समम् । बभूव तस्यां पुत्रस्तु कृतवीर्याभिधःकिल
तत्सुतः कार्तवीर्यस्तु वंशोऽयं कथितो मया ॥ ६७ ॥
इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां षष्ठस्कन्धे
एकवीरैकावल्योर्विवाहवर्णनंनामत्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

चतुर्विंशोऽध्यायः

व्यासजनमेजयसम्वादेव्यासेनस्वकीयमोहोपपादनवृत्तान्तवर्णनम्

राजोवाच

भगवंस्त्वन्मुखाम्भोजाच्च्युतं दिव्यकथारसम् ।
न तृप्तिमधिगच्छामि पिबंस्तु सुधया समम् ॥ १ ॥
विचित्रमिदमाख्यानं कथितं भवता मम । हैहयानां समुत्पत्तिर्विस्तराद्विस्मयप्रदा
परं कौतूहलं मेऽत्रयद्विष्णुःकमलापतिः । देवदेवो जगन्नाथः सृष्टिस्थित्यन्तकारकः
सोऽप्यश्वभावमापन्नो भगवान्हरिरच्युतः । परतन्त्रः कथञ्जातः स्वतन्त्रः पुरुषोत्तमः
एतन्मे संशयं ब्रह्मञ्छेत्तुमर्हसि साम्प्रतम् । सर्वज्ञस्त्वं मुनिश्रेष्ठ! ब्रूहिवृत्तान्तमद्भुतम्

व्यास उवाच

शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि सन्देहस्यास्य निर्णयम् । यथाश्रुतं मया पूर्वं नारदान्मुनिसत्तमात्
ब्रह्मणो मानसः पुत्रो नारदो नाम तापसः । सर्वज्ञः सर्वगः शान्तः सर्वलोकप्रियः कविः
स चैकदा मुनिश्रेष्ठो विचरन्पृथिवीमिमाम् । वादयन्महतीं वीणां स्वरतानसमन्विताम्
बृहद्रथन्तरादीनां साम्नां भेदाननेकशः । गायन्नायत्रममृतं सम्प्राप्तोऽथ ममाऽऽश्रमम्
शम्याप्रासं महातीर्थं सरस्वत्याः सुपावनम् । निवासं मुनिमुख्यानां शर्मदं ज्ञानदन्तथा
तमागतमहं प्रेक्ष्य ब्रह्मपुत्रं महाद्युतिम् । अभ्युत्थानादिकं सर्वं कृतवानर्चनादिकम् ॥

अर्घ्यपाद्यविधिं कृत्वा तस्याऽऽसनस्थितस्य च ।
उपविष्टः समीपेऽहं मुनेरमिततेजसः ॥ १२ ॥

दृष्ट्वा विश्रमिणं शान्तं नारदं ज्ञानपारदम् । तमपृच्छमहं राजन्यत्पृष्टोऽहं त्वयाऽधुना

असारेऽस्मिंस्तु संसारे प्राणिनां किं सुखं मुने ! ।
न पश्यामि विनिश्चित्य कदाचित्कुत्रचित्कचित् ॥ १४ ॥

द्वीपे जातो जनन्याऽहं संत्यक्तस्तत्क्षणादपि । अनाश्रयो वने वृद्धिम्प्राप्तः कर्मानुसारतः
तपस्तप्तं मया चोग्रं पर्वते बहुवार्षिकम् । पुत्रकामेन देवर्षे शङ्करः समुपासितः ॥१६॥

ततो मया शुकः प्राप्तः पुत्रो ज्ञानवताम्वरः ।
पाठितस्तु मया सम्यग्वेदानां सार आदितः ॥ १७ ॥
स त्यक्त्वा मां गतः क्वाऽपि रुदन्तं विरहातुरम् ।
लोकाल्लोकान्तरं साधो ! वचनात्तव बोधितः ॥ १८ ॥

ततोऽहं पुत्रसन्तप्तस्त्यक्त्वा मेरुं महागिरिम् । मातरं मनसा कृत्वा सम्प्राप्तः कुरुजाङ्गलम्
पुत्रस्नेहादतितरां कृशाङ्गः शोकसंयुतः । जानन्मिथ्येति संसारं मायापाशनियन्त्रितः

ततो राज्ञावृतां ज्ञात्वा मातरं वासवीं शुभाम् ।
स्थितोऽत्रैवाऽऽश्रमं कृत्वा सरस्वत्यास्तटे शुभे ॥ २१ ॥

शन्तनुः स्वर्गतिम्प्राप्तो विधुरा जननी स्थिता । पुत्रद्वययुता साध्वी भीष्मेण प्रतिपालिता
चित्राङ्गदः कृतो राजा गङ्गापुत्रेण धीमता । कालेन सोऽपि मे भ्राता मृतः कामसमद्युतिः

ततः सत्यवतीमाता निमग्ना शोकसागरे । चित्राङ्गदं मृतं पुत्रं रुरोद भृशमातुरा ॥

सम्प्राप्तोऽहं महाभाग! ज्ञात्वा तां दुःखितां सतीम् ।

आश्वासिता मयाऽत्यर्थं भीष्मेण च महात्मना ॥ २५ ॥

विचित्रवीर्यस्त्वपरो वीर्यवान्पृथिवीपतिः ।

कृतो भीष्मेण भ्राता वै स्वीराज्यविमुखेन ह ॥ २६ ॥

काशीराजसुते रम्ये विजित्य पृथिवीपतीन् ।

भीष्मेणाऽऽनीय स्वबलात्कन्यके द्वे समर्पिते ॥ २७ ॥

सत्यवत्यै शुभेकालेविवाहःपरिकल्पितः । भ्रातुर्विचित्रवीर्यस्यतदाऽहंसुखितोऽभवम्

पुनः सोऽपि मृतो भ्राता यक्ष्मणा पीडितो भृशम् ।

अनपत्यो युवा धन्वी माता मे दुःखिताऽभवत् ॥ २६ ॥

काशिराजसुते द्वे तु मृतं दृष्ट्वा पतिं तदा । पतिव्रताधर्मपरे भगिन्यौ सम्बभूवतुः ॥

ते ऊचतुः सतीं श्वश्रूं रुदतींभृशदुःखिताम् । पतिनासहगामिन्यौभविष्यावोहुताशने

पुत्रेण सह ते श्वश्रु! स्वर्गे गत्वाऽथ नन्दने । सुखेन विहरिष्यावः पतिनासह संयुते

निवारिते तदा मात्रा वध्वौ तस्मान्महोद्यमात् ।

स्नेहभावं समाश्रित्य भीष्मस्य वचनात्तदा ॥ ३३ ॥

गाङ्गेयेन च मात्रा मेसम्मन्त्र्य चपरस्परम् । कृत्वौर्ध्वदेहिकंसर्वंसंस्मृतोऽहं गजाह्वये

स्मृतमात्रस्तु मात्रा वै ज्ञात्वा भावं मनोगतम् ।

तरसैवाऽऽगतश्चाहं नगरं नागसाह्वयम् ॥ ३५ ॥

प्रणम्यमातरं मूर्ध्ना संस्थितोऽथकृताञ्जलिः । तामब्रुवंसुतमाङ्गीं पुत्रशोकेनकर्शिताम्

मातस्त्वया किमाहूतो मनसाऽहं तपस्विनि !।

आज्ञापय महत्कार्ये दासोऽस्मि करवाणि किम् ॥ ३७ ॥

त्वम्मे तीर्थपरं मातर्देवश्च प्रथितः परः । आगतश्चिन्तितश्चाऽत्रब्रूहिकृत्यं तव प्रियम्

व्यास उवाच

इत्युक्त्वाऽहंस्थितस्तत्रमातुरग्रे यदामुने !। तदासामामुवाचेदंपश्यन्तीभीष्ममन्तिके

पुत्र ! तेऽद्य मृतो भ्राता पीडितो राजयक्ष्मणा ।
तेनाऽहं दुःखिता जाता वंशच्छेदभयादिह ॥ ४० ॥
तस्मात्त्वमद्यमेधाविन्मयाऽऽहूतःसमाधिना । गाङ्गेयस्यमतेनाऽत्र पाराशर्यार्थसिद्धये
कुलंस्थापय नष्टंत्वं शन्तनोर्नामकारणात् । रक्षमां दुःखतःकृष्णवंशच्छेदोद्भवाद्द्रुतम्
काशिराजसुते भार्ये भ्रातुस्तव यवीयसः । साध्वोर्विचित्रवीर्यस्य रूपयौवनभूषिते
ताभ्यां सङ्गम्य मेधाविन्पुत्रोत्पादनकं कुरु ।
रक्षस्व भारतं वंशं नाऽत्र दोषोऽस्ति कर्हिचित् ॥ ४४ ॥

व्यास उवाच

इतिमातुर्वचःश्रुत्वाजातश्चिन्तातुरोह्ययम् । लज्जयाऽऽकुलचित्तस्तामब्रुवंविनयानतः
मातः पापाधिकं कर्म परदाराभिमर्शनम् । ज्ञात्वा धर्मपथं सम्यक्करोमि कथमादरात्
तथा यवीयसोभ्रातुर्वधूः कन्या प्रकीर्तिता ।
व्यभिचारं कथं कुर्यामधीत्य निगमानहम् ॥ ४७ ॥
अन्यायेन न कर्तव्यं सर्वथाकुलरक्षणम् । न तरन्ति हि संसारात्पितरः पापकारिणः
लोकानामुपदेष्टा यः पुराणानांप्रवर्त्तकः । स कथंकुत्सितं कर्मज्ञात्वा कुर्यान्महाद्भुतम्
पुनरुक्तो ह्यहं मात्रा रुदत्या भृशमन्तिके । पुत्रशोकातितप्तया वंशरक्षणकाम्यया ॥
पाराशर्य! न ते दोषो वचनान्मम पुत्रक !। गुरूणां वचनं तथ्यं सदोषमपि मानवैः ॥
कर्तव्यमविचार्यैव शिष्टाचारप्रमाणतः । वचनं कुरु मे पुत्र! न ते दोषोऽस्ति मानद!
पुत्रस्य जननं कृत्वा सुखिनीं कुरु मातरम् ।
विशेषेण तु सन्तप्तां मग्नां शोकार्णवे सुत !॥ ५३ ॥
इति तां ब्रुवतीं श्रुत्वा तदा सुरनदीसुतः । मामुवाच विशेषज्ञः सूक्ष्मधर्मस्य निर्णये
द्वैपायन! विचारोऽत्र न कर्तव्यस्त्वयाऽनघ । मातुर्वचनमादाय विहरस्वयथासुखम्

व्यास उवाच

इति तस्य वचः श्रुत्वा मातुश्च प्रार्थनं तथा ।
निःशङ्कोऽहं तदा जातः कार्ये तस्मिञ्जुगुप्सिते ॥ ५६ ॥

अम्बिकायांप्रवृत्तोऽहमृतुमत्यांमुनेनिशि । मयितस्मिनसायांतुजपसोकुत्सितेभृशम्
शप्ता मया सा सुश्रोणी पलङ्के प्रथमेतदा । अन्धस्तेभविता पुत्रोयतो नेत्रे निमीलिते
द्वितीयेऽह्नि मुनिश्रेष्ठ! पृष्टो मात्रा रहः पुनः । भविष्यतिसुतःपुत्र काशिराजसुतोदरे
मयोक्ता जननी तत्र व्रीडानम्रमुखेन ह । विनेत्रो भविता पुत्रो मातः शापान्ममैव हि
तया निर्भर्त्सितस्तत्र कठोरवचसा मुने !! कथंपुत्रत्वयाशप्तापुत्रस्तेऽन्धो भविष्यति

इतिश्रीदेवीभागवतेमहापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यांसंहितायांषष्ठस्कन्धे-
अम्बिकायांनियोगात्पुत्रोत्पादनायगर्भधारणवर्णनंनामचतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

पञ्चविंशोऽध्यायः

धृतराष्ट्रपाण्डुविदुराणांसमुत्पत्तिवर्णनम्

व्यास उवाच

वासवी चकिताजाता श्रुत्वामे वाक्यमीदृशम् । दाशेयीमामुवाचेदंपुत्रार्थे भृशमातुरा
अम्बालिकावरूर्धन्याकाशिराजसुतासुत । भार्याविचित्रवीर्यस्य विधवाशोकसंयुता
सर्वलक्षणसम्पन्ना रूपयौवनशालिनी । तस्यांजनय सङ्गं त्वं कृत्वापुत्रं सुसम्मतम्
नान्धो राजाऽधिकारी स्यात्तस्मात्पुत्रं मनोहरम् ।
उत्पादय राजपुत्र्यां वचनान्मम मानद !॥ ४ ॥

इत्युक्तोऽहं तदा मात्रा स्थितस्तत्र गजाह्वये । यावदृतुमती जाता काशिराजसुता मुने
एकान्ते शयनागारेप्राप्ता सा मम सन्निधौ । लज्जमानासुकेशान्तास्वश्वश्रूवचनात्तदा
दृष्ट्वा मां जटिलंदान्तं तापसंरसवर्जितम् । सा स्वेदवदनाजाता पाण्डुराविमनाभृशम्
कुपितोऽहंतदादृष्ट्वाकामिनींनिशिसङ्गताम् । वेपमानांस्थितापार्श्वे शप्तवं तामहंरुषा
दृष्ट्वा मां यदि गर्वेण पाण्डुवर्णा समावृता । अतस्ते तनयःपाण्डुर्भविष्यति सुमध्यमे
इत्युक्त्वा निशि तत्रैव स्थितोबालिकया युतः ।

भुक्त्वा तां निशि निर्यातः स्थानमापृच्छय मातरम् ॥ १० ॥
ततस्ताभ्यां सुतौ काले प्रसूतावन्धपाण्डुरौ । धृतराष्ट्रश्चपाण्डुश्च प्रथितौ सम्बभूवतुः
मातामे विमनाजातातादृशौवीक्ष्यतौसुतौ । ततःसम्वत्सरस्यान्तेमामाहूयतदाब्रवीत्
द्वैपायनसुतौ जातौ राज्ययोग्यौ न तादृशौ । अन्यं मनोहरं पुत्रं समुत्पादय मेप्रियम्
तथेति सा मया प्रोक्ता मुदिता जननी तदा । अम्बिकांप्रार्थयामाससुतार्थेकालआगते
पुत्रि! व्यासं समालिङ्ग्यपुत्रमुत्पादयाऽद्भुतम् । कुरु वंशस्यकर्तारंराज्ययोग्यंवरानने
वधूर्लज्जान्विता किञ्चिन्नोवाच वचनं तदा । गतोऽहं शयनागारे मातुस्तद्वचनान्निशि
दासी विचित्रवीर्यस्य रूपयौवनसंयुता । प्रेषिताऽम्बिकयात्वत्रविचित्राभरणाम्बरा
चन्दनारक्तदेहा सा पुष्पमालाविभूषिता । आयाता हावसंयुक्ता सुकेशी हंसगामिनी
पर्यङ्केमां समावेश्य संस्थिता प्रेमसंयुता । प्रसन्नोऽहं तदा तस्याविलासेनाऽभवंमुने
रात्रौ संक्रीडितं प्रेम्णा तया सह मया भृशम् । वरो दत्तः पुनस्तस्य प्रसन्नेनतुनारद
सुभगे! भविता पुत्रः सर्वलक्षणसंयुतः । सुरूपः सर्वधर्मज्ञः सत्यवादी शमे रतः ॥२१
स तदा विदुरो जातस्त्रयःपुत्रा मयाऽभवन् । मया वृद्धिंगतासाधो ! परक्षेत्रोद्भवे मम
विस्तृतः शुकसम्बन्धी विरहः शोककारणम् ।
दृष्ट्वा त्रीन्स्वसुतान्कामं वीर्यवान्वीर्यसम्मतान् ॥ २३ ॥
मायाबलवती ब्रह्मन्दुस्त्यजा ह्यकृतात्मभिः । अरूपाचनिरालम्बाज्ञानिनामपिमोहिनी
मातरि स्नेहसम्बद्धं तथा पुत्रेषु सम्भृतम् । न मेचित्तम्वने शान्तिमगान्मुनिवरोत्तम
दोलारूढं मनो जातं कदाचिद्धस्तिनापुरे । पुनः सरस्वतीतीरे नचैकत्र व्यवस्थितिः
कदाचिच्चिन्तयञ्ज्ञानं मानसे प्रतिभाति वै ।
केऽमी पुत्राः क्व मोहोऽयं न श्राद्धार्हा मृतस्य मे ॥ २७ ॥
व्यभिचारोद्भवाः किं मे सुखदाः स्युः सुताः किल ।
माया बलवती मोहं वितनोति हि मानसे ॥ २८ ॥
जानन्मोहान्धकूपेऽस्मिन्पतितोऽहंमृषा मुने । इत्यकुर्वंरहस्तापंकदाचित्सुसमाहितः
राज्यं प्राप ततः पाण्डुर्बलवान्भीष्मसम्मतः ।

तदा मम मनो जातं प्रसन्नं सुतकारणात् ॥ ३० ॥

कुन्ती माद्री सुरूपे द्वे भार्ये तस्य बभूवतुः । शूरसेनसुता कुन्ती मद्रराजसुताऽपरा स शापं द्विजतः प्राप्यकामिनीद्वयसंयुतः । पाण्डुर्निर्वेदमापन्नस्त्यक्त्वा राज्यंवनंगतः

तदा मामाविशच्छोकः श्रुत्वा पुत्रं वने स्थितम् ।
गतोऽहं तत्र यत्राऽसौ भार्याभ्यां सह संस्थितः ॥ ३३ ॥

तमाश्वास्य वने पाण्डुम्पुनः प्राप्तो गजाह्वये । धृतराष्ट्रं समाभाष्य ह्यगमं ब्रह्मजातटे क्षेत्रजान्पञ्चपुत्रान्ससमुत्पाद्यवनाश्रमे । धर्मतो वायुतः शक्राद‌श्विभ्यां पञ्चपाण्डवान् युधिष्ठिरोभीमसेनस्तथैवाऽर्जुनइत्यपि । कुन्तीपुत्राःसमाख्याताधर्माऽनिलसुरेशजाः नकुलः सहदेवश्च मद्रराजसुतासुतौ । कदाचित्स रहो माद्रीं समालिङ्ग्य महीपतिः॥

मृतः शापात्तु मुनिभिः संस्कृतो हुतभुङ्मुखे ।
माद्री तत्र सती भूत्वा प्रविष्टा पतिना सह ॥ ३८ ॥

स्थिता पुत्रयुता कुन्ती ज्वलिते जातवेदसि । मुनयः सुतसंयुक्तां शूरसेनसुतांतदा दुःखितां पतिहीनां तामानिन्युर्गजसाह्वये । समर्पिताऽथ भीष्माय विदुरायमहात्मने

श्रुत्वाऽहं सुखदुःखाभ्यां पीडितस्तु परात्मभिः ।
भीष्मेण पालिताः पुत्रा पाण्डोरिति विचिन्त्यते ॥ ४१ ॥

विदुरेण तथा प्रीत्या धृतराष्ट्रेणधीमता । दुर्योधनादयस्तस्य पुत्रा ये क्रूरमानसाः एकत्रस्थितिमापन्नाविरोधंचक्रुरद्भुतम् । द्रोणाचार्यस्तु सम्प्राप्तस्तत्रभीष्मेणमानितः अध्यापनायपुत्राणांपुरेतस्मिन्निवासितः । कर्णःकुन्त्यापरित्यक्तोजातमात्रःशिशुर्यदा सूतेन पालितोऽनद्यां प्राप्तश्चाधिरथेन ह । दुर्योधनप्रियश्चाऽभूत्कर्णः शूरतमस्तथा परस्परंविरोधोऽभूद्भीमदुर्योधनादिषु । धृतराष्ट्रस्तु सञ्चिन्त्य क्लेशं पुत्रेषु तेषु च निवासं कल्पयामास पाण्डवानां महात्मनाम् । विरोधशमनायैव नगरे वारणावते दुर्योधनेनतत्रैव द्रोहाज्जतुगृहाणि वै । कारितानि च दिव्यानि प्रेष्य मित्रम्पुरोचनम्

श्रुत्वा जतुगृहे दग्धान्पाण्डवान्पृथया च तान् ।
पौत्रभावान्मुनिश्रेष्ठ ! मग्नोऽहं व्यसनार्णवे ॥ ४६ ॥

शोकातुरो भृशं शून्ये वने पश्यन्नहर्निशम् ।
दृष्ट्वा मयैकचक्रायां पाण्डवा दुःखकर्शिताः ॥ ५० ॥

ततस्तुष्टमनाश्चाऽहं जातः पार्थान्विलोक्य च । प्रेरितास्ते मया तूर्णंद्रुपदस्यपुरम्प्रति
ते गतास्तत्र दुःखार्ताविप्रवेषधराःकृशाः । मृगचर्मपरीधाना सभायांसंस्थितास्तदा
कृत्वापराक्रमंजिष्णुःस्जित्वाद्रुपदात्मजाम् । चक्रुर्विवाहंमानिन्यापञ्चैवमातृवाक्यतः
दृष्ट्वा विवाहं तेषान्तु मुदितोऽहं भृशं तदा । ततोनागाह्वये प्राप्ताःपाञ्चालीसहितामुने!
निवासं खाण्डवप्रस्थं धृतराष्ट्रे ण कल्पितम् । पाण्डवानां द्विजश्रेष्ठ वसुदेवसुतेन वै

तर्पितः पावकस्तत्र विष्णुना सह जिष्णुना ।
राजसूयः कृतो यज्ञस्तदाऽहं मुदितोऽभवम् ॥ ५६ ॥

दृष्ट्वाऽथ विभवं तेषां तथामयकृतांसभाम् । दुर्योधनोऽतिसन्तप्तोदुरोदरमथाऽकरोत्
दुर्द्यूतवेदी शकुनिरनक्षज्ञश्च धर्मजः । हृतं राज्यं धनं सर्वं याज्ञसेनी च क्लेशिता ॥
वनेद्वादशवर्षाणिपाण्डवास्तेर्विवासिताः । पाञ्चालीसहितास्तेनदुःखंमेजनितम्भृशम्
एवं नारद! संसारे सुखदुःखात्मके भृशम् । निमग्नोऽहं भ्रमेणैव जानन्धर्मं सनातनम्

कोऽहं कस्य सुतास्तेऽमी का माता किं सुखं पुनः ।
येन मे हृदयं मोहाद् भ्रमतीति दिवानिशम् ॥ ६१ ॥
किं करोमि क्व गच्छामि सन्तोषो नाऽधिगच्छति ।
दोलारूढं मनो मेऽत्र चञ्चलं न स्थिरम्भवेत् ॥ ६२ ॥

सर्वज्ञोऽसिमुनिश्रेष्ठ! सन्देहं मे निवर्तय । तथाकुरुयथाऽहं स्यांसुखितोविगतज्वरः

इति श्रीदेवीभागवतेमहापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यांसंहितायां षष्ठस्कन्धे
नारदाय व्यासमोहवर्णनं नाम
पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

षड्विंशोऽध्यायः

व्यासनारदसम्वादेनारदेनस्वकीयपुरातनमोहकारणवर्णनम्

व्यास उवाच

इतिमेवचनंश्रुत्वा नारदः परमार्थवित् । मामाह च स्मितं कृत्वा पृच्छन्तं मोहकारणम्

नारद उवाच

पाराशर्य! पुराणज्ञ! किं पृच्छसि सुनिश्चयम् ।
संसारेऽस्मिन्विना मोहं कोऽपि नास्ति शरीरवान् ॥ २ ॥

ब्रह्माविष्णुस्तथारुद्रःसनकःकपिलस्तथा । माययावेष्टिताःसर्वे भ्रमन्तिभववर्त्मनि
ज्ञानिनंमांजनोवेत्तिभ्रान्तोऽहंसर्वलोकवत् । शृणु मे पूर्ववृत्तान्तंप्रब्रवीमिसुनिश्चितम्
दुःखं मया यथा पूर्वमनुभूतम्महत्तरम् । स्वकृतेन च मोहेन भार्यार्थे वासवीसुत! ॥५
एकदा पर्वतश्चाऽहं देवलोकान्महीतलम् । प्राप्तौ विलोकनार्थाय भारतं खण्डमुत्तमम्

भ्रमन्तौ सहितावुर्व्यां पश्यन्तौ तीर्थमण्डलम् ।
पावनानि च स्थानानि मुनीनामाश्रमाञ्छुभान् ॥ ७ ॥

शपथं देवलोकात्तु कृत्वा पूर्वं परस्परम् । चलितौ समयं चेमं सम्मन्त्र्य निश्चयेन वै
चित्तवृत्तिस्तुवक्तव्यायादृशीयस्यजायते । शुभावाऽप्यशुभावाऽपिन गोप्तव्याकदाचन

भोजनेच्छा धनेच्छाऽपि रतीच्छा वा भवेदपि ।
यादृशी यस्य चित्ते तु कथनीया परस्परम् ॥ १० ॥
इत्यावां समयं कृत्वा स्वर्गाद्भूलोकमागतौ ।
एकचित्तौ मुनीभूतौ विचरन्तौ यथेच्छया ॥ ११ ॥

एवं भ्रमन्तौ लोकेऽस्मिन्ग्रीष्मान्तेसमुपागते । सञ्जयस्यपुरं रम्यंसम्प्राप्तौनृपतेःपुनः

तेन सम्पूजितौ भक्त्या राज्ञा सम्मानितौ भृशम् ।
स्थितौ तत्र गृहे तस्य चातुर्मास्यं महात्मनः ॥ १३ ॥

वार्षिकाश्चतुरो मासा दुर्गमाःपथिसर्वदा । तस्मादेकत्रविबुधैःस्थातव्यमितिनिश्चयः
अष्टौमासांस्तुप्रचसेत्सदाकार्यवशाद्द्विजः । वर्षाकालेनगन्तव्यं प्रवासेसुखमिच्छता
इति सञ्चिन्त्य मनसा सञ्जयस्य गृहे तदा ।
संस्थितौ मानितौ राज्ञा कृतातिथ्यौ महात्मना ॥ १६ ॥
दमयन्तीति विख्यातातस्य पुत्री महीपतेः । आज्ञप्ता परिचर्यार्थंसुदती सुन्दरीभृशम्
विवेकज्ञा विशालाक्षी राजपुत्रीकृतोद्यमा । सेवनं सर्वकाले च व्यदधादुभयोरपि ॥
स्नानार्थमुदकं काले भोजनम्मृष्टमायतम् । मुखवासं तथा चान्यं यदिष्टं तद्ददातिसा
मनोऽभिलषितान्कामानुभयोरपि कन्यका ।
व्यजनासनशय्यादीन्वाञ्छितानप्यकल्पयत् ॥ २० ॥
एवं संसेव्यमानौ तु स्थितौ राज्ञो गृहे किल । वेदाध्ययनसंशीलावावां वेदव्रते रतौ
अहं वीणाकरेकृत्वासाधयित्वास्वरोत्तमम् । गायत्रं सामसुस्वादमगांकर्णरसायनम्
राजपुत्री तु तच्छ्रुत्वा सामगानम्मनोहरम् । बभूवमयिरागाढ्या प्रीतियुक्ता विशारदा
दिनेदिनेऽनुरागोऽस्यामयिवृद्धिङ्गतःपरः । ममापिप्रीतियुक्तायां मनोजातंस्पृहापरम्
मम तस्य च सा कन्या भोजनादिषु कर्हिचित् ।
अकरोदन्तरं किञ्चित्सेवाभेदं रसान्विता ॥ २५ ॥
स्नानायोष्णजलंमह्यंपर्वताय च शीतलम् । दधिमह्यन्तथातक्रं पर्वतायाऽभ्यकल्पयत्
शयनास्तरणं शुभ्रं मदर्थे पर्यकल्पयत् । प्रीत्या परमया यद्वत्पर्वताय न तादृशम् ॥
विलोकयति मां प्रेम्णा सुन्दरी न च पर्वतम् ।
ततोऽस्यास्तादृशं दृष्ट्वा पर्वतः प्रेमकारणम् ॥ २८ ॥
मनसा चिन्तयामासकिमेतदितिविस्मितः । पप्रच्छ मां रहः सम्यग्ब्रूहिनारदसर्वथा
राजपुत्री त्वयिप्रेमकरोतिमुदिताभृशम् । ददातिभक्ष्यभोज्यानिस्नेहयुक्ता समन्ततः
न यथा मयिभेदोऽत्रसन्देहंजनयत्यसौ । मन्यते त्वां पतिं कर्तुं सर्वथासञ्जयात्मजा
तथाऽपि तादृशम्भावं जानामि लक्षणैरहम् । नेत्रवक्त्रविकारैश्च ज्ञायतेप्रीतिकारणम्
सत्यम्वदन तेमिथ्यावक्तव्यंवचनम्मुने! ।स्वर्गतःसमयं कृत्वा चलितौ संस्मराऽधुना

नारद उवाच

पृष्टोऽहं पर्वतेनेदं कारणं तु हठात्तदा । तदाऽहं ह्रीसमाक्रान्तः सञ्जातश्चाश्रुवन्मुनः ॥
पर्वतैषा विशालाक्षी पतिं मा कर्तुमुद्यता । ममापिमानसोभावो वर्ततेऽस्यांविशेषतः
तच्छ्रुत्वा वचनं सत्यंपर्वतःकोपसंयुतः । मामुवाचमुनिर्वाक्यं धिग्धिगिति पुनःपुनः

प्रथमं शपथान्कृत्वा वञ्चितोऽहं त्वया यतः ।
भव वानरवक्त्रस्त्वं शापान्न मम मित्रध्रुक् ॥ ३७ ॥

इति शप्तस्तु तेनाऽहं कुपितेन महात्मना । सहसा ह्यभवं क्रूरः शाखामृगमुखस्तदा ॥

मयाऽपि न कृता तस्मिन्क्षमा तु भगिनीसुते ।
सोऽपि शप्तोऽतिकोपाद्वै मा स्वर्गे ते गतिः किल ॥ ३९ ॥
स्वल्पेऽपराधे यस्मान्मां शप्तवानसि पर्वत!।
तस्मात्तवाऽपि मन्दात्मन्मृत्युलोके स्थितिः किल ॥ ४० ॥

पर्वतस्तु गतस्तस्मान्नगराद्विमनाभृशम् । अहं वानरवक्त्रस्तु सञ्जातस्तत्क्षणादपि
दृष्ट्वा मां वानरं क्रूरं राजपुत्री विलक्षणा । विमनाऽतीव सञ्जातावीणाश्रवणलालसा

व्यास उवाच

ततः किमभवद्ब्रह्मन्कथं शापोनिवर्तितः । मानुषास्यःपुनर्जातोभवान्ब्रूहि यथाविधि
पर्वतः क्व गतो भूयः सङ्गमो युवयोरभूत् । कदा कुत्र कथं सर्वं विस्तरेण वदस्व ॥

नारद उवाच

किं ब्रवीमि महाभाग! मायायाश्चरितं महत् । दुःखितोऽहंभृशं तत्र पर्वते रुषिते गते
पुनः सेवापराऽत्यर्थं राजपुत्री ममाऽभवत् । गतेऽथ पर्वते कामं स्थितस्तत्रैवसद्मनि

अहं दुःखान्वितो दीनस्तथा वानरवन्मुखः ।
विशेषेण तु चिन्तार्तः किं मे स्यादिति चिन्तयन् ॥ ४७ ॥

सञ्जयोऽथसुतांदृष्ट्वा किञ्चित्प्रकटयौवनाम् । विवाहार्थे राजसुतामपृच्छत्सचिवन्तदा
विवाहकालः सम्प्राप्तः सुतायाःमम साम्प्रतम् । योग्यं वरं मम ब्रूहि राजपुत्रंसुसंमतम्
रूपौदार्यगुणैर्युक्तं शूरं सुकुलसंभवम् । विवाहं विधिवत्पुत्र्याःकरोमिकिलसाम्प्रतम्

प्रधानस्त्वब्रवीद्राजन् राजपुत्राह्यनेकशः । वर्तन्तेभुविपुत्र्यास्तेयोग्याःसर्वगुणान्विताः
यस्मिन्रुचिस्ते राजेन्द्र ! तमाहूय नृपात्मजम् ।
देहि कन्यां धनं भूरि हस्त्यश्वरथसंयुतम् ॥ ५२ ॥

नारद उवाच

पितुश्चिकीर्षितं ज्ञात्वा दमयन्तीतदानृपम् । धात्र्यामुखेनवाक्यज्ञातमुवाचरहःस्थितम्

धात्र्युवाच

दमयन्तीमहाराजपुत्री ते मामथाब्रवीत् । पितरं ब्रूहि धात्रेयि! वचनान्मेसुखान्वितम्
मया वृतोऽयं मेधावी नारदो महतीयुतः । नारदोहितयाकामंनाऽन्यःकोऽपिप्रियोमम
कुरुमे वाञ्छितं तात! विवाहं मुनिना सह । नान्यं वरिष्ये धर्मज्ञ! नारदं तु पतिंविना
मग्नाऽहं नादसिन्धौ वै नक्रहीने रसात्मके । अक्षारे सुखसम्पूर्णे तिमिङ्गिलविवर्जिते

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे अष्टादशसाहस्र्यां संहितायां षष्ठस्कन्धे
दमयन्तीविवाहप्रस्तावावर्णनं नाम षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

— —

सप्तविंशोऽध्यायः

नारदेनसहदमयन्तीविवाहवर्णनं पुनर्नारदपर्वतयोः शापनिवृत्तिश्च

नारद उवाच

तत्पुत्र्या वचनं श्रुत्वा राजा धात्रीमुखात्ततः ।
भार्याम्प्रोवाच कैकेयीं समीपस्थां सुलोचनाम् ॥ १ ॥

नारद उवाच

यदुक्तं वचनं कान्ते! धात्र्या तत्तुत्वयाश्रुतम् । वृतोऽयंनारदःकामंमुनिर्वानरवक्त्रभाक्
किमिदं चिन्तितं पुत्र्या बुद्धिहीनंविचेष्टितम् । कथमस्मैमयादेयाकन्याहरिमुखायसा

काऽसौ भिक्षुः कुरूपः क्व दमयन्तीममाऽऽत्मजा । विपरीतमिदं कार्यं न विधेयं कदाचन
तामेकान्तेसुकेशान्ते! निवारयहठात्सुताम् । युक्त्या मुनिरतां मुग्धांशास्त्रवृद्धानुसारया
इति भर्तृवचः श्रुत्वा जननीतामथाऽब्रवीत् । क्वतेरूपंमुनिः क्वासौवानरास्योऽघनःपुनः
कथं मोहमवाप्ताऽसिभिक्षुके चतुराः पुनः । लताकोमलदेहा त्वं भस्मरूक्षतनुस्त्वयम्
वार्ता वानरवक्त्रेणकथंयुक्तातवाऽनघे । काप्रीतिः कुत्सितेपुंसिभविष्यतिशुचिस्मिते
वरस्ते राजपुत्रोऽस्तुमा कुरुत्वंवृथाहठम् । पितातेदुःखमाप्नोतिश्रुत्वाधात्रीमुखाद्वचः
लग्नां बुबूलवृक्षेण कोमलां मालतीलताम् । दृष्ट्वा कस्य मनः खेदं चतुरस्य नगच्छति
दासेरकाय ताम्बूलीदलानि कोमलानि कः । ददाति भक्षणार्थायमूर्खोऽपिधरणीतले
वीक्ष्य त्वां करसंलग्नां नारदस्य समीपतः । विवाहे वर्तमाने तु कस्यचेतो नदह्यति
कुमुखेन समं वार्ता न रुचिंजनयत्यतः । आमरणात्तुकथंकालःक्षपितव्यस्त्वयाऽमुना

नारद उवाच

इति मातुर्वचः श्रुत्वा दमयन्ती भृशातुरा । मातरं प्राह तन्वङ्गी मयि सा कृतनिश्चया
किं मुखेन च रूपेणमूर्खस्यचधनेनकिम् । किंराज्येनाविदग्धस्यस्वरसमार्गाविदोऽस्यच

हरिण्योऽपि वने धन्या या नादेन विमोहिताः ।
मातः ! प्राणान्प्रयच्छन्ति धिङ् मूर्खान्मानुषान्भुवि ॥ १६ ॥
नारदो वेत्ति यां विद्यां मातः ! सप्तस्वरात्मिकाम् ।
तृतीयः कोऽपि नो वेद शिवादन्यः पुमान्किल ॥ १७ ॥

मूर्खेण सह सम्वासो मरणं तत्क्षणे क्षणे । रूपवान्धनवांस्त्याज्योगुणहीनोनरःसदा
धिङ् मैत्रीं मूर्खभूपाले वृथागर्वसमन्विते । गुणज्ञे भिक्षुके श्रेष्ठावचनात्सुखदायिनी
स्वरज्ञो ग्रामवित्कामं मूर्छनाज्ञानभेदभाक् । दुर्लभः पुरुषश्चाऽप्रस्वरज्ञो दुर्बलोऽपि वै ॥
यथा नयति कैलासं गङ्गा चैव सरस्वती । तथा नयति कैलासं स्वरज्ञानविशारदः ॥
स्वरमानं तु यो वेद स देवो मानुषोऽपि सन् । सप्तभेदं न यो वेद सपशुःसुरराडपि
मूर्छनातानमार्गं तु श्रुत्वा मोदं न याति यः । स पशुः सर्वथा ज्ञेयोहरिणाःपशवोनहि
वरं विषधरःसर्पः श्रुत्वानादंमनोहरम् । अश्रोत्रोऽपिमुदंयातिधिक्सकर्णांश्चमानवान्

बालोऽपि सुस्वरंगेयंश्रुत्वामुदितमानसः । जायतेकिन्तुयेवृद्धानजानन्तिधिगस्तुतान्
पितामेकिं नजानातिनारदस्यगुणान्बहून् । द्वितीयःसामगोनास्तित्रिषुलोकेषुतत्समः
तस्मादसौ मया नूनं वृतःपूर्वंसमागमात् । पश्चाच्छापवशाज्जातोवानरास्योगुणाकरः
किन्नरा न प्रियाः कस्य भवन्ति तुरगाननाः । गानविद्यासमायुक्ताः किंमुखेनवरेण ह
पितरम्ब्रूहि मे मातर्वृतोऽयं मुनिसत्तमः । तस्मात्त्वमाग्रहं त्यक्त्वादेहितस्मैवमांमुदा

नारद उवाच

इति पुत्र्या वचः श्रुत्वा राज्ञी राज्ञे न्यवेदयत् ।
आग्रहं सुन्दरी ज्ञात्वा सुताया नारदे मुने ॥ ३० ॥

विवाहं कुरु राजेन्द्र! दमयन्त्याः शुभेदिने । मुनिना सचसर्वज्ञोवृतोऽसौमनसाऽनया

नारद उवाच

इति सञ्चोदितोराज्ञ्यासञ्जयःपृथिवीपतिः । चकार विधिवत्सर्वंविधिंवैवाहिकंततः
एवंदारग्रहं कृत्वा वानरास्यः परन्तप !। स्थितस्तत्रैव मनसादह्यमानेन चाऽन्वहम्
यदाऽऽगच्छद्राजसुता सेवार्थं मम सन्निधौ । अभवं दुःखसन्तप्तस्तदाऽहं वानराननः
दमयन्ती तु माम्वीक्ष्य प्रफुल्लवदनाम्बुजा । शोकंवानरवक्त्रन्वाग्न चकार कदाचन

एवं गच्छति काले तु सहसा पर्वतो मुनिः ।
कुर्वंस्तीर्थान्यनेकानि द्रष्टुं मां समुपागतः ॥ ३६ ॥
मयाऽतिमानितः प्रेम्णा पूजितश्च यथाविधि ।
आसीन आसने दिव्ये वीक्ष्य मां दुःखितो ह्यभूत् ॥ ३७ ॥
कृतदारं वानरास्यं दीनं चिन्तातुरम्भृशम् ॥ ३८ ॥

दयावान्मामुवाचेदंपर्वतो मातुलं कृशम् । मया नारद! कोपात्त्वं शप्तोऽसिमुनिसत्तम !

निष्कृतिं तस्य शापस्य करोम्यद्य निशामय ॥ ३९ ॥

भवत्वं चारुवदनो मम पुण्येन नारद !। दृष्ट्वा राजसुतां चित्ते कृपा जाता ममाऽधुना

नारद उवाच

मयाऽपि प्रवणं चित्तं कृत्वा श्रुत्वाऽस्य भाषितम् ।

अनुग्रहः कृतः सद्यस्तस्य शापस्य तत्क्षणात् ॥ ४१ ॥
भागिनेय! तवाऽप्यस्तुगमनं सुरसद्मनि । शापस्याऽनुग्रहःकार्मकृतोऽयं पर्वताऽधुना

नारद उवाच

जातोऽहं चारुवदनो वचनात्तस्यपश्यतः । राजपुत्री तु सन्तुष्टा मातरं प्राह सत्वरम्
मातस्ते सुमुखो जातोजामाता चमहाद्युतिः । वचनात्पर्वतस्याऽद्यमुक्तशापोमुनेरभूत्
तच्छ्रुत्वा वचनंराज्याकथितंतत्रराजनि । ययौ द्रष्टुं मुनिं तत्र सञ्जयःप्रीतिमांस्तदा
धनं समर्पितं राज्ञा सन्तुष्टेन तदा महत् । मह्यञ्च भागिनेयाय पारिबर्हं महात्मना ॥
एतत्ते सर्वमाख्यातं वर्तनं यत्पुरातनम् । मायाया बलमाहात्म्यं ह्यनुभूतं यथा मया
संसारेऽस्मिन्महाभाग ! मायागुणकृतेऽमृते ।
तनुभृत्तु सुखी नास्ति न भूतो न भविष्यति ॥ ४८ ॥
कामक्रोधौ तथा लोभो मत्सरो ममतातथा । अहङ्कारो मदःकेनजिताःसर्वेमहाबलाः
सत्त्वंरजस्तमश्चैव गुणास्त्रय इमे किल । कारणं प्राणिनां देहसम्भवे सर्वथामुने ! ॥
कस्मिंश्चित्समये व्यास ! वनेऽहं विष्णुना सह ।
गच्छन्हास्यविनोदेन स्त्रीभावङ्गमितः क्षणात् ॥ ५१ ॥
राजपत्नीत्वमापन्नो मायाबलविमोहितः । पुत्रा प्रसूता बहवो गेहे तस्य नृपस्य ह

व्यास उवाच

संशयोऽयंमहान्साधो! श्रुत्वातेवचनंकिल । कथंनारीत्वमापन्नस्त्वंमुने!ज्ञानवान्भृशम्
कथं च पुरुषो जातोब्रूहिसर्वमशेषतः । कथं पुत्रास्त्वयाजाताःकस्य राज्ञो गृहेऽन्नसा
एतदाख्याहि चरितं मायाया महदद्भुतम् । मोहितश्च यथा सर्वमिदंस्थावरजङ्गमम् ॥
न तृप्तिमधिगच्छामिशृण्वंस्त्वत्कथामृतम् । सर्वग्रन्थार्थतत्त्वं च सर्वसंशयनाशनम्

इति श्रीदेवीभागवतेमहापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यांसंहितायांषष्ठस्कन्धे
बलान्नारदस्यमायादर्शनस्यासहविवाहवर्णनं नाम
सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

अष्टाविंशोऽध्यायः

नारदेन स्वकीयमोहवर्णने विष्णुलोकगमनं स्वस्यस्त्रीत्वप्राप्तिप्रसङ्गवर्णनम्

नारद उवाच

निशामय मुनिश्रेष्ठ! गदतो मम सत्कथाम् । मायाबलं सुदुर्ज्ञेयं मुनिभिर्योगवित्तमैः॥१
मायया मोहितं सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम् । ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तमजया दुर्विभाव्यया
कदाचित्सत्यलोकाद्वै श्वेतद्वीपे मनोहरे । गतोऽहंदर्शनाकाङ्क्षी हरेरद्भुतकर्मणः ॥
वादयन्महतींवीणां स्वरतानविभूषिताम् । गायत्रंगायमानस्तु सामसप्तस्वरान्वितम्
दृष्टो मया देवदेवश्चक्रपाणिर्गदाधरः । कौस्तुभोद्भासितोरस्को मेघश्यामश्चतुर्भुजः ॥
पीताम्बरपरीधानो मुकुटाङ्गदराजितः । लक्ष्म्या सह विलासिन्याक्रीडमानोमुदायुतः
वीक्ष्य मां कमलादेवीगताऽन्तर्धानमन्तिकात् । सर्वलक्षणसम्पन्ना सर्वभूषणभूषिता
नारीणां प्रवरा कान्ता रूपयौवनगर्विता । सुप्रिया वासुदेवस्य वरचामीकरप्रभा ॥

अन्तर्गृहगतां दृष्ट्वा सिन्धुजां व्यञ्जनान्विताम् ।
मया पृष्टो देवदेवो वनमाली जगत्प्रभुः ॥ ६ ॥

भगवन्देवदेवेश! पद्मनाभ सुरारिहन् । कथं च मा गता दृष्ट्वा मामागच्छन्तमन्तिकात्
नाहंविटो नवा धूर्तस्तापसोऽहंजगद्गुरो !। जितेन्द्रियोजितक्रोधोजितमायोजनार्दन

नारद उवाच

निशम्यवचनंकिञ्चिद्गर्वयुक्तंजनार्दनः । उवाच मां स्मितं कृत्वा वीणावन्मधुरांगिरम्

विष्णुरुवाच

नारदैवम्विधा नीतिर्न स्थातव्यं कदाचन ।
पतिं विनाऽन्यसान्निध्ये कस्यचिद्योषया क्वचित् ॥ १३ ॥

मायासुदुर्जयाविद्वन्योगिभिर्जितमारुतैः । सांख्यविद्भिर्निराहारैस्तापसैश्चजितेन्द्रियैः
देवैश्च मुनिशार्दूल! यत्त्वयोक्तंवचोऽधुना । जितमायोऽस्मि गीतज्ञ! नैवंवाच्यंकदाचन

नाऽहं शिवो न वा ब्रह्मा जेतुं तां प्रभवोऽप्यजाम् ।
मुनयः सनकाद्याश्च कस्त्वं केऽन्ये क्षमा जये ॥ १६ ॥

देवदेहं नृदेहं वा तिर्यग्देहमथापि वा । बिभृयाद्यः शरीरं च स कथं तां जयेदजाम् ॥
त्रियुतस्तांकथंमायांजेतुंशक्तःपुमान्भवेत् । वेदविद्योगविद्वाऽपिसर्वज्ञोविजितेन्द्रियः

कालोऽपि तस्या रूपं हि रूपहीनः स्वरूपकृत् ।
तद्वशे वर्तते देही विद्वान्मूर्खोऽथ मध्यमः ॥ १९ ॥

कालः करोतिधर्मज्ञकदाचिद्विकलम्पुनः । स्वभावात्कर्मतोवाऽपिदुर्ज्ञेयंतस्य चेष्टितम्

नारद उवाच

इत्युक्त्वा विरतो विष्णुरहं विस्मयमानसः । तमब्रवं जगन्नाथं वासुदेवं सनातनम्
रमापते! कथंरूपामायासा कीदृशीपुनः । कियद्बला क्वसंस्थाना कस्याधारावदस्वमे

द्रष्टुकामोऽस्मि तां मायां दर्शयाऽऽशु महीधर !।
ज्ञातुमिच्छामि तां सम्यक्प्रसादं कुरु मापते !॥ २३ ॥

विष्णुरुवाच

त्रिगुणा साऽखिलाधारा सर्वज्ञा सर्वसम्मता ।
अजेयाऽनेकरूपाऽऽच सर्वम्व्याप्यस्थिता जगत् ॥ २४ ॥

दिदृक्षा यदि ते चित्ते नारदारोहणंकुरु । गरुडेमत्समेतोऽद्यगच्छावोऽन्यत्रसाम्प्रतम्
दर्शयिष्यामितेमायांदुर्जयामजितात्मभिः । दृष्ट्वा तां ब्रह्मपुत्र त्वं विषादे मामनःकृथाः
इत्युक्त्वा देवदेवोमांसस्मारविनतासुतम् । स्मृतमात्रस्तु गरुडस्तदागाद्धरिसन्निधौ
आगतं गरुडं वीक्ष्य आरुरोह जनार्दनः । समारोप्य च मां पृष्ठे गमनाय कृतादरः ॥
चलितो विनतापुत्रो वैकुण्ठाद्वायुवेगवान् । प्रेरितो यत्र कृष्णेन गन्तुकामेन काननम्
महावनानि दिव्यानि सरांसि सरितस्तथा । पुरग्रामाकरादींश्च खेटखर्वटगोव्रजान् ॥
मुनीनामाश्रमान्रम्यान्वापीश्च सुमनोहराः । पल्वलानिविशालानि ह्रदान्पङ्कजभूषितान्

मृगाणाञ्च वराहाणां वृन्दान्यप्यवलोक्य च ।
गतावावां कान्यकुब्जसमीपं गरुडाऽऽसनौ ॥ ३२ ॥

तत्र रम्यं सरो दिव्यं दृष्टं पङ्कजमण्डितम् । हंसकारण्डवाकीर्णं चक्रवाकोपशोभितम्
नानावर्णैः प्रफुल्लैश्च पङ्कजैरुपरञ्जितम् । शुचिमिष्टजलं भृङ्गयूथनादविराजितम् ॥३४
मामाह भगवान्वीक्ष्यतडागं परमाद्भुतम् । स्पर्धकं चोदधेः क्षीरं मिष्टं वारि विशेषतः

श्रीभगवानुवाच

पश्य नारद ! गम्भीरं सरः सारसनादितम् । सर्वत्र पङ्कजैश्छन्नं स्वच्छनीरप्रपूरितम्

अत्र स्नात्वा गमिष्यावः कान्यकुब्जं पुरोत्तमम् ।

इत्युक्त्वा गरुडादाऽऽशु मामुत्तार्य व्यतारयत् ॥ ३७ ॥

विहस्य भगवांस्तत्र जग्राह मम तर्जनीम् । स्तुवन्सरोवरं भूयस्तीरं मामनयत्प्रभुः
विश्रम्य तटभागे तु स्निग्धच्छाये मनोहरे । मामुवाच मुने! स्नानं कुरुत्वं विमले जले

पश्चादहं करिष्यामि तडागेऽस्मिन्सुपावने ।

साधूनामिव चेतांसि जलानि निर्मलानि च ॥ ४० ॥

सुरभीणि परागैस्तु पङ्कजानां विशेषतः । इत्युक्तोऽहं भगवतामुक्त्वा वीणां मृगाजिनम्
स्नानाय कृतधीस्तीरे गतः प्रेमसमन्वितः । पादौ प्रक्षाल्य हस्तौ च शिखां बद्ध्वा कुशग्रहम्
कृत्वाऽऽचम्य शुचिस्तोये स्नातवानस्मितज्जले । यदा तस्मिञ्जले रम्ये स्नातोऽहं पश्यतो हरेः
विहाय पौरुषं रूपं प्राप्तः स्त्रीत्वमनुत्तमम् । हरिर्गृहीत्वा वीणां मे तथा कृष्णाजिनं शुभम्
आरुह्य गगनं तूर्णं जगाम स्वगृहं क्षणात् । ततोऽहं स्त्रीत्वमापन्नश्चारुभूषणभूषितः ॥

तत्क्षणान्मनमो जाता पूर्वदेहस्य विस्मृतिः ।

विस्मृतोऽसौ जगन्नाथो महती विस्मृता पुनः ॥ ४६ ॥

संप्राप्य मोहिनीरूपं तडागान्निर्गतो बहिः । अपश्यं नलिनीजुष्टं सरस्तद्विमलोदकम्
किमेतदिति मनसाऽकरवं विस्मयं मुहुः । एवं चिन्तयमानस्य नारीरूपधरस्य मे ॥
सहसा दृक्पथं प्राप्तस्तत्र तालध्वजो नृपः । गजाश्वरथवृन्दैश्च संवृतो रथसंस्थितः
युवा भूषणसंवीतो देहवानिव मन्मथः । वीक्ष्य मां भूपतिस्तत्र दिव्यभूषणभूषिताम्
राकाचन्द्रमुखीं योषां विस्मयं परमं गतः । पप्रच्छ काऽसि कल्याणि कस्य पुत्री सुरस्य वा
मानुषस्य च वा कान्ते! गन्धर्वस्योरगस्य च । एकाकिनी कथं बाला रूपयौवनभूषिता

विवाहिताऽथ कन्या वा सत्यं वद सुलोचने !।
किं पश्यसि सुकेशान्ते तडागेऽस्मिन्सुमध्यमे! ॥ ५३ ॥
चिकीर्षितं पिकालापे!ब्रूहिमन्मथमोहिनि । भुङ्क्ष्वभोगान्मरालाक्षिमयासहकृशोदरि
वाञ्छितान्मनसा नूनं कृत्वा मां पतिमुत्तमम् ॥ ५४ ॥
इतिश्रीदेवीभागवतेमहापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यांसंहितायांषष्ठस्कन्धे
नारदस्यस्त्रीत्वप्राप्त्यातालध्वजेनमेलनवर्णनं नामाऽष्टाविंशोऽध्यायः ॥२८ ॥

ऊनत्रिंशोऽध्यायः

नारदस्यस्त्रीत्वप्राप्त्यनन्तरंतालध्वजाख्यनृपेणसहस्वस्यसंयोगेपुत्राणामुत्पत्ति-
र्दूरदेशाधिपस्यराज्ञस्तैस्साकंयुद्धंतेषाम्मृत्युःपुनर्नारदस्यपुरुषत्वप्राप्तिः

नारद उवाच

इत्युक्तोऽहं तदा तेन राज्ञा तालध्वजेन च । विमृश्य मनसाऽत्यर्थं तमुवाचविशाम्पते
राजन्नाऽहं विजानामि पुत्री कस्येति निश्चयम् ।
पितरौ क्व च मे केन स्थापिता च सरोवरे ॥ २ ॥
किं करोमि क्व गच्छामि कथं मे सुकृतं भवेत् ।
निराधाराऽस्मि राजेन्द्र ! चिन्तयामि चिकीर्षितम् ॥ ३ ॥
दैवमेव परं राजन्नास्त्यत्र पौरुषं मम । धर्मज्ञोऽसि महीपाल! यथेच्छसि तथा कुरु
तवाधीनाऽस्म्यहं भूप! न मे कोऽप्यस्ति पालकः ।
न पिता न च माता च न स्थानं न च बान्धवाः ॥ ५ ॥
इत्युक्तोऽसौ मया राजा बभूवमदनातुरः । मांनिरीक्ष्यविशालाक्षींसेवकानित्युवाचह
नरयानमानयध्वं चतुर्वाह्यं मनोहरम् । आरोहणार्थमस्यास्तुकौशेयाम्बरवेष्टितम् ॥

मृद्वास्तरणसंयुक्तं मुक्ताजालविभूषितम् । चतुरस्रं विशालञ्च सुवर्णरचितं शुभम्

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा भृत्याः सत्वरगामिनः ।

आनिन्युः शिबिकां दिव्यां मदर्थं वस्त्रवेष्टिताम् ॥ ९ ॥

आरूढाऽहं तदा तस्यां तस्य प्रियचिकीर्षया ।

मुदितोऽसौ गृहे नीत्वा मां तदा पृथिवीपतिः ॥ १० ॥

विवाहविधिना राजा शुभे लग्ने शुभे दिने । उपयेमे च मां तत्र हुतभुक्सन्निधौ ततः

तस्याऽहं वल्लभा जाता प्राणेभ्योऽपिगरीयसी । सौभाग्यसुन्दरीत्येवंनामतत्रकृतंमम

रममाणो मया सार्धं सुखमापमहीपतिः । नानाभोगविलासैश्चकामशास्त्रोदितैस्तथा

राजकार्याणि सन्त्यज्य क्रीडासक्तो दिवानिशम् ।

नाऽसौ विवेद गच्छन्तं कालं कामकलारतः ॥ १४ ॥

उद्यानेषु च रम्येषु वापीषु च गृहेषु च । हर्म्येषु वरशैलेषु दीर्घिकासु वरासु च ॥

वारुणीमदमत्तोऽसौ विहरन्काननेशुभे । विसृज्य सर्वकार्याणि मदधीनो बभूव ह

व्यासाहं तेन संसक्ता क्रीडारसवशीकृता । स्मृतवान्पूर्वदेहं न पुम्भावं मुनिजन्म च ॥

ममैवाऽयम्पतिर्योग्याऽहं पत्नीषु प्रिया सती । पट्टराज्ञी विलासज्ञा सफलं जीवितंमम

इति चिन्तयती तस्मिन्प्रेमबद्धा दिवानिशम् ।

क्रीडासक्ता सुखे लुब्धा तं स्थिता वशवर्तिनी ॥ १६ ॥

विस्मृतं ब्रह्मविज्ञानं ब्रह्मज्ञानञ्च शाश्वतम् । धर्मशास्त्रपरिज्ञानं तदासक्तमनास्थिता

एवं विहरतस्तत्र वर्षाणि द्वादशैव तु । गतानि क्षणवत्कामक्रीडासक्तस्य मे मुने! ॥

जाता गर्भवती चाहम्मुदम्प्राप नृपस्तदा । कारयामास विधिवद्गर्भसंस्कारकर्म च ॥

अपृच्छद्दोहदं राजा प्रीणयन्मां पुनः पुनः ।

नाऽब्रवं लज्जमानाऽहं नृपम्प्रीतमना भृशम् ॥ २३ ॥

सम्पूर्णे दशमे मासि पुत्रो जातस्ततो मम । शुभेऽह्नि ग्रहनक्षत्रलग्नताराबलान्विते ॥

बभूव नृपतेर्गेहे पुत्रजन्म महोत्सवः । राजा परमसन्तुष्टो बभूव सुतजन्मतः ॥ २५ ॥

सूतकान्ते सुतं वीक्ष्य राजा मुदमवाप ह । अहंभूमिपतेश्चाऽऽसम्प्रियाभार्या परन्तपः

ततो वर्षद्वयान्ते वै पुनर्गर्भो मया धृतः । द्वितीयस्तु सुतो जातः सर्वलक्षणसंयुतः
सुधन्वेति सुतस्याऽथनामचक्रेनृपस्तदा । वीरकर्मेति ज्येष्ठस्यब्राह्मणैःप्रेरितस्स्वयम्
एवं द्वादश पुत्राश्च प्रसूता भूपसम्मताः । मोहितोऽहंतदा तेषां प्रीत्या पालनलालने

पुनरष्ट सुताः काले काले जाताः स्वरूपिणः ।

गार्हस्थ्यं मे ततः पूर्णं सम्पन्नं सुखसाधनम् ॥ ३० ॥

तेषां दारक्रियाः कालेकृता राज्ञायथोचिताः । स्नुषाभिश्चतथापुत्रैःपरिवारोमहानभूत्

ततः पौत्रादिसम्भूतास्तेऽपि क्रीडारसान्विताः ।

आसन्नानारसोपेता मोहवृद्धिकरा भृशम् ॥ ३२ ॥

कदाचित्सुखमैश्वर्यं कदाचिद्दुःखमद्भुतम् । पुत्रेषु रोगजनितं देहसन्तापकारकम् ॥
परस्परं कदाचित्तु विरोधोऽभूत्सुदारुणः । पुत्राणां वा वधूनाञ्च तेनसन्तापसम्भवः

सुखदुःखात्मके घोरे मिथ्याचारकरे भृशम् ।

सङ्कल्पजनिते क्षुद्रे मग्नोऽहं मुनिसत्तम ॥ ३५ ॥

विस्मृतं पूर्वविज्ञानं शास्त्रज्ञानं तथा गतम् । योषाभावेविलीनोऽहंगृहकार्येषु सर्वथा
अहङ्कारस्तु सञ्जातो भृशं मोहविवर्धकः । एते मेबलिनःपुत्राःस्नुषाःस्वकुलसम्भवाः

एते पुत्राः सुसन्नद्धाः क्रीडन्ति मम वेश्मसु ।

धन्याऽहं खलु नारीणां संसारेऽस्मिन्नहो भृशम् ॥ ३८ ॥

नारदोऽहं भगवता वञ्चितो मायया किल । नकदाचिन्मयाऽप्येवंचिन्तितंमनसाकिल
राजपत्नी शुभाचारा बहुपुत्रा पतिव्रता । धन्याऽहं किलसंसारेकुर्णवंमोहितस्त्वहम्
अथ कश्चिन्नृपः कामं दूरदेशाधिपो महान् । अरातिभावमापन्नः पतिना सह मानद ॥

कृत्वा सैन्यसमायोगं रथैश्च वारणैर्युतम् ।

आजगाम कान्यकुब्जे पुरे युद्धमचिन्तयत् ॥ ४२ ॥

वेष्टितं नगरं तेन राज्ञा सैन्ययुतेन च । मम पुत्राश्च पौत्राश्च निर्गता नगरात्तदा ॥४३
संग्रामस्तुमुलस्तत्र कृतस्तैस्तेन पुत्रकैः । हता रणे सुताः सर्वे वैरिणा कालयोगतः
राजा भग्नस्तु संग्रामादागतः स्वगृहं पुनः । श्रुतं मया मृताः पुत्राःसंग्रामेभृशदारुणे

स हत्वा मे सुतान्पौत्रान्गतो राजा बलान्वितः । क्रन्दमाना ह्यहंतत्रगतासमरमण्डले
दृष्ट्वातान्पतितान्पुत्रान्पौत्रांश्चदुःखपीडिता । विललापाऽहमायुष्मञ्छोकसागरसंप्लुवे
हा पुत्राः क गता मेऽद्यहाहताऽस्मिदुरात्मना । दैवेनातिबलिष्ठेनदुर्वारेणाऽतिपापिना
एतस्मिन्नन्तरे तत्र भगवान्मधुसूदनः । कृत्वारूपंद्विजस्याऽगाद्वृद्धः परमशोभनः ॥
सुवासा वेदवित्कामं मत्समीपंसमागतः । मामुवाचाऽतिदीनांसक्रन्दमानांरणाजिरे

ब्राह्मण उवाच

किं विषीदसि तन्वङ्गि! भ्रमोऽयंप्रकटीकृतः । मोहेनकोकिलालापेपतिपुत्रगृहात्मके
का त्वं कस्याः सुताः केऽमी चिन्तयाऽऽत्मयसि पराम् ।
उत्तिष्ठ रोदनं त्यक्त्वा स्वस्था भव सुलोचने !॥ ५२ ॥
स्नानं च तिलदानं च पुत्राणां कुरु कामिनि ! । परलोकगतानाञ्च मर्यादारक्षणाय वै
कर्तव्यं सर्वथा तीर्थे स्नानं तु न गृहेकचित् । मृतानांकिलबन्धूनांधर्मशास्त्रस्यनिर्णयः

नारद उवाच

इत्युक्त्वा तेन विप्रेण वृद्धेन प्रतिबोधिता । उत्थिताऽहं नृपेणाऽथ युक्ताबन्धुभिरावृता
अग्रतो द्विजरूपेण भगवान्भूतभावनः । चलिताऽहं ततस्तूर्णं तीर्थम्परमपावनम् ॥५६।
हरिर्मां कृपया तत्र पुन्तीर्थे सरसि प्रभुः । नीत्वाऽहं भगवान्विष्णुर्द्विजरूपी जनार्दनः
स्नानं कुरु तडागेऽस्मिन्पावनेगजगामिनि । त्यजशोकंक्रियाकालःपुत्राणांचनिरर्थकम्
कोटिशस्ते मृताः पुत्रा जन्मजन्मसमुद्भवाः । पितरः पतयश्चैव भ्रातरो जामयस्तथा
केषां दुःखं त्वया कार्यं भ्रमेऽस्मिन्मानसोद्भवे । वितथे स्वप्नसदृशे तापदे देहिनामिह

नारद उवाच

इति तस्य वचः श्रुत्वा तीर्थे पुरुषसञ्ज्ञके । प्रविष्टास्नातुकामाऽहं प्रेरिता तत्रविष्णुना
मज्जनादेव तीर्थेषु पुमाञ्जातः क्षणादपि । हरिर्वीणां करे कृत्वास्थितस्तीरेस्वदेहवान्
उन्मज्ज्यचमयातीरेदृष्टःकमललोचनः । प्रत्यभिज्ञा तदा जाता मम चित्ते द्विजोत्तम !
सञ्चिन्तितं मया तत्र नारदोऽहमिहागतः । हरिणा सह स्त्रीभावंप्राप्तोमायाविमोहितः
इति चिन्तापरश्चाऽहंयदाजातस्तदाहरिः । मामाहनारदाऽऽगच्छकिंकरोषिजलेस्थितः

विस्मितोऽहं तदा स्मृत्वा स्त्रीभावं दारुणं भृशम् ।
पुनः पुरुषभावश्च सम्पन्नः केन हेतुना ॥ ६६ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां षष्ठस्कन्धे नारदस्यस्त्रीभावप्राप्त्यापुनःस्वरूपप्राप्तिवर्णनंनामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

त्रिंशोऽध्यायः

नारदस्यपुरुषरूपप्राप्त्यनन्तरंतालध्वजस्यविलापवर्णनम्

नारद उवाच

मां दृष्ट्वा नारदं विप्रं विस्मितोऽसौमहीपतिः । क्वगताममभार्यासाकुतोऽयंमुनिसत्तमः
विललाप नृपस्तत्र हा प्रियेति मुहुर्मुहुः । क्व गता मां परित्यज्यविलपन्तंवियोगिनम्

विना त्वां विपुलश्रोणि ! वृथा मे जीवितं गृहम् ।
राज्यं कमलपत्राक्षि ! किं करोमि शुचिस्मिते ! ॥ ३ ॥

न प्राणा मे बहिर्यान्तिविरहेणतवाऽधुना । गतो वै प्रीतिधर्मस्तुत्वामृतेप्राणधारणात्
विलपामि विशालाक्षि देहि प्रत्युत्तरं प्रियम् । क्वगतासामयिप्रीतिर्याऽभूत्प्रथमसङ्गमे
विमग्नाकिंजले सुभ्रूर्भक्षितामत्स्यकच्छपैः । गृहीता वरुणेनाऽऽशु ममदौर्भाग्ययोगतः
धन्या सुचारुसर्वाङ्गि या त्वंपुत्रैःसमागता । अकृत्रिमस्तुपुत्रेषुस्नेहस्तेऽमृतभाषिणि
न युक्तमधुना यन्मां विहाय त्रिदिवं गता । विलपन्तं पतिं दीनं पुत्रस्नेहेन यन्त्रिता
उभयं मे गतं कान्ते! पुत्रास्त्वंप्राणवल्लभा । तथाऽपिमरणं नास्तिदुःखितस्यभृशंप्रिये
किं करोमि क्व गच्छामि रामो नास्ति महीतले । रामाविरहजंदुःखंजानातिरघुनन्दनः
विधिना निष्ठुरेणाऽत्र विपरीतं कृतं भुवि । दम्पत्योर्मरणं भिन्नं सर्वथासमचित्तयोः
उपकारस्तु नारीणां मुनिभिर्विहितः किल । यदुक्तं धर्मशास्त्रेषु ज्वलनं पतिना सह
एवं विलपमानं तं राजानं भगवान्हरिः । निवारयामास तदा वचनैर्युक्तियोजितैः ॥१२

श्रीभगवानुवाच

किं विषीदसि राजेन्द्र ! क्व गता ते प्रियाङ्गना ।

न श्रुतं किं त्वया शास्त्रं न कृतोऽसौ बुधाश्रयः ॥ १४ ॥

का सा कस्त्वं क्व संयोगो वियोगःकीदृशस्तव । प्रवाहरूपसंसारेनृणांनौतरतामिव

गृहे गच्छ नृपश्रेष्ठ ! वृथा ते रुदितेन किम् ?।

संयोगश्च वियोगश्च दैवाधीनः सदा नृणाम् ॥ १६ ॥

अनयासह ते राजन्संयोगस्त्विह सम्भृतः । भुक्तात्वयाविशालाक्षीसुन्दरीतनुमध्यमा

न दृष्टौ पितरावस्यास्त्वयाप्राप्ता सरोवरे । काकतालीप्रसङ्गेन यद्भूतं तत्तथागतम्

मा शोकं कुरु राजेन्द्र ! कालो हि दुरतिक्रमः ।

कालयोगं समासाद्य भुङ्क्ष्व भोगान्गृहे यथा ॥ १९ ॥

यथाऽऽगता गता सा तु तथैव वरवर्णिनी । यथापूर्वं तथा तत्र गच्छकार्यंकुरुप्रभो !

रुदितेन तवाऽद्यैव नाऽऽगमिष्यति कामिनी ।

वृथा शोचसि पृथ्वीश ! योगयुक्तो भवाऽधुना ॥ २१ ॥

भोगः कालवशादेति तत्रैव प्रतियाति च । नाऽत्रशोकस्तुकर्तव्योनिष्फलेभववर्त्मनि

नैकत्र सुखसंयोगो दुःखयोगस्तु नैकतः । घटिकायन्त्रवत्कामं भ्रमणंसुखदुःखयोः

मनःकृत्वास्थिरंभूप ! कुरुराज्यंयथासुखम् । अथवाऽन्यस्यदायादेवनंसेवयसाम्प्रतम्

दुर्लभोमानुषोदेहःप्राणिनांक्षणभङ्गुरः । तस्मिन् प्राप्तेतुकर्तव्यं सर्वथैवाऽऽत्मसाधनम्

जिह्वोपस्थरसो राजन्पशुयोनिषु वर्तते । ज्ञानं मानुषदेहे वै नाऽन्यासु च कुयोनिषु

तस्माद्गच्छगृहंत्यक्त्वाशोकंकान्तासमुद्भवम् । मायेयंभगवत्यास्तुययासम्मोहितंजगत्

नारद उवाच

इत्युक्तो हरिणा राजा प्रणम्य कमलापतिम् ।

कृत्वा स्नानविधिं सम्यग्जगाम निजमन्दिरम् ॥ २८ ॥

दत्त्वाराज्यं स्वपौत्राय प्राप्यनिर्वेदमद्भुतम् । वनं जगाम भूपालस्तत्रज्ञानमवाप च

गते राजन्यहं वीक्ष्य भगवन्तमधोक्षजम् । तमब्रुवं जगन्नाथं हसन्तं मां पुनः पुनः

वञ्चितोऽहं त्वया देव ! ज्ञातं मायाबलंमहत् । स्मरामि चरितंसर्वंस्त्रीदेहेयत्कृतंमया
ब्रूहि मे देवदेवेश ! प्रविष्टोऽहं सरोवरे । विगतं पूर्वविज्ञानं कानादेवं कथं हरे ! ॥
योषिद्देहं समासाद्य मोहितोऽहं जगद्गुरो !। पतिं प्राप्यनृपश्रेष्ठ! पुलोमीवासवंयथा
मनस्तदेव तच्चित्तं देहः स च पुरातनः । लिङ्गं तदेव देवेश ! स्मृतेर्नाशः कथं हरे !॥
विस्मयोऽयंमहान्मेऽत्रज्ञाननाशं प्रतिप्रभो !। कथयाऽद्यरमाकान्त! कारणंपरमञ्च यत्
नारीदेहं मया प्राप्य भुक्ता भोगाह्यनेकशः । सुरापानं कृतं नित्यंविधिहीनञ्चभोजनम्
मया तदेव न ज्ञातं नारदोऽहमितिस्फुटम् । जानाम्यद्य यथासर्वंविविक्तंन तथातदा

विष्णुरुवाच

पश्य नारद मायाविविलासोऽयं महामते !। देहेषु सर्वजन्तूनां दशा भेदाह्यनेकशः
जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिश्च तुरीया देहिनां दशा । तथादेहान्तरे प्राप्ते सन्देहः कीदृशः पुनः
सुप्तो नरो न जानाति न शृणोति वदत्यपि । पुनः प्रबुद्धो जानातिसर्वंज्ञानमशेषतः
निद्रया चाल्यते चित्तंभवन्तिस्वप्नसम्भवाः । न नाविधामनोभेदामनोभावाह्यनेकशः

गजो मां हन्तुमायाति न शक्तोऽस्मि पलायने ।
किं करोमि न मे स्थानं यत्र गच्छामि सत्वरः ॥ ४२ ॥

मृतं पितामहं स्वप्ने पश्यति स्वगृहागतम् । संयोगस्तेन वार्ता च भोजनंसहमन्यते
प्रबुद्धःखलुजानातिस्वप्नेदृष्टं सुखासुखम् । स्मृत्वासर्वंजनेभ्यस्तुविस्तरात्प्रवदत्यपि

स्वप्ने कोऽपि न जानाति भ्रमोऽयमिति निश्चयः
तथा तथैव विभवो मायाया दुर्गमः किल ॥ ४९ ॥

नाऽहं नारद! जानामि पारम्परमदुर्घटम् । गुणानां किल मायायानैव शम्भुर्न पद्मजः
कोऽन्यो ज्ञातुं समर्थोऽभून्मानतोमन्दधीःपुनः । मातागुणपरिज्ञानंनकस्यापिभवेदिह
गुणत्रयकृतं सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम् । विना गुणैर्नसंसारो वर्तते किञ्चिदप्यदः ॥
अहं सत्त्वप्रधानोऽस्मिरजस्तमसमन्वितः । नकदाचित्त्रिभिर्हीनोभवामिभुवनेश्वरः

तथा ब्रह्मा पिता तेऽत्र रजोमुख्यः प्रकीर्तितः ।
तमः सत्त्वसमायुक्तो नताभ्यामुज्झितः किल ॥ ५० ॥

शिवस्तथा तमोमुख्यो रजःसत्त्वसमावृतः । गुणत्रयविहीनस्तु नैवकोऽपिमयाश्रुतः
तस्मान्मोहोन कर्तव्यःसंसारेऽस्मिन्मुनीश्वर ! मायाविनिर्मितेऽसारेऽपारेपरमदुर्घटे
दृष्टा माया त्वयाऽद्यैव भुक्ता भोगा ह्यनेकशः ।
किं पृच्छसि महाभाग ! तस्याश्चरितमद्भुतम् ॥ ५३ ॥
इति श्रीदेवीभागवतेमहापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यांसंहितायांषष्ठस्कन्धे
मायाप्राबल्यवर्णनं नाम त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

एकत्रिंशोऽध्यायः

व्यासनारदसम्वादेभगवतीध्यानादिकवर्णनम्

व्यास उवाच

निशामय महाराज ! ब्रवीमिविशदाक्षरम् । माहात्म्यंखलुमायायानारदात्तुमयाश्रुतम्
मया पुनर्मुनिः पृष्टो नारदः सर्ववित्तमः । श्रुत्वा कथां मुनेस्तस्यनारीदेहसमुद्भवाम्
ब्रूहिनारद पश्चात्किं कथितं हरिणा तदा । क गतश्च जगन्नाथो भवता सह माधवः

नारद उवाच

इत्युक्त्वाभगवांस्तस्मिंस्तडागेऽतिमनोहरे । आरुह्य गरुडं गन्तुंवैकुण्ठे च मनो दधे
मामुवाच रमाकान्तो यथेष्टं गच्छ नारद !। एहिवा मम लोकं त्वं यथारुचिनथाकुरु
ब्रह्मलोकं गतश्चाऽहमापृच्छ्य मधुसूदनम् । भगवानपि देवेशस्तत्क्षणाद्गरुडासनः
वैकुण्ठमगमत्तूर्णं मामादिश्य यथासुखम् । ततोऽहं पितृसदनं गतो याते जनार्दने !
चिन्तयन्सकलंदुःखं सुखं च परमाद्भुतम् । गत्वा प्रणम्यपितरंस्थितोयावत्पुरःपितुः
तावत्पृष्टो मुने ! पित्रा वीक्ष्य चिन्तातुरं तु माम् ।

ब्रह्मोवाच

क गतोऽसि महाभाग ! कस्माच्चिन्तातुरः सुत ! ॥ ६ ॥

स्वस्थं नैवाऽद्य पश्यामि मनस्ते मुनिसत्तम !।
केनाऽपि वञ्चितोऽसि त्वं दृष्टं वा किञ्चिदद्भुतम् ॥ १० ॥
विषण्णं गतविज्ञानं पश्यामि त्वां कथं सुत !।

नारद उवाच

इति पृष्टस्तदा पित्रा बृस्यां समुपवेश्य च ॥ ११ ॥

तमब्रुवं स्ववृत्तान्तं मायाबलसमुद्भवम् । वञ्चितोऽहंपितःकामं विष्णुना प्रभविष्णुना
स्त्रीभावङ्गमितः कामं वर्षाणि सुबहून्यपि । अनुभूतं महद्दुःखं पुत्रशोकसमुद्भवम् ॥
प्रबोधितोऽहंतेनैवमृदुवाक्यामृतेन च । पुनः सरोवरेस्नात्वा जातोऽहं नारदः पुमान्
किमेतत्कारणं ब्रह्मन्यन्मोहमगमं तदा । विस्मृतं पूर्वविज्ञानं तन्मयस्तरसा कृतः ॥
एतन्मायाबलंब्रह्मन्न जानेऽहं दुरत्ययम् । ज्ञानहानिकरंजातम्मूलं मोहस्य विस्फुटम्
अनुभूतम्मया सम्यग्ज्ञातंसर्वं शुभाशुभम् । कथं त्वं जितवांस्तात! तमुपायम्वदस्वमे

नारद उवाच

विज्ञप्तोऽसौ मया धाता प्रीतिपूर्वमतः परम् ।
मामुवाच स्मितं कृत्वा पिता मे वासवीसुत ! ॥ १८ ॥

ब्रह्मोवाच

दुर्जयैषा सुरैः सर्वैर्मुनिभिश्च महात्मभिः । तापसैर्ज्ञानयुक्तैश्च योगिभिः पवनाशनैः ॥
नाहंतांसर्वथाज्ञातुंशक्तोमायांमहाबलाम् । विष्णुर्ज्ञातुं न शक्तश्च तथा शम्भुरुमापतिः
दुर्ज्ञेयासामहामाया सृष्टिस्थित्यन्तकारिणी । कालकर्मस्वभावाद्यैर्निमित्तकारणैर्वृता
शोकं माकुरुमेधाविंस्तत्रमायामहाबले । न चैवविस्मयःकार्यो वयं सर्वे विमोहिताः

नारद उवाच

पित्रेत्युक्तस्तदा व्यास ! तमापृच्छ्य गतस्मयः ।
आगतोऽस्म्यत्र पश्यन्वै तीर्थानि च वराणि च ॥ २३ ॥
तस्मात्त्वमपि सन्त्यज्य मोहं कौरवनाशजम् ।
कालक्षयं सुखासीनः स्थानेऽस्मिन्कुरुसत्तम !॥ २४ ॥

अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् । निश्चयं हृदयेकृत्वा विचरस्व यथासुखम्

व्यास उवाच

इत्युक्त्वानारदोराजन्गतोमांप्रतिबोध्य च । अहंतच्चिन्तयन्वाक्यं यदुक्तं मुनिनातदा
स्थितः सरस्वतीतीरे कल्पे सारस्वते वरे । कालातिवाहनायैतत्कृतं भागवतम्मया
पुराणमुत्तमम्भूप ! सर्वसंशयनाशनम् । नानाख्यानसमायुक्तं वेदप्रामाण्यसंश्रितम् ॥
सन्देहोऽत्र न कर्तव्यःसर्वथा नृपसत्तम !। यथेन्द्रजालिकः कश्चित्पाञ्चालींदारवींकरे

कृत्वा नर्तयते कामं स्वेच्छया वशवर्तिनी ।

तथा नर्तयते माया जगत्स्थावरजङ्गमम् ॥ ३० ॥]

ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तं सदेवासुरमानुषम् । पञ्चेन्द्रियसमायुक्तं मनश्चित्तानुवर्तनम् ॥
गुणास्तु कारणं राजन्सर्वेषां सर्वथा त्रयः । कार्यकारणसंयुक्तं भवतीति विनिश्चयः

भिन्नभिन्नस्वभावास्ते गुणामायासमुद्भवाः ।

शान्तो घोरस्तथामूढस्त्रयस्तु विविध यतः ॥ ३३ ॥

तत्समेतः पुमान्नित्यं तद्विहीनः कथम्भवेत् । न भवत्येव संसारे रहितस्तन्तुभिःपटः
तथागुणैस्त्रिभिर्हीनो न देहीतिविनिश्चयः । देवदेहो मनुष्यो वा तिरश्चोवानराधिप!

गुणैर्विरहितो न स्यान्मृद्विहीनो घटो यथा ।

ब्रह्मा विष्णुस्तथा रुद्रस्त्रयश्चाऽमी गुणाश्रयाः ॥ ३६ ॥

कदाचित्प्रीतियुक्तास्तेतथाप्रीतियुताःपुनः । तथाविषादयुक्तास्तेभवन्तिगुणयोगतः

ब्रह्मा कदाचित्सत्त्वस्थस्तदा शान्तः समाधिमान् ।

प्रीतियुक्तो भवेत्सर्वभूतेषु ज्ञानसंयुतः ॥ ३८ ॥

पुनः सत्त्वविहीनस्तु रजोगुणसमावृतः । तदाभवेद्घोररूपः सर्वत्राऽप्रीतिसंयुतः ॥
यदा तमोगुणाविष्टो बाहुल्येन भवेद्विधिः । तदाविषादसम्पन्नोमूढोभवतिनाऽन्यथा

माधवोऽपि सदा सत्त्वसंश्रितः सर्वथाभवेत् ।

यदा शान्तः प्रीतियुक्तो भवेज्ज्ञानसमन्वितः ॥ ४१ ॥

स एव रजआधिक्यादप्रीतिसंयुतो भवेत् । घोरश्च सर्वभूतेषु गुणाधीनो रमापतिः॥

रुद्रोऽपि सत्त्वसंयुक्तः प्रीतिमाञ्छान्तिमान्भवेत् ।
रजोनिमीलितः सोऽपि घोरः प्रीतिविवर्जितः ॥ ४३ ॥
तमोगुणयुतः सोऽपि मूढो विषादयुग्भवेत् । एते यदि गुणाधीनाब्रह्मविष्णुहरादयः
सूर्यवंशोद्भवास्तद्वत्सोमवंशभवाअपि । मन्वादयश्च ये प्रोक्ताश्चतुर्दश युगेयुगे ॥४५॥
अन्येषाञ्चैव का वार्तासंसारेऽस्मिन्नृपोत्तम ! ।
मायाधीनं जगत्सर्वं सदेवासुरमानुषम् ॥ ४६ ॥
तस्माद्राजन्नकर्तव्यः सन्देहोऽत्र कदाचन । देही मायापराधीनश्चेष्टते तद्वशानुगः ॥
सा च माया परे तत्त्वे सम्विद्रूपेऽस्ति सर्वदा । तदधीनाप्रेरिताच तेन जीवेषु सर्वदा
ततो मायाविशिष्टां तां सम्विदं परमेश्वरीम् ।
मायेश्वरीं भगवतीं सच्चिदानन्दरूपिणीम् ॥ ४९ ॥
ध्यायेत्तथाऽऽराधयेच्च प्रणमेच्च जपेदपि । तेन सा सदया भूत्वा मोचयत्येव देहिनम्
स्वमायां सन्तरत्येव स्वानुभूतिप्रदानतः ।
भुवनं खलु माया स्यादीश्वरी तस्य नायिका ॥ ५१ ॥
भुवनेशी ततः प्रोक्ता देवी त्रैलोक्यसुन्दरी । तद्रूपे यदि सक्तं स्याच्चित्तंभूमिपतेसदा
मायया किम्भवेत्तत्र सदसद्भूतया नृप !।
तस्मान्मायानिरासार्थं नान्यद्वै देवतान्तरम् ॥ ५३ ॥
समर्थन्तु विना देवीं सच्चिदानन्दरूपिणीम् । तमोराशिंनाशयितुं शक्तं नैवतमोभवेत्
किन्तु भानुप्रभाचन्द्रविद्युद्वह्निप्रभादयः ।
तस्मान्मायेश्वरीमम्बां स्वप्रकाशान्तुसम्विदम् ॥ ५५ ॥
आराधयेदतिप्रीत्या मायागुणनिवृत्तये ।
इति सम्यङ् मयाऽऽख्यातं वृत्रासुरवधादिकम् ॥ ५६ ॥
यत्पृष्टं राजशार्दूल किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि । पूर्वार्धोऽयं पुराणस्यकथितस्तवसुव्रत
यत्रदेव्यास्तुमहिमा विस्तारेणोपपादितः ।
एतद्रहस्यं श्रीमातुर्नदेयं यस्य कस्यचित् ॥ ५८ ॥

देयं भक्ताय शान्ताय देवीभक्तिरताय च। शिष्याय ज्येष्ठपुत्राय गुरुभक्तियुताय च

इदमखिलकथानां सारभूतं पुराणम् निखिलनिगमतुल्यं सप्रमाणान्नुविद्धम्।
पठति परमभावाद्यः शृणोतीह भक्त्या स भवति धनवान्वै ज्ञानवान्मानवोऽत्र॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां षष्ठस्कन्धे
भगवतीमाहात्म्ये एकत्रिंशोऽध्यायः॥ ३१॥

वेदाष्टवसुभूसंख्यैः (१८८४) पद्यैर्व्यासकृतैः शुभैः।
देवीभागवतस्याऽस्य षष्ठस्कन्धः समाप्तवान्॥ १॥

पूर्वार्धं समाप्तम्

भुवनेश्वर्यर्पणमस्तु

शम्भूयात्



सा मां पातु सरस्वतीभगवती निःशेषजाड्यापहा

——:०:——